5.2

भारतीय इतिहास और अर्थशास्त्र के गौरव ग्रंथ

भारत में
अंगरेज़ी राज

(द्वितीय खण्ड)

सुन्दर लाल

प्रकाशन विभाग
सूचना और प्रसारण मन्त्रालय
भारत सरकार

प्रथम मुद्रण : पौष 1882 (जनवरी 1961)
द्वितीय मुद्रण : कार्तिक 1888 (नवम्बर 1966)
तृतीय मुद्रण : भाद्र 1892 (सितम्बर 1970)
चतुर्थ मुद्रण : पौष 1903 (अप्रैल 1982)

प्रकाशन विभाग

मूल्य : रु० 40.00

निदेशक, प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मन्त्रालय, भारत सरकार, पटियाला हाउस, नई दिल्ली-110001 द्वारा प्रकाशित ।

विक्रय केन्द्र ● प्रकाशन विभाग :

सुपर बाजार (दूसरी मंजिल), कनाट सर्कस, नई दिल्ली-110001
कामर्स हाउस, करीमभाई रोड, बालार्ड पायर, बम्बई-400038
8-एस्प्लेनेड ईस्ट, कलकत्ता-700069
एल० एल० आडीटोरियम, 736 अन्नासलै, मद्रास-600002
बिहार राज्य सहकारी बैंक बिल्डिंग, अशोक राजपथ, पटना-800004
निकट गवर्नमेंट प्रेस, प्रेस रोड, त्रिवेन्द्रम-695001
10 बी, स्टेशन रोड, लखनऊ-226004

प्रबंधक, भारत सरकार मुद्रणालय, नासिक द्वारा मुद्रित ।

विषय-सूची

अध्याय पृष्ठ

27. दूसरे मराठा युद्ध का अन्त 517
28. लार्ड मिण्टो प्रथम 531
29. भारत के उद्योग धन्धों का सर्वनाश 559
30. नेपाल युद्ध 585
31. हेस्टिंग्स के कारनामे 599
32. तीसरा मराठा युद्ध 602
33. लार्ड ऐमहर्स्ट 641
34. लार्ड विलियम बेंटिंक 659
35. सन् 1833 का चार्टर ऐक्ट 674
36. भारतीय शिक्षा का सर्वनाश 682
37. पहला अफ़गान युद्ध 704
38. सिन्ध पर अंगरेज़ों का क़ब्ज़ा 720
39. भारत के दूसरे नरेश और एलेनब्रु 746
40. पहला सिख युद्ध 756
41. दूसरा सिख युद्ध 770
42. दूसरा वर्मा युद्ध 782
43. डलहौज़ी की भू-पिपासा 789
44. सन् 1857 की क्रांति से पहले 804
45. चर्बी के कारतूस और क्रांति का प्रारम्भ . . . 827
46. प्रतिकार का प्रारम्भ 844
47. दिल्ली, पंजाब और बीच की घटनाएं . . . 865
48. अवध और बिहार 907
49. लक्ष्मीबाई और तात्या टोपे 937
50. सन् 57 के स्वाधीनता संग्राम पर एक दृष्टि . . . 964
51. सन् 1857 के बाद 973

परिशिष्ट

1. आभार-प्रदर्शन 995
2. अनुक्रमणिका 998

सन् 1700 का भारत

"यह हिन्दोस्तान एक ऐसा अथाह गड्ढा है, जिसमें संसार का अधिकांश सोना और चांदी चारों तरफ़ से, अनेक रास्तों से आ-आकर जमा होता है और जिससे बाहर निकलने का उसे एक भी रास्ता नहीं मिलता।"

—फ्रांसीसी यात्री बरनियर

सन् 1900 का भारत

"बीसवीं सदी के शुरू में करीब दस करोड़ मनुष्य ब्रिटिश भारत में ऐसे हैं, जिन्हें किसी समय भी पेट भर अन्न नहीं मिल सकता ....इस अधःपतन की दूसरी मिसाल इस समय किसी सभ्य और उन्नतिशील देश में कहीं पर भी दिखाई नहीं दे सकती।"

—विलियम डिगबी, सी० आई० ई०, एम० पी०

सत्ताइसवां अध्याय

दूसरे मराठा युद्ध का अन्त

सिंधिया और होलकर की भेंट

भरतपुर का मोहासरा हटा लिया गया। राजा रणजीतसिंह के साथ अंगरेज़ों की संधि हो गई। किंतु महाराजा जसवंतराव होलकर अभी तक परास्त न हुआ था और न दौलतराव सिंधिया की शिकायतों का ही निबटारा हुआ था।

जसवंतराव होलकर भरतपुर से चल कर सब्बलगढ़ में सिंधिया से आ मिला। इन दो बलवान नरेशों के मिल जाने से अंगरेज़ और भी अधिक घबरा गए। कंपनी की आर्थिक अवस्था इस समय गिरी हुई थी। मार्क्विस वेल्सली ने जनरल लेक को आज्ञा दी कि आप सिंधिया का पीछा कीजिए। सिंधिया और होलकर, दोनों सब्बलगढ़ से कोटा पहुंचे और कोटा से अजमेर गए। जनरल लेक ने 25 अप्रैल, सन् 1805 को मार्क्विस वेल्सली को लिखा — "मेरे लिए सिंधिया का पीछा कर सकना असंभव होगा।" अपनी इस असमर्थता के कारणों में उसने "गरमी की तेजी" और "पानी की कमी" के अतिरिक्त एक कारण यह भी बताया—

"कोई ऐसा बुरा काम नहीं, जिसे ये लोग न कर सकते हों; उस अमानुषिक राक्षस होलकर को सब से अधिक आनंद समस्त यूरोपियनों का वध करने में आता है और जहां तक सुनने में आया है सेरजीराव घोटका के भाव भी हमारी ओर ठीक इसी तरह के हैं।"*

सेरजीराव घोटका सिंधिया का एक विश्वस्त सेनापति था। प्रतिष्ठित भारती नरेशों के लिए अपने सरकारी और निजी पत्रों में नीच से नीच अपशब्दों का उपयोग करना और भारतीय नरेशों के चरित्र पर झूठे कलंक लगाना उस समय कंपनी के बड़े से बड़े अंगरेज़ कर्मचारी के लिए एक मामूली बात थी। जनरल लेक के आयरलैंड और भारत के असंख्य पाप कृत्यों से जाहिर है कि 'बुरे कामों' के करने में शायद कोई भी मनुष्य जनरल लेक का मुक़ाबला कर सकता था। वास्तव में जसवंतराव होलकर और दौलतराव सिंधिया, दोनों बहादुर और ऊंचे दरजे के सेनानी साबित हो चुके थे और जनरल लेक, जिसका एक मात्र शस्त्र उसके 'गुप्त उपाय' थे, उन दोनों का मुक़ाबला करने से कांपता था।

वेल्सली की परेशानी

मार्क्विस वेल्सली भी काफ़ी परेशान था। उसने जनरल लेक के पत्र के

---

* "There is no vile act these people are not equal to: that inhuman monster Holkar's chief delight is in butchering all Europeans, and by all accounts Serjie Rao Ghautka's disposition towards us in precisely the same."

उत्तर में 17 मई, सन् 1805 को लिखा कि जहां तक हो सके "दौलतराव सिंधिया के साथ लड़ाई छेड़ने से बचा जाए" और "यदि संभव हो तो बिना और अधिक लड़े होलकर के साथ भी सब मामलों का फ़ैसला कर लिया जाए।"

दोबारा युद्ध की मंशा

किंतु मार्क्विस वेल्सली इस बात को भी अनुभव कर रहा था कि इतने दिनों प्रयत्न करने पर भी भरतपुर जैसे छोटे से राजा से हार जाना, होलकर को वश में न कर सकना और सिंधिया के साथ भी इस तरह समझौता कर लेना इस सब में अंगरेज़ों की काफ़ी ज़िल्लत हुई है। वेल्सली केवल मौसम की ख़राबी और धन की कमी से विवश था। सुलह की बातचीत से वह केवल सिंधिया और होलकर, दोनों को धोखे में रखना चाहता था। उसकी हार्दिक इच्छा यही थी कि जितनी जल्दी मौक़ा मिले, सिंधिया और होलकर, दोनों को नष्ट कर दिया जाए। एक ओर उसने जनरल लेक को लिखा कि मराठी नरेशों के साथ सुलह की बातचीत की जाए और दूसरी ओर उसने अवध के नबवा वज़ीर से नया क़र्ज़ लेने का प्रबंध किया। जिस पत्र का ऊपर ज़िक्र आया है, उसी पत्र में आगे चल कर वेल्सली ने जनरल लेक को लिखा—

> "××× ज्यों ही मौसम इजाज़त दे त्यों ही फिर युद्ध शुरू करने के लिए फ़ौजें पूरी तरह तैयार रहनी चाहिएं। निस्सन्देह इन बातों का प्रबन्ध आप कर ही लेंगे कि रसद इत्यादि जमा कर ली जाए और आइन्दा मौसम के शुरू में ही सिंधिया का नाश कर सकने के लिए जो-जो तैयारी ज़रूरी हो, वह सब पूरी कर ली जाए।"
>
> "××× सम्भव है हमें अगस्त महीने के करीब या ज्यों ही वर्षा का ज़ोर घटे, सिंधिया पर हमला करना पड़े या होलकर से युद्ध छेड़ना पड़े।"*

इसी पत्र में मार्क्विस वेल्सली ने लेक को आदेश दिया कि सिंधिया और होलकर से लड़ने के लिए चार सेनाएं चारों और तैयार रखी जाएं। एक गोहद के राजा के ख़र्च पर सब्सीडियरी सेना गोहद में, दूसरी सेना बुंदेलखंड में, तीसरी आगरा और मथुरा में और चौथी दिल्ली और दोआब के उत्तरी भाग में। इसके बाद 25 जुलाई, सन् 1805 को मार्क्विस वेल्सली ने जनरल लेक को फिर लिखा—

> "यदि हमने, जितनी जल्दी से जल्दी मुमकिन हो सकता है, फिर से युद्ध न कर दिया तो हम पर एक बहुत बड़ी आपत्ति आए बिना नहीं रह सकती। ×××

---

* "......The troops......should be completely ready to commence active operations as soon as the season will permit and arrangements will of course be adopted by Your Lordship for collecting supplies, etc. and for completing every other preparation which may be necessary to enable Your Lordship to destroy Scindhia at an early period of the ensuing season.

"......the possible contingency of our being compelled to attack Scindhia, or to operate against Holkar, about the month of August, or as soon as the violence of the rainy season may nave subsided"—Marques Wellesley's official and Secret Letter to General Lake, dated 17th May, 1805.

"××× इन नरेशों की संयुक्त सेनाओं के विरुद्ध हमें ××× हिन्दोस्तान और दक्षिण के हर भाग में युद्ध करना होगा।"*

जाहिर है कि मार्क्विस वेल्सली इस बात का निश्चय कर चुका था कि नतीजा चाहे कुछ भी हो, अगस्त सन् 1805 में सिंधिया और होलकर, दोनों के साथ फिर से युद्ध आरंभ कर दिया जाए। किंतु मार्क्विस वेल्सली की इच्छा पूरी न हो सकी। स्वयं वेल्सली ही को भारत छोड़ कर शीघ्र इंगलिस्तान लौट जाना पड़ा।

अंगरेजों की लगातार हारों का परिणाम

कारण यह था कि दो वर्ष से ऊपर के लगातार युद्धों और साल भर की लगातार हारों के कारण इंगलिस्तान के शासकों और कम्पनी के डाइरेक्टरों में मार्क्विस वेल्सली और जनरल लेक, दोनों के प्रति अप्रसन्नता बढ़ती जा रही थी। इस अप्रसन्नता का मुख्य कारण यह था कि मार्क्विस की युद्ध नीति के कारण कम्पनी की आर्थिक स्थिति इस समय बहुत खराब हो गई थी। सिंधिया और भोंसले के विरुद्ध संग्रामों में धन को पानी की तरह बहा कर, रिश्वतें दे देकर, अंगरेज़ों ने विजय प्राप्त की थी और होलकर तथा राजा भरतपुर के विरुद्ध उनका यह उपाय भी निष्फल जा रहा था। अंगरेज़ जाति व्यापारी जाति है। ईस्ट इंडिया कम्पनी इंगलिस्तान के व्यापारियों की कम्पनी थी। यदि दूसरे देशों में अंगरेज़ी साम्राज्य का बढ़ना इन लोगों को प्रिय था तो केवल इसलिए, क्योंकि उससे उन्हें आर्थिक लाभ की आशा थी। भारत के अंदर अंगरेज़ी साम्राज्य कायम करने में इंगलिस्तान के लोगों ने कभी एक पैसा भी इंगलिस्तान के कोष से लाकर ख़र्च नहीं किया। ब्रिटिश भारतीय साम्राज्य का संस्थापन केवल हिंदोस्तानियों के पैसे से और अधिकतर हिंदोस्तानियों के रक्त से ही हुआ है। अंगरेज़ कोम किसी भी दूसरी हानि को सहन कर सकती है, किंतु धन की हानि उसके लिए सर्वथा असह्य है। यही कारण था कि इंगलिस्तान के शासक और कम्पनी के डाइरेक्टर, दोनों इस समय मार्क्विस वेल्सली को गवर्नर जनरल के पद से अलग करके इंगलिस्तान वापस बुला लेने के लिए उत्सुक थे।

कम्पनी की आर्थिक स्थिति

कम्पनी की आर्थिक स्थिति इस समय बहुत गिरी हुई थी। भारत में कम्पनी का ख़जाना ख़ाली पड़ा था। लखनऊ, बनारस और दूसरे कई स्थानों से मार्क्विस वेलसली ने कम्पनी के नाम पर बड़ी-बड़ी रक़में क़र्ज़ ले रखी थीं, जिनमें बीस लाख रुपये की एक रक़म लखनऊ के नवाब वज़ीर से क़र्ज़ ली गई थी। इस समय वेलसली फिर नवाब वज़ीर पर ज़ोर देकर उससे दस लाख रुपये और क़र्ज़ मांग रहा था। † क़रीब पांच लाख रुपये माहवार जनरल लेक की अपनी सेना

---

* "Great danger must inevitably be produced by our abstaining from the prosecution of hostilities at the earliest practicable period of time,......

"......against the confederated forces......hostilities in every quarter of Hindustan and the Deccan."

†Lord Cornwallis' letter to Lord Castlereagh, 1st August, 1805.

की तनख़ाहों का ख़र्च था और इसके अलावा जनरल लेक के "गुप्त उपायों" से भारतीय नरेशों के जो सिपाही अपने मालिकों के साथ विश्वासघात करके कम्पनी की ओर आ गए थे, उनका ख़र्च करीब छह लाख रुपये माहवार का अलग था; और जब कि भारतीय ब्रिटिश सरकार क़र्ज़ों में डूबी हुई थी, ये सब तनख़ाहें इस समय कई महीनों से चढ़ी हुई थीं।*

इसके अतिरिक्त सम्राट शाहआलम को वश में रखने और दिल्ली में क़ब्ज़ा रखने के लिए कम्पनी को दिल्ली में एक बड़ी सेना रखनी पड़ती थी, जिसके बदले में कम्पनी को एक पाई कहीं से आमदनी के रूप में न मिलती थी।†

शोषण के नमूने

स्वयं इंगलिस्तान के अंदर कम्पनी के ज़िम्मे क़र्ज़ा बढ़ता जा रहा था। पार्लियामेंट के अंदर 25 फरवरी, सन् 1806 को मि० पॉल ने पार्लियामेंट के सदस्यों को यह सूचना दी—

> "सन् 1793 के क़ानून के अनुसार भारत के फ़ौजी और दीवानी महकमों का पूरा ख़र्च अदा करने के बाद, क़ानन की यह आज्ञा है कि कम से कम दस लाख पौंड (क़रीब डेढ़ करोड़ रुपये) प्रतिवर्ष व्यापार में लगाए जाएं और इंगलिस्तान की राष्ट्रीय सम्पत्ति को बढ़ाने के लिए हर साल भारत से इंगलिस्तान भेज दिए जाया करें। सन् 1798 से अब तक कोई रक़म व्यापार में नहीं लगाई गई और इस एक मामले में क़ानून के विरुद्ध इंगलिस्तान को 80 लाख पौंड से अधिक की हानि पहुंचाई जा चुकी है। इस हद तक हमारी व्यापारी जाति को हमारे उपनिवेशों से ऐसी बड़ी रक़म से वंचित रखा गया है जो कानून से निर्धारित और नियत थी।"‡

वेल्सली की वापसी

इंगलिस्तान के शासकों की यह आज्ञा थी कि कम्पनी के भारतीय इलाक़ों की आमदनी में से बचा कर यहां की अंगरेज़ सरकार हर साल कम से कम दस लाख पौंड का माल मुफ़्त कम्पनी के हिस्सेदारों की जेबें भरने के लिए इंगलिस्तान भेज दिया करे। जेम्स मिल जैसे उदार अंगरेज़ ने लिखा है कि—"इंगलिस्तान

---

* "Lake's army, the pay of which amounts to about five lacs per month, is above five months in arrears. An army of irregulars, composed chiefly of deserters from the enemy, which with approbation of Government, the General assembled by proclamation, and which costs about six lacs per month, is likewise somewhat in arrears."—Lord Cornwallis to Lord Castelreagh, 9th August 1805.

† Lord Cornwallis to Colonel Malcolm, 14th August, 1805.

‡ "By the Act of 1793, after the payment of the military and civil establishment, the Act enjoins that a sum not less than one million of pounds sterling shall be applied for commercial purposes, and remitted to Great Britain, to form a part of its national wealth. Since 1798, no sum whatever has been applied to commercial purposes, and the law has been violated in this single instance to a sum exceeding 8 millions. To this extent, and to this amount has this commercial nation been deprived of such an import from our colonies, which the law ordered and enjoined."

को हिंदोस्तान से तभी लाभ है जब कि हिंदोस्तान की आमदनी में से बचा कर धन इंगलिस्तान भेजा जा सके।"* किंतु आए दिन के युद्धों के कारण 8 साल तक यह मुफ्त का माल इंगलिस्तान न पहुंच सका था। होलकर और भरतपुर के विरुद्ध संग्रामों में भी मार्क्विस वेल्सली को लगातार ज़िल्लत उठानी पड़ी थी। स्वभावत: इंगलिस्तान के लोग मार्क्विस वेल्सली से इस समय काफ़ी नाखुश थे। कम्पनी के जिन हिस्सेदारों की वार्षिक आमदनी में कमी पड़ गई थी, उन्होंने भी शोर मचाना शुरू कर दिया। इंगलिस्तान के सब लोग उस समय, जिस तरह भी हो सके, युद्ध बंद कर देने के लिए उत्सुक थे। अंत में मार्क्विस वेल्सली की जगह लार्ड कार्नवालिस को दूसरी बार भारत का गवर्नर जनरल नियुक्त करके भेजा गया। 18 जुलाई, सन् 1805 को कार्नवालिस मद्रास पहुंचा, 29 जुलाई को कलकत्ते पहुंचा और 30 जुलाई, सन् 1805 को उसने दूसरी बार गवर्नर जनरल का पद ग्रहण किया।

शुरू अगस्त में मार्क्विस वेल्सली अपने देश वापस चला गया। अपने समस्त शासन काल में उसने एक भी काम ऐसा नहीं किया जिसके लिए कोई भारतवासी उसे प्रेम या कृतज्ञता के साथ याद कर सके।

फिर लार्ड कार्नवालिस

भारतीय नरेशों या भारतीय प्रजा के साथ लार्ड कार्नवालिस को मार्क्विस वेल्सली की अपेक्षा कुछ अधिक प्रेम न था और न दोनों की साम्राज्य पिपासा में ही कोई अंतर था। इसी दूसरे मराठा युद्ध के शुरू के दिनों में सिंधिया और बरार के राजा के विरुद्ध जनरल लेक और जनरल वेल्सली की विजयों का समाचार सुन कर लार्ड कार्नवालिस ने इंगलिस्तान से बैठे हुए 30 अप्रैल, सन् 1804 को मार्क्विस वेल्सली को लिखा था—

> **"अपने मित्रों, जनरल लेक और जनरल वेल्सली की महत्वपूर्ण और गौरवान्वित विजयों से मुझे बड़ा सच्चा सन्तोष हुआ है × × ×।**
>
> **"× × × मैं सच्चे जी से चाहता हूं कि जिस तरह के योग्य नीतिज्ञों और चतुर सेनानियों के सुपुर्द हाल में हमारे एशियाई साम्राज्य के संरक्षण का भार रहा है, उसी तरह के योग्य नीतिज्ञ पृथ्वी के हर भाग में मेरे देश के हितों को बढ़ाएं और ऐसे ही चतुर सेनापति पृथ्वी पर मेरे देश की सेनाएं लेकर जाएं।"†**

सन्धि को उत्सुकता

किंतु कम्पनी की आर्थिक कठिनाइयों, होलकर और सिंधिया के विरुद्ध

---

* "If India affords a surplus revenue which can be sent to England, thus far is India beneficial to England."—Mill, vol. vi, p. 471.

† "The important and glorious achievements of my friends, General Lake and Wellesley, have afforded me the most sincere satisfaction.

* * *

"......I earnestly hope that, in every part of the globe, its (my country's) interests will be promoted by as able statesmen, and its (my country's) armies conducted by as meritorious generals, as those who have of late been entrusted with the preservation of our Asiatic Empire."

विजय की दुराशा और भावी पराजयों से अंगरेज़ी राज के सर्वनाश का डर, इन सब बातों ने लार्ड कार्नवालिस को विवश कर दिया कि भारत पहुंचते ही सब से पहले वह युद्ध बंद करने का प्रयत्न करे। 8 अगस्त, सन् 1805 को कार्नवालिस कलकत्ते से पश्चिमोत्तर प्रांतों की ओर बढ़ा। 19 सितम्बर, सन् 1805 को उसने जनरल लेक के नाम इस सम्बन्ध में एक विस्तृत पत्र लिखा।

महाराजा दौलतराव सिंधिया के साथ अंगरेज़ों के ख़ास-ख़ास झगड़े इस समय ये थे—

(1) रेज़िडेण्ट जेनकिन्स को दौलतराव ने अपने यहां क़ैद कर रखा था और अंगरेज़ उसकी रिहाई पर ज़ोर दे रहे थे।

(2) ग्वालियर और गोहद अभी तक अंगरेज़ों के हाथों में थे और सिंधिया उन्हें वापस मांग रहा था।

(3) युद्ध के शुरू में धौलपुर, बारी और राजकेरी के ज़िले अंगरेज़ों के क़ब्ज़े में आ गए थे और अंगरेज़ ही वहां की मालगुज़ारी वसूल करते थे। पिछली सन्धि के अनुसार ये सब ज़िले सिंधिया को वापस मिल जाने चाहिए थे, किन्तु अंगरेज़ों ने अभी तक उन्हें वापस न किया था।

(4) महाराजा जयपुर की ओर से करीब तीन लाख रुपया सालाना ख़िराज सिंधिया को मिला करता था। यह ख़िराज अब ऊपर ही ऊपर अंगरेज़ वसूल कर रहे थे।

और कई छोटी-छोटी बातें थीं जिनका हल करना इतना अधिक कठिन न था।

लार्ड कार्नवालिस ने 19 सितम्बर के पत्र में जनरल लेक को साफ़-साफ़ लिख दिया कि सिंधिया से इन शर्तों पर मैं सुलह कर लेने को तैयार हूं—

(1) जेनकिन्स की रिहाई का सवाल ही न उठाया जाए।

(2) ग्वालियर और गोहद फ़ौरन सिंधिया को वापस दे दिए जाएं।

(3) धौलपुर, बारी और राजकेरी के ज़िले सिंधिया के हवाले कर दिए जाएं और पिछली सन्धि से अब तक की वहां की मालगुजारी का सिंधिया को हिसाब दे दिया जाए।

(4) तीन लाख रुपये सालाना जयपुर का ख़िराज सिंधिया को वापस कर दिया जाए, इत्यादि। केवल इस शर्त पर कि सिंधिया होलकर से अलग हो जाए और गोहद के राणा के ख़र्च के लिए ढाई या तीन लाख रुपये वार्षिक का प्रबंध कर दे।

इसी पत्र में कार्नवालिस ने लेक को लिखा कि मैं जसवंतराव होलकर के सारे इलाके जसवंतराव को वापस देकर उसके साथ भी सुलह करने को तैयार हूं।

कार्नवालिस की मृत्यु

निस्संदेह ये सब शर्तें स्वीकार करना अंगरेज़ों के लिए काफी दबना था, किन्तु लार्ड कार्नवालिस के पास उस समय और कोई चारा न था। फिर भी मराठों के साथ सुलह करने का यश कार्नवालिस को न मिल सका। अभी

पत्र-व्यवहार हो ही रहा था कि तीन महीने से कम गवर्नर जनरल रहने के बाद अक्तूबर, सन् 1805 में अचानक ग़ाज़ीपुर में लार्ड कार्नवालिस की मृत्यु हो गई। ग़ाज़ीपुर में ही भारतवासियों के चंदे से उसके मृत शरीर के ऊपर एक सुन्दर मक़बरा बना दिया गया।

लूट का एक और उदाहरण

लार्ड कार्नवालिस के इस क्षणिक शासन काल की एक छोटी-सी घटना बयान करने योग्य है, जिससे ईस्ट इंडिया कम्पनी की उस समय की राजनैतिक और व्यापारिक लूट का एक सुन्दर उदाहरण मिलता है।

कार्नवालिस के भारत आने के समय कम्पनी की सेनाओं की तनख़ाहें इतनी चढ़ी हुई थीं कि लार्ड कार्नवालिस को फ़ौजों में ग़दर हो जाने का भय था। इसके इलाज के लिए कार्नवालिस ने एक तो तुरंत फ़ौजें कम कर दीं। दूसरे, उस समय कम्पनी का कुछ रुपया माल की ख़रीदारी के लिए इंगलिस्तान से जहाज़ों में चीन जा रहा था। ये जहाज़ संयोगवश मद्रास में ठहरे। कार्नवालिस ने इस रक़म का जहाज़ों से लेकर भारतीय फ़ौज की तनख़ाहें देने में खर्च कर लिया। 9 अगस्त, सन् 1805 को कार्नवालिस ने कम्पनी के डाइरेक्टरों को लिखा कि मेरे इस काम से कम्पनी को ज़रा भी हानि या असुविधा न होगी; क्योंकि आजकल क़रीब चालीस लाख रुपये सालाना का माल, जिसमें अधिकतर अफ़ीम और कपास होती है, मुफ्त भारत से चीन जाता है और उसके बदले में चीन से चीन का माल लेकर इंगलिस्तान भेज दिया जाता है। चीन में इस माल की क़ीमत आजकल बढ़ती जा रही है; मैं आपको विश्वास दिलाता हूं कि जो रक़म मैंने ली है, वह इसी भारतीय माल से चीन में अदा कर दी जाएगी और इंगलिस्तान में जाने वाले माल में कोई कमी न होगी।

इस चालीस लाख रुपये सालाना की लूट का उस डेढ़ करोड़ रुपये सालाना के मुफ्त के माल से कोई सम्बन्ध न था जिसका ऊपर जिक्र आ चुका है और जिसका इंगलिस्तान भेजा जाना 'क़ानूनन' ज़रूरी बताया गया था।

जिन भारतीय सरदारों ने पिछले संग्रामों में अपने देशवासियों के विरुद्ध अंगरेज़ों को मदद दी थी उनमें से कुछ को कार्नवालिस ने दिल्ली के दक्षिण और पश्चिम के इलाक़ों में जागीरें देने की भी तजवीज की। किन्तु शायद इस काम को भी पूरा करने का उसे समय न मिल सका।

सर जार्ज बारलो

लार्ड कार्नवालिस की मृत्यु के बाद गवर्नर जनरल की कौंसिल का सीनियर मेम्बर जार्ज बारलो भारत का गवर्नर नियुक्त हुआ। यह वही बारलो था, मार्क्विस वेल्सली के नाम जिसके 12 जुलाई, सन् 1806 के लम्बे निवेदन पत्र का ऊपर ज़िक्र आ चुका है, जिसमें बारलो ने मार्क्विस वेल्सली को सलाह दी थी कि—

"हिन्दोस्तान के अन्दर एक भी देशी रियासत इस तरह की बाक़ी नहीं

रहने देनी चाहिए, जो ब्रिटिश सत्ता के सहारे क़ायम न हो या जिसका समस्त राजनैतिक कारबार पूरी तरह से ब्रिटिश सत्ता के वश में न हो।"*

किन्तु इस समय देश की परिस्थिति और कम्पनी की आर्थिक कठिनाई से बारलो भी मजबूर था। होलकर और सिंधिया, दोनों इस समय अजमेर में थे। जनरल लेक में उनके मुक़ाबले का साहस न था। इसलिए बारलो को सबसे पहली चिन्ता यह हुई कि जिस तरह भी हो सके, सिंधिया और होलकर को एक दूसरे से पृथक कर दिया जाए।

सिंधिया को शुरू से ही जसवंतराव होलकर पर पूरा विश्वास न था और जसवंतराव का साथ देने के लिए उसमें जैसा चाहिए वैसा उत्साह भी न था। इसलिए लार्ड कार्नवालिस की सुलह की तजवीज़ों का सिंधिया पर अच्छा असर पड़ा। अपनी ओर से वह युद्ध बंद करने के लिए राज़ी हो गया।

सिंधिया के साथ नयी सन्धि

मुंशी कमलनयन का जिक्र पहले अध्याय में आ चुका है। जिस समय जसवंतराव भरतपुर से चल कर सिंधिया से आकर मिला, मुंशी कमलनयन एकाएक अपने मालिक को छोड़ कर अंगरेज़ों के पास दिल्ली चला गया। मुंशी कमलनयन की मारफ़त ही जनरल लेक ने सिंधिया के साथ फिर से बातचीत शुरू की। सिंधिया को होलकर से तोड़ने का काम फिर कमलनयन को सौंपा गया और अंत में कमलनयन की मारफ़त ही 23 नवम्बर, सन् 1805 को महाराजा दौलतराव सिंधिया और अंगरेज़ों के बीच फिर से सन्धि हो गई।

इस नयी सन्धि में सन् 1803 वाली सन्धि की कई शर्तें बदल दी गईं। सब्सीडियरी सन्धि का जुआ सिंधिया की गरदन से हटा लिया गया और गोहद का प्रांत व ग्वालियर का क़िला सिंधिया को वापस दे दिए गए। जयपुर, जोधपुर, उदयपुर, कोटा इत्यादि राजपूताने की रियासतों को अंगरेज़ों ने महाराजा सिंधिया की सामंत रियासतें स्वीकार कर लिया और वादा किया कि अंगरेज़ इन रियासतों के साथ अथवा सिंधिया के दूसरे सामंतों के साथ कभी किसी तरह की अलग सन्धि न करेंगे। ताप्ती और चम्बल के बीच में होलकर का जो इलाका सिंधिया ने जीत लिया था वह सिंधिया का इलाका मान लिया गया। कुछ सिंधिया को वापस दे दिए गए और बाक़ी के बदले में अंगरेज़ों ने चार लाख रुपये नक़द सालाना महाराजा सिंधिया को देते रहने का वादा किया। चंबल नदी महाराजा सिंधिया के राज की सीमा स्वीकार कर ली गई। सिंधिया ने रेज़िडेंट जेनकिंस को क़ैद से छोड़ दिया। निस्संदेह सन् 1803 की सन्धि से यह सन्धि महाराजा दौलतराव सिंधिया के लिए कहीं अधिक सम्मान की चीज़ थी।

---

* "......no native state should be left to exist in India, which is not upheld by the British power, or the political conduct of which is not under its absolute control."—Sir George Barlow's memorandum to Marques Wellesley, dated 12th July, 1803.

होलकर का सन्धि करने से इनकार

जसवन्तराव होलकर के साथ भी अंगरेज़ों ने उसका सारा इलाक़ा वापस देकर सुलह कर लेनी चाही। जसवन्तराव का अब कोई सहायक न था। अर्से से वह अपने देश से निर्वासित था। अपनी सेना को देने के लिए भी उसके पास धन की कमी थी। सिंधिया ने भी उसका साथ छोड़ दिया था। फिर भी वीर जसवन्तराव का साहस न टूटा। मालूम होता है कि वह इसी दूसरे मराठा युद्ध के शुरू की अपनी ग़लतियों का पूरा प्रायश्चित करने का संकल्प कर चुका था। इस समय भी उसने अंगरेज़ों के साथ सुलह करने से इनकार कर दिया। वह अभी तक दूसरे भारतीय या एशियाई नरेशों को अपनी ओर मिला कर अंगरेज़ों को भारत से निकालने के स्वप्न देख रहा था। सितम्बर, सन् 1805 के शुरू में अपने रहे-सहे वफ़ादार अनुयाइयों सहित अजमेर से निकल कर लाहौर के महाराजा रणजीतसिंह और दूसरे सिख राजाओं से मदद की आशा में, या अधिक आगे बढ़ कर काबुल के बादशाह से सहायता प्राप्त करने की आशा में, जसवन्तराव होलकर पंजाब की ओर बढ़ा।

जनरल लेक अपनी सेना सहित होलकर का पीछा करने के लिए निकला। किन्तु इस समय भी होलकर का विरोध करने का जनरल लेक को एकाएक साहस न होता था। कलकत्ते की अंगरेज़ कौन्सिल बराबर जनरल लेक पर ज़ोर दे रही थी कि जिस तरह और जितनी जल्दी हो सके, होलकर के साथ सुलह कर ली जाए। ब्यास नदी के ऊपर लेक और होलकर की सेनाएं एक दूसरे के क़रीब आ गईं। अमीर ख़ां, जो इस सारे समय में जसवन्तराव के साथ था, अपने जीवन चरित्र में लिखता है—

> **"जनरल लेक ने देख लिया कि यदि रणजीतसिंह और पटियाला के राजा और इस देश के दूसरे सरदार महाराजा होलकर के साथ मिल जाएंगे तो एक नयी आग भड़क उठेगी, जिसे बुझाना बड़ा मुश्किल होगा। इसलिए उसने × × × एक ऐसे चतुर और कुशल मध्यस्थ को खोजना शुरू किया जिसे होलकर के ख़ेमे में भेजा जाए और जिसके ज़रिए सुलह की बातचीत छेड़ी जा सके। × × ×"***

जसवन्तराव और महाराजा रणजीतसिंह

जनरल लेक का डर और जसवन्तराव होलकर की आशाएं बेमानी न थीं। काबुल का बादशाह उस समय भारत पर हमला करने की धमकी अंगरेज़ों को दे चुका था और महाराजा रणजीतसिंह और पंजाब के और कई राजा कम से कम नाम के लिए काबुल के बादशाह के मातहत थे। किन्तु रणजीतसिंह और दूसरे सिख राजाओं के साथ अंगरेज़ों की गुप्त साजिशें पहले से जारी थीं। ऊपर के अध्यायों में दिखाया

---

*"……the General (Lake) saw himself that if Ranjit Singh, with the Patiyala chief and other Sirdars of this country, were to make common cause with the Maharaj (Holkar), a new flame would be lighted up, which it would be difficult to extinguish. He accordingly……looked out for an intelligent skilful negotiator to be sent to Holkar's camp, and to be made the channel for an overture, ……"—Autobiography of Amir Khan, p. 286.

जा चुका है कि महाराजा रणजीतसिंह वीर किन्तु अदूरदर्शी था और इसी कारण अधिकतर अंगरेज़ों के हाथों में खेलता रहा। बल्कि मराठों का पतन और सिखों का अंगरेज़ों को मदद देना, ये दो ही सिखों की राजनैतिक उन्नति के मुख्य कारण थे। इस समय अंगरेज़ सिखों पर दो बातों के लिए सब से अधिक जोर दे रहे थे। एक यह कि आप काबुल नरेश के साथ अपना सम्बन्ध तोड़ दें और दूसरे कि मराठों को अंगरेज़ों के विरुद्ध किसी तरह की मदद न दें। अफ़गानिस्तान के अन्दर कम्पनी के लिए एजेंट, सर जान मैलकम की कोशिशों से उस समय भाई-भाई में लड़ाइयां हो रही थीं। फिर भी यदि रणजीतसिंह निर्वासित जसवन्तराव का साथ देने का साहस कर बैठता तो बहुत सम्भव है कि अंगरेज़ों का सितारा व्यास के जल में सदा के लिए निमग्न हो जाता। किन्तु रणजीतसिंह ने जसवन्तराव का साथ देने के बजाय उसे अंगरेज़ों के कहने के अनुसार यह सलाह दी कि आप अंगरेज़ों के साथ सुलह कर लें।

पंजाब में अभी तक यह किंवदन्ती प्रसिद्ध है कि इस अवसर पर जसवन्तराव ने महाराजा रणजीतसिंह को लांछना देते हुए कहा कि यदि अपने एक विपत्तिग्रस्त अतिथि और देशवासी की ओर आपका यही धर्मपालन है, तो स्मरण रहे मेरे कुल में राज कायम रह जाएगा, किन्तु आपके कुल की सत्ता का शीघ्र ही अन्त हो जाएगा। यदि यह किंवदन्ती सच है तो जसवन्तराव होलकर की यह भविष्यवाणी सच्ची साबित हुई।

जसवन्तराव से सन्धि

अन्त में एक विपक्षी राज से होकर आगे बढ़ना असम्भव देख, मजबूर होकर जसवन्तराव को सन्धि स्वीकार करनी पड़ी। 24 दिसम्बर, सन् 1805 को लार्ड कार्नवालिस की तय की हुई शर्तों पर अंगरेज़ों और जसवन्तराव होलकर के बीच सन्धि हो गई। ताप्ती और गोदावरी के दक्षिण का वह सारा इलाका, जिस पर अंगरेज़ों ने हाल में कब्जा कर लिया था, जसवन्तराव होलकर को वापस दे दिया गया और जसवन्तराव को अपने पूरे राज का अनन्य और स्वाधीन नरेश स्वीकार कर लिया गया, यानी इस युद्ध से होलकर की स्वाधीनता या उसके राज के क्षेत्रफल में तनिक भी अन्तर न आया।

दूसरे मराठा युद्ध का परिणाम

इस तरह ले-देकर दूसरे मराठा युद्ध का अन्त हुआ। इस युद्ध से मार्क्विस वेल्सली का वास्तविक उद्देश्य पूरा न हो सका, यानी मराठों की सत्ता का अन्त न हो सका। सिवाय पेशवा के और कोई मराठा नरेश सब्सीडियरी सन्धि के जाल में भी न फंस सका। किन्तु मराठों की ताकत को सदा के लिए एक बहुत बड़ा धक्का पहुंच गया; और पेशवा, सिंधिया और बरार के राजा, इन तीनों नरेशों के कुछ अत्यन्त उपजाऊ इलाके उनसे सदा के लिए छिन गए। कूटनीति और भेदनीति में अंगरेज़ों का पल्ला भारी रहा, किन्तु वीरता या युद्ध कौशल में वे मराठों और दूसरे भारतीयों के मुकाबले में तुच्छ साबित हुए। यही दूसरे मराठा युद्ध का सार है।

दूसरे मराठा युद्ध में भाग लेने वाले भारतीय नीतिज्ञ भारतीय स्वाधीनता के बढ़ते हुए क्षय और इस देश में अंगरेज़ी राज की नीवों के दिन प्रतिदिन अधिकाधिक मजबूत होने को न रोक सके, जिसका एकमात्र कारण भारतीय नरेशों में एक दूसरे पर अविश्वास और भारतवासियों में राष्ट्रीयता के भावों का अभाव था। फिर भी इस युद्ध के अन्त के दिनों में जसवन्तराव होलकर और भरतपुर के राजा का व्यवहार अत्यन्त सराहनीय और भारत के भविष्य की दृष्टि से गौरवान्वित और हितकर रहा। युद्ध के शुरू में जसवन्तराव होलकर की भूलें अत्यन्त खेदजनक थीं। यदि जसवन्तराव अंगरेज़ों के हाथों में खेल कर उनकी सहायता न करता तो अंगरेज़ कदापि सब्सीडियरी सन्धि का जुआ पेशवा के कन्धों पर न लाद सकते। उसके बाद भी यदि जसवन्तराव मराठा मण्डल के एक सदस्य की हैसियत से अपना कर्तव्य पूरा करता और अंगरेज़ों के बहकाए में आकर सिंधिया और भोंसले की विपत्तियों की ओर से तटस्थ न बैठता तो अंगरेज़ असाई, अरगांव और लसवाड़ी के मैदानों में सिंधिया और बरार के राजा को कभी परास्त न कर पाते और न उनके इलाके छीन सकते। फिर भी इसके बाद से ज्योंही जसवन्तराव ने अनुभव किया कि अंगरेज़ मुझसे केवल अपना काम निकाल रहे थे और अन्दर ही अन्दर मेरी जड़ें खोदने की तैयारियां कर रहे थे, तो उसे अपनी भूलों पर सच्चा पश्चाताप हुआ। उस समय से ही उसने अंगरेज़ों के साथ जम कर युद्ध करने का संकल्प कर लिया। और यदि असाई, अरगांव और लसवाड़ी की विजयों के बाद जसवन्तराव अंगरेज़ों के मार्ग में न आया होता और लगातार एक वर्ष से ऊपर तक उन पर हार पर हार न लादता तो मार्क्विस वेल्सली और उसके साथियों के हौसले दुगुने हो गए होते। राजपूताना और मध्यभारत की रियासतों को हड़पने के बहाने ढूंढ लेना कुछ कठिन न होता, सिखों की ताकत उस समय इतने अधिक महत्व की थी ही नहीं। आइरिश सेनापति जार्ज टॉमस मार्क्विस वेल्सली को लिख चुका था कि पंजाब को कितनी सरलता से विजय करके अंगरेज़ी राज में मिलाया जा सकता है। सारांश यह कि फिर दो चार वर्ष के अन्दर ही हिन्दुस्तान का सारा नक़शा अंगरेज़ी रंग में रंग लिया गया होता अर्थात्, यदि जसवन्तराव होलकर और भरतपुर का राजा, दोनों वीरता के साथ अंगरेज़ों का मुकाबला न करते, तो (सन् 1929 के) भारत की लगभग 700 छोटी-बड़ी देशी रियासतों में से शायद एक भी उस समय बाकी न बची होती।

इसके अतिरिक्त भारतीय प्रजा के साथ भी अंगरेज़ों का व्यवहार फिर दूसरे ही ढंग का होता। सम्भव है कि जिस तरह अंगरेज़ों और यूरोप निवासियों के दूसरे उपनिवेशों में देशी क़ौमों को मिटा देने के सफल प्रयत्न किए गए उसी तरह भारत में भी किए जाते। किन्तु ये सब केवल अनुमान हैं। इसमें सन्देह नहीं कि वह समय राष्ट्र की किस्मत के एक खास पलटा खाने का समय था और जसवन्तराव होलकर और भरतपुर के राजा के साहस ने उस समय भारतवासियों के दिलों से अंगरेज़ों के जादू का असर बहुत दरजे तक कम कर दिया और अंगरेज़ों के दिलों में भारतवासियों की एक खास इज्जत पैदा कर दी। निस्सन्देह जसवन्तराव होलकर और भरतपुर के राजा के नाम भारतीय वीरों की सर्वोच्च श्रेणी में सदा अंकित रहेंगे।

सर जार्ज बारलो के शासनकाल की केवल दो और घटनाएं उल्लेख करने योग्य हैं। एक राजपूताने की देशी रियासतों की ओर उसकी नीति और दूसरे वेलोर का ग़दर।

बारलो की भेदनीति

राजपूताने के राजाओं ने मराठों के विरुद्ध अंगरेज़ों को सहायता दी थी। इस सहायता के बदले में मार्क्विस वेल्सली और जनरल लेक ने इन राजाओं के साथ सन्धियां करके उनसे वादा किया था कि यदि आप में से किसी पर कोई बाहर से हमला करेगा तो अंगरेज़ आपकी सहायता करेंगे। किन्तु सर जार्ज बारलो ने गवर्नर जनरल बनते ही इन सन्धियों को एक कलम रद्द कर दिया और इसके विपरीत राजपूत राजाओं को एक दूसरे से तोड़ने और लड़ाने की पूरी कोशिशें कीं। इस तोड़-फोड़ के विस्तार में पढ़ने के स्थान पर हम केवल बारलो की इस कुत्सित नीति का सार रूप, दो प्रामाणिक अंगरेज़ लेखकों के शब्दों में दरर्शा देना चाहते हैं। सर जान मैलकम लिखता है कि सर जार्ज बारलो की––

> **"नीति × × × खुले तौर पर अपने पड़ोसियों के आपसी झगड़ों और उनकी लड़ाइयों को अपनी सलामती का एक खास साधन समझती है; और यदि यह नीति इन आपसी लड़ाइयों को साफ भड़काती नहीं है, तो कम से कम अलग अलग रियासतों के साथ अपने राजनैतिक सम्बन्ध को इस तरह का रूप देती है कि जिससे उनमें इस तरह की आपसी लड़ाइयां पैदा हों और जारी रहें।"***

एक दूसरे विद्वान अंगरेज, लार्ड मेटकाफ का कहना है––

> **"गवर्नर जनरल सर जार्ज बारलो नें अपनें कुछ पत्रों में साफ–साफ लिखा है कि देशी राजाओं के आपसी झगड़े बारलो को अपने बल के बढ़ाने का एक विशेष साधन नजर आते हैं; और यदि मैं गलती नहीं करता तो गवर्नर जनरल की कुछ तजवीज का साफ परिणाम यह है और उनका लक्ष्य भी यही है कि उनके द्वारा इन रियासतों में आपसी झगड़े पैदा किए जाएं।"†**

इन दो उद्धरणों के बाद इस मामले को अधिक विस्तार देना व्यर्थ है।

ईसाई मत प्रचार को प्रोत्साहन

वेलोर के ग़दर का एकमात्र कारण यह था कि उस समय के अंगरेज़ शासकों में भारतवासियों को ईसाई बनाने का बेहद उत्साह था। मार्क्विस वेल्सली ने भारत के अन्दर ईसाई मत के प्रचार में जो कुछ सहायता दी उसका जिक्र

---

* "......a policy, which declaredly looks to the disputes and wars of its neighbours, as one of the chief sources of its security; and which, if it does not directly excite such wars, shapes its political relations with inferior states in a manner *calculated to create and continue them*."—*Political History of India*, by Sir John Malcolm.

† "The Governor-General, in some of his despatches, distinctly says that he contemplates in the discord of the native powers, an additional source of strength; and, if I am not mistaken, some of his plans so directly and are designed to foment discord among those states.—The policy of Sir George Barlow, from Kaye's *Selections from the Papers of Lord Metcalfe*, p. 7.

ऊपर किसी अध्याय में किया जा चुका है। शुरू से ही ईसाई मत को भारत में सबसे अच्छा मैदान मद्रास में मिला। इसलिए मद्रास प्रान्त में ही अभी तक ईसाइयों की तादाद सबसे अधिक है।

उस समय लार्ड विलियम बेंटिक मद्रास का गवर्नर और सर जान क्रेडक कमाण्डर-इन-चीफ था। ये दोनों अंगरेज़ ईसाई मत के प्रचार में बड़े उत्साही थे।

लार्ड विलियम बेंटिक के इस सम्बन्ध के कारनामों में से एक यह भी था कि उसने ऐवे दूवाय नामक एक फ्रान्सीसी ईसाई पादरी को 8,000 रुपये नक़द देकर भारतवासियों के धार्मिक और सामाजिक रस्मोरिवाज पर एक पुस्तक लिखवाई, जिसमें भारतवासियों को जी भर के गालियां दी गई हैं, जिसमें अनेक झूठ भरे हुए हैं और जिसका भारत के खर्च पर इंगलिस्तान में खूब प्रचार कराया गया। इस पुस्तक में यह साबित करने की कोशिश की गई है कि भारतवासी बिल्कुल जंगली हैं और उनके उद्धार के लिए अंगरेज़ों का शासन आवश्यक है। इस फ्रांसीसी पादरी के भारत से फ्रांस लौटने पर ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने उसें एक विशेष आजीवन पेनशन प्रदान की।*

जिस "कपटी स्वेच्छाशासन" ने सुप्रसिद्ध अंगरेज विद्वान हरबर्ट स्पेन्सर के शब्दों में "देश की पराधीनता को क़ायम रखने और उसे बढ़ाने के लिए देशी सिपाहियों"† का ही उपयोग किया, उसी कपटी स्वेच्छाशासन के ज़रिए भारतवासियों को ईसाई बनाने का भी उपयोग किया गया। उस समय के ईसाई शासक ईसाई मत प्रचारकों को हर तरह की सुविधा और सहायता देते थे। पादरी लोग जहां कहीं जाना चाहते थे, अंगरेज़ सरकार से उन्हें पासपोर्ट मिल जाते थे। उनके नोटिस, प्रचार पत्रिकाएं आदि सब सरकारी छापेखानों में मुफ्त छाप कर दी जाती थी। किले के अन्दर भारतीय सिपाहियों में प्रचार करने की उन्हें खास सुविधाएं दी गई थीं। अपने काम के लिए उन्हें मुफ्त बड़ी-बड़ी जमीनें दे दी गई थीं। त्रिवानकुर जैसी देशी रियासतों में भी राजाओं और दीवानों के ऊपर जोर देकर ईसाई मत प्रचार के लिए ख़ास सुविधाएं करा दी जाती थीं, इत्यादि।‡ धीरे-धीरे मद्रास प्रान्त की हिन्दुस्तानी सेना को आज्ञा दी गई कि कोई सिपाही परेड के समय या ड्यूटी पर या वरदी पहने हुए अपने माथे पर तिलक आदि धार्मिक चिह्न न लगाए और न कानों में बालियां पहने। हिन्दू, मुसलमान सब सिपाहियों को हुकुम दिया गया कि अपनी दाढ़ियां मुड़वा दें और सब लोग एक तरह की कटी हुई मूछें रखें, इत्यादि।§

---

* *Encyclopaedia Britannica*, vol. viii, p. 624, 11th edition.

† "Cunning despotism" which used "native soldiers to maintain and extend native subjection."—Herbert Spencer.

‡ Revd. Sydney Smith in the *Edinburgh Review* for 1807, on "The Conversion of India".

§ "......not (to) mark his face to denote his caste, or wear earrings, when dressed in his uniform; and it is further directed that at all parades, and upon all duties, every soldier of the battalion shall be clean-shaved on the chin. It is directed also that uniformity shall be preserved in regard to the quantity and shape of the hair upon the upper lip, as far as may be practicable."—Instructions to the Madras Sepoys, 1806.

वेलोर का ग़दर

इस पर जुलाई सन् 1806 की रात को वेलोर की छावनी के हिन्दोस्तानी सिपाही बिगड़ खड़े हुए। दो बजे रात को उन्होंने सदर गारद के सामने जमा होकर अपने कमाण्डिग अफसर, कर्नल फैनकोर्ट के मकान को घेर लिया और उसे गोली से मार दिया। उसके बाद उन्होंने अपने बाकी ईसाई अफसरों और गोरे सिपाहियों को खत्म करना शुरू किया। किन्तु अन्त में यह बगावत शान्त कर दी गई और बागियों को पूरा दण्ड दिया गया।

टीपू सुलतान के बेटे और उसके घर के लोग उन दिनों वेलोर के क़िले में क़ैद थे। बाद में साबित हो गया कि इन लोगों का इस बग़ावत से किसी तरह का सम्बन्ध न था, फिर भी उन्हें वेलोर से हटा कर बंगाल भेज दिया गया। गवर्नर बेंटिंक और कमाण्डर-इन-चीफ क्रेडक, दोनों बरख़ास्त कर दिए गए और कम्पनी के अफसरों का ईसाई मत प्रचार का जोश बहुत दरजे तक ठण्डा पड़ गया।

सर जार्ज बारलो को अब गवरनर जनरली से हटा कर मद्रास का गवर्नर नियुक्त करके भेज दिया गया और लार्ड मिण्टो को उसकी जगह गवर्नर जनरल नियुक्त किया गया।

अट्ठाइसवां अध्याय

लार्ड मिण्टो, प्रथम

(1807—1813 ई०)

कम्पनी की स्थिति

दिसम्बर सन् 1806 में इंगलिस्तान से चल कर 3 जुलाई, सन् 1807 को लार्ड मिण्टो ने कलकत्ते में ब्रिटिश भारत की गवर्नर जनरली का भार संभाला। हिन्दोस्तान में अंगरेज़ों की हालत उस समय ख़ासी नाज़ुक थी। कम्पनी का ख़ज़ाना ख़ाली था, क़र्ज़ा बढ़ा हुआ था और आर्थिक अवस्था बिलकुल बिगड़ी हुई थी। दूसरे मराठा युद्ध के कारण प्रायः समस्त भारतीय नरेश अंगरेज़ों के व्यवहार से अत्यन्त असन्तुष्ट थे। जसवन्तराव होलकर और राजा भरतपुर के हाथों जनरल मानसन और जनरल लेक की एक वर्ष से ऊपर की लगातार हारों और ज़िल्लत के कारण भारतवासियों में अंगरेज़ों की कीर्ति को भी ज़बरदस्त धक्का पहुंच चुका था। बरार के राजा और महाराजा सिंधिया, दोनों के कुछ उपजाऊ इलाक़े अंगरेज़ों के हाथ आ गए थे, फिर भी अपने-अपने राज के अन्दर सिंधिया, भोंसले और होलकर, तीनों की पूर्ण स्वाधीनता में कोई फ़रक़ न आया था। राजपूताने के राजाओं और ख़ास कर गोहद के राणा ने मराठों के विरुद्ध अंगरेज़ों की पूरी सहायता की थी, किन्तु युद्ध के बाद अंगरेज़ों ने इन नरेशों के साथ जिस तरह की कृतघ्नता का बरताव किया, उसे देख कर दूसरे भारतीय नरेशों के दिलों से भी अंगरेज़ों की ईमानदारी में विश्वास उठ गया था। चारों ओर इस बात की सम्भावना दिखाई देती थी कि विविध भारतीय नरेश ब्रिटिश भारत पर हमला करके अपने-अपने खोए हुए इलाक़े फिर से प्राप्त करने का प्रयत्न करें।

अंगरेज़ों के विरुद्ध असन्तोष

स्वयं अंगरेज़ी इलाक़े के अन्दर भी कम्पनी की भारतीय प्रजा अत्यन्त दुखी और असन्तुष्ट थी। ब्रिटिश भारत में ज़मीन का लगान इतना अधिक बढ़ा दिया गया था कि जितना अंगरेज़ों के राज से पहले कभी सुनने में भी न आया था और न जिसकी उस समय किसी भी देशी राज के अन्दर मिसाल मिल सकती थी।

नये अंगरेज़ी इलाक़ों के अन्दर गोवध के शुरू होने और अनेक दूसरे अनसुने अत्याचारों का ज़िक्र ऊपर किया जा चुका है।

लार्ड मिण्टो को इस बात का भी डर था कि अंगरेज़ी इलाक़े की असन्तुष्ट प्रजा अपने नये विदेशी और विधर्मी शासकों के विरुद्ध बलवा न कर बैठे।

अंगरेजी इलाक़ों में डकैतियां

अंगरेज़ों के लिए अब सब से पहला काम यह था कि अपनी भारतीय प्रजा को इस तरह दबा कर रखें जिससे प्रजा उनके विरुद्ध विद्रोह न कर सके। प्रजा

को लगातार विपत्तियों में फंसाए रखने में ही उस समय के विदेशी शासकों को अपनी कुशल दिखाई दी और प्रजा की ख़ुशहाली और निश्चिन्तता में उन्हें अपने लिए ख़तरा नज़र आया । लार्ड कार्नवालिस के जिन शासन सुधारों का ऊपर ज़िक्र हो चुका है उनका मुख्य उद्देश्य भी यही था कि भारतीय प्रजा में आपसी झगड़े सदा के लिए क़ायम रखे जाएं और यही उन 'सुधारों' का नतीजा हुआ ।

लार्ड मिण्टो के समय में करीब–करीब सारे ब्रिटिश भारत के अन्दर डकैतियों का बाज़ार ख़ूब गरम था और उनके साथ-साथ भयंकर हत्याएं, घरों को जला डालना और तरह-तरह के अत्याचार भी जगह-जगह हो रहे थे ।[*]

लार्ड डफ़रिन ने 30 नवम्बर, सन् 1888 को कलकत्ते में भाषण देते हुए कहा था—

> "××× लार्ड मिण्टो के समय में, कलकत्ते से इधर-उधर, बीस-बीस मील तक, पूरे ज़िले के ज़िले डकैतों की दया पर छोड़ दिए गए थे और यह हालत बंगाल के ऊपर पचास बरस से अधिक अंगरेज़ों का क़ब्ज़ा रहने के बाद की थी ।"[†]

इतिहास लेखक जेम्स मिल हमारे इस भ्रम को भी दूर कर देता है कि सम्भव है अंगरेज़ों के आने से पहले भी इस देश में डकैतियों की यही हालत रही हो । वह लिखता है—

> "अंगरेज़ी हुकूमत और उसके क़ानूनों के अधीन इस तरह के जुर्म (अर्थात् डकैतियां) कम नहीं हुए, बल्कि इतने बढ़ गए कि जो किसी भी समय क़ौम के न्याय शासन के लिए अत्यन्त लज्जाजनक है । अंगरेज़ी हुकूमत के अधीन ये जुर्म न केवल इतने बढ़ गए कि जिसकी भारत की देशी हुकूमतों के अधीन कहीं कोई मिसाल नहीं मिलती, बल्कि किसी काल में भी किसी भी देश में जहां किसी दरजे औचित्य के साथ भी यह कहा जा सकता है कि वहां कोई हुकूमत और क़ानून मौजूद थे, इस तरह के जुर्म इतने कभी भी देखने में न आए थे ।"[‡]

उस समय का एक प्रसिद्ध अंगरेज़ जज सर हेनरी स्ट्रैची लिखता है—

> "मुझे विश्वास है कि अंगरेज़ों की अदालतें खुलने के बाद से डकैती के जुर्म बहुत बढ़ गए हैं ।"[§]

---

[*] "......the scenes of horror, the murders, the burnings, the excessive cruelties......"—the Judge of circuit in Rajashaye, 1808.

[†] "......in his (Lord Minto's) time whole districts within twenty miles of Calcutta were at the mercy of dacoits, and this after the English had been more than fifty years in the occupation of Bengal."—Lord Dufferin on the 30th November, 1888, at Calcutta.

[‡] "This class of offences did not diminish under the English Government and its legislative provisions. It increased, to a degree highly disgraceful to the legislation of a civilized people. It increased under the English Government, not only to a degree of which there seems to have been no example under the Native Governments of India, but to a degree surpassing what was ever witnessed in any country in which law and government could with any degree of propriety be said to exist."—Mill, vol. v, p. 387.

[§] "The crime of dacoity has, I believe, increased greatly, since the British administration of Justice."—Sir Henry Strachey.

सन् 1808 में राजशाही के डिवीज़नल जज ने लिखा—

> "अनेक बार कहा जा चुका है कि राजशाही में डकैतियां बहुत होतीं हैं। × × × फिर भी प्रजा की हालत की ओर काफ़ी ध्यान नहीं दिया जाता। इससे इनकार नहीं किया जा सकता कि वास्तव में जान या माल की रक्षा का कोई प्रबन्ध नहीं है।"*

सन् 1809 में अंगरेज़ गवर्नमेण्ट के सेक्रेटरी डाउड्सवेल ने लिखा—

> "भारतीय प्रजा की जान या माल की कोई हिफ़ाजत नहीं की जाती।"†

यह भी नहीं कि अंगरेज़ सरकार के पास प्रजा की रक्षा के लिए उस समय काफ़ी साधन न रहा हो। जेम्स मिल लिखता है—

> "बंगाल की अंगरेज़ सरकार के पास इतनी फ़ौज मौजूद है कि सरकार बड़ी आसानी से सारी प्रजा का संहार कर सकती है;"‡

लार्ड मिण्टो का एक पत्र

स्वयं लार्ड मिण्टो ने अपनी धर्मपत्नी के नाम एक निजी पत्र में उपहास के साथ लिखा था—

> "हाल में डाकू लोग बैरकपुर से तीस मील के अन्दर आ गए हैं। दल बांध कर डाका डालने का जुर्म थोड़ा बहुत बंगाल में हमेशा होता रहा है, किन्तु आजकल वहां डाकुओं को कामयाबी भी होती है और दण्ड भी कुछ नहीं मिलता इसलिए आस पास के अधिक जंगली इलाक़ों में, जहां लोगों को इतने समय तक एक बाजाब्ता और क़ानूनी हुकूमत का सुख भोगने को नहीं मिला, डकैतियां जितनी होती हैं उससे भारत के इस सभ्य और खुशहाल भाग में कहीं अधिक होती हैं। ऊपर से देखने में इन प्रान्तों की अंगरेज़ी हुकूमत के लिए यह बात लज्जाजनक मालूम होती है कि हमारे सब से पुराने इलाके इस अराजकता और अन्याय के दुष्परिणामों से सब से अधिक अरक्षित हों।"§

---

* "That dacoity is very prevalent in Rajashaye has been often stated...... Yet the situation of the people is not sufficiently attended to. It cannot be denied that, in point of fact, there is no protection for persons or property."

† "To the people of India there is no protection, either of person or of property."

‡ "Such is the military strength of the British Government in Bengal, that it could exterminate all the inhabitants with the utmost ease;"—Mill, vol. v, p. 410.

§ "They (the dacoits) have of late come within thirty miles of Barrackpore. The crime of gang robbery has at all times, though in different degrees, obtained a footing in Bengal. The prevalence of the offence, occasioned by its success and impunity, has been much greater in this civilized and flourishing part of India, that in the wilder territories adjoining, which have not enjoyed so long the advantages of a regular and legal government; and it appears at first sight mortifying to the English administration of these provinces, that our oldest possessions should be the worst protected against the evils of lawless violence."—Lord Minto in a private letter to Lady Minto.

अंगरेज़ी और देशी इलाकों में तुलना

ऊपर के उद्धरण में लार्ड मिण्टो का यह इशारा करना भी, कि कम्पनी के इलाक़े में लोग उस समय पास के देशी इलाक़ों से अधिक ख़ुशहाल थे, सर्वथा झूठ है। असंख्य उद्धरण इस बात के सबूत में दिए जा सकते हैं कि पास के देशी इलाक़ों की प्रजा कम्पनी के इलाक़े की प्रजा से कई गुना अधिक ख़ुशहाल थी। मिसाल के तौर पर उस समय के कम्पनी के इलाक़े और मराठा इलाक़े की तुलना करते हुए एक अंगरेज़ लेखक लिखता है—

> **"बरार के जागीरदारों की ज़मीनें कम्पनी सरकार के इलाक़ों की अपेक्षा अधिक ख़ुशहाल अवस्था में हैं। इसका सबब यह है कि वे ज़मीनें अधिक सुरक्षित हैं और वहां की रैयत पर कम अत्याचार किए जाते हैं।"***

फिर भी अंगरेज़ी इलाक़े की तुलना में देशी इलाक़ों के अन्दर डकैतियों का निशान तक न था।

यह कह सकना कि किन–किन उपायों से उस समय इन निरंकुश डाकुओं के हौसले बढ़ाए गए, बहुत कठिन है। किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि इन डाकुओं को दण्ड देना या उनसे प्रजा की रक्षा करना उस समय भारत के अंगरेज़ शासकों की नीति के विरुद्ध था। भारतीय प्रजा के इस तरह की विपत्तियों में पड़े रहने में ही उन्हें अपना हित दिखाई देता था और "प्रजा की जान-माल की रक्षा" करने में उन्हें अपना अहित नज़र आता था।

अंगरेज़ों के साथ–साथ अराजकता का प्रवेश

भारतीय इतिहास के कोई–कोई अंगरेज़ लेखक गर्व के साथ लिखते हैं कि अंगरेज़ों के भारत आगमन के समय इस देश में चारों ओर अराजकता और कुशासन का दौर था और इन विदेशियों ने आकर आपसी मार-काट और डाकुओं की लूट-मार से भारतवासियों की रक्षा की। किन्तु इतिहास के पृष्ठ पलटने से दूसरा ही दृश्य देखने को मिलता है। मुग़ल साम्राज्य के अन्त के दिनों में, जब कि वह विशाल साम्राज्य संकट की अवस्था में था, सम्राट के अनेक अनुचरों ने विविध प्रान्तों में अपने–अपने लिए स्वतन्त्र बादशाहतें क़ायम कर ली थीं। इसी तरह हैदराबाद सें आसफ़जाह और अवध सें सआदत ख़ां ने अपनी-अपनी सल्तनतें क़ायम कीं। लड़ाइयां और रक्तपात भी उस समय भारत सें अवश्य हुए, क्योंकि बिना लड़ाइयों और रक्तपात के नयी सल्तनतें क़ायम नहीं हो सकतीं। किन्तु इतिहास से पता चलता है कि ईसा की 18वीं सदी में या 19वीं सदी के आरम्भ में जितनी लड़ाइयां और जितना रक्तपात भारत में हुआ है यूरोप में उससे कहीं अधिक हुआ है। इसके अतिरिक्त मुग़ल साम्राज्य के समय भी समृद्धि का तो ज़िक्र ही क्या, जिसे देख कर यूरोप और बाक़ी सब संसार के यात्री चकित रह जाते थे; किन्तु इन समस्त नई सल्तनतों के क़ायम करने वाले मराठे,

---

* "The lands of the Jagirdars, in Berar, are in a more prosperous condition than those of the Circar, because they are better protected, and the ryots less oppressed."—*Origin of the Pindaries*, etc., by an Officer in the Service of the Honourable East India Company, *1818*, p. 149.

राजपूत और मुसलमान नरेश भी अपनी प्रजा की आवश्यकताओं की ओर पूरा ध्यान देते थे और प्रजा के जान-माल की रक्षा करना अपना सबसे बड़ा कर्त्तव्य समझते थे। प्रायः सब अंगरेज़ लेखक स्वीकार करते हैं कि उस समय भी जब कि ब्रिटिश भारत के अन्दर चारों ओर डकैतियों का बाज़ार गरम था और भारतीय प्रजा के जान-माल की कोई रक्षा न की जाती थी, पास के देशी राज्यों में, जहां पर कि प्रजा के पास धन वैभव कहीं अधिक था, उनकी जान और माल, दोनों की पूरी हिफ़ाज़त की जाती थी। अराजकता और कुशासन अंगरेज़ों के आने से पहले भारत में मौजूद न थे। इतिहास साक्षी है कि ईस्ट इण्डिया कम्पनी के साथ-साथ इस देश में शान्ति और समृद्धि, दोनों का ख़ात्मा हुआ और अराजकता और कुशासन ने उनका स्थान लिया।

यहां तक कि देशी राज्यों के अन्दर भी जितने उपद्रव और विद्रोह होने शुरू हुए, वे अधिकतर कम्पनी के बंगाल में क़दम जमाने के बाद से शुरू हुए और कम्पनी के शासकों या उनके गुप्तचरों के पैदा किए हुए थे। कम्पनी के प्रतिनिधियों ने ही अवध के नवाब वज़ीर से निरपराध वीर रुहेलों का संहार करवाया और आसफ़ुद्दौला के कांपते हुए हाथों से उसकी वृद्धा मां के महलों को लूटने में मदद ली। किन्तु यह सब कहानी किसी दूसरे स्थान की है।

लार्ड मिण्टो ने अपने पत्र में यह भी स्वीकार किया है कि पचास बरस से ऊपर के अंगरेज़ी शासन ने भारतवासियों और ख़ास कर बंगालियों को इतना "कायर और निर्वीर्य" बना दिया था कि वे डाकुओं का मुक़ाबला करने के नाक़ाबिल हो गए थे।*

जसवन्तराव होलकर का चरित्र

दूसरा ख़तरा उस समय अंगरेज़ों को मराठों से था। होलकर, सिंधिया और भोंसले का अभी तक सर्वनाश न हो पाया था और यह डर था कि कहीं ये नरेश फिर से आपस में मिल कर अंगरेज़ों से बदला न लें।

इन तीनों में सबसे अधिक भय अंगरेज़ों को इस समय जसवन्तराव होलकर से था। जसवन्तराव के चरित्र के विषय में ग्राण्ट डफ़ लिखता है—

> "जसवन्तराव होलकर के चरित्र का मुख्य गुण वह कठोर उद्यमशीलता और पराक्रमशीलता थी, जो उसके दूसरे देशवासियों के समान उसमें विजय के समय तो अनन्त होती ही थीं, किन्तु जो कठिन से कठिन पराजयों के समय भी उसके अन्दर कम न होने पाती थीं। इसी तरह आम मराठों की अपेक्षा वह अधिक शिक्षित था और फ़ारसी और मराठी दोनों लिख सकता था। व्यवहार में वह निष्कपट था, × × × उसका क़द छोटा था, किन्तु शरीर अत्यन्त फ़ुर्तीला और गठा हुआ था; यद्यपि उसका रंग सांवला था और अचानक किसी बन्दूक के छूट जाने के कारण उसकी एक आंख जाती रही थी, फिर भी उसका चेहरा देखने में बुरा न

---

* "......loss of martial habits and character have made the people of Bengal so timid and enervated that no resistance is to be apprehended in the act, nor punishment afterwards."—Lord Minto's letter to Lady Minto.

लगता था और चेहरे से एक प्रकार का हंसमुखपन और बहादुराना हिम्मत प्रकट होती थी।"*

अंगरेज़ों और अमीर ख़ां में साजिश

निस्सन्देह जसवन्तराव होलकर से बढ़ कर अंगरेज़ों का दुश्मन उस समय भारत में दूसरा न था। जसवन्तराव के ख़ास दरबारियों में विश्वासघातक अमीर ख़ां अभी तक मौजूद था, जिसने भरतपुर के मोहासरे के समय 33 लाख रुपये अंगरेज़ों से लेकर होलकर के सवारों को अंगरेज़ों के भालों और गोलियों के हवाले कर दिया था। अमीर ख़ां के ज़रिए अंगरेज़ों के षड्यन्त्र होलकर के दरबार में बराबर जारी थे।

जसवन्तराव की मृत्यु

न जाने क्यों और कैसे सन् 1808 में जसवन्तराव होलकर बीमार पड़ा और फिर एकाएक पागल हो गया। तुरन्त होलकर दरबार के अन्दर दो दल खड़े हो गए। एक मराठों का दल और दूसरा अमीर ख़ां और उसके पिण्डारियों का दल। इन दोनों दलों के बीच प्रतिस्पर्धा और साज़िशें जारी हो गईं।

अन्त में अंगरेज़ों के सौभाग्य और सम्भवत: उनके प्रयत्नों से तय हो गया कि जसवन्तराव के उन्माद की अवस्था में उसकी रानी तुलसीबाई के नाम पर अमीर ख़ां ही राज का सारा कारबार करे। थोड़े दिनों बाद जसवन्तराव की मृत्यु हो गई। रानी तुलसीबाई ने चार वर्ष के एक लड़के, मल्हारराव होलकर को गोद ले लिया। इस तरह राज के शासन की बाग अमीर ख़ां के हाथों में रही और कम से कम होलकर की ओर से लार्ड मिण्टो का भय बिल्कुल दूर हो गया।

होलकर-दरबार की स्थिति

अमीर ख़ां को अंगरेज़ों ने राजपूतों और दूसरे भारतीय नरेशों के विरुद्ध उकसा कर लड़ाना शुरू किया और स्वयं होलकर राज के अन्दर उसी की मारफ़त दलबन्दियां और साज़िशें जारी रखीं।

अंगरेज़ों और अमीर ख़ां की इन साज़िशों के सम्बन्ध में इतिहास लेखक नोलन लिखता है—

> "जो सरदार अंगरेज़ों के अनुग्रह पात्र थे, उन में से एक अमीर खां था। ××× पिछली सन्धियों का उल्लंघन करते हुए लार्ड मिण्टो ने होलकर के इलाके का एक खासा हिस्सा इस शख्स को दे दिया था और इस आततायी डाकू

---

* "The chief feature of Jaswant Rao Holkar's character was that hardy spirit of energy and enterprise which, though, like that of his countrymen, boundless in success, was also not to be discouraged by trying reverses. He was likewise better educated than Marathas in general, and could write both the Persian language and his own; his manner was frank and could be courteous......In person his stature was low, but he was of a very active strong make; though his complexion was dark and he had lost an eye by the accidental bursting of a matchlock, the expression of his countenance as not disagreeable, and he spoke something of droll humour, as well as of manly boldness."—*History of the Marathas,* by Captain Grant Duff, p. 606.

और हत्यारे के और ईस्ट इण्डिया कम्पनी के बीच एक बाजाब्ता सन्धि द्वारा मित्रता का सम्बन्ध क़ायम हो चुका था। × × × होलकर के राज की अखण्डता के विरुद्ध अंगरेज़ों और अमीर खां के बीच की साजिशें हमारी (अंगरेज़) क़ौम की प्रतिष्ठा को बढ़ाने वाली न थीं। इन साज़िशों के सम्बन्ध में दरबार के आसपास के सब लोग उस रियासत के अन्दर के सब दल, कोई अंगरेज़ों के पक्ष में और कोई उसके विरुद्ध, और एक दूसरे के पक्ष में और विपक्ष में सब के सब साज़िशों में लगे हुए थे। जिस प्रदेश के ऊपर उस होलकर का राज था, जिसकी कीर्ति एक समय दूर-दूर तक फैली हुई थी, उस प्रदेश को अब दरोग़हलफ़ी, विश्वासघात, बलात, अपहरण, क़त्ल, हत्या, लूट, बग़ावत और आपसी लड़ाइयों ने कलंकित और टुकड़े-टुकड़े कर डाला था।"*

इतिहास लेखक ग्राण्ट डफ़ उस समय की इन दलवन्दियों के उद्देश्य के बारे में साफ़ लिखता है—

> "यह आशा की जाती थी कि यदि मराठा सरदार आपस में लड़ते रहेंगे, अपने पड़ोसियों को लूटते रहेंगे और उन्हें स्वयं अपने इलाक़ों के छिन जाने का डर बना रहेगा, तो वे अंगरेज़ सरकार के विरुद्ध लड़ाई छेड़ने से रुके रहेंगे।"†

मराठों को एक दूसरे से लड़ाना

होलकर से उतर कर अंगरेज़ों को डर महाराजा सिंधिया और बरार के राजा से था। इन दोनों के थोड़े-थोड़े इलाक़े पिछले युद्ध में छीन लिए गए थे। उनके राज अंगरेज़ी सरहद से मिले हुए थे। बहुत सम्भव था कि इस समय वे अपने खोए हुए इलाकों को फिर से विजय करने के प्रयत्न करते। कम्पनी की आर्थिक स्थिति इस योग्य न थी कि इन बलवान नरेशों के मुकाबले के लिए सारी सरहद पर सेनाएं रखी जा सकतीं। इस कठिनाई को हल करने के लिए अंगरेज़ों ने दो मुख्य उपाय किए। एक इन राज्यों में अपने गुप्तचर भेज कर इन नरेशों के विरुद्ध जगह-जगह विद्रोह खड़े करवा दिए और अनेक छोटे-बड़े मराठा सरदारों को एक दूसरे से लड़ाए रखा; और दूसरे पिण्डारियों को उकसा कर और धन देकर उनसे मराठों के इलाक़ों में खूब लूट-मार करवाई।

---

*"Among the chiefs who received favour from the English was one Amir Khan......This person had, in spite of previous treaties, a considerable portion of Holkar's territory made over to him by Lord Minto, and a formal treaty sealed the bond of amity between this desperate robber and murderer and the East India Company......The intrigues between the English and Amir Khan against the integrity of Holkar's dominion were not honourable to our nation. In connection with them, all persons about the court, all parties in that state, intrigued for and against the English, and for and against one another. Perjury, perfidy, abduction, assassination, murder, plunder, revolt and civil war rent and stained realms which had owned the sovereignty of the once far-renowned Holkar."—Nolan's *History of the British Empire*, pp. 510, 511, 521.

† "It was expected that their (the Maratha Chiefs) domestic wars, the plunder of their neighbours, and the fear of losing what they possessed, would deter them from hostile proceedings against the British Government."—Grant Duff.

पिण्डारियों का चरित्र

इस स्थान पर आगे बढ़ने से पहले हमें पिण्डारियों के सम्बन्ध में कुछ अधिक जान लेना आवश्यक है, क्योंकि भारत के लगभग सब अंगरेज़ इतिहास लेखकों ने वीर पिण्डारियों के चरित्र पर अनेक झूठे इल्ज़ाम लगाने, उन्हें डाकू और लुटेरे बताने और उन्हें बदनाम करने के पूरे प्रयत्न किए हैं।

पिण्डारी दक्षिण भारत की एक पठान जाति थी। ये लोग शुरू से दक्षिण के भारतीय नरेशों के यहां सेना में सवार हुआ करते थे। इनके प्रायः अपने घोड़े होते थे। हज़ारों पिण्डारी मराठों की सेनाओं में नौकर थे और मराठों के सबसे अधिक विश्वस्त और वीर सेनानियों में गिने जाते थे। मराठों और औरंगज़ेब के युद्धों में पिण्डारियों ने बड़ी वीरता के साथ औरंगज़ेब के विरुद्ध मराठों का साथ दिया। 17वीं शताब्दी से लेकर 19वीं शताब्दी के शुरू तक अनेक पिण्डारी सरदारों के नाम उस समय के इतिहास में प्रसिद्ध हैं। नसरू ख़ां पिण्डारी शिवाजी का एक विश्वस्त जमादार था। एक दूसरा पिण्डारी सरदार, सेनापति पुनापा उन दिनों मराठों का एक बड़ा भारी मददगार था। पेशवा बाजीराव प्रथम ने अधिकतर पिण्डारियों की ही सहायता से मालवा प्रान्त को विजय किया। उसके बाद होलकर और सिंधिया, दोनों की सेनाओं में हज़ारों पिण्डारी योद्धा और अनेक पिण्डारी सरदार मौजूद थे। हीरा ख़ां पिण्डारी और बुरान ख़ां पिण्डारी माधोजी सिंधिया के दो विश्वस्त और योग्य सेनापति थे। एक और प्रसिद्ध पिण्डारी सरदार चीतू ख़ां को महाराजा दौलतराव सिंधिया ने उसकी सेवाओं के बदले में नवाब की उपाधि और एक जागीर प्रदान कर रखी थी। दौलतराव सिंधिया की ही सेना में एक और पिण्डारी सरदार करीम ख़ां को भी नवाब की उपाधि और जागीर मिली हुई थी।

पानीपत की तीसरी लड़ाई में एक पिण्डारी सेनापति हूलख़ां सवार के अधीन 15 हज़ार सवारों ने पूरी जांनिसारी के साथ मराठों के पक्ष में युद्ध किया था।

एक अंगरेज़ लेखक लिखता है कि पिण्डारियों की सेनाओं में हिन्दू और मुसलमान दोनों धर्मों के लोग खुले भरती किए जाते थे। सम्भवतः उनके सरदारों में भी हिन्दू और मुसलमान, दोनों धर्मों के लोग होते थे, क्योंकि पूर्वोक्त लेखक के अनुसार विविध पिण्डारी दलों के, जिन्हें 'दुर्रे' या 'लब्बर' कहते थे, सरदारों का पद पैतृक न होता था। वरन् प्रत्येक सरदार के मरने पर उसके समस्त अनुयायी मिल कर अपने में से सब से अधिक वीर और सब से अधिक योग्य व्यक्ति को अपना सरदार चुन लेते थे। इस सम्बन्ध में पूर्वोक्त अंगरेज़ लिखता है——

मराठों और मुसलमानों का सम्बन्ध

"मालूम होता है कि मराठों और मुसलमानों के बीच कभी भी अधिक धार्मिक वैमनस्य न था। दोनों एक ही भाषा का उपयोग करते हैं। दोनों में बहुत से रिवाज एक समान पाए जाते हैं। मराठों ने मुसलमानों की अनेक उपाधियां अपने यहां ले रखी हैं। सिंधिया और दूसरे मराठा नरेशों के सेनापति प्रायः मुसलमान

हैं; और मुसलमान नरेशों के दरबारों की बाग प्रायः ब्राह्मण मन्त्रियों के हाथों में होती हैं ।"*

पिण्डारियों का सैनिक संगठन

पिण्डारी सरदारों का व्यवहार अपने अनुयाइयों के साथ इतना सुन्दर होता था कि विशेषकर 18वीं सदी के अन्त और 19वीं सदी के शुरू में उनके अनुयाइयों की संख्या ज़ोरों के साथ बढ़ती चली गई । इतिहास लेखक विल्सन लिखता है कि इनमें से अधिकांश पिण्डारी सरदार मालवा में बस गए। सिंधिया और होलकर दरबारों की ओर से अधिकतर नर्मदा के किनारे इन्हें अपने गुज़ारे के लिए मुफ्त ज़मीनें दे दी गईं। शान्ति के समय ये लोग खेती-बाड़ी करके और अपने टट्टुओं और बैलों पर माल लाद कर उसे बेच कर अपना गुज़ारा करते थे और इनसे यह शर्त थी कि युद्ध छिड़ने पर अपने घोड़ों सहित मराठा दरबारों की मदद के लिए पहुंच जाया करें। होलकर राज में रहने वाले पिण्डारी 'होलकर शाही' और सिंधिया राज में रहने वाले 'सिंधिया शाही' कहलाते थे। जसवन्तराव होलकर का अनुयायी प्रसिद्ध अमीर खां भी एक पिण्डारी सरदार था ।

जनरल वेल्सली ने 29 मार्च, सन् 1803 को जनरल स्टुअर्ट को लिखा था कि मैंने तीन हज़ार पिण्डारी सवार पेशवा की नौकरी के लिए तैयार किए हैं और—

> "यदि पेशवा उन्ह नौकर रखना पसन्द न करे तो××× उन्हें या तो बरख़ास्त कर दिया जाए और या बिना तनख़ाह दिए शत्रु को लुटवाने में उनका उपयोग किया जाए । हर सूरत में यदि पेशवा उनका खर्च देने से इन्कार कर दे तो भी××× यदि हम उन्हें होलकर की ओर जाने से रोके रखें तो इससे हमारी सेना को निस्सन्देह इतना लाभ होगा कि उसके मुक़ाबले में कम्पनी की उनके ऊपर जो कुछ खर्च करना पड़ेगा वह बहुत ही थोड़ा होगा ।"†

पिण्डारियों से देशी राजाओं को लुटवाना

उस समय भी अंगरेज़ पिण्डारियों को धन और उत्तेजना दे-देकर उनसे देशी राजाओं के इलाकों में लूटमार करवाया करते थे । इसीलिए ग्राण्ट डफ़

---

* "No great religious enmity would ever appear to have existed between the Marathas and Mohammedans. The same language is common to them both, many of their customs are the same and the former have adopted many of the titles of the latter. The Generals of Scindhia, and the other Maratha chiefs, are often Mohammedans; and Brahmans frequently govern the Courts of Mussalman Princes."—*Origin of the Pindaries*, etc., by an Officer in the Service of the Honourable East India Company, 1818.

† "If he (the Peshwa) should not approve of retaining them, they may either be discharged, or may be employed in the plunder of the enemy without pay, ...and at all events, supposing that His Highness should refuse to pay their expenses......the charge to the Company will be trifling in comparison with the benefit which this detachment must derive from keeping this body of Pindaries out of Holkar's services, ..."—Duke of Wellington's despatches, vol. i, pp. 120, 121.

लिखता है कि यदि कोई अंग्रेज निहत्था भी इन पिण्डारी डाकुओं के बीच से रात को निकल जाता था तो वे उसे कुछ न कहते थे।

वास्तव में पिण्डारियों से अपने मराठा स्वामियों के साथ विश्वासघात कराना और उनसे भारतीय नरेशों के इलाक़ों को लुटवाना उस समय की कम्पनी की भारतीय नीति का एक अंग था।

किन्तु यह हालत बहुत दिनों न रह सकी। सन् 1812 ई० लगभग के इन पिण्डारी डाकुओं ने अंग्रेज़ी इलाके पर भी घावे मारने शुरू कर दिए। ग्रांट डफ़ लिखता है—

अंगरेज़ी इलाक़ों पर घावे

> **"कुछ समय तक, यानी जब तक कि × × × पिण्डारियों को अधिक उपजाऊ मैदानों में घावा मारने के लिए उत्तेजित नहीं किया गया, तब तक उनके घावे अधिकतर मालवा, मारवाड़, मेवाड़ और सारा राजपूताना और बरार तक ही परिमित रहे। × × × किन्तु यदि पिण्डारियों को अपने घावों का मैदान अधिक बढ़ाने के लिए उत्तेजित करने वाले और कारण न भी होते, तो भी अंगरेज़ सरकार की अधूरी चालों और स्वार्थमय नीति (Selfish Policy) ने हिन्दोस्तान की जो हालत कर दी थी उसमें यह असम्भव था कि हिन्दोस्तान का कोई हिस्सा बहुत दिनों तक इनके लूट मार के घावों से बचा रहता।"**

पिण्डारियों के अंगरेजी इलाक़ों पर घावे शुरू कर देने के अनेक कारण हो सकते हैं। सम्भव है कि कुछ देशी नरेशों ने अंगरेजों की ही नीति का अनुकरण करके पिण्डारियों को अंगरेज़ी इलाक़ों पर घावा करने के लिए उत्तेजित किया हो। किन्तु अंगरेजों का देशी राजाओं की प्रजा के लुटने और कम्पनी की हिन्दोस्तानी प्रजा के लुटने, दोनों में ही लाभ था, क्योंकि जब कि देशी नरेश अपनी प्रजा को सुखी और सुरक्षित रखने में अपना हित समझते थे, कम्पनी के शासक को अपनी कुशल अपनी हिन्दोस्तानी प्रजा को निर्बल और भयभीत रखने में ही दिखाई देती थी। पिण्डारियों के अंगरेज़ी इलाक़ों पर हमले शुरू कर देने का एक कारण यह भी था कि अंगरेजों ने पिण्डारी सरदारों के बढ़ते हुए बल को रोकने के लिए उन्हें आपस में एक दूसरे के विरुद्ध भड़काना और एक दूसरे से लड़ाना भी शुरू कर दिया था और उनमें से कई की वे रकमें बन्द कर दीं जो पहले उन्हें कम्पनी से मिला करती थीं।

पिण्डारी सरदारों की ओर कम्पनी की चालें कितनी दुरंगी थीं, इसकी एक सुन्दर मिसाल सन् 1809 का अमीर ख़ां का बरार पर हमला है।

अमीर ख़ां का बरार पर हमला

इस मामले में कम्पनी के दो उद्देश्य थे। एक, यद्यपि अमीर ख़ां से कम्पनी के अनेक बड़े-बड़े काम निकल चुके थे, जिनके लिए अंगरेज़ अमीर ख़ां को अनेक बार धन भी दे चुके थे, फिर भी अमीर ख़ां का बल इस समय इतना बढ़ गया था कि अंगरेज़ों को स्वयं अपने लिए उससे भय हो गया। अमीर ख़ां एक वीर और पराक्रमी सेनापति था और अंगरेज़ अब जिस तरह हो, उसके उस बल को कम

करने की कोशिशों में लग गए। दूसरे, बहुत दिनों से वे बरार के राजा को सब्सीडियरी सन्धि के जाल में फंसाने के प्रयत्न कर रहे थे।

24 मार्च, सन् 1805 को मार्क्विस वेल्सली ने कम्पनी के डाइरेक्टरों के नाम एक लम्बा पत्र लिखा था, जिसमें लिखा है कि—उस समय जब कि होलकर और अंगरेजों में युद्ध जारी था, नागपुर के रेज़िडेण्ट ने बरार के राजा और उसके मन्त्रियों को ख़ूब समझाया कि आपको अंगरेजों के साथ सब्सीडियरी सन्धि कर लेनी चाहिए। पत्र में लिखा है कि रेज़िडेण्ट ने उस अवसर पर बरार के राजा से साफ़-साफ़ कहा कि यदि आपने अंगरेजों के साथ सब्सीडियरी सन्धि न कर ली तो डर है कि जसवन्तराव होलकर के साथ अंगरेज़ों का युद्ध समाप्त होने के बाद जसवन्तराव की सेना आपके इलाके पर हमला कर दे; और यदि अंगरेज़ों और आपके बीच पहले से सब्सीडियरी सन्धि हो जाएगी तो अंगरेज़ सब्सीडियरी सेना द्वारा आपकी सहायता कर सकेंगे। किन्तु रेज़िडेण्ट के हर तरह समझाने पर भी राजा ने सब्सीडियरी सन्धि को स्वीकार करने से इनकार किया। इस तरह की सन्धियों के विषय में उन दिनों आम नियम यह था कि पहले अंगरेज़ रेज़िडेण्ट और कम्पनी के दूत देशी नरेशों और उनके मन्त्रियों को ज़बानी इस तरह की सन्धियों के फायदे सुझाते थे और फिर देशी नरेश की ओर से कम्पनी के नाम पत्र द्वारा सन्धि के लिए इच्छा प्रकट कराई जाती थी और दिखाया यह जाता था कि ये सन्धियां देशी नरेशों की प्रार्थना पर की जाती हैं। उस समय अंगरेज़ बरार के राजा पर इससे अधिक जोर न दे सकते थे इसलिए मार्क्विस वेल्सली ने अपने पत्र के अन्त में लिखा है—

> **"यह अधिक उचित मालूम हुआ कि राजा के दिल पर आइन्दा की घटनाओं का प्रभाव पड़ने तक के लिए राजा को छोड़ दिया जाए और इस बात पर विश्वास किया जाए कि उन घटनाओं का राजा पर इस तरह का प्रभाव पड़ेगा कि वह फिर इस तरह की सन्धि के लिए अपनी स्वीकृति दे देगा और हमारा उद्देश्य सिद्ध हो जाएगा।"***

ज़ाहिर है कि होलकर की कुछ सेना से बरार पर हमला करवा कर बरार के राजा को डराने और इस तरह उसे सब्सीडियरी सन्धि में फंसाने का इरादा अंगरेज़ सन् 1805 में ही कर चुके थे। वे यह भी जानते थे कि होलकर की सेना में अमीर ख़ां हमारा ही आदमी है।

अमीर ख़ां के साथ दग़ा

लार्ड मिण्टो के समय में अंगरेज़ों ने निज़ाम को उकसा कर उससे अमीर ख़ां के नाम यह पत्र लिखवा दिया कि आप बरार पर आकर हमला कीजिए और मैं धन इत्यादि से आपकी सहायता करूंगा। कहा गया कि जिन दिनों जसवन्तराव होलकर नागपुर में था उन दिनों बरार के राजा ने जसवन्तराव के कुछ कीमती जवाहरात अपने पास रख दिए थे। अमीर ख़ां से अब बरार के

---

* "It appeared to be more advisable to leave the Raja to the operation of future events on his mind and to trust exclusively to (?) the object of obtaining the consent of the Raja to the alliance; ......"

राजा के नाम एक पत्र लिखवाया गया कि आप वे जवाहरात या उनकी कीमत होलकर दरबार को लौटा दें; और जब बरार के राजा से कोई सन्तोषप्रद उत्तर न मिल सका तो अमीर ख़ां ने बरार पर हमला करने की तैयारी शुरू कर दी। अमीर ख़ां और अंगरेज़ कम्पनी के बीच पहले से यह साफ़-साफ़ सन्धि हो गई थी कि अंगरेज़ होलकर दरबार के मामलों में और विशेष कर बरार के राजा के साथ होलकर दरबार के झगड़ों में किसी तरह का दख़ल न देंगे। इस सन्धि के भरोसे और निज़ाम की सहायता पर विश्वास करके अमीर ख़ां अपनी सेना लेकर जनवरी सन् 1809 में बरार की सरहद पर जा पहुंचा।

दूसरी ओर बरार के राजा को अंगरेज़ों ने यह पट्टी पढ़ाई कि निज़ाम और अमीर ख़ां, दोनों मुसलमान मिल कर तुम्हारे विरुद्ध साज़िश कर रहे हैं और बरार के उस इलाके पर, जो निज़ाम की सरहद से मिला हुआ है, अमीर ख़ां का राज कायम कर देना चाहते हैं। इतना ही नहीं, बल्कि लार्ड मिन्टो ने बिना मांगे कम्पनी की सेना अमीर ख़ां के मुकाबले और राजा बरार की मदद के लिए रवाना कर दी।

अमीर ख़ां अपने मुक़ाबले में कम्पनी की सेना को आया हुआ देख कर चकित रह गया। प्रोफ़ेसर एच० एच० विल्सन लिखता है कि—

> **"अमीर ख़ां ने होलकर दरबार के साथ अंगरेज़ों की सन्धि की उस शर्त की दुहाई दी जिसमें अंगरेज़ सरकार ने यह वादा किया था कि हम होलकर के मामलों में किसी तरह का भी दख़ल न देंगे × × × अमीर ख़ां का एतराज नहीं सुना गया, फिर भी उसकी दलील अकाट्य और न्यायसंगत थी; × × × उसकी दलील यह थी कि अंगरेज़ सरकार का व्यवहार सन्धि के साफ़ विरुद्ध है और उन गम्भीर वादों के भी विरुद्ध है जो अंगरेज़ सरकार ने होलकर दरबार से किए हैं कि बरार के राजा से जसवन्तराव का जो कुछ झगड़ा है उसम अंगरेज़ कोई दख़ल न देंगे। इन दलीलों का अब कोई प्रभाव न पड़ सकता था।"***

अमीर ख़ां का बरार से लौटना

हमें यह भी याद रखना चाहिए कि बरार के राजा के साथ अंगरेज़ों की कोई सन्धि इस तरह की न थी जिससे वे ऐसे अवसर पर राजा की मदद करने के लिए बाध्य होते, और न राजा ने उनसे मदद की कोई प्रार्थना की थी। फिर भी अमीर ख़ां को हराने और बरार के राजा की रक्षा करने के लिए अंगरेज़ी सेना मौके पर मौजूद हो गई। मालूम नहीं, इसके बाद स्वयं अमीर ख़ां की नीति किस ओर को झुकी। कम्पनी की सेना के बढ़ते ही अमीर ख़ां बरार के राजा का इलाका छोड़कर पीछे हट गया। अंगरेज़ों ने भी अमीर ख़ां का अधिक पीछा करना उचित न समझा और यह घटना यहीं समाप्त हो गई।

---

* "……appealed with unanswerable justice, although with no avail, to the stipulation of the existing treaty with Holkar……, which engaged that the British Government would not in any manner whatever interfere in his affairs; ……he argued that the conduct of the Government was a manifest infraction of the treaty, and a breach of the solemn promises made to Jaswant Rao, that it would not meddle with his claims upon the Raja of Berar. These representations were no longer likely to be any weight."—Mill, vol. vii, p. 210.

इस तरह की नीति द्वारा लार्ड मिण्टो ने अपनी भारतीय प्रजा, होलकर और भोंसले जैसे भारतीय नरेशों को अंगरेज़ों के विरुद्ध सिर उठाने से रोके रखा।

बुन्देलखण्ड और त्रिवानकुर

बुन्देलखण्ड के राजाओं के विरुद्ध भी लार्ड मिण्टो को सेनाएं भेजनी पड़ीं और एक साधारण-सा युद्ध त्रिवानकुर में भी हुआ। किन्तु लार्ड मिण्टो के समय की सबसे अधिक महत्व की घटना ईरान और अफ़ग़ानिस्तान की ओर उसकी नीति थी। मिण्टो की इस परराष्ट्र नीति को बयान करने से पहले, मार्क्विस वेल्सली की परराष्ट्र नीति को बयान करना आवश्यक है।

वेल्सली की परराष्ट्र नीति

मार्क्विस वेल्सली के समय में ज़मानशाह अफ़ग़ानिस्तान का बादशाह था, सिन्ध और पंजाब के सूबे अफ़ग़ानिस्तान के सामन्त थे और ज़मानशाह के ब्रिटिश भारत पर हमला करने की कई बार खबर उड़ चुकी थी। इसके लिए मार्क्विस वेल्सली ने तीन मुख्य उपाय किए। एक, उसने ईरान के बादशाह बाबा खां के पास अपने विशेष दूत भेज कर बाबा खां को धन का लोभ दिया और उसे अपने सहधर्मी और पड़ोसी अफ़ग़ानिस्तान पर हमला करने के लिए उकसाया। दूसरे, सिन्ध और पंजाब के नरेशों को ज़मानशाह के विरुद्ध भड़काया और तीसरे, ईरान के ही ज़रिये अफ़ग़ानिस्तान में आपसी फूट डलवाई और ज़मानशाह के विरुद्ध साज़िशें करवाईं।

अफ़ग़ानिस्तान के विरुद्ध साज़िश

8 अक्तूबर, सन् 1798 को मार्क्विस वेल्सली ने बम्बई के गवर्नर डंकन को लिखा—

> **"मैं आपसे सहमत हूं कि आपने बुशायर में रहने के लिए जिस देशी एजेण्ट को नियुक्त किया है, उससे वह काम बहुत अच्छी तरह निकाला जा सकता है जिसका आपने अपने पत्र में ज़िक्र किया है। और चूंकि हिन्दोस्तान पर ज़मानशाह के हमले की सम्भावना बढ़ती हुई मालूम होती है, इसलिए मेरी राय है कि जितनी जल्दी हो सके मेहदीअली खां को बाबा खां के दरबार में अपनी कार्रवाइयां शुरू कर देनी चाहिएं × × × निस्सन्देह यह बहुत ही ज़रूरी है कि उस मुल्क में इस तरह की आफ़त खड़ी कर दी जाए जिससे विवश होकर ज़मानशाह या तो इधर हमला करने का इरादा छोड़ दे और या यदि रवाना हो चुका हो तो वापस लौट जाए।"***

---

* "I concur with you in thinking that the services of the native agent whom you have appointed to reside at Bushire may be usefully employed for the purpose mentioned in that letter, and as the probability of the invasion of Hindostan by Zeman Shah seems to increase, I am of opinion that Mehdi Ali Khan cannot too soon commence his operations at the Court of Baba Khan, ...*It would certainly be a very desirable object to excite such an alarm in that quarter as may either induce the Shah to relinquish his projected expedition, or may recall him, should he have actually embarked on it.*"—Marquess Wellesley's letter to the Hon. J. Duncan, Governor of Bombay, dated 8th October, 1798.

शिया सुन्नी के झगड़े

कम्पनी का यह "देशी एजेण्ट" मेहदीअली ख़ां एक ईरानी अमीर था, जो हिन्दोस्तान में बस गया था। बुशायर से उसने ईरान के बादशाह बाबा खां के नाम अनेक पत्र लिखे जिनमें अनेक कल्पित घटनाएं बयान करके उसने बाबा ख़ां को ज़मानशाह के विरुद्ध भड़काने का प्रयत्न किया। बाबा खां शिया सम्प्रदाय का और अफ़ग़ानिस्तान का बादशाह सुन्नी था। मेहदीअली ख़ां ने ईरान के बादशाह को लिखा कि काबल के बादशाह के सुन्नी अफ़ग़ानों ने लाहौर के शिया मुसलमानों पर ऐसे-ऐसे अत्याचार किए हैं कि वहां के हजारों शिया मुसलमानों ने भाग-भाग कर अंगरेज़ों के इलाके में पनाह ली है, इसलिए ज़मानशाह को दबाना दीन की खिदमत करना है।

ईरान के साथ कूटनीति

मेहदीअली ख़ां के बेधड़क झुठ बोलने की एक छोटी सी मिसाल यह है कि उसने ईरान के बादशाह को लिखा कि अंगरेज़ कम्पनी के सात सौ बहादुर सिपाहियों ने सिराजुद्दौला के तीन लाख सिपाहियों को हरा दिया।*

मालूम होता है कि मेहदीअली ख़ां की बातों का ईरान के बादशाह पर खासा असर हुआ। सन् 1799 की शरद ऋतु में बादशाह ने मेहदीअली ख़ां को मिलने के लिए तेहरान बुलाया। मेहदीअली खां ने शाह और उसके दरबारियों को बड़ी-बड़ी नज़रें देने में बहुत-सा धन व्यय किया। निस्सन्देह यह सब धन भारत के कोष का था। इसके बाद मेहदीअली ख़ां अपना काम करके बुशायर लौट आया।

कर्कपैट्रिक का पत्र

मेहदीअली ख़ां के काम को पक्का करने और अफ़ग़ानिस्तान के विरुद्ध ईरान के साथ सन्धि करने के लिए सन् 1799 के अन्त में मार्क्विस वेल्सली ने सर जान मैलकम को, जो उस समय कप्तान मैलकम था, अपना विशेष दूत नियुक्त करके ईरान भेजा। गवरनर-जनरल की ओर से उसके फ़ौजी सेक्रेटरी, करनल कर्कपैट्रिक ने मैलकम के नाम 10 अक्तूबर, सन् 1799 को एक लम्बा पत्र लिखा, जिसमें मैलकम को ईरान में काम करने के लिए आदेश दिए गए। यह पत्र इतने महत्व का है कि यहां उसके कुछ वाक्य उद्धृत करना आवश्यक है। कर्नल कर्कपैट्रिक ने मैलकम को लिखा——

> "बम्बई में गवर्नर और उसकी कौन्सिल से आपको उन सब पत्रों की नक़लें मिलेंगी जो गवर्नर और मेहदीअली खां के बीच आए गए हैं। मेहदीअली खां एक देशी एजेण्ट है, जिसे कुछ दिनों से मिस्टर डंकन ने गवर्नर जनरल के आदेश के अनुसार इस काम के लिए नियुक्त किया है कि हिन्दोस्तान के विरुद्ध बार-बार जमानशाह जो तजवीजें करता है उनमें जमानशाह को विफल करने के लिए मेहदीअली ख़ां ईरान के दरबार के साथ बातचीत शुरू करे और जारी रखे।
>
> × × ×
>
> "बसरा या बगदाद पहुंच कर जितनी जल्दी हो सके, आप ईरान के दरबार को अपनी नियुक्ति की सूचना भेज दें और मोटे तौर पर यह लिख भेजें कि आपको

---

* *History of Persia,* by Lieut. Colonel P. M. Sykes, vol. ii, p. 397.

भेजने का उद्देश्य उस मेल और मित्रता को फिर से क़ायम करना है जो पुराने समय में ईरान की सरकार और अंगरेज़ सरकार के बीच क़ायम थी। यदि कोई मनुष्य आपसे मिलने के लिए × × × × भेजा जाए तो आपका उससे इससे ज़्यादा खुल कर बात करना अच्छा नहीं है; किन्तु यदि आपके साथ इस विषय पर ज़्यादा ज़ोर दिया जाए तो आप कह सकते हैं कि, और बातों के साथ-साथ, मुझे यह आदेश दिया गया है कि मैं हिन्दोस्तान के अंगरेज़ी इलाक़ों और ईरान के बीच तिजारत को उन्नति देने के लिए प्रयत्न करूं।"

निस्सन्देह "तिजारत को उन्नति देना" केवल एक आड़ थी। मैलकम के ईरान भेजे जाने का वास्तविक उद्देश्य इस पत्र के नीचे के वाक्य से जाहिर है—

"तुम्हारे भेजे जाने का मुख्य उद्देश्य ज़मानशाह को हिन्दोस्तान पर हमला करने से रोकना है; × × × दूसरा लक्ष्य गवर्नर जनरल का यह है कि यदि किसी समय फ्रान्सीसी किसी ऐसे मार्ग से भारत में प्रवेश करने का प्रयत्न करें जिससे ईरान का बादशाह उन्हें रोक सके, तो ईरान के दरबार के साथ सन्धि कर ली जाये कि वह फ्रान्सीसियों के विरुद्ध हमें दिल से पूरी तरह मदद दे।"

ईरान के साथ सन्धि की शर्त

मैलकम को इस पत्र में अधिकार दिया गया कि नीचे लिखी शर्त पर ईरान के बादशाह के साथ सन्धि कर ली जाए—

"ईरान के बादशाह के साथ सन्धि कर ली जाए कि इस तरह के उपाय द्वारा, जो ईरान के बादशाह और कप्तान मैलकम के बीच तय हो जाएं, ज़मानशाह को हिन्दोस्तान के किसी भाग पर हमला करने से रोका जाए और यदि ज़मानशाह अटक के पार आ जाए या हिन्दोस्तान पर हमला कर बैठे, तो ईरान का बादशाह इस बात का वादा करे कि वह इस तरह की ज़रूरी तदबीरें करेगा जो ज़मानशाह को फ़ौरन अपनी सल्तनत की रक्षा के लिए लौटने पर मजबूर कर दें।"

बाबा खां को अपने एक सहधर्मी और पड़ोसी नरेश के साथ इस तरह विश्वासघात पर राजी करने के लिए उसे लोभ देना आवश्यक था। इसलिए मैलकम को लिख दिया गया—

"कम्पनी इस सेवा के बदले में वादा करे कि या तो उस समय तक जिस समय तक कि यह सन्धि कायम रहे, कम्पनी ईरान के बादशाह को तीन लाख रुपये सालाना की सहायता देती रहे और या × × × ईरान के बादशाह को किसी समय भी जो × × × असाधारण खर्च करना पड़े, कम्पनी उसका एक हिस्सा, जो अधिक से अधिक एक तिहाई हो, अदा करे।"

शाहशुजा को भड़काना

इसके अलावा ज़मानशाह के खिलाफ़ अफ़ग़ानिस्तान में उपद्रव खड़े करना भी ज़रूरी था। ज़मानशाह के दो निर्वासित भाई, महमूद और शुजा, उन दिनों

ईरान में रहते थे। मैलकम को इन दोनों के साथ साज़िश करने के लिए कहा गया। इस पत्र में गवर्नर जनरल ने उसको लिखा—

> "××× ज़मान खां को रोके रखने के लिए जो अनेक उपाय काम में लाए जा सकते हैं, उन पर विचार करते हुए आप स्वभावतः उन उपायों की ओर भी उचित ध्यान देंगे जो ज़मान खां के उन निर्वासित भाइयों द्वारा किए जा सकते हैं जो इस समय बाबा खां की शरण में ईरान में रहते हैं।"

मैलकम के भेजे जाने का उद्देश्य

मैलकम के ईरान भेजे जाने का एक और उद्देश्य ज़मानशाह के बल इत्यादि का ठीक-ठीक पता लगाना भी था। मैलकम को आदेश दिया गया—

> "बाबा खां के दरबार में रहते हुए आप ज़मानशाह के बल और उसके वसीलों और अपने विविध पड़ोसियों के साथ उसके राजनैतिक सम्बन्धों का ठीक-ठीक पता लगाने का प्रयत्न कीजिएगा और कोई न कोई ऐसा प्रबन्ध भी कर दीजिएगा जिससे आइन्दा ज़मानशाह के इरादों और हरकतों की हमें ठीक-ठीक और समय पर सूचना मिलती रहे।"*

---

* "At Bombay you will be furnished by the Governor-in-Council with copies of all the correspondence which has passed between him and Mehdi Ali Khan, a native agent employed for some time past by Mr. Duncan, under the instructions of the Governor-General, in opening and conducting a negotiation at the Court of Persia with a view to preventing Zeman Shah from executing his frequently renewed projects against Hindostan.

* * * * *

"You will apprize the Court of Persia of your deputation as soon as possible after your arrival, either at Basrah or at Bagdad, intimating, in general terms, that the object of it is to revive the good understanding and friendship which anciently subsisted between the Persian and the British Governments. It is not desirable that you should be more particular with any person who may be sent to meet you, or to ascertain the design of your mission; but if much pressed on the subject you may signify that, among other things, you have been instructed to endeavour to extend and improve the commercial intercourse between Persia and the British possessions in India.

* * *

"The primary purpose of your mission is to prevent Zeman Shah from invading Hindostan; ......The next object of His Lordship is to engage the Court of Persia to act vigorously and heartily against the French in the event of their attempting at any time to penetrate to India by any route in which it may be practicable for the King of Persia to oppose their progress.

* * * *

"To engage to prevent Zeman Shah, by such means as shall be concerted between His Majesty and Captain Malcolm, from invading any part of Hindostan, and in the event of his crossing the Attock, or of the actual invasion of Hindostan by that Prince, the King of Persia to pledge himself to the adoption of such measures as shall be necessary for the purpose of compelling Zeman Shah to return immediately to the defence of his own dominions.

ज़मानशाह पर आपत्ति

ज़मानशाह का विचार भारत पर हमला करने का कभी रहा हो या न रहा हो, किन्तु इसमें सन्देह नहीं, अपने पड़ोस की उस स्वाधीन सल्तनत को निर्बल और विपत्तिग्रस्त रखने में भारत के विदेशी शासकों का हित था। ज़मानशाह के विरुद्ध अंगरेज़ों की साज़िशें बहुत हद तक सफल हुईं। मैलकम के ईरान पहुंचने के दो वर्ष के भीतर ही अफ़गानिस्तान में आपसी झगड़े, हत्या, रक्तपात और क्रान्ति का बाजार गरम हो गया। वह ज़मानशाह, जिसके नाम से अंगरेज़ डरते थे, तख्त से उतार दिया गया। सन् 1801 में ज़मानशाह के सौतेले भाई महमूद ने ज़मानशाह की आंखें निकाल कर उसे कैद कर दिया और स्वयं बादशाह बन बैठा। तीसरे भाई शाहशुजा ने महमूद को तख्त से उतार कर ज़मानशाह को कैद से रिहा किया और खुद तख्त पर बैठ गया। यह शाहशुजा बिल्कुल अंगरेज़ों का आदमी था। निस्सन्देह मैलकम और उसके साथियों ने ईरान से बैठे-बैठे बड़ी होशियारी के साथ अपना सारा काम पूरा कर लिया।

झूठी अफ़वाहों की मंशा

इतिहास लेखक मिल एक जगह लिखता है कि उस ज़माने के अंगरेज़ अपने मतलब के लिए काबुल के बादशाह के हमले की झूठी अफ़वाह अकसर उड़ा दिया करते थे। यही चाल उन्होंने एक बार दौलतराव सिंधिया के साथ चली थी। भावी घटनाओं ने साबित कर दिया कि मैलकम को भेजने का वास्तविक उद्देश्य न बाबा ख़ां से दोस्ती करना था और न ज़मानशाह को रोकना था, वरन् अफ़ग़ानिस्तान के अन्दर ख़ानेजंगियां पैदा करके अफ़गानिस्तान के ऊपर अंगरेज़ी हमले के लिए मैदान तैयार करना था।

मार्क्विस वेल्सली के समय में फ्रांस के ईरान के रास्ते भारत पर हमला करने की सम्भावना भी बिल्कुल न थी। इसलिए गवर्नर जनरल का अपने पत्र में इस ओर संकेत करना भी केवल एक राजनैतिक चाल थी।

"The Company (so ran the article of the treaty) to engage to pay to the King of Persia for his service, either an annual fixed subsidy of three lacs of rupees during the period that this treaty shall continue in force, or a proportion, not exceeding one-third, of such extraordinary expense as His Majesty shall at any time actually and *bonafide* incur for the specific purposes stated in the foregoing article.

* * * *

"In considering the different means by which Zeman Khan may be kept in check during the period required, you will naturally pay due attention to those which may be derived from the exiled brothers of that Prince, now resident in Persia under the Protection of Baba Khan......

* * *

"You will endeavour during your residence at the Court of Baba Khan to obtain an accurate account of the strength and resources of Zeman Shah, and of his political relations with his different neighbours, and to establish some means of obtaining hereafter the most correct and speedy information on the subject of his future intentions and movements."—Governor-General's letter of instructions to John Malcolm, dated 10th October, 1799

मार्क्विस वेल्सली ने अपने विशेष दूत ईरान के अतिरिक्त सिन्ध और पंजाब भेज कर वहां के नरेशों और दूसरे लोगों के साथ भी काबुल के बादशाह के विरुद्ध साज़िशें कीं।

फ्रान्स और रूस का भय

अब हम फिर लार्ड मिण्टो के शासन काल की ओर आते हैं। लार्ड मिण्टो के समय में ब्रिटिश भारत के ऊपर काबुल के हमले का भय बिल्कुल जाता रहा था, किन्तु फ्रान्स के हमले का भय मार्क्विस वेल्सली के समय से अधिक था। बल्कि सम्भावना यह थी कि फ्रान्स और रूस मिल कर उत्तर पश्चिम के रास्ते भारत पर हमला करें। इससे पहले रूस और इंगलिस्तान में परस्पर मित्रता रह चुकी थी। किन्तु सन् 1807 में यूरोप के अन्दर टिलसिट नामक स्थान पर रूस और फ्रान्स के सम्राटों के बीच सन्धि हुई। कहा जाता है कि उसी समय इन दोनों यूरोपियन सम्राटों ने मिल कर भारत पर हमला करने और ईस्ट इण्डिया कम्पनी के इलाकों को जीत कर आपस में बांटने का इरादा किया। कुछ दिनों बाद फ्रान्स की आन्तरिक कठिनाइयों के कारण भारत के ऊपर फ्रान्स के हमले का भय जाता रहा। किन्तु रूस के हमले का भय इसके लगभग 100 साल बाद तक बना रहा। यद्यपि यह डर सदा केवल डर ही रहा, फिर भी भारत के अन्दर अंगरेज़ों की शासन नीति पर इसका बहुत गहरा प्रभाव पड़ा।

लार्ड मिण्टो और ईरान

लार्ड मिण्टो के समय में इंगलिस्तान के मन्त्रियों ने रूस और फ्रान्स के इरादों को विफल करने के लिए सर एच० जोन्स को इंगलिस्तान का राजदूत नियुक्त करके ईरान भेजा और लार्ड मिण्टो ने फिर सर जान मैलकम को अपनी ओर से सर एच० जोन्स की सहायता के लिए रवाना किया।

इस बीच ईरान और रूस में कुछ झगड़ा हो गया। ईरान ने अंगरेज़ों के वायदों के अनुसार अंगरेज़ों से मदद चाही। अंगरेज़ों ने मदद देने से इनकार कर दिया। विवश होकर ईरान ने अपने कुछ दूत फ्रान्स भेजे। फ्रान्स में इन दूतों का खूब स्वागत हुआ और ईरान व फ्रान्स के बीच सन्धि तय करने के लिए फ्रान्स के कुछ दूत ईरान आए। ठीक उसी समय अंगरेज़ों की ओर से एच० जोन्स और मैलकम भी ईरान पहुंचे। मैलकम ने इस बार ईरान दरबार के साथ बड़ी धृष्टता का व्यवहार किया; उसने अपनी बातचीत शुरू करने के लिए सब से पहली शर्त यह रखी कि फ्रान्स के राजदूत और उनके साथी ईरान से बाहर निकाल दिए जाएं। ईरान के बादशाह को यह बहुत बुरा लगा। मैलकम की डांट न चल सकी और उसे असफल भारत लौट आना पड़ा। किन्तु एच० जोन्स ने वहां रह कर, जिस तरह हो सका, स्थिति को सम्भाला और कम से कम कहने के लिए ईरान और इंगलिस्तान के बीच एक सन्धि कर ली। यह सन्धि भारतीय ब्रिटिश सरकार के लिए अधिक मान-सूचक न थी। सन्धि की एक शर्त यह थी कि यदि ईरान और अफ़गानिस्तान के बीच युद्ध हो तो अंगरेज़ उसमें किसी तरह का दखल न दें और ईस्ट इण्डिया कम्पनी या भारतीय ब्रिटिश सरकार ईरान के किसी मामले में किसी तरह भी दखल न दे।

लार्ड मिण्टो ने भारतीय ब्रिटिश सरकार के मान को फिर से क़ायम करने के लिए दोबारा मैलकम को ईरान भेजा। मैलकम ने अपने रोजनामचे में लिखा है कि किसी तरह "धोखेबाज़ी से, झूठ बोल कर और साज़िशों द्वारा"* उसे इस बार ब्रिटिश भारतीय सरकार और ईरान सरकार के बीच फिर से मित्रता का सम्बन्ध क़ायम करने में सफलता प्राप्त हुई।

अफ़ग़ानिस्तान में एलफ़िन्सटन का उद्देश्य

उधर जिस समय कि एच० जोन्स ने ईरान के साथ यह सन्धि की कि ईरान और अफ़गानिस्तान की लड़ाई में अंगरेज़ किसी तरह का दखल न देंगे, ठीक उसी समय एक दूसरे अंगरेज़ एलफ़िन्सटन को इसलिए अफ़गानिस्तान भेजा गया कि वह अफ़ग़ानिस्तान के बादशाह के साथ इस विषय की सन्धि कर ले कि यदि ईरान अफ़गानिस्तान पर हमला करेगा तो अंगरेज़ अफ़ग़ानिस्तान की मदद करेंगे। निस्सन्देह एक ओर मुस्लिम ईरान को अफ़ग़ानिस्तान के विरुद्ध भड़काना और दूसरी ओर मुस्लिम अफ़गानिस्तान को ईरान के हमले के विरुद्ध मदद देने का वादा करना, पाश्चात्य कूटनिति का एक ख़ासा सुन्दर नमूना है। वास्तव में रूस और फ्रान्स के हमले से अपने नये भारतीय साम्राज्य को सुरक्षित रखने के लिए अंगरेज़ों को ईरान और अफ़गानिस्तान, दोनों को अपनी ओर रखना और साथ ही दोनों को एक-दूसरे से लड़ाए रखना आवश्यक प्रतीत होता था।

अंगरेज़ों का भारतीय साम्राज्य निकटवर्ती अफ़ग़ानिस्तान के बादशाहों या वहां की प्रजा को कभी भी नहीं फला। मार्क्विस वेल्सली के समय से लेकर आज (सन् 1929) तक अफ़ग़ानिस्तान को गुप्त षड्यन्त्रों, आपसी लड़ाइयों और हत्याओं का क्षेत्र बनाए रखना ही भारत के ईसाई शासकों ने अपनी सलामती के लिए सदा हितकर समझा और अफ़ग़ानिस्तान की प्रजा को इन विदेशियों से सिवाय मुसीबतों और बरबादी के और कुछ न मिल सका।

ईरान के अतिरिक्त लार्ड मिण्टो ने तीन और स्वाधीन दरबारों में अपने विशेष दूत भेजे। एक सिन्ध, दूसरे पंजाब और तीसरे अफ़ग़ानिस्तान। इन तीनों जगहों के दूतों के कृत्यों को संक्षेप में बयान करना आवश्यक है। इनमें सब से पहले हम सिन्ध के दूतों को लेते हैं।

लार्ड मिण्टो और सिन्ध

इससे पहले कम्पनी का एक तिजारती एजेण्ट सिन्ध में रहा करता था। सन् 1802 में सिन्ध के कारीगरों के साथ असह्य दुर्व्यवहार करने के कारण वह सिन्ध से निकाल दिया गया। उसके बाद सात साल तक सिन्ध के साथ अंगरेज़ों की तिजारत बन्द रही। अब लार्ड मिण्टों ने अपना एक दूत, कप्तान सीटन, सिन्ध की राजधानी हैदराबाद भेजा। सीटन ने हैदराबाद के अमीर से कहा कि अफ़ग़ानिस्तान का बादशाह शाहशुजा आपको गद्दी से उतार कर आपकी जगह एक निर्वासित नरेश अब्दुल नबी को हैदराबाद की गद्दी पर बैठाना चाहता है और अंगरेज़

---

* "Deceit, falsehood and intrigue."—Malcolm's Journal, p. 186.

आपकी मदद के लिए तैयार हैं। भोला अमीर तुरन्त अफ़ग़ानिस्तान के विरुद्ध अंगरेजों के साथ सन्धि करने को तैयार हो गया।

सिन्ध के अमीरों के साथ सन्धि

किन्तु अंगरेज़ अफ़ग़ानिस्तान के साथ भी मित्रता की सन्धि कर रहे थे। इसलिए हैदराबाद के अमीर ने जब सन्धि में यह साफ़-साफ़ शर्त रखनी चाही कि यदि अफ़ग़ानिस्तान का बादशाह सिन्ध पर हमला करेगा तो अंगरेज़ सिन्ध की मदद करेंगे, तब अंगरेज़ राजदूत ने टालमटोल की। उसी समय शाह ईरान के कुछ दूत हैदराबाद के दरबार में ठहरे हुए थे। इन दूतों ने ईरान की ओर से अफ़ग़ानिस्तान के विरुद्ध हैदराबाद के अमीर को सहायता देने का वादा किया, यहां तक कि एक ईरानी सेना सिन्ध की सहायता के लिए ईरान से चल भी दी। इस बीच में अब्दुल नबी मर गया, शाहशुजा स्वयं काबुल के अन्दर कई तरह की मुसीबतों में फंस गया और उस ओर से सिन्ध का डर बिल्कुल जाता रहा। ईरानी सेना का सिन्ध आना भी अंगरेज़ गवारा न कर सकते थे। कप्तान सीटन ने अब फ़ौरन सिन्ध के अमीरों के साथ इस विषय की एक सन्धि कर ली कि सिन्ध के शत्रुओं के विरुद्ध अंगरेज सिन्ध को मदद देंगे और अंगरेज़ों के शत्रुओं के विरुद्ध सिन्ध के अमीर अंगरेज़ों को मदद देंगे। इस सन्धि के आधार पर ईरानी सेना ईरान लौटा दी गई।

अमीरों के साथ दूसरी सन्धि

किन्तु यह सन्धि भी अंगरेज़ों और अफ़ग़ानिस्तान की मित्रता के साफ विरुद्ध जाती थी। इसलिए कप्तान सीटन के स्वीकार कर लेने पर भी लार्ड मिण्टो ने इस सन्धि को स्वीकार न किया। मिण्टो ने अब एक दूसरे अंगरेज़ स्मिथ, को बम्बई से सिन्ध भेजा। स्मिथ 8 अगस्त, सन् 1809 को हैदराबाद पहुंचा। अमीर को समझा-बुझा कर कप्तान सीटन वाली सन्धि रद्द कर दी गई और 23 अगस्त, सन् 1809 को कम्पनी और सिन्ध के अमीरों के बीच एक नयी सन्धि हो गई, जिसमें दोनों सरकारों के बीच "सदा के लिए" मित्रता और एक दूसरे के साथ तिजारत का सम्बन्ध क़ायम किया गया। यह तय हुआ कि सिन्ध के वकील अंगरेज़ों के यहां और अंगरेज़ों के वकील सिन्ध में रहा करें और फ्रान्सीसियों को सिन्ध में रहने की इजाजत न दी जाए।

दिखलाया यह गया कि इस सन्धि का उद्देश्य केवल फ्रान्सीसियों के विरुद्ध सिन्ध के साथ मित्रता करना है, किन्तु वास्तविक उद्देश्य था अफ़ग़ानिस्तान से सिन्ध को फोड़ना और सिन्ध की सब ख़बरें रखने और सिन्ध में आइन्दा अपनी साज़िशों का जाल पूरने के लिए वहां एक स्थायी एजेन्सी क़ायम करना।

रणजीतसिंह की अदूरदर्शिता

सतुलुज नदी के उस पार महाराजा रणजीतसिंह का राज था। रणजीतसिंह नाम को काबुल के बादशाह का सामन्त था। नदी के इस पार अनेक छोटी-छोटी सिख रियासतें थीं, जिनमें से अधिकांश दूसरे मराठा युद्ध तक महाराजा सिंधिया की सीमान्त थीं। रणजीतसिंह अपढ़ किन्तु वीर और योग्य सेनापति था। वह

काबुल के प्रभुत्व का अन्त कर अपने लिए एक छोटा-सा स्वतन्त्र साम्राज्य क़ायम कर लेना चाहता था। किन्तु रणजीतसिंह में दूरदर्शिता या नीतिज्ञता की कमी थी। मार्क्विस वेल्सली को भी उस समय पंजाब को अंगरेज़ी साम्राज्य में मिला लेने की कोशिश करना इतना लाभदायक दिखाई न देता था। वह मराठों और अफ़ग़ानिस्तान के बीच में पंजाब को एक इस तरह की स्वतंत्र रियासत (बफ़र स्टेट) बनाए रखना चाहता था, जिसका समय-समय पर मराठों या अफ़ग़ानिस्तान दोनों के विरुद्ध उपयोग किया जा सके। इसीलिए मार्क्विस वेल्सली महाराजा रणजीतसिंह और सतुलुज के इस पार के सिख राजाओं के साथ बराबर साजिशें करता रहा। रणजीतसिंह ने इस आशा में कि अंग्रेज़ मुझे इस उपकार का बदला देंगे, न केवल ऐन संकट के समय मराठों को मदद ही नहीं दी, वरन् जसवन्तराव होलकर का पीछा करने के लिए कम्पनी की सेना को अपने राज से जाने की इजाज़त भी दे दी और एक तरह से जसवन्तराव को उसके शत्रुओं के हवाले कर दिया।

पिछले अध्यायों में दिखाया जा चुका है कि किस तरह दूसरे मराठा युद्ध के समय पटियाला और दोआब की दूसरी सिख रियासतों को अंगरेज़ों ने मराठों के विरुद्ध अपनी ओर फोड़ लिया था। रणजीतसिंह में यदि वीरता के साथ-साथ थोड़ी-सी नीतिज्ञता भी होती तो वह इन सब छोटे-बड़े राजाओं को अपनी ओर करके उनकी मदद से पंजाब में एक स्थायी सिख साम्राज्य क़ायम कर सकता था। किन्तु ऐसा न कर वह अपने देश के इन नरेशों और उनकी प्रजा को थोड़े से स्वार्थ के बदले में विदेशियों के हवाले कर देने के लिए राजी हो गया। कम्पनी के डाइरेक्टरों के नाम मार्क्विस वेल्सली के 29 सितम्बर, सन् 1803 के एक पत्र में लिखा है—

> **"लाहौर के राजा रणजीतसिंह ने, जो सिख राजाओं में मुख्य हैं, कमाण्डर-इन-चीफ़ के पास यह तजवीज लिख भेजी है कि मैं सतुलुज नदी के दक्षिण का सिखों का इलाक़ा कम्पनी को दे देने के लिए तयार हूं, इस शर्त पर कि अंगरेज और मैं, दोनों एक दूसरे के शत्रुओं के विरुद्ध युद्ध में एक दूसरे को सहायता दें।"***

सिख रियासतों के साथ सन्धियां

किन्तु महाराजा रणजीतसिंह की इस 'तजवीज' की ओर ध्यान देने की अंगरेजों को उस समय आवश्यकता न थी। रणजीतसिंह से ऊपर ही ऊपर सतुलुज के इस पार के राजाओं के साथ वे धीरे-धीरे अलग सन्धियां करते जा रहे थे। इन सन्धियों के अनुसार ये सब राजा एक-एक कर कम्पनी के संरक्षण (Protection) में ले लिए जाते थे और भविष्य के लिए इस प्रकार का प्रबन्ध कर लिया जाता था कि धीरे-धीरे बिना युद्ध उनकी रियासतें कम्पनी के राज में

---

* "Raja Ranjit Singh, the Raja of Lahore and the principal amongst the Sikh chieftains, has transmitted proposals to the Commander-in-Chief for the transfer of the territory belonging to that nation south of the river Sutlaj, on the condition of mutual defence against the respective enemies of that chieftain and of the British nation."—Governor-General in Council to the Hon'ble Secret Committee, etc., 29th September, 1803.

शामिल हो जाए। इन सन्धियों की एक शर्त यह बताई जाती थी कि यदि किसी राजा या सरदार के पुत्र न हो तो उसे गोद लेने का अधिकार न होगा और यदि कोई दूसरा न्यायोचित उत्तराधिकारी न हो तो उसकी रियासत कम्पनी की रियासत समझी जाएगी। इसी विचित्र नियम के अधीन अम्बाला, कैथल इत्यादि कई सिख रियासतें समय-समय पर अंगरेजी राज में मिला ली गईं। कुछ समय बाद लार्ड डलहौज़ी ने भी इसी नियम के अनुसार कई और देशी रियासतों को चुपके से अंगरेज़ी राज में शामिल कर लिया।

सतुलुज के इस पार के इन राजाओं को स्वयं रणजीतसिंह के विरुद्ध भी भड़काया गया। अन्त में जब रणजीतसिंह ने देखा कि अपने देशवासियों के विरुद्ध अंगरेज़ों का साथ देने से मुझे कोई लाभ न हुआ तो विवश होकर उसने सतुलुज के दक्षिण के समस्त विद्रोही राजाओं का दमन करके जमुना तक के इलाके को अपने अधीन करने का संकल्प किया।

रणजीतसिंह के दरबार में अंगरेज दूत

दोआब के राजा रणजीतसिंह के व्यवहार से सन्तुष्ट न थे। रणजीतसिंह ने फ़ौज लेकर उन पर चढ़ाई की। ख़बर उड़ी कि कम्पनी की सेना जमुना नदी पर जमा हो रही है और रणजीतसिंह के विरुद्ध इन राजाओं को सहायता देने वाली है। इस खबर की सच्चाई का पता लगाने के लिए महाराजा रणजीतसिंह ने लार्ड मिण्टो को एक पत्र लिखा, जिसमें उसने अंगरेज़ कम्पनी के साथ पूर्ववत मित्रता का सम्बन्ध कायम रखने की इच्छा प्रकट की और लिखा कि—"जमुना के इस ओर का इलाक़ा, सिवाय उन स्थानों के जिन पर अंगरेज़ों का कब्जा है, बाकी मेरे अधीन है, उसे ऐसा ही रहने दिया जाए।" इस पत्र के उत्तर में लार्ड मिण्टो ने मेटकाफ़ को, जो बाद में सर चार्ल्स मेटकाफ़ के नाम से प्रसिद्ध हुआ, अपना विशेष दूत नियुक्त करके रणजीतसिंह के दरबार में भेजा। मेटकाफ़ को भेजने का उद्देश्य महाराजा रणजीतसिंह के साथ कम्पनी की मित्रता दरशाना बताया गया, किन्तु जिस समय मेटकाफ़ को रणजीतसिंह के दरबार में रवाना किया गया, उसी समय उसके साथ ही साथ मिण्टो ने कमाण्डर-इन-चीफ़ को कूच की तैयारी करने की आज्ञा दी और लिखा—

> **"यह मानने के लिए कारण मौजूद हैं कि जिस देश पर रणजीतसिंह ने ज़बरदस्ती अपनी सत्ता जमा रखी है, उसका एक खासा भाग बहुत असन्तुष्ट है और यदि भरपूर कोशिश की जाए और सफलता हो जाए तो हमारे लिए इससे अधिक लाभ की और कोई बात नहीं हो सकती कि हम अपनी सरहद के और सिन्धु नदी के बीच के सारे इलाक़े से अपनी विरोधी और प्रतिस्पर्धी शक्तियों को निकाल कर उनकी जगह अपने मित्र और अपने आश्रित क़ायम करें।"***

---

* "There is reason to believe that a considerable portion of the country usurped by Ranjit Singh is strongly disaffected, and should any grand effort be made, and be crowned with success. nothing would be more advantageous to our interests than the substitution of friends and dependents for hostile and rival powers throughout the country between our frontier and the Indus."—*Lord Minto in India,* p. 154.

मेटकाफ़ और रणजीतसिंह

अगस्त सन् 1808 के अन्त में मेटकाफ़ दिल्ली से चला। 11 सितम्बर को वह क़सूर पहुंचा। रणजीतसिंह उस समय क़सूर में था। मेटकाफ़ के पत्र में लिखा है कि रणजीतसिंह ने बड़े आदर के साथ मेटकाफ़ का स्वागत किया। खूब ख़ातिर तवाज़ी हुई। 22 सितम्बर को मेटकाफ़ और रणजीतसिंह में मामले की बातचीत शुरू हुई। मेटकाफ़ ने रणजीतसिंह को समझाया कि फ्रांसीसी अफ़गानिस्तान और पंजाब पर हमला करने वाले हैं, इसलिए आपको अंगरेज़ों के साथ सन्धि कर लेनी चाहिए। मेटकाफ़ ने गवर्नर जनरल को एक पत्र में लिखा—

> **"बातचीत करते हुए आपके आदेश के अनुसार मैंने राजा को डराने की कोशिश की कि आपके राज पर विपत्ति आने की सम्भावना है, साथ ही उसे यह विश्वास दिलाने की कोशिश की कि अंगरेज़ आपकी रक्षा कर सकते हैं।"***

रणजीतसिंह की साफ़ बातें

किन्तु रणजीतसिंह की आंखों में धूल डालना इतना आसान न था। उसने मेटकाफ़ से साफ़-साफ़ पूछा कि अंगरेज़ सरकार सतुलुज के दोनों ओर की सब सिख रियासतों के ऊपर मेरा आधिपत्य स्वीकार करती है या नहीं? मेटकाफ़ ने उत्तर दिया कि इस विषय में अपनी सरकार के विचार प्रकट करने का मुझे अधिकार नहीं है। रणजीतसिंह इस उत्तर को सुन कर खिन्न हो गया। उसने फ़ौरन दोआब पर चढ़ाई की और कई राजाओं से ख़िराज वसूल किया। इस सारे समय में मेटकाफ़ कम्पनी के एजेण्ट की हैसियत से बराबर रणजीतसिंह के दरबार में बना रहा।

अपने असली इरादे के बारे में अंगरेज़ों ने रणजीतसिंह को उस समय तक धोखे में रखा, जिस समय तक कि उनकी तैयारी पूरी नहीं हो गई। 22 सितम्बर, सन् 1808 को मेटकाफ़ ने महाराजा रणजीतसिंह को साफ़-साफ़ इत्तला दी कि अंगरेज़ सरकार का यह निश्चय है कि जमुना और सतुलुज के बीच की रियासतें कम्पनी के संरक्षण में हैं, सतुलुज पार के जो इलाक़े पहले से आपके अधीन हैं उन पर आप अपना आधिपत्य क़ायम रख सकते हैं, किन्तु जिन इलाक़ों को आपने हाल में अपने अधीन किया है वे सब आपको कम्पनी के लिए छोड़ देने होंगे और कम्पनी के इस निश्चय के अनुसार अमल कराने के लिए सतुलुज के बाएं तट पर कम्पनी की एक सेना नियुक्त की जाएगी।

अमृतसर में हिन्दू मुसलमानों का झगड़ा

महाराजा रणजीतसिंह मेटकाफ़ के इस कथन को सुन कर कोप से भर गया। इतने पर भी इतिहास लेखक सर जान के लिखता है कि उसने बड़ी होशियारी के साथ अपने क्रोध को रोका † और अपने मन्त्रियों से सलाह करके उसी

---

* "In the course of this conversation, I endeavoured, in conformity to the instructions of the Supreme Government, to alarm the Raja for the safety of his territories, and at the same time to give him confidence in our protection."—Kaye's *Lives of Indian Officers*, vol. i, p. 394.

† Ibid., vol. i, p. 396.

दिन शाम को मेटकाफ़ से कहला भेजा कि अंगरेज़ सरकार की तजबीज़ ऐसी विचित्र है कि बिना दूसरे सिख सरदारों से सलाह किए मैं अपना अन्तिम निश्चय नहीं बता सकता। इसके बाद अपने सरदारों से सलाह करने के लिए रणजीतसिंह मेटकाफ़ को साथ लेकर अमृतसर आया।

अमृतसर में इस समय एक और छोटी-सी घटना हुई, जो अंगरेज़ों की भारतीय नीति की दृष्टि से खासी अर्थसूचक थी। फरवरी सन् 1809 में मेटकाफ़ अमृतसर में था। मोहर्रम के दिन थे। मेटकाफ़ के साथ कुछ शिया मुसलमान भी थे। इन लोगों ने विना रणजीतसिंह से या नगर के अधिकारियों से इजाज़त लिए नगर में घूम-घूम कर मोहर्रम मनाना शुरू किया और वह भी कुछ ऐसे तरीके से जो सिखों की सत्ता कायम होने के समय से उस समय तक कभी भी अमृतसर के अन्दर देखने में न आया था। यहां तक कि अमृतसर के नगर निवासियों को बुरा मालूम हुआ। इसी पर कुछ अकालियों और मेटकाफ़ के आदमियों में झगड़ा हो गया। रणजीतसिंह सुनते ही तुरन्त खुद मौके पर पहुंचा, मेटकाफ़ के खेमों को उसने फौरन शहर से कुछ दूर भेज दिया और ज्यों-त्यों कर झगड़े को शान्त कर दिया।

याद रखना चाहिए कि मेहदीअली ख़ां ने वावा खां से एक बात यह भी कही थी कि पंजाब में शिया मुसलमानों के साथ बहुत अन्याय किया जाता है।

लार्ड मिण्टो की उद्देश्य-पूर्ति

मेटकाफ़ की मुख्य बात पर अपने सरदारों के साथ सलाह करके रणजीतसिंह एक बार अंगरेज़ों से लड़ने के लिए तैयार हो गया। अंगरेज़ों ने अब उसे यह लोभ दिया कि आप अफ़ग़ानिस्तान पर हमला करके उत्तर और पश्चिम की ओर अपना साम्राज्य बढ़ाइए और अंगरेज़ों की मित्रता के बदले में सतुलुज पार का प्रदेश अंगरेजों के लिए छोड़ दीजिए। इसके अतिरिक्त रणजीतसिंह को डराने के लिए जनवरी, सन् 1809 में कुछ सेना दिल्ली से कर्नल ऑक्टरलोनी के अधीन लुधियाने रवाना कर दी गई। पंजाब के कई सरदार इस समय रणजीतसिंह के खिलाफ़ अंगरेज़ों की ओर दिखाई दिए।

अन्त में रणजीतसिंह ने अपनी सेनाए पीछे हटा लीं। 25 अप्रैल, सन् 1809 को रणजीतसिंह और अंगरेज़ों के बीच सन्धि हो गई। हाल में सतुलुज के इस पार जो इलाका रणजीतसिंह ने अपने अधीन कर लिया था वह उससे ले लिया गया। सतुलुज और जमुना के बीच के थोड़े से इलाक़े को छोड़ कर जो पहले से रणजीतसिंह के अधीन था, वहां का बाकी सारा प्रदेश कम्पनी के अधीन मान लिया गया; और वहां के समस्त देशी नरेश और उनकी प्रजा कम्पनी के हाथों में सौंप दिए गए। महाराजा रणजीतसिंह को अफ़ग़ानिस्तान पर हमला करने के लिए आज़ाद छोड़ दिया गया।

लार्ड मिण्टो का उद्देश्य पूरा हुआ। सिखों और अफ़ग़ानों के बीच वैमनस्य के कारण और बढ़ गए। ब्रिटिश भारत और उसके भावी आक्रामकों के बीच में पंजाब एक दीवार हो गया; और अंगरेज़ी राज के विस्तार के लिए सतुलुज तक का मैदान साफ़ हो गया।

लार्ड मिण्टो और अफ़ग़ानिस्तान

लार्ड मिण्टो ने एलफ़िन्सटन को अंगरेज़ सरकार का विशेष दूत नियुक्त करके अफ़ग़ानिस्तान भेजा। मलकम ईरान में था। उसने वहां के बादशाह बाबा खां को अफ़ग़ानिस्तान के विरुद्ध भड़काया। मेटकाफ़ ने पंजाब में महाराजा रणजीतसिंह को अफ़ग़ानिस्तान पर हमला करने के लिए उकसाया और एलफ़िन्सटन ने अफ़ग़ानिस्तान में शाहशुजा को ईरान के साथ लड़ाने का पूरा प्रयत्न किया।

एलफ़िन्स्टन के भेजे जाने का उद्देश्य यह बताया गया कि फ्रान्स और रूस मिल कर भारत पर हमला करने वाले हैं और उस विपत्ति का मुकाबला करने के लिए अंगरेज़ों और अफ़ग़ानिस्तान में मित्रता कायम करने की जरूरत है। महाराजा रणजीतसिंह के इलाके से नीचे-नीचे उसे बचाते हुए, बीकानेर, भावलपुर और मुलतान के रास्ते एलफ़िन्सटन 25 फरवरी, सन् 1809 को पेशावर पहुंचा।

आरम्भ में अफ़ग़ानिस्तान के बादशाह और वहां के दरबार ने एलफ़िन्सटन को अपने देश में आने की इजाज़त न दी। एलफ़िन्सटन को कुछ दिन मुलतान में रुकना पड़ा। इसका कारण यह था कि अफ़ग़ानिस्तान में उस समय आपसी लड़ाइयां और साजिशें जारी थीं। अफ़ग़ानों को इस बात का डर था कि अंग्रेज़ कहीं उनसे फ़ायदा उठाने की कोशिश न करें। एलफ़िन्सटन ने अफ़ग़ानिस्तान के बादशाह को विश्वास दिलाया कि अंगरेजों का उद्देश्य केवल अफ़ग़ानिस्तान के साथ मित्रता क़ायम करना है, ताकि एक दूसरे को समय पड़ने पर सहायता दे सकें। इस पर शाहशुजा ने इजाज़त दे दी और 5 मार्च, सन् 1809 को पेशावर में शाहशुजा और अंगरेज़ राजदूत में भेंट हुई। शाहशुजा ने बड़े सत्कार के साथ एलफ़िन्सटन का स्वागत किया।

एलफ़िन्सटन ने शाहशुजा को समझाया कि अफ़ग़ानिस्तान को रूस, फ्रान्स और ईरान, तीनों से खतरा है, साथ ही उसे अंगरेज़ों की मित्रता का भी विश्वास दिलाया। एलफ़िन्सटन ने शाहशुजा से प्रार्थना की कि आप फ्रान्सीसियों और ईरानियों को अपने राज में न घुसने दें और यदि ये लोग भारत पर हमला करना चाहें तो आप उन्हें रोकने में अंग्रेज़ों को मदद दें। किन्तु शाहशुजा के विरुद्ध उस समय उसके देश के अन्दर आफ़त मची हुई थी। उसे एक ज़बरदस्त बग़ावत का मुक़ाबला करना पड़ रहा था। इतिहास लेखक जान के लिखता है कि—"जब किसी मनुष्य के घर में आग लगी हुई हो तो उसे अधिक दूर के डर दिखाने का समय नहीं होता।" शाहशुजा और उसके मन्त्रियों ने एलफ़िन्सटन के जवाब में उससे यह इच्छा प्रकट की कि अंगरेज़ पहले अफ़ग़ानिस्तान की बग़ावतों को शान्त करने में शाहशुजा को मदद दें। एलफ़िन्सटन ने इससे इनकार किया। इतिहास लेखक जान के लिखता है कि—

> **"हमें मानना पड़ेगा कि अफ़ग़ान मन्त्रियों ने अपने पक्ष में मुनासिब और कम से कम एक दरजे तक सच्ची दलीलें दीं। वे यह न समझ सके कि यदि अंगरेज अपने शत्रुओं के विरुद्ध काबुल के बादशाह की मदद चाहते हैं तो वे काबुल के बादशाह को उसके शत्रुओं के विरुद्ध मदद क्यों नहीं देते; इस सूरत में तो वे**

कहते थे कि सन्धि का सारा लाभ अंगरेज़ों को है और सारा खतरा हमारे बादशाह को ।"*

मुल्ला जाफ़र

अफ़ग़ान मन्त्री मुल्ला जाफ़र के साथ एलफ़िन्सटन की जो बातचीत हुई उसके सम्बन्ध में एलफ़िन्सटन लिखता है––

"मुल्ला जाफ़र ने कहा कि मैं यह नहीं मानता कि आप बादशाह को धोखा देना चाहते हैं, किन्तु मेरा यह भी खयाल नहीं कि आप उतने ही सीधे हैं जितने आप अपने तईं जाहिर करते हैं × × × उसने साफ़ कहा कि आपका चरित्र बड़ी चालबाज़ी का है और बहुत से लोग यह समझते हैं कि आपके साथ किसी तरह का भी व्यवहार करने में बहुत सावधान रहने की आवश्यकता है ।"†

एलफ़िन्सटन की उद्देश्य-पूर्ति

शाहशुजा और उसके मन्त्रियों को यह पता न था कि अंगरेज़ हमें हमारी घरेलू आपत्तियों में इसलिए मदद नहीं दे रहे हैं, क्योंकि वास्तव में ये समस्त आपत्तियां अंगरेज़ों ही की पैदा की हुई हैं। क़रीब 10 साल पहले अफ़ग़ानिस्तान के अन्दर इन्हीं सब उपद्रवों को खड़ा करने के लिए मेहदीअली खां को और उसके बाद मैलकम को ईरान भेजा गया था और इसी काम के लिए ईरान की सरकार को नक़द रक़म दी गई थी। शाह महमूद ने इस समय शाहशुजा के विरुद्ध बग़ावत खड़ी कर रखी थी। शाहशुजा और शाह महमूद, दोनों को ज़मानशाह के विरुद्ध भड़का कर अंगरेज़ों ने ही ईरान से अफ़ग़ानिस्तान भिजवाया था। साथ ही अभी हाल में महाराजा रणजीतसिंह को दोआब के बदले में अफ़ग़ानिस्तान पर चढ़ाई करने के लिए उकसाया जा चुका था। इन हालतों में एलफ़िन्सटन शाहशुजा से सिवाय मित्रता की ऊपरी बातें मिलाने के और कर ही क्या सकता था ?

शाहशुजा ने अब एलफ़िन्सटन पर जोर देना शुरू किया कि आप शीघ्र अपने इलाक़े को लौट जाइए। फ़्रान्सीसियों के हमले का भय इस बीच बिल्कुल जाता रहा था। किन्तु रूस के हमले का डर बाक़ी था। इसलिए अंगरेज़ों और अफ़ग़ानिस्तान के बीच सन्धि होना आवश्यक था। अन्त में धन के जोर से अंगरेज़ों और शाहशुजा में सन्धि हो गई। शाहशुजा ने वादा किया कि मैं फ़्रान्सीसियों या ईरानियों को अपने राज से होकर न निकलने दूंगा और कम्पनी ने

---

* "The Afghan ministers, it must be admitted, argued the case acutely and not without some amount of fairness. They could not see why, if the English wished the King of Kabul to help them against their enemies, they should not in their turn help the King to resist his; but as it was, they said all the advantage was on our side, and all the danger on the side of the King."—Sir John Kaye's *Lives of Indian Officers,* vol. i, pp. 241-42.

† "He said that he did not believe that we intended to impose upon the King, but he did think that we were so plain as we pretended to be......He frankly owned that we had the character of being very designing and that most people thought it necessary to be very vigilant in all transactions with us."—Elphinstone.

इसके बदले में अफ़ग़ानिस्तान को एक वार्षिक रक़म देते रहने का वादा किया। एलफ़िन्सटन और उसके साथी अफ़ग़ानिस्तान के सैन्य-बल इत्यादि का पूरा ज्ञान प्राप्त करके, अफ़ग़ानिस्तान और भारत के मार्गों और मार्ग की क़ौमों की जानकारी प्राप्त करके पंजाब के रास्ते हिन्दोस्तान लौट आए।

एक फ्रान्सीसी लेखक लिखता है कि अंगरेज़ों ने रणजीतसिंह को अफ़ग़ानिस्तान पर हमला करने के लिए इसलिए उकसाया क्योंकि वे जानते थे कि रणजीतसिंह के मरने के बाद पंजाब और रणजीतसिंह का बाक़ी सारा राज कम्पनी के हाथों में आ जाएगा।

डच और फ्रान्सीसी टापुओं पर क़ब्जा

हिन्द महासागर में उस समय तक कुछ छोटे-छोटे टापू फ्रान्सीसियों के और कुछ डच लोगों के अधीन थे। लार्ड मिण्टो ने सन् 1809 में भारत से सेना भेज कर फ्रान्सीसी टापुओं पर हमला किया। सन् 1810 में यह टापू अंगरेज़ों के हाथों में आ गए। इसी तरह सन् 1811 में डच टापुओं पर भी अंगरेज़ों का क़ब्जा हो गया। इन सब टापुओं की विजय का पूरा खर्च भारत से लिया गया। सन् 1813 में लार्ड मिण्टो इंगलिस्तान के लिए रवाना हो गया।

निस्सन्देह उस नाजुक समय में अंगरेज कौम की दृष्टि से लार्ड मिण्टो का शासनकाल बहुत सफल शासन-काल था।

गोरे सिपाहियों की बग़ावत

किन्तु कम्पनी के गोरे सिपाही और उनके अफ़सर लार्ड मिण्टो के शासनकाल में इतने सन्तुष्ट न रह सके। बात यह थी कि कम्पनी की आर्थिक कठिनाई के कारण लार्ड मिण्टो को लगभग हर महकमे का खर्च कम करना पड़ा। उस समय के गोरे अफ़सरों को अपनी तनखाहों के अलावा कई तरह के भत्ते दिए जाते थे। हिन्दोस्तानी पलटनों के गोरे अफ़सरों को एक तरह का मासिक भत्ता मिलता था जिसे "टेण्ड कण्ट्रैक्ट" यानी डेरे के सामान का ठेका कहते थे। मई सन् 1808 से मद्रास प्रान्त में यह भत्ता बन्द कर दिया गया। गोरे अफ़सर इस पर बिगड़ खड़े हुए।

मछलीपट्टन, श्रीरंगपट्टन, हैदराबाद व कई और स्थानों पर अंगरेज़ अफ़सरों ने बग़ावत का झंडा खड़ा कर दिया। मामला बढ़ गया। यहां तक कि जब एक बाग़ी गोरी पलटन श्रीरंगपट्टन के बाग़ियों से मिलने के लिए चित्तलद्रुर्ग से श्रीरंगपट्टन जा रही थी, मार्ग में एक दूसरी किन्तु राजभक्त गोरी पलटन के साथ उसकी मुठभेड़ हो गई और दोनों ने एक दूसरे के ऊपर गोलियां चलाईं। भारतवासियों पर इस घटना का बहुत ही अहितकर प्रभाव पड़ने का डर था।

फ़ौरन गोरे सिपाहियों को समझाने और उनकी शिकायतें दूर करने लार्ड मिण्टो स्वयं मद्रास पहुंचा और अनेक बड़े-बड़े अंगरेज़ अफ़सरों को इसी काम के लिए प्रान्त की विविध छावनियों में भेजा गया। मामला किसी तरह शान्त हो गया। एक यूरोपीयन लेखक इस बग़ावत के सम्बन्ध में लिखता है—

"यह बग़ावत एक बड़े नाज़ुक समय में हुई। सतलुज के इस पार के लोग मराठे और बुन्देलखण्ड वाले अभी तक क़ाबू में न आए थे। यदि रणजीतसिंह उस समय सतलुज पार कर मराठों के देश और बुन्देलखण्ड से होता हुआ बंगाल पहुंच जाता तो निस्सन्देह अंगरेज़ों की सत्ता फिर से उन्हीं सीमाओं के अन्दर परिमित हो जाती जो लार्ड क्लाइव के समय में थी। किन्तु मद्रास के बाग़ियों ने शीघ्र इस खतरे को अनुभव कर लिया और वे खुद अपनी-अपनी जगह लौट आए ××× और गवर्नमेण्ट इतनी निर्बल थी कि उसने एक भी अफ़सर को गोली से न उड़ाया।"*

गैर ईसाई काले सिपाहियों की समय-समय की बग़ावतों को शान्त करने के लिए अंगरेज़ों ने इस देश में जिस तरह के उपायों का उपयोग किया है, गोरे सिपाहियों की इस बग़ावत को शान्त करने में उस तरह के उपायों का उपयोग नहीं किया गया। न एक भी गोरे अफ़सर को फ़ांसी दी गई और न किसी को तोप के मुंह से उड़ाया गया।

---

* "......This happened at a critical period. If Ranjit Singh had then crossed the Sutlaj, the Marathas and Bundelkhand, which were not then reduced to submission, and marched to Bengal, the British power would no doubt have re-entered into the limits conquered by Lord Clive;—but the revolted of Madras soon perceived the danger and returned of themselves to their duty......and the Government had the weakness not to shoot a single officer."—M. Victor Jacquemont's *Letters from India*, vol. i, pp. 323-24.

उन्तीसवां अध्याय

भारत के उद्योगधन्धों का सर्वनाश

मार्क्विस आफ़ हेस्टिंग्स

लार्ड मिण्टो के बाद मार्क्विस आफ़ हेस्टिंग्स भारत का गवर्नर जनरल हुआ। 14 अप्रैल, सन् 1813 को इंगलिस्तान से चल कर 11 सितम्बर, सन् 1813 को हेस्टिंग्स भारत पहुंचा। गवर्नर जनरल के साथ-साथ कम्पनी की सेनाओं के कमाण्डर-इन-चीफ का पद भी हेस्टिंग्स को ही दिया गया। 19वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में तीन अंगरेज़ गवर्नर जनरलों ने हिन्दोस्तान के अन्दर अंगरेज़ी साम्राज्य को विस्तार देकर उसकी नीवों को पक्का किया——वेल्सली, हेस्टिंग्स और डलहौज़ी। इन तीनों में मार्क्विस आफ हेस्टिंग्स का समय एक तरह सब से अधिक महत्वपूर्ण था। इस समय से ही भारत के प्राचीन उद्योगधन्धों को नष्ट करना और भारत के धन से इंगलिस्तान के उद्योगधन्धों को उन्नति देना अंगरेज़ों की भारतीय नीति का एक विशेष अंग बन गया।

भारत का प्राचीन व्यापार

अंगरेज़ों के भारत आने से हज़ारों साल पहले भारत के बने हुए कपड़े और दूसरा माल भारत के वने हुए हज़ारों जहाज़ों में लद कर चीन, जापान, लंका, ईरान, अरब, कम्बोदिया, मिस्र, अफ्रीका, इटली, मेक्सिको आदि संसार के सब सभ्य देशों में जाकर विकता था। अंगरेज़ों के आने के सैकड़ों साल बाद तक भी उद्योगधन्धों की निगाह से भारत संसार का सबसे अधिक उन्नत देश माना जाता था।

19वीं शताब्दी के प्रारम्भ तक, जब कि हिन्दोस्तान का बना हुआ तरह-तरह का माल और विशेषकर हिन्दोस्तान के वने हुए सुन्दर कपड़े इंगलिस्तान में जाकर विकते थे और खूब पसन्द किए जाते थे, इंगलिस्तान के बने हुए कपड़े भारत में लाकर बेचने का अंगरेज शायद स्वप्न में भी विचार न कर सकते थे। सुप्रसिद्ध अंगरेज़ इतिहासज्ञ लैकी लिखता है कि सन् 1688 की अंगरेज़ी राज्य-क्रान्ति के पश्चात् जब मलका मेरी अपने पति के साथ इंगलिस्तान आई, तो "भारतवर्ष के रंगीन कपड़ों का शौक़ उसके साथ आया, और तेजी के साथ हर श्रेणी के अंगरेज़ों में फैलता गया।"* और आगे चलकर लैकी लिखता है कि "17वीं शताब्दी के अन्त में बहुत बड़ी तादाद में हिन्दोस्तान की सस्ती और नफ़ीस कैलिको मलमल और छीटें इंगलिस्तान में आती थीं और इतनी पसन्द की जाती थीं कि इंगलिस्तान के ऊनी और रेशमी कपड़ा बनाने वालों को उनसे बड़ा खतरा हो गया।†

---

* "A passion for coloured East Indian calicoes, which speedily spread through all classes of the community."—Leckey's *History of England in the Eighteenth Century*, vol. ii, p. 158.

† "At the end of the seventeenth century great quantities of cheap and graceful Indian calicoes, muslins, and chintzes were imported into England, and they found such favour that the woolen and silk manufacturers were seriously alarmed."—Ibid, vol. vii, pp. 255-56.

उस समय तक के भारत के अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के विषय में प्रसिद्ध अंगरेज़ इतिहासज्ञ डाक्टर राबर्टसन सन् 1817 में लिखता है—

> "हर युग में सोना और चांदी और विशेष कर चांदी दूसरे मुल्कों से हिन्दोस्तान में भेजी जाती थी जिससे हिन्दोस्तान को बहुत बड़ा लाभ था। पृथ्वी का कोई और भाग ऐसा नहीं है जहां के लोग अपने जीवन की आवश्यकताओं या अपने ऐश आराम की चीजों के लिए दूसरे देशों पर इतना कम निर्भर हों। ईश्वर ने भारतवासियों को अत्यन्त उपयुक्त जलवायु दी है, उनकी भूमि अत्यन्त उपजाऊ है, और इस पर वहां के लोग अत्यन्त दक्ष कारीगर हैं; × × × इन सब बातों के कारण हिन्दोस्तानी अपनी समस्त इच्छाओं को पूरा कर सकते हैं। नतीजा यह है कि बाहरी संसार के साथ उनकी सदा एक ही ढंग की तिजारत होती रही है, और उनके यहां के अद्भुत, प्राकृतिक और हाथ के बने हुए माल के बदले में क़ीमती धातुएं उन्हें मिलती रही हैं।"*

इंगलिस्तान और भारत के माल की तुलना

यही लेखक एक दूसरे स्थान पर लिखता है कि हज़रत ईसा के जन्म के समय से लेकर उन्नीसवीं सदी के शुरू तक भारत के साथ दूसरे देशों का व्यापार बराबर के इसी ढंग का बना रहा।† 18वीं सदी के उत्तरार्द्ध तक इंगलिस्तान के उद्योग धन्धे भारत के मुक़ाबले में बहुत ही पिछड़े हुए थे। इंगलिस्तान के जुलाहे और दूसरे कारीगर सुन्दरता, मजबूती, सस्तेपन या निकासी, किसी बात में भी अपने माल की तुलना भारतीय माल के साथ न कर सकते थे। उस समय तक जो यूरोपीय व्यापारी भारत पहुंचे उन सब का उद्देश्य केवल भारत का बना हुआ माल अपने देशों को ले जाना होता था। यही उद्देश्य ईस्ट इण्डिया कम्पनी का भी था।

बंगाल की लूट

प्लासी के युद्ध के बाद, बंगाल की लूट के प्रताप से अंगरेज़ों को भारत का माल मुफ़्त में या कौड़ियों के दाम मिलने लगा और बंगाल, कर्नाटक, अवध और दूसरे प्रान्तों से ख़ज़ाने लद-लद कर इंगलिस्तान जाने लगे। इस अपूर्व लूट के कारण इंगलिस्तान के पिछड़े हुए उद्योगधन्धों को उन्नति करने का अवसर मिला। ‡ बेन्स नामक एक यूरोपीय लेखक लिखता है कि सन् 1760 तक

---

* "In all ages, gold and silver, particularly the latter, have been the commodities exported with the greatest profit to India. In no part of the earth do the natives depend so little upon foreign countries, either for the necessaries or luxuries of life. The blessings of a favourable climate and a fertile soil augmented by their own ingenuity, afford them whatever they desire. In consequence of this, trade with them has always been carried on in one uniform manner, and the precious metals have been given in exchange for their peculiar production, whether of nature or art."—*A Historical Disquisition Concerning India*. New edition (London 1817), p. 180.

† Ibid, p. 203.

‡ *The Law of Civilization and Decay*, by Brooks Adams, pp. 263-64.

इंगलिस्तान में सूत कातने इत्यादि के यन्त्र अत्यन्त प्रारम्भिक और अनगढ़ थे। वाट नामक अंग्रेज ने सन् 1768 में पहली बार उस देश में भाप की शक्ति (स्टीम पावर) से चलने वाले स्टीम इंजन की ईजाद की। बंगाल की लूट के धन ने इस तरह की ईजादों को सफल होने का मौक़ा दिया। ब्रुक्स ऐडम्स लिखता है कि—"यदि वाट 50 साल पहले पैदा हुआ होता तो वह और उसकी ईजाद, दोनों साथ ही मर जाते। शायद दुनिया के शुरू से अब तक, कभी भी किसी भी पूंजी से इतना लाभ नहीं उठाया गया, जितना भारतवर्ष की लूट से, क्योंकि क़रीब 50 साल तक इंगलिस्तान का कोई मुक़ाबला करने वाला न था। × × × 1760 और 1815 के बीच (इंगलिस्तान के उद्योगधन्धों ने) बड़ी तेजी के साथ और आश्चर्यजनक उन्नति की।"*

अन्दाज़ा लगाया गया है कि प्लासी से, वाटरलू तक यानी सन् 1757 से 1815 तक क़रीब एक हजार मिलियन पौंड यानी 15 अरब रुपया शुद्ध लूट का भारत से इंगलिस्तान पहुंचा।† यानी, 58 वर्ष तक 25 करोड़ रुपया सालाना कम्पनी के मुलाजिम भारतवासियों से लूट कर अपने देश ले जाते रहे। निस्सन्देह संसार के इतिहास में इस भयंकर लूट की दूसरी मिसाल नहीं मिल सकती। स्वयं भारत के अन्दर इस लूट के मुकाबले में महमूद ग़ज़नवी और मोहम्मद ग़ोरी के प्रसिद्ध हमले केवल गुड़ियों के खेल थे। हमें यह भी याद रखना चाहिए कि उस समय के एक रुपये और आजकल (1929) के एक रुपय में कम से कम दस और एक का अन्तर है। इस भयंकर लूट ने ही ब्रुक्स ऐडम्स के अनुसार इंगलिस्तान की नयी ईजादों को फैलने और वहां के कारखानों को जन्म लेने का अवसर दिया।

नेपोलियन की जीत का इंगलिस्तान पर असर

19वीं शताब्दी के शुरू में यूरोप की हालत बदली। फ्रान्स के जगत्प्रसिद्ध विजेता नेपोलियन बोनापार्ट का प्रभाव समस्त यूरोपियन महाद्वीप पर फैल गया। महाद्वीप की प्रायः समस्त राजशक्तियां नेपोलियन के इशारे पर चलने लगीं। केवल इंगलिस्तान, जिसे अपने भारतीय साम्राज्य के निकल जाने का डर था, नेपोलियन के विरुद्ध डटा रहा। नेपोलियन को गिराने के लिए यूरोप की विविध राजशक्तियों के साथ साजिशें करने में और यूरोप के शासकों को बड़ी-बड़ी रिश्वत देने में इंगलिस्तान ने पानी की तरह धन बहाया। इंगलिस्तान के पास उस समय इतना अधिक धन नहीं था। धन कमाने का मुख्य उपाय अंगरेज़ों के हाथों में व्यापार था। नेपोलियन ने समस्त यूरोपीय महाद्वीपों में इंगलिस्तान से माल का आना जाना बन्द कर दिया, जिससे इंगलिस्तान के व्यापार को बहुत बड़ी हानि पहुंची। नेपोलियन का मुकाबला करने के लिए इस हानि को पूरा

---

* "......had Watt lived fifty years earlier, he and his invention must have perished together. Possibly since the world began, no investment has ever yielded the profit reaped from the Indian plunder, because for nearly fifty years Great Britain stood without a competitor......Between 1760 and 1815 the growth was very rapid and prodigious."—*The Law of Civilization and Decay,* pp. 263-64.

† *Prosperous British India,* by William Digby, C.I.E., p. 33.

करना आवश्यक था और हानि के पूरा करने के लिए भारत के सिवा अंगरेज़ों को दूसरा देश उस समय नज़र न आ सकता था।

सन् 1813 का चार्टर एक्ट

ईस्ट इण्डिया कम्पनी इंगलिस्तान की पार्लियामेण्ट के क़ानून द्वारा क़ायम हुई थी। कम्पनी के अधिकारों को जारी रखने के लिए पार्लियामेण्ट को हर बीस वर्ष के बाद नया क़ानून पास करना पड़ता था, जिसे 'चार्टर एक्ट' कहते थे। सन् 1813 के 'चार्टर एक्ट' के समय से इंगलिस्तान का बना हुआ माल भारतवासियों के सिर मढ़ने और भारत के प्राचीन उद्योगधन्धों का नाश करने के विधिवत् प्रयत्न शुरू हुए। यहां तक कि सन् 1813 के इस 'चार्टर एक्ट' को ही बाद के भारत की भयंकर दरिद्रता और असहायता का मूल कारण कहा जा सकता है।

व्यापार के नाम पर अत्याचार

किन्तु इस नए क़ानून और उसके नतीजों को पूरी तरह समझने से पहले यह आवश्यक है कि हम भारत के अन्दर ईस्ट इण्डिया कम्पनी के उस समय तक के व्यापार के वास्तविक रूप को जान लें। कम्पनी अपने व्यापार में जिस तरह के अन्याय और अत्याचार करती थी उसकी दो चार प्रामाणिक मिसालें नीचे दी जाती हैं——

रिचर्ड्‌स नामक एक अंगरेज़ ने सूरत की अंगरेज़ी कोठी के रोज़नामचे के कुछ घटनाएं उद्धृत की हैं, जो उसने सन् 1813 में पुस्तकाकार प्रकाशित कीं, जिनसे मालूम होता है कि सन् 1796 और सन् 1811 के बीच सूरत में कम्पनी व्यापार का ढंग किस प्रकार का रहा। वह लिखता है——

> **"जो कपड़ा सूरत से विलायत भेजा जाता था वह अत्यन्त कड़े और निष्ठुर अत्याचारों द्वारा वसूल किया जाता था। जुलाहों को उनकी इच्छा और हित, दोनों के विरुद्ध कम्पनी से काम का ठेका लेने और उस ठेके के अनुसार काम कर देने के लिए मजबूर किया जाता था। कभी-कभी जुलाहे इस तरह जबरन काम करने की अपेक्षा भारी जुर्माना दे देना अधिक पसन्द करते थे। कम्पनी अपने नमूने के अनुसार या बढ़िया माल के लिए जुलाहों को जो दाम देती थी उससे कहीं घटिया माल के लिए डच, पुर्तगाली, फ्रान्सीसी और अरब सौदागरों से उन जुलाहों को ज्यादा दाम मिल सकते थे××× कम्पनी का व्यापारी रेजिडेण्ट साफ़ कहता था कि कम्पनी का उद्देश्य यह है कि कम या निश्चित दामों पर थान खरीद कर कपड़े की पूरी तिजारत का ठेका कम्पनी अपने ही हाथों में रखे। इस उद्देश्य को पूरा करने के लिए इतनी ज़बरदस्ती की जाती थी और इतनी अधिक सजाएं दी जाती थीं कि अनेक जुलाहों ने मजबूर होकर अपना पेशा तक छोड़ दिया। इस बात को भी रोकने के लिए कि कोई जुलाहा अपना पेशा न छोड़नें पाए, यह नियम कर दिया गया कि किसी जुलाहे को फ़ौज में भरती न किया जाए। एक बार यह भी हुकुम दे दिया गया कि कोई जुलाहा बिना अंगरेज़ अफ़सर की इजाज़त के शहर के दरवाजों से बाहर न निकल सके। जब तक जुलाहे सूरत के नवाब की प्रजा थे, उन्हें दण्ड देने और उन पर दबाव डालने के लिए नवाब को बार-बार अर्जियां**

दी जाती थीं × × × नवाब अंगरेज सरकार के हाथों में केवल एक कठपुतली था × × × आस पास के देशी नरेशों पर भी जोर दिया जाता था कि वे अपने इलाक़ों में इस बात का हुकुम दे दें कि कपड़ों के थान केवल अंगरेज कम्पनी के सौदागरों और दलालों के हाथ ही बेचे जाएं और कदापि किसी दूसरे के हाथ न बेचे जाएं। इसके बाद जब सूरत अंगरेजी अमलदारी में मिला लिया गया तब इसी तरह के अन्यायों और अत्याचारों को जारी रखने के लिए बार-बार अंगरेजी अदालतों का उपयोग किया जाता था। जब तक कम्पनी सूरत में कपड़े का व्यापार करती रही तब तक कम्पनी के मुलाज़िमों का काम करने का ढंग बिल्कुल इसी तरह का रहा। ठीक इसी ढंग से दूसरी कोठियों का भी व्यापार चलता था।"*

लार्ड वेल्सली ने 19 जुलाई, सन् 1814 को मद्रास गवर्नमेण्ट के नाम एक पत्र लिखा, जिससे विस्तार से पता चलता है कि मद्रास प्रान्त की समस्त अंगरेजी कोठियों में भी ये सब अत्याचार ठीक इसी तरह जारी थे।

सन् 1793 का कानून

बंगाल में भी इसी तरह जुलाहों को जबरदस्ती पेशगी रुपये देकर पहले से उनका माल ख़रीद लिया जाता था। सन् 1793 में बंगाल की अंगरेज सरकार ने एक क़ानून पास किया जिसके अनुसार कोई मनुष्य जिसे कम्पनी का कुछ भी धन देना हो या जो किसी तरह कम्पनी के कपड़े के व्यापार से सम्बन्ध रखता हो, न कभी कम्पनी का काम छोड़ सकता था, न किसी दूसरे के लिए काम कर सकता था और न ही स्वयं अपने लिए काम कर सकता था। इस छोटे से नियम ने

---

* "That the Surat investment was provided under the most rigorous and oppressive system of coercion; that the weavers were compelled to enter into engagements and to work for the Company, contrary to their own interests, and of course to their own inclinations choosing in some instances to pay a heavy fine rather than be compelled so to work; that they could get better prices from Dutch, Portuguese, French and Arab merchants for inferior goods, than the Company paid them for standard or superior goods, ...that the object of the commercial resident was, as he himself observed, to establish and maintain the complete monopoly......of the whole of piece goods trade at reduced or prescribed prices; that in the prosecution of this object compulsion and punishment were carried to such a height, as to induce several weavers to quite the profession; to prevent which, they were not allowed to enlist as Sepoys, or even on one occasion to pass out of city gates without permission from the English chiefs; that so long as the weavers were the subjects of the Nawab frequent application was made to him to punish and coerce weavers, ...the Nawab who was but a tool in the hands of the British Government...... Neighbouring Princes were also prevailed on to give orders in their districts, that the Company's merchants and brokers should have a preference to all others, and that on no account should piece goods be sold to other persons; that subsequently to the transfer of Surat to the British Government, the authority of the Adalat (our own Court of Justice) was constantly interposed to enforce a similar series of arbitrary and oppressive acts.

"As long as the Company continued to trade in piece goods at Surat this was the uniform practice of their commercial servants. It may be taken as a specimen of the practice of other factories......"—As quoted in *The Ruin of Indian Trade and Industries,* by Major B. D. Basu, pp. 78, 79.

देश भर में प्रत्येक जुलाहे को कठोर से कठोर अर्थों में कम्पनी का आजीवन गुलाम बना दिया। यदि कोई कारीगर अपना वादा पूरा न कर सकता था तो उसे हवालात में बन्द कर दिया जाता और उसका सब माल, कच्चा और तैयार, कम्पनी के नाम ज़ब्त कर लिया जाता था। इस बात की भी बिलकुल परवाह न की जाती थी कि वह किसी दूसरे का भी कर्ज़दार है या नहीं।

रेशम के कारीगरों के साथ अत्याचार

बंगाल के जिन ज़िलों में अंगरेज़ कम्पनी की रेशम की कोठियां थीं, उनमें कम से कम सन् 1829 तक प्रजा के ऊपर इससे भी अधिक अत्याचार होते रहे। सूरत की कोठी का सा पूरा ढंग वहां बर्ता जाता था। इसके अतिरिक्त सन् 1827 में बंगाल भर के अन्दर रेशम के दाम बढ़ गए। अंगरेज़ शासकों ने कम्पनी के रेशम ख़रीदने वाले गुमाश्तों को हुकुम दिया कि बिना रेशम के कारीगरों से पूछे या उनके हित का ख़याल किए, दाम घटा कर नियत कर दिए जाएं।*

हेनरी गूगर नामक एक अंगरेज़ बंगाल के अन्दर कम्पनी के रेशम के व्यापार के इस ढंग को इस तरह बयान करता है—

> "जिन ज़िलों में रेशम तैयार होती थी उनमें जगह-जगह ईस्ट इण्डिया कम्पनी के व्यापारी रेजिडेण्ट रहते थे। आम तौर पर ये रेजिडेण्ट जितनी ज्यादा रेशम कम्पनी के लिए जमा कर सकते थे उतनी ही ज्यादा उनकी आमदनी होती थी × × ×।
>
> "दोनों ओर से कार्रवाई इस तरह होती थी —हर फ़सल (बन्द) से पहले दो तरह के लोगों को पेशगी रुपया दिया जाता था; एक काश्तकारों को जो रेशम के कीड़े पालते थे और दूसरे उन कारीगरों को जो रेशम लपेटने का काम करते थे। इन कारीगरों की तादाद बहुत थी और आस-पास के गांवों में अधिकतर इन्हीं की आबादी थी। काश्तकारों को पेशगी देकर कच्चा माल निश्चित कर लिया जाता था, कारीगरों को पेशगी देकर उनकी लपेटने की मेहनत के बारे में कम्पनी पहले से निश्चिन्त हो जाती थी× × ×।
>
> "× × × मैं इस तरह की एक घटना बयान करता हूं जिस तरह की घटनाएं रोज़ हुआ करती थीं।"
>
> "एक हिन्दोस्तानी काश्तकार अपने उस फ़सल के पले हुए कीड़े मेरे हाथ बेचना चाहता है और मुझसे कुछ पेशगी ले जाता है। इसी तरह एक गांव भर के रेशम लपेटने वाले मिल कर मुझसे पेशगी ले जाते हैं (मुझ से मतलब यहां पर ईस्ट इण्डिया कम्पनी को छोड़ कर किसी बाहरी सौदागर से है)। इस सौदे के पक्का हो जाने के बाद, कम्पनी के रेजिडेण्ट के दो नौकर उस गांव में पहुंचते हैं; एक के हाथ में रुपयों की एक थैली, दूसरे के हाथ में एक रजिस्टर—जिसमें रुपया पाने वालों के नाम लिख जाते हैं। जिस आदमी को रुपया दिया जाता है, वह लेने

---

* Mr. Saunder's evidence in March, 1831, before the Parliamentary Committee.

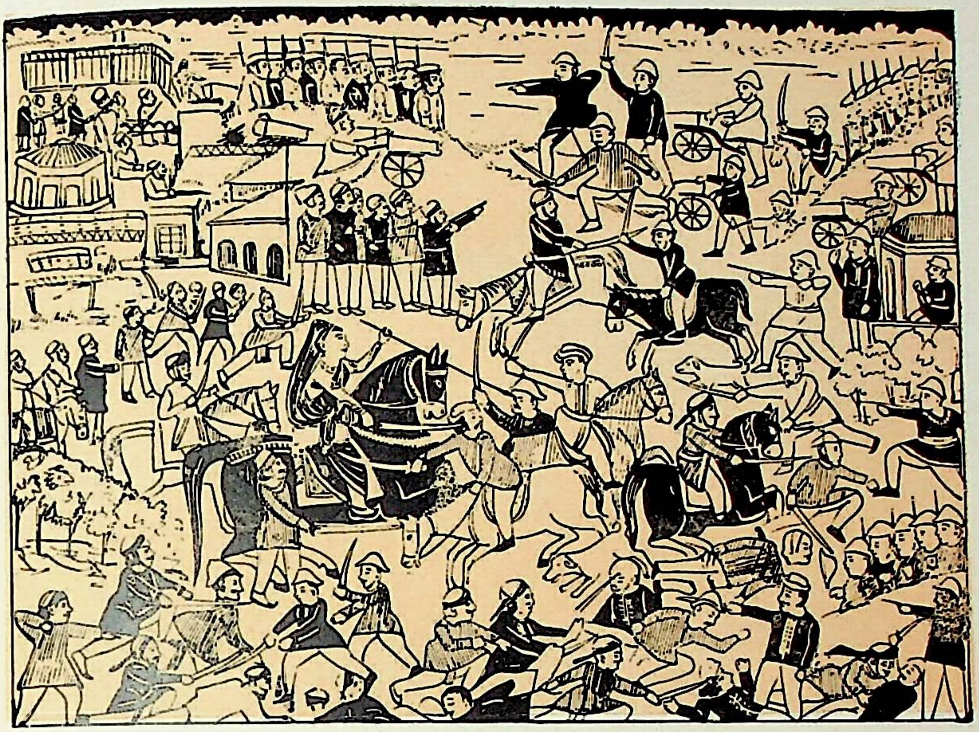

झांसी के संग्राम में अंगरेजी सेना का मुकाबला करती हुई रानी लक्ष्मीबाई

वीरवर कुंवरसिंह

तात्या टोपे

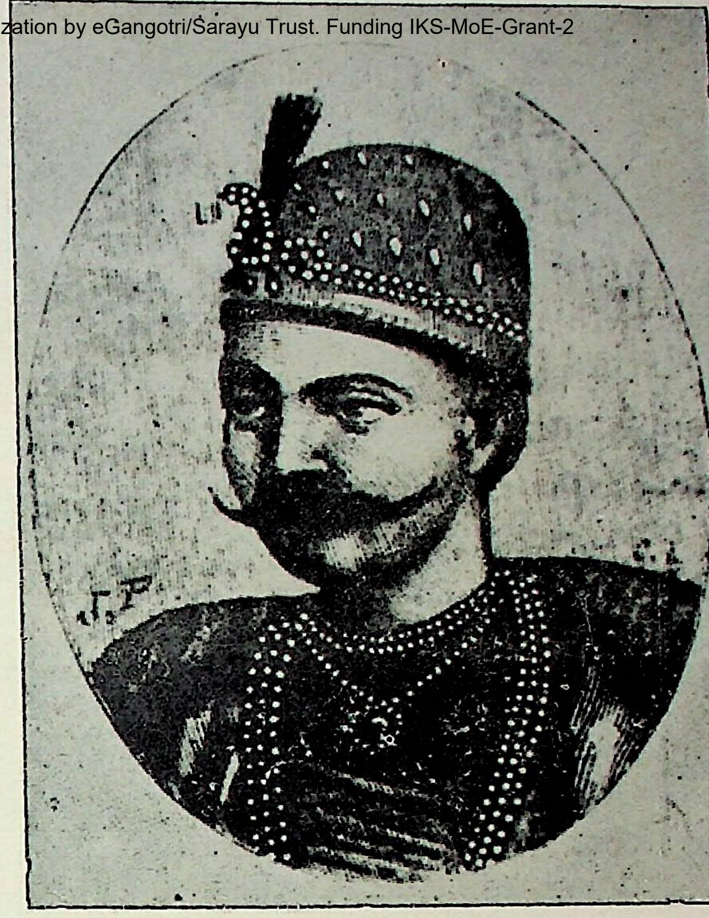

महारानी लक्ष्मीबाई की समाधि

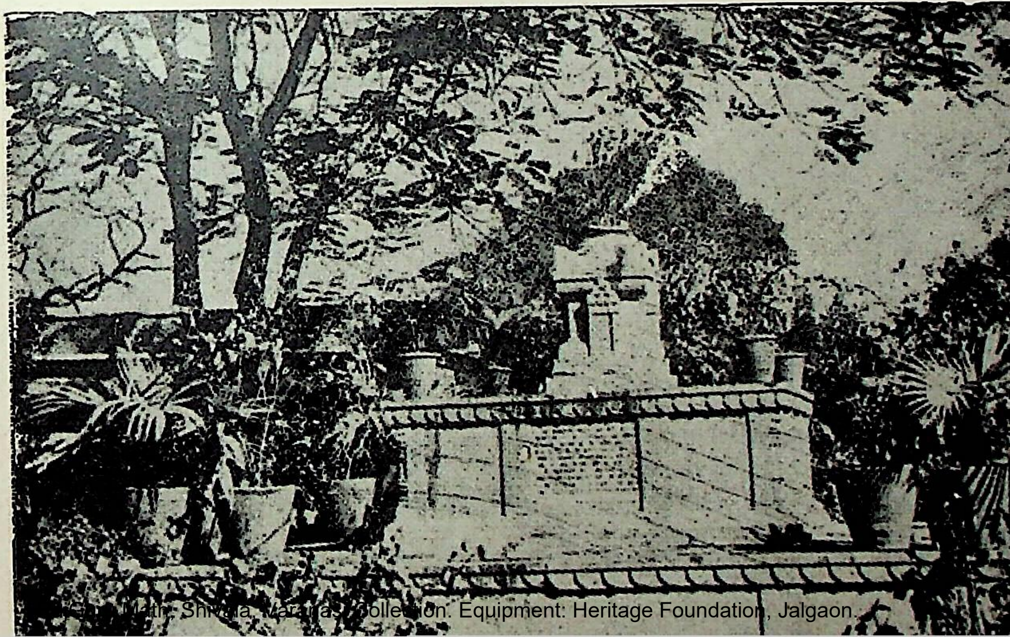

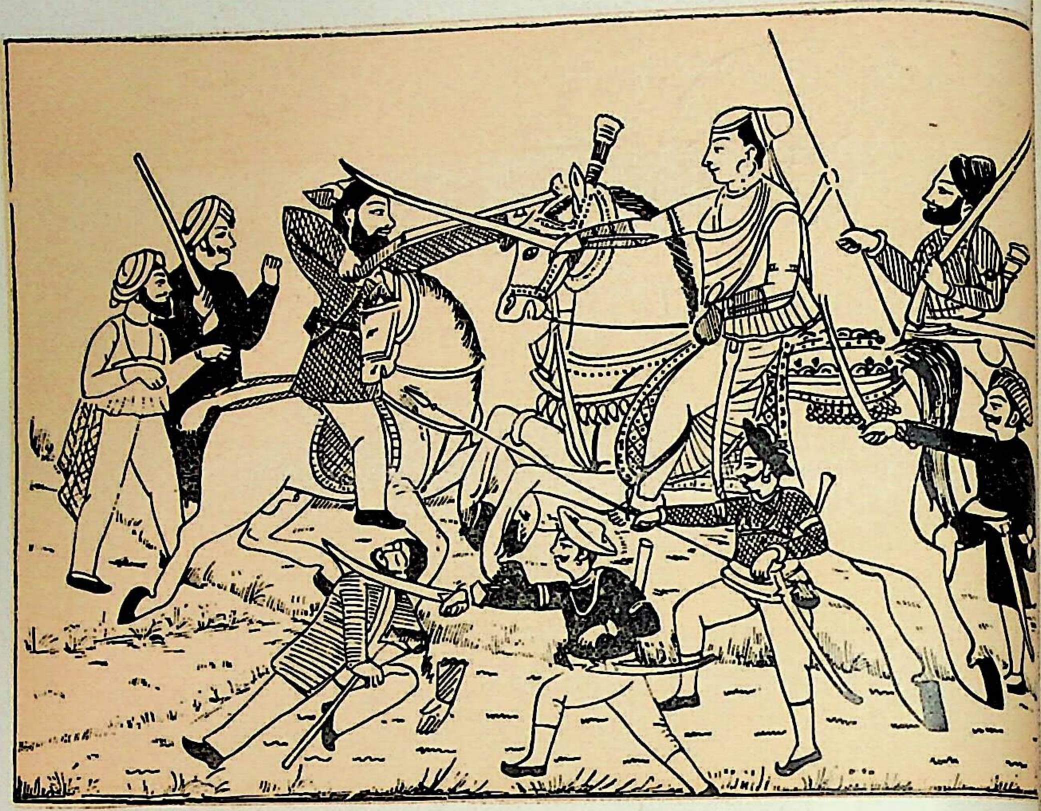

महारानी लक्ष्मीबाई का अन्तिम युद्ध

से इनकार करता है और कहता है कि मैं पहले से अमुक आदमी के साथ सौदा पक्का कर चुका हूं, किन्तु उसकी एक नहीं सुनी जाती यदि वह धन लेने से इनकार करता रहता है तो एक रुपया उसके मकान में फेंक दिया जाता है, उसका नाम रजिस्टर में लिख लिया जाता है, जो आदमी थैली लाया था उसकी गवाही करा ली जाती है और समझा जाता है कि जाब्ते की कारवाई हो गई। इस जुल्म द्वारा रेज़िडेण्ट को अधिकार है कि वह मेरा माल और मेरे कारीगरों को जबरदस्ती मेरे दरवाजे से छीन ले जाए, और वह छीन ले जाता है।

"यह जुल्म यहां पर ही खत्म नहीं होता। यदि मैं अपने रुपये की वापसी के लिए उस आदमी पर अदालत में दावा करता हूं तो जज का फ़र्ज है कि मेरे हक में डिगरी देने से पहले रेजिडेण्ट से यह पता लगा ले कि क़र्जदार को कम्पनी का तो कुछ रुपया नहीं देना होता है। यदि देना है तो पहले रेजिडेण्ट के हक़ में डिगरी मिलती है, और मुझे अपने रुपये से हाथ धोना पड़ जाता है।"*

आगे चल कर हेनरी गूगर लिखता है कि माल की कीमत तय करने का पूरा अधिकार रेज़िडेण्ट को होता है।

जुलाहों पर अनसुने अत्याचार

सिराजुद्दौला के समय से लेकर बंगाल के अन्दर कम्पनी का यह प्रयत्न बराबर

---

* "The East India Company......had their commercial residents established in the different parts of the silk districts, whose emoluments mainly depended on the quantity of silk they secured for the Company......

"The system pursued by both parties was thus:—Advances of money before each bund or crop were made to two classes of persons—first, to the cultivators who reared the cocoons; next, to the large class of winders who formed the mass of the population of the surrounding villages. By the first the raw material was secured; by the last the labour for working it......

"......I will state a case of every-day occurrence.

"......A native wishing to sell me the cocoons he produces for the season takes my advance of money; a village of winders does the same. After this contract is made, two of the Resident's servants are despatched to the village, the one bearing a bag of rupees, the other a book in which to register the names of the recipients. In vain does the man to whom the money is offered protest that he has entered into a prior engagement with me. If he refuses to accept it, a rupee is thrown into his house, his name is written before the witness who carries the bag, and that is enough. Under this iniquitous proceeding the Resident, by the authority committed to him, forcibly seizes my property and my labourers even at my door.

"Nor does the oppression stop here. If I sued the man in court for repayment of the money I had been defrauded of, the judge was compelled, before granting a decree in my favour, to ascertain from the commercial Resident whether the defaulter was in debt to the East India Company. If he was, a prior decree was given to the Resident, and I lost my money."—*A Personal Narrative of Two Years Imprisonment in Burma* 1824-26, by Henry Gouger, p. 2.

जारी था कि देश का सारा व्यापार कम्पनी के ही हाथों में आ जाए। बोल्ट्स नामक एक प्रसिद्ध अंगरेज़, जिसकी पुस्तक प्लासी के युद्ध से केवल दस साल बाद प्रकाशित हुई थी, इस प्रयत्न के परिणामों को इस तरह बयान करता है—

"इस उद्देश्य को पूरा करने के लिए देश के ग़रीब कारीगरों और मजदूरों के ऊपर इस तरह के अत्याचार और अन्याय किए गए हैं, जिनका अनुमान तक नहीं किया जा सकता। वास्तव में इन कारीगरों और मजदूरों के ऊपर कम्पनी नें इस तरह अपना अनन्य अधिकार जमा रखा है मानो वे सब कम्पनी के खरीदे हुए गुलाम हैं × × × गरीब जुलाहों को सताने के अनेक और असंख्य तरीके हैं और देश के अन्दर कम्पनी के एजेण्ट और गुमाश्ते इन तरीकों का आए दिन उपयोग करते रहते हैं। उदाहरण के लिए जुर्माने करना, क़ैद कर देना, कोड़े मारना, जबरदस्ती इक़रारनामे लिखवा लेना, वग़ैरा वग़ैरा। इन सबका नतीजा यह है कि देश के अन्दर बुनकरों की तादाद बेहद कम हो गई है। × × × इसलिए जो बुनकर अपनी मेहनत का उचित मूल्य लेने की इच्छा रखता है वह प्रायः निजी तौर पर अपना कपड़ा दूसरों के हाथ बेचने की कोशिश करता है। × × × इस पर अंगरेज़ कम्पनी का गुमाश्ता जुलाहे पर निगाह रखने के लिए अपने सिपाही नियुक्त करा देता है और बहुधा ज्योंही थान पूरा होनें के करीब आता हैं, ये सिपाही थान को जबरदस्ती करघे में से काट कर निकाल लेते हैं। × × × देश भर के अन्दर हर मज़हब के कारीगरों के साथ हर तरह का अत्याचार प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है; यहां तक कि कोई बुनकर यदि अपना माल किसी दूसरे को बेचने का साहस करता है और दलाल या पैकर यदि इस तरह की बिकरी में मदद देता है, या उससे आंख बचा जाता है, तो कई बार ऐसा हो चुका है कि कम्पनी के एजेण्ट उन सब को पकड़ कर क़ैद कर लेते हैं, उनको बेड़ियां और हथकड़ियां डाल देते हैं, उनसे बड़ी बड़ी रक़में जुरमाने की वसूल करते हैं, उनको कोड़े लगाते हैं और अत्यन्त लज्जाजनक तरीक़ों से उनसे वह चीज भी छीन लेते हैं जिसे वे सबसे अधिक क़ीमती समझते हैं, यानी उन्हें जातिभ्रष्ट (धर्मभ्रष्ट) कर देते हैं। × × × कम्पनी के गुमाश्तों द्वारा इस तरह के अत्याचार सिराजुद्दौला के समय से, अंगरेज़ कम्पनी की सत्ता बढ़नें के साथ-साथ शुरू हुए × × × सिराजुद्दौला के समय में जंगल बाड़ी के इलाके के आसपास के बुनकरों के सात सौ से ऊपर कुटुम्बों ने इस तरह के अत्याचारों से दुखी होकर अपना धन्धा और अपना देश, दोनों को एक साथ छोड़ दिया × × × बंगाल में, लार्ड क्लाइव के पिछले शासन में, इस जोश में कि कम्पनी की कच्ची रेशम की आमदनी को बढ़ाया जाए, रेशम के लपेटने वालों को सताने में मानव समाज के पवित्रतम नियमों का घोर उल्लंघन किया गया। × × ×"*

---

*"To effect this, inconceivable oppressions and hardships have been practised towards the poor manufacturers and workmen of the country, who are, in fact, monopolised by the Company as so many slaves......Various and innumerable are the methods of oppressing the poor weavers, which are daily practised by the Company's agents and gomashtas in the country; such as by fines, imprisonments, flouggings, forcing bonds from them, etc., by which the

विद्वान लेखक ने सम्भवत: लज्जा या शालीनता के विचार से, यह साफ़ नहीं लिखा कि बंगाल के बुनकरों को किस तरह "जातिभ्रष्ट" किया जाता था या "मानव समाज के" किन "पवित्रतम नियमों" का और किस तरह "घोर उल्लंघन" किया जाता था।

एक दूसरे स्थान पर यही लेखक लिखता है—

जुलाहों का अपने अंगूठे काटना

> "यदि हिन्दोस्तानी जुलाहे उतना काम पूरा नहीं कर सकते जितना कम्पनी के गुमाश्ते ज़बरदस्ती उन पर मढ़ देते हैं, तो कमी को पूरा करने के लिए उनका माल असबाब लेकर उसी जगह पर नीलाम कर दिया जाता है; और कच्चे रेशम के लपेटने वालों के साथ इतना अधिक अन्याय किया गया है कि इस तरह की मिसाल देखी गई है जिनमें उन्होंने स्वयं अपने अंगूठे तक काट डाले, ताकि फिर कोई उन्हें रेशम लपेटने के लिए विवश न कर सके।" *

रेशम लपेटने का काम बिना अंगूठे के नहीं हो सकता था।

बच्चे बेचकर लगान अदा करना

कम्पनी के भारतीय इलाक़े में यह सलूक तो बुनकरों और कारीगरों के साथ होता था। अब रहा किसानों के साथ सलूक, वह इससे भी कहीं बदतर था। यही लेखक एक स्थान पर लिखता है कि कम्पनी के व्यापारी गुमाश्ते माल के लिए रैयत को इतना दिक़ करते थे कि किसान अपनी भूमि को ठीक रखने और सरकारी लगान देने

---

number of weavers in the country has been greatly decreased......The weaver, therefore, desirous of obtaining the just price of his labour frequently attempts to sell his cloth privately to others,......This occasions the English Company's gomashta to set his peons over the weaver to watch him and not infrequently to cut the piece out of the loom when nearly finished......therefore every kind of oppression to manufacturers of all denominations throughout the whole country has daily increased; in so much that weavers, for daring to sell their goods, and dallals and pykars for having contributed to and connived at such sales, have, by the Company's agents, been frequently seized and imprisoned, confined in irons, fined considerable sums of money, flogged and deprived in the most ignominious manner of what they esteem most valuable, their castes......It was not till the time of Serajuddowla that oppressions of the nature now described, from the employing of gomashtas, commenced with the increasing power of the English Company......in Serajuddowla's time......above seven hundred families of weavers, in the districts round Jungalbarry, at once abandoning their country and their professions on account of oppressions of this nature......winders of raw silk were pursued with such rigour during Lord Clive's late Government in Bengal, from a zeal for increasing the Company's investment of raw silk, that the most sacred laws of society were atrociously violated......"—*Considerations on Indian Affairs,* by Bolts, pp. 72, 74, 192-195.

* "......upon their inability to perform such agreements as have been forced upon them by the Company's agents,......have had their goods seized and sold on the spot to make good the deficiency; and the winders of raw silk,......have been treated also with such injustice, that instances have been known of their cutting off their thumbs to prevent their being forced to wind silk."—Ibid.

तक में असमर्थ हो जाते थे । दूसरी ओर लगान वसूल करने वाले अफ़सर उन्हें लगान के लिए इतना सताते थे कि "अनेक बार ऐसा हुआ है कि इन निर्दयी लुटेरों ने उन्हें मजबूर कर दिया कि वे लगान अदा करने के लिए या तो अपने बच्चों को बेच डालें या देश छोड़ कर भाग जाएं ।"*

इन अत्याचारों पर हरबर्ट स्पेन्सर

18वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध और 19वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध के कम्पनी के इन अत्याचारों के विषय में सुप्रसिद्ध अंगरेज तत्ववेत्ता हरबर्ट स्पेन्सर ने लिखा है—

> "कल्पना कीजिए कि उन लोगों के कारनामे कितने काले रहे होंगे जब कि कम्पनी के डाइरेक्टरों तक ने इस बात को स्वीकार किया कि—'भारत के आन्तरिक व्यापार में जो अटूट धन कमाया गया है, वह सब इस तरह के घोर अन्यायों और अत्याचारों द्वारा प्राप्त किया गया है जिनसे बढ़ कर अन्याय और अत्याचार कभी किसी देश या किसी ज़माने में भी सुनने में न आए होंगे ।"†

ऊपर के उद्धरणों से जाहिर है कि ईस्ट इण्डिया कम्पनी के शासन काल में कम्पनी की भारतीय प्रजा के जानमाल, उनकी मान-मर्यादा या उनकी 'पवित्रतम भावनाओं' किसी का ज़र्रा बराबर भी मूल्य न था । संसार के शायद किसी भी देश या किसी भी युग में प्रजा की वह भयंकर दुर्दशा न हुई होगी जो अंगरेज़ कम्पनी के शासन काल में भारतीय प्रजा की हुई ।

सन् 1813 की नयी व्यापारिक नीति

अब हम फिर सन् 1813 के नये क़ानून की ओर आते हैं । इस क़ानून के पास होने से पहले भारत और इंगलिस्तान के बीच व्यापार करने का अनन्य अधिकार ईस्ट इण्डिया कम्पनी को मिला हुआ था । सन् 1813 के क़ानून में सबसे पहली बात यही की गई कि यह अनन्य अधिकार कम्पनी से छीन लिया गया और भारत के साथ व्यापार करने का दरवाजा हर अंगरेज़ व्यापारी और हर अंगरेज़ व्यक्ति के लिए खोल दिया गया । इसका अर्थ यह था कि भारत की प्रजा के ऊपर अत्याचार करने और उन्हें हर तरह लूटने का अधिकार अब आमतौर पर सब अंगरेज़ों को दे दिया गया ।

टीरने का व्याख्यान

इसके अतिरिक्त सन् 1813 में ही पहली बार यह तय हुआ कि अब भारत के उद्योग धन्धों को नष्ट किया जाए, इंगलिस्तान के उद्योग धन्धों को बढ़ाया जाए और फिर इंगलिस्तान का बना हुआ माल जबरदस्ती भारतवासियों के सिर मढ़ा जाए । जिस समय

---

* "And not infrequently have by those harpies been necessitated to sell their children in order to pay their rents or otherwise obliged to fly the country."—Ibid.

† "Imagine how black must have been their deeds, when even the Directors of the Company admitted that 'the vast fortunes acquired in the inland trade have been obtained by a scene of the most tyrannical an oppressive conduct that was every known in any age or country'."—*Social Statics*, by Herbert Spencer, 1st edition, p. 367.

इंगलिस्तान की पार्लियामेण्ट में इस मामले पर बहस हो रही थी उस समय पार्लियामेण्ट के एक सदस्य, मिस्टर टीरने ने पार्लियामेण्ट में व्याख्यान देते हुए स्पष्ट कहा—

> "आम असूल अब से यह होगा कि इंगलिस्तान अपने यहां का बना हुआ सब माल ज़बरदस्ती भारत में बेचे और उसके बदले में हिन्दोस्तान की बनी हुई एक भी चीज़ न लें। यह सच है कि हम रुई अपने यहां आने देंगे, किन्तु जब हमें पता लग गया है कि हम मशीनों के ज़रिए हिन्दोस्तानियों की निस्बत अधिक सस्ता कपड़ा बुन सकते हैं तो हम उनसे यह कहेंगे कि 'तुम बुनने का काम छोड़ दो, हमें कच्चा माल दो और हम तुम्हारे लिए कपड़ा बुन देंगे। सम्भव है कि (इंगलिस्तान के) व्यापारियों और कारीगरों की निगाह में यह सिद्धान्त बहुत ही स्वाभाविक हो। किन्तु इसमें फ़िलासफ़ी छांटना या इस असूल के समर्थकों को खास तौर पर हिन्दोस्तान के हितचिन्तक गिनना ज़रा ज्यादती है। यदि अपने को हिन्दोस्तान के दोस्त कहने के बजाय हम अपने तईं हिन्दोस्तान के दुश्मन कहें तो समस्त हिन्दोस्तानी कारीगरी का नाश करने की इस सलाह से बढ़ कर दुश्मनी की सलाह और हम हिन्दोस्तान को क्या दे सकते हैं।"*

निस्सन्देह मिस्टर टीरने की स्पष्टवादिता सराहनीय है। केवल एक वाक्य ऊपर के उद्धरण में असत्य था। वह यह कि "हम मशीनों के ज़रिए हिन्दोस्तानियों की निस्बत सस्ता कपड़ा बुन सकते हैं।" आगे की घटनाओं से साफ़ जाहिर हो गया कि 'मशीनों' और 'भाप' की मदद से भी इंगलिस्तान के कारीगर भारत के कारीगरों के मुकाबले में सस्ता या अच्छा कपड़ा न बुन सकते थे, और यदि अनसुने महसूलों, अन्यायों, बहिष्कारों, और असंख्य राजनैतिक हथकण्डों द्वारा भारत के उद्योग धन्धों को नष्ट न किया गया होता तो भाप की ताकत के लिए इंगलिस्तान के कपड़े के कारखानों को चला सकना सर्वथा असम्भव था। अब देखना यह है कि किन-किन उपायों द्वारा अंगरेज़ों ने उस समय अपनी इस नीति को सफल बनाया।

भारतीय उद्योगधन्धों के नाश के उपाय

सन् 1813 का क़ानून पास होने से पहले पार्लियामेण्ट की दो खास कमेटियां इस बात के लिए नियुक्त की गईं कि वे हिन्दोस्तान से गए हुए सब बड़े-बड़े अंगरेज़ों की गवाहियां जमा करके इस नीति को सफल बनाने के उपाय निकालें। जितने अंगरेज़ गवाह

---

* "The general principle was to be that England was to force all her manufactures upon India, and not to take a single manufacture of India in return. It was true they would allow cotton to be brought; but then, having found out that they could weave, by means of machinery, cheaper than the people of India, they would say,—'Leave off weaving; supply us with the raw material, and we will weave for you.' This might be a very natural principle for merchants and manufacturers to go upon, but it was rather too much to talk of the philosophy of it, or to rank the supporters of it as in a peculiar degree the friend of India. If instead of calling themselves the friends of India, they had professed themselves its enemies, what more could they do than advise the destruction of all Indian manufactures?"—Mr. Tierney in the House of Commons, 1813.

इन दोनों कमेटियों के सामने पेश हुए उन्होंने एक आवाज़ से यह कहा कि हिन्दोस्तानियों को इंगलिस्तान के बने हुए किसी माल की बिल्कुल आवश्यकता नहीं है और न इंगलिस्तान का माल वहां आसानी से खपाया जा सकता है। इन असंख्य गवाहियों को यहां उद्धृत करना अनावश्यक है। जो-जो मुख्य उपाय अपनी नीति को सफल बनाने के लिए उस समय के अंगरेज़ शासकों ने तय किए उन्हें संक्षेप में इस तरह गिनाया जा सकता है—

(1) इंगलिस्तान के बने हुए माल को नाममात्र महसूल पर या बिना महसूल भारत में आने दिया जाए।

(2) भारत के बने हुए माल पर इंगलिस्तान में इतना जबरदस्त महसूल लगाया जाए कि जिससे भारत का माल वहां इंगलिस्तान के बने हुए माल के मुक़ाबले में सस्ता न बिक सके।

(3) भारत के अन्दर चुंगी के क़ायदों और चुंगी की दर में इस तरह के परिवर्तन किए जाएं जिनसे रुई इत्यादि कच्चे माल को इंगलिस्तान भेजने में आसानी हो, जिससे भारतीय कारीगरों की लागत और भारतीय व्यापारियों की कठिनाइयां बढ़ जाएं और भारत का बाजार भी भारत के माल के लिए बन्द हो जाए और अंगरेज़ी माल के लिए खुल जाए।

(4) अंगरेज़ व्यापारियों और कारीगरों को भारत में रहने और काम करने के लिए धन की सहायता और अन्य विशेष सुविधाएं दी जायें।

(5) भारतीय कारीगरों पर हर तरह का दबाव डाल कर उनकी कारीगरी के रहस्यों का पता लगाया जाए, जैसे थानों को धोना, रंगना इत्यादि, और इंगलिस्तान के व्यापारियों और कारीगरों को उन रहस्यों की सूचना दी जाय। और प्रदर्शनियों के ज़रिए भारतवासियों की आवश्यकताओं और उनकी कारीगरी के भेदों का पता लगाया जाए।

(6) माल के लाने-ले जाने के लिए भारत में रेलें जारी की जाएं।

(7) भारत की अपनी मण्डियों को पक्का करने के लिए ब्रिटिश भारतीय साम्राज्य का विस्तार किया जाए और भारत को इंगलिस्तान का गुलाम बना कर रखा जाए।

पार्लियामेण्ट की कमेटी

सन् 1830–32 में पार्लियामेण्ट की ओर से एक कमेटी नियुक्त की गई, जिसका उद्देश्य यह तहकीक़ात करना था कि ऊपर लिखे उपाय कहां तक सफल हुए और सन् 1814 से उस समय तक भारत के अन्दर इंगलिस्तान का व्यापार कहां तक बढ़ा। कमेटी के सामने अनेक गवाहों के बयान हुए। पहला प्रश्न जो हर गवाह से किया गया, यह था कि सन् 1814 से अब तक भारत के अन्दर महसूल की तबदीलियों के ज़रिए अंगरेज़ व्यापारियों को व्यापार के लिए क्या-क्या सुविधाएं दी जा चुकी हैं? इस प्रश्न के कुछ उत्तरों से प्रस्तुत विषय पर ख़ासी रोशनी पड़ती है।

अंगरेज़ी माल पर महसूल माफ़

लारपैण्ट नामक एक अंगरेज़ गवाह ने इस प्रश्न के उत्तर में कहा—

> **"इंगलिस्तान का बना हुआ जो माल हिन्दोस्तान के अन्दर आता है, उस पर महसूल घटा कर कुल क़ीमत का 2½ फ़ीसदी कर दिया गया है, और बहुत से खास-खास तरह के माल पर महसूल बिलकुल उठा दिया गया है।"**
>
> **"चुंगी की दर बदल दी गई है और कई चीज़ों पर चुंगी हटा दी गई है।"**
>
> **"जो अंगरेज़ भारत में कहवा (काफ़ी) या नील का काम करना चाहते हैं, उन्हें 60 साल के पट्टे पर ज़मीनें देने की आज्ञा दे दी गई है, इत्यादि।"**

एक दूसरे अंगरेज़ गवाह सलीवन ने बयान किया—

> **"सन् 1814 में व्यापार का द्वार खुल जाने के समय से रुई के ऊपर महसूल बिल्कुल हटा लिया गया है, जो रुई हिन्दोस्तान से चीन भेजी जाती है उस पर महसूल घटाकर पांच फ़ीसदी कर दिया गया है, और जो रुई हिन्दोस्तान से इंगलिस्तान भेजी जाती है उस पर महसूल बिल्कुल नहीं लिया जाता।"**

काफ़र्ड नामक गवाह ने बयान किया—

> **"महसूल के मामले में सन् 1813 के क़ानून में यह बात दर्ज कर दी गई थी कि बिना इंगलिस्तान के अधिकारियों से पूछे हिन्दोस्तान में बाहर से आने वाले माल पर कोई नया महसूल न लगाया जाए। इसी के अनुसार पुराने महसूलों को कम करके और उनकी एक सूची तैयार करके इंगलिस्तान से हिन्दोस्तान भेजी गई और हिन्दोस्तान की अंगरेज़ सरकार ने सन् 1815 में उसी को क़ानून का रूप दे दिया, इत्यादि।"**

ग्लासगो चैम्बर आफ़ कामर्स ने अपने बयान में लिखा—

> **"ऊनी कपड़ों, धातुओं और जहाज़ी सामान के ऊपर हिन्दोस्तान में बिल्कुल महसूल नहीं लिया जाता, जिससे निस्सन्देह इंगलिस्तान के इन चीज़ों के व्यापार को बहुत बड़ी सुविधा प्राप्त हुई है।"**

भारतीय माल पर निषेधकारी महसूल

दूस[illegible]य जो भारतीय उद्योग धन्धों को नष्ट करने का किया गया वह इंगलिस्तान के अन्दर भारत के बने हुए माल पर ज़बरदस्त महसूल लगा देना था, ताकि भारत का माल इंगलिस्तान में इंगलिस्तान के बने हुए माल से सस्ता न बिक सके।

सुप्रसिद्ध इतिहासज्ञ लैकी लिखता है कि भारत के बने हुए कपड़े उन दिनों इतने सुन्दर, सस्ते और मजबूत होते थे कि 18वीं शताब्दी के शुरू में इंगलिस्तान के कपड़ा बुनने वालों को हिन्दोस्तान के कपड़ों के मुकाबले में अपने रोज़गार के नष्ट हो जाने का डर हो गया था। उसी समय से ईंगलिस्तान की पार्लियामेण्ट ने क़ानून बना कर कई तरह के भारतीय कपड़ों का इंगलिस्तान आना बन्द कर दिया और दूसरे कई तरह के कपड़ों पर भारी महसूल लगा दिए। यह उपाय भी काफ़ी साबित न हुए तब, लैकी के बयान के

अनुसार, सन् 1766 में इंगलिस्तान के अन्दर यदि कोई अंगरेज़ महिला हिन्दोस्तान के बने कपड़े की पोशाक पहनती थी तो उसे क़ानूनन सज़ा दी जाती थी।*

सन् 1813 में पार्लियामेण्ट की एक कमेटी के सामने गवाही देते हुए राबर्ट ब्राउन नाम के एक अंगरेज़ व्यापारी ने, जो हिन्दोस्तान से सूती कपड़े मंगाया करता था, बयान किया कि उन दिनों हिन्दोस्तान से जाने वाले कपड़ों पर इंगलिस्तान में दो तरह का महसूल लिया जाता था। एक, अंगरेज़ी बन्दरगाहों में माल के जहाज़ों से उतरते ही, और दूसरे इंगलिस्तान निवासियों के उपयोग के लिए इंगलिस्तान की मण्डियों में माल के पहुंचने पर। इसके अतिरिक्त सारे हिन्दोस्तानी माल को तीन श्रेणियों में बांट दिया गया था। पहली श्रेणी में मलमल इत्यादि थी, जिन पर बन्दरगाह में उतरते समय 10 फ़ीसदी और इंगलिस्तान की मण्डियों में पहुंचते समय $27\frac{1}{3}$ फ़ीसदी महसूल लिया जाता था। दूसरी श्रेणी में कैलिको (कालीकट का एक खास कपड़ा) इत्यादि थे जिन पर बन्दरगाहों में उतरते समय और मण्डियों में जाते समय मिला कर 72 फ़ीसदी महसूल लिया जाता था। तीसरी श्रेणी में वे कपड़े थे जिनका बेचना या पहनना इंगलिस्तान के अन्दर जुर्म समझा जाता था। इस तरह के माल पर बन्दरगाहों में उतरते समय $68\frac{1}{3}$ फ़ीसदी महसूल लिया जाता था; और व्यापारियों के लिए आवश्यक था कि उस माल को फ़ौरन दूसरे मुल्कों को भेज दें। इतनी कड़ाई के होते हुए भी दूसरी श्रेणी के कपड़े 72 फ़ीसदी महसूल देने के बाद उस तरह के अंगरेज़ी कपड़ों के मुकाबले में, इंगलिस्तान के बाजारों के अन्दर, 60 फ़ीसदी तक कम दाम में मिलते थे।

सन् 1830 तक भारत में जो कपड़ा हाथ के सूत से और हाथ के करघों पर तैयार होकर 100 रुपये से कम में मिल सकता था, उतना सुन्दर और उतना मज़बूत कपड़ा इंगलिस्तान के पुतलीघर वाले भाप और मशीनों की मदद से 450 रुपये में भी तैयार करके न बेच सकते थे।

तीन हजार फ़ीसदी तक महसूल

हिन्दोस्तान से उन दिनों हर तरह के सूती, ऊनी और रेशमी कपड़ों के अतिरिक्त हाथ की छड़ियां, जिन पर सोने चांदी की मूठें और तरह-तरह का काम होता था, चीनी मिट्टी के बरतन, चमड़े और लकड़ी की चीज़ें, शराब, अरक़, वारनिश का काम, नारियल का तेल, सींग, रस्सियां, चाय, अरारूट, चटाइयां, चीनी, साबुन, कागज़ इत्यादि अनेक तरह का माल इंगलिस्तान जाता था। सन् 1813 से 1832 तक इंगलिस्तान की आवश्यकतानुसार बराबर इंगलिस्तान के अन्दर इन चीज़ों पर महसूल घटता-बढ़ता रहा। कई तरह के भारतीय कपड़ों, खास कर रेशमी रूमालों और रेशम की बनी हुई चीज़ों का बिकना इंगलिस्तान में सन् 1826 तक क़ानूनन बन्द रहा। बहुत-सी चीज़ों पर 100 फ़ीसदी से भी ज्यादा महसूल लिया जाता था। कई पर 600 फ़ीसदी तक और रिचर्ड नाम के एक अंगरेज़ ने सन् 1832 की पार्लियामेण्ट की कमेटी के सामने बयान किया कि किसी किसी चीज़ पर 3000 फ़ी सैकड़ा तक महसूल लिया जाता था, अर्थात् एक रुपये की चीज़ पर तीस रुपये महसूल। सारांश यह है कि जब कि एक ओर इंगलिस्तान

---

*Lecky's *History of England in the Eighteenth Century*, vol. vii, pp. 255-266, 320.

के बने हुए माल पर हिन्दोस्तान में अधिक से अधिक ढाई फ़ीसदी महसूल लिया जाता था और बहुत-सा माल बिना महसूल आने दिया जाता था, दूसरी ओर इंगलिस्तान के अन्दर हिन्दोस्तान के माल पर भयंकर कानूनी और सामाजिक बहिष्कार जारी था।

भारत की असहायता

इतिहास लेखक विलसन इंगलिस्तान के कपड़े के व्यापार की उन्नति और भारत के कपड़ा बनाने के धन्धे के इस तरह सर्वनाश के सम्बन्ध में लिखता है—

> "हमारे सूती कपड़े के व्यापार का यह इतिहास इस बात की एक शोकप्रद मिसाल है कि हिन्दोस्तान जिस देश के अधीन हो गया था उसने हिन्दोस्तान के साथ किस तरह अन्याय किया। गवाहियों में यह बयान किया गया था कि सन् 1813 तक हिन्दोस्तान के सूती और रेशमी कपड़े इंगलिस्तान के बाजारों में इंगलिस्तान के बनें हुए कपड़ों के मुकाबले में 50 फ़ीसदी से 60 फ़ीसदी तक कम दाम पर फ़ायदे के साथ बिक सकते थे। इसलिए यह आवश्यक हो गया कि हिन्दोस्तान के माल पर 70 और 80 फ़ीसदी महसूल लगा कर या इसका इंगलिस्तान में आना सर्वथा बन्द करके इंगलिस्तान के व्यापार की रक्षा की जाए। यदि ऐसा न होता, यदि इस तरह की आज्ञाएं न दी गई होतीं और भारत के माल पर इस तरह के भारी निषेधकारी महसूल न लगाए गए होते तो पेजली और मैन्चेस्टर के पुतलीघर खुलते ही बन्द हो गए होते और फिर भाप की ताक़त से भी दोबारा न चलाए जा सकते। इन पुतलीघरों का निर्माण भारतीय कारीगरों के बलिदान पर किया गया।
>
> "यदि भारत स्वाधीन होता तो वह इसका बदला लेता, इंगलिस्तान के बने हुए माल पर निषेधकारी महसूल लगाता और अपने यहां की कारीगरी को सर्वनाश से बचा लेता। किन्तु उसे इस तरह की आत्मरक्षा की इजाजत न थी। वह विदेशियों के चंगुल में था। इंगलिस्तान का माल बिना किसी तरह का महसूल दिए जबरदस्ती उसके सिर मढ़ दिया गया, और विदेशी कारीगरों ने एक ऐसे प्रतिस्पर्धी को दबा कर रखने और अन्त में उसका गला घोंट देने के लिए, जिसके साथ वे बराबरी की शर्तों पर मुक़ाबला न कर सकते थे, राजनैतिक अन्याय के शस्त्र का उपयोग किया।"*

इंगलिस्तान और यूरोप की मण्डियां हिन्दोस्तान के बने हुए माल के लिए निषेधकारी महसूलों द्वारा बन्द कर दी गईं। इंगलिस्तान के बने हुए माल की बिक्री के लिए

---

* "The history of the trade of cotton cloths with India......is......a melancholy instance of the wrong done to India by the country on which she had become dependent. It was stated in evidence, that the cotton and silk goods of India up to this period (1813) could be sold for a profit in the British market, at a price from fifty to sixty per cent lower than those fabricated in England. It consequently became necessary to protect the latter by duties of seventy and eighty per cent, on their value, or by positive prohibition. Had this not been the case, had not such prohibitory duties and decrees existed, the mills of Paisley and of Manchester would have been stopped in their outset, and could scarcely have been again set in motion even by the powers of steam. They were created by the sacrifice of the Indian manufacture. Had India been

भारत में विशेष सुविधाएं कर दी गईं। किन्तु असंख्य भारतीय कारीगरों के सर्वनाश के लिए यह भी काफी न था। कम से कम भारत की विशाल मण्डियां अभी तक भारत के बने हुए माल की खपत के लिए मौजूद थीं। भारत की इन मण्डियों में इंगलिस्तान के बने माल के लिए जगह बनाने के वास्ते उनमें भारत ही के बने हुए माल का पहुंच सकना और बिक सकना असम्भव कर देना भी आवश्यक था। इसके लिए भारत के अन्दर चुंगी के पुराने तरीक़ों को बदला गया और चुंगी का एक नया नाशकारी महकमा कायम किया गया।

नयी चुंगी

फ्रेड्रिक शोर नामक उस समय के एक अंगरेज़ विद्वान ने चुंगी के पुराने हिन्दोस्तानी तरीके और इसके बाद के अंगरेज़ी तरीके की तुलना करते हुए लिखा है कि चुंगी वसूल करने का पुराना हिन्दोस्तानी तरीका, यानी मुग़ल सम्राट के समय का तरीका यह था कि हर चालीस, पचास या साठ मील के ऊपर चुंगीघर बने हुए थे। हर चुंगीघर को पार करते समय व्यापारी को अपने माल पर चुंगी देनी पड़ती थी, जो एक लदे हुए बैल पर एक ख़ास रकम, टट्टू पर उससे कुछ ज्यादा, ऊंट पर और कुछ अधिक, बैलगाड़ी पर उससे कुछ अधिक, इत्यादि, इसी हिसाब से नियत थी। माल की कीमत या क़िस्म से चुंगी का कोई सम्बन्ध न था। इसके अतिरिक्त चुंगी इतनी हलकी होती थी कि कोई उससे बचने की कोशिश न करता था। न किसी को माल खोल कर देखने की आवश्यकता होती थी, न किसी 'पास' या 'रवन्ने' की ज़रूरत; और न किसी व्यापारी को कोई कष्ट होता था। जो व्यापारी अपना माल अधिक दूर ले जाता था उसे हर 50 या 60 मील के बाद वही बंधी हुई रकम देनी होती थी।

तलाशी की चौकियां

इसकी जगह जो नया तरीका अंगरेज़ों ने जारी किया, वह यह था—

चुंगीघरों के अलावा देश भर में अनेक 'चौकियां' बना दी गईं, जिनमें हर व्यापारी के सब माल को खोल कर देखा जाता था। चुंगीघर में व्यापारी से एक बार चुंगी ले ली जाती थी और उसे एक 'पास' या 'रवन्ना' दे दिया जाता था ताकि उस व्यापारी को दोबारा कहीं चुंगी न देनी पड़े। माल की कीमत और किस्म के अनुसार हर तरह के माल पर अलग-अलग चुंगी रखी गई। चाहे व्यापारी को बहुत दूर जाना हो और चाहे बहुत नज़दीक, किन्तु चुंगी की रकम वह नियत की गई, जो इससे पहले दूर से दूर जाने वाले व्यापारी के रास्ते भर के सब चुंगीघरों पर मिला कर देनी पड़ती थी। इस तरह से पहली

---

independent, she would have retaliated, would have imposed preventive duties upon British goods, and thus would have preserved her own productive industry from annihilation. This act of self defence was not permitted her; she was at the mercy of the stranger. British goods were forced upon her without paying any duty, and the foreign manufacturer employed the arm of political injustice to keep down and ultimately strangle a competitor with whom he could not have contended on equal terms."—Mills' *History of British India*, Vol. vll, p. 385.

बात तो यह हुई कि देश के आन्तरिक व्यापार पर चुंगी पहले की अपेक्षा कई गुना बढ़ गई ।

दूसरी बात इस नये तरीके में 'रवन्ना' थी । व्यापारी के किसी एक स्थान से चलते समय उसके सारे माल पर एक रवन्ना दिया जाता था । यदि कहीं पर व्यापारी अपना आधा माल बेच दे तो बचे हुए माल के लिए उसे पास के चुंगीघर पर जाकर पिछला महसूल देकर आवश्यकतानुसार एक या अधिक नये रवन्ने ले लेने होते थे । यदि एक साल तक माल का कोई हिस्सा न बिका हो तो भी बारह महीने के बाद हर रवन्ना रद्द हो जाता था । व्यापारी के लिए जरूरी था कि बारह महीने खत्म होने से पहले किसी पास के चुंगीघर पर जाकर पिछले रवन्ने से अपने माल का मीलान करवा कर और आठ आने सैंकड़ा नया महसूल देकर नया रवन्ना हासिल कर ले, अन्यथा बारह महीने समाप्त होने के बाद उसे अपने सारे माल पर नये सिरे से चुंगी देनी पड़ती थी ।

भारतीय व्यापारियों की दिक्कतें

तीसरी और सब से बढ़ कर बात इस नये तरीक़े में तलाशी की 'चौकियां' थीं । ये चौकियां देश भर में जगह-जगह बना दी गई थीं । चौकियों के छोटे से छोटे मुलाज़िम को किसी भी माल को रोक लेने, उसे खुलवा कर देखने और रवन्ने से मीलान करने आदि का अधिकार था । यदि माल रवन्ने के मुताबिक न होता था या व्यापारी के पास रवन्ना न होता था तो उन चौकियों पर सारा माल कानूनन जब्त कर लिया जा सकता था । इस पर तारीफ़ यह कि यदि कोई व्यापारी किसी ऐसे स्थान से माल लेकर चलता था कि जहां से आगे के चुंगीघर तक पहुंचने से पहले उसे किसी तलाशी की चौकी पर से जाना पड़े तो उससे यह आशा की जाती थी कि वह अपने घर से माल लेकर निकलने से पहले ही किसी चुंगीघर से अपने माल के लिए रवन्ना हासिल कर ले । इस विचित्र और असम्भव नियम का नतीजा यह हुआ कि जो मामूली हिन्दोस्तानी व्यापारी अपने घर से कुछ दूर खास मेलों या बाजारों से माल खरीद कर दूसरे स्थानों पर जाकर बेचते थे उन्हें प्रायः अपने घर के पास के चुंगीघर वालों को पहले से यह बता देना होता था कि हम क्या, कितना और किस कीमत का माल खरीदेंगे और पहले ही उसके लिए रवन्ना ले लेना होता था । जिस व्यापारी को यह पता न हो सकता था कि मुझे कौन-सा माल और किस पड़ते पर मिल सकेगा, उसके व्यापार और रोजगार के लिए वह नियम सर्वथा घातक था ।

बेहिसाब चुंगी

एक तो चुंगी बेहद बढ़ा दी गई थी, दूसरे इन चौकियों पर प्रायः इतना समय नष्ट होता था, माल के मीलान करवाने में इतनी कठिनाई होती थी, चौकी के छोटे मुलाजिमों के लिए माल को पहचान सकना, उसकी कीमत का अन्दाज़ा लगा सकना या व्यापारी के लिए यह साबित कर सकना कि माल ठीक वही है जो रवन्ने में दर्ज है—इतना कठिन होता था और चौकियों और चुंगीघरों के मुलाजिमों के अधिकार इतने बढ़े हुए थे कि इस नयी पद्धति के कारण देश के व्यापारियों और कारीगरों की कठिनाइयां बेहद बढ़ गईं, इनके हौसले टूट गए और असंख्य देशी दस्तकारियों का और देश के आन्तरिक व्यापार का सत्यानाश हो गया ।

पर इंगलिस्तान का बना हुआ माल, जो अंगरेज़ और उनके एजेण्ट यहां बेचते थे, इन समस्त असुविधाओं से बरी था ।

फ्रेड्रिक शोर लिखता है—

> "हम इस बात की बड़ी-बड़ी शिकायतें सुनते हैं कि इस देश के लोग ग़रीब होते जा रहे हैं, देश का आन्तरिक व्यापार नष्ट होता जा रहा है और देश की दस्तकारियां बजाय उन्नति करने के, गिरती जा रही हैं । इसमें आश्चर्य ही क्या है ? हमारी इस चुंगी की प्रणाली के कारण समस्त व्यापारियों को जिन असह्य क्लेशों का सामना करना पड़ता है, क्या उनसे किसी और नतीजे की आशा की जा सकती थी ?"*

फ्रेड्रिक शोर ने मिसालें दी हैं कि किस तरह दिल्ली और बनारस के दुशालों के व्यापारियों का काम इस पद्धति के कारण नष्ट हो गया; बुख़ारा, रूस, पेशावर और काबुल के व्यापारियों को इससे कितना नुकसान पहुंचा और वे किस तरह शिकायतें करते थे । भारत की दस्तकारियों पर तो कई बार चुंगी देनी पड़ती थी—कच्चे माल पर अलग और बने हुए माल पर अलग । यहां तक कि दुशालों के व्यापारियों को दो बार, चमड़े के व्यापारियों को तीन बार, और सूती कपड़े के व्यापारियों को चार बार चुंगी देनी पड़ती थी । अन्त में फ्रेड्रिक शोर लिखता है—

> "यदि यह हालत बहुत दिनों जारी रही, तो थोड़े ही दिनों में हिन्दोस्तान सिवाय इतने अन्न के कि जो उसकी आबादी के गुजारे के लिए काफ़ी हो, उसे पकाने के लिए थोड़े से भद्दे मिट्टी के बरतनों के, और थोड़े से मोटे कपड़ों के और कुछ न बना सकेगा । पर यदि हम केवल इस बोझ को हिन्दोस्तान की छाती पर से हटा लें तो अब भी थोड़े ही दिनों में भारत और इंगलिस्तान के बीच व्यापार का तख्ता बिलकुल पलट जाए ।"†

अंगरेज़ व्यापारियों को सहायता

जो सात उपाय सन् 1813 में तय किए गए उनमें पहले तीन का विस्तृत बयान दिया जा चुका है । चौथा उपाय अंगरेज़ों को भारत में रहने और काम करने की विशेष सुविधाएं देना था । भारत की दृष्टि से यह ग़लती वास्तव में उस समय से शुरू हुई जब दिल्ली के सम्राट ने उदारतावश इन विदेशियों को व्यापार करने के लिए भारत में इस तरह के अधिकार दे दिए जिस तरह के कि आजकल का कोई भी यूरोपियन शासक किसी

---

* "We hear loud complaints of the impoverishment of the people, the falling off of the internal trade, and the decline instead of the increase of manufactures. Is it to be wondered at? Could any other result be anticipated from the intolerable vexation to which all merchants are exposed by our internal customs?"—*Notes on Indian Affairs,* by Hon. Frederick Shore.

† '......if this be continued much longer, India will, ere long, produce nothing but food just sufficient for the population, a few coarse earthen-ware pots to cook it in, and a few coarse cloths. Only remove this incubus and the tables will very soon be turned."—Ibid.

भी दूसरे देश के लोगों को अपने देश के अन्दर न देगा। वास्तव में उस समय से ही भारतीय व्यापार और उद्योगधन्धों के नाश और भारत की राजनैतिक पराधीनता का वीज बोया गया। बंगाल के अन्दर अंगरेज़ व्यापारियों को जो रिआयतें दी गईं उन्हीं का नतीजा नवाब सिराजुद्दौला के विरुद्ध षड्यंत्रों का रचा जाना और प्लासी का निर्णायक संग्राम था। इसके बहुत दिनों बाद भारत की अंगरेज़ सरकार ने, भारतवासियों के खर्च पर, असम और कुमायूं के अन्दर चाय की काश्त के अनेक तजरबे किए; इसलिए कि तजरबे सफल होने के बाद वहां के चाय के सब बागान ऐसे अंगरेज़ों के हवाले कर दिए जाएं जो वहां रह कर काम करना चाहें। बाद में ऐसा ही किया भी गया। भारतवासियों के खर्च पर कई अंगरेज़ों को तरह-तरह की चाय के बीज लाने के लिए चीन भेजा गया और चीनी काश्तकार हिन्दोस्तान में लाए गए ताकि अंगरेज़ उनसे चाय की काश्त का तरीक़ा सीख सकें। इसलिए, ताकि इन चाय के बाग़ानों में काम करने वालों की कभी कमी न होने पाए, वहां पर शुद्ध गुलामी की प्रथा क़ानूनन प्रचलित की गई। अपने भारतीय गुलामों पर इन गोरे मालिकों के अत्याचारों की कथा भी एक अलग कहानी है। इसी तरह लोहे के काम करने वाले और नील की काश्त करने वाले अंगरेज़ों को भी भारतवासियों के खर्च पर समय-समय पर धन और क़ानून, दोनों की सहायता की गई। इसी तरह के और भी असंख्य उदाहरण दिए जा सकते हैं, किन्तु इस विषय को विस्तार देना अब व्यर्थ है।

भारतीय कारीगरी के रहस्यों का पता लगाना

पांचवां उपाय भारतीय कारीगरों के रहस्यों का पता लगाना था। इन रहस्यों और भारतवासियों की आवश्यकताओं का पता लेने के लिए अनेक प्रदर्शनियां की गईं। लन्दन में भारतवासियों के खर्च पर एक विशाल अजायबघर बनाया गया, जिसमें अंगरेज़ कारीगरों की जानकारी के लिए भारतीय कारीगरी के नमूने इत्यादि जमा किए गए। इससे भी बढ़ कर भारत के बने हुए कपड़ों के सात सौ भिन्न-भिन्न नमूने अठारह बड़ी-बड़ी जिल्दों में जमा किए गए। इस संग्रह की बीस प्रतियां तैयार कराई गईं। इनमें अठारह-अठारह विशाल जिल्दों की तेरह प्रतियां इंगलिस्तान के कारीगरों की जानकारी के लिए उस देश के विविध औद्योगिक केन्द्रों में रखी गईं, और बाकी सात प्रतियां भारत में आने-जाने वाले अंगरेज़ व्यापारियों के लिए भारतवर्ष के सात मुख्य-मुख्य केन्द्रों में रखी गईं। वास्तव में ये बीस प्रतियां बीस औद्योगिक अजायबघर हैं। यह विशाल कार्य इंगलिस्तान की कारीगरी को बढ़ाने और भारत की कारीगरी को नष्ट करने के लिए किया गया, किन्तु इसके खर्च का एक-एक पैसा ग़रीब हिन्दोस्तानियों की जेब से लिया गया। अक्षरशः जिन पैनी छुरियों से भारतीय कारीगरों के गले काटे गए उन छुरियों को उन्हीं कारीगरों के खर्च पर तैयार किया गया।

हिन्दोस्तानी कारीगरी के रहस्यों का पता लगाने के लिए और भी तरह-तरह की जबरदस्तियां की गईं। मेजर कीथ नाम का एक अंगरेज़ लिखता है—

> **"हर कोई जानता है कि कारीगर अपने पेशे के रहस्यों को कितनी सावधानी के साथ छिपा कर रखते हैं। यदि आप डूल्टन् कम्पनी (इंगलिस्तान की एक कम्पनी) के मिट्टी के बरतनों के कारखाने को देखने जाएं तो सौजन्य के साथ आपको टाल दिया जाएगा। फिर भी, हिन्दोस्तानी कारीगरों को जबरदस्ती**

मजबूर किया गया कि वे अपने थानों को धोकर सफ़ेद करने के तरीके और अपने दूसरे औद्योगिक रहस्य मैन्चेस्टर वालों पर प्रकट कर दें, और उन्हें मानना पड़ा। इण्डिया हाउस के महकमे ने एक क़ीमती संग्रह तैयार किया, ताकि उसकी मदद से मैन्चेस्टर दो करोड़ पौंड (अर्थात्, तीस करोड़ रुपये) सालाना हिन्दोस्तान के गरीबों से वसूल कर सके। इस संग्रह की प्रतियां इंगलिस्तान की "चैम्बर्स आफ़ कामर्स" को मुफ्त भेंट की गईं और हिन्दोस्तानी रैय्यत को उनकी क़ीमत देनी पड़ी। सम्भव है कि अर्थशास्त्र (पोलिटिकल इकानामी) की दृष्टि से यह सब जायज़ हो, किन्तु वास्तव में इस तरह के काम में और एक दूसरी चीज़ (लूट) में बेहद आश्चर्यजनक समानता है।"*

रेल

इंगलिस्तान के व्यापार को यहां फैलाने और यहां के कच्चे माल को वाहर ले जाने के लिए भारत भर में रेलों का जाल पूरा किया गया। दूसरे देशों को पराधीन करने और उस पराधीनता को वनाए रखने में मिस्र, भारत, चीन, मंचूरिया और कोरिया में, सब जगह रेलों ने बहुत जबरदस्त काम किया है।

भारतवासियों में शराब का प्रचार

सन् 1813 का नया 'चार्टर' भारतवासियों के लिए केवल आर्थिक दृष्टि से ही घातक न था, नैतिक दृष्टि से भी वह भारतवासियों के अधिकाधिक पतन का कारण हुआ। भारतीय जीवन की सरलता और शुद्धता को भंग करने ही में उस समय के धनलोलुप अंगरेज़ व्यापारियों को अपना हित दिखाई देता था। सन् 1832 की पार्लियामेण्टरी कमेटी के सामने जो गवाह पेश हुए उनमें से एक, मिस्टर ब्रेकन, ने अपने वयान में खुश होकर कहा—

> **"अब कलकत्ते में, उन हिन्दोस्तानियों के अन्दर, जो शराब पर खर्च कर सकते हैं, तरह-तरह की शराबें बहुत बड़ी मिक़दार में खपती हैं।"**

इसी गवाह ने एक दूसरे प्रश्न के उत्तर में कहा—

> **"मैंने कलकत्ते के एक देशी दुकानदार से, जो वहां के बड़े-बड़े खुदफ़िरोशों में से हैं, सुना हैं कि उसके शराब, ब्राण्डी और बियर के ग्राहकों में से अधिकांश ग्राहक हिन्दोस्तानी हैं।"**

---

*"Every one knows how jealously trade secrets are guarded. If you wen over Messrs Doulton's Pottery Works, you would be politely overlooked. Ye under the force of compulsion the Indian workman had to divulge the manne of his bleaching and other trade secrets to Manchester. A costly work w prepared by the India House Department to enable Manchester to take twent millions a year from the poor of India; copies were gratuitously presented Chambers of Commerce, and the Indian Raiyat had to pay for them. Th may be political economy, but it is marvellously like something else."—Majo J. B. Kaith in the *Pioneer*, September 7, 1891.

इस गवाह से पूछा गया कि—हिन्दोस्तानियों को कौन-सी शराब सबसे ज्यादा पसन्द है ? उसने उत्तर दिया—"शैम्पेन"। फिर पूछा गया कि—"क्या हिन्दोस्तानी पहले बिल्कुल शराब नहीं पीते थे ?" उसने जवाब दिया—"मैं समझता हूं, कि बहुत ही कम।" पूछा गया—"क्या शराब पीना उनके धर्म के विरुद्ध नहीं है ?" जवाब मिला—"मुझे नहीं मालूम कि उनके धर्म के विरुद्ध है या नहीं, किन्तु उनकी आदतों के विरुद्ध अवश्य है ; वे खुले तौर पर शराब नहीं पीते। किन्तु जब कभी पीते हैं तो उनका पीना धर्म के विरुद्ध हो या न हो, उनके यहां के सामाजिक रिवाज के विरुद्ध अवश्य होता है।"*

दूसरे अंगरेज़ गवाहों ने भी बड़े हर्ष के साथ बयान किया कि यूरोपियनों के संसर्ग से भारतवासियों में शराब पीने की आदत और यूरोप के ऐश-आराम के और अन्य दिखावटी सामान खरीदने की आदत बढ़ती जा रही है, जिससे अंगरेज़ी व्यापार को लाभ है। निस्सन्देह भारतीयों को चरित्रभ्रष्ट करने में उस समय के विदेशी व्यापारी-शासकों का स्पष्ट लाभ था।

भारतीय कपड़े के व्यापार का अन्त

अब हम इन सब प्रयत्नों के नतीजों की ओर नज़र डालते हैं। नीचे के अंकों से साबित है कि अपने इन प्रयत्नों में इंगलिस्तान के व्यापारी-शासकों को पूरी सफलता मिली।

सर चार्ल्स ट्रेवेलियन ने सन् 1834 में प्रकाशित किया कि सन् 1816 में जितना सूती कपड़ा बंगाल से विदेशों को भेजा गया उसका मूल्य 1,65,94,380 रुपये था। उसके बाद घटते-घटते सन् 1832 में केवल 8,22,891 रुपये का कपड़ा बंगाल से बाहर गया। इसके विपरीत इंगलिस्तान का बना हुआ कपड़ा बंगाल के अन्दर सन् 1814 से केवल 45,000 रुपये का आया; सन् 1816 में 3,17,602 रुपये का और सन् 1828 में 79,96,383 रुपये का केवल सूती कपड़ा इंगलिस्तान से बंगाल में आकर खपा। सन् 1823 तक एक गज़ विदेशी सूत भी बंगाल के अन्दर न आता

---

* Mr. Bracken before the Commons' Committee on 24th March, 1832:—

"Liquors in Calcutta are now consumed in large quantities by natives who can afford to purchase them."

In answer to another question:—

"I heard from a native shopkeeper in Calcutta, who is one of the largest retail shopkeepers, that his customers for wines, and brandy and beer, were principally natives."

Question:—What should you say was the favourite wine among the native?

"Champaigne."

Question:—Formerly did they not consume any wine?

"Very little, I believe".

Question:—Is it not contrary to their religion?

"I do not know whether it is contrary to their religion, but it is contrary to their habits;......it is not done openly, but when done it is a violation of their custom rather than of their religion."

था; किन्तु सन् 1828 में क़रीब अस्सी लाख रुपये के कपड़े के अतिरिक्त 35,22,640 रुपये का सूत इंगलिस्तान से बंगाल में आया।

सर चार्ल्स ट्रैवेलियन लिखता है कि सन् 1833 तक एक करोड़ रुपये साल का विलायत का बाज़ार और लगभग 80 लाख रुपये का स्वयं बंगाल का बाज़ार बंगाल के कपड़ा बुनने वालों के हाथों से छीना जा चुका था। सर चार्ल्स ने अत्यन्त मर्मस्पर्शी शब्दों में कहा कि—

> "1,80,00,000 रुपये सालाना की इस विशाल रक़म को पदा करने में जितने लोग लगे हुए थे, उनकी अब क्या हालत होगी"*

गांठों के हिसाब से सन् 1814 में कपड़े की 3,842 गांठें हिन्दोस्तान से इंगलिस्तान भेजी गईं। सन् 1824 में 1,878 और सन् 1828 में केवल 433 गांठें। यदि थानों की संख्या को देखा जाए तो सन् 1824 में कपड़े के 1,67,524 थान हिन्दोस्तान से इंगलिस्तान गए और सन् 1829 में केवल 13,043 थान।

इंगलिस्तान के बने हुए कुल सूती माल का दाम, जो सन् 1814 में भारतवर्ष आया, 16,15,315 रुपया था, सन् 1828 में यह रक़म बढ़ कर 3,01,46,615 रुपये तक पहुंच गई अर्थात्, 14 साल के अन्दर हिन्दोस्तान में आने वाले इंगलिस्तान के सूती माल की क़ीमत लगभग 19 गुनी बढ़ गई। ऊनी कपड़ा सन् 1814 में इंगलिस्तान से हिन्दोस्तान केवल 6,70,680 रुपये का आया। उसी साल कुल माल (कपड़ा, लोहा, तांबा, शराब, काग़ज़, कांच इत्यादि मिला कर) इंगलिस्तान से हिन्दोस्तान 6,14,87,475 रुपये का आया। सन् 1830 में कुल माल इंगलिस्तान से हिन्दोस्तान 30,11,00,310 रुपये का आया, जिसमें से 2,13,88,770 रुपये का ऊनी माल और 13,10,43,240 रुपये का सूती माल था।†

सन् 1830–32 की पार्लियामेण्टरी कमेटी के सामने जो गवाह पेश हुए उन्होंने एक स्वर से बयान किया कि हिन्दोस्तान में लंकाशायर के बने हुए कपड़ों की खपत में 15 साल के अन्दर अपूर्व और आश्चर्यजनक वृद्धि हुई है।

कपड़े का धन्धा किसी भी देश के उद्योगधन्धों में सदा सब से अधिक महत्वपूर्ण होता है। इसलिए हमने इसे इस अध्याय में इतना अधिक विस्तार दिया है। किन्तु जिस तरह कम्पनी ने इस भारतीय धन्धे को नष्ट किया ठीक उसी तरह उस समय के दूसरे अनेक उद्योगधन्धों के भी नाश का पता चलता है।

भारतीय जहाजरानी का नाश

भारतीय जहाजरानी को और विशेषकर माल लाने ले जाने वाले जहाज़ों की कारीगरी को किस तरह नष्ट किया गया इस पर रोशनी डालते हुए डब्लू॰ एस॰ लिंडसे लिखता है—

---

* "What is to become of all the people who were employed in working up this great annual amount (Rs. 1,80,00,000)"—Sir Charles Trevelyan, 1834.

† Taken from Parliamentary Papers 1830-32, as quoted in Major B.D. Basu's *Ruin of Indian Trade and Industries*, pp. 70, 71; one pound being taken equal to Rs. 15.

"सन् 1789 में पुर्तगालियों के पास कैण्टन शहर में केवल तीन जहाज थे जो सब एशियाई तिजारत में पूरी तरह लगे हुए थे। इस तिजारत में लगे हुए जहाज डच लोगों के पास पांच, फ्रांसीसियों के पास एक, डेनमार्क वालों के पास एक, संयुक्त राष्ट्र अमरीका के पास पन्द्रह और ब्रिटिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी के पास चालीस थे। उस समय केवल अंगरेजी इलाक़े की भारतीय प्रजा के पास इतने जहाज थे जितने इन सबके पास मिल कर। इसके अतिरिक्त एशिया की करीब-करीब सारी जहाजी तिजारत हिन्दोस्तान के बने जहाजों में होती थी। इन जहाजों के मालिक हिन्दोस्तानी थे। ये जहाज भारत से चीन और मलाबार के किनारे से ईरान की खाड़ी और लाल सागर तक उतने ही चक्कर लगाते थे जितने कि आशा अन्तरीप के रास्ते यूरोप के जलमार्ग का पता लगने के पहले।

"किन्तु भारत के बने हुए इन जहाजों को सन् 1795 से पहले लन्दन माल लाने ले जाने की इजाजत नहीं मिली। उस साल चूंकि ईस्ट इण्डिया कम्पनी के बहुत से जहाज इंगलिस्तान की सरकार के काम में फंसे हुए थे, इसलिए बाहर की अंगरेज सरकारों को लिखा गया कि वे माल लाने ले जाने के लिए हिन्दोस्तानी जहाजों का उपयोग करें। इन जहाजों में सोलह पौण्ड फ़ी टन के हिसाब से चावल और दूसरा वजनी माल और बीस पौण्ड फ़ी टन के हिसाब से हलका माल टेम्स तक पहुंचाना तय हुआ। इन जहाजों को इजाजत थी कि राह में कम्पनी के इलाके के लिए और जो माल ये मुनासिब समझें, लाद लें।"*

किन्तु भारत के बने जहाज़ों की यह सुविधा थोड़े ही दिनों बाद छीन ली गई और जब सन् 1796 में कम्पनी का चार्टर फिर से दोहराया गया तो उसमें एक विशेष धारा इस बात की रख दी गई कि इंगलिस्तान के व्यापारी या भारत के व्यापारी, या कम्पनी के अपने मुलाज़िम जो भी माल भारत से इंगलिस्तान लाएं-ले जाएं वे केवल उन्हीं जहाज़ों में ले जा सकेंगे जो कम्पनी के किराये के जहाज़ होंगे, दूसरे जहाज़ों में नहीं।

लार्ड मेलविले ने मार्क्विस हेस्टिग्स के, कम्पनी के नाम, 21 मार्च सन् 1812 के एक पत्र से नीचे लिखा वाक्य उद्धृत किया है—"इससे इनकार नहीं किया जा सकता कि 1796 का क़ानून कम से कम इस देश के जहाज़साज़ी के कारीगरों के लिए सन्तोषप्रद नहीं साबित हुआ।"†

सन् 1796 के बाद से चन्द साल के अन्दर भारत के जहाज़ी धन्धे का करीब-करीब नाश हो चला।

भारत के लोहे के उद्योगधन्धे का नाश

सर जार्ज वाट ने इंगलिस्तान के भारत मंत्री की आज्ञानुसार सन् 1908 में "कमर्शियल प्रोडक्ट्स आफ़ इण्डिया" नामक एक पुस्तक प्रकाशित की थी। इसमें लिखा है—"इसमें किसी तरह का सन्देह नहीं कि भारत में प्राचीन काल से लोहे गलाने के कारखानों का ज़िक्र मिलता है। और रेल के क़रीब की जगहों में हमने इंगलिस्तान से

---

* "*History of Merchant Shipping.*" vol. ii, pp. 454-55.

† Ibid., p. 457.

सस्ता लोहा भेज कर इस भारतीय उद्योग का नाश कर दिया । किन्तु बम्बई और मध्य प्रान्त के अन्दर के हिस्सों में इस उद्योग ने कुछ तरक्क़ी के आसार दिखाए हैं । सैयद अली बिलग्रामी के अनुसार मध्यकालीन दमिश्क की मशहूर तलवारें निज़ाम राज की फ़ौलाद से ही बनती थीं । इस समय तक हैदराबाद अपनी तलवारों और खंजरों के लिए मशहूर है ।''

वेलेण्टाइन बाल ने अपनी पुस्तक, ''जंगल लाइफ़ इन इण्डिया'', में लिखा है— ''बहुत से गांवों में लोहे गलाने की भट्टियां थीं । पहले ये भट्टियां क़रीब-क़रीब हर गांव में थीं, किन्तु अब यह उद्योग नष्ट कर दिया गया । इस तरह के कारखानों का ठेका जगह-जगह अंगरेज़ कम्पनियों को दे दिया गया । तरह-तरह की जबरदस्तियों द्वारा इस भारतीय धन्धे का नाश कर दिया गया और इसके कारण लाखों भारतीय लोहारों और कोलों की जीविका का अन्त हो गया ।''*

कागज़ बनाने के उद्योग का नाश

ईस्ट इण्डिया कम्पनी के शासनकाल तक भारतवर्ष में कागज़ बनाने के कारखाने जगह-जगह थे । सर जार्ज वाट ने एशिया के अनेक देशों के साथ-साथ भारत में कागज़ बनाने और इस्तेमाल करने के सम्बन्ध में लिखा है—

> ''पुराने ज़माने में भारत में कागज़ बनाने के सम्बन्ध में जिस आदमी ने तफ़सील से लिखा है वह बकॅनन हैमिल्टन है । कागज़ बनाने के लिए जो मसाला इस्तेमाल किया जाता था वह सन होता था । सन् 1840 से पहले भारत में बहुत सा कागज़ चीन से आता था । किन्तु इसी समय के क़रीब लोगों के अन्दर एक नयी भावना पैदा हुई और हाथ से कागज़ बनाने के बहुत से हिन्दू और मुस्लिम कारखाने सारे देश में क़ायम हो गए । इन कारखानों के बने कागज़ से देश की सारी आवश्यकता पूरी होने लगी । किन्तु जिस समय सर चार्ल्स वुड ने भारत मन्त्री का पद सम्हाला उस समय एक हुक्मनामा निकाला गया कि आइन्दा भारत की सरकार अपने इस्तेमाल के लिए जो भी कागज़ खरीदे वह सब इंगलिस्तान का बना होना चाहिए । इस हुक्मनामे ने भारत के बढ़ते हुए कागज़ के धन्धे को जबरदस्त नुक़सान पहुंचाया ।'' †

यह सर चार्ल्स वुड उस लार्ड इरविन का पितामह था, जो बाद में भारत का गवर्नर जनरल हुआ ।

चीनी उद्योग का नाश

ईस्ट इण्डिया कम्पनी के समय भारत में चीनी का उद्योग अपने शिखर पर था । हज़ारों मन भारतीय चीनी इंगलिस्तान और यूरोप के अन्य बन्दरगाहों में उतरती थी । जब खुले व्यापार में अंगरेज़ सौदागर भारतीय चीनी के व्यापार को न दबा सके तब महसूल के घातक उपायों को इस्तेमाल किया गया । सर जार्ज वाट लिखता है—

> ''इंगलिस्तान की सरकार ने भारतीय चीनी पर इतना महसूल लगाया

---

* *Jungle Life in India,* by Valentine Ball, pp. 224-25.

†*The Commercial Products of India* by Sir George Watt, p. 866.

कि उसका आना ही बन्द हो गया। वह दूसरे उपनिवेशों की बनी चीनी के महसूल से एक क्वार्टरवेट पीछे 8 शिलिंग ज्यादा था।"

आगे चल कर वाट लिखता है—

> "इसमें कोई सन्देह नहीं कि इस तरह भारतीय चीनी के उद्योग को भारी धक्का पहुंचाया गया और यदि भारत में इस कमी को पूरा करने के जबरदस्त साधन न होते तो यह चोट घातक साबित होती। यदि इंगलिस्तान भारत से कच्ची चीनी खरीदता रहता तो इसमें कोई सन्देह नहीं कि उत्पत्ति का क्षेत्र और माल की पैदावार का बढ़ना एक लाज़िमी नतीजा था। किन्तु यह सब उलट गया। जो खाने पीने की चीज़ें अब इंगलिस्तान से भारत भेजी जाती हैं उनमें चीनी 53.3 प्रतिशत होती है और सूती कपड़े के बाद भारत में भेजी जाने वाली वस्तुओं में चीनी का ही दूसरा नम्बर है। इस तरह कुछ समय पहले जो दो चीजें भारत से सब से अधिक मिक़दार में बाहर भेजी जाती थीं वही भारत में बाहर से आने लगीं।"*

भारत के उद्योगधन्धों का नाश और पराधीनता का बढ़ना

सन् 1830–32 की पार्लियामेण्टरी कमेटी के मेम्बरों ने बयान किया कि उस समय दो करोड़ पौंड, यानी तीस करोड़ रुपये सालाना की आमदनी इंगलिस्तान के कारीगरों को भारत के व्यापार से हो रही थी। इसके बाद से इंगलिस्तान की यह आमदनी बराबर बढ़ती चली गई और जिस औसत से यह आमदनी बढ़ती गई, उसी औसत से भारतवर्ष की पराधीनता भी बढ़ती गई। हमारे उद्योगधन्धों और व्यापार के नाश तथा हमारी स्वाधीनता के नाश में इतना घनिष्ठ सम्बन्ध है कि दोनों को एक दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता। एक का दूसरे पर असर लाज़िमी है। एक अंगरेज़ लेखक ने सन् 1885 में इस बात को यूं बयान किया है—

> "मालूम होता है हम इस बात को पूरी तरह अनुभव नहीं करते कि यदि हिन्दोस्तान हमारे हाथ से निकल गया तो निस्सन्देह एशिया के साथ हमारी सारी तिजारत का खात्मा हो जाएगा। किन्तु यदि हम सोचें तो यह बात आसानी से समझ में आ सकती है। हिन्दोस्तान हमारे हाथ से निकल गया तो उसके साथ-साथ न सिर्फ़ हिन्दोस्तान की मण्डियां ही हमारे लिए बन्द हो जाएंगी और ऐसी पूरी तरह बन्द हो जाएंगी जैसी कि मध्य एशिया की मण्डियां इस समय (1885) हमारे लिए बन्द हैं बल्कि इसके साथ साथ जिस हिन्दोस्तान में कच्चा माल खूब पैदा होता है और जिसके रहने वाले अत्यन्त प्राचीन समय से बड़े कुशल दस्तकार हैं, वह हिन्दोस्तान बहुत जल्दी उद्योगधन्धों की दृष्टि से फिर संसार के बड़े से बड़े देशों की पंक्ति में आ जाएगा। ज्योंही हिन्दोस्तानियों को विदेशियों के मुक़ाबले से अपने उद्योगधन्धों की रक्षा करने का मौका मिला, अपने यहां की सस्ती मजदूरी और कच्चे माल की बहुतायत की मदद से, 'हिन्दोस्तान का बना माल एशिया भर

---

* *The Commercial Products of India* by Sir George Watt, p. 958.

की मण्डियों से हमारे माल को निकाल कर बाहर कर देगा और खुद उसकी जगह ले लेगा ।"*

लार्ड डफ़रिन का व्याख्यान

स्वयं लार्ड डफ़रिन ने इस विषय पर व्याख्यान देते हुए एक बार कहा था—

"सचमुच यह कहना अत्युक्ति नहीं है कि यदि हमारे भारतीय साम्राज्य पर कभी कोई गहरी आफ़त आई या यदि हिन्दोस्तान के साथ हमारे राजनैतिक सम्बन्ध में थोड़ा बहुत भी फ़र्क पड़ा, तो हमें एक ऐसी असह्य विपत्ति का सामना करना पड़ेगा जिसके घातक नतीजों से ग्रेट ब्रिटेन भर में, या कम से कम देश के उन सब हिस्सों में जहां बड़े-बड़े कल कारखाने है, एक कुटिया भी बच न सकेगी"†

भारत की निर्धनता

ईस्ट इण्डिया कम्पनी और अंगरेज़ सरकार के ज़बरदस्त प्रयत्नों से 19वीं शताब्दी के अन्त में भारत के प्राचीन उद्योगधन्धे इतिहास मात्र रह गए और जो देश केवल क़रीब सौ साल पहले संसार का सब से अधिक धनवान देश माना जाता था वह सौ साल के विदेशी शासन के परिणामस्वरूप 20वीं सदी के शुरू तक संसार का सब से अधिक निर्धन देश दिखाई देने लगा ।

---

*"We do not appear to realise the fact that loss of India will assuredly deprive us of all our Eastern trade, and yet it is easy to see that it will be so; for not only will the marts of India be closed against us if we lose it—as firmly closed against us as are those of Central Asia now—but, besides this, India, with its raw produce and its people skilled in manufactures from of old, will soon, under a system of protection, become a great manufacturing nation,—will soon with its cheap labour and abundant supply of raw material supplant us throughout the East."—*India for Sale: Kashmir Sold,* by W. Sedgwick, Major, R. E., Calcutta, W. Newman & Co., Ltd., 1886, p. 4.

† "Indeed, it would not be too much to say that if any serious disaster ever overtook our Indian Empire or *if our political relations with the Peninsula of Hindustan were to be even partially disturbed, there is not a cottage in Great Britain—at all events in the manufacturing districts—which would not be made to feel the disastrous consequences of such an intolerable calamity*"—Lord Dufferin's Speeches in India, John Murray, p. 284.

तीसवां अध्याय

नेपाल युद्ध

भारत में उपनिवेश बनाने की योजना

लार्ड हेस्टिंग्स के शासनकाल का पहला राजनैतिक काम नेपाल युद्ध था। पिछले अध्यायों में कहा जा चुका है कि अंगरेज़ों की उन दिनों एक मुख्य अभिलाषा यह थी कि भारतवर्ष के अन्दर ठीक उसी तरह अंगरेज़ों की बड़ी-बड़ी बस्तियां आबाद की जाएं जिस तरह आस्ट्रेलिया, अफ्रीका, अमरीका आदि देशों में की जा चुकी थीं। इस तरह के अंगरेज़ी उपनिवेशों के लिए भारत के अन्दर सब से अधिक उपयोगी स्थान हिमालय की रमणीक घाटियां थीं। इसलिए देहरादून, कुमायूं और गढ़वाल के इलाक़ों पर अंगरेज़ों के बहुत दिनों से दांत थे। किन्तु ये सब ज़िले उस समय नेपाल के स्वाधीन राज में शामिल थे। यही हेस्टिंग्स के नेपाल युद्ध का वास्तविक कारण था। इससे कुछ साल पहले भी महाराजा रणजीतसिंह को भड़का कर और उससे मदद का वादा करके अंगरेज़ उसे गोरखों से लड़ा चुके थे।* प्रसिद्ध अंगरेज़ इतिहासज्ञ, प्रोफेसर एच० एच० विलसन लिखता है—

> **"किसी भी उत्तरी (यूरोपियन) जाति के लोग केवल एक ऐसे प्रदेश और ऐसी जलवायु में बस सकते हैं और फैल सकते हैं जो हिन्दोस्तान के गरम मैदानों की अपेक्षा यूरोपियन बस्तियों के लिए अधिक अनुकूल हों और जहां पर उनके स्वतंत्रता से फैलने के लिए काफ़ी जगह हो; और यदि कभी भी एशिया में अंगरेजों के उपनिवेश किसी ऐसे स्थान पर क़ायम होंगे जहां अंगरेजों की नैतिक और शारीरिक शक्तियां ज्यों की त्यों बनी रह सकें, तो इसकी आशा हम केवल भारतीय एल्पस (हिमालय) की पहाड़ियों और घाटियों में ही कर सकते हैं—यानी, इस तरह के उपनिवेश जब कभी क़ायम होंगे, गोरखा युद्ध के प्रताप से ही क़ायम होंगे"।†**

युद्ध का ज़ाहिरा कारण

ज़ाहिर है कि भारत में अंगरेज़ों के उपनिवेश बनाने के लिए इन पहाड़ी इलाक़ों की ज़रूरत थी और ये इलाक़ बिना नेपाल से युद्ध किए न मिल सकते थे। किन्तु युद्ध का ज़ाहिरा कारण कुछ और बताया गया। सारन और गोरखपुर के ज़िलों में भारत और नेपाल की सरहदें मिलती थीं। सरहद की कुछ ज़मीन कम्पनी और नेपाल दरबार के बीच

---

*Conningham's *History of the Sikhs.*

† "Under a climate more congenial to European organisation than the sultry plains of India, and with space through which they may freely spread, the descendants of a northern race may be able to aggregate and multiply; and if British Colonies be ever formed in the East, with a chance of preserving the moral and physical energies of the parent country, it is to the vales and mountains of the Indian Alps that we must look for their existence, it will be to the Gorkha war that they will trace their origin."—Mills, *History of British India,* vol. viii, pp. 59-60.

विवादग्रस्त थी। वास्तव में उस समय तक भारत और नेपाल के बीच की सरहद बिल्कुल साफ़ न थी और इस तरह के विवाद पहले भी कई बार हो चुके थे। ये विवाद दोनों राज्यों के संयुक्त कमीशनों के सुपुर्द कर दिए जाते थे और आमतौर पर उन कमीशनों का फ़ैसला दोनों स्वीकार कर लेते थे।

इतना ही नहीं, वरन् मालूम होता है कि अनेक बार ये झगड़े अंगरेज़ों के उकसाए हुए होते थे, और इस तरह के झगड़े खड़े करने में उन दिनों अंगरेज़ों को लाभ भी था। इतिहास लेखक हेनरी टी० प्रिन्सेप लिखता है कि अंगरेज़ सरकार अपनी सरहद के भारतीय ज़मींदारों का, जो अंगरेज़ सरकार को मालगुज़ारी देते थे और अंगरेज़ों की ही प्रजा समझे जाते थे, विश्वास न करती थी। इसलिए अनेक बार अंगरेज़ जानबूझकर उन ज़मींदारों के विरुद्ध नेपाल दरबार को भड़काते रहते थे। प्रिन्सेप यह भी लिखता है कि चूंकि अंगरेज़ सरकार ने इन ज़मींदारों के साथ स्थायी बन्दोबस्त कर रखा था, इसलिए ज़मींदारों की भूमि छिन जाने या कम हो जाने से अंगरेज़ों को कोई हानि न थी और न उन्हें इसकी परवाह थी, और जब कभी किसी झगड़े में अंगरेज़ ज़मींदारों का पक्ष लेते थे तो नेपाल सरकार अंगरेज़ों का कहना मान लेती थी।* इस बार भी वास्तव में झगड़ा कुछ ज़मींदारों और नेपाल सरकार के बीच था और इसमें कुछ भी सन्देह नहीं कि यदि अंगरेज़ चाहते तो पहले झगड़ों के समान इस झगड़े का भी शान्ति के साथ निबटारा हो जाता।

झगड़ा मोल लेना

किन्तु इस बार हेस्टिंग्स की इच्छा कुछ दूसरी थी। हेस्टिंग्स के भारत पहुंचने से पहले इस तरह का एक झगड़ा मौजूद था और उस झगड़े के फ़ैसले के लिए एक कमीशन भी नियुक्त था। इस कमीशन पर मेजर ब्रैडशा कम्पनी का वकील था। मालूम होता है मेजर ब्रैडशा को हेस्टिंग्स का इशारा मिल गया। मार्च सन् 1814 में एक दिन अचानक और अकारण मेजर ब्रैडशा ने अपने साथ के नेपाली कमिश्नरों का अपमान कर दिया। प्रोफ़ेसर विलसन लिखता है—

> **"नेपाली कमिश्नर मेजर ब्रैडशा से मिलने आए; मेजर ब्रैडशा ने उनके साथ अशिष्ट भाषा का उपयोग किया; इस पर वे लोग चुप रह गए; और यह देख कर कि कोई काम उनके सामने पेश नहीं किया गया, उठ कर चले आए।"†**

हेस्टिंग्स को बहाना मिल गया। जिस जमीन के बारे में झगड़ा था वह उस समय नेपाल के क़ब्ज़े में थी। हेस्टिंग्स ने बजाय मामले को तय करने के फ़ौरन महाराजा नेपाल को एक ज़ोरदार पत्र लिखा कि विवादग्रस्त भूमि तुरन्त खाली कर दीजिए। यह पत्र गोरखपुर के मैजिस्ट्रेट द्वारा नेपाल दरबार के पास भेजा गया। उसी दिन हेस्टिंग्स ने एक पत्र गोरखपुर के अंगरेज़ मैजिस्ट्रेट को लिखा कि यदि महाराजा नेपाल को पत्र भेजने के 25 दिन के अन्दर नेपाली उस ज़मीन को खाली न कर दें तो गोरखपुर से कम्पनी की सेना भेज कर उस भूमि पर ज़बरदस्ती कब्ज़ा कर लिया जाए।

---

* *History of the Political and Military Transactions in India during the Administration of the Marquis of Hastings,* by Henry T. Prinsep, pp. 63 et seq.

†*History of British India,* by Mill and Wilson, vol. viii, b. 12, footnote.

छेड़छाड़

नेपाली समझ गए कि अंगरेज़ युद्ध के लिए कटिबद्ध हैं। नेपाली जाति एक वीर जाति है। उस समय तक अपने समस्त इतिहास में उन्हें कभी भी पराधीनता या पराजय तक का सामना न करना पड़ा था। उन्होंने लड़ाई के इस आह्वान को स्वीकार कर लिया। फिर भी उन्होंने गवर्नर जनरल के अशिष्ट पत्र का उत्तर अत्यन्त शिष्ट भाषा में दिया, जिसमें नेपाल दरबार ने अपनी ओर से मित्रता क़ायम रखने की इच्छा प्रकट की। उधर गोरखपुर के मैजिस्ट्रेट ने 25 दिन समाप्त होते ही विवादग्रस्त भूमि पर क़ब्ज़ा करने के लिए तीन कम्पनी गोरे सिपाहियों को रवाना कर दिया। गोरखे अभी तक इसके लिए तैयार न थे। वे अंगरेज़ी सेना का बिना विरोध किए एक बार पीछे हट गए। अंगरेज़ी सेना उस इलाके में कुछ थाने क़ायम करके वापस आ गई। किन्तु अंगरेज़ी सेना अभी गोरखपुर पहुंची भी न थी कि 29 मई, सन् 1814 को सवेरे गोरखा सेना ने नये अंगरेज़ी थानों पर हमला कर उस इलाके पर फिर से क़ब्ज़ा कर लिया।

हेस्टिंग्स समझता था कि नेपाली इस जबरदस्ती को चुपचाप स्वीकार कर लेंगे। किन्तु गोरखा सेना के हमले ने मामले को संगीन बना दिया। अब अंगरेज़ों के लिए इस हमले का जवाब देना आवश्यक था। किन्तु हेस्टिंग्स के मार्ग में अभी दो कठिनाइयां थीं। एक तो प्रिन्सेप के अनुसार गवर्नर जनरल चाहता था कि युद्ध के ऐलान से पहले जो अंगरेज़ उस समय नेपाल के साथ तिजारत कर रहे थे उन्हें अपनी पूंजी सहित नेपाल से वापस बुला लिया जाए। दूसरे, यदि युद्ध देर तक चला तो उसके लिए काफ़ी धन की आवश्यकता थी। उसका भी प्रबन्ध करना था।

नवाब अवध और नेपाल युद्ध

जून सन् 1814 में मार्क्विस आफ़ हेस्टिंग्स धन की तलाश में कलकत्ते से उत्तर की ओर रवाना हुआ। कम्पनी की आर्थिक स्थिति उस समय खासी गिरी हुई थी। कम्पनी की हुण्डियां बाज़ार में बारह फ़ीसदी बट्टे पर बिकती थीं। किन्तु कम्पनी और उसके अंगरेज़ अफ़सरों की पुरानी कामधेनु, अवध का नवाब, मौजूद थी। नवाब गाज़ीउद्दीन हैदर उस समय अवध की गद्दी पर था। कहते हैं कि अंगरेज़ रेज़िडेण्ट, मेजर बेली, के बुरे व्यवहार के कारण नवाब गाज़ीउद्दीन हैदर जिन्दगी से बेज़ार हो रहा था। यहां तक कि गवर्नर जनरल के पास इसकी शिकायत पहुंची और गवरनर जनरल फ़ौरन लखनऊ के लिए चल दिया।

अवध के नवाब के साथ अन्याय

लार्ड हेस्टिंग्स ने 13 अक्तूबर, सन् 1814 के अपने निजी रोज़नामचे में लिखा है—

> "नवाब वज़ीर मेजर बेली के उद्धत व्यवहार के नीचे हर घंटे आहे भरता था। उसे यह आशा थी कि मैं इस अन्याय से उसे छुटकारा दिला दूंगा। किन्तु मैंने उसके ऊपर मेजर बेली के प्रभुत्व को रिबट लगा कर और भी अधिक पक्का कर दिया। मेजर बेली अत्यन्त छोटी से छोटी बातों में भी नवाब पर हुकूमत चलाता था। जब कभी मेजर बेली को नवाब से कुछ कहना होता था, वह चाहे जिस समय

बिना सूचना दिए नवाब के महल में पहुंच जाता था, अपने आदमियों को बड़ी-बड़ी तनखाहों पर जबरदस्ती नवाब के यहां नौकर रखा देता था और ये ही लोग नवाब के सब कामों की खबर देने के लिए मेजर बेली को जासूसों का काम देते थे। इस सब से बढ़ कर मेजर बेली जिस हाकिमाना शान के साथ हमेशा नवाब से बातचीत करता था उसके कारण उसने नवाब को कुटुम्बियों और प्रजा तक की नजरों में गिरा रखा था।"*

इस पर भी कहा जाता है कि नवाव गाज़ीउद्दीन लार्ड हेस्टिंग्स से इतना खुश हुआ (?) कि अपनी "कृतज्ञता प्रकट करने के लिए"† उसने उसी समय अंगरेज़ गवर्नर जनरल को ढाई करोड़ रुपये क़र्ज दे दिए।

मेजर बर्ड ने विस्तार के साथ बयान किया है कि यह ढाई करोड़ की नई रकम नवाब ग़ाज़ीउद्दीन को किस तरह सता-सता कर और किस तरह की यातनाएं दे-दे कर वसूल की गई।‡ इस यात्रा में ही हेस्टिंग्स ने नेपाल युद्ध के लिए अपनी विस्तृत योजना तैयार की और लखनऊ से ही 1 नवम्बर, सन् 1814 को नेपाल के साथ युद्ध का बाज़ाब्ता एलान कर दिया।

युद्ध की विशाल तैयारी

नेपाल का राज उस समय के कम्पनी के राज से कहीं छोटा था। दोनों राज्यों के बीच पंजाब में सतुलुज नदी से लेकर बिहार में कोसी नदी तक करीब 600 मील की लम्बी सरहद थी। युद्ध का ऐलान करने से पहले गवर्नर जनरल ने इस सरहद के पांच अलग-अलग स्थानों से पांच सेनाओं द्वारा नेपाल पर हमला करने का प्रबन्ध कर लिया। इन पांच सेनाओं का बंटवारा इस तरह किया गया—

(1) सब से पहली सेना कर्नल आक्टरलोनी के अधीन लुधियाने में नियुक्त की गई। यह वही आक्टरलोनी था जिसका ज़िक्र पहले कई बार आ चुका है; जो दिल्ली में मुसलमानी तर्ज़ से रहता था और जिसने अनेक हिन्दोस्तानी रण्डियां रख रखी थीं, जिनसे वह गुप्तचरों का भी काम लिया करता था। आक्टरलोनी के अधीन क़रीब छह हजार हिन्दोस्तानी पैदल और तोपखाने के सैनिक थे। यह सेना सतुलुज के निकट की पहाड़ियों पर से नेपाल पर हमला करने के लिए थी।

---

*"Nawab-Vazier and reckoned on being emancipated from the imperious domination of Major Baillie under which His Excellency groaned every hour, but that I had riveted him in his position, Major Baillie dictated to him in the merest trifles, broke in upon his at his palace without notice, whensoever he (Major Baillie) had anything to prescribe, fixed his (Major Baillie's) creatures upon His Excellency with large salaries, to be spies upon all his actions; and above all, lowered His Excellency in the eyes of his family and his subjects by the magisterial tone which he constantly assumed."—*Private Journal of the Marques of Hastings*, Panini Office, Allahabad, p. 97.

† "Out of gratitude."

‡*Dacoitee in Excelsis or Spoliation of Oudh by the East India Company.* by Major Brd. Chap. iv, pp. 58—76.

(2) दूसरी सेना मेजर जनरल जिलैस्पी के अधीन मेरठ में थी, जिसका काम देहरादून, गढ़वाल, श्रीनगर और नाहन पर हमला करना था। इस सेना में करीब एक हजार गोरे सिपाही और ढाई हजार देशी पैदल थे।

(3) तीसरी सेना मेजर जनरल वुड के अधीन बनारस और गोरखपुर में जमा की गई। इस सेना में करीब एक हजार गोरे और तीन हजार देशी सिपाही थे, इसका काम बूटवाल के रास्ते पाल्पा में प्रवेश करना था।

(4) चौथी सेना मेजर जनरल मारले के अधीन मुर्शिदाबाद से जमा की गई। इसमें 907 गोरे और करीब 7000 देशी सिपाही थे। नेपाल पर हमला करने के लिए यही मुख्य सेना थी। इसका काम गण्डक और वागमती के बीच के दर्रों से होकर नेपाल की राजधानी, काठमाण्डू पर हमला करना था।

(5) पांचवीं सेना और अधिक पूरब में कोसी नदी के उस पार मेजर लैटर के अधीन जमा की गई। इस सेना में करीब दो हजार सिपाही थे। मेजर लैटर का मुख्य कार्य पूर्निया की सरहद की रक्षा करना और सिक्किम के राजा को नेपाल के विरुद्ध अपनी ओर फोड़ना था।

इस तरह अंगरेज़ सरकार ने तीस हज़ार सेनामय तोपों आदि के नेपाल पर हमला करने के लिए तैयार कर ली। इस सेना के मुकाबले के लिए नेपाल दरबार मुश्किल से 12 हज़ार सेना जमा कर सका। नेपाली अंगरेज़ों के मुकाबले में न इतना धन खर्च कर सकते थे, न उनके पास इतने अच्छे हथियार थे और न वे कूटनीति में अंगरेज़ों की टक्कर के थे।

वीर बलभद्रसिंह

सबसे पहले मेजर जनरल जिलैस्पी की सेना ने नेपाल की सरहद के अन्दर प्रवेश किया। नाहन और देहरादून, दोनों उस समय नेपाल के राज में थे। नाहन का राजा अमरसिंह थापा, नेपाल दरबार का एक प्रसिद्ध सेनापति था और अमरसिंह थापा का भतीजा, सेनापति बलभद्रसिंह, केवल 600 आदमियों सहित देहरादून की रक्षा के लिए नियुक्त था। अंगरेज़ी सेना के आने की खबर पाते ही बलभद्रसिंह ने बड़ी शीघ्रता के साथ देहरादून से करीब साढ़े तीन मील दूर नालापानी की सबसे ऊंची पहाड़ी के ऊपर कलंगा नाम का एक छोटा सा दुर्ग खड़ा कर लिया। बलभद्रसिंह के आदमी अभी बड़ी-बड़ी चट्टानों और जंगली लकड़ियों की सहायता से इस दुर्ग की चहारदीवारी तैयार कर ही रहे थे कि जिलैस्पी की सेना का अधिकांश भाग कर्नल मांबी के अधीन 24 अक्तूबर को देहरादून पहुंच गया। लिखा है कि 'खीरी के ज़मीदारों' और 'बहादुरसिंह के बेटे राणा जीवनसिंह' ने देहरादून तक पहुंचने में अंग्रेज़ों को बहुत मदद की। जिलैस्पी स्वयं कुछ पीछे रह गया। स्मरण रखना चाहिए कि इसके आठ दिन के बाद 1 नवम्बर को हेस्टिंग्स ने नेपाल के साथ बाज़ाब्ता युद्ध का ऐलान किया। फिर भी सेनापति बलभद्रसिंह ने इस अवसर पर अपने से नौगुनी और कहीं अधिक सन्नद्ध अंगरेज़ी सेना का अपने नाम मात्र के दुर्ग में जिस वीरता के साथ मुकाबला किया, वह वीरता संसार भर के इतिहास में सदा के लिए स्मरणीय रहेगी।

कलंगा के दुर्ग के अन्दर बलभद्रसिंह के पास केवल तीन सौ सिपाही और तीन सौ

स्त्रियां और बच्चे थे। करनल मांबी को विश्वास था कि बलभद्रसिंह उस छोटे से अधकचरे दुर्ग के अन्दर, मुट्ठीभर आदमियों के सहारे, अंगरेज़ी सेना से मुकाबले का साहस न करेगा। 24 अक्तूबर की रात को मांबी ने बलभद्रसिंह को लिख भेजा कि दुर्ग अंगरेज़ों के हवाले कर दो। बलभद्रसिंह ने मांबी के दूत के सामने पत्र को पढ़कर फाड़ डाला और उसी दूत की जबानी अंगरेज़ी सेना को तुरन्त युद्ध के लिए आमन्त्रित किया।

25 तारीख को सवेरे कर्नल मांबी अपनी सेना सहित नालापानी की तलहटी में जा पहुंचा। दुर्ग के चारों ओर तोपें लगा दी गईं। दुर्ग के भीतर से नेपाली बन्दूकों की गोलियां बराबर अंगरेज़ी तोपों का जवाब देती रहीं। मावी ने जब देखा कि शत्रु को वश में करना इतना सरल नहीं है, तो उसने जनरल जिलैस्पी को खबर दी। जिलैस्पी उस समय सहारनपुर में था। 26 अक्तूबर को जिलैस्पी नालापानी पहुंचा। तीन दिन जिलैस्पी को तैयारी में लगे। उसके बाद उसकी आज्ञानुसार चारों ओर से चार अंगरेज़ी पलटनों ने एक साथ दुर्ग पर हमला किया। एक ओर की पलटन करनल कारपेण्टर के, दूसरी ओर कप्तान फ़ास्ट के, तीसरी ओर की मेजर कैली के और चौथी ओर की कप्तान कैम्पवेल के अधीन थी। एक पांचवीं पलटन मेजर लडलो के अधीन खास जरूरत के समय के लिए पीछे रखी गई।

नेपाली स्त्रियों की वीरता

चारों ओर से जोरों के साथ कलंगा के दुर्ग पर गोलावारी शुरू हुई। अंगरेज़ी तोपों ने बलभद्रसिंह के तीन सौ बहादुरों में से अनेक को मौत की नींद सुला दिया। फिर भी दुर्ग के भीतर से बन्दूकों की गोलियां लगातार तोप के गोलों का जवाब देती रहीं। अंगरेज़ी सेना में से जो योद्धा बार-बार दुर्ग तक पहुंचने की कोशिश करते थे उन्हें भीतर की गोलियां हर बार वहीं पर खत्म करती रहीं। कप्तान वन्सीटार्ट लिखता है कि गोलियों की इस बौछार में अनेक बार साफ़ दिखाई दिया कि नेपाली स्त्रियां बेधड़क चहारदीवारी पर खड़ी होकर वहां से शत्रुओं के ऊपर पत्थर फेंक रही थीं; यहां तक कि बाद में दीवार के खण्डहरों में अनेक स्त्रियों की लाशें मिलीं। अंगरेज़ी सेना ने अनेक बार ही दुर्ग की दीवार तक पहुंचने के प्रयत्न किए किन्तु सब निष्फल गए। इनमें अनेक अंगरेज़ी अफ़सरों और सिपाहियों की जाने गईं। इन्हीं में से एक प्रयत्न में मेजर जनरल जिलैस्पी ने भी कलंगा की दीवार के नीचे अपने प्राण दिए।

जिलैस्पी की करुणाजनक मृत्यु

जिलैस्पी की मृत्यु वास्तव में अत्यन्त करुणाजनक थी। उसका मुख्य कारण गोरे सिपाहियों की कायरता थी। इतिहास लेखक विलसन लिखता है कि बार-बार की हार से चिढ़ कर जनरल जिलैस्पी स्वयं तीन कम्पनियां गोरे सिपाहियों की साथ लेकर दुर्ग के फाटक की ओर बढ़ा। दुर्ग के अन्दर से गोलियों और पत्थरों की बौछार शुरू होते ही ये तीन सौ गोरे सिपाही पीछे हट गए। वीर जिलैस्पी अकेला आगे बढ़ा। उसने अपनी नंगी तलवार घुमाकर और ललकार कर अपने सिपाहियों को आगे बुलाना चाहा, किन्तु व्यर्थ! इतने ही में एक गोली दुर्ग के फाटक से 30 गज़ पर जिलैस्पी की छाती में आकर लगी और जिलैस्पी वहीं पर ढेर हो गया।

कलंगा का दुर्ग

लिखा है कि कलंगा के फाटक के ठीक ऊपर गोरखों की एक तोप थी जिसकी आग से होकर शत्रु को आगे बढ़ने की हिम्मत न होती थी। गोरखों के पैने तीरों ने भी अंगरेज़ी सेना के संहार में सहायता दी। इसके अतिरिक्त, विलियम्स साफ लिखता है कि गोरखे इस वीरता के साथ दुर्ग की रक्षा कर रहे थे कि अंगरेज़ी सेना को दुर्ग की दीवार तक बढ़ने का साहस न होता था। भारत के अन्दर प्राय: हर ऐसे खतरे के अवसर पर अंगरेज सिपाहियों ने हद दरजे की कायरता का परिचय दिया है। भरतपुर के मोहासरे के समय के उनके लज्जास्पद व्यवहार को इस पुस्तक में एक दूसरे स्थान पर बयान किया जा चुका है।

जिलैस्पी की मृत्यु के बाद थोड़ी देर के लिए सेना का नेतृत्व फिर कर्नल मांवी के हाथों में आया। मांवी ने मोहासरे को जारी रखने की अपेक्षा अब जल्दी से पीछे हट जाने में अधिक बुद्धिमत्ता समझी। पीछे हट कर उसने सहायता के लिए दिल्ली पत्र लिखा। एक महीने में और अधिक फौज़ और तोपें दिल्ली से देहरादून पहुंचीं। 25 नवम्बर को फिर एक बार अंगरेजी सेना ने कलंगा के दुर्ग के विजय करने का प्रयत्न किया, किन्तु इस बार भी उन्हें हार खाकर पीछे हटना पड़ा। मोहासरा जारी रहा और अंगरेज़ी तोपें रात दिन दुर्ग के ऊपर गोलों की वर्षा करती रही।

गोरखा सेना को प्यास से लाचारी

इस बीच दुर्ग के अन्दर पानी खत्म हो गया। पानी वहां नीचे की पहाड़ियों के कुछ झरनों से जाता था। ये झरने इस समय अंगरेज़ी सेना के हाथों में थे और अंगरेज़ों ने दुर्ग के अन्दर पानी का जाना बिल्कुल बन्द कर दिया था। बलभद्रसिंह और उसके बचे हुए साथियों की हालत इस समय अत्यन्त करुणाजनक थी। अंगरेज़ी तोपों के गोले दुर्ग के भीतर लगातार काम कर रहे थे। इस बौछार में जख्मियों की चीखें और पानी की एक-एक बूंद के लिए स्त्रियों और बच्चों की तड़पन और इस सब पर एक छोटा सा नाम मात्र का दुर्ग, जिसके चारों ओर की दीवारों में सूराख हो चुके थे और दुर्ग के बाहर असंख्य शत्रु। शत्रु के गोलों की शायद वे इतनी परवाह न करते, किन्तु पानी की प्यास ने उन्हें लाचार कर दिया।

30 नवम्बर को सवेरे, जब कि अंगरेज़ी तोपों से गोलाबारी बराबर जारी थी और उनके जवाब में गोरखा बन्दूकों की गोलियां भी लगातार काम कर रही थीं, एकाएक दुर्ग के अन्दर की बन्दूकें और कमानें चन्द मिनट के लिए शान्त हो गईं। अचानक दुर्ग का लोहे का फाटक खुला।

अंगरेज़ समझे कि बलभद्रसिंह अब हमारी अधीनता स्वीकार करने वाला है। किन्तु उन्हें धोखा हुआ। अब भी शत्रु की अधीनता स्वीकार करने का विचार वीर बलभद्रसिंह या उसके साथी गोरखों के मन में न आया था। कलंगा के भीतर के करीब 600 प्राणियों में से केवल 70 उस समय तक जिन्दा बचे थे, जिनमें स्त्रियां भी थीं। ये सब प्यास से बेताब थे। दुर्ग का फाटक खुलते ही ये 70 गोरखा स्त्री और पुरुष नंगी तलवारें हाथों में लिए, बन्दूकें कन्धों पर रखे, कमर से खुकरियां लटकाए, सिरों पर

फ़ौलादी चक्र लपेटे, वीर बलभद्रसिंह के नेतृत्व में शान्ति और शान के साथ फाटक के बाहर निकले। बलभद्रसिंह का शरीर सीधा, चेहरा हंसता हुआ और चाल एक सच्चे सिपाही की तरह नपी हुई थी। पेशतर इसके कि अंगरेज़ अफ़सर यह समझ सकें कि क्या हो रहा है, बलभद्रसिंह अंगरेज़ी सेना के बीच से रास्ता काटता हुआ अपने 70 साथियों सहित नालापानी के झरनों पर पहुंचा। जी भर कर उन सबने चश्मों का ताज़ा पानी पिया और फिर वहां से ललकार कर कहा—"तुम दुर्ग विजय नहीं कर सके किन्तु अब मैं अपनी इच्छा से दुर्ग छोड़ता हूं।"*

इसके बाद शत्रु के देखते-देखते एक क्षण भर के अन्दर बलभद्रसिंह और उसके साथी पास की पहाड़ियों में गुम हो गए।

अद्भुत वीरता

जिस समय अंगरेज़ दुर्ग के भीतर पहुंचे वहां सिवाय मरदों, औरतों और बच्चों की लाशों के और कुछ न था। कप्तान वन्सीटार्ट लिखता है कि इस दुर्ग के मुट्ठी भर संरक्षकों ने अंगरेज़ों की पूरी एक डिवीजन को एक महीने से ऊपर तक रोके रखा।† जनरल जिलैस्पी को मिला कर अंगरेज़ों के 31 अफ़सर और 718 सिपाही इस संग्राम में काम आए। अंगरेज़ों ने कलंगा के दुर्ग पर कब्जा करते ही उसे ज़मीन से मिला कर बराबर कर दिया। इस समय (1929) उस स्थान पर साल वृक्षों का एक घना जंगल है। आर० सी० विलियम्स इस घटना के सम्बन्ध में लिखता है—

> **"कलंगा के दुर्ग की रक्षा का इस तरह अन्त हुआ। यह रक्षा का काम वीर से वीर जाति के इतिहास को अलंकृत करने वाला था और इस वीरता के साथ उसका सम्पादन किया गया जो प्रायः हमारी अपनी पराजयों की लज्जा को धोने के लिए काफ़ी था।"‡**

देहरादून के जंगलों में रीचपाना नदी के किनारे अभी तक (1929) एक छोटा-सा स्मारक बना हुआ है जिस पर खुदा हुआ है—

> **"हमारे वीर शत्रु बलभद्रसिंह और वीर गोरखों की स्मृति में सम्मानोपहार × × ×।"§**

बलभद्रसिंह कलंगा से निकल कर अपने सिपाहियों सहित एक दूसरे नेपाली दुर्ग, जौंतगढ़ की रक्षा के लिए पहुंच गया।

जौंतगढ़ में मेजर बेलडाक ने एक हज़ार सेना लेकर दुर्ग पर हमला किया। बलभद्रसिंह के पास पांच सौ से कम सैनिक थे। फिर भी, विलियम्स लिखता है, अंगरेज़ी

---

* "......On abandoning his stronghold, the Gorkha Leonidas triumphantly exclaimed in a loud voice: "To capture the fort was a thing forbidden, but now I leave it of my own accord."—*Memoir of Dehra Dun,* by G. R. C Williams.

† *Notes on Nepal,* by Captain Vansittart.

‡ "Such was the conclusion of the defence of Kulunga, a feat of arms worthy of the best days of chivalry, conducted with a heroism almost sufficient to palliate the disgrace of our own reverses."—*Memoir of Dehra Dun,* by G. R. C. Williams.

§ "......As a tribute of respect for our gallant adversary Balabhadr Singh......And his brave Gorkhas......"

सेना को जिल्लत के साथ हार खा कर पीछे हट जाना पड़ा। बलभद्रसिंह जौंतगढ़ की रक्षा का काम केवल साठ आदमियों को सौंप कर अपने बाकी आदमियों सहित जयटक के दुर्ग की रक्षा के लिए पहुंचा।

साजिशें

कम्पनी के अफ़सर समझ गए कि अपने सुपरिचित "गुप्त उपायों" के, केवल सेना और तोपों के बल गोरखों को जीत सकना असम्भव है। कलंगा के दुर्ग पर कब्ज़ा करने के बाद कर्नल मावी ने अपने एक मातहत अफ़सर, कर्नल कारपेण्टर, को जमुना नदी के दाहिनी ओर नेपाल के इलाके में इसलिए भेजा, कि वह वहां की पहाड़ी क़ौमों को भड़का कर नेपाल दरबार के विरुद्ध उनसे विद्रोह करवा दे। इतिहास लेखक विलसन लिखता है कि कर्नल कारपेण्टर के प्रयत्नों से जौनसर इलाक़े की प्रजा बगावत कर बैठी, जिसके कारण बैराठ के दुर्ग की मुट्ठी भर गोरखा सेना को दुर्ग छोड़ कर पीछे हट जाना पड़ा। कर्नल मावी सिरमौर की राजधानी नाहन पहुंचा। सिरमौर नेपाल की एक सामन्त रियासत थी। हाल में नेपाल दरबार ने सिरमौर के पुराने राजा को किसी अपराध में गद्दी से उतार कर अमरसिंह थापा को वहां का शासन सौंप दिया था। अमरसिंह थापा उस समय श्रीनगर के दुर्ग की रक्षा के लिए नियुक्त था। अमरसिंह का पुत्र रणजूरसिंह नाहन में था। कर्नल मावी ने अमरसिंह की अनुपस्थिति में पदच्युत राजा को अपनी ओर तोड़ लिया। अमरसिंह ने अपने पुत्र रणजूरसिंह को आज्ञा दी कि तुम नाहन छोड़ कर कुछ दूर उत्तर की ओर जयटक के दुर्ग में आ जाओ और आसपास की पहाड़ियों को अपनी सेना से घेर लो। जयटक के दुर्ग में रणजूरसिंह के अधीन क़रीब दो हज़ार नेपाली सेना थी। 20 दिसम्बर, सन् 1814 को जनरल जिलैस्पी की जगह जनरल मारटिण्डल उस ओर की अंगरेजी सेना का प्रधान सेनापति नियुक्त हुआ। 25 दिसम्बर को जनरल मारटिण्डल ने अपनी समस्त सेना सहित जयटक के दुर्ग पर हमला किया। वीर बलभद्रसिंह भी उस समय जयटक के दुर्ग में मौजूद था। मारटिण्डल की सेना दुर्ग की नेपाली सेना से कई गुनी थी।

अंगरेज़ों की हारें

मारटिण्डल कलंगा के दुर्ग की कहानी सुन चुका था। उसे पता लगा कि जयटक के दुर्ग के अन्दर पीने का पानी नीचे के कुछ कुओं से जाता है। उसने अपनी मुख्य सेना को दो अलग-अलग दलों में बांट कर एक दल मेजर लडलो के अधीन और दूसरा दल मेजर रिचर्ड्स के अधीन दो ओर से इन कुओं को घेर लेने के लिए भेजा। किन्तु गोरखों ने इन दोनों सैन्य दलों को बुरी तरह परास्त किया और मेजर लडलो और मेजर रिचर्डस, दोनों को अपने अनेक अफ़सर और सैकड़ों सिपाही मैदान में छोड़कर, उनको शत्रु के हाथों कैद करा कर पीछे लौट आना पड़ा। प्रोफ़ेसर विलसन लिखता है कि इस हार के बाद जनरल मारटिण्डल को जयटक के किले पर दोबारा हमला करने का साहस न हो सका। जनरल जिलैस्पी वाली सेना की कहानी यहीं पर समाप्त हो जाती है। कुल जितनी सेना मेरठ से रवाना हुई थी उसमें से एक तिहाई इस समय तक खत्म हो चुकी थी।

दो और सेनाएं, जिनमें करीब बारह हजार सिपाही थे, गोरखपुर और बिहार में जमा की गई थीं। इन दोनों सेनाओं का काम पूरब की ओर से नेपाल में प्रवेश करके राजधानी काठमाण्डू पर हमला करना था। किन्तु इन दोनों दलों को और भी अधिक लज्जाजनक पराजयों का सामना करना पड़ा। अनेक स्थानों पर नेपाली सेना के साथ इनके संग्राम हुए और हर संग्राम में बुरी तरह हार खाकर इन्हें पीछे हट जाना पड़ा। इन दोनों विशाल सैन्य दलों को कई अंगरेज़ सेनापति इतने नालायक और कायर साबित हुए कि गवर्नर जनरल को उन्हें बरखास्त कर देना पड़ा। अभी तक जितने युद्ध अंगरेज़ों ने भारत में लड़े थे उनमें शायद सबसे अधिक प्रचण्ड और रक्तरंजित यह युद्ध था। इस युद्ध में पद-पद पर नेपालियों ने अपने शत्रुओं से कहीं बढ़ कर वीरता और युद्धकौशल का परिचय दिया। हमें इस युद्ध के समस्त संग्रामों को विस्तार से बयान करने की आवश्यकता नहीं है। इतिहास लेखक प्रिन्सेप पूर्वोक्त दोनों सेनाओं की पराजयों के बारे में लिखता है——

> **"अवध की सरहद से लेकर रंगपुर तक गोरखों ने हमारी सेनाओं को वन के उस पार जाने से पूरी तरह रोके रखा; जब कि वे बेधड़क हमारे इलाके में घुस आते थे और हम कुछ न कर पाते थे, और देश भर में हमारे विरुद्ध खूब बढ़ बढ़ कर अफ़वाहें उड़ी हुई थीं।"***

अमरसिंह और आक्टरलोनी

चौथी सेना आक्टरलोनी के अधीन लुधियाने में थी। पांचों मुख्य सेनापतियों में केवल एक आक्टरलोनी ही ऐसा था जिसने किसी न किसी अंश में सफलता प्राप्त की। आक्टरलोनी पाश्चात्य कूटनीति में प्रवीण था और इस कूटनीति से ही उसने थोड़ी बहुत सफलता प्राप्त की।

आक्टरलोनी नेपाल की सुदूर पश्चिमी सरहद पर था। सतुलुज के पास से उसने नेपाली इलाके में प्रवेश किया। सतुलुज के बाएं किनारे से तीन अलग-अलग पंक्तियां पहाड़ियों की शुरू होती हैं। इन तीनों पर गोरखों ने नालागढ़, रामगढ़ और मालम नाम के तीन क़िले बना रखे थे। इन क़िलों के बीच में और उनके पार कई छोटी-छोटी रियासतें थीं जो सब नेपाल के अधीन थीं। जनरल आक्टरलोनी ने पहले इन रियासतों को अपनी ओर फोड़ना शुरू किया।

31 अक्तूबर, सन् 1814 को आक्टरलोनी अपनी सेना लेकर इन पहाड़ियों पर चढ़ा। 2 नवम्बर को उसने नालागढ़ के दुर्ग के सामने तोपें लगा दीं। नालागढ़ और उसके पास तारागढ़ के दुर्ग में मुश्किल से 500 गोरखा सिपाही थे। आक्टरलोनी की सेना करीब 6 हजार थी। चार दिन के प्रयत्न के बाद 6 नवम्बर को ये दोनों दुर्ग आक्टरलोनी के हाथों में आ गए। इसके बाद 13 नवम्बर को आक्टरलोनी रामगढ़ की ओर बढ़ा। रामगढ़ में बलभद्रसिंह का चाचा, सुप्रसिद्ध सेनापति अमरसिंह, कुछ कम तीन हजार

---

* "......From the frontier of Oudh to Rangpur, our armies were completely held in check on the outside of the forest; while our territory was insulted with impunity and the most extravagant alarms spread through the country."— Princep's *History of the Political and Military Transactions in India, etc.*

सेना सहित आक्टरलोनी के मुक़ाबले के लिए मौजूद था। आक्टरलोनी के पास उस समय कम से कम सात हजार सेना थी। फिर भी अमरसिंह ने अपने तीन हजार सैनिकों से अंगरेज़ों के सात हजार सैनिकों को न केवल दुर्ग से बाहर ही रोके रखा, वरन् कई बार स्वयं दुर्ग से निकल कर उन्हें जबरदस्त शिकस्त दी और दूर तक खदेड़ दिया। इतिहास लेखक प्रिन्सेप लिखता है कि इन विजयों के समय भी गोरखों ने पराजित शत्रु के साथ इस उदारता का व्यवहार किया जो एशियाई क़ौमों का एक विशेष गुण है। उन्होंने अंगरेज़ों को अपने मुर्दे मैदान से ले जाने और उन्हें दफ़न करने इत्यादि की पूरी इजाज़त दे दी। प्रिन्सेप और दूसरे यूरोपियन लेखकों के अनुसार गोरखे इस सारे युद्ध में शत्रु की ओर इससे भी बढ़ कर वीरोचित उदारता का परिचय देते रहे।

गवर्नर जनरल के नाम आक्टरलोनी के एक पत्र से मालूम होता है कि इस समय आक्टरलोनी को अपनी सफलता में भारी सन्देह हो गया। फिर भी वह नेपाल दरबार के विरुद्ध आसपास के पहाड़ी राजाओं के साथ साज़िशों में लगा रहा। इन राजाओं में सब से पहले उसने हिन्दुर (नालागढ़) के राजा रामसरन को अपनी ओर मिलाया। कनिंघम ने अपने सिखों को इतिहास में लिखा है कि राजा रामसरन की सहायता उस समय अंगरेज़ों के लिए सबसे अधिक लाभदायक सिद्ध हुई। रामसरन ने आक्टरलोनी को आदमियों और रसद, दोनों से मदद दी। राजा रामसरन ही ने अपने आदमियों से अंगरेज़ों की तोपों के जाने के लिए मकराम से नाहर तक सड़क बनवा दी। दूसरा पहाड़ी राजा, जिसे आक्टरलोनी ने अपनी ओर मिलाया, अमरसिंह का एक सम्बन्धी, बिलासपुर का राजा था। इसके अतिरिक्त गवर्नर जनरल ने आक्टरलोनी का पत्र पाते ही और अधिक सेना उसकी सहायता के लिए भेज दी।

इस तरह आक्टरलोनी के पास अब एक तो अमरसिंह से दुगुनी से अधिक सेना थी, दूसरे उसने नेपाल राजा के सामन्तों और वहां की प्रजा को भी झूठे लोभ देकर अमरसिंह के विरुद्ध तोड़ लिया।

आक्टरलोनी की हार

इस सब के होते हुए भी नवम्बर सन् 1814 से अप्रैल सन् 1815 तक, अर्थात् पूरी सरदी भर आक्टरलोनी ने अमरसिंह की सेना पर जितनी बार हमले किए उतनी बार ही उसे हार खाकर पीछे हटना पड़ा। इतिहास लेखक प्रिन्सेप ने इन सब लड़ाइयों में अमरसिंह की वीरता और उसके युद्धकौशल की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की है।

नेपालियों की ओर इस समय सबसे बड़ी कमी इस बात की रही कि गोरखा सेनापतियों का केवलमात्र लक्ष्य अपने इलाके की रक्षा करना था। उन्होंने एक बार भी आगे बढ़ कर अंगरेज़ी इलाक़े पर हमला करने का इरादा न किया। इसका कारण चाहे यह रहा हो कि तादाद में, धन में और युद्ध के सामान में अंगरेज़ों से कम थे और उन्हें आगे बढ़ने का साहस न हो सका, या यह कि वे वृथा रक्तपात के विरुद्ध थे; किन्तु इससे अंगरेज़ों को अपने "गुप्त उपायों" के लिए काफी समय मिल गया।

कुमायूं और गढ़वाल

पश्चिम में आक्टरलोनी की साज़िशें जारी रहीं और पूरब में मेजर लैटर ने, जो

पांचवीं सेना का प्रधान सेनापति था, सिक्किम के राजा को नेपाल के विरुद्ध अपनी ओर कर लिया, और उसकी मदद से नेपाल के मौरांग प्रान्त पर क़ब्जा कर लिया।

गवर्नर जनरल को इस समय पता लगा कि नेपाल की सरहद का सब से अधिक नाजुक हिस्सा कुमायूं और गढ़वाल की ओर का है। कुमायूं का प्रान्त उस समय नेपाल के अधीन था और चौतरा बादशाह नामक एक व्यक्ति वहां का सूबेदार था। गवर्नर जनरल ने कर्नल गार्डनर को चौतरा बादशाह के साथ साज़िश करने के लिए नियुक्त किया। इस गार्डनर ने सन् 1798 में होलकर के यहां नौकरी की थी, और विश्वासघात के अपराध में होलकर के यहां से निकाला जा चुका था। गार्डनर ने इस्लाम की विधि के अनुसार एक मुसलमान स्त्री के साथ निकाह कर रखा था। साज़िशें करने में वह आक्टरलोनी के समान सिद्धहस्त था। गार्डनर की मदद के लिए एक और अंगरेज़, डाक्टर रथरफ़ोर्ड, को नियुक्त किया गया, जो गढ़वाल और कुमायूं में कम्पनी का व्यापारिक एजेण्ट और मुरादाबाद में सिविल सर्जन रह चुका था। लिखा है कि डाक्टर रथरफ़ोर्ड ने सारे कुमायूं और गढ़वाल में अनेक पण्डितों, देशी सिपाहियों और अन्य लोगों को तनखाहें दे देकर उनसे जासूसों का काम लिया। इतिहास लेखकों की राय है कि नेपाल युद्ध के अन्त में अंगरेज़ों को सफलता का सबसे अधिक श्रेय आक्टरलोनी और डाक्टर रथरफ़ोर्ड, इन दो को ही मिलना चाहिए। गार्डनर और रथरफ़ोर्ड, दोनों को पूरी सफलता मिली। कुमायूं और गढ़वाल के मातहत शासक और वहां की अधिकांश प्रजा भी नेपाल दरबार के विरुद्ध अंगरेज़ों से मिल गई, और अन्त में अप्रैल सन् 1815 में थोड़ी सी सेना कर्नल निकोल्स के अधीन भेज कर बिना अधिक रक्तपात के हेस्टिंग्स ने कुमायूं और गढ़वाल, दोनों पर कब्जा कर लिया। निस्सन्देह अवध के ढाई करोड़ रुपयों ने इन साज़िशों में हेस्टिंग्स को खूब मदद दी।

इस तरह नेपाली साम्राज्य के दो सबसे अधिक उर्वर प्रान्त केवल रिश्वतों के बल उस साम्राज्य से तोड़ लिए गए। नेपाल दरबार के लिए यह एक जबरदस्त धक्का था।

लम्बी थैली

हम ऊपर लिख चुके हैं कि नेपालियों को 600 मील की लम्बी सरहद की रक्षा करनी पड़ रही थी। उनकी कुल सेना अंगरेज़ों की सेना से आधी से भी कहीं कम थी। इस पर भी जितनी बार और जहां-जहां अंगरेज़ों और नेपालियों में खुला युद्ध हुआ, वीरता और युद्धकौशल, दोनों में नेपाली अंगरेज़ों से कहीं बढ़ कर साबित हुए, और हर संग्राम में अंगरेज़ों को ज़िल्लत के साथ हार खाकर पीछे हट जाना पड़ा। किन्तु इस समस्त वीरता और युद्धकौशल के होते हुए भी, पाश्चात्य कूटनीति और अवध के धन के प्रताप से चन्द महीनों के अन्दर पूरब में मोरांग का प्रान्त, बीच में कुमायूं और गढ़वाल के प्रदेश और पश्चिम में हिन्दुर और बिलासपुर की सामन्त रियासतें नेपाली साम्राज्य से तोड़ ली गई। देहरादून और नालागढ़ अंगरेज़ों ने विजय कर लिए। प्रिन्सेप ने साफ स्वीकार किया है कि नेपाल युद्ध में अंगरेज़ों को मुख्यतः अपनी "लम्बी थैली"* के प्रताप से सफलता प्राप्त हुई।

---

* "......the length of the purse."—Prinsep, vol. i, pr. i. 136.

सन्धि

किन्तु इससे अधिक बढ़ना अंगरेज़ों के लिए असम्भव था। नेपाली भी पाश्चात्य कूटनीति के सामने लाचार हो गए। दोनों पक्ष अब सुलह चाहते थे। जून सन् 1815 में युद्ध बन्द हो गया। महाराजा नेपाल ने अपने कुलपुरोहित, गुरु गजराज मिश्र, को अंगरेज़ पोलिटिकल एजेण्ट, मेजर ब्रैडशा, के पास सुलह की बातचीत के लिए भेजा। मेजर ब्रैडशा ने गवर्नर जनरल की आज्ञानुसार जो शर्तें पेश की उनको स्वीकार करना किसी भी आत्मसम्मानी नरेश के लिए सम्भव न था। संक्षेप में वे शर्तें ये थीं—

जितने इलाके पर अंगरेज़ों ने इस समय तक कब्जा कर लिया है, वह सब, और उसके अलावा नेपाली सरहद के बराबर और बहुत सा इलाक़ा अंगरेज़ों को दे दिया जाए, काठमाण्डू में एक अंगरेज़ रेजिडेण्ट दल बल सहित रहा करे और बिना अंगरेज़ों की इजाज़त के नेपाल दरबार न किसी यूरोपनिवासी को अपने यहां आने दे और न नौकर, रखे इत्यादि।

अमरसिंह थापा का पत्र

महाराजा नेपाल ने गवर्नर जनरल से इन शर्तों पर फिर विचार करने की प्रार्थना की, किन्तु व्यर्थ। इस बीच गवर्नर जनरल बराबर चारों ओर सरहद पर फ़ौजें बढ़ाता रहा। सेनापति अमरसिंह ने मार्च सन् 1815 में, जब कि लड़ाई जारी थी, अपने स्वामी महाराजा नेपाल के नाम एक पत्र लिखा जिससे अमरसिंह की नीतिज्ञता और वीरता दोनों का परिचय मिलता है। इस पत्र में अमरसिंह ने महाराजा नेपाल को सलाह दी कि—

> **"अंगरेज़ों पर किसी तरह का विश्वास न किया जाए, नेपाल के सामन्तों के साथ साजिशें करके ये लोग सदा नेपाल को निर्बल करने के प्रयत्न करते रहेंगे; काठमाण्डू में अंगरेज रेजिडेण्ट को स्थायी तौर पर रहने की इजाजत देना अत्यन्त खतरनाक है, इससे धीरे-धीरे नेपाल के ऊपर 'सबसीडियरी' सेना का लादा जाना और अन्त में नेपाल का पराधीन हो जाना अनिवार्य हो जाएगा।"**

भरतपुर के राजा, टीपू सुल्तान, आदि की मिसालें देकर अमरसिंह ने महाराजा नेपाल को सलाह दी कि—"नेपाल के अन्दर अंगरेज़ों को रिआयतें देकर सुलह करने की अपेक्षा मर्दाना वार लड़ते रहने में देश का अधिक हित है।" इत्यादि।*

इसमें सन्देह नहीं कि अमरसिंह ने उस समय के अंगरेज़ों के चरित्र को पूरी तरह समझ लिया था। एक ओर अंगरेज़ गवर्नर जनरल की असम्भव मांग, दूसरी ओर अमरसिंह जैसों की सलाह और नेपालियों का स्वाभाविक आत्मसम्मान। परिणाम यह हुआ कि सात महीने से ऊपर युद्ध बन्द रहने के बाद जनवरी सन् 1816 में नए सिरे से अंगरेज़ों और नेपालियों के बीच युद्ध शुरू हो गया। किन्तु दोनों पक्ष थक चुके थे, इस बार मुश्किल से दो महीने युद्ध जारी रह सका।

अन्त में मार्च सन् 1816 में दोनों पक्षों के बीच सन्धि हो गई, जिसमें नेपाल की स्वाधीनता क़ायम रही, किन्तु नेपालियों की भावी राजनैतिक आकांक्षाओं को एक ओर

---

* **Prinsep, vol. i, p. 192.**

से चीनी साम्राज्य और तीन ओर से ब्रिटिश भारतीय साम्राज्य, दोनों के बीच परिमित कर दिया गया। नेपाल का कुछ दक्षिणी हिस्सा, जिसकी वार्षिक आमदनी क़रीब एक करोड़ रुपये की थी, अंगरेज़ी इलाके में मिला लिया गया और एक अंगरेज़ रेजिडेण्ट नेपाल की राजधानी में रहने लगा।

लिखा है कि इस सन्धि के बाद बलभद्रसिंह ने अपने मुट्ठी भर साथियों सहित महाराजा रणजीतसिंह के यहां जाकर नौकरी कर ली और रणजीतसिंह व अफ़ग़ानों के एक संग्राम में लड़ते-लड़ते अपने प्राण दिए।

यद्यपि इस युद्ध से नेपाली साम्राज्य का एक अंग उससे तोड़ लिया गया और बहुत दिनों तक अंगरेज़ रेजिडेण्ट के कारण नेपाली राजधानी के अन्दर कई तरह की साज़िशों और दलबन्दियों का एक सिलसिला जारी रहा,* फिर भी नेपालियों की स्वाभाविक वीरता, नेपाल के अन्दर अंगरेज़ों की अनेक कठिनाइयों और भारत के अनुभव से नेपालियों के शिक्षा ग्रहण करने के कारण अंगरेज़ रेज़िडेण्ट के पैर नेपाल में जमने न पाए और न सन् 1816 से आज तक (1929) नेपाली साम्राज्य की स्वाधीनता या क्षेत्रफल में फिर किसी तरह का जाहिरा अन्तर पड़ने पाया।

अमरसिंह की बुद्धिमानी

क़रीब 100 साल के बाद सन् 1912 में, 1814-16 के नेपाल युद्ध का सिंहावलोकन करते हुए एक अंगरेज़ अफ़सर, कर्नल शेक्सपीयर ने नेपालियों की वीरता, उनकी सुजनता और उनकी उदारता की मुक्तकंठ से प्रशंसा की है और अन्त में अमरसिंह थापा को बुद्धिमत्ता का जिक्र करते हुए लिखा है—

> **"अमरसिंह ने अत्यन्त गम्भीरता के साथ उस समय नेपाल दरबार पर इस बात के लिए जोर दिया कि जिस तरह भी हो सके, अंगरेज़ों को नेपाल से बाहर रखा जाए। यह बात ध्यान देने योग्य है कि अमरसिंह की इस नीति पर नेपाल में आज तक बराबर अमल किया जाता है; और कौन यह कहने का साहस कर सकता है कि अमरसिंह की सलाह बुद्धिमत्तापूर्ण न थी?"†**

---

* *History of Nepal,* by Dr. Daniel Wright, p. 54.

† "It is also worthy of note that Amar Singh's policy of Keeping out the English at all costs from Nepal, so gravely impressed by him on Durbar then, is still kept up; and who shall say that he was not wise?"—Colonel L. W. Shakespeare in the *United Service Journal* for October, 1912.

इकत्तीसवां अध्याय

हेस्टिंग्स के कारनामे

कच्छ

इस अध्याय में हम लार्ड हेस्टिंग्स के शासन काल की कुछ छोटी-छोटी घटनाओं को बयान करना चाहते हैं। इनमें सबसे पहली घटना कच्छ की स्वाधीनता के अपहरण की थी।

कच्छ सन्धि के दक्षिण और काठियावाड़ के उत्तर-पश्चिम में एक छोटी-सी स्वाधीन रियासत थी। जाड़ेजा कुल के राजपूत राव कच्छ पर शासन करते थे। लार्ड हेस्टिंग्स ने इस रियासत की स्वाधीनता का अपहरण करने का इरादा किया। बहाना ढूंढ़ लेना कुछ भी कठिन न था। डकैतियां उन दिनों भारत में जगह-जगह होती रहती थीं। कहा जाता है कि नेपाल युद्ध के दिनों में कुछ डाकुओं ने काठियावाड़ के किसी हिस्से पर डाका डाला। काठियावाड़ के राजा पेशवा और गायकवाड के सामन्त थे, और पेशवा और गायकवाड, ये दोनों सन्धियों के अनुसार कम्पनी सरकार के मित्र थे। बस, कच्छ पर हमला करने के लिए वजह काफी समझी गई। कर्नल ईस्ट के अधीन एक सेना कच्छ पर चढ़ाई करने के लिए भेजी गई। कच्छ जैसी छोटी-सी रियासत को विजय कर लेना कम्पनी के लिये कठिन न था। कर्नल ईस्ट ने थोड़ी सी लड़ाई के बाद अंजार के किले पर कब्ज़ा कर लिया। इसके बाद कच्छ के राजपूत राजा को डराया गया कि सिन्ध के मुसलमान अमीर तुम पर हमला करने वाले हैं और यदि तुमने अंगरेज़ कम्पनी के संरक्षण में आना स्वीकार न किया तो अंगरेज़ तुम्हारे विरुद्ध सिन्ध के अमीरों को मदद देने पर मजबूर हो जाएंगे। इस विचित्र न्याय के औचित्य पर बहस करने की आवश्यकता नहीं है और न यह बताने की आवश्यकता है कि कच्छ पर सिन्ध के हमले की बात बिल्कुल झूठ थी। लाचार होकर सन् 1816 में कच्छ के राव ने कम्पनी के साथ सन्धि कर ली। पश्चिमी भारत में अंगरेज़ों का प्रभाव बढ़ गया, और उसी दिन से कच्छ की स्वाधीनता समाप्त हो गई।

हाथरस और मुरसान

करीब-करीब इतनी ही छोटी कहानी हाथरस और मुरसान नामक दो जाट रियासतों की है। गंगा और जमुना के बीच की जाट रियासतें इस समय तक स्वाधीन थीं। इनमें मुख्य भरतपुर की रियासत थी, जिसे परास्त करने के प्रयत्न में लार्ड एक दो बार ज़िल्लत उठा चुका था। लार्ड हेस्टिंग्स को तीसरी बार भरतपुर राज के साथ युद्ध छेड़ने में बुद्धिमत्ता न दिखाई दी। किन्तु दोआब के जाट राजाओं और वहां की प्रजा के दिलों से कम्पनी की ज़िल्लत को दूर करना भी जरूरी था। इसलिए लार्ड हेस्टिंग्स ने हाथरस और मुरसान की छोटी-छोटी रियासतों पर हमला करके उन्हें अपने अधीन कर लेना आवश्यक समझा।

हाथरस पर कम्पनी का क़ब्ज़ा

इतिहास लेखक प्रिन्सेप साफ़ लिखता है कि हाथरस पर हमला करने के लिए अंगरेज़ों के पास कोई किसी तरह का भी बहाना न था। हाथरस का क़िला हिन्दोस्तान के खासे मज़बूत किलों में गिना जाता था। 11 फरवरी, सन् 1817 को अचानक कम्पनी की सेना ने पहुंच कर चारों ओर से हाथरस के क़िले को घेर लिया। हाथरस के राजा दयाराम से कहा गया कि चूंकि हाथरस का क़िला उसी नमूने का है जिस नमूने का कि भरतपुर का, इसलिए गवर्नर जनरल की इच्छा है कि अंगरेज़ अफ़सरों को हाथरस का क़िला भीतर से देखने की इजाज़त दी जाए, ताकि उसके बाद वे फिर आवश्यकता पड़ने पर भरतपुर के क़िले को विजय करने का प्रयत्न कर सकें। राजा दयाराम भरतपुर के प्रसिद्ध राजा रणजीतसिंह का एक निकट सम्बन्धी था। उसने इस अनुचित मांग को पूरा करने से इनकार कर दिया। राजा से यह भी कहा गया कि आप क़िले का एक दरवाजा अंगरेज़ों के हवाले कर दें और उन्हें उस दरवाजे को ढाने की इजाज़त दे दें। राजा दयाराम अंगरेज़ों के इरादे को समझ गया। उसने कम्पनी के किसी भी आदमी को क़िले के अन्दर आने की इजाज़त न दी। वह अपने मुठ्ठी भर आदमियों सहित क़िले की रक्षा के लिए तैयार हो गया।

किन्तु राजा दयाराम के पास न कम्पनी का सा सामान था और न उतनी विशाल सेना। हाथरस के क़िले और नगर, दोनों के ऊपर गोलाबारी शुरू हुई। 23 फरवरी को एक ओर से नगर की दीवार का कुछ टुकड़ा टूटा। 2 मार्च को कहा जाता है कि किसी अंगरेज़ी तोप का एक गोला क़िले के भीतर बारूद की मैंगज़ीन में जाकर पड़ा, जिससे मैंगज़ीन में आग लग गई और क़िले को बहुत बड़ी हानि हुई। मालूम होता है कि इस क़िले के अन्दर भी कम्पनी के 'गुप्त उपाय' अपना कुछ काम कर चुके थे। फिर भी क़िले के अन्दर की तोपें बराबर अंगरेज़ी तोपों का जवाब देती रहीं। किन्तु कब तक? अन्त में राजा दयाराम ने देख लिया कि अधिक देर तक कम्पनी की सेना से क़िले को बचा सकना असम्भव है तो एक दिन आधी रात को अपने दो-चार साथियों सहित वह क़िले से बाहर निकल गया। मार्ग में कुछ गोरे सिपाहियों ने उसे घेर लिया, किन्तु उनका खात्मा करता हुआ राजा दयाराम अंगरेज़ी सेना के हाथों से बच कर अपनी राजधानी छोड़ कर चला गया।

मुरसान पर क़ब्ज़ा

हाथरस का क़िला अंगरेज़ों के हाथों में आ जाने के बाद मुरसान के राजा भगवन्तसिंह की हिम्मत और भी टूट गई। कहा जाता है कि उसने बिना लड़े अपना क़िला और राज, दोनों अंगरेज़ों के सुपुर्द कर दिए। इस तरह हाथरस और मुरसान की जाट रियासतें कम्पनी के इलाक़े में मिला ली गईं।

अवध और दिल्ली सम्राट

नेपाल युद्ध के खर्च के लिए ढाई करोड़ रुपये नक़द बतौर क़र्ज़ अवध के नवाब से लिए गए थे। उस ढाई करोड़ के बदले में नवाब को कुछ देना भी आवश्यक था। जो इलाका नेपाल से लिया गया उसका एक टुकड़ा हेस्टिंग्स ने इन ढाई करोड़ रुपयों के बदले में नवाब

ग़ाज़ीउद्दीन हैदर को भेंट कर दिया। इस टुकड़े के सम्बन्ध में लिखा है कि वह इतना बंजर था कि यदि नवाब ग़ाज़ीउद्दीन केवल एक करोड़ रुपये से ईस्ट इण्डिया कम्पनी के हिस्से खरीद लेता तो जो आमदनी उसे इन हिस्सों से होने लगती उसका छठा हिस्सा भी इस नये नेपाली इलाके से प्राप्त न हो सकता था।*

मार्क्विस आफ हेस्टिंग्स अवध के नवाब को और भी बढ़ाना चाहता था। इसका एक मात्र कारण यह था कि अंगरेज़ उस समय दिल्ली सम्राट के रहे सहे प्रभाव का अन्त कर देने के लिए उत्सुक थे। अवध का नवाब दिल्ली सम्राट का एक सूबेदार और मुगल दरबार का वज़ीर था। हेस्टिंग्स ने अक्तूबर सन् 1819 में लखनऊ में एक दरबार करवा कर नवाब ग़ाज़ीउद्दीन हैदर को बाज़ाब्ता 'बादशाह' का खिताब दिया। इसका मतलब यह था कि अवध का नवाब अब से दिल्ली सम्राट के अधीन नहीं रहा। किन्तु इसका यह अर्थ कभी न था कि नवाब की अपनी स्वाधीनता वास्तव में कुछ बढ़ गई हो। ग़ाज़ीउद्दीन को 'बादशाह' स्वीकार करने से पहले गवर्नर जनरल ने उससे यह साफ शर्त कर ली थी कि कम्पनी के साथ आपके सम्बन्ध में इससे कोई अन्तर न पड़ने पाएगा। वास्तव में इस हास्यास्पद घटना से केवल उस समय के अवध के नवाबों की बेबसी का परिचय मिलता है।

सम्राट अकबरशाह द्वितीय उस समय दिल्ली के तख्त पर था। सम्राट की ओर लार्ड हेस्टिंग्स के भावों का और अधिक पता हेस्टिंग्स के 22 जनवरी, 1815 के रोज़नामचे से लगता है। उस समय तक यह प्रथा चली आती थी कि प्रायः प्रत्येक अंगरेज़ गवर्नर जनरल दिल्ली जाकर सम्राट से भेंट करता था। अंगरेज़ दिल्ली सम्राट को भारत का सम्राट और स्वयं कम्पनी सरकार का न्यायोचित अधिराज स्वीकार करते थे। सम्राट के साथ पत्र-व्यवहार करने, मिलने तथा बातचीत करने में अंगरेज़ अफ़सर प्राचीन मान मर्यादा का पालन करते थे। लिखा है कि सम्राट अकबरशाह ने हेस्टिंग्स को मिलने के लिए दिल्ली बुलाना चाहा। सम्राट का उद्देश्य सम्भवतः उन अनेक वायदों की याद दिलाना था जो हेस्टिंग्स के पूर्वाधिकारियों ने अपने मतलब के लिए सम्राट शाहआलम से किए थे। किन्तु हेस्टिंग्स ने अब यह कह कर जाने से इनकार किया कि मुझे मुलाकात में ऐसे नियमों का पालन करने में एतराज़ है, जिनका अर्थ यह हो कि दिल्ली सम्राट कम्पनी सरकार का अधिराज है। इस एतराज़ का कारण हेस्टिंग्स ने अपने रोज़नामचे में यूं दर्ज किया है। वह लिखता है—

> "हमारा यह स्वीकार कर लेना कि दिल्ली का बादशाह हमारा न्यायोचित अधिराज है, एक ऐसे अस्तित्व को क़ायम रखना है जिसके झंडे के नीचे कभी भी चारों ओर से मुसलमान आ आकर जमा हो सकते हैं। ऐसा करना खतरनाक है।"†

हेस्टिंग्स का 'खतरा' बिल्कुल सच्चा था। इसके केवल 42 साल बाद ही न केवल मुसलमानों, बल्कि भारत के हिन्दुओं और मुसलमानों, दोनों ने दिल्ली सम्राट के झंडे के नीचे जमा होकर एक बार भारत में ब्रिटिश साम्राज्य के अस्तित्व को खतरे में डाल दिया।

---

* *Dacoitee in Excelsis, etc.* by Major Bird.

† "It is dangerous to uphold for the Musalmans a rallying point, sanctioned by our own acknowledgement that a just title to supremacy exists in the King of Delhi......"—*Private Journal of the Marques of Hastings*, 22nd January, 1815.

बत्तीसवां अध्याय

तीसरा मराठा युद्ध

हेस्टिंग्स की नीति

नेपाल युद्ध के समाप्त होते ही लार्ड हेस्टिंग्स की साम्राज्य पिपासा और अधिक बढ़ गई। हेस्टिंग्स ने 6 फरवरी, सन् 1814 के निजी रोज़नामचे में अपनी उस समय की नीति को इस तरह बयान किया है—

> "हमारा उद्देश्य यह होना चाहिए कि, यदि खुले कह कर नहीं तो कम से कम अमली तौर पर, अंगरेज़ सरकार को इस देश का अधिराज बना दिया जाए। देश की बाक़ी सब रियासतें, यदि कहने के लिए न भी सही, तो भी वास्तव में हमारी सत्ता के अधीन, हमारे सामन्तों की तरह, रहनी चाहिए; × × × उन सब का एक तो यह कर्त्तव्य होना चाहिए कि जब भी उन्हें बुलाया जाए वे अपनी सब सेनाओं सहित अंगरेज़ सरकार की मदद करें। दूसरे, जब कभी उन रियासतों में कोई आपसी झगड़े हों तो वे, बिना एक दूसरे के इलाके पर हमला किए, उन झगड़ों को सारे देश के अधिराज (हमारी सरकार) के सामने पेश करें × × × यदि दिल्ली के दरबार को इस देश के अधिराज होने का कोई दावा है तो उस दावे को खत्म करना भी हमारी इस योजना का निस्सन्देह एक अंग होगा। इस योजना को पूरा करने के लिए समय की ओर उचित परिस्थिति की आवश्यकता है।"*

बात यह थी कि नेपाल युद्ध के साथ-साथ कम्पनी की आर्थिक कठिनाई बहुत अंश तक दूर हो चुकी थी। ढाई करोड़ की रक़म, जो नेपाल युद्ध के लिए अवध के नवाब से ली गई थी, कुछ खर्च हो चुकी थी और कुछ शायद अभी तक बाकी थी। इसके अतिरिक्त नेपाल का जो इलाक़ा कम्पनी को मिला था, युद्ध समाप्त होते ही कम्पनी के अफसरों ने उसका जी भर कर शोषण करना शुरू किया। इस शोषण के अतिरिक्त कम्पनी की सालाना आमदनी में भी नये इलाक़े की बदौलत करीब एक करोड़ रुपये सालाना की वृद्धि हो चुकी थी। हेस्टिंग्स के पास अब नई सेनाएं जमा करने और कम्पनी की साम्राज्य पिपासा को जी भर कर शान्त करने के लिए काफ़ी धन मौजूद था।

---

* "Our object ought to be to render the British Government paramount in effect, if not declaredly so. We should hold the other states as vassals, in substance, though not in name……First, they should support it with all their forces in any call. Second, they should submit their mutual differences to the head of the confederacy (our Government) without attacking each other's territories, ……The completion of such a system, which must include the extinction of any pretention to pre-eminence in the Court of Delhi, demands time and favourable coincidences."—*Private Journal of the Marquess of Hastings*, February 6th, 1814, p. 30.

वास्तविक उद्देश्य

भारत के अन्दर सबसे बड़ी ताकत, जिसे अब अपने अधीन करना या जिसके उर्वर प्रान्तों को कम्पनी के साम्राज्य में मिलाना इस समय आवश्यक था, मराठों की ताक़त थी। इसलिए सबसे पहले मराठों की ही ओर हेस्टिंग्स का ध्यान गया। नेपाल युद्ध से छुटकारा पाते ही उसने पेशवा, भोंसले, सिंधिया और होलकर की सरहदों के बराबर-बराबर विशाल सेनाएं जमा करनी शुरू कर दीं। इस समस्त तैयारी के वास्तविक उद्देश्य को मराठा नरेशों से छिपाए रखने के लिए बहाना यह किया गया कि यह सब केवल पिण्डारियों की लूटमार से अंगरेज़ी इलाक़े की रक्षा करने के लिए किया जा रहा है। किन्तु हेस्टिंग्स का वास्तविक उद्देश्य देर तक छिपा न रह सका।

पिण्डारियों का दमन

हेस्टिंग्स की तैयारी और तीसरे मराठा युद्ध की प्रगति को बयान करने से पहले इस स्थान पर पिण्डारियों और उनके दमन के विषय में कुछ कहना आवश्यक है। ऊपर एक अध्याय में आ चुका है कि पिण्डारी दक्षिण की एक वीर, युद्ध प्रेमी जाति थी, जो शिवाजी के समय से लेकर 19वीं शताब्दी के शुरू तक मराठा नरेशों की सेना का एक विशेष और महत्वपूर्ण अंग बनी रही।

पिण्डारियों की विशेषता

उस समय के अनेक अंगरेज़ इतिहास लेखकों ने पिण्डारियों को 'डाकू', 'लुटेरे' 'हत्यारे' और 'निर्दयी' लिखा है। किन्तु इतिहास से पता चलता है कि पिण्डारियों का पेशा न तो डकैती था और न वे स्वभाव से निर्दयी थे। ऊपर आ चुका है कि ये लोग अधिकतर नर्मदा के किनारे-किनारे रहते थे, और ईमानदारी के साथ मेहनत करके अपना और अपने बाल-बच्चों का पेट पालते थे। शान्ति के समय ये लोग खेतीबाड़ी करके टट्टू और बैलों पर माल लाद कर उसे जगह-जगह बेच कर अपना गुज़ारा करते थे और युद्ध के समय मराठा नरेशों के यहां जाकर उनकी सेना में शामिल हो जाते थे। इतिहास लेखक मैलकम लिखता है—

> "मलहरराव होलकर और तुकाजी होलकर के समय में पिण्डारियों को × × × हर आदमी पीछे चार आने रोज दिए जाते थे, और इसके अतिरिक्त वे अपने टट्टुओं और बैलों पर नाज, चारा और लकड़ी लाद कर अपना गुजारा करते थे। इन चीजों के लिए पिण्डारी-बाजार एक बड़ी मण्डी होता था।"*

उस समय के चार आने इस समय (1929) के करीब ढाई रुपये के बराबर हैं। यही अंगरेज़ लेखक पिण्डारियों के स्वभाव के बारे में लिखता है—

> "यह एक खास ध्यान देने योग्य बात है कि × × × जो असंख्य क़ैदी पिण्डारियों के हाथों में आते थे, जिन क़ैदियों में पुरुष और स्त्री और हर आयु के लोग शामिल होते थे, उनसे पिण्डारी सेवा का काम लेते थे, उन्हें अपने सरदारों को दे देते थे और उन रिश्तेदारों से रुपये लेकर उन्हें छोड़ भी देते थे; पर वे

---

* Malcolm's *Report on Central India*, vol. i, p. 436.

किसी क़ैदी को गुलाम बना कर दूसरों के हाथ कभी न बेचते थे, और न बंजारों की तरह कभी गुलामों के क्रय-विक्रय का व्यापार करते थे।"

प्रोफ़ेसर विलसन ने लिखा है कि—

"आमतौर पर पिण्डारी लोग वीर होने के अतिरिक्त ईमानदार और वफादार भी होते थे, और जिन-जिन गांवों से वे गुजरते थे उनमें अपने व्यवहार के कारण इतने सर्वप्रिय हो जाते थे कि बाद में गांव वाले उनके विरुद्ध किसी तरह की खबर देने या उनके शत्रु को मदद देने के लिए हरगिज राजी न होते थे।"

एक पिछले अध्याय में आ चुका है कि स्वयं कम्पनी के अफ़सरों ने इन वीर पिण्डारियों को बहका कर और धन दे-देकर उनसे अनेक बार उनके मराठा मालिकों के साथ विश्वासघात कराया और देशी नरेशों के इलाक़ों को लुटवाया। पिण्डारियों का इस तरह का उपयोग उन दिनों कम्पनी के अफ़सरों की एक साधारण नीति थी। किन्तु अंगरेज़ों के संसर्ग से पहले न पिण्डारियों का कभी डकैती पेशा था, न वे स्वभाव से निर्दयी थे और न उन्होंने कभी अपने मराठा स्वामियों के साथ विश्वासघात किया था।

पिण्डारी आमतौर पर मराठा नरेशों के सबसे अधिक वीर और वफ़ादार अनुयायी थे। यही कारण है कि लार्ड हेस्टिंग्स मराठों पर तीसरी बार हमला करने से पहले पिण्डारी जाति का नाश कर देना चाहता था। अपने इस काम को न्यायसंगत ठहराने के लिए कहा गया कि पिण्डारी लोग कम्पनी और उसके मित्रों के इलाक़ों में निरन्तर लूटमार करते रहते हैं। पिण्डारियों की लूटमार और उनकी निर्दयता के अनेक किस्से गढ़-गढ़ कर चारों ओर फैलाए गए। इनमें से अधिकांश झूठे और कल्पित थे।

पिण्डारियों का इस्तेमाल

जब कि उन दिनों कम्पनी के अफ़सरों ने अनेक बार मराठों और राजपूतों और विशेषकर जयपुर इत्यादि के इलाक़े पिण्डारियों को उकसा कर उनसे लुटवाए, दूसरी ओर कम्पनी के इलाक़े पर पिण्डारियों के हमले की केवल दो खास मिसालें मिलती हैं। एक सन् 1808–1809 में, जब कि पिण्डारियों ने गुजरात के किसी भाग पर धावा किया; और दूसरे सन् 1812 में, जब कि उन्होंने मिर्जापुर और शाहाबाद में कुछ लूटमार की। किन्तु इन दोनों बार अंगरेज़ों ने कोई प्रयत्न उन्हें रोकने का नहीं किया यदि डकैतियों से प्रजा की रक्षा करना ही लार्ड हेस्टिंग्स का वास्तविक उद्देश्य होता तो ब्रिटिश भारत के अन्दर उन दिनों जो असंख्य डाकू अपने भयंकर कृत्यों से भारतीय प्रजा को दुखी कर रहे थे और जिसका हाल एक पिछले अध्याय में आ चुका है, उन डाकुओं के दमन करने का कभी कोई उपाय उसने क्यों नहीं किया?

झगड़ा मोल लेना

पिण्डारियों से झगड़ा मोल लेने के लिए अक्तूबर सन् 1815 में मेजर फ्रेज़र ने, बिना गवर्नर जनरल की आज्ञा के, किसी कारणवश पिण्डारियों के एक जत्थे पर हमला कर दिया। इस पर पिण्डारियों ने कृष्णा नदी के किनारे-किनारे अंगरेज़ी इलाक़े में लूटमार शुरू कर दी। इसके बाद पिण्डारियों और अंगरेज़ों के अनेक संग्राम हुए, जिन्हें

विस्तार से बयान करना अनावश्यक है । पिण्डारियों के अलग-अलग जत्थे होते थे, जो दुर्रे या 'लब्बर' कहलाते थे । जब तक इनके ये सब दुर्रे मिल कर काम करते रहे, अंगरेज़ों के लिए उन्हें जीत सकना असम्भव दिखाई दिया । किन्तु ज्यों ही कम्पनी की कूटनीति के कारण विविध पिण्डारी दुर्रों के अन्दर फूट फैल गई, ये दुर्रे एक-एक कर बरबाद हो गए । जो पिण्डारी सरदार अपने साथियों के साथ विश्वासघात करके अंगरेज़ों से मिल गए, उन्हें कम्पनी की ओर से हजारों रुपये सालाना की जागीरें दे दी गईं । जो अपनी आन पर डटे रहे या जिन्होंने मराठे नरेशों के साथ विश्वासघात करने से इनकार किया, वे या तो युद्ध में मारे गए या जंगल में खूंखार जानवरों के शिकार हुए । इस तरह धीरे-धीरे कम्पनी के प्रतिनिधियों ने उन वीर पिण्डारियों के अस्तित्व को मिटा डाला, जिनका खुद अपने साम्राज्य निर्माण के काम में वे हाल ही में सीढ़ी की तरह उपयोग कर चुके थे ।

युद्ध की विराट तैयारी

लार्ड हेस्टिंग्स ने मराठा साम्राज्य की सरहद के बराबर-बराबर इस समय एक लाख से ऊपर सेना जमा कर ली थी । यह विराट तैयारी केवल तीस हजार पिण्डारियों के दमन के लिए न थी । इस तैयारी के बारे में इतिहास लेखक सर जान के ने लिखा है—

> "हमारी सैनिक तैयारियां इतने जबरदस्त पैमाने पर थीं × × × ।
>
> "पाठक को चाहिए कि भारत का कोई नक्शा अपने सामने रख लें और सोचे कि कृष्णा और गंगा नदियों के बीच में कितनी लम्बी और विस्तृत भूमि है । इसके बाद वह दक्षिण पश्चिम में पूना से लेकर उत्तर पूर्व में कानपुर तक नजर डाले; मुख्य-मुख्य देशी दरबारों की जगहों को ध्यान में रखे और फिर उन विशाल सेनाओं की कल्पना करे, जो तीनों बड़े-बड़े प्रान्तों से चुन कर ली गई थीं और जो हिन्दोस्तान और दक्षिण, दोनों को घेरते हुए और पिण्डारी जत्थों और स्वाधीन देशी रियासतों, दोनों को एक साथ अपने जाल में लपेटते हुए, इस विस्तृत भू भाग के ऊपर फैलती जा रही थीं । वास्तव में, उस समय के (अंगरेज राजनैतिक) शिकारी इसे भारत के राजों, महाराजों का एक जबरदस्त आखेट समझते थे; और यदि वे राजा महाराजा भी इस मामले को लगभग इसी निगाह में देखते थे और यह समझते थे कि बहुत दिनों तक आराम करने के बाद, फ़िरंगी लोग अब फिर एक जबरदस्त युद्ध के लिए तैयारी कर रहे हैं और अपनी समस्त विशाल सैनिक शक्तियों को लगा कर देशी रियासतों को पृथ्वी पर से मिटा देने का एक व्यापक प्रयत्न करने वाले हैं, तो हमें उनके ऐसा समझने पर आश्चर्य नहीं हो सकता ।
>
> "मराठे जाग उठे । वे पहले से बेचैन थे ही, अब वे सशंक हो गए ।
>
> "मुझे मालूम होता है कि पेशवा और बरार के राजा का यही हाल हुआ । हमारी सेनाओं के जमा होने और बढ़ने से वे चौंक गए । उन्हें विश्वास न हुआ कि ये जबरदस्त सैनिक तैयारियां केवल पिण्डारियों को वश में करने के लिए की जा रही हैं । उन्होंने सोचा कि जिस युद्ध को स्वयं गवर्नर जनरल एक विशाल

सेना लेकर अपने नेतृत्व में चला रहा है, उसका शुरू में और जाहिरा उद्दे चाहे कुछ भी हो, किन्तु अन्त में वह युद्ध स्वाधीन मराठा रियासतों के विरु लड़ा जाएगा और, उनका यह सन्देह बेबुनियाद न था। पिण्डारियों के दम के बाद ही नये मराठा युद्ध की सम्भावना पर बड़े–बड़े सरकारी पत्र-व्यवहा हो रहे थे और हमारी छावनियों में इस विषय की बातचीत होती रहती थी, राजनीतिज्ञ लोग कौन्सिल की मेज पर बैठ कर संजीदगी के साथ इस विषय के बहसें करते थे और सिपाही लोग खाने की मेज पर बैठ कर खुश हो-होक इसकी पेशीनगोइयां करते थे। × × × निस्सन्देह हम यह आशा नहीं कर सकते कि जिस समय हम अपनी तोपों में गोले भर कर, उनके मुंह पर बारूद रख कर जलता-हुआ फलीता हाथ में लिए खड़े हों, उस समय बाकी सारी दुनिया अपनी तोपें उतार कर अलग रख दे।"*

एक दूसरा अंगरेज़ लेखक लिखता है—

"सन् 1817 की गरमी और पतझड़ के दिनों में विविध सेनाएं अपनी-अपनी जगह जमा हुईं। एक बड़ी सेना स्वयं लार्ड हेस्टिंग्स के नेतृत्व में करीब 34,00 स्थायी सैनिकों की थी। इस सेना को तीन डिवीजनों में बांटा गया और बाकी कुछ सेना बचा कर रिजर्व में रखी गई। तीन डिवीजन में से एक आगरे में दूसरी कालपी के नजदीक जमुना के किनारे सिकन्दरे में और तीसरी फलिजर बुन्देलखण्ड में; और बाकी सेना दिल्ली के दक्षिण-पश्चिम, रेवाड़ी में नियुक्त की गई।

"दक्षिण की सेना लेफ्टिनेन्ट जनरल सर टॉमस हिसलप के अधीन पांच डिवीजनों और एक रिजर्व में बांटी गई, जिसमें 57,000 स्थायी सैनिक थे। यह सेना इस तरह नियुक्त की गई कि हौंदिया और होशंगाबाद के रास्ते सारी सेना एक साथ नर्मदा पार कर बरार और खानदेश के इलाक़े पर क़ब्जा कर सके और आवश्यकतानुसार काम कर सके। गुजरात से एक डिवीजन गोहद के रास्ते मालवा में प्रवेश करने के लिए नियुक्त की गई। इतनी विशाल सेना पहले कभी भी अंगरेजी इलाक़े से न निकली थी। इस बाजाब्ता विशाल सेना के अतिरिक्त 23,000 अस्थायी सवार और थे, जिनमें से 13,000 दक्षिण की सेना के साथ थे और 10,000 बंगाल की सेना के साथ।"†

आगे चल कर इस लेखक ने साफ़ लिखा है कि इस पूरी सेना का उद्देश्य समस्त मराठा रियासतों को घेर कर उनके स्वाधीन अस्तित्व को सदा के लिए मिटा देना था।

अंगरेज़ों का भौगोलिक ज्ञान

दूसरे मराठा युद्ध के समय अंगरेज़ों की पराजयों का एक कारण यह भी था कि उस समय तक अंगरेज़ मध्य भारत की भूमि से पूरी तरह परिचित न थे। सन् 181 से पहले कम्पनी के दफ्तरों में हिन्दोस्तान के जो नक्शे होते थे, वे अकसर गलत और हास्यजनक होते थे। यहां तक कि राजपूताने के नक्शे में चित्तौड़ उदयपुर के पश्चि

---

* *Life and Correspondence of Sir John Malcolm*, by Sir John Kaye, vol p. 187.

† *Memoirs of Colonel Skinner*, vol. ii, pp. 124-129.

में होता था और राजपूताने की नदियों का प्रवाह प्रायः उलटा दिखाया जाता था। नये युद्ध से पहले अंगरेज़ों ने राजपूताना और मध्य भारत के भूगोल का ठीक-ठीक पता लगा लेना आवश्यक समझा। इसलिए सन् 1806 में 'राजस्थान' नामक अंगरेज़ी ग्रन्थ का प्रसिद्ध रचयिता कर्नल जेम्स टाड उस प्रदेश की भौगोलिक जांच के लिए नियुक्त किया गया।

कर्नल टाड

कर्नल टाड का नाम भारत और विशेषकर राजपूताने के इतिहास में बहुत दिनों तक जीवित रहेगा। सन् 1815 में कर्नल टाड ने मध्य भारत का एक सच्चा और विस्तृत नक्शा तैयार किया। इसके बाद कर्नल टाड राजपूताने के प्राचीन इतिहास की खोज करता रहा। सन् 1817 में वह मेवाड़, मारवाड़, जयपुर, कोटा और बूंदी की पांच राजपूत रियासतों के लिए कम्पनी का एजेंण्ट नियुक्त हुआ और सन् 1823 तक उस पद पर काम करता रहा।

कर्नल टाड जितना कुशल कूटनीतिज्ञ था, उतना ही विद्वान भी था। कम्पनी के एजेण्ट की हैसियत से उसका मुख्य कार्य यह था कि राजपूत राजाओं को भड़का–भड़का कर मराठों और मुसलमानों, दोनों के विरुद्ध सदा उनके कान भरता रहे, ताकि राजपूतों के दिलों में मराठों और मुसलमानों की ओर से काफ़ी घृणा उत्पन्न हो जाए; और ये तीनों जातियां भारत की स्वाधीनता के नाम पर विदेशियों के विरुद्ध मिलने न पाएं। कर्नल टाड ने अपना काम बड़ी सुन्दरता और सफलता के साथ पूरा किया। उसका प्रसिद्ध ग्रन्थ, "राजस्थान", इसी उद्देश्य को सामने रख कर लिखा गया। यह ग्रन्थ मराठों और मुसलमानों, दोनों के विरुद्ध अनेक भ्रान्त और कल्पित वृत्तान्तों से भरा हुआ है।* कर्नल टाड ने भारत के सुप्रसिद्ध, महान् और कर्त्तव्यनिष्ठ सम्राट, अकबर, के चरित्र पर झूठे कलंक लगाने में भी संकोच नहीं किया। किन्तु अपना राजनैतिक उद्देश्य पूरा करने में कर्नल टाड को आश्चर्यजनक सफलता प्राप्त हुई। सर डेविड आक्टरलोनी लिखता है कि कर्नल टाड राजपूताने के राजाओं और सरदारों से जी भर कर नज़रें और रिश्वतें भी वसूल किया करता था।

टाड के बनाए हुए मध्य भारत के नक्शे से लार्ड हेस्टिंग्स को तीसरे मराठा युद्ध में बहुत बड़ी सहायता मिली।

मराठों और राजपूतों का सम्बन्ध

इससे पहले, शुरू से ही मराठों और राजपूतों के बीच अधिकतर अच्छा सम्बन्ध हो चुका था। इतिहास से पता चलता है कि राजपूतों की ही मदद से मराठों ने मालवा प्रांत को विजय किया। यदि राजपूतों की सहायता न होती, तो सम्भव है कि मराठे मध्य भारत में एक चप्पा जमीन भी प्राप्त न कर पाते। विशेषकर जयपुर के राजा जयसिंह ने मराठों को मालवा और उत्तर हिंदोस्तान विजय करने में बहुत बड़ी सहायता दी। समस्त राजपूताना मराठा साम्राज्य का एक अंग था। पेशवाओं ने भी अपनी शक्ति भर राजपूताने के पुराने राजकुलों को उनके पैतृक सिंहासनों पर कायम रखा। निस्संदेह बाद के दिनों में सिंधिया और होलकर की सेनाओं ने राजपूतों के साथ युद्ध

---

* Mahadeva Govinda Ranade, in the *Journal of the Puna Sarvajanik Sabha,* vol. i.

किए और उनकी रियासतों को भी कहीं-कहीं लूटा। किन्तु इस तरह के हमलों मे अधि तर उस समय की कम्पनी सरकार का हाथ होता था। अमीर खां को सेना से जयपु को लुटवाना अंगरेज़ों की ही कूटनीति का काम था। फिर भी किसी मराठा नरेश कभी भी किसी राजपूत घराने के स्वतन्त्र अस्तित्व को नहीं मिटाया और न किसी उसकी गद्दी छीनी।

सिंधिया के साथ नयी सन्धि

जिस समय का जिक्र हम कर रहे हैं, उस समय जयपुर इत्यादि राजपूत रिया महाराजा सिंधिया की सामन्त रियासतें थीं। दूसरे मराठा युद्ध के बाद अंगरेज़ों औ सिंधिया के बीच जो सन्धि हुई थी, उसमें कम्पनी ने सिंधिया और राजपूतों के सम्बन्ध को स्वीकार किया था और सन्धि में यह एक साफ़ शर्त लगा दी गई थी कि कम्प सरकार राजपूत रियासतों के साथ न किसी तरह का पत्र-व्यवहार करेगी औ न उनके साथ कोई अलग सम्बन्ध कायम करेगी। कर्नल टाड की नियुक्ति सन्धि का स्पष्ट उल्लंघन था। इतना ही नहीं, वरन् कर्नल टाड ने राजपूतों और मराठों कभी-कभी के पुराने झगड़ों को बढ़ा कर और अन्य झूठे सच्चे उपायों से मराठों की ओ से राजपूतों के मन में घृणा उत्पन्न कर दी; यहां तक कि कर्नल टाड की ही कूटनी की सहायता से लार्ड हेस्टिंग्स ने महाराजा सिंधिया के साथ की उस दस साल पहले सन्धि के विरुद्ध, राजपूत नरेशों के साथ, सिंधिया से ऊपर ही ऊपर, अलग सन्धि कर लीं और महाराजा सिंधिया से उनका सम्बन्ध तोड़ कर उन्हें कम्पनी के साथ सब्सी डियरी सन्धि के जाल में फंसा लिया।

पर इसके बाद महाराजा सिंधिया से भी कम्पनी और राजपूत नरेशों के इस न सम्बन्ध को स्वीकार करा लेना आवश्यक था। सिंधिया राज के उत्तर में कम्पनी काफ़ी सेना तैयार हो चुकी थी। इस सेना की सहायता से हेस्टिंग्स ने महाराजा सिंधि पर दबाव डालकर जिस तरह उससे नयी सन्धि स्वीकार कराई, उसे हेस्टिंग्स के शब्दों में बयान करना उचित है। लार्ड हेस्टिंग्स का बयान है—

> **"सिंधिया के साथ हमारी पहली सन्धि × × × में एक शर्त हमारे लि अपमानजनक और बाधक थी। इस शर्त के अनुसार हम खुद राजपूत रियासतों साथ किसी तरह का पत्र व्यवहार न कर सकते थे, × × × इस तरह के हानिका बन्धन को तोड़ कर मैंने इन सब रियासतों को अंगरेज सरकार सामन्त बना लिया। यद्यपि इनमें से हर रियासत के पास बहुत सी सेना थी, फि भी अपने आपसी झगड़ों के कारण (जो झगड़े अधिकतर व्यर्थ की छोटी-छो बातों और प्रायः इन नरेशों की पैतृक लागडांट से उत्पन्न होते थे) वे कभी मिल एक न हो सकते थे।**
>
> × × × × × ×
>
> **"यदि सिंधिया, जो दूसरे देशी नरेशों से कहीं अधिक शक्तिशाली था, समय अपनी अभ्यस्त सेनाओं और सुन्दर व सुव्यवस्थित तोपखाने सहित मै में उतर आता, तो मराठा मण्डल के बाकी नरेशों को भी इतने अधिक स्थानों शस्त्र उठाने का समय मिल जाता और साहस हो जाता कि उससे हमें अप**

कार्रवाइयों में बहुत सावधान रहना पड़ता, हमें बहुत देर लग जाती और हमारा खर्च बहुत बढ़ जाता। × × × सिंधिया ग्वालियर में अपने राज के सबसे अधिक धनसम्पन्न इलाके के बीचोंबीच में था; किन्तु × × × सिंधिया की स्थिति, में सैनिक दृष्टि से एक और कमी थी, जिसकी तरफ़, मालूम होता है, महाराजा सिंधिया ने कभी ध्यान न दिया था। ग्वालियर से करीब 20 मील दक्षिण में छोटी सिन्धु नदी से लेकर चम्बल तक अत्यन्त ढालू पहाड़ियों की एक पंक्ति है, जो घने भारतीय जंगलों से ढकी हुई है। × × × केवल दो रास्ते हैं, जिन पर से गाड़ियां और शायद सवार सेना इन पहाड़ियों को पार कर सकती हैं। एक छोटी सिन्धु नदी के बराबर से और दूसरे चम्बल नदी के पास से। मैंने अपनी सेना की बीच की डिवीजन से एक ऐसी जगह घेर ली, जिससे छोटी सिन्धु के बराबर के रास्ते से सिंधिया का आ सकना असम्भव हो गया; और दूसरे रास्ते के पीछे मेजर जनरल डंकिन की डिवीजन को खड़ा कर दिया। इसका नतीजा यह हुआ कि सिंधिया के सामने सिवाय इसके और कोई चारा न रहा कि या तो जो सन्धिपत्र मैंने उसके सामने रखा, उस पर दस्तखत कर दे, या फिर अपने शानदार तोपखाने को, जिसमें सौ से ऊपर पीतल की तोपें थीं, उसके साथ के सारे सामान को और अपने सबसे अधिक कीमती इलाक़ों को हमारे हाथों में छोड़ कर, अपने थोड़े से साथियों सहित जो उसके साथ जा सकें, पगडण्डियों के रास्ते इन पहाड़ियों को पार करके निकल जाए। जो शर्तें मैंने सिंधिया के सामने पेश कीं, उनका सार उसका अंगरेज़ कम्पनी की पूर्ण अधीनता स्वीकार कर लेना था; यद्यपि इन शर्तों को इस तरह रंग दिया गया था कि जनसाधारण की निगाह में सिंधिया को जिल्लत अनुभव न हो।"*

इस तरह घेर कर मराठा साम्राज्य के एक मुख्य स्तम्भ, महाराजा दौलतराव सिंधिया, से एक नये सन्धि-पत्र पर हस्ताक्षर करा लिए गए। इस नयी सन्धि में सिंधिया राज की आन्तरिक स्वाधीनता में फ़रक न आया, न महाराजा दौलतराव ने कम्पनी के साथ सब्सीडियरी सन्धि स्वीकार की, किन्तु राजपूताने के नरेश, जो अभी तक महाराजा सिंधिया के सामन्त थे, इस नयी सन्धि के अनुसार कम्पनी के अधीन हो गए और सिंधिया ने पिण्डारियों के दमन में अंगरेज़ों को सहायता देने का वादा कर लिया। राजपूत नरेशों की नयी सब्सीडियरी सेनाएं भी अब पिण्डारियों और मराठों दोनों के दमन के लिए कम्पनी के हाथ आ गईं।

चार मुख्य मराठा नरेशों—सिंधिया, पेशवा, भोंसले और होलकर—में से सिंधिया को इस तरह बिना युद्ध के नीचा दिखा दिया गया। बाकी तीनों को वश में करना अब लार्ड हेस्टिंग्स के लिए रह गया।

पेशवा बाजीराव और अंगरेज़

पेशवा बाजीराव, बसई की सन्धि और दूसरे मराठा युद्ध का बयान एक पिछले अध्याय में किया जा चुका है। बाजीराव अन्तिम पेशवा था, किन्तु अंगरेज़ों के साथ

---

* *Lord Hastings' Summary, etc.*, **pp. 97, 100.**

उसके अन्तिम संग्राम को बयान करने से पहले दूसरे मराठा युद्ध से उस समय तक के बाजीराव और कम्पनी के सम्बन्ध को बता देना आवश्यक है।

कम्पनी ही ने अपने हित के लिए बाजीराव को दोबारा पूना की गद्दी पर बैठाया। बाजीराव में और चाहे कोई भी दोष रहा हो, किन्तु अंगरेज़ों की ओर उसका व्यवहा सदा सच्चा रहा। बाजीराव कायर था, राजनीति की शतरंज का वह अत्यन्त कच्चा खिलाड़ी था। अपनी अदूरदर्शिता के कारण कई बार विदेशियों के हाथों में खेल कर वो मराठा सत्ता के नाश का सबब बना। किन्तु अपने विदेशी मित्रों का वह सदा वफ़ादा रहा। इसके अतिरिक्त, उसकी सचाई, उसकी धर्मनिष्ठा और एक सामान्य शासक की हैसियत से उसकी योग्यता की अनेक अंगरेज़ लेखकों और यात्रियों ने प्रशंसा की है।* यह तक कि रेज़िडेण्ट कर्नल बैरी क्लोज़ ने भी बाजीराव की सचाई को स्वीकार किया है और बम्बई के विद्वान चीफ़ जस्टिस सर जेम्स मैकिन्टाश, ने तो दक्षिण के इस ब्राह्म शासक को इंगलिस्तान के तीसरे जार्ज और फ्रांस के नैपोलियन दोनों से कहीं अधिक योग्य शासक बताया है।† मैकिन्टांश इन तीनों नरेशों से भलीभांति परिचित था।

जिस समय का ज़िक्र हम कर रहे हैं, उस समय पेशवा बाजीराव क्रियात्मक दृष्टि से अंगरेज़ों के हाथों में क़ैद था। फिर भी अंगरेज़ उसकी इस स्थिति से सन्तुष्ट न थे। दूसरे मराठा युद्ध के बाद से ही उसकी बेड़ियों को और अधिक जकड़ने, उसे भड़काने और उसे बरबाद करने के प्रयत्न बराबर जारी थे।

रेज़िडेण्ट एलफ़िन्सटन

कम्पनी के अंगरेज़ अफ़सर बाजीराव को अपना 'मित्र' कहते थे। किन्तु जनरल वेल्सली ने, जो बाद में ड्यूक आफ वेलिंगटन के नाम से प्रसिद्ध हुआ, बाजीराव के दरबा की सब खबरें रखने के लिए पूना के अन्दर रिश्वतों का बाज़ार गरम कर रखा था। बाजीराव के मन्त्रियों से लेकर महल के नौकरों तक को अंगरेज़ों की ओर से गुप्त तनख़ाहें दी जाती थीं। सर बैरी क्लोज़ के बाद सन् 1811 में एलफ़िन्सटन पूना का रेज़िडेण्ट नियुक्त हुआ। मार्क्विस आफ़ हेस्टिंग्स की खास नज़र इस समय बाजीराव के उर्वर प्रान्तों की ओर थी, जिनकी सालाना मालगुज़ारी करीब डेढ़ करोड़ रुपये थी। रेज़िडेण्ट एलफ़िन्सटन इस काम के लिए हेस्टिंग्स के हाथों में उपयोगी साबित हुआ।

पेशवा बाजीराव को कम्पनी के विरुद्ध अनेक शिकायतें थीं। मसलन, पेशवा काठियावाड़ के नरेशों का अधिराज था, फिर भी कम्पनी ने पेशवा की इजाज़त के बिना काठियावाड़ के सामन्त नरेशों के साथ युद्ध किया और नवानगर और जूनागढ़ के नरेशों से बड़ी-बड़ी रक़में बतौर दण्ड के वसूल कर लीं, जिसकी पेशवा को सूचना तक नहीं दी गई।

एलफ़िन्सटन ने कई ऐसे काम किए, जिनसे बाजीराव के दिल में एलफ़िन्सटन और कम्पनी की नीयत पर सन्देह बढ़ता चला गया। मसलन, पेशवा का निज़ाम और गायकवाड़

---

* *Origin of the Pindaries, etc.*—by an Officer in the Service of Honor East India Company, 1818, Allahabad reprint.

† *Poona Gazetteer.*

दोनों के साथ अरसे से कुछ हिसाब-किताब का झगड़ा चला आ रहा था। निज़ाम और गायकवाड़, दोनों अंगरेज़ों के हाथों में थे। बाजीराव ने एलफ़िन्सटन से कई बार कहा कि ये झगड़े तय करा दिए जाएं, किन्तु एलफ़िन्सटन सदा टालता रहा।

बाजीराव और गायकवाड़

इनमें गायकवाड़ के साथ पेशवा के झगड़े को कुछ विस्तार से बयान करने की जरूरत है। सन् 1751 में दूमाजी गायकवाड़ और पेशवा बालाजीराव के बीच एक सन्धि हुई थी, जिसके अनुसार दूमाजी ने गुजरात का आधा इलाक़ा पेशवा को दे दिया था। इसी इलाक़े में अहमदाबाद भी शामिल था। पेशवा ने अपने इस इलाक़े का मियादी पट्टा फिर से गायकवाड़ के नाम लिख दिया। दूमाजी गायकवाड़ ने वादा किया कि आवश्यकता के समय में पेशवा की मदद के लिए 10,000 सवार अपने यहां सदा तैयार रखूंगा, सवा पांच लाख रुपये सालाना पेशवा को ख़िराज दिया करूंगा और एक अलग रक़म सतारा के राजा के खर्च के लिए हर साल भेजूंगा। दूमाजी के उत्तराधिकारियों की ओर इस ख़िराज का और अहमदाबाद की मालगुज़ारी का कुछ बकाया बरसों से चला आता था, जो इस समय तक बढ़ते-बढ़ते क़रीब एक करोड़ रुपये के पहुंच चुका था। फ़तहसिंह गायकवाड़ इस समय बड़ौदा की गद्दी पर था और सर्वथा अंगरेज़ों के प्रभाव में था। इसलिए बाजीराव ने अनेक बार एलफ़िन्सटन से कहा कि गायकवाड़ के साथ इस मामले का निबटारा करा दिया जाए, किन्तु एलफ़िन्सटन बराबर टालता रहा।

गंगाधर शास्त्री

अन्त में अहमदाबाद के इलाक़े की बाबत गायकवाड़ के नाम के पट्टे की मियाद खत्म होने के क़रीब आई। उस पट्टे को फिर से नया करवाना ज़रूरी था। इसलिए अंगरेज़ों के कहने के अनुसार फ़तहसिंह गायकवाड़ ने गंगाधर शास्त्री को इस काम के लिए, यानी पेशवा के साथ पिछला हिसाब साफ़ करने और नया पट्टा प्राप्त करने के लिए, अपना वकील नियुक्त करके पूना भेजा। गंगाधर शास्त्री एक अत्यन्त चतुर ब्राह्मण था, वह पूना के आसपास का रहने वाला था। घर के एक साधारण चाकर से बढ़ते-बढ़ते वह इस पद को पहुंचा था। बड़ौदा और पूना में वह अंगरेज़ों के गुप्तचर की हैसियत से दोनों राज्यों के सर्वनाश के उपाय किया करता था। "बड़ौदा गज़ेटियर" का अंगरेज़ रचयिता लिखता है—

> **"गंगाधर शास्त्री मेजर ए० वाकर के साथ बड़ौदा गया। सन् 1802 में उसने अंगरेज़ सरकार की नौकरी कर ली। जून, सन् 1803 में सूरत की अट्ठबीसी के चौरासी परगने में दन्दोल का गांव सदा के लिए उसके और उसके वंशजों के नाम कर दिया गया। इस गांव की सालाना आमदनी पांच हजार रुपये थी।**
>
> **"12 जनवरी, सन् 1805 को, गंगाधर शास्त्री की लड़की की शादी के मौक़े पर बम्बई सरकार ने उसे चार हज़ार रुपए दिए। 15 मई, सन् 1806 को**

गंगाधर को एक पालकी दी गई और उसके खर्च के लिए 1,200 रुपये सालाना मंजूर किए गए ।"*

बड़ौदा दरबार के साथ नयी सन्धि

मेजर ए० वाकर, जिसका ऊपर ज़िक्र है, कम्पनी सरकार की ओर से बड़ौदा भेजा गया था। कारण यह था कि उस समय अंगरेज़ महाराजा आनन्दराव गायकवाड़ पर इस बात के लिए ज़ोर डाल रहे थे कि आप अपने दरबार की रही-सही सेना को बरखास्त करके राज की रक्षा का भार केवल कम्पनी की सब्सीडियरी सेना के सुपुर्द कर दें। आनन्दराव इसके लिए किसी तरह राज़ी कर लिया गया। किन्तु बड़ौदा दरबार की सेना में उस समय अधिकतर अरब सिपाही और अरब जमादार थे। ये लोग वीर और राज के सच्चे हित-चिन्तक थे। अपने और रियासत, दोनों के नाश को वे इतनी आसानी से सहन न कर सके। महाराजा को इन वफ़ादार अरबों के विरुद्ध खूब भड़काया गया। किन्तु महाराजा का एक सम्बन्धी, मलहरराव गायकवाड़, भी महाराजा की इस घातक नीति के विरुद्ध खड़ा हो गया। अंगरेज़ों को मलहरराव और इन अरबों, दोनों का दमन करने के लिए सेना भेजनी पड़ी। सेना भेजने से पहले "स्थिति को देखने और ठीक करने" के लिए मेजर वाकर को बड़ौदा भेजा गया। गायकवाड़ पेशवा का सामन्त था, फिर भी मेजर वाकर ने पेशवा से ऊपर ही ऊपर बड़ौदा दरबार के साथ एक सन्धि कर ली। निस्सन्देह, पेशवा के अधिकारों पर यह साफ़ हमला था।

बड़ौदा के साथ दुरंगी चालें

गायकवाड़ के दीवान को नामज़द करने इत्यादि का अधिकार अरसे से पेशवा को प्राप्त था। कम्पनी ने अब पेशवा के इन सब अधिकारों से इनकार किया। बड़ौदा गज़ेटियर के अनुसार, अब पेशवा को केवल यह अधिकार रह गया था कि जो नया महाराजा बड़ौदा की गद्दी पर बैठे, उसका अभिषेक बिना एतराज किए पेशवा अपनी ओर से कर दे। अंगरेज़ उन दिनों अपनी सुविधा के अनुसार कभी गायकवाड़ को पेशवा का सामन्त मान लेते थे और कभी फिर एक स्वाधीन नरेश के समान उसके साथ व्यवहार करने लगते थे। कर्नल वैलेस ने बड़ी सुन्दरता के साथ गायकवाड़ की ओर कम्पनी की उस समय की नीति को बयान किया है। उसका कहना है—

> **"गायकवाड़ की रियासत कम्पनी के हाथों का एक खिलौना थी। जब जरूरत पड़ती थी, उसे मित्रवत कलेजे से लगा लिया जाता था और जब जरूरत न रहती थी, तब अलग कर दिया जाता था। गायकवाड़ रियासत के सम्बन्ध में इस तरह की सन्धियां की गईं, जिनमें रियासत से पूछा तक नहीं गया। स्वयं रियासत के साथ इस तरह की सन्धियां की गईं, जिनको तोड़ने में जब भी कम्पनी को लाभ दिखाई दिया, तोड़ डाली गईं। कभी उसे एक स्वाधीन रियासत कह कर पेशवा से युद्ध करने के लिए उकसाया गया; और फिर युद्ध समाप्त होने पर उसे मराठ**

---

* ***Baroda Gazetteer*, p. 210, footnote.**

साम्राज्य का केवल एक सामन्त माना गया। दूसरों के साथ रियासत की नीति बिल्कुल इसी तरह चलाई जाती थी।"*

अंगरेज़ इतिहास लेखक स्वीकार करते हैं कि इस काम में, और खासकर बड़ौदा राज को कम्पनी के अधीन करने में, अंगरेज़ों को सबसे अधिक सहायता गंगाधर शास्त्री से मिली; और उस समय से लेकर अपनी मृत्यु के समय तक गुजरात और दक्षिण में कम्पनी की सत्ता को पक्का करने के काम में सबसे अधिक महत्वपूर्ण भाग गंगाधर शास्त्री ने लिया।†

स्वभावतः ही, पेशवा बाजीराव और पूना और बड़ौदा के अनेक समझदार नीतिज्ञ गंगाधर शास्त्री को देशद्रोही समझते थे। बाजीराव ने गंगाधर की इस नियुक्ति पर एतराज किया, किन्तु एलफ़िन्सटन ने बिल्कुल परवाह न की। 19 अक्तूबर, सन् 1813 को गंगाधर शास्त्री बड़ौदा से पूना के लिए रवाना हो गया।

खुरशेदजी जमशेदजी मोदी की हत्या

गंगाधर शास्त्री के पूना पहुंचने के समय एक प्रसिद्ध पारसी नीतिज्ञ, खुरशेदजी जमशेदजी मोदी, पूना में रहा करता था। खुरशेदजी पेशवा बाजीराव और मराठा सत्ता का सच्चा हितचिन्तक था। इससे पहले के रेज़िडेण्ट, सर बैरी क्लोज़, के समय से पेशवा और उसके दरबार के साथ रेज़िडेण्ट का जो कुछ कारबार होता था, सब खुरशेदजी द्वारा ही होता था। सर बैरी क्लोज़ और पेशवा बाजीराव, दोनों खुरशेदजी के काम से सन्तुष्ट थे।

गंगाधर शास्त्री के पूना पहुंचते ही एलफ़िन्सटन ने गंगाधर के साथ मिल कर पेशवा के विरुद्ध साजिशें शुरू कीं। बड़ौदा गज़ेटियर‡ में लिखा है कि खुरशेदजी मोदी और पेशवा का एक मन्त्री, त्र्यम्बक जी, पेशवा को इन साज़िशों की ओर से सावधान करते रहते थे। यह भी लिखा है कि खुरशेदजी पेशवा को बराबर समझाता रहता था कि बसई की सन्धि से अंगरेज़ों को कितना लाभ हुआ है और मराठा सत्ता को कितनी हानि हुई है। मई, सन् 1814 में गंगाधर ने एलफ़िन्सटन को खुरशेदजी की ओर से आगाह किया।

एलफ़िन्सटन ने सबसे पहले खुरशेदजी जमशेदजी मोदी को अलग करके पेशवा और उसके दरबार के साथ स्वयं पत्र-व्यवहार करना शुरू कर दिया। खुरशेदजी को अलग करने का एक कारण एलफ़िन्सटन ने यह लिखा है कि—"बाजीराव ने खुरशेदजी को अपने

---

* "The Gaikwad state had been the utensil of the Honorable Company; it had been embraced as an ally when required, and dismissed when no longer wanted; treaties had been made respecting it, in which it was not consulted; treaties had been made with it which had been abrogated when it suited the Company's convenience; sometimes it had been induced to wage war with the Peshwa as an independent state and then again, on the return of peace, it had been acknowledged as a vassal merely of the Maratha Empire; thus its external policy had been altogether dictated."

† *History of the Rise, Decline and Present state of the Shastree Family*, published from Bombay 1868, pp. 6-8.

‡ *Bombay Gazetteer*, p. 219.

पक्ष में कर लिया था और खुरशेदजी पेशवा का सच्चा हितचिन्तक था"। खुरशेदजी का इस तरह अलग किया जाना पेशवा बाजीराव को भी बुरा लगा। इसके बाद एलफ़िन्सटन के निजी पत्रों से साबित है कि बाजीराव और उसके मन्त्रियों के साथ एलफ़िन्सटन का व्यवहार दिन प्रतिदिन धृष्ट और अपमानजनक होता चला गया। खुरशेदजी अभी पूना में मौजूद था। एलफ़िन्सटन की नजरों में वह अधिकाधिक खटकने लगा। एलफ़िन्सटन ने हुक्म दिया कि खुरशेदजी को दक्षिण से निकाल कर गुजरात भेज दिया जाए। निर्बल बाजीराव में इनकार करने का साहस न था। खुरशेदजी पूना छोड़ने के लिए तैयार हो गया। किन्तु ठीक जिस समय खुरशेदजी जमशेदजी मोदी पूना से रवाना होने वाला था, एक दिन अचानक उसे ज़हर देकर मार डाला गया।

अंगरेज़ों का कहना है कि खुरशेदजी ने या तो खुद ज़हर खा लिया या पेशवा ने उसे ज़हर दिलवा दिया। ये दोनों बातें इतनी लचर हैं कि किसी को उन पर एक क्षण के लिए भी विश्वास नहीं हो सकता। खुरशेदजी उस समय एलफ़िन्सटन के मार्ग में सबसे बड़ा कांटा था। उसका गुजरात में रहना अंगरेज़ों और गंगाधर की योजनाओं के लिए उतना ही खतरनाक हो सकता था, जितना पूना में। सम्भावना यही है कि एलफ़िन्सटन ने अपने किसी गुप्तचर से खुरशेदजी की हत्या करवा डाली।

पेशवा बाजीराव ने खुरशेदजी की सेवाओं के लिए उसे गुजरात में कुछ जागीर प्रदान की थी, जो आज (1929) तक खुरशेदजी जमशेदजी मोदी के वंशधरों के पास है।

गंगाधर शास्त्री की हत्या

ऊपर आ चुका है कि गंगाधर शास्त्री के पूना जाने के दो उद्देश्य थे। एक पेशवा और गायकवाड़ के पिछले हिसाब को साफ़ करना, और दूसरा अहमदाबाद के इलाक़े का पट्टा फ़तहसिंह गायकवाड़ के नाम नया करवाना। किन्तु पेशवा फ़तहसिंह गायकवाड़ के हाल के व्यवहार, उसके ऊपर अंगरेज़ों के अनुचित प्रभाव और स्वयं अपने साथ कम्पनी के व्यवहार को देखते हुए फिर से अहमदाबाद का पट्टा गायकवाड़ को देना न चाहता था। पेशवा को पूरा अधिकार था कि अपने इलाक़े का पट्टा जिसके नाम चाहे, जारी करे। पेशवा बाजीराव ने नया पट्टा अपने वफ़ादार मन्त्री, त्र्यम्बक जी के नाम कर दिया।

जब अहमदाबाद का नया पट्टा गायकवाड़ के नाम जारी न हो सका, तो गंगाधर ने विना पिछले हिसाब का निबटारा किए बड़ौदा लौट जाना चाहा। एलफ़िन्सटन ने भी उसके तुरन्त बड़ौदा लौट जाने पर ज़ोर दिया। कारण यह था कि अंगरेज़ चाहते थे कि पेशवा और गायकवाड़ दरबारों में वैमनस्य बराबर जारी रहे। बाद में मालूम हुआ कि वे अहमदाबाद के इलाक़े का पट्टा भी कम्पनी के नाम करवाना चाहते थे। त्र्यम्बक जी और पेशवा बाजीराव, दोनों समझ गए कि गंगाधर के इस प्रकार लौटने का परिणाम अच्छा नहीं। इन दोनों ने अब गंगाधर शास्त्री को पूना में रोकने और किसी तरह उसे अपनी ओर करने की पूरी कोशिश की।

बाम्बे गज़ेटियर* में लिखा है कि त्र्यम्बक जी इस समय वास्तव में गंगाधर के साथ मेल चाहता था। पेशवा ने भी इसकी पूरी कोशिश की, किन्तु गंगाधर कम्पनी के हाथों मे

---

* *Bombay Gazetteer*, Baroda vol., p. 222.

थां। एलफ़िन्सटन ने त्र्यम्बक जी और पेशवा के बीच मेल के प्रयत्नों को सफल न होने दिया। पेशवा ने गंगाधर को अपना मन्त्री नियुक्त करना चाहा, किन्तु बाम्बे गज़ेटियर में साफ़ लिखा है कि एलफ़िन्सटन के जोर देने पर गंगाधर ने पेशवा के इस प्रेम-प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया। इसके बाद पेशवा ने यह तजवीज़ की कि गंगाधर के पुत्र के साथ पेशवा की साली का विवाह हो जाए। शास्त्री ने इस तजवीज़ को स्वीकार कर लिया। नासिक में विवाह के रचे जाने की तजवीज़ की गई। तैयारियां होने लगीं। किन्तु ठीक उस समय, ज़ब कि दोनों ओर से तैयारी हो चुकी थी, शास्त्री ने बिना कोई कारण बताए विवाह से इनकार कर दिया। इस इनकार का कारण एलफ़िन्सटन था। गंगाधर की पत्नी इस समय पेशवा के महल में आने जाने लगी थी। एलफ़िन्सटन ने शास्त्री पर ज़ोर देकर उसका आना-जाना भी बन्द करवा दिया। इस सबका एकमात्र कारण यह था कि अंगरेज़ सरकार उस समय बड़ौदा और पूना दरबारों के बीच किसी तरह का मेल न चाहती थी। बड़ौदा गज़ेटियर में लिखा है—

> **"यह बात बहुत ज़रूरी थी कि बड़ौदा और पूना दरबारों के बीच नये राजनैतिक सम्बन्ध पैदा करने के जितने भी प्रयत्न बाजीराव करे, उन्हें सफल न होने दिया जाए।"***

इस पर भी मालूम होता है कि धीरे-धीरे पेशवा दरबार को अपने प्रयत्नों में कुछ दरजे तक सफलता प्राप्त हुई। धन या वैभव के लोभ में आकर—या सम्भव है, किसी अधिक उच्च भाव से प्रेरित होकर—गंगाधर शास्त्री अब त्र्यम्बक जी, बाजीराव और फ़तहसिंह गायकवाड़, तीनों में मेल कराने के पक्ष में हो गया। अहमदाबाद का पट्टा गायकवाड को नहीं मिल सका। फिर भी, गंगाधर शास्त्री ने अब पिछले हिसाब का निबटारा पेशवा की इच्छा के अनुसार और ईमानदारी के साथ करना चाहा। बड़ौदा गज़ेटियर में लिखा है—

> **"शास्त्री ने इस बात को स्वीकार कर लिया कि उन्तालीस लाख रुपये मय सूद के गायकवाड़ की तरफ़ पेशवा को देने के लिए निकलते हैं, और पेशवा की और सब मांगों के बदले में, जिनमें कि पेशवा के अनुसार एक करोड़ रुपये बक़ाया और चालीस लाख रुपये खिराज के थे, शास्त्री ने यह तजवीज की कि गायकवाड़ सात लाख रुपये सालाना का इलाक़ा पेशवा को दे दे। साथ ही, शास्त्री ने × × × रेजिडेण्ट एलफ़िन्सटन से यह प्रार्थना की कि आप बड़ौदा दरबार को राज़ी करने में मेरी मदद कीजिए।"†**

गंगाधर ने हिसाब की एक नक़ल और अपनी तजवीज़ गायकवाड़ दरबार को भेज दी। फ़तहसिंह गायकवाड़ अंगरेज़ों के कहने में था। कई महीने तक बड़ौदा से कोई जवाब न आया। अन्त में, फ़तहसिंह ने अंगरेज़ों के कहने में आकर अपने ही प्रतिनिधि, गंगाधर शास्त्री, की तजवीज़ को स्वीकार करने से इनकार कर दिया। पेशवा और गंगाधर शास्त्री

---

* "......it was important to thwart every attempt of Baji Rao to create fresh political ties between the Courts of Baroda and Poona"—*Baroda Gazetteer*, p. 219.

† **Ibid, p. 221.**

को निराशा हुई । किन्तु गंगाधर के इस तरह बड़ौदा लौट जाने का नतीजा पेशवा और गायकवाड़ में वैमनस्य का बढ़ जाना होता इसलिए गंगाधर पूना में ठहर कर मेल के प्रयत्न करता रहा । एलफ़िन्सटन उस पर बराबर बड़ौदा लौट जाने के लिए जोर देता रहा । इस बीच एक दिन गंगाधर पेशवा के साथ पण्ढरपुर की यात्रा को गया । 14 जुलाई, सन् 1815 को अचानक कुछ अपरिचित लोगों ने आकर तीर्थस्थान पण्ढरपुर में गंगाधर को कत्ल कर डाला ।

एलफ़िन्सटन और उसके साथी अंगरेज़ों ने यह जाहिर किया कि वाजीराव के मन्त्री, त्र्यम्बक जी न पेशवा की आज्ञा से गंगाधर को मरवा डाला ।

शास्त्री की हत्या की ज़िम्मेदारी

पेशवा वाजीराव एक धर्मनिष्ठ ब्राह्मण था । उसने, वाम्बे गजेटियर के अनुसार, पूना के आसपास कई लाख आम के वृक्ष लगवाए थे । ब्राह्मणों और धार्मिक संस्थाओं को वह खूब धन और जागीरें दिया करता था । पण्ढरपुर में विठोबा के मन्दिर का वह विशेष भक्त था । उस समय भी वह पण्ढरपुर की यात्रा के लिए गया हुआ था । गंगाधर शास्त्री भी ब्राह्मण था । इस सबके अतिरिक्त, इस हत्या से महीनों पहले गंगाधर शास्त्री, वाजीराव और त्र्यम्बक जी, तीनों में मेल हो चुका था । और, यही मेल कम्पनी के प्रतिनिधियों की नज़रों में खासतौर पर खटक रहा था । इस सारी स्थिति में गंगाधर की हत्या का इलज़ाम वाजीराव या त्र्यम्बक जी पर लगाना सरासर अन्याय है; त्र्यम्बक जी के चरित्र और उसके समस्त जीवन में कोई बात ऐसी नहीं मिलती, जिससे उसे इस हत्या के लिए उत्तरदायी माना जा सके । वास्तव में, गंगाधर उस समय एलफ़िन्सटन के हाथों से निकल चुका था । दक्षिण और गुजरात के अन्दर कम्पनी के काले कारनामों के अनेक रहस्य गंगाधर को मालूम थे । गंगाधर बरसों उनका भेदी रह चुका था और इसमें कुछ भी सन्देह नहीं हो सकता कि एलफ़िन्सटन ने इस हत्या द्वारा अपने मार्ग से एक नये और खतरनाक कण्टक को दूर कर दिया ।

शास्त्री की हत्या से अंगरेज़ों को लाभ

गंगाधर की मृत्यु से अंगरेज़ों को दोहरा लाभ हुआ । एक ओर पूना और बड़ौदा में मेल अब और अधिक कठिन हो गया और दूसरे पेशवा वाजीराव और उसके मन्त्री, त्र्यम्बक जी को गंगाधर की हत्या के लिए जिम्मेदार ठहरा कर एलफ़िन्सटन ने अब उन दोनों के विरुद्ध आन्दोलन करना शुरू कर दिया । इतिहास लेखक प्रिन्सेप लिखता है—

> **"शास्त्री की हत्या से जो स्थिति पैदा हो गई, उसमें हम एक ब्राह्मण राजदूत की हत्या का बदला लेने वाले बन बैठे, और पेशवा की प्रजा में भी सार्वजनिक राय पूरी तरह हमारे पक्ष में हो गई । लोगों पर यह हितकर असर इसके बाद भी जारी रहा, क्योंकि दो साल बाद जब प्रायः समस्त मराठा राज्यों से हमारा युद्ध छिड़ गया, उस समय यह याद करके कि सारे झगड़े की जड़ एक ब्राह्मण की निरपराध हत्या थी, जनता की राय में अंगरेज़ों के पक्ष को बहुत बड़ा नैतिक बल प्राप्त हुआ । बाद में पेशवा कुल के पतन पर लोगों ने जो उदासीनता प्रकट की, उसका भी बहुत**

दरजे तक यही कारण था कि लोग इस पतन को पेशवा बाजीराव के इस पापकर्म का दण्ड समझते थे × × ×।"*

कहा जाता है कि रेज़िडेण्ट एलफ़िन्सटन ने तहक़ीक़ात करके यह नतीजा निकाला कि शास्त्री की हत्या करने वालों को त्र्यम्बक जी ने नियुक्त किया था। मालूम नहीं, वह तहक़ीक़ात किस ढंग की थी और अपराधी त्र्यम्बक जी को जवाबदेही का अवसर दिया गया या नहीं। थोड़ा-साधन खर्च करके एलफ़िन्सटन जैसे आदमी के लिए गवाह खड़े कर लेना कोई कठिन काम न था। स्वयं अंगरेज़ों के उस समय के लेखों से साबित होता है कि एलफ़िन्सटन की यह तहक़ीक़ात केवल एक ढकोसला थी।

त्र्यम्बक जी की गिरफ्तारी

वास्तव में, त्र्यम्बक जी भी अंगरेज़ों के मार्ग में एक कांटा था। वह एक योग्य और जागरूक मराठा नीतिज्ञ था। गुजरात का जो इलाक़ा पेशवा ने हाल में उसे दिया था, वह कम्पनी की सरहद से मिला हुआ था और अंगरेज़ों के स्वयं उस इलाक़े पर दांत थे। एलफ़िन्सटन के पत्रों में इधर से उधर तक भरा पड़ा है कि त्र्यम्बक जी अंगरेज़ों के विरुद्ध पेशवा को सदा सावधान करता रहता था। मराठों के साथ नया युद्ध छेड़ने से पहले किसी तरह उसे पूना से अलग कर देना आवश्यक था। एलफ़िन्सटन ने पेशवा पर ज़ोर दिया कि त्र्यम्बक जी को फ़ौरन अंगरेज़ों के हवाले कर दो। यदि त्र्यम्बक जी दोषी भी होता, तो एलफ़िन्सटन की यह मांग सर्वथा न्यायविरुद्ध थी। बाजीराव ने इनकार कर दिया। एलफ़िन्सटन अपनी ज़िद पर डटा रहा। यहां तक कि उसने पूना के नगर को अंगरेज़ी सेना से घेरने और उसका बाजाब्ता मोहसरा करने की धमकी दी। बाजीराव स्वभाव से भीरु था। कम्पनी की सब्सीडियरी सेना पूना में मौजूद थी। मजबूर होकर बाजीराव ने अपने प्रिय मन्त्री, निरपराध त्र्यम्बक जी को अंगरेज़ों के हवाले कर दिया और अंगरेज़ों ने त्र्यम्बक जी को थाने के क़िले में कैद कर दिया। पेशवा बाजीराव भी इस समय अपनी ज़िल्लत और परवशता को अच्छी तरह अनुभव करने लगा।

बाजीराव पर हमले की गुप्त तैयारी

इसके बाद नेपाल युद्ध के अन्त, और तीसरे मराठा युद्ध की विराट तैयारियों का समय आया। अकारण 7 अप्रैल, सन् 1817 को लार्ड हेस्टिंग्स ने सेनापति सर ईवन नेपियन को लिखा—"पेशवा और अंगरेज़ों के बीच युद्ध होने वाला है, आप पेशवा के गुजरात के हिस्से और कोंकण के उत्तरी भाग पर क़ब्ज़ा करने के लिए तैयार रहें।"†

बाजीराव को जब इन तैयारियों का सुराग मिला, तो उसने अप्रैल, सन् 1817 में एक दिन एलफ़िन्सटन को अपने यहां बुला कर बहुत देर तक कम्पनी के प्रति अपनी सचाई और वफ़ादारी साबित करने का प्रयत्न किया। किन्तु इसका कोई असर न हो सका। अंगरेज़ अब बाजीराव को बहुत ही सरल चारा समझ रहे थे और युद्ध की पूरी तैयारी कर चुके थे।

---

* Prinsep's *History of the Political and Military Transactions*, vol. i, p. 321.

† *Bombay Gazetteer*, Baroda vol., p. 225.

पेशवा दरबार में गुप्त उपाय

अपने पुराने स्वभाव के अनुसार, एलफ़िन्सटन ने अब पूना के अन्दर पेशवा बाजीराव के विरुद्ध "गुप्त उपाय" शुरू किए। इन गुप्त उपायों के सम्बन्ध में दो मराठा देश-द्रोहियों के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं, जिन्होंने एलफ़िन्सटन को पेशवा राज का अन्त करने में सबसे अधिक मदद दी। इनमें पहला बालाजी पन्त नातू था।

दो देशद्रोही

बालाजी शुरू में सातारा ज़िले में किसी साधारण घराने में पांच या छह रुपये माहवार का नौकर था। सन् 1803 में उसने पूना आकर रेज़िडेण्ट के यहां नौकरी कर ली। बढ़ते-बढ़ते वह एलफ़िन्सटन का सबसे पक्का जासूस बन गया। पेशवा के सारे कामों की वह एलफ़िन्सटन को खबर देता रहता था। वह एक अत्यन्त नीच प्रकृति का चालबाज़ मनुष्य था। कुछ समय बाद सातारा के पदच्युत राजा के वकील रंगोबापूजी ने बालाजी के नीच कृत्यों को संसार के सामने प्रकट किया, जिन्हें पढ़कर कोई भी भारतवासी या ईमानदार आदमी बालाजी के प्रति घृणा का अनुभव किए बिना नहीं रह सकता। पेशवा के पतन के बाद एलफ़िन्सटन ने 5 सितम्बर, सन् 1818 को गवर्नर जनरल के नाम बालाजी की सेवाओं की ख़ूब तारीफ़ की और उसे एक जागीर और पेन्शन दिए जाने की सिफ़ारिश की। गवर्नर जनरल ने एलफ़िन्सटन की सिफ़ारिश को ख़ुशी से मंजूर कर लिया।

एलफ़िन्सटन के दूसरे विश्वस्त मित्र का नाम यशवन्तराव घोरपड़े था। पेशवा के विरुद्ध झुठी सच्ची शहादतें जमा करने में यशवन्तराव ने एलफ़िन्सटन को बहुत बड़ी सहायता दी।

बाजीराव के साथ जबरदस्ती

एलफ़िन्सटन अब पेशवा के साथ युद्ध का कोई बहाना ढूंढ रहा था। एलफ़िन्सटन ने अपने 6 अप्रैल, सन् 1817 के रोज़नामचे में लिखा है—"मैं समझता हूं, पेशवा के साथ कोई झगड़ा हो जाना अच्छा है।"*

कहा गया कि त्र्यम्बक जी थाने के क़िले से भाग कर फिर पेशवा के इलाक़े में छिपा हुआ है। एलफ़िन्सटन ने कम्पनी की ओर से पेशवा बाजीराव के सामने यह मांग पेश की कि एक महीने के भीतर त्र्यम्बक जी को अंगरेज़ों के हवाले कर दिया जाए और इस बीच बतौर जमानत पेशवा के तीन क़िले—सिंहगढ़, पुरन्धर और रायगढ़—फ़ौरन कम्पनी के सुपुर्द कर दिए जाएं।

किन्तु इस बार भी एलफ़िन्सटन और लार्ड हेस्टिंग्स की वास्तविक इच्छा पूरी न हुई। एलफ़िन्सटन दूसरी बार अंगरेज़ी सेना से पूना के नगर को घेरने वाला ही था कि 8 मई, सन् 1817 को कायर बाजीराव ने, जो युद्ध के लिए बिल्कुल तैयार न था, सिंहगढ़, पुरन्धर और रायगढ़, तीनों क़िले कम्पनी के नाम लिख दिए और अपने किलेदारों के नाम आज्ञापत्र जारी कर दिए। पेशवा बाजीराव के साथ अंगरेज़ों की इस आगे की कार्रवाइयों

---

* "I think a quarrel with the Peshwa desirable."—Elphinstone's *Diary*, 6th April, 1817.

को बयान करने से पहले हम इस स्थान पर त्र्यम्बक जी का शेष जीवन-वृतान्त दो चार शब्दों में दे देना चाहते हैं।

त्र्यम्बक जी का अन्त

या तो त्र्यम्वक जी के थाने से भागने का सारा किस्सा ही झूठा था, या वह सन् 1818 में फिर गिरफ्तार कर लिया गया था। इस बार वह बनारस के निकट चुनार के क़िले में रखा गया। अनेक यूरोपियन यात्री यहां समय-समय पर उससे मिलने के लिए आए। इनमें पादरी (विशप) हीवर सन् 1824 में त्र्यम्बक जी से मिला। विशप हीवर ने लिखा है कि—

> "त्र्यम्बक जी बड़ी सख्ती के साथ क़ैद था। उस पर एक यूरोपियन और एक हिन्दोस्तानी गारद रहती थी। उसे सन्तरियों की आंखों से कभी ओझल होने न दिया जाता था। उसके सोने के कमरे में भी तीन खिड़कियां थीं, जो बरामदे की तरफ़ खुलती थीं और जिनमें लोहे के सीखचे लगे हुए थे। इस बरामदे ही में गारद मौजूद रहती थी ×××।"

एक दूसरा यात्री, मेजर आर्चर, जो 16 फरवरी, सन् 1829 को त्र्यम्बक जी से मिलने गया, लिखता है कि—

> "त्र्यम्बक जी सन् 1818 से लगातार क़ैद है, किन्तु उसकी क़ैद की मियाद उसके महान शत्रु, काल, ने करीब-करीब नियत कर दी है। उसका इलाज करने वाले वैद्य कहते हैं कि वह चन्द महीने से अधिक नहीं जी सकता। जब हम लोग मिलने गए, तो उसका जिगर इतना बढ़ा हुआ था कि करीब आधी डबल-रोटी के बराबर उसके पेट से एक ओर को निकला हुआ दिखाई देता था। वह बहुत दुर्बल हो गया था और सचमुच उसे देख कर दया आती थी। उसने यह प्रार्थना की कि मुझे मरने के लिए काशी जाने दिया जाय। किन्तु किसी ने इस प्रार्थना पर ध्यान न दिया।×××"

त्र्यम्बक जी अनपढ़ था, फिर भी वह एक दूरदर्शी नीतिज्ञ और मराठा सत्ता का सच्चा हितचिन्तक था। उसका अपराध केवल यह था कि वह अपने स्वामी पेशवा बाजीराव का जीवन भर वफ़ादार रहा और एलफ़िन्सटन जैसों की चालों की ओर से बाजीराव को सावधान करता रहा। इस अपराध के दण्ड में उसे अपमान और कष्टों के साथ चुनार के क़िले के एक कोने में बरसों सड़-सड़ कर प्राण देने पड़े और अन्त में उसकी यह अन्तिम इच्छा भी, कि मेरी मृत्यु काशी में हो, पूरी न होने दी गई।

बाजीराव से नयी सन्धि

सिंहगढ़, पुरन्धर और रायगढ़ के किले कम्पनी को मिल चुके थे। फिर भी, बाजीराव से कम्पनी की मांगें, भेडिये और मेमने की सुप्रसिद्ध आख्यायिका में, भेड़िये की मांगों के समान बढ़ती चली गई।

सिंहगढ़ आदि पर कम्पनी का कब्जा हुए एक महीना भी न बीता था कि दो साल पहले के गंगाधर शास्त्री की मृत्यु के मामले को फिर से उखाड़ा गया। उस समय केवल

त्र्यम्बक जी को इस हत्या के लिए दोषी ठहराया गया था किन्तु अब पेशवा बाजीराव को भी उसके लिए जिम्मेदार बताया गया, और इस कल्पित अपराध के बदले में पेशवा के अधिकांश उर्वर प्रान्त, जिनमें पेशवा का गुजरात का इलाक़ा भी शामिल था, पेशवा से तलब किए गए ।

यह इलाक़ा गायकवाड़ को देने के लिए या गंगाधर के कुटुम्बियों को देने के लिए नहीं, वरन् अंगरेज़ कम्पनी बहादुर के लिए मांगा गया । किसी तरह पूना में पेशवा को घेर लिया गया और संगीनों के बल पर 13 जून, सन् 1817 को कातर बाजीराव से एक नए सन्धि-पत्र पर दस्तख़त करा लिए गए । इस सन्धि-पत्र के अनुसार पेशवा ने अपना गुजरात का पूरा प्रान्त, जिस पर अंगरेज़ों की बरसों से नज़र थी, कम्पनी के हवाले कर दिया ।

कहा जाता है कि इस अवसर पर बाजीराव ने यह भी स्वीकार कर लिया कि गंगाधर शास्त्री की हत्या में मेरा हाथ था ।

संगीनों या कूटनीति के बल पर इस तरह किसी से अपराध स्वीकार करा लेना कम्पनी के भारतीय इतिहास में कोई नयी बात नहीं थी । शिवाजी के वंशज, सतारा के राजा प्रतापसिंह पर जब यह दोष लगाया गया कि तुम अंगरेज़ों के विरुद्ध साज़िश कर रहे हो तो उससे यह साफ़ कहा गया था कि यदि तुम यह लिख कर दे दो कि तुम वास्तव में इस अपराध के दोषी हो, तो तुम्हें तुम्हारी गद्दी पर बहाल रखा जाएगा । मेजर वामनदास बसु ने अपनी पुस्तक "दि स्टोरी आफ सतारा" में दिखलाया है कि राजा प्रतापसिंह ने अपनी गद्दी से हाथ धो लिए, किन्तु इस झूठे स्वीकृति-पत्र पर दस्तख़त करना स्वीकार न किया । भेद केवल यह था कि बाजीराव में प्रतापसिंह जैसी आन की कमी थी । फिर भी, एक बात ध्यान देने योग्य इस सम्बन्ध में यह है कि हालांकि बाजीराव ने अंगरेज़ों के कहने में आकर या डर कर अपने आपको दोषी स्वीकार कर लिया, और प्रतापसिंह ने झूठा दोष स्वीकार न किया, फिर भी नतीजा दोनों का एक ही हुआ । प्रतापसिंह और बाजीराव, दोनों को अपनी-अपनी गद्दियां छोड़ कर कम्पनी की क़ैद में प्राण देने पड़े ।

पूना की सन्धि के बाद

पेशवा बाजीराव अब बहुत घबरा गया । 13 जून-की सन्धि के बाद ही वह पूना छोड़ कर पण्ढरपुर चला गया । वहां से वह सतारा के निकट माहुली नामक तीर्थ पहुंचा, जहां कृष्णा और यन्ना नदियों का संगम है । यहां उसने सर जान मैलकम को मिलने के लिए बुलाया । बाजीराव ने मैलकम से साफ़ कहा कि संगीनों के बल पर मुझसे पूना की सन्धि पर दस्तख़त कराए गए हैं, और वह सन्धि मेरे लिए कितनी हानिकर है । बाजीराव ने इस अवसर पर मैलकम से एलफ़िन्सटन की जो-जो शिकायतें कीं, उनमें से एक यह भी थी कि एलफ़िन्सटन के जासूस ऐसी बुरी तरह से मेरी देखरेख करते हैं कि एलफ़िन्सटन को यहां तक पता होता है कि मैंने किस दिन क्या-क्या खाना खाया ।* साथ ही, बाजीराव ने अपने और कम्पनी के बीच फिर से सच्ची मित्रता कायम करने की अभिलाषा प्रकट की । सर जान मैलकम ने इलाज के तौर पर बाजीराव को यह सलाह दी कि आप एक सेना जमा करके पिण्डारियों के दमन में अंगरेज़ों को सहायता देने के लिए भेजिए । भोले बाजीराव

---

*Memorandum of Lieut. General Briggs.

ने पूना लौट कर मैलकम की सलाह के अनुसार अंगरेज़ों की मदद के लिए सेना जमा करनी शुरू कर दी ।

एक ओर मैलकम ने बाजीराव को सेना जमा करने की सलाह दी, दूसरी ओर एलफ़िन्सटन ने इसी सेना के आधार पर गवर्नर जनरल को यह लिखना शुरू कर दिया कि बाजीराव अंगरेज़ों पर हमला करने की तैयारियां कर रहा है । एलफ़िन्सटन ने गवर्नर जनरल को यह भी लिखा कि बाजीराव के मुकाबले के लिए कम्पनी की और अधिक सेना फ़ौरन पूना भेजी जाए । यह बात ध्यान देने योग्य है कि एलफ़िन्सटन ने एक बार भी बाजीराव से यह नहीं पूछा कि आप यह सेना क्यों जमा कर रहे हैं, और न उसके सेना जमा करने पर कोई एतराज किया ।

30 अक्तूबर, सन् 1817 की शाम को जनरल स्मिथ और कर्नल बर के अधीन एक पूरी अंगरेज़ी पलटन ने अचानक पूना की छावनी में प्रवेश किया । एलफ़िन्सटन ने फ़ौरन शहर से चार मील की दूरी पर एक ऊंची जगह इस सारी सेना को खड़ा कर दिया। मराठे समझ गए कि अंगरेज़ लड़ने पर कटिबद्ध हैं ।

खड़की का संग्राम

5 नवम्बर, सन् 1817 को पूना के निकट खड़की नामक स्थान पर अंगरेज़ों और पेशवा की सेनाओं के बीच घमासान युद्ध हुआ । बापू गोखले पेशवा की सेना का प्रधान सेनापति था । अनेक अंगरेज़ इतिहास लेखकों ने सेनापति गोखले के युद्धकौशल और मराठा सेना की वीरता की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की है । गोखले के विषय में एक विद्वान अंगरेज़, जो स्वयं खड़की की लड़ाई में मौजूद था, लिखता है—"गोखले के भावों का आदर न करना असंभव है। × × × इतिहास की वेदी अपने देश के लिए सच्ची भक्ति और सेवा का सेहरा गोखले के सिर बांधेगी ।"*

बापू गोखले

किन्तु गोखले की देशभक्ति, उसके युद्धकौशल या उसकी वीरता, किसी से भी काम न चल सका । बालाजी पन्त नातू और यशवन्तराव घोरपड़े जैसों के प्रताप से पेशवा की सेना अनेक विश्वासघातकों से छलनी-छलनी हो चुकी थी । ये लोग न केवल पग-पग पर अपने यहां की खबरें अंगरेज़ों को पहुंचाते रहते थे, वरन् गोखले के प्रयत्नों को असफल करने की भी अपनी शक्ति भर कोशिश कर रहे थे । जनरल स्मिथ की सेना पहले मैदान में पहुंची । कर्नल बर की सेना इसके कुछ बाद आकर मिली । गोखले की इच्छा थी कि कर्नल बर की सेना के आने से पहले ही जनरल स्मिथ की सेना पर हमला कर दिया जाए । किन्तु उसके कुछ नमकहराम साथियों ने उसकी इस इच्छा को पूरा न होने दिया । इसके अतिरिक्त, पूर्वोक्त अंगरेज़ लिखता है कि "—× × × गोखले की फ़ौजें ऐन मौके पर उसका साथ छोड़ कर चल दीं ।" †

---

* "It is impossible not to respect the spirit of Gokhale......the Muse of history will encircle his name with a laurel for fidelity and devotion in his country's cause."—*Fifteen Years in India, etc.*, pp. 304, 505.

† "......his troops......deserted him in the hour of trial."—Ibid, p. 492.

नतीजा यह हुआ कि खड़की के संग्राम में अंगरेज़ों की विजय रही और पेशवा बाजीराव को बापू गोखले और कुछ सेना सहित मैदान से हट जाना पड़ा। इसके बाद पेशवा और कम्पनी की सेनाओं में कई और छोटे-छोटे संग्राम हुए, जिनमें विजय कभी इस ओर और कभी उस ओर रही। इन्हीं में से एक संग्राम में बापू गोखले वीरगति को प्राप्त हुआ, जिससे पेशवा बाजीराव का साहस और भी टूट गया।

सतारा दरबार की ग़लती

एलफ़िन्सटन जानता था कि महाराष्ट्र में अंगरेज़ इस समय काफ़ी बदनाम हैं। सम्भव था कि मराठे इस तरह चुपचाप पेशवाई का अन्त न देख सकते और चारों ओर से आकर बाजीराव के झंडे के नीचे जमा हो जाते। इस आपत्ति से बचने के लिए एलफ़िन्सटन ने देशद्रोही बालाजी पन्त नातू द्वारा उस समय के सतारा के राजा के साथ साजिश शुरू की। इंगलिस्तान की पार्लियामेण्ट के कागजों से पता चलता है कि सतारा के राजा से यह झूठा वादा किया गया कि इस युद्ध के बाद पेशवा के सारे अधिकार और मराठा साम्राज्य की बाग आपके हाथों में दे दी जाएगी।* पार्लियामेण्ट के कागजों से यह भी मालूम होता है कि सतारा के राजा के साथ अंगरेज़ों की साज़िशें कम से कम, गंगाधर शास्त्री के समय से जारी थीं। सतारा के दरबार में भी ऐसे आदमियों की कमी न थी जो धन के बदले में अंगरेज़ों के इस षडयन्त्र में शामिल होने को तैयार थे। सतारा का राजा, प्रतापसिंह, इस समय नाबालिग था। एलफ़िन्सटन और बालाजी पन्त नातू की चालों में आकर नाबालिग प्रतापसिंह की मां ने शिवाजी के वंशज और मराठा साम्राज्य के वास्तविक अधिराज सतारा के राजा की ओर से समस्त महाराष्ट्र प्रजा के नाम यह ऐलान कर दिया कि पेशवा बाजीराव के साथ कोई किसी तरह का सम्बन्ध न रखे और इस संग्राम में सब अंगरेज़ों को मदद दें। सतारा दरबार की इस ग़लती ने पेशवा बाजीराव के हाथ पैर तोड़ दिए।

पेशवा राज का अन्त

बाजीराव ने विवश होकर जून, सन् 1818 में सर जान मैलकम से सुलह की बातचीत की। उस समय भी बाजीराव के पास करीब 6,000 सवार और 5,000 पैदल सेना मौजूद थी; असीरगढ़ का किला भी अभी तक उसके पास था। अन्त में, सर जान मैलकम ने गवर्नर जनरल की आज्ञानुसार बाजीराव को आठ लाख रुपये सालाना की पेन्शन देकर कानपुर के निकट गंगा के किनारे बिठूर नामक स्थान में भेज दिया। पेशवा के इलाके में से एक छोटी सी फांक, बतौर जागीर के सतारा के राजा को दे दी गई और बाकी सारा इलाक़ा कम्पनी के राज में मिला लिया गया, जो आजकल (1929) के बम्बई प्रान्त में शामिल है। इस तरह पेशवा राज का अन्त हुआ और अन्तिम पेशवा बाजीराव का, 32 वर्ष पदच्युत रहने के बाद, सन् 1850 में 75 वर्ष की आयु में देहान्त हुआ। सन् 1857 के स्वाधीनता युद्ध का सुप्रसिद्ध नेता, नाना साहब धुन्धू पन्त, बाजीराव का दत्तक पुत्र था।

The Story of Satara, by Major B. D. Basu.

आठ लाख रुपये सालाना की पेन्शन का कारण बताते हुए सर जान मैलकम ने गवर्नर जनरल के नाम जो पत्र लिखा, उसका सार यह है—

> "मैं राजा से लेकर रंक तक इस देश के सब लोगों के भावों से भलीभांति परिचित हूं, इसलिए मैं निस्संकोच कह सकता हूं कि अंगरेज़ सरकार का यश और उसकी कुशल, दोनों इसी में हैं कि बाजीराव को क़ैद करने या मार डालने के बजाय रज़ामन्दी से उससे पदत्याग करवा कर पेन्शन देकर कहीं भेज दिया जाए। यदि उसे मार डाला गया, तो लोगों को उस पर दया आएगी, कुछ की आकांक्षाएं जागेंगी और विदेशी शासन से असन्तुष्ट लोग कभी भी किसी भी नये हक़दार के झंडे के नीचे जमा हो जाएंगे। यदि बाजीराव को क़ैद कर लिया गया, तो भी लोगों की सहानुभूति उसके साथ रहेगी और मराठों के दिलों में एक दिन बाजीराव के भाग निकलने और फिर से अपने देश को आज़ाद करने की आशा बनी रहेगी। किन्तु यदि बाजीराव अपनी सेना को बरखास्त करके स्वयं पद त्याग कर दे, तो लोगों पर हमारे हित में बहुत अच्छा प्रभाव पड़ेगा।"*

बाजीराव के शासन में पूना की अवस्था

अन्तिम पेशवा बाजीराव के समय में पूना की जनसंख्या क़रीब 8 लाख, यानी सन् 1930 से चौगुनी थी। उस समय के पूना निवासियों की खुशहाली के बारे में एक अंगरेज़ यात्री लिखता है—

> "जब मैं दक्षिण गया, तो यह देख कर बड़ा प्रसन्न हुआ और चकित रह गया कि पूना का शहर इतना खुशहाल है। हाल में जो बरबादी, लूट और अकाल वहां हो चुके थे, उनके कारण उस समय की यह खुशहाली और भी आश्चर्यजनक मालूम होती थी। सभी मुख्य मुख्य गलियों और बाजारों में इस तरह के लोग भरे हुए थे, जिनकी पोशाक और शक्ल से यह मालूम होता था कि जितना आराम, जितना सुख, जितना व्यापार और जितनी दस्तकारियां उनके यहां हैं, उससे अधिक हमारे (यूरोप के) किसी भी बड़े से बड़े व्यापारिक नगर में नहीं हैं। चारों ओर सर्वव्यापी खुशहाली और सब चीज़ों की बहुतायत का हंसता हुआ दृश्य दिखाई देता था। जब मैंने रेजिडेण्ट से इसका ज़िक्र किया, तो उसने मुझे इत्तला दी कि जब से पेशवा पूना लौट कर आया है, उसने पूना की समृद्धि को बढ़ाने के उद्देश्य से पूना और उसके आसपास के प्रदेश में हर तरह के टैक्स माफ़ कर दिए हैं; और पेशवा के अज्ञान में भी कोई राजकर्मचारी प्रजा के साथ जबरदस्ती न कर सके, इसलिए उसने कोतवाल का पद तक उड़ा दिया है।"†

---

*Kaye's *Life of Malcolm*, vol. ii, p. 24.

† "On a late excursion into the Deccan I was exceedingly pleased and surprised to observe the great appearance of prosperity which the city of Poonah exhibited and which was the more remarkable after the scenes of desolation, plunder and famine, it had been so lately subjected to: all the principal streets and bazars were crowded with people, whose dress and general appearance displayed symptoms of comfort and happiness, of business and

भोंसले राज और अंगरेज़

सिंधिया से राजपुताना छीना जा चुका था, पेशवा की गद्दी समाप्त हो चुकी थी, गायकवाड अरसे से अंगरेज़ों की अधीनता स्वीकार कर ही चुका था, अब केवल दो और मराठा राज बाकी थे —नागपुर का भोंसले राज और इन्दौर का होलकर राज।

नागपुर का राजा आमतौर पर बरार का राजा कहलाता था, किन्तु बरार का सूबा दूसरे मराठा युद्ध के बाद अंगरेज़ों ने मराठों से छीन कर निजाम को दे दिया था। नागपुर का नगर भोंसले राज की राजधानी था इसलिए इसके बाद से भोंसले कुल के राजाओं को नागपुर के राजा कहना ही अधिक उचित है।

दूसरे मराठा युद्ध के समय राघोजी भोंसले नागपुर का राजा था। युद्ध के बाद वही एलफ़िन्सटन जो बाद में पूना का रेज़िडेण्ट नियुक्त हुआ, चार साल नागपुर का रेज़िडेण्ट रहा। एलफ़िन्सटन ने अगणित बार राघोजी भोंसले को यह समझाने का प्रयत्न किया कि आपको कम्पनी के साथ सब्सीडियरी सन्धि कर लेनी चाहिए, किन्तु राघोजी ने जीते जी कम्पनी के साथ इस तरह का सम्बन्ध स्वीकार न किया।

नागपुर में रेज़िडेण्ट के गुप्त काम

नागपुर में एलफ़िन्सटन के कारनामे, एलफ़िन्सटन के नाम जनरल वेल्सली के केवल दो पत्रों से जाहिर हैं। जनरल वेल्सली ने एक बार एलफ़िन्सटन के उत्तर में उसे लिखा —

> **"आपके 6 तारीख के पत्र के उत्तर में मेरी प्रार्थना है कि खबरें हासिल करनें के लिए आपको जो कुछ भी करना पड़ जाए, कीजिएगा। अगर आप यह समझें कि जयकिशन राम आपको खबरें ला-लाकर देगा या दूसरों से मंगवा देगा, तो आप गवर्नर जनरल से उसकी सिफ़ारिश करने का वादा कर लें, और गवर्नर जनरल को इसकी इत्तला दे दें।"***

एक दूसरे पत्र में जनरल वेल्सली ने एलफ़िन्सटन को लिखा—

> **"रामचन्द्र राव ने जानें से पहले हमारा काम करनें का वादा किया। मैं आपसे उसकी सिफ़ारिश करता हूं। वह शख्स चलता-पुरज़ा मालूम होता है, और इसमें सन्देह नहीं कि राजा अपनी ओर से अत्यन्त महत्वपूर्ण मामलों की बातचीत**

---

industry, not to be exceeded in any of our own great commercial towns. The whole, indeed, was a smiling scene of general welfare and abundance. On noticing this to the Resident, he informed me that the Peshwa, since his return, with a view of promoting the prosperity of Poonah, had exempted it and the surrounding country from every description of tax; and to prevent the possibility of exactions unknown to himself, had even abolished the office of Cutwal."—R. Richards, 23rd July, 1801, quoted by William Digby in his *Prosperous British India—A Revelation*, page 450.

* "In answer to your letter of the 6th, I beg you will do whatever you think necessary to procure intelligence. If you think that Jaikishen Ram will procure it for you or give it to you, promise to recommend him to the Governor-General, and write to His Excellency on the subject."—Colebrooke's *Life of the Duke of Wellington*, vol. i, p. 113.

उसकी मारफ़त कर चुका हूं। मैंने गवर्नर जनरल से सिफारिश की है कि उसे 6,000 रुपये सालाना पेन्शन दी जाए। मैं समझता हूं, उससे आपको बड़ी काम की खबरें मिलेंगी।"*

कम्पनी के रेजिडेण्ट

लार्ड हेस्टिंग्स अपने 1 फरवरी, सन् 1814 के रोजनामचे में उस समय के अंगरेज़ रेज़िडेण्टों के कर्तव्यों को बयान करते हुए लिखता है—

> "देशी नरेशों के साथ सन्धियां करते समय हम उन्हें स्वाधीन नरेश स्वीकार कर लेते हैं। फिर हम उनके दरबारों में अपने रेजिडेंण्ट भेजते हैं। यह रेजिडेण्ट, बजाय राजदूत का काम करने के, दरबार के ऊपर अपना अनन्य अधिकार जमा लेता है; वहां के नरेश के सारे निजी कारबार में दखल देने लगता है; प्रजा में विदेशी लोगों को राज के विरुद्ध भड़काता है, और अपने अधिकार का बड़े जोरों के साथ प्रदर्शन करता है। अंगरेज़ सरकार की मदद पाने के लिए यह रेजिडेण्ट कोई न कोई नया झगड़ा (या गद्दी का नया अधिकारी) खड़ा कर लेता है, और उस पर इस तरह का रंग चढ़ाता है कि अंगरेज़ सरकार पूरे बल से उस मामले को अपने हाथ में ले लेती है, न केवल उस एक बात पर ही, बल्कि रेजिडेण्ट के सारे व्यवहार पर अपने रेजिडेण्ट की हर बात का अंगरेज़ सरकार पूरी तरह पक्ष लेती है।"†

एलफ़िन्सटन का खास काम नागपुर में राजा के आदमियों को रिशवतें दे-देकर अपनी ओर तोड़ना, साज़िशें करना और झूठी खबरें व गवाहियों तैयार करना था। फिर भी राजा राघोजी के जीते जी कम्पनी को नागपुर में अधिक सफलता न मिल सकी।

राघोजी की मृत्यु

अप्रैल, सन् 1816 में राघोजी की मृत्यु हुई। एलफ़िन्सटन की जगह उस समय जेनकिन्स रेज़िडेण्ट था। राघोजी के एक पुत्र था, जिसका नाम पुरुषाजी था और जिसे

---

* "Before Ram Chandra went away he offered his services. I recommend him to you. He appears a shrewd fellow, and he has certainly been employed by the Raja in his most important negotiations. I have recommended him to the Governor-General for a pension of 6,000 Rupees a year. I think he will give you useful intelligence."—Ibid.

† "In our treaties with them we recognise them as independent sovereigns. Then we send a Resident to their courts. Instead of acting in the character of ambassador, he assumes the functions of a dictator; interferes in all their private concerns; countenances refractory subjects against them; and makes the most ostentatious exhibition of this exercise of authority. To secure to himself the support of our Government, he urges some interest which, under the color thrown upon it by him, is strenuously taken up by our Council; and the Government identifies itself with the Resident not only on the single point but or the whole tenor of his conduct."—*Private Journal of the Marquess of Hastings,* February 1st, 1814, Panini Office reprint.

बाला साहब भी कहते थे। कहा जाता है कि बाला साहब का दिमाग कमज़ोर था और वह शासन-कार्य चला सकने के अयोग्य था। राघोजी के अप्पा साहब नामक एक भतीजा था जो बहुत चलता हुआ था। अंगरेज़ रेज़िडेण्ट ने अप्पा साहब को बहका कर उसे अपनी साज़िशों का केन्द्र बनाया।

राघोजी भी इस बात को थोड़ा बहुत समझता था। एक बार अप्पा साहब की कुछ निजी जागीर के बारे में राघोजी और अप्पा साहब में कुछ मतभेद हुआ। कम्पनी को इस मामले में दखल देने का कोई अधिकार न था। फिर भी रेज़िडेन्ट ने अप्पा साहब के पक्ष में राघोजी पर दबाव डाला और राघोजी को रेज़िडेण्ट की इच्छा के अनुसार उस मामले का निबटारा कर देना पड़ा। राघोजी इन बातों को देख रहा था। अपना अन्त समय निकट आने पर अपने इकलौते बेटे बाला साहब और भतीजे अप्पा साहब, दोनों को उसने अपने पास बुलाया और बाला साहब का हाथ अप्पा साहब के हाथ में देकर गम्भीर किन्तु करुण स्वर में अप्पा साहब से कहा— "इस कुल की और इस राज की इज्जत अब तुम्हारे हाथों में है।"

राजा बाला साहब

राघोजी के मरते ही बाला साहब नागपुर की गद्दी पर बैठा और अप्पा साहब, बाला साहब की ओर से, राज का समस्त कारोबार चलाने लगा। रेज़िडेण्ट जेनकिन्स ने अंगरेज सरकार की ओर से दरबार में जाकर बाला साहब और अप्पा साहब, दोनों को बधाई दी।

राघोजी की मृत्यु से अंगरेजों को बड़ी खुशी हुई। इतिहास लेखक प्रिन्सेप लिखता है—

> **"उस दरबार में जो साजिशें जारी थीं और जो घटनाएं उस समय हो रही थीं, उनसे यह आशा की जाती थी कि नागपुर राज के साथ सबसीडियरी सन्धि करने के लिए जिस अवसर की इतने दिनों से प्रतीक्षा थी, वह अब आ पहुंचा था।"***

आधी रात की सन्धि

राघोजी की मृत्यु का समाचार पाते ही हेस्टिंग्स ने जेनकिन्स को लिखा कि तुम जिस तरह भी हो सके, अप्पा साहब को सबसीडियरी सन्धि के जाल में फंसाने की कोशिश करो। इस समय नागपुर के दरबार में जो साज़िशें जारी थीं, उन्हें प्रिन्सेप ने अपने इतिहास में विस्तार के साथ बयान किया है। इन साज़िशों के गोरखधन्धे में पड़ने की आवश्यकता नहीं है। इन साज़िशों में ही 24 अप्रैल, सन् 1816 को ठीक आधी रात के समय किसी तरह अप्पा साहब को घेर कर और डरा कर उससे असहाय राजा पुरुषाजी भोंसले की ओर से सबसीडियरी सन्धि पर हस्ताक्षर करा लिए गए। अप्पा साहब

---

* "The intrigues and passing occurrences of that court likewise promised equally to give the long sought opportunity of establishing a subsidiary connection with the Nagpur State."—*History of Political and Military Transactions in India*, by Prinsep.

की आयु उस समय केवल 20 साल की थी। प्रिन्सेप ने अपनी पुस्तक में दस पृष्ठों के अन्दर बयान किया है कि यह घोर अत्याचार रात्रि के अन्धकार में किस तरह किया गया इस पाप कर्म में अंगरेजों के मुख्य सहायक अप्पा साहब के दो मन्त्री, नागू पण्डित और नारायण पण्डित थे। इस नयी सन्धि से अप्पा साहब ने भोंसले राज की अधिकांश सेना को बरखास्त करके कम्पनी की सेना को उसकी जगह रख लेना स्वीकार कर लिया और उसके खर्च के लिए 20 लाख से 30 लाख रुपये तक सालाना देने का वादा किया।

जब इस सन्धि की सूचना हेस्टिंग्स के पास पहुंची, तो उसने बड़े हर्ष के साथ अपने निजी रोजनामचे में दर्ज किया —

> **"1 जून, सन् 1816—आज मेरे पास वह सन्धिपत्र पहुंचा है, जिसके द्वारा नागपुर वास्तव में हमारे संरक्षण में कम्पनी की एक सामन्त रियासत बन गया। पिछले राजा राघोजी भोंसले की अकस्मात् मृत्यु के कारण वहां के दरबार में इस तरह के अपूर्व आपसी झगड़े खड़े हो गए कि जिनसे मुझे वह काम पूरा करने का मौका मिल गया जिसके लिए हम पिछले बारह साल से निष्फल प्रयत्न कर रहे थे। यद्यपि चतुराई से काम लेना पड़ा है और धन द्वारा अनेक बाधाएं दूर की गई हैं, फिर भी मैं कह सकता हूं कि मेरी सन्धि के असूल अत्यन्त पवित्र हैं × × ×।"***

अप्पा साहब को लोभ

इसी तारीख के रोजनामचे में हेस्टिंग्स ने विस्तार के साथ लिखा है कि अप्पा साहब के विरुद्ध महल के अन्दर किस तरह एक दल खड़ा किया गया, किस तरह उसे यह लोभ दिया गया कि चूंकि बाला साहब के कोई पुत्र नहीं है, इसलिए यदि तुम अंगरेज़ों का कहना मान लोगे, तो अंगरेज़ बाला साहब को कोई पुत्र गोद न लेने देंगे और अन्त में नागपुर की गद्दी तुम्हें दिलवा देंगे, किस तरह अप्पा साहब को राज के भीतर से और बाहर से तरह-तरह के झूठे डर दिखाए गए, इत्यादि।

नागपुर में दो दल

अंगरेज़ों के ही पत्रों से यह भी जाहिर है कि नागपुर के महल में उस समय दो दल थे। पुरुषाजी और उसके पक्ष के लोग भोंसले, सिंधिया और पेशवा में फिर से सच्चा मेल कायम करना चाहते थे। अंगरेज़, अप्पा साहब को सामने करके, उसे बाला साहब, सिंधिया और पेशवा, तीनों की ओर से बहका रहे थे और इस नए दल द्वारा उस मेल को रोकने के प्रयत्नों में लगे हुए थे।

---

* "June 1st (1816). This day has brought to me the treaty of alliance by which Nagpur in fact ranges itself as a feudatory state under our protection. A singular contention of personal interests at the court of that country, resulting from the unexpected death of Raghuji Bhonsla, the late Raja, has enabled me to effect that which has been fruitlessly laboured at for the last twelve years. Though dexterity has been requisite, and money has removed obstructions, I can affirm, that the principles of my engagement are of the purest nature."—*Private Journal of the Marquess of Hastings,* pp. 254, et. seq.

जो नई सबसीडियरी सन्धि कम्पनी और अप्पा साहब के बीच हुई उसके अनुसार अप्पा साहब ने भोंसले राज की ओर से बीस लाख लेकर, तीस लाख रुपये तक सालाना कम्पनी को देने का वादा किया। राज की कुल सालाना आमदनी करीब साठ लाख रुपये थी। इतिहास लेखक विलसन लिखता है —

> **"इस सन्धि की शर्तें कुछ सख्त थीं, और सबसीडी की रक़म राज की सालाना आमदनी के मुनासिब औसत से ज्यादा थी। पहले ही रियासत पर बोझ बहुत अधिक था और इस पर इस विशेष सेना का खर्च और बढ़ा दिया गया। राजा को इस बात की शिकायत करने की काफ़ी वजह थी कि उसके नये 'मित्रों' की 'मित्रता' उसे महंगी पड़ी।"***

बाला साहब की हत्या

स्वभावतः नागपुर के लगभग सभी समझदार नीतिज्ञ और दरवारी इस सन्धि के विरुद्ध हो गए। बाला साहब के पक्ष वालों की तादाद बढ़ने लगी। रेज़िडेण्ट जेनकिन्स को डर हो गया कि जब तक बाला साहब जीवित है, सम्भव है, कि उसके पक्ष के लोग किसी दिन इस सन्धि को रद्द कराने का प्रयत्न करें। अचानक 1 फरवरी, सन् 1817 को प्रातःकाल, जबकि अप्पा साहब किसी कार्यवश नागपुर से बाहर गया हुआ था, बाला साहब अपने बिस्तरे पर मरा हुआ पाया गया। उसके मृत शरीर की दशा से जाहिर था कि रात को उसकी हत्या की गई है। नागपुर भर में यह आम अफ़वाह फैल गई कि बाला साहब की हत्या कराने वाला रेज़िडेण्ट जेनकिन्स है किन्तु जेनकिन्स ने इसकी कुछ भी परवाह न की, और गवर्नर जनरल को इसकी सूचना तक न दी।

राजा अप्पा साहब भोंसले

बाला साहब (पुरुषा जी) की मृत्यु के बाद अप्पा साहब नागपुर लौट आया और अप्पा साहब ही अब नागपुर की गद्दी पर बैठा।

किन्तु अंगरेज़ों की ओर राजा अप्पा साहब भोंसले का रुख अब बदलने लगा। इसके मुख्य कारण दो ही थे। एक बाला साहब की हत्या और दूसरे सबसीडियरी सन्धि। अप्पा साहब इस बात को अनुभव करने लगा कि उस सन्धि का बोझ रियासत के ऊपर असह्य है। उसे पता चला कि मेरे दो मन्त्रियों, नागू पण्डित और नारायण पण्डित ने अंगरेजों के साथ मिल कर मुझे सबसीडियरी सन्धि के जाल में फंसवाया है। अप्पा साहब ने इन दोनों मंत्रियों को बरखास्त कर दिया और उस सन्धि को बदलने के लिए रेजिडेण्ट जेनकिन्स और गवर्नर जनरल हेस्टिंग्स, दोनों से प्रार्थनाएं करनी शुरू की। रेजिडेण्ट और उसके साथियों ने इसके जवाब में राजा अप्पा साहब को तरह-तरह से अपमानित करना शुरू किया।

*** "The conditions of the treaty were somewhat severe, and the amou of the subsidy exceeded a due proportion of the revenues of the country. Th charge of the contingent was an addition to a burden already too weighty fo the state, and the Raja had some grounds for complaining of the costliness o his new friends."—Mill, vol. viii, p. 186.**

पेशवा की खिलअत

इसी समय मराठा मण्डल के प्राचीन नियम के अनुसार पेशवा बाजीराव ने राजा अप्पा साहब के पास एक खिलअत भेजी। पेशवा से अभी तक अंगरेज़ों की लड़ाई शुरू न हुई थी इसलिए यह खिलअत पूना के रेज़िडेण्ट एलफ़िन्सटन की जानकारी में और उसकी अनुमति से भेजी गई। नवम्बर सन् 1817 में खिलअत नागपुर पहुंची। खिलअत के पहले जाने के लिए जो विशेष दरबार होने वाला था, उसमें राजा अप्पा साहब ने विधिवत जेनकिन्स को भी निमन्त्रित किया। जेनकिन्स ने दरबार में जाने से इस बिना पर इनकार कर दिया कि पेशवा की खिलअत को स्वीकार करना नागपुर के राजा के लिए कम्पनी की ओर शत्रुता दर्शाने के बराबर है। अप्पा साहब ने इसके उत्तर में रेज़िडेण्ट को विश्वास दिलाया कि आपकी आशंका निर्मूल है किन्तु जेनकिन्स पर इसका कोई असर न हुआ। दरबार हुआ, खिलअत पहनी गई, किन्तु जेनकिन्स दरबार में न पहुंचा।

अप्पा साहब की शिकायतें

अप्पा साहब ने इस समय रेज़िडेण्ट के व्यवहार की कुछ शिकायतें गवर्नर जनरल को लिख कर भेजीं। उनसे मालूम होता है कि कम्पनी की विशाल सेना के उपयोग के लिए जितना अनाज और दूसरा सामान नागपुर आता-जाता था, उस पर अंगरेज़ एक पाई महसूल की न देते थे; जितनी सबसीडियरी सेना अंगरेज़ों ने नागपुर में रख रखी थी और जिसका सारा खर्च वे अप्पा साहब से मांगते थे, वह 24 अप्रैल, सन् 1816 वाले सन्धिपत्र से कहीं अधिक थी; इत्यादि। अप्पा साहब की प्रार्थना केवल यही थी कि इस तरह की शिकायतें दूर कर दी जाएं और राज की आर्थिक स्थिति को देख कर सबसीडियरी सेना के खर्च की रक़म को कम कर दिया जाए, जिससे शासन के दूसरे काम भी चल सकें। सितम्बर, सन् 1817 के अन्त में सर जान मैलकम इस सम्बन्ध में अप्पा साहब से मिला। अप्पा साहब ने मैलकम का खूब सत्कार किया। मुलाक़ात के बाद सर जान मैलकम ने गवर्नर जनरल को लिखा कि अप्पा साहब की हार्दिक इच्छा अंगरेज़ों के साथ मित्रता क़ायम करने की है। किन्तु गवर्नर जनरल और रेज़िडेण्ट, दोनों का पक्का इरादा भोंसले राज को समाप्त कर देने का था। रेज़िडेण्ट ने 26 नवम्बर, सन् 1817 को गवर्नर जनरल को साफ़ लिख दिया कि अप्पा साहब का इस तरह की शिकायतें पेश करना ही अंगरेज़ सरकार के साथ उसकी शत्रुता का अकाट्य प्रमाण है।

युद्ध की तैयारी

26 नवम्बर से पहले ही जेनकिन्स युद्ध की पूरी तैयारी कर चुका था। रेज़िडेण्ट की इन तैयारियों के विषय में प्रोफेसर विलसन लिखता है—

> **"बरार की सबसीडियरी सेना का अधिकांश भाग इससे पहले ही युद्ध के मैदान में पहुंच चुका था, और एक सैन्यदल करीब तेरह मील दूर लेफ्टिनेण्ट कर्नल स्काट के अधीन रामटेक में मौजूद था, जिसे जब चाहे, बुलाया जा सकता था; इस दल में दो पलटनें मदरासी सिपाहियों की, × × × एक पैदल पलटन गोरों की और एक पलटन देशी सवार तोपखाने की, और तीन पलटनें नम्बर छह**

बंगाल सवारों की शामिल थी। पलटनें रेज़िडेण्ट की आज्ञानुसार 25 तारीख को रेज़िडेन्सी के मैदान में आ पहुंचीं, और वहां पर करीब चार सौ और सैनिक, दो तोपें और दो कम्पनी बंगाल पैदलों की और कुछ मदरासी सवार उनमें आकर मिल गए। 26 तारीख को प्रातःकाल सीताबल्डी की पहाड़ियों पर ये सारी सेनाएं बाज़ाब्ता खड़ी कर दी गईं।"*

अप्पा साहब की कायरता

इस विशाल सैन्यदल को ठीक राजधानी के सामने देख कर नागपुर के नीतिज्ञों का घबरा उठना स्वाभाविक था। दरबार के अन्दर तुरन्त दो दल पैदा हो गए—एक राजा अप्पा साहब और उसके कुछ साथी, जो अभी तक युद्ध से बचना चाहते थे और दूसरे वे लोग, जो युद्ध को अनिवार्य देख कर फ़ौरन अंगरेज़ी सेना पर हमला करने के पक्ष में थे। कहा जाता है कि इस वाद-विवाद के अन्दर ही अप्पा साहब की इच्छा के विरुद्ध उसकी कुछ सेना ने 26 नवम्बर की शाम को सीताबल्डी की अंगरेज़ी सेना पर हमला कर दिया। अंगरेज़ी सेना व्यवस्थित और तैयार थी। दूसरी ओर की सेना अव्यवस्थित और अनिश्चित थी। नतीजा यह हुआ कि मराठा सेना को हार कर पीछे हट जाना पड़ा।

युद्ध स्थगित

राजा अप्पा साहब ने रेज़िडेण्ट को कहला भेजा कि मेरी सेना ने मेरी इच्छा के विरुद्ध काम किया है, मुझे इसका दुख है और आप इसके लिए जो शर्तें तजवीज़ करें, मुझे मंजूर होंगी। जेनकिन्स ने अप्पा साहब को उत्तर में लिख भेजा कि मामला मेरे हाथों से अब गवर्नर जनरल के हाथों में चला गया है, फिर भी यदि आप अपनी सेना को फौरन अमुक-अमुक स्थान से पीछे हटा लें, तो गवर्नर जनरल की आज्ञा आने तक युद्ध बन्द रखने के लिए तैयार हूं। अप्पा साहब ने रेज़िडेण्ट की यह शर्त स्वीकार कर ली और 27 तारीख की रात को मराठा सेना, जिस-जिस स्थान से जेनकिन्स ने कहा था, हटा ली गई।

हेस्टिंग्स के एक पत्र में लिखा है कि इस तरह युद्ध को स्थगित करने में जेनकिन्स का उद्देश्य केवल यह था कि उसकी थकी हुई सेना को विश्राम मिल जाए तथा और अधिक सेना नागपुर पहुंच जाए। अप्पा साहब ने बार-बार सुलह की प्रार्थना की, किन्तु रेज़िडेन्ट ने इसकी ओर ध्यान न दिया।

नई शर्तें

29 तारीख की सुबह कम्पनी की कुछ और पलटनें नागपुर पहुंचीं। उसी दिन शाम को राजा ने जेनकिन्स को लिखा कि मैं अपनी अधिकांश सेना बरखास्त करने के लिए तैयार हूं। मेरी प्रार्थना है कि सबसीडियरी सन्धि क़ायम रखी जाए और मेरी सामान्य शिकायतों का समाधान कर दिया जाए। जेनकिन्स ने फिर वही उत्तर दिया कि मामला अब मेरे अधिकार से बाहर है। अंगरेज़ी सेनाएं बराबर नागपुर पहुंचती रहीं और अन्त में 14 दिसम्बर, सन् 1817 को जेनकिन्स ने

---

* Mill, vol. viii, p. 188.

नीचे लिखी शर्तें अप्पा साहब के पास भेजीं, और साथ ही लिख दिया कि यदि 16 तारीख के प्रातःकाल चार बजे तक इन शर्तों को पूरा न किया गया, तो मराठा सेना के ऊपर चारों ओर से हमला कर दिया जाएगा। शर्तों का सार यह था —

(1) राजा अप्पा साहब इस बात को स्वीकार करे कि उसकी सेना के अंगरेज़ी सेना पर हमला करने के दण्डस्वरूप सारी रियासत अंगरेज़ों की हो चुकी है और अप्पा साहब केवल अंगरेज़ कम्पनी की दया से अपने लिए कुछ आशा कर सकता है।

(2) राजा की सारी युद्ध-सामग्री तोपखाने इत्यादि कम्पनी के हवाले कर दिए जाएं। बाद में जब रियासत की सेना की तादाद निश्चित हो जाए, तो इस सामान का एक भाग वापस कर दिया जाएगा।

(3) रेज़िडेण्ट के साथ मिल कर राजा अपनी सारी अरब सेना को और दूसरी सेना को, जितनी जल्दी हो सके, बरख़ास्त कर दे।

(4) राजा की सेना फ़ौरन, जिस स्थान पर अंगरेज़ कहें, चली जाए।

(5) नागपुर का नगर खाली कर दिया जाए और कम्पनी की सेना उस पर कब्ज़ा कर ले। बाद में सन्धि हो जाने पर नगर वापस दे दिया जाएगा।

(6) राजा स्वयं अंगरेज़ों की छावनी में चला जाए और जब तक सब मामला तय न हो जाए, वहीं रहे, इत्यादि।

इसके बदले में जेनकिन्स ने यह वादा किया कि यदि अप्पा साहब इन सब शर्तों को स्वीकार कर लेगा, तो नागपुर का पूरा राज ज्यों-का-त्यों अप्पा साहब को दे दिया जाएगा और अंगरेज़ अप्पा साहब के शत्रुओं से उसकी रक्षा करेंगे।

अरबों की वफ़ादारी

ये शर्तें अत्यन्त अपमानजनक थीं, किन्तु अप्पा साहब नातजरबेकार, परवश और कायर था। अप्पा साहब ने ये शर्तें मंजूर कर लीं, किन्तु नागपुर की सेना में थोड़े-बहुत लोग मौजूद थे, जो इस आत्महत्या के लिए तैयार न थे। उन लोगों ने अंगरेज़ों के साथ लड़ने का निश्चय कर लिया, और अप्पा साहब को अंगरेज़ी छावनी में जाने से रोकने की कोशिश की। विशेषकर भोंसले राज में उस समय सैकड़ों अरब सिपाही जमादार थे। ये लोग अपनी वीरता और स्वामिभक्ति के लिए प्रसिद्ध थे। नागपुर के महल की रक्षा अधिकतर इन अरबों के ही सुपुर्द थी।

16 तारीख को 6 बजे राजा का यह सन्देश रेज़िडेण्ट के पास पहुंचा कि अरब लोग मुझे आने नहीं देते और हथियार अंगरेज़ों के हवाले करने में कुछ देर लगेगी, किन्तु दो तीन दिन के अन्दर सब ठीक कर दिया जाएगा। इस पर जेनकिन्स ने राजा को लिख भेजा कि यदि आप 9 बजे तक हमारी छावनी में आ जाय तो बाकी शर्तों के पूरा करने के लिए अधिक समय दे दिया जाएगा। 9 बजे से कुछ पहले स्वयं राजा अप्पा साहब अंगरेज़ी छावनी के भीतर पहुंच गया।

अप्पा साहब की इस कायरता का ठीक भेद नहीं खुलता। फिर भी, कुछ समय बाद राजा अप्पा साहब ने बयान किया कि इस अवसर पर नारायण पण्डित, जो अंगरेज़ों से मिला हुआ था, अप्पा साहब को धोखा देकर अंगरेज़ी छावनी में ले गया।

अंगरेज़ी सेना की असफलता

इस पर भी राजा की सेना ने अप्पा साहब की आज्ञा मानने से इनकार कर दिया। यह सेना अपने स्थान से न हटी। 16 दिसम्बर, को 12 बजे दिन में, जब अप्पा साहब की इजाज़त से अंगरेज़ी सेना तोपों पर कब्ज़ा करने के लिए पहुंची तो, राज की सेना ने अंगरेज़ी सेना पर गोलियां चलाईं। युद्ध शुरू हो गया। राज की सेना में कोई योग्य सेनापति न था। उनका राजा तक शत्रु के हाथों में था। फिर भी, अंगरेज़ी सेना इस वफ़ादार सेना को उसके स्थान से न हटा सकी और बिना अपना काम पूरा किए, हार कर अपने खेमों की ओर लौट आई।

इस संग्राम के बाद अंगरेज़ों ने देख लिया कि इतनी विशाल सेना के होते हुए भी लड़ाई में अरबों को परास्त कर सकना आसान न था। जेनकिन्स ने फिर अपनी कूटनीति से काम लिया। लिखा है कि 17 और 18 दिसम्बर, दो दिन अरब सेना के सरदारों को समझाने बुझाने में खर्च किए गए, किन्तु व्यर्थ। अरबों ने नगर खाली करने से साफ़ इनकार कर दिया। मजबूर होकर अंगरेज़ सेनापति जनरल डवटन को फिर युद्ध का निश्चय करना पड़ा। नगर पर चढ़ाई करने के लिए एक नया तोपखाना अकोला से मंगाया गया। दोबारा मैदान गरम हुआ। 24 दिसम्बर को जनरल डवटन के अधीन अंगरेज़ी सेना ने पूरा जोर लगा कर अरबों को महल से हटाने का प्रयत्न किया किन्तु अंगरेज़ी सेना को बेहद नुकसान उठाना पड़ा। वीर और वफ़ादार अरब अपने स्थान से न हिले। कम्पनी की सेना को दूसरी बार हार कर पीछे हट जाना पड़ा।

इसके बाद फिर 5 दिन तक अरबों के साथ समझौते की बातचीत होती रही। अप्पा साहब ने भी अरबों पर महल छोड़ देने के लिए काफी जोर दिया। अन्त में, मालूम नहीं किन शर्तों पर, 30 दिसम्बर को प्रातःकाल नागपुर महल की संरक्षक अरब सेना महल से बाहर निकली। एक अंगरेज़ अफ़सर अरबों और उनके कुटुम्बियों को पहुंचाने के लिए मलकापुर तक उनके साथ गया। 30 दिसम्बर को दोपहर के समय कम्पनी की सेना ने अरक्षित नगर और महल पर कब्ज़ा कर लिया। निस्सन्देह भोंसले राज के अस्त होने के दृश्य में इन वीर अरबों की अदम्य स्वामिभक्ति ही एकमात्र तेज की किरण थी।

अप्पा साहब के साथ दग़ा

गवर्नर जनरल हेस्टिंग्स और रेज़िडेण्ट जेनकिन्स की सब इच्छाएं पूरी हो गईं। किन्तु राजा अप्पा साहब की आशाएं फिर एक बार झूठी साबित हुईं। अप्पा साहब के रेजिडेन्सी में आने से पहले उससे यह साफ वादा कर लिया गया था कि आपके राज का कोई भाग आप से न लिया जाएगा। किन्तु इस वादे के विरुद्ध राजा अप्पा साहब से कहा गया कि आप केवल नीचे लिखी शर्तों पर नागपुर का तख्त वापस ले सकते हैं—

(1) नर्मदा के उत्तर का अपना सब इलाक़ा और उसके साथ कुछ इलाक़ा नर्मदा के दक्षिण का, और बरार, गाविलगढ़, सरगजा और जशपुर में जो कुछ आपके अधिकार हैं, वे सब आप कम्पनी को दे दें।

(2) आपके बाकी राज का शासन-प्रबन्ध जिन मन्त्रियों द्वारा चलाया जाए वे कम्पनी सरकार के विश्वासपात्र हों और रेज़िडेण्ट की सलाह के अनुसार काम करें।

(3) आप और आपका कुटुम्ब नागपुर के महल में कम्पनी की सेना के संरक्षण में रहें।

(4) 24 अप्रैल, सन् 1816 की आधी रात को, जो तीस लाख रुपये सालाना की रक़म सबसीडियरी सेना के खर्च के लिए नियत की गई थी, उसकी तमाम बक़ाया अदा की जाए और जब तक ऊपर लिखा इलाक़ा कम्पनी के हवाले न कर दिया जाए, तब तक यह रक़म बराबर अदा की जाती रहे।

(5) भोंसले राज के जो-जो क़िले अंगरेज़ चाहें, वे उनके हवाले कर दिए जाएं।

(6) राज के जिन-जिन लोगों को अंगरेज़ी कहें, वे पकड़ कर अंगरेज़ों के हवाले कर दिए जाएं।

(7) सीताबल्डी की दोनों पहाड़ियों, उसके पास का बाजार और आसपास की काफ़ी ज़मीन अंगरेज़ों के हवाले कर दी जाए, ताकि वे जिस तरह आवश्यक समझें, उसके ऊपर क़िलेबन्दी कर लें।

राजा अप्पा साहब को अब इसके सिवा और कोई चारा दिखाई न दिया कि इन लज्जाजनक शर्तों को स्वीकार करके अंगरेज़ों की क़ैद से अपने महल में आने की इजाज़त हासिल करे। राजा ने स्वीकार कर लिया और 9 जनवरी, सन् 1818 को वह अपने महल में पहुंचा। महल और नगर, दोनों पर अंगरेज़ी सेना का पहरा लग गया।

वास्तव में, जिन शर्तों पर राजा अप्पा साहब ने नागपुर की गद्दी फिर से प्राप्त की, वे केवल लज्जाजनक ही नहीं, वरन् असम्भव भी थीं। जो इलाक़ा राजा के पास बाकी छोड़ दिया गया था, उसकी आमदनी से क़ैदी राजा के लिए कम्पनी की नक़दी की मांग को पूरा कर सकना और शासन का खर्च चला सकना बिल्कुल असम्भव था।

अप्पा साहब ने महल में पहुंचते ही इस बात को अनुभव कर लिया। उसने रेज़िडेण्ट से प्रार्थना की कि मेरा सारा राज भी मुझसे ले लिया जाए और मेरे गुजारे के लिए एक सालाना पेन्शन नियत कर दी जाए। किन्तु गवर्नर जनरल ने इसे स्वीकार न किया।

कारण यह था कि गवर्नर जनरल युवक अप्पा साहब का राज ले लेने के लिए लालायित अवश्य था, किन्तु पेन्शन की फ़िज़ूलखर्ची करना न चाहता था। यह बात जानने योग्य है कि अप्पा साहब, जिनकी आयु उस समय केवल 22 साल की थी, मार्क्विस आफ हेस्टिंग्स को अपना 'बाप' और रेज़िडेण्ट जेनकिन्स को अपना 'बड़ा भाई' कहा करते थे।

अप्पा साहब की अन्तिम प्रार्थना

गवर्नर जनरल ने अप्पा साहब की इस अन्तिम प्रार्थना को अस्वीकार करने का जो कारण कम्पनी के डाइरेक्टरों को लिख कर भेजा, वह यह था कि इस प्रार्थना को स्वीकार करने में कम्पनी को धन की हानि है।

अप्पा साहब पर दोषारोपण

किन्तु सारा राज हड़पने के लिए भी किसी नए बहाने की आवश्यकता थी। तुरन्त रेज़िडेण्ट जेनकिन्स ने क़ैदी और पंगुल अप्पा साहब पर एक नया इलज़ाम लगाया कि अप्पा साहब और उसके दो मुख्य मन्त्री, नागू पण्डित और रामचन्द्र, बाग ,चौराग और मण्डला के किलेदारों, रतनपुर के सुबेदार और पेशवा बाजीराव के साथ अंगरेज़ों के विरुद्ध साज़िश कर रहे हैं। इस इलज़ाम के थोथेपन पर बहस करने की आवश्यकता नहीं है। जो सबूत जेनकिन्स ने इन इलज़ामों के लिए पेश किए, वे लार्ड हेस्टिंग्स को भी काफी मालूम नहीं हुए।

इस पर जेनकिन्स ने नागपुर की पुरानी घटनाओं में से अप्पा साहब के विरुद्ध एक और नया इलज़ाम खोद निकाला। वह यह, कि अप्पा साहब ने ही आज्ञा देकर पिछले राजा पुरुषाजी 'बाला साहब' की हत्या करवाई थी। इस नए इलजाम के सबूत से बयान और शहादतें तैयार कर ली गईं और इसी इलज़ाम की बिना पर जेनकिन्स ने 15 मार्च, सन् 1818 को अप्पा साहब और उसके दोनों मन्त्रियों को महल से गिरफ्तार करवा कर अपने जेलखाने में बन्द कर दिया।

झूठी गवाहियां

गवर्नर जनरल को जब इस घटना का पता चला, तो वह बहुत प्रसन्न हुआ। उसने डाइरेक्टरों को लिखा कि जो इलज़ाम रेजिडेण्ट ने इससे पहले अप्पा साहब पर लगाया था, उसके सबूत किसी को भी सन्तोषजनक मालूम न होते, किन्तु इस नए इलज़ाम से काम चल जाएगा। उसके कुछ शब्द ये हैं—

> **"मुझे यह अनुभव हुआ कि अपनी कीर्ति बनाए रखने की दृष्टि से हमें अप्प साहब को गद्दी से उतारने के लिए इससे अधिक जोरदार वजह और कोई न मिल सकती थी कि उस पर इस तरह की हत्या का इलज़ाम लगाया जाए। यदि मुक़दमा चलाया जाता, तो उसे दोषी साबित करने के लिए सबूत आसानी से पे किए जा सकते।"***

इस तरह के सबूतों के बारे में एक स्थान पर लार्ड मैकाले ने लिखा है—

> **"लोग उसे एक हारा हुआ आदमी समझते थे, और उन्होंने उसके साथ इ तरह का व्यवहार किया, जैसा हमारे कुछ पाठकों ने भारत में देखा होगा कि बहुत कौए मिल कर किसी बीमार गिद्ध को चोंच मार-मार कर खत्म कर डालते हैं। उ देश में जब-जब भाग्य किसी ऐसे आदमी का साथ छोड़ देता है, जो पहले कभी महा रह चुका हो और जिससे लोग डरते रहे हों, तब-तब उस मनुष्य की जो गति हो है, उसकी यह कौओं और गिद्ध वाली मिसाल कुछ बेजा मिसाल नहीं है। एक क्ष के अन्दर वे सभी खुशामदी, जो कुछ समय पहले उस मनुष्य के लिए झूठ बोल को तैयार थे, जालसाजी करने को तैयार थे, उसकी विषयवासना के साधन**

---

* "It appeared, however, that for our reputation, we could not go stronger grounds in deposing him than those of such a murder. The pr for conviction were easily producible, should the case be tried;......—Marq of Hastings' Despatch to the Secret Committee of the Court of Directors, da 21st August, 1820.

कर देने को तैयार थे, उसके लिए दूसरों को जहर दे देने को तैयार थे, वे सब अब उसके विजयी शत्रुओं के अनुग्रह पात्र बनने के लिए लपक-लपक कर उस पर दोष लगाते हैं। कोई भारतीय गवर्नमेण्ट यदि किसी खास आदमी को बरबाद करना चाहे, तो गवर्नमेण्ट के लिए अपनी इस इच्छा को केवल प्रकट कर देना काफ़ी है, और 24 घंटे के अन्दर गवर्नमेण्ट के पास उस आदमी के विरुद्ध गहरे इलजाम और उनके साथ-साथ इस तरह की पूरी-पूरी और मौके की गवाहियां पहुंच जाएंगी कि जिन्हें देख कर कोई भी ऐसा मनुष्य, जो एशियाई झूठ से परिचित न हो, उन पर पक्का विश्वास कर लेगा। गनीमत समझनी चाहिए, यदि उस अभागे के जाली दस्तखत किसी खिलाफ़ क़ानून पट्टे के नीचे न बना लिए जाएं और यदि कोई खिलाफ़ क़ानून कागज उसके मकान के किसी छिपे हुए कोने में चुपके से न डाल दिया जाए।"*

निस्सन्देह हर भारतवासी जानता है कि लार्ड मैकाले का उपरोक्त कथन कितना सच्चा है। किन्तु भारत के पिछले दो ढाई सौ साल के इतिहास में क्लाइव, वारेन हेस्टिंग्स, हॉलवेल, सर एलिजाह इम्पे, एलफ़िन्सटन और जेनकिन्स जैसे सैकड़ों छोटे-बड़े अंगरेज़ों के कारनामों से यह भी साबित है कि इस तरह का झूठ और जालसाज़ी कोई विशेष 'एशियाई' गुण ही नहीं है। इतिहास से यह भी जाहिर है कि भारतीय चरित्र में यह रोग कब से, कैसे और किनके संसर्ग से लगा।

बाला साहब की हत्या का दोषी

इसमें कुछ भी सन्देह नहीं हो सकता कि बाला साहब की हत्या का मुख्य अपराधी रेज़िडेण्ट जेनकिन्स था। उस समय के तमाम हालात और लेखकों से मालूम होता है कि अप्पा साहब इस मामले में बिल्कुल निर्दोष था। अप्पा साहब को दोषी ठहराने का विचार तक अंगरेज़ों के मन में हत्या के कम से कम एक साल बाद पैदा हुआ। यदि अप्पा साहब दोषी भी होता, तो भी जेनकिन्स और उसके साथियों को या कम्पनी सरकार को उसे दण्ड देने का कोई अधिकार न था। अप्पा साहब को अपने को निर्दोष साबित करने का कोई मौका भी नहीं दिया गया और न अप्पा साहब के सामने कोई सबूत पेश किए गए। वास्तव में पेशवा बाजीराव और राजा अप्पा साहब, दोनों के मामलों में किस्सा 'भेड़िए

---

* "They considered him a fallen man, and they acted the kind some of our readers may have seen in India, a crowd of crows pecking a sick vulture to death. No bad type of what happens in that country, as often as fortune deserts one who had been great and dreaded. In an instant, all the sycophants who had lately been ready to lie for him, to forge for him, to pander for him, to poison for him, hasten to purchase the favour of his victorious enemies by accusing him. An Indian Government has only to let it be understood that it wishes a particular man to be ruined, and in twenty-four hours it will be furnished with grave charges, supported by depositions so full and circumstantial that any person, unaccustomed to Asiatic mendacity, would regard them as decisive. It is well if the signature of the destined victim is not counterfeited at the foot of some illegal compart, and if some illegal paper is not slipped into a hiding place in the house."—Macaulay's *Essay on Warren Hastings.*

और मेमने' का था। अप्पा साहब को दोषी ठहरा कर फ़ैसला कर दिया गया कि उसे इलाहाबाद के क़िले में कैद कर दिया जाए। उसकी जगह नागपुर की दिखावटी गद्दी पर राघोजी भोंसले का एक दुधमुंहा नाती राजा बना कर बैठा दिया गया, और तय कर दिया गया कि नये राजा की नाबालगी में राज का सारा प्रबन्ध रेज़िडेण्ट के हाथों में रहे।

भोंसले राज का बटवारा

जो सन्धि हाल में अप्पा साहब के साथ की गई और जो नए दुधमुंहे राजा के साथ क़ायम रही, उसके अनुसार भोंसले राज का करीब आधा और अत्यन्त उर्वर भाग कम्पनी के शासन में आ गया। इस भाग में गढ़ामण्डला का प्रान्त, जिसमें मुख्य नगर जबलपुर है, और सोहागपुर, होशंगाबाद, सिवनी–छपरा और गाडरवाड़ा के जिले, जो नरबदा के दक्षिण में हैं, शामिल थे। भोंसले राज की कुछ सालाना आमदनी करीब साठ लाख रुपये थी। इसमें से वह हिस्सा, जो कम्पनी को मिला, अट्ठाइस लाख रुपये सालाना से ऊपर था, जिसमें से कि गवर्नर जनरल के बयान के अनुसार वसूली के खर्च को निकाल कर साढ़े बाइस लाख रुपये सालाना नक़द कम्पनी को बचने लगे।

देशी रियासतों के साथ कम्पनी का व्यवहार

निस्सन्देह पेशवा बाजीराव और राजा अप्पा साहब, दोनों के साथ कम्पनी के प्रतिनिधियों का व्यवहार इंगलिस्तान के प्रसिद्ध वक्ता एडमण्ड बर्क के नीचे लिखे शब्दों को सुन्दरता के साथ चरितार्थ करता है। बर्क ने 1 दिसम्बर, सन् 1783 को इंगलिस्तान की पार्लियामेण्ट के सामने वक्तृता देते हुए कहा था —

> “ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने देश की दूसरी रियासतों के साथ जो दग़ा की है, उसके सम्बन्ध में मैं आपके सामने नीचे लिखी तीन बातें साबित करने का आपसे वादा करता हूं। पहली बात में यह कहता हूं कि इमास पहाड़ (हिमायल पर्वत) से लेकर × × × कन्याकुमारी तक × × × भारत में एक भी राज या राजा या नवाब, छोटा या बड़ा, ऐसा नहीं है, जिसके साथ अंगरेज़ों का वास्ता न पड़ा हो और जिसे उन्होंने बेच न डाला हो, मैं फिर कहता हूं कि बेच न डाला हो, यद्यपि कभी-कभी ऐसा भी हुआ कि अंगरेज़ों ने जो कुछ सौदा किया, उसे वे अपनी ओर से पूरा न कर सके। दूसरी बात मैं यह कहता हूं कि एक भी ऐसी सन्धि नहीं है, जो अंगरेज़ों ने कभी की हो और जिसे उन्होंने तोड़ा न हो। तीसरी बात मैं यह कहता हूं कि एक भी राजा या राज ऐसा नहीं है, जिसने कभी भी कम्पनी के ऊपर किसी तरह का एतबार किया हो और जो बिल्कुल बरबाद न हो गया हो; और कोई भी राजा या राज यदि किसी दरजे तक भी सुरक्षित या खुशहाल है, तो वह ठीक उस दरजे तक ही सुरक्षित या खुशहाल है, जिस दरजे तक कि उसने अंगरेजी क़ौम पर लगातार अविश्वास किया और उस क़ौम के साथ अदम्य शत्रुता जारी रखी।
>
> “मेरी ये तीनों बातें निरपवाद हैं; मैं कहता हूं कि पूरे अर्थों में निरपवाद हैं। ये बातें केवल दूसरी रियासतों के साथ कम्पनी के सम्बन्ध की हैं, किन्तु ठीक

इसी तरह की दूसरी बात में कम्पनी के अपने इलाके के बारे में भी पेश करूंगा।"*

भोंसले के क़िले पर कब्ज़ा

नागपुर पर कब्ज़ा करने और राजा अप्पा को कैद कर लेने के बाद अंगरेज़ों के लिए केवल भोंसले राज के आधे इलाक़े और अनेक छोटे बड़े किलों पर कब्ज़ा करना बाकी रह गया था। मध्य भारत के इन क़िलों में से अनेक इतने दुर्गम थे कि कई अंगरेज़ सेनापतियों ने उनकी मज़बूती की बड़ी प्रशंसा की है। एक अंगरेज़ लिखता है—

"मालूम होता है कि प्रकृति ने इन किलों की भूमि को इसलिए बनाया है कि स्वतन्त्रता और स्वाधीनता के संग्राम वहां पर सफलता के साथ लड़े जा सकें"।† इनमें से कुछ क़िलों के भारतीय संरक्षकों ने बड़ी वीरता और आत्मोत्सर्ग के साथ आखिर दम तक अपने क़िलों की रक्षा की। फिर भी, एक दूसरे के पश्चात राजदीर और त्र्यम्बक, तालनेर और असीरगढ़ जैसे लगभग तीस मजबूत क़िले देखते-देखते विदेशियों के हाथों गए। कहीं, जैसे राजदीर में, किलदारों और उनके सिपाहियों में झगड़ा हो गया और में आ सिपाहियों ने अपने ही क़िले को आग लगा दी। कहीं जैसे त्र्यम्बक में, राजा अप्पा साहब के भाग जाने का समाचार सुनकर सेना के हाथ पांव फूल गए। कहीं जैसे तालनेर में, क़िलेदार ने अंगरेज़ों की अधीनता स्वीकार कर ली, फिर भी अंगरेज़ी सेना ने शरणागत शत्रुओं का कत्लेआम कर डाला। अनेक जगह क़िलेदारों को धन का लोभ देकर उनसे अपने स्वामी और राज के विरुद्ध विश्वासघात कराया गया। प्रायः सब जगह नागपुर के नए दुधमुहें राजा की ओर से कम्पनी के पक्ष में ऐलान बटवाए गए। सबसे अधिक देर असीरगढ़ के क़िले ने ली। इस क़िले के अन्दर अधिकांश अरब सेना थी, जिसने एक साल से ऊपर तक यानी 7 अप्रैल, सन 1819 तक शत्रु की अधीनता स्वीकार न की। अन्त में, असीरगढ़ के पतन के साथ-साथ वह समस्त इलाक़ा कम्पनी के अधीन हो गया, जो हाल की सन्धि से उसे प्राप्त हुआ था।

---

* "With regard, therefore, to the abuse of the external federal trust, I engage myself to you to make good these three positions: First, I say, that from Mount Imaus......to Cape Comorin......that there is not a single prince, state or potentate, great or small, in India with whom they have come into contact, whom they have not sold, I say sold, though sometimes they have not been able to deliver according to their bargain. Secondly, I say that there is not a single treaty they have ever made, which they have not broken. Thirdly, I say that there is not a single prince or state who ever put any trust in the Company who is not utterly ruined; and that none are in any degree secure or flourishing but in the exact proportion to their settled distrust and irreconcilable enmity to this nation.

"These assertions are universal: I say, in the full sense universal. They regard the external and political trust only, but I shall produce others fully equivalent in the internal."—Burke's Speech on Fox India Bill, 1st December, 1783.

† "She (Nature) seems to have marked them out as a theatre, on which the battles of freedom and independence might be successfully fought,"—*Journal of the Sieges of the Madras Army* by Lieut. Lake, p. 107.

अप्पा साहब के अन्तिम प्रयत्न

इसके बाद हमारे लिए केवल अप्पा साहब की शेष कहानी को संक्षेप में बयान करना बाक़ी रह जाता है। 15 मार्च, सन् 1818 को नागपुर में गिरफ्तार होने के समय से लेकर मृत्यु के समय तक अप्पा साहब की कहानी अत्यन्त करुणाजनक और उपन्यास के समान मालूम होती है। अप्पा साहब को कम्पनी की कई सौ पैदल और कुछ सवार सेना की निगरानी में जबलपुर के रास्ते नागपुर से इलाहाबाद के लिए रवाना किया गया। मालूम होता है कि अप्पा साहब के साथ अंगरेज़ों का व्यवहार उस समय बेहद बुरा था। मार्ग में एक दिन, रात के दो बजे के क़रीब, राचूरी नामक स्थान से अप्पा साहब अपनी गारद की आंख बचा कर और उसी गारद के छह विश्वस्त हिन्दोस्तानी सिपाहियों और तीन सवारों को साथ लेकर एक सिपाही की पोशाक में भाग निकले। कम्पनी की ओर से फ़ौरन उनकी गिरफ्तारी के लिए बड़े-बड़े इनामों का ऐलान किया गया और अनेक प्रयत्न किए गए, किन्तु कई छोटे बड़े स्थानों में ठहरते हुए अप्पा साहब महादेव पहाड़ पर पहुंचा, जहां गोंड जाति के लोग उनका स्वागत करने और उसकी सहायता करने के लिए तैयार थे। इन गोंडों की मदद से अप्पा साहब ने चौरागढ़ के क़िले पर कब्जा कर लिया। कहते हैं कि उस समय नागपुर में भी अनेक लोग अप्पा साहब के पक्ष में थे, जो गुप्त रीति से उसे धन इत्यादि की सहायता पहुंचा रहे थे। बरहानपुर में कुछ अरब सेना अप्पा साहब के इन्तजार में मौजूद थी। अंगरेज़ों को जब उसे फिर से गिरफ्तार करने में सफलता प्राप्त न हो सकी, तो उन्होंने ऐलान किया कि यदि अप्पा साहब लौट आए, तो उन्हें एक लाख रुपये सालाना की पेन्शन पर कम्पनी के इलाक़े के अन्दर किसी भी स्थान पर रहने दिया जाएगा। किन्तु अप्पा साहब ने यह स्वीकार न किया। उसने अब छत्तीसगढ़ के लोगों, राजा कीरतसिंह और भोपाल के कुछ सरदारों इत्यादि को अपनी ओर करने की कोशिश की। अन्त में कर्नल ऐडम्स के अधीन अंगरेज़ी सेना अप्पा साहब को गिरफ्तार करने के लिए कई ओर से महादेव पहाड़ पर पहुंची। अप्पा साहब अपने विश्वस्त अनुचर, प्रसिद्ध चीतू पिण्डारी और कुछ सवारों सहित असीरगढ़ के क़िले में दाखिल हुए। अंगरेज़ी सेना ने उनका पीछा किया। असीरगढ़ के क़िले के ठीक नीचे दोनों ओर की सेनाओं में लड़ाई हुई। सम्भव है कि अप्पा साहब को उस समय गिरफ्तार कर लिया जाता, किन्तु ठीक समय पर क़िले के अन्दर से जसवन्तराव लार की सेना ने निकल कर अंगरेज़ी सेना से अप्पा साहब को बचा लिया। इसके कुछ समय बाद ही वफ़ादार चीतू पिण्डारी किसी चीतें का शिकार हो गया। असीरगढ़ के क़िले के अन्दर से अप्पा साहब और अंगरेज़ों में फिर पत्र-व्यवहार हुआ। अंगरेज़ों ने उनसे अधीनता स्वीकार कर लेने के लिए कहा, किन्तु अप्पा साहब ने फिर इनकार कर दिया।

अप्पा साहब का अन्त

इसके बाद अप्पा साहब फ़क़ीर के वेश में केवल एक अनुचर को साथ लेकर बरहानपुर की ओर निकल गए। बरहानपुर उस समय सिंधिया की रियासत में था और सिंधिया अंगरेज़ों के प्रभाव में आ चुका था। अप्पा साहब को बरहानपुर छोड़ कर लाहौर की राह लेनी पड़ी। कुछ दिनों तक वह एक साधारण व्यक्ति के समान लाहौर में रणजीतसिंह का मेहमान रहे। उसके बाद अप्पा साहब को लाहौर भी छोड़ना पड़ा। लाहौर से चल

कर वह हिमालय पहाड़ के अन्दर कई बरस तक मण्डी की रियासत में वहां के राजा के मेहमान रहे। इसके बाद वह फिर मध्य भारत की ओर लौटे। इस बार उसने जोधपुर रियासत के अन्दर महामन्दिर नामक सुप्रसिद्ध मन्दिर में आश्रय लिया। अंगरेज़ों ने जोधपुर के राजा पर जोर दिया कि अप्पा साहब को कम्पनी के हवाले कर दो। किन्तु जोधपुर के राजा मानसिंह ने मन्दिर के मान और एशियाई आतिथ्य धर्म की मर्यादा का उल्लंघन करने से इनकार कर दिया। अन्त में जोधपुर के महामन्दिर में ही राजा मानसिंह के आतिथ्य में नागपुर के निर्वासित राजा अप्पाजी भोंसले ने अपनी ऐहिक जीवनयात्रा का अन्त किया।

होलकर के साथ युद्ध

केवल एक और स्वाधीन मराठा राज बाकी रह गया था। दस साल पहले अंगरेज़ों को जसवन्तराव होलकर के साथ जो सन्धि करनी पड़ी थी, वह किसी तरह भी अंगरेज़ों की कीर्ति को बढ़ाने वाली न थी। किन्तु इस बीच वीर जसवन्त के साथ कम्पनी की उन साज़िशों ने, जिनका ऊपर ज़िक्र आ चुका है, होलकर राज में चारों ओर फूट, कुशासन और अराजकता फैला रखी थी। लार्ड हेस्टिंग्स को होलकर राज पर हमला करने का यह अच्छा अवसर दिखाई दिया। कम्पनी की सेना ने बिना किसी कारण होलकर राज पर हमला कर दिया।

महीदपुर का संग्राम

20 दिसम्बर, सन् 1817 को महीदपुर नामक स्थान पर राज की सेना और कम्पनी की सेना में युद्ध हुआ। इस कुशासन की हालत में भी होलकर की सेना के मुसलमान प्रधान सेनापति, रोशन बेग ने अपने तोपखाने की मदद से बड़ी वीरता के हाथ दिखलाए; यहां तक कि, लिखा है, एक बार अंगरेज़ी सेना के पैर उखड़े हुए नजर आने लगे। किन्तु होलकर सेना के अन्दर अभी विश्वासघातक अमीर खां का दामाद, सेनापति नवाब अब्दुल गफूर खां भी मौजूद था। एक मुसलमान लेखक, लुत्फ़ुल्लाह, लिखता है—

> "यदि विदेशी उस लड़ाई में हार जाते, तो करीब दस हजार हथियारबन्द लोगों की सेना उनका सर्वनाश कर देने के लिए मौजूद थी, किन्तु ये सभी उम्मीदें खाक में मिल गईं। × × × उन्हें यह मालूम न था कि ठीक उस समय, जब कि होलकर के तोपखाने के मुख्य सेनापति, रोशन बेग, की वफ़ादारी और उसके वीर प्रयत्नों द्वारा अंगरेज हारने को ही थे, उसी समय नवाब अब्दुल ग़फ़ूर खां अपने स्वामी के साथ विश्वासघात करके, अपने साथ की पूरी सेना सहित, मैदान छोड़ कर भाग गया। जब तक अब्दुल ग़फ़ूर जिन्दा रहा, यह कलंक का टीका उसके माथे पर लगा रहा × × × ।"*

---

* "There would have been a host of about ten thousand armed men to destroy the foreigners, had they lost the battle, but all these hopes were frustrated......Little did they know that Nawab Abdul Ghafoor Khan played the part of a traitor to his master, and deserted the field of battle with the force under his command, just at the moment when the English were on the point of loosing the battle through the loyal and gallant exertions of Roshan Beg, the Captain-General of Holkar's artillery. The stain of this disgrace clung too firmly to the name of Abdul Ghafoor as long as he lived,......"—*The Autobiography of Lutufullah*, pp. 103, 104.

जाहिर है कि विजय अंगरेज़ों की ओर रही। मांडेश्वर नामक स्थान पर सन्धि हुई। होलकर का बहुत सा इलाका कम्पनी के राज में मिला लिया गया। बालक महाराजा ने कम्पनी के साथ सबसीडियरी सन्धि कर ली। अब्दुल ग़फ़ूर की सेवाओं के बदले में आज (1929) तक उसके वंशजों को कम्पनी की ओर से मालवा में जाओरा की रियासत मिली हुई है।

तीसरे मराठा युद्ध का अन्त

सिंधिया के प्रधान सामन्तों को उससे अलग कर लिया गया। होलकर का बहुत सा इलाका छीन कर उसे कम्पनी का सामन्त बना लिया गया। भोंसले का आधा राज छीन लिया गया और सबसीडियरी सेना नागपुर में कायम कर दी गई। मराठा सत्ता के प्रधान स्तम्भ, पेशवा और उसका राज, दोनों का सदा के लिए अन्त कर दिया गया। इस तरह तीसरे मराठा युद्ध के साथ-साथ मराठा सत्ता का अन्त हो गया और हेस्टिंग्स और उसके साथियों की अशाएं पूरी हुई।

यह युद्ध मराठा जाति के साथ कम्पनी का अन्तिम महान युद्ध था। इस युद्ध द्वारा कम्पनी के भारतीय राज में 50,000 वर्ग मील से अधिक की वृद्धि हुई; जिसमें सतारा के राजा के लिए थोड़े से इलाक़े को छोड़ कर पेशवा का बाकी सारा राज और सिंधिया, होलकर और भोंसले, तीनों के अनेक उर्वर प्रान्त शामिल थे। इन पिछले तीन नरेशों के ये प्रदेश ही बाद में 'मध्य प्रान्त' और 'मध्य भारत' के नाम से विख्यात हुए और आज (1929) तक इन्हीं नामों से पुकारे जाते हैं। राजपूत राजाओं से भी उस रक्षा के बदले में जो अंगरेज़ों ने इस युद्ध के समय की (?), बहुत सा धन और बहुत सी भूमि ले ली गई। इस तरह अजमेर के नये ब्रिटिश प्रान्त की रचना हुई।

हेस्टिंग्स के अन्य कृत्य

मराठा रियासतों के अतिरिक्त मछेरी, रीवां, सावन्तवाड़ी और करनूल जैसी छोटी-छोटी रियासतों के साथ भी हेस्टिंग्स के कई छोटे-मोटे संग्राम हुए, जिनमें उसे अपनी कूटनीति के बल पर काफ़ी सफलता प्राप्त हुई।

हेस्टिंग्स के कारनामों में केवल एक और बयान करने योग्य है। मद्रास प्रान्त में उसने रैयतवाड़ी और अस्थायी बन्दोबस्त की उस प्रथा को जारी किया, जिसके कारण वहां की प्रजा दिन-दिन अधिकाधिक दरिद्र होती चली गई।

ईस्ट इण्डिया कम्पनी के डाइरेक्टरों ने तीसरे मराठा युद्ध की विजय के उपलक्ष में लार्ड हेस्टिंग्स को इंगलिस्तान में जमींदारी खरीदने के लिए साठ हजार पाउण्ड, यानी, करीब 9 लाख रुपये नकद इनाम दिए।

तैंतीसवां अध्याय

लॉर्ड ऐमहर्स्ट

(1823—1828)

ऐडम्स

लार्ड हेस्टिंग्स के वाद सात महीने ऐडम्स भारत का गवर्नर जनरल रहा । ऐडम्स के समय में केवल एक ही उल्लेखनीय घटना हुई । कलकत्त की एक अंगरेज़ी पत्रिका, 'कैलकटा जरनल', के अंगरेज़ सम्पादक, जे० एस० वकिंघम, ने अपने पत्र में एक स्काट पादरी के सम्बन्ध में कुछ ऐसी बातें लिख दीं, जो ऐडम्स को नापसन्द थीं । ऐडम्स के हुक्म से वकिंघम का बिस्तर बोरिया ज़बरदस्ती बंधवा कर उसे इंगलिस्तान भिजवा दिया गया ।

लार्ड ऐमहर्स्ट

1 अगस्त, सन् 1823 को लार्ड ऐमहर्स्ट भारत का गवर्नर जनरल नियुक्त होकर कलकत्ते पहुंचा । ऐमहर्स्ट को भारत में आए चन्द महीने ही हुए थे कि उसने बर्मा देश के साथ युद्ध शुरू कर दिया ।

बर्मा युद्ध का सूत्रपात

बर्मा उन दिनों एक विशाल, स्वाधीन और अत्यन्त समृद्ध देश था । बंगाल की सरहद पर असम और अराकान के प्रान्त उस समय बर्मा में शामिल थे । बहुत दिनों से अंगरेज़ों की उस देश पर नज़र थी । 18वीं शताब्दी के अन्त से ही छेड़छाड़ जारी थी । अराकान की सरहद बंगाल के चट्टगांव ज़िले की सरहद से मिली हुई थी । अराकान का राजा बर्मा के महाराजा का सामन्त था । अंगरेज़ों ने पहले अराकन के एक विद्रोही किन्तु शक्तिशाली सरदार, किंगबेरिंग, को अपनी ओर मिलाया ।

इतिहास लेखक विलसन ने लिखा है कि सन् 1797 और 1798 में लगभग तीस चालीस हज़ार अराकान निवासी अपना देश छोड़कर किंगबेरिंग के साथ चट्टगांव ज़िले में आ बसे । मालूम नहीं, किन-किन उपायों से और क्या-क्या लोभ देकर बर्मी प्रजा के इन लोगों को भड़का कर चट्टग्राम लाया गया । किन्तु लिखा है कि अंगरेज़ कम्पनी की ओर से इन लोगों के गुजारे के लिए उन्हें मुफ्त ज़मीनें दी गईं; एक खास अफसर, कप्तान काक्स, इनके प्रबन्ध के लिए नियुक्त किया गया और जहां पर ये आकर बसे, उस बस्ती का नाम काक्स बाज़ार रखा गया । विलसन लिखता है—

> **"बंगाल की अंगरेज़ सरकार ने यह निश्चय कर लिया था कि इन नये आगन्तुकों का एक स्थायी उपनिवेश बना कर उन्हें हर तरह की सुविधाएं दी जाएं,**

और ज़िले के दक्षिणी भाग में जो खाली जमीनें पड़ी हुई थीं, वे उन्हें दे दी गईं।"*

बर्मा के इलाके में लूटमार

इसके बाद इन्हीं अराकानियों के ज़रिए अंगरेज़ कम्पनी के प्रतिनिधियों ने बर्मा के अराकान प्रान्त पर हमले कराना और लूटमार कराना शुरू कर दिया। लार्ड मिण्टो के समय में, मई सन् 1811 में, इन लोगों ने किंगबेरिंग के अधीन कम्पनी के इलाक़े से निकल कर बर्मा के इलाक़े पर धावा मारा और लूट का बहुत सा सामान साथ लेकर फिर कम्पनी के इलाक़े में लौट आए। लार्ड मिण्टो ने डाइरेक्टरों के नाम अपने 23 जनवरी, सन् 1812 के पत्र में किंगबेरिंग और उसके हमले का पूरा हाल दिया है, जिसमें बर्मा के महाराजा और किंगबेरिंग के परस्पर वैमनस्य का भी ज़िक्र किया है। इस पत्र में साफ़ लिखा है कि किंगबेरिंग अंगरेज़ी इलाक़े में रह कर सन् 1797 से इस हमले की तैयारी कर रहा था और चट्गांव में उसने एक जबरदस्त दल जमा कर रखा था।

किंगबेरिंग

इस पर बर्मा के दरबार का यह समझना कि किंगबेरिंग का हमला अंगरेज़ों के इशारे और उनकी मदद से हुआ, ठीक था। बर्मा के साथ उस समय तक अंगरेज़ों का किसी तरह का कोई झगड़ा न था। उस देश के महाराजा ने कम्पनी सरकार को लिखा कि या तो किंगबेरिंग और उसके साथियों को बर्मा दरबार के हवाले कर दिया जाए या बर्मा की सेना को कम्पनी के इलाक़े में जाकर उन्हें गिरफ्तार करने की इजाज़त दी जाए। अंगरेज़ों ने इस पर उस समय किंगबेरिंग को हवाले करने का झूठा वादा कर लिया। इसके बाद किंगबेरिंग लगभग हर साल बर्मा के इलाक़े पर धावे मारता रहा। कई बार बर्मा की सेना ने अपने इलाक़े के अन्दर उस पर हमला किया। हर बार हार खाकर किंगबेरिंग भाग कर फिर अंगरेज़ी इलाक़े में चला आता था। अंगरेज़ सरकार ने न बर्मा की सेना को अपने इलाक़े में प्रवेश करने दिया और न किंगबेरिंग को उनके हवाले किया। अन्त में सन् 1815 में किंगबेरिंग की मृत्यु हो गई।

किन्तु किंगबेरिंग की मृत्यु के साथ बर्मा की प्रजा की मुसीबतें खत्म न हुईं। उसके स्थान पर अब उसी तरह के दूसरे लोग खड़े कर दिए गए और बर्मा की प्रजा पर बराबर धावे जारी रहे। बर्मा दरबार ने अंगरेज़ों से प्रार्थना की कि इन डाकुओं को हमारे सुपुर्द कर दो। लार्ड मिण्टो ने डाइरेक्टरों के नाम अपने पत्रों में स्वीकार किया है कि इन धावों के कारण अराकान की प्रजा की बहुत बड़ी हानि हो चुकी थी और बर्मा दरबार की शिकायत और उनकी मांग सर्वथा न्यायसंगत थी। फिर भी भारत की अंगरेज़ सरकार ने यह कह कर साफ़ इनकार कर दिया कि ये लोग अब अंगरेज़ सरकार की प्रजा है, इसलिए इन्हें दूसरों के हवाले करना अंगरेज़ सरकार के असूलों के खिलाफ़ है।†

---

* "The Government of Bengal had resolved to admit the emigrants to the advantages of permanent colonisation, and assigned them unoccupied lands in the southern portion of the district."—Mill, vol. ix, p. 11.

†Papers relating to East India affairs. *viz.*, discussions with the Burmese Government, p. 116, para 23.

कच्छ की स्वाधीन रियासत पर हमला करने और उसकी स्वाधीनता का अन्त कर देने का एकमात्र कारण अंगरेज़ों ने यह बतलाया था कि कच्छ के कुछ डाकुओं ने काठियावाड़ के कुछ इलाक़ें पर धावा मारा था, काठियावाड़ पेशवा के अधीन था और पेशवा अंगरेज़ों का मित्र था। पिण्डारी डाकुओं के दमन के नाम पर ही अंगरेज़ों ने समस्त मराठा साम्राज्य के साथ युद्ध छेड़ दिया था। किन्तु अब करीब 15 साल तक लगातार हजारों हथियारबन्द डाकू हर साल अंगरेज़ी इलाक़े से निकल-निकल कर बर्मी इलाक़े में लूट-मार मचाते रहे और कम्पनी सरकार ने उन्हें 'अपनी प्रजा' कह कर उनका पक्ष लिया।

कप्तान कैनिंग

किंतु बर्मा दरबार को सन्तुष्ट रखना और उस ओर भविष्य में अपना साम्राज्य बढ़ाने के प्रयत्न करना भी आवश्यक था। इस काम के लिए कप्तान कैनिंग नामक एक अंगरेज़ कुछ उपहारों सहित बर्मा की राजधानी, आवा भेजा गया। कैनिंग ने बर्मा के महाराजा को यह समझाने का प्रयत्न किया कि अंगरेज़ों का इन धावों के साथ कोई सम्बन्ध नहीं और कम्पनी सरकार बर्मा के महाराजा की सच्ची मित्र है।

बर्मा को पराधीन करने की तजवीज़ें

लार्ड मिण्टो के पत्रों में साफ़ ज़िक्र आता है कि कप्तान कैनिंग ने बर्मा में राज के विरुद्ध उपद्रव खड़े करने, बर्मा दरबार को अंगरेज़ कम्पनी के साथ सबसीडियरी सन्धि में फांसने और बर्मा की स्वाधीनता का अन्त करने के अनेक प्रयत्न किए। बर्मा की सैनिक शक्ति का पता लगाने में भी कैनिंग ने जासूस का खासा अच्छा काम किया। उसने एक पत्र में लार्ड मिण्टो को लिखा—

> **"यदि गवर्नमेण्ट का यह विचार हो कि बर्मा के राज के अन्दर अपना प्रभुत्व कायम किया जाए, तो निस्सन्देह इसके लिए यह बहुत ही अच्छा अवसर है, क्योंकि यहां की सरकार की निर्बलता और लोगों में आम असन्तोष के कारण सारा देश एक छोटी-सी अंगरेजी सेना द्वारा काबू में आ जाएगा।"***

इसका साफ़ मतलब यह है कि कप्तान कैनिंग ने बर्मा के लोगों में 'असन्तोष' पैदा करना और वहां के महाराजा के विरुद्ध साज़िशें करना शुरू कर दिया था। कम्पनी के डाइरेक्टरों के नाम लार्ड मिण्टो ने 1 अगस्त 1812 के पत्र में लिखा—

> **"कप्तान कैनिंग का यह कहना कि इस समय आवा के राजा के साथ युद्ध छेड़ कर अंगरेज़ सरकार अमुक-अमुक लाभ उठा सकती है, निस्सन्देह युक्तिसंगत है। उस देश के समुद्र तट और प्रान्त हमारे हमले के लिए खुले है, और उनकी रक्षा की कोई व्यवस्था नहीं हैं। हमारे इलाक़े का केवल एक हिस्सा है, जहां तक बर्मी**

---

*"……Should it enter into the views of Government to obtain a preponderating influence in the Burmese dominions, the present was certainly the most favourable moment, as the weakness of the Government and general discontent of the people would put the whole country at the disposal of a very small British force."—Minto's Despatch to the Court of Directors, 4th March, 1812.

सेनाएं पहुंच सकती हैं; उसकी हम आसानी से और सफलता के साथ रक्षा कर सकते हैं। इसलिए इसमें कुछ भी सन्देह नहीं हो सकता कि युद्ध में हमें शीघ्र और पूरी तरह विजय प्राप्त होगी।"*

स्पष्ट है कि कम्पनी सरकार क्या चाहती थी और कप्तान कैनिंग को भेजने का वास्तविक उद्देश्य क्या था। यह भी स्पष्ट है कि उस समय तक बर्मा दरबार की ओर से युद्ध का किसी तरह का बहाना न मिल सकता था।

छेड़छाड़

इन धावों और लूटमार के अतिरिक्त और भी कई तरह की छेड़छाड़ अंगरेज़ों और बर्मा के बीच जारी थी। उदाहरण के लिए, कम्पनी ने उन दिनों हाथी का शिकार करने के लिए अनेक लोग अपने यहां नौकर रख रखे थे। ये लोग बार-बार कम्पनी की सरहद के उस पार बर्मा की रामू पहाड़ियों में ज़बरदस्ती घुस कर वहां से हाथी पकड़ लाते थे। अनेक बार बर्मा दरबार के कर्मचारियों ने इनमें से कुछ लोगों को गिरफ्तार भी किया। फिर भी इस तरह की ज़बरदस्तियां बराबर जारी रहीं और सन् 1821 में भी जारी थीं।

तिजारती माल के महसूल का झगड़ा

तीसरा एक और झगड़ा तिजारती माल के महसूल के बारे में था। अंगरेज़ों की माल से लदी हुई किश्तियां बर्मा की नाफ़ नदी में प्रवेश करती रहती थीं। बर्मा के कर्मचारी माल पर बाक़ायदा महसूल मांगते थे। अंगरेज़ यह बहाना लेकर इनकार कर देते थे कि नाफ़ नदी का एक किनारा बर्मा के राज में है और दूसरा अंगरेज़ों के राज में।

अन्त में जनवरी, सन् 1823 में अंगरेज़ों की एक नाव ने, जिस में चावल भरा हुआ था, नाफ़ नदी में प्रवेश किया। बर्मी अफ़सरों ने महसूल मांगा। नाव वालों ने देने से इनकार कर दिया। इस पर नाव वालों और बर्मी अफ़सरों में कुछ झगड़ा हुआ, जिसमें कहा जाता है कि बर्मियों ने गोलियां चलाईं और अंगरेज़ी नाव का मांझी मारा गया। इस पर अंगरेज़ी सेना ने जाकर शाहपुरी नामक एक बर्मी टापू पर कब्जा कर लिया। बर्मा वालों ने एतराज़ किया, पर अंगरेज़ों ने न सुना। इस पर बर्मा की सेना ने आकर अंगरेजों को निकाल कर शाहपुरी के टापू पर फिर से कब्जा कर लिया।

दो कम्पनी सेना हिन्दोस्तानी सिपाहियों की कलकत्ते से रवाना की गईं। 21 नवम्बर, सन् 1823 को वह शाहपुरी पहुंची। बर्मी सेना ने उसका जरा भी विरोध न किया। शाहपुरी पर फिर से अंगरेज़ों ने कब्जा कर लिया। ये दोनों कम्पनियां, कुछ तोपें, कुछ हथियारबन्द किश्तियां और कुछ और सेना अब शाहपुरी में छोड़ दी गई। वहां की प्रजा को अपनी ओर करने के लिए उनमें एक झूठा ऐलान प्रकाशित कर दिया गया।

कप्तान च्यू की गिरफ्तारी

बर्मा दरबार ने ऐतराज़ किया। अंगरेज़ों ने कहा कि शाहपुरी का टापू हमारा है। तय हुआ कि सरहद के प्रश्न का निबटारा करने के लिए एक संयुक्त कमीशन बैठे। कम्पनी

---

* Lord Minto to the Directors, 1st August, 1812.

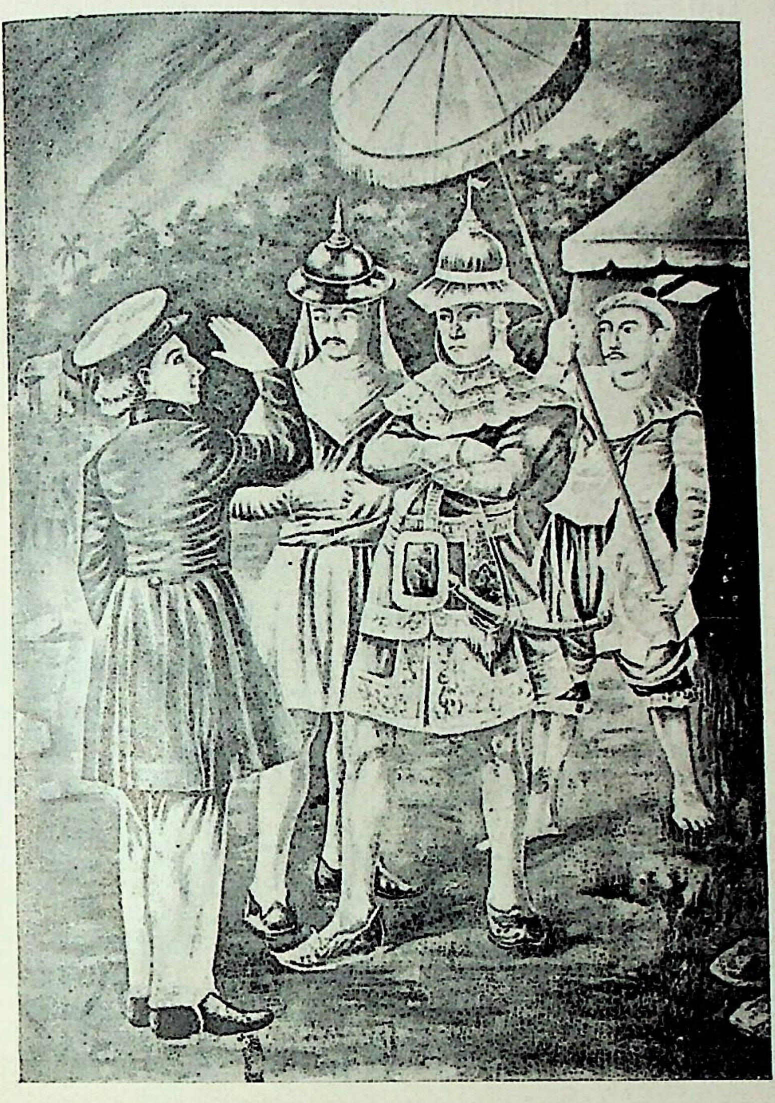

महाबन्दूला

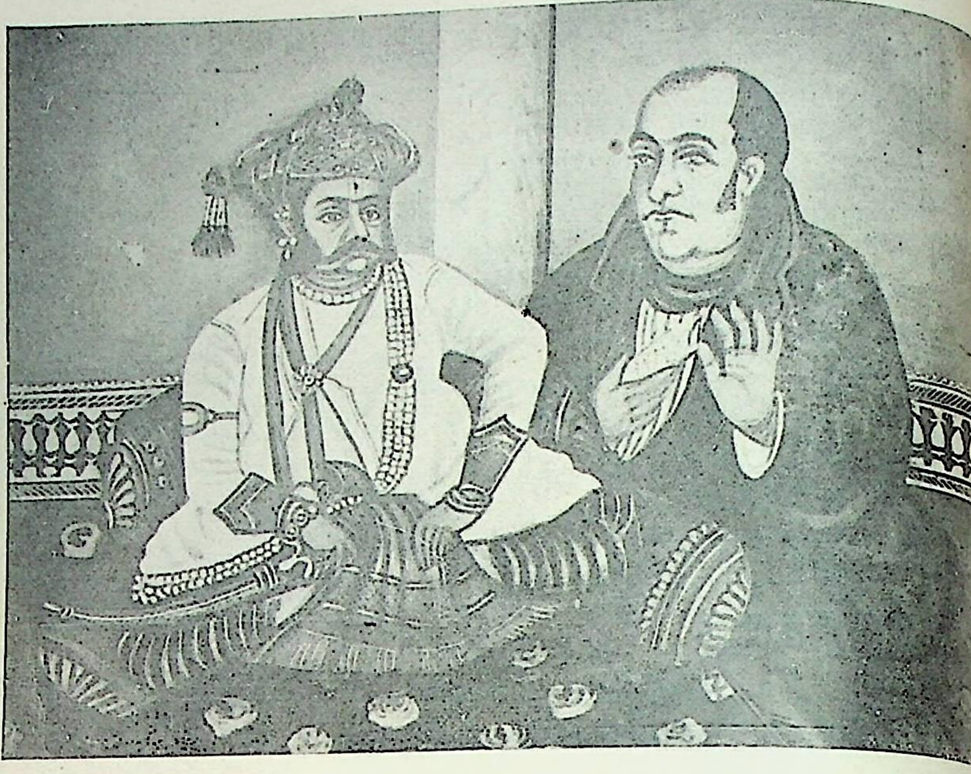

राजा राघोजी भोंसले और रेजिडेण्ट जेनकिन्स

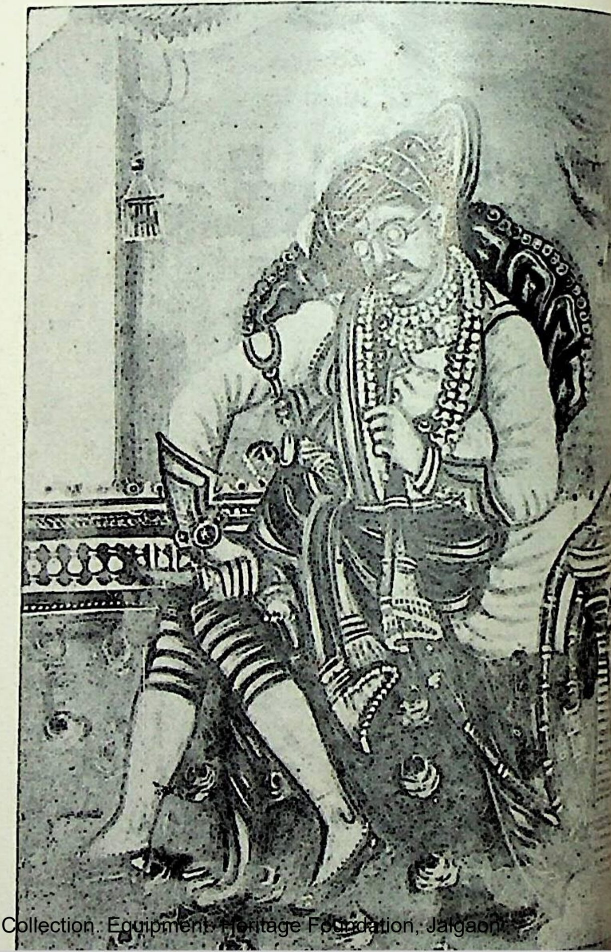

पुरुषाजी भोंसले उर्फ़ बाला साहब

सरकार ने अपनी ओर से राबर्टसन और चीप नामक दो प्रतिनिधि नियुक्त किए। अराकान के राजा ने जो बर्मा के महाराजा का एक सामन्त था, चार प्रतिनिधि अपनी ओर से नियुक्त करके भेजे। अराकान के प्रतिनिधियों ने एक निहायत उचित तजवीज़ पेश की कि पंचायत के बैठने से पहले दोनों ओर की सेनाएं एक बार उस टापू से हट जाएं। अंगरेज़ प्रतिनिधियों ने इस बात क़ो स्वीकार न किया। मजबूर होकर अराकान के प्रतिनिधि बिना कुछ तय किए अपने देश लौट गए।

इसके बाद बर्मा सरकार ने शाहपुरी टापू पर से अंगरेज़ी जहाज़, 'सोफिया' के कप्तान च्यू और उसके कुछ आदमियों को गिरफ्तार कर लिया। बर्मा दरबार ने अंगरेज़ों को कहला भेजा कि ये लोग उस समय रिहा किए जाएंगे, जब अंगरेज़ चट्टगांव से बर्मी इलाके पर धावा मारने वाले मुख्य-मुख्य डाकुओं को बर्मा सरकार के हवाले कर दें। अंगरेज़ों ने कोई ध्यान न दिया। मजबूर होकर 13 फरवरी, सन् 1824 को बर्मियों ने कप्तान च्यू और उसके साथियों को भी रिहा कर दिया।

अंगरेज़ बर्मा के साथ युद्ध करने की तैयारी कर चुके थे। कप्तान च्यू की गिरफ्तारी से उन्हें बहाना मिल गया।

बर्मी जाति

किन्तु उस समय के बर्मी, भारतवासियों की तरह जात-पांत और मत-मतान्तरों में बंटे हुए न थे। उस देश के रहने वाले एक संयुक्त कौम थे। सभ्यता के अनेक अंगों में वे उस समय के यूरोप निवासियों से कहीं बढ़े हुए थे। शिक्षा का प्रचार जितना उस समय उनमें था, उतना यूरोप के किसी देश में न था। वे वीर, साहसी और महत्वाकांक्षी थे। उनकी वीरता के बारे में इतिहास लेखक विलसन लिखता है—

> **"बर्मा सरकार की शक्ति और स्वायत्त सत्ता और लोगों के पराक्रम और आत्मविश्वास के कारण बर्मियों को हर लड़ाई में विजय प्राप्त होती थी और आधी शताब्दी से ऊपर तक हर संग्राम में, चाहे बर्मियों ने अपने किसी शत्रु पर हमला किया हो, और चाहे किसी शत्रु के हमले का मुक़ाबला किया हो, विजय सदा बर्मी सेना की ही ओर रहती थी। पेगू पर हमला करने के थोड़े दिनों बाद ही बर्मी लोग उस राज के मालिक बन गए। इसके बाद उन्होंने तेनासरिम तट के धन-सम्पन्न ज़िले स्याम से छीने। चीन ने बर्मा पर एक बार हमला किया, किन्तु बर्मियों ने बड़ी वीरता के साथ चीनियों के मुंह मोड़ दिए। अन्त में अराकान, मणिपुर और असम के प्रान्त अपने साम्राज्य में मिला कर बर्मी लोग उस समस्त तंग, किन्तु दूर तक फैले हुए देश के मालिक बन गए, जो चीन के पश्चिमी प्रान्तों और हिन्दोस्तान की पूर्वी सरहद के बीच में है।"***

---

* "The vigorous despotism of the Government, and the confident courage of the people, crowned every enterprise with success, and for above half a century the Burman arms were invariably victorious, whether wielded for attack or defence. Shortly after their insurrection against Pegu, the Burmans became the masters of that Kingdom. They next wrested valuable districts of the Tenasserim coast from Siam. They repelled with great gallantry, a formidable

असम पर बर्मी शासन

असम के अन्दर कुछ समय पहले परस्पर झगड़े, विद्रोह और कुशासन फैला हुआ था। बर्मा के महाराजा ने सेना भेज कर इन विद्रोहों को शान्त किया और मेंजी महासिल्व नामक एक सरदार को वहां का प्रान्तीय शासक नियुक्त कर दिया। लिखा है कि मेंजी महासिल्व का व्यवहार अपने पड़ोसी अंगरेज़ों के साथ बड़ी मित्रता का था। इस पर भी गवर्नर जनरल ने 12 सितम्बर, सन् 1823 के एक पत्र में मेंजी महासिल्व के मित्रता के व्यवहार को स्वीकार करते हुए डाइरेक्टरों को लिखा—"फिर भी, जो निर्बल सरकार इससे पहले असम में थी, उसकी जगह एक युद्धप्रेमी और, उसके मुकाबले में, बलवान सरकार का वहां क़ायम हो जाना"* अंगरेज़ों के लिए अहितकर है। इसी पत्र में लिखा है कि अंगरेज़ों ने अब असम की प्रजा को बर्मा दरबार के विरुद्ध भड़काना और उनके साथ साज़िशें करना शुरू कर दिया है। विलसन ने भी उस समय के बर्मियों की पराक्रमशीलता और असम की अवस्था का बयान करते हुए लिखा है कि—"एक ऐसे निर्बल राज की जगह, जिस में फूट पड़ी हुई थी, एक शक्तिशाली और महत्वाकांक्षी पड़ोसी का आ जाना" अंगरेज़ों के लिए खतरनाक है।

कहा गया कि बर्मा का महाराजा हिन्दोस्तान की विविध रियासतों और खास कर मराठों के साथ मिल कर अंगरेज़ों को भारत से निकालने की तजवीज़ें कर रहा है।

5 मार्च, सन् 1824 को लार्ड ऐमहर्स्ट ने बर्मा दरबार के साथ युद्ध का बाज़ाब्ता ऐलान कर दिया। सर एडवर्ड पैजेट उस समय कम्पनी की सेनाओं का प्रधान सेनापति था। दो ओर से बर्मा पर हमला करने का निश्चय किया गया। एक, ज़मीन के रास्ते असम की ओर से और दूसरे, जलमार्ग से रंगून से होकर। सन् 1823 के अन्त में, अर्थात् युद्ध का ऐलान करने से महीनों पहले, एक अत्यन्त विशाल सेना जनरल कैम्पबेल और कप्तान कैनिंग के अधीन ज़मीन के रास्ते बर्मा की सरहद पर भेज दी गई थी।

सबसे पहले अंगरेज़ों ने सिलहट और मणिपुर के बीच की एक छोटी सी स्वतन्त्र रियासत, कछाड़, को अपने क़ाबू में किया। 5 मार्च को युद्ध का ऐलान किया गया और 6 मार्च, सन् 1824 को कछाड़ के भोले राजा, गोविन्दचन्द्र नारिन, ने अंगरेज़ों की चालों में आकर अपनी स्वाधीनता एक सन्धि द्वारा, उनके हाथ बेच दी। बर्मा दरबार अंगरेज़ों के इन सब कामों को देख रहा था। कछाड़ में ही अंगरेज़ों और बर्मी सेना के बीच लड़ाई शुरू हो गई। जलमार्ग से रंगून पर क़ब्ज़ा करने के लिए कुछ सेना कलकत्ते से भेजी गई और कुछ मद्रास से। मद्रास की सेना कर्नल मैकबीन के अधीन थी, जिसमें तीन पलटनें

---

invasion from China, and by the final annexation of Arakan, Manipur, and Assam, to the Empire, they established themselves throughout the whole of the narrow, but extensive tract of the country, which separates the Western provinces of China along the Eastern boundaries of Hindustan."—*Narrative of the Burmese War*, by H. H. Wilson, pp. 1, 2.

* "......yet the substitution of a war-like, and comparatively speaking, powerful Government, in the place of the feeble administration that formerly ruled Assam......"—Despatch of the Governor-General in Council to the Court of Directors, dated 12th September, 1823.

गोरे सिपाहियों की और दस हिन्दोस्तानी सिपाहियों की थीं। ये दोनों सेनाएं मार्ग में मिल कर 10 मई, सन् 1824 को रंगून बन्दरगाह के सामने आ पहुंची।

रंगून में उस समय कोई किलेबन्दी न थी। वहां के बर्मी शासकों को शायद इतने बड़े अंगरेज़ी जहाज़ी बेड़े की आशा भी न थी। थोड़ी सी गोलाबारी के बाद करीब-करीब बिना लड़े ही रंगून पर अंगरेज़ों का क़ब्ज़ा हो गया।

रंगून में अंगरेज़ों के साथ असहयोग

किन्तु रंगून पर क़ब्ज़ा करते ही अंगरेज़ी सेना को एक अत्यन्त विचित्र स्थिति का सामना करना पड़ा। अंगरेज़ों को आशा थी कि रंगून में हमें काफ़ी रसद का सामान, बोझ ले जाने के लिए जानवर और गाड़ियां और ऐरावती नदी में आगे बढ़ने के लिए नाव मिल जाएंगी, और हम नदी के रास्ते बर्मा की राजधानी आवा तक पहुंच सकेंगे। इसके लिए कुछ समय पहले से अंगरेज़ स्याम के बाशिन्दों और खास रंगून के बाशिन्दों के साथ साज़िशें भी कर रहे थे। ऐमहर्स्ट के पत्रों से मालूम होता है कि अंगरेज़ स्याम के लोगों को उकसा कर उनसे यह चाहते थे कि वे दक्षिण की ओर से बर्मा पर हमला कर दें और रंगून निवासियों को यह समझा रहे थे कि आप 'रंगूनी' हैं, 'बर्मी' नहीं! किन्तु अंगरेज़ों की ये सब आशाएं झूठी साबित हुईं। स्याम निवासी उनके चक्कर में न आए और बर्मा दरबार का व्यवहार अपनी समस्त प्रजा के साथ इतना उदार और अच्छा था कि प्रजा ने अंगरेज़ों के साथ पूरा असहयोग किया।

अंगरेज़ों के रंगून पहुंचते ही रंगून की समस्त प्रजा तुरन्त नगर खाली करके अपने सामान, बाल-बच्चों, पशुओं, गाड़ियों और किश्तियों समेत दूर की झाड़ियों में छिप गई। अंगरेज़ी सेना को नगर बिलकुल खाली मिला। यहां तक कि रंगून से आगे बढ़ सकना तो दूर रहा, अंगरेज़ी सेना को नगर के अन्दर कहीं एक दाना भी रसद का न मिल सका। इसके अतिरिक्त बर्मी सेना ने, जो अपने काम में काफ़ी होशियार थी, रोज़ रात को झाड़ियों से निकल-निकल कर अंगरेज़ी सेना पर धावे मारने शुरू किए। अंगरेज़ न पीछे हट सकते थे और न आगे बढ़ सकते थे। रंगून में उनके पास खाने के लिए रसद तक न थी। उनकी हालत अत्यन्त करुणाजनक हो गई।

स्नाडग्रास नामक लेखक लिखता है—

> **"ख़ास कर यह मालूम था कि रंगून में किश्तियां बहुत हैं; और बहुतों को यह आशा थी कि × × × रंगून शहर से काफ़ी किश्तियां और सामान इस तरह का मिल जाएगा, जिसकी सहायता से हम राजधानी को विजय करने योग्य सेना नदी के मार्ग से ऊपर भेज सकेंगे, और इस तरह हम फौरन लड़ाई को खत्म कर सकेंगे।**
>
> × × ×
>
> **"अपने इन अन्दाजों में हम यह भूल गए थे कि बर्मा दरबार जिन प्रान्तों को विजय कर लेता था, उनकी ओर उसकी शासन नीति अत्यन्त विचारपूर्ण और न्यायपूर्ण होती थी। बर्मी क़ौम के वीर और अभिमानी चरित्र का भी हमें इतना**

कम पता था कि हम इस बात का ठीक-ठीक अनुमान न कर सके कि रंगून में हमारा स्वागत किस तरह का होगा ।"*

अंगरेज़ी सेना की दुर्गति

दूसरी ओर, जो सेना थलमार्ग से बर्मा की सरहद पर भेजी गई थी, उसकी हालत और भी अधिक खराब हुई । लार्ड ऐमहर्स्ट के 2 अप्रैल, सन् 1824 के पत्र में लिखा है कि इस सेना ने असम निवासियों को लोभ देकर बर्मियों के विरुद्ध भड़काने के पू प्रयत्न किए । विलसन लिखता है कि अंगरेज़ी सेना के असम में प्रवेश करते ही असम निवासियों और आसपास की दूसरी जातियों के नाम एक ऐलान कम्पनी की ओर से प्रकाशित किया गया, जिसमें उनसे झूठे सच्चे वादे कर के उन्हें अंगरेज़ों के पक्ष में करने का प्रयत्न किया गया । अंगरेज़ यह सब कतर-ब्योंत कर ही रहे थे कि बर्मा के महाराजा ने अपने प्रसिद्ध सेनापति, महामेंजी बन्दूला, के अधीन करीब बारह हज़ार सेना अंगरेज़ों के मुक़ाबले के लिए भेज दी । मई, सन् 1824 के शुरू में इस सेना के एक दल ने नाफ़ नदी पार कर रामू पहाड़ से 14 मील दक्षिण में रत्नपुल्लंग नामक स्थान पर डेरे डाले । कम्पनी की विशाल सेना तैयार थी ही, दोनों सेनाओं में घमासान युद्ध हुआ, जिसमें अंगरेज़ी सेना के अनेक अफ़सर और अनगिनत सिपाही मारे गए । वाकी अंगरेज़ी सेना को बुरी तरह हार खाकर पीछे हट जाना पड़ा । अंगरेज़ी सेना की इस हार से कलकत्ते में और सच यह है कि पूरे भारत में एक तहलका मच गया । मेजर आरचर लिखता है—

> **"कलकत्ते की सरकार को वास्तव में यह डर हो गया कि कहीं बर्मी सेना सुन्दरबन के मार्ग से आकर कलकत्ते पर हमला न कर बैठे ।"†**

कलकत्ते में तहलका

इस पराजय के सम्बन्ध में सर चार्ल्स मेटकॉफ ने गवर्नर जनरल के नाम 8 जून सन् 1824 को एक पत्र लिखा, जिसके कुछ वाक्य ये हैं—

> **"सारा भारत हर समय हमारे पतन की बाट जोहता रहता है । हर जगह लोग हमारे नाश को देख कर खुश होंगे × × × और इस तरह के लोगों की भी कमी नहीं है, जो अपनी शक्ति भर हर तरह से हमारे नाश में सहायता देंगे । यदि**

---

*"In boats, especially, Rangoon was known to be well supplied; and was by many anticipated,...... that city would afford the means of pushi up the river a force sufficient to subdue the capital, and bring the war at on to a conclusion.

* * *

"But in these calculations, the well considerated power and judicious poli of the Government towards its conquered provinces were overlooked and t warlike and haughty character of the nation was so imperfectly known, t no correct judgement could be formed of our probable reception."—*Narra of the Burmese War*, by Snodgrass, pp. 17, 18.

†"The Supreme Government was actually afraid of a Burmese invasi in Calcutta, by way of the Sundarbuns,......"—Major Archar.

कभी भी हमारा नाश शुरू हुआ तो सम्भवतः अत्यन्त वेग के साथ और एकाएक होगा। ××× पहाड़ की चोटी से गिर कर खन्दक तक पहुंचने में हमें शायद एक ही क़दम लेना पड़े ।

"हमारी हिन्दोस्तानी सेना की वफ़ादारी पर हमारा अस्तित्व निर्भर है और यह वफ़ादारी हमारी लगातार विजयों पर निर्भर है। ×××

"बर्मियों ने हमारे साथ युद्ध के शुरू में ही वह कर दिखाया जिसकी शायद हमें बिल्कुल आशा न थी। पहली विजय का लाभ उनको हुआ और पहली पराजय की विपत्ति हमारी ओर ही । सम्भव है कि इससे ××× संसार की किसी भी दूसरी शक्ति के लिए इतने बुरे नतीजे पैदा न होते जितने हमारे लिए हो सकते हैं । ×××

"×××शत्रु की विजय से ढाका में और कलकत्ते तक में वह तहलका मच गया है जो सिराजुद्दौला और ब्लैक होल के समय से लेकर आज तक न हुआ था ।

× × ×

"×××मालूम होता है कि हमारे शत्रु न तादाद में कम हैं और न वीरता में; ×××हमारा समस्त भारतीय साम्राज्य अब सचमुच खतरे में है। हमारी हार की खबर जंगल की आग की तरह फैल जाती है और फ़ौरन उससे उन करोड़ों मनुष्यों की आशाएं और कल्पनाएं जाग उठती हैं जिन्हें हमने पराधीन कर रखा है।×××इस आपत्ति से बचने के लिए और उसे अधिक फैलने और अधिक हानि पहुंचाने से रोकने के लिए हमें अपनी पूरी शक्ति लगा देनी चाहिए।"*

---

* "All India is at all times looking out for our downfall. The people everywhere would rejoice......at our destruction; and numbers are not wanting who would promote it by all means in their power. Our ruin, if it be ever commenced, will probably be rapid and sudden......From the pinnacle to the abyss might be but one step.

"The fidelity of our native army, on which our existence depends, depends itself on our continued success......

"Burmans have commenced the war with us in a manner which perhaps was little expected. They have the advantage of first success, and we have the disadvantage of disaster, which is likely......to be of worse consequence to us than it would be to any other power in the world......

"......The progress of the enemy has carried alarm to Dacca and even to Calcutta, where alarm has not been felt from an external enemy since the time of Sirajudoula and the Black Hole.

* * *

"......Out enemies appear not to be deficient in either spirit or numbers; ...... there is real danger to our whole Empire in India......The intelligence spreads like wild fire, and immediately excites the hopes and speculations of the millions whom we hold in subjugation......Let us put forth our strength to prevent further misfortune and crush the evil before it be fraught with more extensive injury and greater peril."—Sir Charles Metcalfe's papers to the Governor-General, June 8th, 1824.

महाबन्दूला की रंगून वापसी

अंगरेज़ी सेना को रामू की पहाड़ी से पीछे भाग कर कई महीने भदरपुर में पड़ा रहना पड़ा । इतिहास लेखक विलसन लिखता है कि यदि बर्मी सेनापति महाबन्दूला उस समय अपनी विजयी सेना सहित आगे बढ़ आता तो शायद कलकत्ते और बंगाल को विजय कर लेना उसके लिए अधिक कठिन न होता । किन्तु अंगरेज़ों के सौभाग्य से बन्दूला को उसी समय अपने महाराजा की आज्ञा के अनुसार बजाय आगे बढ़ने के अपनी अधिकांश सेना सहित रंगून की ओर चला जाना पड़ा ।

कम्पनी सरकार के पास भारत के नरेशों से और भारतीय प्रजा से कमाए हुए धन की कमी न थी । और अधिक सेनाएं, जिनमें अधिकांश हिन्दोस्तानी थे, बर्मियों के नाश के लिए भारत से भेजी गईं ।

ब्रिटिश साम्राज्य के आधार-स्तंभ

इसी समय के लगभग एक और भीषण घटना हुई, जिसे बयान करने के लिए हमें बर्मा युद्ध के प्रसंग से कुछ हटना पड़ेगा ।

ऊपर के उद्धरण में सर चार्ल्स मेटकाफ़ ने स्वीकार किया है कि अंगरेज़ो के भारतीय साम्राज्य का मुख्य आधार अंगरेज़ों की हिन्दोस्तानी सेनाएं थीं । अधिकतर हिन्दोस्तानी सिपाहियों के ही रक्त से ब्रिटिश भारतीय साम्राज्य की नींव रखी गई, और उन्हीं की वीरता और वफ़ादारी के कारण यह साम्राज्य कायम रहा । वास्तव में हिन्दोस्तानी सिपाहियों के गुण ही उनके देश की स्वाधीनता के लिए घातक सिद्ध हुए । सुप्रसिद्ध इतिहास लेखक लैकी लिखता है—

> **"जो जाति आज्ञापालक, विनीत और राजभक्त होती है,' वह अपने इन्हीं गुणों के कारण दूसरों के स्वेच्छाचारी शासन का शिकार बन जाती है ।"***

हिन्दोस्तानी सिपाहियों के साथ अनुचित व्यवहार

अंगरेज़ इतिहास लेखकों और अंगरेज़ शासकों ने हिन्दोस्तानी सिपाहियों के इन गुणों की सदा मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की है । फिर भी हिन्दोस्तानी सिपाहियों के साथ उनके अंगरेज़ मालिकों ने प्रायः कभी भी न्याय का व्यवहार नहीं किया । बर्मा युद्ध के दिनों में भी हिन्दोस्तानी और अंगरेज़ सिपाहियों के साथ दो तरह का व्यवहार होता था । उदाहरण के लिए, जहां अंगरेज़ रंगरूट को भरती होते ही बाउण्टी की एक रक़म मिलती थी, वहां हिन्दोस्तानी सिपाही को भरती के समय कुछ न मिलता था । अंगरेज़ सिपाहियों को छावनियों में रहने के लिए बनी बनाई बैरक मिलती थी, हिन्दोस्तानी सिपाहियों को अपने झोंपड़े ख़ुद बनाने पड़ते थे । अंगरेज़ सिपाहियों के लिए फ़ौज का ऊंचे से ऊंचा ओहदा खुला हुआ था, किंतु तीन लाख देशी सिपाहियों में से कभी कोई सूबेदार मेजर से बढ़ कर रुतबा प्राप्त न कर सकता था । देशी सिपाहियों की बन्दूकें गोरे सिपाहियों की बन्दुकों की अपेक्षा अधिक भारी होती थीं । एक बंदूक और साठ कारतूसों के अतिरिक्त हर देशी

---

* "A people who are submissive, gentle, and loyal, fall by reason of these very qualities under a despotic Government."—Lecky.

सिपाही को एक भारी थैला अपने कन्धे पर ले जाना पड़ता था, जिसमें उसकी सारी आवश्यक चीज़ें होती थीं। अंगरेज़ सिपाहियों को कोई बोझ न ले जाना पड़ता था। दोनों की तनख़ाह, फ़रलो, पेन्शन और भत्ते के क़ायदों में वहुत वड़ा अंतर था। एक स्थान से दूसरे स्थान के लिए बदली होने पर देशी सिपाहियों को अपने रहने का प्रवंध अपने खर्च से करना होता था, गोरे सिपाहियों को नहीं। देशी सिपाहियों के धार्मिक और सामाजिक भावों का वहुत कम ख़याल रखा जाता था। उनसे अंगरेज़ सिपाहियों की अपेक्षा कई गुना अधिक काम लिया जाता था।

बंगाल के हिन्दोस्तानी सिपाहियों के साथ वम्बई और मद्रास के हिन्दोस्तानी सिपाहियों से भी अधिक बुरा व्यवहार किया जाता था। बंगाल के सिपाहियों की इन शिकायतों की कहानी लम्बी और हमारे प्रसंग से वाहर है।

हिन्दोस्तानी सिपाहियों की शिकायतें

बंगाल के हिन्दोस्तानी सिपाहियों की ये सब शिकायतें दिन-दिन बढ़ती चली गईं। अनेक बार ये शिकायतें अंगरेज़ अफसरों के सामने पेश की गई किंतु किसी ने इन पर ध्यान न दिया। इस परिस्थिति में बैरकपुर की 47 नम्बर देशी पलटन को बर्मा जाने की आज्ञा दी गई। इन सिपाहियों को जव कभी एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाने की आज्ञा मिलती थी तो उन्हें अपने सामान के लादने-ले जाने का खर्च अपने पास से देना पड़ता था और स्वयं ही उसका प्रवंध करना होता था; जब कि इतिहास लेखक थार्नटन लिखता है कि गोरे सिपाही ऐसे अवसरों पर "अपना थैला भी स्वयं लेकर न चलते थे।" सर मार्क कवन स्वीकार करता है कि सन् 1858 तक हिन्दोस्तानी सिपाहियों का थैला इतना भारी होता था कि वह उनकी जान का ववाल बन गया था।*

बैरकपुर का हत्याकांड

इतिहास लेखक थॉर्नटन लिखता है कि बैरकपुर की हिन्दोस्तानी पलटन को जब कूच की आज्ञा दी गई तो सामान ले जाने के लिए उन्हें बैलगाड़ियां तक न मिल सकीं। सिपाहियों ने अपने अंगरेज़ अफ़सरों से मदद मांगी। जवाब मिला कि तुम्हें अपना प्रवंध स्वयं करना होगा। इस सबके अतिरिक्त कहा गया कि इस पलटन को समुद्र के रास्ते कलकत्ते से रंगून जाना होगा। पलटन के सब सिपाही उच्च जाति के हिन्दू थे। इन लोगों ने केवल भारत के अन्दर स्थल सेवा के लिए कम्पनी की नौकरी की थी। समुद्र-यात्रा करने पर वे सदा के लिए जाति से वाहर कर दिए जाते। सिपाहियों ने अपनी सब शिकायतों की एक लम्बी, किंतु विनयपूर्ण अर्जी लिख कर कमांडर-इन-चीफ़ की सेवा में भेजी किंतु इस पर भी कुछ ध्यान न दिया गया। लिखा है कि तब इन सब सिपाहियों ने तुलसी और गंगाजल हाथ में लेकर इस बात की शपथ खाई कि हममें से कोई जहाज के ऊपर पैर न रखेगा। वे खुश्की पर कहीं भी जाने और लड़ने के लिए तैयार थे।

---

* "The present knapsack......is the curse of the native army"—Sir Mark Cubbun, K.C.B., 1858.

30 अक्तूबर, सन् 1824 को सारी पलटन परेड के लिए बुलाई गई। उनके थै उस समय उनके कन्धों पर न थे। थैले फट चुके थे। उन्होंने अपनी शिकायतें कमांडिंग अफ़सर के सामने पेश कीं। न उन्हें कोई जवाब दिया गया और न उनकी कोई शिकायत दूर की गई। उस दिन परेड बरखास्त कर दी गई। कलकत्ते में कमाण्डर-इन-चीफ़ को सूचना दी गई। फौरन दो पलटन पैदल गोरे सिपाहियों की, एक तोपखाना और कुछ गवर्नर जनरल की अंगरक्षक सेना कलकत्ते से बैरकपुर भेजी गई।

1 नवम्बर को सवेरे 47 नम्बर हिन्दोस्तानी पलटन को फिर परेड के लिए बुलाया गया। परेड पर आते ही एकाएक इन लोगों नें देखा कि उनके चारों ओर गोरी पलटनें खड़ी हुई हैं। हिन्दोस्तानी सिपाहियों से कहा गया कि या तो जहां कहा जाएं कूच के लिए राजी हों, और या हथियार रख दें। इन लोगों को अभी तक यह मालूम न था कि भरा हुआ तोपखाना गोरी पलटनों के पीछे तैयार खड़ा है। वे कुछ समझे और कुछ न समझे। सर जान के लिखता है कि उन्हें किसी तरह की सूचना नहीं दी गई और न सावधान किया गया। फौरन पीछे के तोपखाने से उनके ऊपर गोले बरसने शुरू हो गए। असहाय हिन्दोस्तानी सिपाही इतना डर गए कि अपने हथियार फेंक कर नदी की ओर भागे। अधिकांश वहीं खेत हुए, कुछ नदी में डूब गए और जो बच निकले, उन्हें बाद में कमाण्डर-इन-चीफ़ की आज्ञा से फांसी पर लटका दिया गया। इन लोगों ने अपनी ओर से शस्त्र चलाने का ज़रा भी प्रयत्न न किया; उन्हें इसका विचार तक न था; उनकी बन्दूकें तक खाली थीं। जान के लिखता है कि सम्भवत: उस समय के अंगरेज़ अफ़सरों का उद्देश्य इस तरह सारी हिन्दोस्तानी सेना के दिलों में अंगरेज़ी सत्ता की धाक जमा देना होगा। वह यह भी लिखता है कि इस हत्याकाण्ड की ख़बर उन हिन्दोस्तानी सेनाओं तक पहुंच गई, जो बर्मा की सरहद की ओर भेजी जा चुकी थीं और उनके दिलों पर इसका बहुत बुरा प्रभाव पड़ा।

बाद में उस पलटन का नाम हिन्दोस्तान की पलटनों की सूची से काट दिया गया। मेटकाफ लिखता है—

> **"अपनी सेनाओं को अपने ही तोपख़ाने से उड़ा देना, खासकर उन सेनाओं को, जिनकी वफ़ादारी पर हमारे साम्राज्य का अस्तित्व निर्भर है, अत्यंत भीषण कार्य है।"***

सम्भवत: बैरकपुर के इस हत्याकाण्ड की ओर संकेत करते हुए प्रसिद्ध तत्ववेत्ता हरबर्ट स्पेन्सर ने बाद में लिखा था—

> **"आज हम लोगों के समय तक वह कपटी निरंकुश शासन बराबर जारी है जो देश की पराधीनता को क़ायम रखने और उसे बढ़ाने के लिए देशी सिपाहियों का ही उपयोग करता है—इसी निरंकुश शासन के नीचे अभी बहुत अधिक वर्ष नहीं हुए कि देशी सिपाहियों की एक पूरी पलटन का इसलिए जान-बूझ कर वध**

---

*"It is an awful thing to mow down our own troops with our own artillery, specially those troops on whose fidelity the existence of our Empire depends."—Kaye's *Selection from the Papers of Lord Metacalf*, p. 153.

कर डाला गया था, क्योंकि सिपाहियों ने बिना उचित कपड़ों के कूच करने से इनकार किया।"*

बर्मा में कम्पनी की साजिशें

अब हम फिर बर्मा युद्ध की ओर आते हैं। अंगरेज़ों ने जब देख लिया कि केवल वीरता या युद्ध कौशल के बल पर हम बर्मियों को विजय नहीं कर सकते, तो उन्होंने बर्मा के विधि प्रान्तीय शासकों और वहां की प्रजा को अपनी ओर करने के लिए पानी की तरह धन बहाना शुरू कर दिया। विलसन लिखता है कि 8 अगस्त, सन् 1824 को डल्ला नामक एक बर्मी ज़िले के लोगों को बर्मा दरबार के विरुद्ध भड़का कर अपनी ओर मिलाने के लिए कर्नल कैली को डल्ला भेजा गया। विलसन यह भी लिखता है कि रंगून की अंगरेज़ी सेना ने जब यह देखा कि आवा की ओर बढ़ सकना असम्भव है, तो उसने समुद्र तट के कुछ प्रान्तों को अपनी ओर करना चाहा। इसके लिए तेनासइँ का जिला, जिसमें टेवाय और मरगुई शामिल हैं, चुना गया। 20 अगस्त को रंगून से कुछ सेना तेनासइँ की ओर गई। 1 सितम्बर को यह सेना तेनासइँ पहुंची। लिखा है कि क़िले के अन्दर की संरक्षक बर्मी सेना के एक मातहत बर्मी अफ़सर ने अंगरेज़ों से मिल कर अपने सेनापति यानी क़िलेदार और उसके कुटुम्बियों को स्वयं गिरफ्तार करके अंगरेज़ों के हवाले कर दिया और अंगरेज़ों ने बिना संग्राम नगर पर कब्जा कर लिया। मालूम नहीं कि उस मातहत बर्मी अफ़सर को इस विश्वासघात का क्या इनाम दिया गया ?

महाबन्दूला की मृत्यु

इसी तरह की और भी कई लड़ाइयां हुईं, जिनके विस्तार में पड़ने की आवश्यकता नहीं है और जिनमें से अधिकांश में ऐसी ही रिश्वतों और साजिशों के बल अंगरेज़ों ने थोड़ी बहुत विजय प्राप्त की। निस्सन्देह कूटनीति में वीर बर्मी भी अंगरेजों से टक्कर न ले सके। इन्हीं पराजयों का हाल सुन कर महाबन्दूला को अराकान छोड़ कर रंगून की ओर लौटना पड़ा था। इतने ही में बर्मा के दुर्भाग्य से महाबन्दूला 1 अप्रैल, सन् 1825 को दूनूब्यू के क़िले में शत्रु का मुकाबला करते हुए एक बम के फूटने के कारण अचानक वीरगति को प्राप्त हुआ। बन्दूला की मृत्यु बर्मा दरबार के लिए अत्यन्त अशुभसूचक थी। अनेक अंगरेज़ लेखकों ने बन्दूला की देशभक्ति, उसकी स्वामीभक्ति, उसकी वीरता और उसके युद्ध-कौशल की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की है। मेजर स्नाड ग्रास लिखता है कि दूनूब्यू ही में बन्दूला ने यह कहा था कि मैं या तो शत्रु पर पूर्ण विजय प्राप्त करूंगा और या इसी प्रयत्न में प्राण दे दूंगा।

सुलह के लिए अंगरेज़ों की उत्कंठा

मालूम होता है कि अंगरेज इस समय युद्ध बन्द करने के लिए उत्सुक थे। यद्यपि उस समय तक अंगरेज़ बर्मी साम्राज्य के कई प्रान्तों में विद्रोह खड़े करवा चुके थे, फिर

---

*"Down to our own day continues the cunning despotism which uses native soldiers to maintain and extend native subjection—a despotism under which, not many year since a regiment of sepoys was deliberately massacred for refusing to march without proper clothing!"—Herbert Spencer.

भी वे बर्मियों की वीरता से लाचार हो गए थे । इतिहास लेखक विलसन लिखता है कि अंगरेज़ों ने अब अपनी ओर से सुलह की इच्छा प्रकट की, इस शर्त पर कि वर्मा दरबा अंगरेज़ों की उस समय तक की हानि को पूरा कर दे ।

विलसन लिखता है—

> "उस समय बहुत सी ऐसी अफ़वाहें उड़ी हुई थीं, जिनसे आशा की जा थी कि हमारा सुलह का प्रयत्न सफल होगा । कहा जाता था कि बर्मी साम्रा के अनेक भागों में विद्रोह खड़े हो गए हैं, और मालूम होता है कि यह अफ़वाह दूर-दूर तक फैल गई थी कि बर्मा का महाराजा गद्दी से उतार दिया गया है । सब खबरें झूठी साबित हुईं × × × ।"*

बर्मा दरबार ने अंगरेज़ों की शर्तों को स्वीकार न किया और लड़ाई जा रही ।

अंगरेज़ों ने दूसरी बार सुलह की कोशिश की । इस बार एक बर्मी पुरोहित मारफ़त, जिसे राजगुरु कहते थे, अंगरेज़ सेनापति की ओर से एक पत्र बर्मा के महारा के नाम राजधानी आवा भेजा गया । इस पत्र में अंगरेज़ सेनापति ने अपनी ओर से सु की तत्परता प्रकट की । राजगुरु के प्रयत्न से कुछ दिनों के लिए लड़ाई बन्द हो गई 30 दिसम्बर, सन् 1825 की शाम को दोनों ओर के प्रतिनिधियों में बातचीत शुरू हुई 2 जनवरी, सन् 1826 तक एक सन्धिपत्र तैयार कर लिया गया, जिसमें यह भी तय गया कि कम से कम 18 जनवरी तक युद्ध बन्द रहे किन्तु बर्मा के महाराजा ने सन्धिपत्र को भी स्वीकार न किया और लड़ाई फिर शुरू हो गई ।

इस बीच उत्तर भारत के अन्दर एक और घटना हुई, जिसका बर्मा युद्ध पर ज़बर प्रभाव पड़ा । इस घटना को बयान करने के लिए हमें फिर थोड़ी देर के वास्ते युद्ध के वृत्तान्त को छोड़ देना होगा ।

भरतपुर का पतन

भरतपुर के ऐतिहासिक क़िले के सम्मुख लार्ड लेक की पराजय का जिक्र किया जा चुका है । उसी पराजय के बारे में सन् 1814 में मेटकाफ ने लिखा था—

> "भरतपुर में चार बार के हमले और बंगाल और बम्बई की संयुक्त सेना की हद दरजे की कोशिशें भी सफल न हो सकीं × × × ।"

भरतपुर की हार अंगरेज़ों के दिल में कांटे की तरह खटक रही थी । मेटका दुख के साथ लिखा है कि—"हमारी सैनिक कीर्त्ति का अधिकांश भरतपुर में ही हो गया ।" खासकर दोआब और उत्तर भारत में उस हार से अंगरेज़ों की कीर्त्ति को वड़ा धक्का पहुंचा । अंगरेज़ बराबर अपनी उस जिल्लत को धोने का मौका ढूंढ रहे बर्मा युद्ध की हारों ने और भी आवश्यक कर दिया कि अंगरेज़ कहीं न कही कुछ कार करके दिखला दें ।

सन् 1825 में भरतपुर के महाराजा की मृत्यु हुई । दो चचेरे भाइयों में गद्दी लिए झगड़ा हुआ । लार्ड ऐमहर्स्ट को मौका मिला । दोनों में से एक उम्मीदवार,

---

* *Narrative of the Burmese War*, p. 199.

बलवन्तसिंह का पक्ष लेकर कम्पनी का कमाण्डर-इन-चीफ जनरल काटन पच्चीस हज़ार सेना और बहुत सी तोपें साथ लिए 10 दिसम्बर, सन् 1825 को भरतपुर के क़िले के सामने जा पहुंचा। जिस भरतपुर की दीवारों ने बीस साल पहले लार्ड लेक और उसकी विशाल सेना के दांत खट्टे कर दिए थे, वह भरतपुर एकदिल और एकमत था, किन्तु आज भरतपुर का दरबार फूट का घर बना हुआ था। राजा बलवन्तसिंह और उसके साथी, यानी लगभग आधा भरतपुर अब विदेशियों की विजय में सहायक था। हाथरस के क़िले से अंगरेज़ों को भरतपुर के क़िले की रचना का भी काफ़ी पता चल चुका था। फिर भी सवा महीने तक भरतपुर का मोहासरा जारी रहा। सवा महीने के मोहासरे के बाद 18 जनवरी, सन् 1826 को भरतपुर का ऐतिहासिक क़िला एक बार अंगरेज़ी सेना के हाथों में आ गया। इतिहास लेखक कर्नल मालेसन अपनी पुस्तक 'डेसिसिव बेटिल्स आफ इंडिया' में लिखता है कि भरतपुर की इस लड़ाई में अंगरेज़ों के 1,050 आदमी मरे और जख्मी हुए, जिसमें सात अफ़सर मरे और 41 अफ़सर घायल हुए।

रिश्वतों से भरतपुर विजय

कर्नल स्किनर लिखता है कि भरतपुर के क़िले को विजय करने में अंगरेज़ों ने जिस तरह की सुरंगों से काम लिया उस तरह की सुरंगें लगाना उन्होंने मराठों से सीखा था। वेल्स नामक एक दूसरा अंगरेज़ लिखता है कि उन दिनों भारतवासियों में यह अफवाह गरम थी कि अंगरेज़ों ने भरतपुर का क़िला ऐसी परिस्थिति में भी भीतर की सेना के कुछ लोगों को रिश्वतें देकर धन के बल विजय किया।*

भरतपुर के इस संग्राम के औचित्य के विषय में मेटकाफ स्वीकार करता है कि अंगरेज़ों का भरतपुर की गद्दी के मामले में दखल देने का कोई अधिकार न था और न इस तरह की कोई सन्धि अंगरेज़ों और भरतपुर के बीच हुई थी। मेटकाफ यह भी साफ लिखता है कि भरतपुर पर हमला करना केवल इसलिए आवश्यक था, क्योंकि पिछली हार की जिल्लत को धोना और फिर से अंगरेज़ी सत्ता की धाक जमाना उस समय अंगरेज़ों के लिए जरूरी था।† सम्भव है कि गद्दी का झगड़ा भी अंगरेज़ों का ही खड़ा किया हुआ हो और उसे बढ़ाने में 'गुप्त उपायों' से जब काम लिया गया हो। भरतपुर के क़िले के इस समय के पतन से भारत में कम्पनी का इलाक़ा नहीं बढ़ा, किन्तु कम्पनी की सैनिक कीर्ति अवश्य फिर से कायम हो गई।

---

* "Even after it was taken, no native would believe it was captured by storm; and to the last hour of my residence in India, they persisted in asserting that it was bought, not conquered."—Welsh's *Military Reminiscences*, vol. ii, pp. 240, 241.

† "It is……acknowledged as a general principle, that we ought not to interfere in the internal affairs of other states;

"……the capture of Bharatpur, ……would do us more honour throughout India, by the removal of the hitherto unfaded impressions caused by our former failure, than any other event that can be conceived."—Kaye's *Selections form the Papers of Lord Metcalfe*, pp. 122-131.

नगर पर अत्याचार

भरतपुर के पतन के बाद गोरे अफ़सरों और सिपाहियों ने नगर के असहाय लोगों के ऊपर जो अत्याचार किए, उनका कुछ अनुमान नीचे लिखे उद्धरणों से किया जा सकता है । मेजर आरचर ने 29 जनवरी, सन् 1828 को लिखा—

> "हम लोगों के खाना खाने के बाद कुछ भांड (नक़्क़ाल) आए और उन्होंने हमारी भरतपुर विजय की अत्यंत हास्योत्पादक नक़ल करके हमें हंसाया । इस नक़ल में उन्होंने यह दिखलाया कि अंगरेज़ों ने इतनी बेदरदी के साथ नगर को लूटा कि लोगों के सिरों से बाल तक उखाड़ लिए ।"*

कप्तान मण्डी इसी तरह की एक दूसरी घटना का जिक्र करता है, जिससे मालूम होता है कि अंगरेज़ों ने भरतपुर विजय के बाद वहां के गरीब किसानों तक को बड़ी निर्दयता के साथ लूटा ।

धन वसूल करने का तरीका

बर्मा युद्ध और भरतपुर के संग्राम का खर्च पूरा करने के लिए लार्ड ऐमहर्स्ट ने भारत के विविध नरेशों से कर्ज के नाम पर खूब धन वसूल किया । जॉन मैलकम लडलो लिखता है—

> "देशी नरेशों को खुल्लमखुल्ला लूटने का जमाना वारेन हेस्टिंग्स के साथ खत्म हो गया था । फिर भी, मालूम होता कि इस समय इन नरेशों से क़र्ज लेने की प्रथा बेहद फैली हुई थी । सन् 1825 के अंत में अवध के बादशाह ने अंगरेज़ों को दस लाख पाउंड क़र्ज दिए; और अगले साल, दो साल के लिए, पांच लाख पाउंड फिर क़र्ज दिए । सिंधिया की मृत्यु के बाद महारानी बैजाबाई ने आठ लाख पाउंड कर्ज दिए और आमतौर पर जो क़र्ज लिए गए, उनसे मालूम होता है कि छोटे-छोटे नरेशों ने भी अपना हिस्सा अदा किया । नागपुर के राजा ने पचास हजार पाउंड दिए, बनारस के राजा ने बीस हजार पाउंड दिए, यहां तक कि अभागे पदच्युत पेशवा बाजीराव ने भी एक खासी बड़ी रकम बतौर क़र्ज अपनी पेन्शन से बचाकर अंगरेज़ों को दे दी ।"†

इसी समय के निकट इसी तरह के उपायों से लार्ड ऐमहर्स्ट ने अलवर की रियासत को भी अपने अधीन कर लिया ।

---

* *Tours in Upper India,* p. 101.

† The time for openly plundering native princes was gone with Warren Hastings. One observes, however, at this time, the extreme prevalence of the practice of obtaining loans from them. At the end of 1825, the King of Oudh lends £ 10,00,000 sterling; £ 5,00,000 for two years the next year, the Baiza Bai, after Scindhia's decease, lent £ 8,00,000. In the general loans which were contracted, we find smaller chiefs contributing their quota, the Raja of Nagpur £ 50,000, the Raja of Benares £ 20,000; even the unfortunate Baji Rao, the Ex-Peshwa refunding a very considerable sum for the purpose out of the savings from his pension."—John Malcolm Ludolw in his *British India,* vol. ii, p. 65.

वर्मा के साथ सन्धि

भरतपुर के पतन के समाचार ने वर्मा दरवार की हिम्मत पर भी अपना असर डाला। उस दरबार के कई सामन्तों को इस बीच अंगरेज़ अपनी साज़िशों द्वारा तोड़ चुके थे। अन्त में यन्दावू नामक स्थान पर अंगरेज़ कम्पनी और वर्मा दरवार के बीच सन्धि हो गई। इतिहास लेखक विलसन लिखता है कि इस युद्ध से दोनों पक्षों को गहरी हानि उठानी पड़ी। अंगरेज़ों को वेहद धन खर्च करना पड़ा और उनकी ओर अनगिनत जानें गईं। वर्मा दरबार को धन और जन की हानि के अतिरिक्त, उस साम्राज्य के कई सामन्त नरेश, जो वर्मा दरबार को ख़िराज देते थे और जिनके प्रान्त उस साम्राज्य का एक अंग थे, अब सदा के लिए उससे पृथक हो गए।

दिल्ली सम्राट का अपमान

वर्मा युद्ध के बाद लार्ड ऐमहर्स्ट ने दिल्ली जाकर मुगल सम्राट से भेंट करने का विचार किया। इस भेंट से लार्ड ऐमहर्स्ट का एकमात्र उद्देश्य यह था कि दिल्ली सम्राट को भारत और संसार की नज़रों में गिरा दिया जाए। उस समय तक अंगरेज़ दिल्ली सम्राट की प्रजा माने जाते थे, और स्वयं दिल्ली सम्राट को भारत का सम्राट और अपने को उसकी प्रजा स्वीकार करते थे। ऐमहर्स्ट ने यह चाहा कि इस विचार का अब धीरे-धीरे अन्त कर दिया जाए। सम्राट से इस तरह की भेंटों की जो पुरानी रीति चली आती थी, जिसके अनुसार उस समय तक के गवर्नर जनरल और दूसरे सब भारतीय नरेश दिल्ली सम्राट से भेंट किया करते थे, ऐमहर्स्ट ने उसे बदल कर नयी रीति बरतनी चाही।

लिखा है कि सम्राट अकबरशाह को पहले से राज़ी कर लेने के लिए उससे यह साफ़ झूठा वादा किया गया कि यदि आप इस तरीके को स्वीकार कर लेंगे तो लार्ड लेक ने आपके पिता, सम्राट शाहआलम, से जो कुछ वादे किए थे, कम्पनी उन सबको तुरन्त पूरा कर देगी और इस नये तरीके की भेंट से आपके प्राचीन आदाब व अलक़ाब में कोई फ़रक न आएगा। सम्राट अकबरशाह ने स्वीकार कर लिया।

लार्ड ऐमहर्स्ट 15 फरवरी, सन् 1827 को दिल्ली पहुंचा। 17 फरवरी को सम्राट और ऐमहर्स्ट में भेंट हुई। "सम्राट तख्त ताऊस पर बैठा हुआ था, ऐमहर्स्ट के सामने दाहिनी ओर एक शाही कुर्सी पर बैठा। ऐमहर्स्ट का रुख सम्राट की बाईं ओर था। रेज़िडेंट और सब अफ़सर और समस्त बड़े-बड़े दरवारी खड़े हुए थे।"*

सम्राट ने अपनी सारी शिकायतें और कम्पनी के वादे लार्ड ऐमहर्स्ट के सामने बयान किए; किन्तु लार्ड ऐमहर्स्ट ने बजाय इन शिकायतों और वादों की ओर ध्यान देने के सम्राट के "आदाब व अलकाव" को भी बदल दिया और अपने इस उद्धत व्यवहार से असहाय सम्राट को दरबारियों की नजरों में नीचा दिखाया। ऐमहर्स्ट ने सम्राट पर प्रकट कर दिया कि कम्पनी के समस्त वादे केवल राजनैतिक चालें थीं। इसके बाद सम्राट के साथ पत्र-व्यवहार करने में भी अंगरेज़ों ने पुराने आदाब व अलकाब का बरतना बन्द कर दिया।

**Punjab Government Records, Delhi Residency and Agency*, 1807-1857, vol. i, p. 338.

सम्राट अकबरशाह का मन इस घटना से इतना दुखी हुआ कि बाद में इन्हीं सारी बातों की शिकायत के लिए लार्ड लेक का दस्तखती 'इकरारनामा' देकर सम्राट अकबरशाह ने सुप्रसिद्ध राजा राममोहन राय को इंगलिस्तान भेजा । किन्तु वहां कौन सुनता था।

दिल्ली में गहरा शोक

पीटर आबर नामक एक अंगरेज़ लिखता है कि इस मुलाकात से लार्ड ऐमहर्स्ट ने—

> “इससे पहले ही इस कल्पना का अन्त कर दिया कि अंगरेज़ सरकार दिल्ली के सम्राट की प्रजा है । अत्यन्त स्वाभाविक था कि इस घटना से उस समय ज़बरदस्त सनसनी पैदा हो जाती, क्योंकि यह पहला अवसर था जब कि हमने खुले और पक्के तौर पर ब्रिटिश सत्ता की स्वाधीनता का प्रतिपादन किया । लोग आमतौर पर यह कहते थे कि हिन्दोस्तान का ताज अब दिल्ली सम्राट के सिर से उठा कर अंगरेज़ क़ौम के सिर पर रख दिया गया है ।”
>
> “कहा जाता है कि शाही खानदान और उसके आश्रितों ने इस घटना पर गहरा शोक मनाया । उन्होंने अनुभव किया कि इससे पहले उन्हें मराठों के कारण और तकलीफें चाहे कुछ भी क्यों न सहनी पड़ीं हों, किन्तु मराठे दिल्ली सम्राट को सदा समस्त भारत का वास्तविक अधिराज स्वीकार करते रहे । अब पहली बार उनका यह रुतबा भी छीन लिया गया ।”*

निस्सन्देह दिल्ली सम्राट का इस तरह का निरादर चुपचाप सहन कर लिया जाना ही इस बात को साबित करता है कि उस समय भारतवासियों में राष्ट्रीय आत्माभिमान की शोकजनक कमी थी ।

यह भी सच है कि सन् 1827 की यह घटना 30 साल बाद के स्वाधीनता संग्राम के कारणों में से एक थी ।

भारत सम्राट का मान भंग करने के बाद ऐमहर्स्ट ने शिमले में गर्मी गुजारीं। इसके बाद मार्च, सन् 1828 में ऐमहर्स्ट ने अपने देश, इंगलिस्तान की राह ली।

---

* Peter Aubur in his *Rise and Progress of the British Power in India,* vol. ii, p. 606.

चौंतीसवां अध्याय

लार्ड विलियम बेंटिंक

(1828—1835)

कम्पनी की शासन नीति

स्वयं लार्ड विलियम बेंटिक ने एक स्थान पर मुसलमान बादशाहों के शासन और उस समय के अंगरेजी शासन की तुलना इन शब्दों में की है—

"कई बातों में मुसलमानों का शासन हमारे शासन से बेहतर था। मुसलमान जिन देशों को विजय करते थे, उन्हीं में बस जाते थे; वे देशवासियों के साथ मेलजोल और विवाह सम्बन्ध पैदा कर लेते थे; देशवासियों को हर तरह के अधिकार दे देते थे; इन विजेताओं को शासितों के हित में अपना हित दिखाई देने लगता था और दोनों के हृदयों में एक ही तरह के भाव पैदा होते थे। इसके विरुद्ध हमारी नीति इसके ठीक विपरीत रही है, अर्थात् स्नेहशून्य, स्वार्थमय और निर्दय।"*

किन्तु लार्ड विलियम बेंटिक का अपना शासन उतना ही 'स्नेहशून्य, स्वार्थमय और निर्दय' था, जितना किसी भी दूसरे गवर्नर जनरल का।

गवर्नर जनरल बनने से पहले बेंटिक कुछ दिनों मद्रास का गवर्नर रह चुका था। उस समय बेंटिक ने, अपनी कौंसिल के एक प्रमुख सदस्य, विलियम थैकरे की लेखनी द्वारा भारत में अंगरेज़ों की शासन नीति को इन स्पष्ट शब्दों में बयान किया था—

"इंगलिस्तान के अन्दर यह बहुत उचित है कि वहां की भूमि से जितना धन पैदा हो, उसका एक बड़ा भाग कुछ खास-खास कुटुम्बों को खुशहाल और धनाढ्य बनाए रखने में खर्च किया जाए, ताकि उनमें से देश की सेवा और रक्षा के लिए विधान सभाओं के सदस्य, तत्ववेत्ता और वीर योद्धा उत्पन्न हो सकें ××× । इस तरह की आमदनी के प्रताप से जो अवकाश, जो आज़ादी और जो उच्च विचार मनुष्य में पैदा होते हैं, उन्हीं के बल इस श्रेणी के लोगों ने इंगलिस्तान को गौरव के शिखर तक पहुंचाया है। ईश्वर करे कि वे चिरकाल तक इस आनन्द को भोगते रहें;—किन्तु भारत के अन्दर उस गर्व को, उस स्वाधीनता को और उस तरह के गम्भीर विचारों को, जो प्रायः अधिक धन के कारण उत्पन्न होते हैं, दबा देना आवश्यक है। ये चीजें स्पष्ट रूप से हमारी सत्ता और हमारे हित के

---

* "In many respect the Mohammedans surpassed our rule; they settled in the countries which they conquered; intermixed and intermarried with the natives; they admitted them to all privileges; the interests and the sympathies of the conquerors and the conquered became identified. Our policy, on the contrary has been the reverse of this,—cold, selfish and unfeeling"—Lord William Bentinck.

विरुद्ध हैं × × ×। इस देश में सेनापतियों, राजनीतिज्ञों और कानून बनाने वालों की नहीं, केवल मेहनती किसानों की आवश्यकता है ।"*

अंगरेज़ सरकार की निश्चित नीति

शुरू से ही कम्पनी के भारतीय शासन की यही निश्चित नीति थी । इस नीति को सामने रखकर गवर्नर जनरल बेंटिक की कार्रवाइयों को समझना अत्यन्त सरल होगा ।

एक दूसरा निष्पक्ष अंगरेज़, फ्रेड्रिक शोर, लार्ड बेंटिक के पूरे शासन काल का सार बयान करते हुए, लिखता है—

> "× × × उसके नेक इरादों से भारत की ब्रिटिश सरकार के मूल सिद्धान्त में कभी भी फ़रक़ नहीं पड़ने पाया और वह सिद्धान्त यह है कि हिन्दोस्तान के लोगों से धन चूस-चूस कर अपने को और अपने (इंगलिस्तान निवासी) मालिकों को धनवान बनाया जाए × × × ज़बरदस्ती रसद और बेगार की घृणित प्रथाएं अभी तक पूरे ज़ोरों से जारी हैं । चुंगी और महसूलों की कष्टकर प्रणाली से देश का व्यापार और उद्योगधन्धे दिन प्रतिदिन नष्ट होते जा रहे हैं, और यह प्रणाली अभी तक जारी है । × × × लोग न पहले की अपेक्षा अधिक सुखी हैं और न अधिक धनी—वास्तव में लोगों की दरिद्रता बढ़ती जा रही है—क्योंकि जबकि एक ओर ऊपर लिखी कुप्रथाएं पूरे जोर से जारी हैं, दूसरी ओर लगान के जिस शिकंजे ने प्रजा को कस रखा है, उसके सैंकड़ों में से आधा पेच भी ढीला नहीं किया गया × × ×"।†

---

* "It is very proper that in England, a good share of the produce of the earth should be appropriated to support certain families in affluence, to produce senators, sages, and heroes for the service and defence of the state......The leisure, independence, and high ideas, which the enjoyment of this rent affords has enabled them to raise Britain to the pinnacle of glory. Long may they enjoy it—but in India, that haughty spirit, independence and deep thought which the possession of great wealth sometimes gives, ought to be suppressed. They are directly adverse to our power and interest...... We do not want generals, statesmen, and legislators; we want industrious husbandmen,"—Minute of Mr. William Thackeray, Member Madras Council.

† "......his good intentions were never to interfere with the main principle of the British Indian Government, profit to themselves and their masters at the expense of the people of India......The abominable system of purveyance and forced labour is still in full force. The commerce and manufactures of the country are daily deteriorated by the vexatious system of internal duties which is still preserved......the people are neither happier nor richer than they were before—indeed, their impoverishment has been progressive—for while the been relaxed half a thread of the many hundreds of which it is com-

been relaxed half a thread of the many hundreds of which it is com-

posed; ......"—*Notes on Indian Affairs*, by Frederick Shore, vol. ii, pp. 223, 224

कुर्ग के साथ पहली सन्धि

अब हम लार्ड बेंटिक के खास-खास कारनामों को बयान करते हैं। सबसे पहले लार्ड बेंटिक की नजर मैसूर के निकट कुर्ग की छोटी-सी रियासत की ओर गई। शायद भारत का कोई दूसरा भाग इतना सुन्दर, रमणीय और मानव स्वास्थ्य के लिए हितकर न होगा, जितना कुर्ग का पहाड़ी इलाका। सन् 1790 में, जब कि अंगरेजों और टीपू सुलतान में युद्ध की तैयारी हो रही थी, कम्पनी और कुर्ग के राजा के बीच एक सन्धि हुई थी, जिसकी शर्तें ये थीं —

"(1) जब तक सूरज और चांद क़ायम हैं, सन्धि करने वाले दोनों पक्ष अपने वचन पर क़ायम रहेंगे।

"(2) टीपू और उसके साथियों को दोनों अपना शत्रु समझेंगे। कुर्ग का राजा अपनी पूरी शक्ति से टीपू को हानि पहुंचाने में अंगरेज़ों को मदद करेगा।

"(3) जितना रसद इत्यादि का सामान कुर्ग में पैदा होता है, वह सब उचित कीमत पर राजा अंगरेज़ों को देगा, और दूसरे टोपी वालों (अर्थात् फ्रांसीसी इत्यादि) के साथ राजा किसी तरह का सम्बन्ध न रखेगा।

"(4) कम्पनी इस बात का वचन देती है कि यदि टीपू के साथ सुलह हो गई, तो भी कुर्ग की स्वाधीनता क़ायम रखी जाएगी और राजा के हितों की पूरी रक्षा की जाएगी।

"(5) शान्ति होने के समय तक के लिए वादा किया जाता है कि राजा और उसके कुटुम्बियों को टेलिचरी में आश्रय दिया जाएगा और हर तरह से उनकी खातिरदारी की जाएगी।"

"ईश्वर, सूरज, चांद और पृथ्वी हमारे साक्षी हैं!"

किन्तु कम्पनी के अंगरेज़ प्रतिनिधियों ने अपनी सन्धियों का मूल्य कभी भी एक रद्दी कागज़ के मूल्य से अधिक नहीं समझा। बेंटिक जानता था कि दक्षिण भारत में अंगरेज़ों के उपनिवेश के लिए कुर्ग से अधिक उपयुक्त स्थान कोई नहीं मिल सकता था। इसलिए यद्यपि कुर्ग के राजाओं ने सदा अंगरेज़ों को लाभ ही पहुंचाया, फिर भी बेंटिक ने किसी न किसी बहाने कुर्ग के साथ युद्ध छेड़ने का संकल्प कर लिया। मालूम होता है कि कुर्ग के राजा और प्रजा, दोनों को वीर, देशभक्त और स्वाभिमानी सुलतान टीपू के विरुद्ध विदेशियों का साथ देने का इस तरह प्रायश्चित करना पड़ा।

युद्ध का बहाना

कुछ साल पहले लार्ड हेस्टिंग्स के समय में कुर्ग के राजा वीर राजेन्द्र की मृत्यु हुई। कुर्ग की प्रथा के अनुसार वीर राजेन्द्र की पुत्री देवम्मा जी अपने पिता के बाद गद्दी की अधिकारिणी थी। राजा वीर राजेन्द्र अपनी इस पुत्री को ही गद्दी देना चाहता था। अंगरेज़ सरकार ने राजा के जीते जी उससे वादा कर लिया था कि अंगरेज़ देवम्मा जी के अधिकार का समर्थन करेंगे। किन्तु पिता के मरते ही देवम्मा जी को छोड़कर उसके एक भाई को गद्दी पर बैठा दिया गया। कम्पनी सरकार ने उस समय उस भाई को ही राजा स्वीकार कर लिया और इस तरह राजा वीर राजेन्द्र के साथ अपने वचन का उल्लंघन किया।

अंगरेज़ों का हस्तक्षेप

बेंटिक को अब फिर कुर्ग के मामले में हस्तक्षेप करने की सूझी। देवम्मा जी और उसके पति को उभारा गया। कहा गया कि कुर्ग का राजा क्रूर और अन्यायी है और अपने आमोद के लिए अपने सम्बन्धियों और प्रजा का संहार किया करता है। यहां तक कहा गया कि राजा अपने बहन और उसके पति, दोनों को कत्ल करना चाहता है। देवम्मा जी और उसके पति नें भाग कर मैसूर के अंगरेज़ रेजिडेण्ट के यहां शरण ली। मालूम नहीं कि देवम्मा जी अंगरेज़ों की मदद से गद्दी प्राप्त करना चाहती थीं या अंगरेज़ अफसर देवम्मा जी को अपनी साज़िश का साधन बना रहे थे। यह भी मालूम नहीं कि असहाय राजा के अत्याचारों के अनेक किस्से देवम्मा जी के गढ़े हुए थे या अंगरेज़ों के। जो हो, अंगरेज़ों ने कुर्ग के शासन में दखल देनें का मौका निकाल लिया। जाहिर है कि वे कुर्ग की स्वाधीनता को नष्ट करने का केवल बहाना ढूंढ रहे थे।

राजा का असमंजस

युद्ध का ऐलान कर दिया गया। एक सेना अंगरेज़ अफसरों के अधीन कुर्ग को विजय करने के लिए भेजी गई। राजा इस युद्ध के लिए विल्कुल तैयार न था और अन्त समय तक असमंजस में रहा।

पादरी डाक्टर मोगलिंग अपने कुर्ग के इतिहास में लिखता है—

> "राजा ने, कुछ इस आशा में कि अभी सम्भव है सुलह हो जाए, और कुछ इस डर से कि, यदि मामला हद को पहुंचा, तो सम्भव है, मुझे अपना सब कुछ खो देना पड़े, चारों ओर यह आज्ञाएं जारी कर दीं कि कोई कुर्ग निवासी कम्पनी की सेनाओं को न रोके, न उनका मुकाबला करे। अंगरेजी सेना की कई डिवीजनें इस समय कुर्ग में प्रवेश कर रही थीं। उन सबकी सफलता का, बल्कि उनकी जान बचने तक का अधिकतर श्रेय राजा के इस असमंजस को मिलना चाहिए, न कि अंगरेज सेनापतियों के युद्ध कौशल या उनकी योग्यता को।"*

निस्सन्देह कुर्ग के दरबार में उस समय एक से अधिक दरबारी लार्ड बेंटिक या उसके गुप्तचरों के खरीदे हुए थे, जिन्होंने राजा को तरह तरह से धोखे में रखा अन्यथा राजा के इस भयंकर असमंजस और कुर्ग निवासियों के नाम उसकी घातक आज्ञाओं का और कोई कारण आसानी से समझ में नहीं आ सकता।

कुर्ग की स्वाधीनता का अन्त

संक्षेप में यह कि राजा को गद्दी से उतार कर कैद करके बनारस भेज दिया गया; देवम्मा जी और उसके पति को, जिनके नाम पर यह सब स्वांग रचा गया था,

---

* The Raja, incited partly by the hope......that a reconciliation was yet possible, partly by the fear, that he might lose all, if matters went to extremities, sent orders prohibiting the Coorgs from encountering the troops of the Company. To this vacillation of the Raja, the several divisions of the British Expedition, then marching into Coorg, were more indebted for their success and even safety, than to the skill and talents of their commanders."—Revd. Dr. Moegling, in his History of Coorg published in the *Calcutta Review* for September, 1856, p. 199.

ताक पर रख दिया गया और कुर्ग का रमणीय प्रान्त खुले आम कम्पनी के इलाके में मिला लिया गया। इस तरह कुर्ग की स्वाधीनता का अन्त कर दिया गया।

इस अवसर पर कपट और झूठ से भरा हुआ एक ऐलान कुर्ग की प्रजा के नाम प्रकाशित किया गया, जिसके शुरू में लिखा था—

"चूंकि समस्त कुर्ग निवासियों की यह इच्छा है कि हमें अंगरेज सरकार की रक्षा में ले लिया जाए, इसलिए × × × इत्यादि, इत्यादि।"

इसी ऐलान में आगे चल कर लिखा है कि—"कुर्ग निवासियों को विश्वास दिलाया जाता है कि उन्हें फिर कभी भी देशी शासन के अधीन न होने दिया जाएगा, इत्यादि!" सब अंगरेज़ इतिहास लेखक स्वीकार करते हैं कि कुर्ग को युद्ध द्वारा नहीं जीता गया। कर्नल फ्रेज़र ने इस ऐलान में कम्पनी सरकार की ओर से कुर्ग निवासियों से साफ़ झूठा वादा किया कि कुर्ग के इलाके के अन्दर कभी भी पशुवध न किया जायगा। कुर्ग के देशी राजाओं के अधीन जमीन का लगान पैदावार के रूप में वसूल किया जाता था। ऐलान में वादा किया गया कि यह रिवाज न तोड़ा जाएगा। किन्तु थोड़े ही दिनों बाद लगान नक़दी की सूरत में वसूल किया जाने लगा। दुखित प्रजा ने लाचार होकर नये विदेशी शासकों के विरुद्ध विद्रोह किया। इस विद्रोह को बड़ी निर्दयता के साथ कुचल डाला गया।

राजा के साथ दुर्व्यवहार

पदच्युत राजा के साथ बाद में इतना बुरा व्यवहार किया गया कि उसे अपनी शिकायतें दूर कराने के लिए सन् 1852 में इंगलिस्तान जाना पड़ा। इंगलिस्तान में उसकी इकलौती बेटी बहका कर ईसाई बना ली गई और एक अंगरेज़ के साथ ब्याह कर दी गई। अंगरेज़ क़ौम ने राजा की शिकायतों की ओर कुछ भी ध्यान न दिया।

लूट का बटवारा

कुर्ग पर कब्जा करते ही अंगरेज़ अफ़सरों ने उस देश को जी भर कर लूटा, यहां तक कि लूट का कुछ हिसाब न रहा। लूट का यह धन सेना के अंगरेज़ अफसरों में बाजाब्ता बांटा गया। सेनापति लिण्डसे को कुल रकम का सोलहवां हिस्सा मिला। बाक़ी अफ़सरों को इस तरह रकमें बांटी गईं—

हर कर्नल को 25,000 रु०;
हर लेफ्टिनेन्ट कर्नल को 15,000 रु०;
हर मेजर को 10,000 रु०;
हर कप्तान को 5,000 रु०;
और हर सबाल्टर्न (यानी, कप्तान से छोटे अफ़सर) को 2,500 रु०।*

इसके बाद कुर्ग को विजय करने में कम्पनी का जो मुख्य उद्देश्य था, वह भी शीघ्र ही पूरा हो गया। कुर्ग की भूमि कहवे (काफ़ी) की पैदावार के लिए अत्यन्त उपयुक्त थी। अनेक अंगरेज़ों को वहां बसा दिया गया और जंगल के जंगल उन्हें इस काम के

---

* *Asiatic Journal*, May 1836, p. 33.

लिए मुफ्त दे दिए गए। सन् 1904 तक वहां लगभग 50,000 एकड़ जमीन कहवे की खेती में लगी हुई थी और कहवे की खेती करने वाले हजारों अंगरेज़ काश्तकार वहां बसे हुए थे।

कछाड़ की रियासत का अन्त

पिछले अध्याय में आ चुका है कि सन् 1824 में ऐमहर्स्ट ने बर्मा युद्ध में विजय प्राप्त करने के लिए कछाड़ के राजा गोविन्दचन्द्र नारिन के साथ सन्धि कर ली थी। कहा जाता है कि सन् 1830 में किसी ने (?) राजा गोविन्दचन्द्र को कत्ल कर दिया। राजा के कोई पुत्र न था। बेंटिक ने इसी बिना पर शांति के साथ कछाड़ की रियासत को कम्पनी के इलाके में मिला लिया।

भारत छोड़ने से थोड़े दिन पहले बेंटिक ने जैन्तिया के राजा का कुछ इलाका इसलिए जब्त कर लिया कि राजा नें कम्पनी के साथ सन्धि की कुछ शर्तों का उल्लंघन किया था।

मैसूर राज में हस्तक्षेप

कुर्ग और कछाड़ के अतिरिक्त और कोई रियासत बेंटिक ने बाक़ायदा कम्पनी के इलाके में नहीं मिलाई, किन्तु और कई रियासतों के शासन प्रबन्ध में उसने जबरदस्ती हस्तक्षेप किया। इनमें मुख्य मैसूर की रियासत थी।

हैदरअली और टीपू सुलतान ने अपनी वीरता से मैसूर की प्राचीन हिन्दू रियासत को बढ़ा कर एक बहुत बड़ी सल्तनत बना दिया था। सन् 1799 में टीपू की वीरगति के बाद अंगरेज़ों ने उस विशाल सल्तनत का एक टुकड़ा अनेक कठिन शर्तों के साथ मैसूर के राजकुल को लौटा दिया। राजा और कम्पनी के बीच सबसीडियरी सन्धि हो गई। मैसूर के राजा सन् 1799 से 1831 तक उस सन्धि की शर्तों का ईमानदारी के साथ पालन करते रहे और हर साल सब्सिडी की रक़म ठीक समय पर कम्पनी को अदा करते रहे।

मैसूर को साफ़-साफ़ कम्पनी के राज में मिलाने में एक और बड़ी कठिनाई थी। कम्पनी और निज़ाम में यह समझौता हो चुका था कि यदि मैसूर की रियासत को कभी समाप्त किया जाएगा तो आधा मैसूर कम्पनी के पास रहेगा और आधा निज़ाम को दिया जाएगा। निज़ाम के बल को बढ़ाना लार्ड बेंटिक को पसन्द न हो सकता था। किन्तु निज़ाम की मित्रता बनाए रखना भी कम्पनी के लिए आवश्यक था। इसलिए बेंटिक ने एक और चाल चली।

मैसूर के शासन प्रबन्ध में अनेक झूठे सच्चे दोष निकाले गए। 7 सितम्बर, सन् 1831 को मैसूर के असहाय राजा को अचानक लार्ड बेंटिक का पत्र मिला कि आपके शासन के अमुक दोषों के कारण राज का सारा प्रबन्ध आपके हाथों से लेकर अमुक-अमुक अंगरेज़ अफ़सरों के हाथों में दे दिया गया है। राजा को इस पत्र का उत्तर देने या बेंटिक के इलज़ामों को गलत साबित करने का भी मौका नहीं दिया गया। अंगरेज़ अफ़सर काम संभालने के लिए पहुंच गए और राजा को अपना सब कारबार उनके हाथों में सौंप देना पड़ा। जो दोष मैसूर के शासन में निकाले गए, उनकी सत्यता या असत्यता

के विषय में हम केवल एक विद्वान अंगरेज़ मेजर ईवन्स बेल के शब्द नीचे उद्धृत करते हैं :—

"लार्ड विलियम बेंटिक का मैसूर देश को कुर्क कर लेना न तो सन्धि की शर्तों के अनुसार सर्वथा न्यायमुक्त था, और न सदाचार की दृष्टि से उचित था; क्योंकि कोई विशेष बात मनुष्यत्व के विरुद्ध राजा की ओर से न हुई थी, और न इसी बिना पर कुर्की जायज थी कि हमारे पास के प्रान्तों की शांति को किसी तरह का खतरा रहा हो। × × × सच यह है कि सब्सिडी की सालाना रक़म हमेशा बिल्कुल ठीक समय पर अदा की जाती थी और जिस दिन गवर्नर जनरल नें राजा को पत्र लिखा, उस दिन कोई किस्त भी कम्पनी को राजा से लेनी बाकी न थी।

"इस तरह जो दलीलें मैसूर की उस शुरू की कुर्की के लिए दी जाती हैं, वे न केवल सन्धि की शर्तों के सर्वथा विरुद्ध हैं, बल्कि × × × सत्य के भी कहीं अधिक विरुद्ध मालूम होती ह।"*

इसके बाद 50 साल तक, यानी सन् 1881 तक, अंगरेज़ अफ़सरों का एक कमीशन मैसूर का समस्त शासन करता रहा। सन् 1881 में फिर पहले से भी अधिक कठिन शर्तों के साथ मैसूर का शासन प्राचीन हिन्दू राजकुल को सौंप दिया गया।

जयपुर और जोधपुर

जयपुर में लार्ड बेंटिक ने जूठाराम नामक अपने एक आदमी को वहां का मन्त्री नियुक्त करके जबरदस्ती महाराजा के सिर मढ़ दिया। लिखा है कि जूठाराम की नियुक्ति कम्पनी और जयपुर के बीच की सन्धि के विरुद्ध थी और इस नियुक्ति से समस्त राज में अराजकता फैल गई।

जोधपुर के महाराजा के ज़िम्मे अंगरेज़ों की सब्सिडी की कुछ रक़म बाकी थी। तुरन्त सेना भेज कर सांभर का जिला और सांभर झील का कुछ भाग बतौर ज़मानत महाराजा से ले लिया गया।

इसी अवसर पर लार्ड बेंटिक ने सांभर झील और सांभर ज़िले के उस हिस्से पर भी ज़बरदस्ती कब्जा कर लिया, जो जयपुर की रियासत में था। लडलो लिखता है कि इस जबरदस्ती के कारण जयपुर के राजा और प्रजा, दोनों में गहरा असन्तोष फैल गया और 4 जून, सन् 1835 को लोगों ने रेजिडेण्ट के ऊपर हमला करके उसके असिस्टेंट, मिस्टर ब्लैक, को मार डाला।

वास्तव में लार्ड बेंटिक धीरे-धीरे इन सभी रियासतों को खतम करने की तैयारी कर रहा था।

---

* "......thus the grounds alleged for the original attachment of the country are not only unsustainable by the terms of the treaty, but are found to be even more opposed to truth......"—*The Mysore Reversion,* by Major Evans Bell, pp. 21-24.

अवध का दौरा

सन् 1831 में लार्ड बेंटिक ने अवध का दौरा किया; अवध के नवाब को, जि अंगरेज़ उन दिनों "अवध का बादशाह" कहते थे, खूब डराया धमकाया, और राज एक-एक महकमे में इस प्रकार का अनाधिकार हस्तक्षेप और राज के कर्मचारियों मनमाने उलट फेर करने शुरू किए कि उन दिनों यह एक आम अफ़वाह थी, यहां तक कलकत्ते के समाचार पत्रों तक में प्रकाशित हो गया था, कि अंगरेज अवध में नवाबी खात्मा करके वहां की सल्तनत को अपने इलाक़ों में मिला देना चाहते हैं। नवाब घबरा कर इंगलिस्तान की पार्लियामेण्ट से अपील करने का इरादा किया और कर्नल दू नामक एक फ्रांसीसी को इंगलिस्तान भेजना चाहा। दूबाय यूरोप के लिए रवाना गया। इस पर बेंटिक ने नवाब को डरा कर उससे ज़बरदस्ती दूबाय की बरखा का परवाना लिखा कर फ़ौरन विलायत भेज दिया। इस मामले में नवाब और दू दोनों के साथ बेंटिक का जबरदस्ती और दूबाय के विरुद्ध उसके षड्यन्त्र का विस् वृत्तान्त एक लेखक ने वेरीटस (Veritas) के नाम से अप्रैल, सन् 1847 की 'इंडि एक्जामिनर एंड यूनिवर्सल रिव्यू' नामक पत्रिका में प्रकाशित किया था।

दिल्ली सम्राट

सम्राट अकबरशाह का जो अपमान लार्ड ऐमहर्स्ट ने किया था, उसकी शिका के लिए राजा राममोहन राय के विलायत भेजे जाने का ज़िक्र पिछले अध्याय में आ चु है। लार्ड बेंटिक ने दिल्ली के रेजिडेण्ट द्वारा सम्राट अकबरशाह पर जोर दिया कि रा राममोहन राय को शाही दूत के पद से बरखास्त कर दिया जाए। सम्राट ने स्वी न किया, फिर भी राजा राममोहन राय की इंगलिस्तान में कौन सुन सकता था! दि सम्राट की ओर बेंटिक का समस्त व्यवहार अपमानजनक रहा।

ग्वालियर

सिंधिया कुल की गद्दी पर उस समय एक बालक, जंकोजी सिंधिया, विराज था। रियासत के अन्दर अंगरेज़ों ने अपनी साज़िशों से अनेक तरह के उपद्रव खड़े क रखे थे। इस रियासत की ओर बेंटिक की नीयत और प्रयत्नों के बारे में एक अंगरेज़ ले जान होप, लिखता है—

> **"किन्तु यदि अपनी राजधानी के अन्दर महाराजा जंकोजी सिंधिया इन विपत्तियों ने घेर रखा था, तो बाहर भी कलकत्ते की अंगरेज़ कौंसिल से कुछ कम विपत्ति का डर नहीं था। कलकत्ते में इस बात का पता लगाने के गुप्त सलाहें हो रही थीं कि इस निर्बल, क़िन्तु अत्यन्त वकादार नौजवान नरेश विपत्तियों से क्या-क्या फायदा उठाया जा सकता है। × × × गवर्नर ज के चीफ सेक्रेटरी ने रेजिडेण्ट के नाम एक गुप्त पत्र लिखा, जिसमें उसे हिदायत कि आप निजी तौर पर महाराजा से मिल कर इधर-उधर की बातों में यह लगाने की कोशिश करें कि महाराजा उन गम्भीर विपत्तियों से घिरा हु होने के कारण, जो अधिकतर हमारी ही सरकार की खड़ी की हुई हैं, पदत्**

करना पसन्द करेगा या नहीं। यदि वह कर ले, तो महाराजा का देश ब्रिटिश सरकार को मिल जाएगा और महाराजा को एक सुन्दर पेन्शन दे दी जाएगी, जो उसी की रियासत की आमदनी में से अदा की जाएगी।"*

रेज़िडेण्ट कैवेनडिश लार्ड वेंटिक की इच्छा को पूरा न कर सका। इस पर जान होप लिखता है—

"फौरन एक दूसरा गुप्त पत्र पहुंचा ××× जिस में मिस्टर कैवेनडिश को लानत मलामत की गई और अन्त में यह अर्थसूचक वाक्य लिखा गया कि—'इस प्रकार तुमने बम्बई प्रान्त को आगरा प्रान्त के साथ जोड़ देने का एक बहुत अच्छा मौका हाथ से खो दिया'।"

एक मनोरंजक घटना

जान होप इस सम्वन्ध में एक और अत्यन्त मनोरंजक घटना सुनाता है। वह लिखता है—

"कोई यह न समझे कि ××× दूसरी रियासतों के साथ लार्ड विलियम बेंटिक की नीति को इस तरह संक्षेप में चित्रित करने में हमने थोड़ा-बहुत भी उस पर रंग चढ़ाया है। हम मिसाल के तौर पर एक मनोरंजक घटना बयान करते हैं जो कि इस समय के जीवित लोगों में केवल तीन या चार को मालूम है और जिससे हमारे इस कथन को काफ़ी समर्थन होगा कि देशी रियासतों के अधिकारियों के बारे में लार्ड बेंटिक हजरत मूसा की उस दसवीं आज्ञा की बिल्कुल परवाह न करता था जिसमें कहा गया है कि—'अपने पड़ोसी का माल कभी न छीनना।' बात यह थी कि मिस्टर कैवेनडिश की जगह मेजर सदरलण्ड रेजिडेण्ट नियुक्त हुआ। ××× मेजर सदरलैण्ड यह जानने के लिए कि ग्वालियर पहुंच कर किस नीति का पालन किया जाए, अर्थात् रियासत के मामलों में हस्तक्षेप किया जाए या न किया जाए, गवर्नर जनरल से मिलने के लिए कलकत्ते गया। लार्ड बेंटिक को ××× मजाक का शौक था। उसने फ़ौरन जवाब दिया—'मेजर, इधर देखो।' यह कह कर लार्ड बेंटिक ने अपनी गरदन पीछे को लटका दी, मुंह खोल दिया और अंगूठी और उंगली इस तरह मुंह में देकर, जिस तरह कि कोई लड़का मिठाई मुंह में डालने लगता है, चकित मेजर से मुखातिब होकर कहा—'यदि

---

* "But if these dangers surrounded him (Maharaja Junko Scindia) in his capital he was threatened with no less danger from the council of Calcutta. Secret deliberations were there being held, with a view to discover what profit could be made out of the troubles of this weak but most faithful young prince, ...A demiofficial letter was written to the Resident by the Chief Secretary of the Foreign Department, desiring him to learn, at a private interview, by way of a feeler, if the Maharajah, encircled as he was by serious troubles—*troubles mainly caused by our Government*—would like to resign; assigning over the country to the British Government, and receiving a handsome pension, which would be paid out of his own revenues......"—*The House of Scindia, a Sketch,* by John Hope, published in 1863, Messrs. Longman, Green, Longman, Roberts and Green.

ग्वालियर की रियासत आपके मुंह में आकर गिरने लगे, तो आप मिस्टर कैवेनडिश की तरह अपना मुंह बन्द न कर लीजिएगा, बल्कि उसे निगल जाइएगा यही मेरी नीति है ।"*

इस घटना पर टीका करने की आवश्यकता नहीं है । भारतीय रियासतों की ओर ईस्ट इंडिया कम्पनी की नीति का यह एक खासा सच्चा चित्र है । बेंटिक को आशा थी कि जो गहरी विपत्तियां अंगरेज़ अफ़सरों ने सिंधिया के चारों ओर खड़ी कर रखी थीं उनसे घबरा कर महाराजा सिंधिया चुपचाप अपना राज बेंटिक के हवाले कर देता। किन्तु इस बारे में उसकी आशा पूरी न हुई ।

झांसी

सन् 1835 में झांसी के राजा की मृत्यु हुई । राजा ने एक पुत्र गोद ले रखा था। फिर भी लार्ड बेंटिक ने बिना किसी तरह की तहकीकात या किसी तरह के अधिकार के युवराज के विरुद्ध पिछले राज़ा के एक चचा रघुनाथराव का पक्ष लेकर उसे गद्दी पर बैठा दिया । उसी समय से झांसी में कम्पनी की साज़िशें शुरू हो गईं ।

इन्दौर

इसी तरह सन् 1834 में इन्दौर के महाराजा मल्हारराव होलकर की मृत्यु हुई। मल्हारराव के एक दत्तक पुत्र मौजूद था । फिर भी दो हकदार और खड़े हो गए। बेंटिक के दत्तक पुत्र के विरुद्ध इन दोनों में से किसी एक से सौदा करना चाहा । दुर्भाग्यवश सौदा न हो सका । बेंटिक के पत्रों से ज़ाहिर है कि वह अन्त समय तक यह तय न कर पाया कि कम्पनी का अधिक हित किसका पक्ष लेने में है । अन्त में लार्ड विलियम बेंटिक की इच्छा और गुप्त प्रयत्नों के विरुद्ध दत्तक पुत्र ही उस समय गद्दी पर बैठा । इस

---

* "Presently another demiofficial letter arrived......strongly expostulating with Mr. Cavendish upon his proceedings, and concluding with this significant remark : 'You have thus allowed a favourable chance to escape of connecting the Agra to the Bombay Presidency.' ......

"Lest it should be thought by any one......that in this little sketch of his (Lord William Bentinck's) foreign policy, we have given even the slightest touch of colouring, we will relate, by ay of illustration, an amusing anecdote which is known to three or four persons now living, and which sufficiently confirms our statement that, in respect of the rights of native states, His Lordship entirely overlooked the tenth commandment. It happened that Major Sutherland was selected to fill the office vacated by Mr. Cavendish...... He therefore waited on the Governor-General in Calcutta to learn what the policy was to be at Gwalior; was it to be intervention ? Lord Bentinck...... loved a jock, quickly replied: 'Look here, Major,' and His Lordship threw back his head, opened wide his mouth, and placed his thumb and finger together like a boy about to swallow a sugar-plum. Then turning to the astonished Major he said: 'If the Gwalior State will fall down your throat you are not to shut your mouth, as Mr. Cavendish did but swallow it: that is my policy......"—ibid.

पर बेंटिंक ने इन्दौर के रेजिडेण्ट को नये राजा के राजतिलक के समय दरबार में जाने तक की मनाही कर दी।

सिन्ध और पंजाब

लार्ड विलियम बेंटिंक के कामों में शायद सबसे महत्व का काम सिन्धु नदी में जहाज़ और सेना भेज कर उसके जल इत्यादि की थाह लेना था। उद्देश्य यह था कि भविष्य में सिन्धु नदी से सेना ले जाने इत्यादि की कठिनाइयों और सम्भावनाओं का पहले से पता लगा लिया जाए, क्योंकि अरसे से सिन्ध, पंजाब और अफ़गानिस्तान तीनों पर कम्पनी की नज़र गड़ चुकी थी। सर जान मैलकम ने एक लेख भारत सरकार और इंगलिस्तान के डाइरेक्टर के सामने पेश किया, जिस में उसने दिखलाया कि, हैदराबाद (सिन्ध) और सिन्धु नदी दोनों पर अंगरेज़ सरकार का कब्जा होना कितने अधिक महत्व का है। इस पर सबसे पहले इस बात की आवश्यकता अनुभव की गई कि सिन्धु नदी की थाह ली जाए और जहाजों के आने जाने के लिए नदी की उपयोगिता का ठीक-ठीक पता लगा लिया जाए। पंजाब और अफ़गानिस्तान पर हमला करने में भी इस नदी का उपयोग किया जा सकता था। किन्तु सिन्ध एक स्वाधीन देश था। सिन्ध के अमीर अंगरेज़ों को इस तरह अपने देश में क्यों घुसने देते। इसलिए एक कपट प्रबन्ध रचा गया। कहा गया कि इंगलिस्तान के बादशाह विलियम चतुर्थ की ओर से पंजाब के महाराजा रणजीतसिंह के पास उपहारस्वरूप एक घोड़ागाड़ी भेजनी है, जिसे केवल जल मार्ग से ही पंजाब पहुंचाया जा सकता है। इतिहास लेखक प्रिन्सेप लिखता है कि—"तय किया गया कि इस उपहार को भेजने के बहाने सिन्धु नदी की सब बातों और उस नदी द्वारा यात्रा की सुविधाओं और असुविधाओं का पता लगाया जाए।" * कम्पनी के डाइरेक्टरों ने गवर्नर जनरल को साफ लिख दिया कि यदि सिन्ध के अमीर राजी न हों तो उनकी कुछ परवाह न की जाए।

कपट योजना

सर चार्ल्स मेटकाफ उस समय गवर्नर जनरल की कौन्सिल का एक सदस्य था। उसे डर था कि यदि यह भेद सिन्ध के अमीरों पर खुल गया और यदि वे अंगरेज़ों के विरुद्ध हो गए, तो भविष्य में बाहर के किसी भी शत्रु को अंगरेज़ों के विरुद्ध उनसे सहायता मिल सकेगी। इसलिए मेटकाफ इस समस्त कपट प्रबन्ध के विरुद्ध था। उसने अक्तूबर, सन् 1830 को गवर्नर जनरल को लिखा।

> **"राजा रणजीतसिंह को उपहार भेजने के बहाने सिन्धु नदी की सर्वे करने की योजना मुझे अत्यन्त अनुचित प्रतीत होती है।**
>
> **"मेरी सम्मति में यह एक ऐसी चाल है, जो हमारी सरकार को शोभा नहीं देती, जिसका भेद बहुत सम्भव है कि कभी न कभी खुल जाएगा, और जब भेद**

---

* "It was resolved to make the transmission of this present, a means of obtaining information in regard to the Indus, and the facilities, or the contrary it might offer to navigation."—*Origin of the Sikh Power in the Punjab and Political Life of Maharaja Ranjit Singh*, chapter x.

खुलेगा, तो जिन ताक़तों को हम इस समय धोखा दे रहे हैं उनके हम क्रोध और ईर्ष्या के पात्र बने बिना न रह सकेंगे।"*

× × × ×

"××× हमें बीच की रियासतों को इस तरह के कामों से नाराज़ नहीं कर लेना चाहिए, जिनसे हमारे विरुद्ध उनकी शत्रुता भड़कने की सम्भावना हो, बल्कि उनके साथ मित्रता क़ायम करनी चाहिए* * *"

"जिन बातों का पता लगाना हैं, यदि वे कतई जरूरी हों और खुले तौर पर ईमानदारी के साथ उनका पता नहीं लगाया जा सकता, तो मैं समझता हूं कि मामूली तरीक़े से गुप्तचर भेज कर चुपचाप पता लगा लेना चाहिए, और दूसरों को धोखा नहीं देना चाहिए, क्योंकि हमारा असली उद्देश्य कुछ और है और ऊपर से हम बहाना दूसरा ले रहे हैं, जबकि हम जानते हैं कि सच्ची बात कहने से हमें इजाज़त न मिलेगी।"†

सर चार्ल्स मेटकाफ के इन शब्दों के बाद इस सम्बन्ध में बेंटिक के कपट का और अधिक प्रमाण देने की आवश्यकता नहीं है।

सिन्धु नदी की सर्वे

सिन्धु नदी की सर्वे के साथ साथ एक दूसरी योजना इस समय यह हो रही थी कि काबुल में कम्पनी का एक तिजारती एजेंट रहा करे। मेटकाफ ने इस योजना का भी विरोध किया। इतिहास लेखक सर जान के लिखता है—

"सिन्धु नदी की सर्वे और काबुल में तिजारती एजेंसी का क़ायम करना, ये दोनों मानो भावी अफ़गान युद्ध के महाकाव्य की प्रस्तावना थे।"

वास्तव में लार्ड बेंटिक की ये दोनों योजनाएं केवल सन् 1839–1842 के अफ़गान युद्ध और उसके बाद सिन्ध और पंजाब के युद्धों की तैयारी थी।

ज़ाहिर है कि लार्ड बेंटिक की नज़र अब सिन्ध, पंजाब और अफ़गानिस्तान, तीनों पर थी। इतिहास लेखक मसन ने इस सम्बन्ध में लार्ड बेंटिक के कपट को बड़े विस्तार के साथ दिखलाया है।‡ विक्टर जैकमाण्ड ने लिखा है कि बेंटिक ने सिन्ध के

---

*"The scheme of surveying the Indus, under the pretence of sending a present to Raja Ranjit Singh, seems to me highly objectionable.

"It is a trick, in my opinion, unworthy of our Government, which cann fail when detected, as most probably it will be, to excite the jealousy an indignation of the powers on whom we play it."—Minute of Sir Charl Metcalf, October, 1830.

† "If the information wanted is indispensable, and cannot be obtained b fair and open means, it ought, I conceive, to be sought by the usual mode o sending unacknowledged emissaries, and not by a deceitful application for passage under the fictitious pretence of one purpose when the real object i another, which we know would not be sanctioned."—Kaye's *Selections fro the Writings of Lord Metcalfe,* pp. 211-217.

‡Massen's *Travells,* vol. iii, p. 432.

अमीरों को यह डर दिखाया कि यदि आप लोग अंगरेज़ी जहाज़ों के जाने में बाधक होंगे, तो कम्पनी सरकार और महाराजा रणजीतसिंह दोनों आप से नाराज हो जाएंगे और फिर मजबूर होकर अंगरेज़ों का रणजीतसिंह को सिन्ध को विजय करने में सहायता देनी पड़ेगी। दूसरी ओर अमीरों को यह भी विश्वास दिलाया गया कि यदि आप लोगों ने इजाज़त दे दी, तो सिन्ध और कम्पनी की मित्रता सदा के लिए पक्की हो जाएगी। इस तरह डरा कर और बहकाकर बेंटिक ने अमीरों से इजाज़त हासिल कर ली। अमीरों ने कम्पनी के जहाज़ों के लिए सिन्धु नदी के तट के बराबर बराबर हर तरह की सुविधाएं कर दीं। मैसन लिखता है कि इस उपहार भेजने के बहाने सिन्धु नदी के किनारे फ़ौजें भेज दी गईं और करीब छह सशस्त्र जहाज नदी में पहले से पहुंचा दिए गए।

सिन्ध पर दोहरी नजरें

महाराजा रणजीतसिंह स्वयं बहुत दिनों से सिन्ध विजय करने का विचार कर रहा था। सन् 1809 में कम्पनी और रणजीतसिंह के बीच जो सन्धि हुई थी, उसमें यह साफ शर्त थी कि सतुलुज के इस पार का पूरा इलाक़ा कम्पनी के लिए छोड़ दिया जाए और सतुलुज के दूसरी ओर महाराजा रणजीतसिंह चाहे जितना अपना साम्राज्य बढ़ाने का प्रयत्न करे, अंगरेज़ उसमें बाधक न होंगे। रणजीतसिंह ने इस सन्धि का ईमानदारी के साथ पालन किया और धीरे-धीरे समस्त कश्मीर, मुलतान और पेशावर के इलाक़ों को विजय करके अपने साम्राज्य में मिला लिया। रणजीतसिंह की विशाल सेना उस समय भारत की अधिक वीर और सुसन्नद्ध सेनाओं में गिनी जाती थी। उसका साम्राज्य विशाल, समृद्ध और उर्वर था। पेशावर तक पहुंचने के बाद उसने सिन्ध विजय करने का इरादा किया। किन्तु दूसरी ओर अंगरेज़ कम्पनी की भी सिन्ध पर नज़र थी, इसलिए सन् 1809 की सन्धि के विरुद्ध बेंटिक ने अब रणजीतसिंह को सिन्ध विजय करने से रोकने का प्रयत्न किया।

इसी प्रयत्न के सिलसिले में रणजीतसिंह के पास उपहार भी भेजे गए। बेंटिक ने स्वयं रणजीतसिंह से मिलने की प्रार्थना की। रणजीतसिंह ने इंगलिस्तान के बादशाह विलियम की भेजी हुई (?) गाड़ी, घोड़े और अन्य उपहारों से प्रसन्न होकर बेंटिक की प्रार्थना स्वीकार कर ली।

रणजीतसिंह और बेंटिक की भेंट

सन् 1831 के अन्त में रोपड़ नामक स्थान पर पूर्वीय शानो-शौकत के साथ लार्ड बेंटिक और महाराजा रणजीतसिंह की मुलाकात हुई। लार्ड बेंटिक इस मुलाकात के समय खासी सेना अपने साथ ले गया। जान मैलकम लडलो लिखता है कि अंगरेज़ों का अफ़गान कैदी शाहशुजा उस समय लुधियाना में रहता था। लार्ड बेंटिक और महाराजा रणजीतसिंह की इस मुलाकात के अवसर पर यह तय हुआ कि शाहशुजा को सामने करके अफ़गानिस्तान पर हमला किया जाए। जनवरी, 1833 में रणजीतसिंह की इजाज़त से तीस हज़ार सेना लेकर शाहशुजा ने पहले सिन्ध पर हमला किया। उसके बाद वह कन्धार की ओर बढ़ा। अन्त में, काबुल और बादशाह दोस्त मुहम्मद खां ने शाहशुजा को

हरा दिया और सन् 1834 में शाहशुजा को फिर भाग कर लुधियाना में आश्रय लेना पड़ा।

सिन्ध के ही मामले पर रोपड़ में बेंटिक और रणजीतसिंह में कुछ मतभेद भी हो गया। बेंटिक ने यह प्रकट किया कि अंगरेज़ सिन्धु नदी के नीचे के हिस्से पर कब्ज़ा करना चाहते हैं और उस ओर अपना व्यापार बढ़ाना चाहते हैं; इसलिए उन्हें सिन्धु के किनारे-किनारे अपनी छावनियां बनानी होंगी। रणजीतसिंह ने पहले इस पर एतराज़ किया, क्योंकि बेंटिक की मांग सन् 1809 की सन्धि के विरुद्ध थी। अन्त में किसी न किसी प्रकार लार्ड बेंटिक ने महाराजा रणजीतसिंह को राज़ी कर लिया और खुद सिन्ध पर चढ़ाई करने से रोक दिया। रणजीतसिंह अंगरेज़ों की इच्छा के विरुद्ध चलने का साहस न कर सका। फिर भी, इस समय से ही रणजीतसिंह के दिल में अंगरेज़ों की ओर से गहरी शंका उत्पन्न हो गई। उस समय के अनेक पत्रों से यह भी साबित है कि स्वयं रणजीतसिंह के राज के विरुद्ध भी बेंटिक के समय से ही अंगरेज़ों में गुप्त सलाहें और तजवीजें हो रही थीं।

कप्तान कनिंघम लिखता है कि सिख युद्ध के कारणों में से एक कारण यह था कि लार्ड बेंटिक की गवर्नर जनरल के दिनों में अंगरेज़ों ने स्वयं सिन्ध पर कब्ज़ा करने के उद्देश्य से रणजीतसिंह को सिन्ध विजय करने या सिन्ध को अपनी एक सामन्त रियासत बनाने से रोकने के लिए हर तरह से छल, कपट और बहानेबाजी का उपयोग किया था।*

बेंटिक के शासन का सार

संक्षेप में लार्ड बेंटिक का व्यवहार भारत की देशी रियासतों के साथ इस प्रकार रहा। कुर्ग और कछाड़ को उसने कम्पनी के राज में मिला लिया। अवध की बादशाहत के आन्तरिक मामलों में उसने अनुचित हस्तक्षेप किया, जिससे बाद में उसके उत्तराधिकारियों को अवध के स्वाधीन अस्तित्व को मिटाने में मदद मिली। उसने दिल्ली सम्राट का अकारण अपमान किया। ग्वालियर की मराठा रियासत को हड़प जाने की उसने भरपूर कोशिश की। मैसूर को उसने बहाना निकाल कर अंगरेज़ों के शासन में कर लिया। दूसरी छोटी बड़ी रियासतों में भी उसने अनाधिकार हस्तक्षेप किया और सबसे महत्वपूर्ण बात, सिन्धु नदी की सर्वे के लिए उसने वह कपट प्रबन्ध रचा, जिससे अफ़ग़ानिस्तान, पंजाब और सिन्ध, तीनों की भावी विपत्तियों की बुनियाद पड़ गई।

पुराने घरानों का नाश

लार्ड बेंटिक की दो-चार और कार्रवाइयां बयान करने योग्य हैं—

बेंटिक के आने के सैकडों साल पहले से हज़ारों पुराने घरानों को, और हज़ारों धार्मिक या शिक्षा सम्बन्धी या अन्य सार्वजनिक संस्थाओं को मुगल सम्राटों और हिन्दू मुसलमान नरेशों की ओर से, जगह-जगह माफ़ी की ज़मीनें मिली हुई थीं, जिन्हें 'लाख़िराज' ज़मीन कहते थे। अभी तक अंगरेज़ों ने ब्रिटिश भारत के अन्दर इन माफ़ी की ज़मीनों में हस्तक्षेप न किया था। किन्तु बेंटिक ने भारत पहुंचते ही हर जिले के कलेक्टर को यह अधिकार दे दिया कि वह अपने ज़िले के अन्दर की जिस लाखिराज

History of the Sikhs, by Captain Cunningham, chapter vii.

जमीन को उचित समझे, कम्पनी के नाम ज़ब्त कर ले। इस अन्याय ने उस समय के हज़ारों खुशहाल भारतीय घरानों को बरबाद कर दिया, उनके बाल-बच्चों को अपने जीवन निर्वाह के उपाय ढूंढने के लिए घरों से बाहर निकाल फेंका और हज़ारों प्राचीन धार्मिक, शिक्षा सम्बन्धी और दूसरी संस्थाओं का अन्त कर दिया।

बेंटिंक भारत के अन्दर कोई पुराना धनाढ्य या सम्मानित घराना बाकी रहने देना न चाहता था। जितनी जागीरों या जायदादों के मालिक पुत्रहीन मर जाते थे, उन्हें वह कम्पनी सरकार के नाम ज़ब्त कर लेना न्याययुक्त समझता था। पिछले मालिक के दत्तक पुत्रों या भाई-भतीजों के अधिकार की कोई परवाह न की जाती थी। अकेले बम्बई प्रान्त के अन्दर अनेक जागीरदारों की रियासतें उनके दत्तक पुत्रों या भाई-भतीजों के होते हुए इस तरह जब्त कर ली गईं।

राष्ट्रीय भावों का उन्मूलन

लार्ड बेंटिंक ने ब्रिटिश भारत की कचहरियों से फ़ारसी और देशी भाषाओं को हटा कर अंगरेज़ी को उनका स्थान देने की कोशिश की। बेंटिंक इस बात में विश्वास करता था कि भारतवासियों की भाषा, उनके भेष और उनके रहन-सहन में अंगरेजियत पैदा करके ही उन्हें देशप्रेम और राष्ट्रीयता के भावों से दूर रखा जा सकता है और विदेशी सत्ता का अधिक उपयोगी यन्त्र बनाया जा सकता है। इसीलिए वह भारत में अंगरेजी शिक्षा और ईसाई धर्म, दोनों के प्रचार का पक्षपाती था। किन्तु शिक्षा का महत्वपूर्ण प्रश्न एक दूसरे अध्याय का विषय है।

बेंटिंक ने भारत में अंगरेज़ों के उपनिवेश कायम कराने का भरसक प्रयत्न किया।

समाचारपत्रों की स्वतन्त्रता का बेंटिंक पक्का शत्रु था।

सारांश यह कि लार्ड विलियम बेंटिंक के शासन काल ने ब्रिटिश भारतीय साम्राज्य को अधिक मजबूत और भारत की पराधीनता की बेड़ियों को और अधिक पक्का कर दिया।

पैंतीसवां अध्याय

सन् 1833 का चार्टर ऐक्ट

सन् 1832 का रिफ़ार्म ऐक्ट

भारत के अन्दर ईस्ट इंडिया कम्पनी के अधिकारों को क़ायम रखने के लिए, इंगलिस्तान की पार्लियामेंट हर बीस साल के बाद एक नया कानून पास किया करती थी जिसे चार्टर ऐक्ट कहते थे। सन् 1813 के चार्टर ऐक्ट और उस द्वारा भारत की प्राचीन तिजारत और उद्योगधन्धों के सर्वनाश का जिक्र एक पिछले अध्याय में किया जा चुका है। इसके बाद लार्ड विलियम बेंटिंक के शासन काल में सन् 1833 में फिर नया चार्टर ऐक्ट पास करने का समय आया। यह समय इंगलिस्तान में फलते-फूलते हुए राष्ट्रीय जीवन का समय था। भारतीय साम्राज्य, भारत की लूट और भारतीय उद्योगधन्धों के नाश के प्रताप से इंगलिस्तान के उद्योगधन्धों और इंगलिस्तान के व्यापार ने पिछले बीस साल के अन्दर अपूर्व उन्नति की थी। इंगलिस्तान का धन बढ़ रहा था। शहरों की आबादी बढ़ती जा रही थी। धन की वृद्धि के साथ-साथ लोगों के हौसले भी बढ़े हुए थे। राजनैतिक क्षेत्र में प्रजा नये-नये अधिकार मांग रही थी। इसलिए सन् 1832 में वहां की प्रजा के अधिकारों को बढ़ाने के लिए पार्लियामेण्ट को एक नया 'रिफार्म ऐक्ट' पास करना पड़ा था।

सब अन्यायों से बड़ा अन्याय

किन्तु सदा यह देखने में आया कि इंगलिस्तान के अन्दर प्रजा के अधिकार और उनके हौसले जब-जब, जितने-जितने बढ़ते गए, पराधीन भारत की बेड़ियां तब-तब, उतनी-उतनी ही अधिक कसती गईं। स्वाभाविक भी यही था, क्योंकि किसी भी विदेशी शासन के अधीन शासक और शासित देशों के हित परस्पर विरोधी होते हैं। भारत की दरिद्रता में इंगलिस्तान की समृद्धि, और भारत की जागृति में इंगलिस्तान को खतरा था। इंगलिस्तान की जनता के अधिकार जितने-जितने बढ़ते गए, भारतवर्ष के क्रियात्मक शासकों की तादाद उतनी-उतनी ही बढ़ती गई और भारत की परवशता और दरिद्रता भी उतनी ही अधिक होती गई। लार्ड मैकाले ने एक स्थान पर सच लिखा है—

> **"मुझे विश्वास है कि सब तरह के अन्यायों में सबसे बुरा अन्याय एक क़ौम का दूसरी क़ौम के ऊपर अन्याय करना है।"***

अमरीका के सुप्रसिद्ध राष्ट्रपति अब्राहम लिंकन ने एक स्थान पर लिखा है—

> **"कोई भी क़ौम इतनी भली नहीं हो सकती कि दूसरी क़ौम पर शासन कर सके।"†**

---

* "Of all forms of tyranny I believe the worst is that of a nation over a nation."—Lord Mecaulay.

† "... there is no nation good enough to govern another nation."—President Abraham Lincon.

सारांश यह कि सन् 1832 के रिफार्म ऐक्ट का नतीजा भारत के लिए और बुरा हुआ, और इसी अहितकर परिस्थिति में पार्लियामेंट ने सन् 1833 का चार्टर ऐक्ट पास किया ।

बीस साल के अंगरेज़ी शासन का सार

इस नए चार्टर ऐक्ट से भारत के ऊपर अंगरेज़ी शासन का आर्थिक भार और अधिक बढ़ गया । सन् 1833 के ऐक्ट का क्षेत्र और अधिक विस्तीर्ण कर दिया गया, और अंगरेज़ों के लिए भारत से धन बटोरने के जरिए और अधिक बढ़ा दिए गए । ऐक्ट के इक्का-दुक्का इस तरह के वाक्यों पर जिनमें भारत की ओर अंगरेजों की हितचिंतकता दरशाई गई केवल भारतवासियों की आंखों में धूल डालने के लिए दर्ज किए गए थे, समय नष्ट करने की आवश्यकता नहीं है । न उस ऐक्ट की एक एक धारा पर बहस करने की ही आवश्यकता है । यह दिखाने के लिए कि सन् 1813 के ऐक्ट के समान सन् 1833 का ऐक्ट भी भारत के लिए कितना अहितकर साबित हुआ हमें केवल इंगलिस्तान की ,इण्डिया रिफ़ार्म सोसाइटी' की एक पत्रिका के कुछ वाक्य नीचे देते हैं । यह सोसाइटी सन् 1853 में कायम हुई थी । एक पत्रिका द्वारा इसने इंगलिस्तान की प्रजा को यह दिखाने की कोशिश की कि सन् 1833 के कानून के अनुसार जिस तरह का अंगरेज़ी शासन बीस साल तक भारत पर जारी रहा, उसका नतीजा भारत के लिए कितना अहितकर हुआ । हम इस पत्रिका के ही शब्दों में सन् 1833 के चार्टर के नतीजों को नीचे बयान करते हैं ।

इस पत्रिका में लिखा है--

“××× इस जांच में हमारा पहला काम यह है कि हम भारत के (बीस बरस के) उस शासन को, जो सन् 1833 की पद्धति के अनुसार चलाया गया, सुशासन की कुछ कसौटियों पर कस कर देखें ।

“पहली कसौटी--शान्ति ।

“सन् 1834 से अब तक ××× 19 साल में से 15 साल भारत की अंगरेज सरकार के युद्धों में बीते ।

“ये युद्ध भारतवासियों की रक्षा के लिए आवश्यक न थे, भारतवासियों की उन्नति इन युद्धों से रुकी है और उनके सुख में बाधा पड़ी है, ××× किन्तु ये सब युद्ध उस शासन पद्धति के मामूली नतीजे थे, जो सन् 1833 में क़ायम की गई । ×××

“दूसरी कसौटी--सरकार की आर्थिक स्थिति ।

“××× पिछले 14 साल के अन्दर भारत के सालाना बजट में लगातार घाटा ही घाटा पड़ता रहा है ।

“सन् 1833 में सेना विभाग का खर्च करीब अस्सी लाख पौंड, यानी भारत सरकार की कुल आमदनी का 49 फ़ीसदी था । ××× अब (1853) भारत के सेना विभाग का खर्च एक करोड़ बीस लाख पौंड से अधिक और कुल आमदनी का 56 फी सदी है ×××।

"तीसरी कसौटी—देश की भौतिक उन्नति।

"× × × भारत की अंगरेज़ सरकार का क़र्ज़ा बढ़ता जा रहा है × × × सड़कें, पुल, नहरें इत्यादि सार्वजनिक हित के कामों पर सरकार पांच लाख पौण्ड सालाना से कम, यानी अपनी दो करोड़ दस लाख पौण्ड सालाना से अधिक की आमदनी में से, × × × कुल आमदनी का सवा दो फ़ीसदी खर्च करती है।

"इस रक़म में से भी, जो कहने के लिए सार्वजनिक कामों में खर्च की जाती है, एक हिस्सा गोरे सिपाहियों के लिए उन बैरकों पर खर्च होता है, जो सिर्फ़ सेना के लिए बनती हैं; और इस रक़म में से कभी-कभी 70 फ़ी सदी तक केवल काम की देखभाल करने वालों की तनखाहों आदि पर खर्च हो जाता है।

"चौथी कसौटी—साधारण प्रजा की अवस्था।

[इस स्थान पर पत्रिका के लेखक ने सरकारी रिपोर्ट से यह दिखलाया है कि यद्यपि लगान वसूल करने के लिए बंगाल में ज़मींदारी पद्धति थी, मद्रास में रैयतवाड़ी और बम्बई प्रान्त में मिश्रित पद्धति, फिर भी तीनों प्रान्तों में अंगरेज़ कम्पनी के शासन में किसानों की अवस्था दिन-प्रतिदिन कितनी खराब होती जा रही थी।]

"जो बयान इस तरह संक्षेप में ऊपर दिया गया है, उससे कुछ दर्जे तक मालूम हो जाएगा कि बंगाल में, जिसकी आबादी (1853) चार करोड़ हैं, किसानों की हालत कितनी करुणाजनक है। मद्रास में, जिसकी आबादी सवा दो करोड़ है, किसानों की हालत और भी ज्यादा खराब है, और बम्बई में जिसकी आबादी एक करोड़ है, किसानों की स्थिति कितनी बुरी है। केवल किसानों का ही नाश नहीं हुआ है, बल्कि धीरे-धीरे सारी हिन्दोस्तानी क़ौम का नाश हो रहा है। देश के भद्र लोगों (यानी पुराने खानदान वालों) की श्रेणी प्रायः हर जगह लोप हो चुकी है। × × × नैतिक पतन भी इस शारीरिक पतन का स्वाभाविक नतीजा है। जो लोग इस स्थिति के लिए जिम्मेवार है, वे इसे भले ही 'सन्तोषजनक' समझें, किन्तु भारत के लिए यह बरबादी और सर्वनाश है, इंगलिस्तान के लिए इसमें खतरा और जिल्लत है।

"पांचवीं कसौटी—क़ानून और न्याय।

"× × × बड़े-बड़े और महंगे कानून।

"× × × रेगुलेशन प्रान्तों में क़ानून कहलाने योग्य कोई चीज है ही नहीं, × × × अदालतों की कार्रवाई पेचीदा कर दी गई है, और खर्च बढ़ा कर असह्य कर दिया गया है जिन्हें अदालतें कहा जाता है, उनमें प्रवेश करने के लिए केवल इतना ही जरूरी नहीं है कि मनुष्य को कोई दावा करना हो, बल्कि (वकीलों को नहीं) सरकार को देने के लिए उसके पास धन भी होना चाहिए। कम्पनी की उस समस्त भारतीय प्रजा के लिए, जो न्याय कराने के लिए सरकार को टैक्स नहीं दे सकती, अदालतों के दरवाजे बन्द हैं। उनके लिए न क़ानून है और न इन्साफ़; और जिनके पास धन है, वे अन्दर घुस कर क्या देखते हैं? कैम्पबेल ने

स्वीकार किया है कि जज इस तरह के हैं, जो अंगरेज जाति के नाम पर एक कलंक हैं ।

"छठी कसौटी—पुलिस ।

"×××इस बारे में हम बंगाल के 1,252 अंगरेज और दूसरे ईसाई बाशिन्दों का यह बयान नकल करते हैं कि वहां की पुलिस न केवल जुर्मों को बन्द करने, अपराधियों को गिरफ्तार करने और जानमाल की रक्षा करने में ही असफल रही, बल्कि हमारी पुलिस स्वयं अत्याचार का एक साधन है और लोगों के नैतिक पतन का एक प्रबल कारण बन गई है ××× इस तरह कानून, इन्साफ़ और जुर्मों की कसौटी पर कसने से मालूम होता है कि 1833 के क़ानून से भारतवासियों की उन्नति या उनके सुख की वृद्धि नहीं हुई ।

"सातवीं कसौटी—शिक्षा ।

"××× अब हम सन् 1833 की पद्धति को शिक्षा की कसौटी पर कसते हैं । ××× जब कि भारतवासियों के अपने शासन के दिनों में हर गांव में पाठशाला थी, हमने इन ग्रामों की पंचायतों का नाश करके उनके साथ-साथ वहां के स्कूल भी तोड़ डाले और उनकी जगह कोई नयी चीज क़ायम नहीं की । ××× दो करोड़ बीस लाख की आवादी में से भारत सरकार इस समय हर साल 160 विद्यार्थियों को शिक्षा देती है ! ××× जब कि कम्पनी के डाइरेक्टर भारत के टैक्सों की वसूली में से पिछले 20 साल के अन्दर 53,000 पौंड केवल दावतों पर खर्च कर चुके हैं । ×××

[प्राचीन भारतीय शिक्षा के सर्वनाश का वर्णन अगले अध्याय में किया जाएगा ।]

"आठवीं कसौटी—सरकारी नौकरियां ।

"××× धीरे-धीरे हर ऐसी नौकरी से, जिसमें तनखाह अधिक हो, कुछ जिम्मेदारी हो और जिसकी कुछ क़द्र हो, योग्य भारतवासियों को निकाल कर वह जगह अंगरेजों को दे दी गई है । इससे शासन का खर्च बेहद बढ़ गया है । यहां तक कि यही हमारी स्थायी नीति हो गई । सन् 1833 के क़ानून का भी नतीजा यह हुआ कि ××× जो नौकरियां पहले भारतवासियों के लिए थीं, वे अब यूरोपियनों को दे दी गईं ।

"××× भारतवासी चाहे कितने भी शिक्षित, योग्य और उपयुक्त क्यों न हों, उन्हें तमाम ऊंची और अधिक तनखाह वाली नौकरियों से अलग रखा जाता है । ××× 15 करोड़ की आबादी में से तीन या चार हजार को छोटी-छोटी नौकरियां मिल जाती हैं, जिनकी औसत तनखाह क़रीब 30 पौंड सालाना है । किंतु शासन के काम में, विश्वास और जिम्मेवारी के काम में, कोई वास्तविक हिस्सा भारतवासियों को नहीं दिया जाता ।

[इसके बाद यह दिखाया गया है कि जो व्यवहार अंगरेज यहां पर हिंदोस्तानियों के साथ कर रहे थे, उससे अच्छा व्यवहार वे अफ्रीका में वहां की हब्शी जातियों के साथ कर रहे थे ।]

"किंतु भारत में एक ऐसी क़ौम, जो उस समय सुसभ्य जीवन के समस्त धंधों में कुशल थी, जब कि हम कभी जंगलों में घूमा करते थे, अफ्रीक़ा की काली क़ौम से भी ज्यादा अभागी है और उनकी क़ौम को अयोग्य, असहाय और नालायक कह कर सदा के लिए उसी देश के अंदर नीच बना कर रखा जाता है, जिसे उनके पूर्वजों ने जगत भर में प्रसिद्ध कर रखा था।

"नवीं कसौटी—सार्वजनिक संतोष।

"क्या भारतवासी सन् 1833 के क़ानून की कार्रवाई से संतुष्ट हैं? यदि वे हों, तो बड़े आश्चर्य की बात है; और वे संतुष्ट नहीं हैं। वे बलवा नहीं करते; वे विरोध नहीं करते थे : वे भारतवासी सरकार के खिलाफ़ सिर नहीं उठाते; ××× क्योंकि अंगरेज़ी शासन के अधीन सरकार की ताक़त उनके मुकाबले में बहुत जबरदस्त और सुसंगठित है ×××।

"मद्रास की प्रजा शिकायत करती है कि उनके समाज का सारा ढांचा उलट-पुलट कर दिया गया, जिससे उनको हानि ही नहीं, बल्कि उनकी बरबादी है।

"वे शिकायत करते हैं कि नमक व्यापार पर, जो कि उनके फीके भात का एकमात्र मसाला है, और जिसके बिना न वे जी सकते हैं और न उनके जानवर, कम्पनी सरकार का ठेका है।

"वे शिकायत करते हैं कि उनसे न केवल शहर की दुकानों पर और सड़क के ऊपर की दुकानों और सायबानों पर ही टैक्स लिया जाता है, बल्कि उनके धंधों के हर औज़ार पर भी, यहां तक कि चाकुओं तक पर टैक्स लिया जाता है। उन्होंने पार्लियामेंट को लिखा है कि उन्हें चाकुओं पर जो टैक्स देना पड़ता है, वह कभी-कभी चाकुओं की क़ीमत के छहगुने से भी अधिक होता है।

वे शिकायत करते हैं कि शराब के ऊपर टैक्स वसूल करने के लिए सरकार जबरदस्ती लोगों को शराब पीने की आदत डाल रही है, जबकि हिन्दू और मुसलमान दोनों के धर्मग्रंथ शराब पीने का निषेध करते हैं।

"इसलिए यदि संतोष ही सुशासन की कसौटी हो तो, सन् 1833 का क़ानून पूरी तरह असफल रहा।

"दसवीं कसौटी—अंगरेज़ों द्वारा देश का संरक्षण।

"××× हिन्दोस्तान के बजट में हर साल घाटा पड़ता है, फिर भी कम्पनी के अंगरेज़ हिस्सेदारों को बारबार और ठीक ठीक $10\frac{1}{2}$ फीसदी मुनाफ़ा दिया जाता रहा है ×××।"*

(उस ज़माने की अंगरेज़ी हकूमत का अंगरेज़ों की ही ज़बानी यह ख़ासा सच्चा ख़ाका है।)

---

* *The Government of India since* 1834, by The India Reform Society of England, 1853.

सन् 1833 का क़ानून पास होने के बाद से भारत के विदेशी शासक और भी अधिक जोरों के साथ रही सही देशी रियासतों को अंगरेज़ी राज में मिलाने के प्रयत्नों में लग गए थे ।

नया ला मेम्बर, लार्ड मैकाले

सन् 1833 के कानून के अनुसार भारत के गवर्नर जनरल की कौंसिल में एक नया सदस्य बढ़ाया गया, जिसे ला मेम्बर कहते थे । ला मेम्बर का काम ब्रिटिश भारत की जनता के लिए कानून बनाना बतलाया गया । प्रसिद्ध अंगरेज़ विद्वान लार्ड मैकाले को पहला ला मेम्बर नियुक्त करके सन् 1833 में भारत भेजा गया । हिन्दोस्तान 'ताजीरात हिन्द' (भारतीय दंड विधान) यानी इंडियन पीनल कोड की रचना और हिन्दोस्तानियों में अंगरेज़ी शिक्षा के प्रचार, इन दोनों बातों का श्रेय मैकाले को ही दिया जाता है ।

मैकाले एक विद्वान, किंतु निर्धन अंगरेज़ था । उस समय के दूसरे अंगरेज़ों की तरह भारत आने में उसका मुख्य उद्देश्य भारत से धन कमाना था । उसने स्वयं अपने एक पत्र में लिखा है कि इंगलिस्तान के अंदर अपनी लेखनी द्वारा वह मुश्किल से दो सौ पौंड सालाना कमा सकता था । सन् 1834 में वह गवर्नर जनरल की कौंसिल का ला मेम्बर नियुक्त होकर भारत आया । इस नये पद के बारे में उसने 17 अगस्त, सन् 1833 को इंगलिस्तान में रहते हुए अपनी बहन के नाम एक पत्र लिखा कि ला मेम्बर का पद--

> **"बड़े मान और आमदनी का पद है । वेतन दस हजार पौंड सालाना है । जो लोग कलकत्ते से अच्छी तरह परिचित हैं, वहां उच्च से उच्च लोगों की श्रेणी के लोगों में मिलते रहे हैं और उच्च से उच्च सरकारी पदों पर नियुक्त रह चुके हैं, वे मुझे विश्वास दिलाते हैं कि मैं वहां पर पांच हज़ार पौंड सालाना में शान के साथ रह सकता हूं और अपना बाक़ी वेतन मय सूद के बचा सकता हूं । इसलिए मुझे आशा है कि केवल 39 साल की उम्र में जब कि मेरे जीवन की शक्तियां अपने शिखर पर होंगी, तीस हजार पौंड की रक़म लेकर, मैं इंगलिस्तान वापस आ सकूंगा । इससे अधिक धन की मुझे कभी इच्छा भी न हुई थी ।"**

इस दस हज़ार पौंड सालाना के अलावा भारत के ख़ज़ाने से लार्ड मैकाले को ला कमिश्नर की हैसियत से पांच हज़ार पौंड सालाना और दिए जाते थे । इतिहास लेखक विलसन ने साफ़ लिखा है कि कोई खास काम इस पद के लिए न था, जिसके लिए एक नए आदमी को लाकर इतनी बड़ी तनख़ाह दी जाती ।

भारत के धार्मिक और सामाजिक जीवन का नाश

लार्ड मैकाले का काम भारतवासियों के लिए कानून बनाना था । किंतु वह न भारतवर्ष की कोई भाषा जानता था और न भारतवासियों के इतिहास, उनके रस्मो-रिवाज इत्यादि से परिचित था । भारतवासियों से, भारत की धार्मिक और सामाजिक संस्थाओं से और सब भारतीय चीज़ों से उसे घृणा थी ।

मैकाले भारतवासियों को अंगरेज़ी शिक्षा देने और अंगरेज़ी के माध्यम से शिक्षा देने का पक्षपाती था । किंतु इसमें उसका उद्देश्य भारतवासियों का उपकार करना न

था। उसका खुला उद्देश्य था, भारतवासियों में से राष्ट्रीयता के भावों को मिटा कर अंगरेज़ी शासन को चिरस्थायी करना। सन् 1836 में अपने बाप के नाम एक पत्र में उसने लिखा कि—"मुझे पूरा विश्वास है कि यदि हमारी शिक्षा की योजनाओं के अनुसार काम होता रहा, तो आज से तीस साल के बाद बंगाल के बाइज़्ज़त लोगों में एक भी मूर्तिपूजक (हिंदू) न रह जाएगा।" इस पर 'दि इंडियन डेली न्यूज़' का अंगरेज़ सम्पादक लिखता है—

> **"××× लार्ड मैकाले की जीत वास्तव में भारतवासियों के धार्मिक और सामाजिक जीवन को नाश करने के खुले संकल्प की जीत थी।"***

इसके अतिरिक्त ब्रिटिश भारतीय सरकार को उस समय अपने विशाल साम्राज्य के लिए अनेक वफ़ादार और कुशल हिन्दोस्तानी बाबुओं की भी ज़रूरत थी।

ताज़ीरात हिन्द

लार्ड मैकाले के बनाए हुए कानून 'ताज़ीरात हिन्द' का जिक्र ऊपर किया जा चुका है। हिन्दोस्तान के अंदर अंगरेज़ों का शासन और आयरलैंड के अंदर अंगरेज़ों का शासन इन दोनों में बड़ी समानता है। इसी तरह के आयरलैंड के ताज़ीरात के क़ानून (आयरिश पीनल कोड) के बारे में बर्क ने लिखा है—

> **"आयरिश पीनल कोड एक सुसम्पादित और अपने सब हिस्सों की निगाह से होशियारी से लिखा हुआ ग्रंथ है। यह एक चतुर और पेचीदा यंत्र है और कभी किसी भी कुशाग्रही किंतु सदाचाररहित मनुष्य ने किसी क़ौम पर अत्याचार करने, उसे दरिद्र बनाने और उसे आचारभ्रष्ट करने और उसके अंदर से मनुष्यत्व तक का नाश कर देने के लिए इससे अधिक उपयुक्त यंत्र न रचा होगा।"** †

करीब-करीब यही बात लार्ड मैकाले के इंडियन पीनल कोड के बारे में कही जा सकती है। इस कानून का उद्देश्य ही भारतवासियों को निर्धन बनाना, उन्हें चरित्रभ्रष्ट करना, उनमें बेईमानी और मुकदमेबाज़ी की आदत डालना और उन्हें सर्वथा बरबाद करना था। मार्क्विस आफ हेस्टिंग्स ने सन् 1819 में डाइरेक्टरों के नाम एक पत्र लिखा था, जिसमें उसने विस्तार के साथ यह दिखलाया कि किस तरह सन् 1780 से लेकर उस समय तक नयी अंगरेज़ी अदालतों ने बंगाल की जायदादों को बरबाद कर दिया, देश के सुखी और समृद्ध किसानों को निर्धनता और दरिद्रता की बुरी से बुरी हालत तक पहुंचा दिया, उनके सदाचार का सत्यनाश कर दिया, पुरानी सामाजिक संस्थाओं को तोड़फोड़ डाला और भारतवासियों की परवशता को और भी बढ़ा दिया। लार्ड मैकाले के पीनल कोड ने इस स्थिति को सुधारने के स्थान पर उसे और भी अधिक ख़राब कर दिया। इस

---

*"Lord Macaulay's triumph ... was really the triumph of a deliberate intention to undermine the religious and social life of India."—*The Indian Daily News*, 29th March, 1909.

†"Well digested and well disposed in all its parts; a machine of wise and elaborate contrivance, and as well fitted for the oppression, impoverishment and degradation of a people, and the debasement in them of human nature itself, as ever proceeded from the perverted ingenuity of man."—Burke, on the Irish Penal Code.

क़ानून के अनेक दोषों को दरशाना यहां पर हमारे लिए अप्रासंगिक होगा। अनेक विद्वान् अंगरेज़ों की स्पष्ट सम्मतियां इस विषय में देखी जा सकती हैं। मुजरिमों को रिहाई का रास्ता दिखाना और निर्दोषों को फंसाना, सरकार के हाथ मज़बूत करना और प्रजा को असहाय बना देना, इस अनोखे क़ानून के मुख्य लक्षण हैं। संसार के किसी सभ्य देश में इतनी कड़ी सज़ाएं नहीं दी जातीं, जितनी ब्रिटिश भारत में। वास्तव में लार्ड मैकाले भारतवासियों को इंगलिस्तान की संपत्ति समझता था। उसने एक स्थान पर लिखा है—"हम जानते हैं कि भारतवर्ष को स्वतंत्र हकूमत नहीं दी जा सकती। किंतु इससे उतर कर एक चीज, यानी एक मजबूत और निष्पक्ष स्वेच्छा-शासन (तानाशाही), उसे मिल सकती है।"*

नये ला मेम्बर का काम था, भारतवासियों को क़ानून की सुनहरी ज़ंजीरों में जकड़ डालना, और यही मैकाले ने किया।

करीब बीस साल तक जितने अंगरेज़ भारत की कौंसिल के ला मेम्बर रहे, उन्हें कुल मिलाकर 35 लाख 68 हजार 805 रुपये भारत के निर्धन किसानों की टेंट से निकालकर दिए गए और इसके बदले में उन्होंने काम किया—अक्षरशः भारतवासियों में नैतिक प्लेग फैला कर उनके रहे सहे चरित्र का नाश करना।

---

*"We know that India cannot have a free government. But she may have the next best thing—a firm and impartial despotism."—Lord Macaulay.

छत्तीसवां अध्याय

भारतीय शिक्षा का सर्वनाश

अंगरेज़ों से पहले भारत में शिक्षा की अवस्था

अंगरेज़ों के आने से पहले सार्वजनिक शिक्षा और विद्या प्रचार की दृष्टि से भार संसार के अग्रतम देशों में गिना जाता था। 19वीं सदी के शुरू में और उसके कुछ बा तक भी यूरोप के किसी देश में शिक्षा का प्रचार इतना अधिक न था जितना भारत में, और न कहीं भी प्रतिशत आबादी के हिसाब से पढ़े-लिखों की तादाद इतनी अधि थी जितनी भारत में। उन दिनों यहां जनसामान्य को शिक्षा देने के लिए मुख्यतः चा तरह की संस्थाएं थीं :—(1) लाखों ब्राह्मण अध्यापक अपने-अपने घरों पर विद्यार्थि को रख कर शिक्षा देते थे। (2) सभी मुख्य-मुख्य नगरों में उच्च संस्कृत शिक्षा के लि 'टोल' या 'विद्यापीठ' क़ायम थीं। (3) उर्दू और फ़ारसी की शिक्षा के लिए जगह-जग मकतब और मदरसे थे, जिनमें लाखों हिंदू और मुसलमान विद्यार्थी साथ-साथ शिक्षा पा थे। (4) इन सबके अतिरिक्त देश के हर छोटे से छोटे गांव में गांव के सब बालकों शिक्षा के लिए कम से कम एक पाठशाला होती थी। जिस समय तक कि ईस्ट इंडि कम्पनी ने आकर भारत की हज़ारों साल पुरानी ग्राम पंचायतों को नष्ट नहीं कर डा उस समय तक गांव के सब बच्चों की शिक्षा का प्रबंध करना हर ग्राम पंचायत अप आवश्यक कर्त्तव्य समझती थी और सदैव उसका पालन करती थी।

इंगलिस्तान की पार्लियामेंट के प्रसिद्ध सदस्य केर हार्डी ने अपनी पुस्तक 'इंडि में लिखा है—

> "मैक्समूलर ने, सरकारी लेखों के आधार पर और एक मिशनरी रि के आधार पर जो बंगाल पर अंगरेज़ों का क़ब्ज़ा होने से पहले वहां की शिक्षा अवस्था के संबंध में लिखी गई थी, लिखा है कि उस समय बंगाल में 80,0 देशी पाठशालाएं थीं, यानी सूबे की कुल आबादी के हर चार सौ मनुष्यों के पीछे ए पाठशाला मौजूद थी। इतिहास लेखक लडलो अपने 'ब्रिटिश भारत के इतिहा में लिखता है कि—हर ऐसे हिन्दू गांव में, जिसका पुराना संगठन अभी तक क़ाय है, मुझे विश्वास है कि, आमतौर पर सब बच्चे लिखना पढ़ना और हिसाब कर जानते हैं; किंतु जहां कहीं हमने ग्राम पंचायत का नाश कर दिया है, जैसे बंग में, वहां ग्राम पंचायत के साथ-साथ गांव की पाठशाला भी लोप हो गई।"*

---

*"Max-Muller, on the strength of official documents and a missio report concerning education in Bengal prior to the British occupation, as that there were then 80,000 native schools in Bengal, or one for every 40 the population. Ludlow, in his 'History of British India' says that in e Hindoo Village which has retained its old form I am assured that the chi generally are able to read, write, and cipher, but where we have swept away village system as in Bengal there the village school has also disappeared." Keir Hardie in his work on India, p. 5.

प्राचीन भारतीय इतिहास के यूरोपियन विद्वानों में मैक्समूलर प्रामाणिक माना जाता है और लडलो भी एक प्रसिद्ध इतिहास लेखक था । जो बात जरमन मैक्समूलर ने बंगाल के बारे में कही है उसी का समर्थन अंगरेज़ लडलो ने सारे भारत के लिए किया है ।

प्राचीन भारत में शिक्षा का प्रचार

प्राचीन भारत के ग्रामवासियों की शिक्षा के संबंध में सन् 1823 की कम्पनी की एक सरकारी रिपोर्ट में लिखा है—

> "शिक्षा की दृष्टि से संसार के किसी भी दूसरे देश में किसानों की हालत इतनी ऊंची नहीं है जितनी ब्रिटिश भारत के अनेक भागों में ।"*

भारत की शिक्षा प्रणाली

यह दशा तो उस समय शिक्षा के फैलाव की थी । अब रही शिक्षा देने की प्रणाली । इतिहास से पता चलता है कि उन्नीसवीं सदी के शुरू में डाक्टर एण्ड्रू बेल नामक एक प्रसिद्ध अंगरेज़ शिक्षा प्रेमी ने इस देश से इंगलिस्तान जाकर वहां पर अपने देश के बालकों को भारत की प्रणाली के अनुसार शिक्षा देना शुरू किया । 3 जून, सन् 1814 को कम्पनी के डाइरेक्टरों ने बंगाल के गवर्नर जनरल के नाम एक पत्र भेजा, जिसमें लिखा है—

> **"शिक्षा का जो तरीक़ा बहुत पुराने समय से भारत में वहां के आचार्यों के अधीन जारी है उसकी सबसे बड़ी तारीफ यही है कि रेवरेण्ड डाक्टर बेल के अधीन,)जो मद्रास मे पादरी रह चुका है, वही तरीक़ा इस देश (इंगलिस्तान) में भी प्रचलित किया गया है ; अब हमारी राष्ट्रीय संस्थाओं में इसी तरीक़े के अनुसार शिक्षा दी जाती है, क्योंकि हमें विश्वास है कि इससे भाषा का सिखाना बहुत सरल और सीखना बहुत सुगम हो जाता है ।**
>
> **"कहा जाता है कि हिन्दुओं की इस अत्यन्त प्राचीन और लाभदायक संस्था को सल्तनतों के उलट फेर कोई हानि नहीं पहुंचा सके × × × ।"†**

आजकल की पाश्चात्य शिक्षा प्रणाली में जिस चीज को 'म्यूचुअल ट्यूशन' कहा जाता है वह पश्चिम के देशों ने भारत से ही सीखी थी ।

---

* "......the peasantry of few other countries would bear a comparison as to their state of education with those of many parts of British India"—Report of the Select Committee on the Affairs of the East India Company, vol. i, p. 409, published 1832.

† The mode of instruction that from time immemorial has been practised under these masters has received the highest tribute of praise by its adoption in this country, under the direction of the Reverend Dr. Bell, formerly chaplain in Madras, and it has now become the mode by which education is conducted in our national establishment, from a conviction of the facility it affords in the acquisition of language by simplifying the process of instruction.

"This venerable and benevolent institution of the Hindoos is represented to have withstood the shock of revolutions ... "—Letter from the Court of Directors to the Governor-General in Council of Bengal; dated 3rd June, 1814.

कम्पनी-शासन में भारतीय शिक्षा का ह्रास

भारत के जिस-जिस प्रांत में कम्पनी का शासन जमता गया उस उस प्रांत से ही यह हज़ारों साल पुरानी शिक्षा प्रणाली मिटती चली गई । कम्पनी के शासन से पहले भारत में शिक्षा की अवस्था और कम्पनी का पदार्पण होते ही एक सिरे से उस शिक्षा के सर्वनाश दोनों का कुछ अनुमान बेलारी ज़िले के अंगरेज़ कलेक्टर, ए० डी० कैम्पवेल, की सन् 1823 की एक रिपोर्ट से किया जा सकता है । कैम्पवेल लिखता है—

> "जिस व्यवस्था के अनुसार भारत की पाठशालाओं में बच्चों को लिखना सिखाया जाता है और जिस ढंग से ऊंचे दर्जे के विद्यार्थी नीचे दर्जे के विद्यार्थियों को शिक्षा देते हैं, और साथ-साथ अपना ज्ञान भी पक्का करते रहते हैं, व सारी प्रणाली निस्सन्देह प्रशंसनीय है और इंगलिस्तान में उसका जो अनुसरण किया गया है उसके सर्वथा योग्य है ।"

आगे चल कर कम्पनी के शासन में भारतीय शिक्षा की अवनति और उसके कारणों को बयान करते हुए कैम्पबेल लिखता है—

> "इस समय असंख्य लोग ऐसे हैं जो अपने बच्चों को इस शिक्षा का ला नहीं पहुंचा सकते, × × × मुझे कहते हुए दुख होता है कि इसका कारण यह कि सारा देश धीरे-धीरे निर्धन होता जा रहा है । हाल में जब से हिन्दोस्तान के हुए सूती कपड़ों की जगह इंगलिस्तान के बने हुए कपड़ों को इस देश में प्रचलि किया गया है तब से यहां के कारीगरों के लिए जीविका निर्वाह के साधन बहुत क हो गए हैं । हमने अपनी बहुत सी पलटनें अपने इलाक़ों से हटा कर उन देशी राजाओं के दूर-दूर के इलाक़ों में भेज दी हैं, जिनके साथ हमने सन्धियां की हैं । हाल ही इससे भी अनाज की मांग पर बहुत असर पड़ा है । देश का धन पुराने समय के दे दरबारों और देशी कर्मचारियों के हाथों से निकल कर यूरोपियनों के हाथों में चल गया है । देशी दरबार और उनके कर्मचारी उस धन को भारत में ही उदार के साथ खर्च किया करते थे; इसके विपरीत नये यूरोपियन कर्मचारियों को हम क़ानूनन आज्ञा दे दी है कि वे अस्थायी तौर पर भी इस धन को भारत में खर्च करें । ये यूरोपियन कर्मचारी देश के धन को प्रतिदिन ढो ढोकर बाहर ले जा र हैं, इसके कारण भी यह देश दरिद्र होता जा रहा है । सरकारी लगान जिस कड़ा के साथ वसूल किया जाता है उसमें भी किसी तरह की ढिलाई नहीं की गई, जिस प्रजा के इस कष्ट में कोई कमी हो सकती । मध्यम श्रेणी और निम्न श्रेणी के अधि कांश लोग अब इस योग्य नहीं रहे कि अपने बच्चों की शिक्षा का खर्च बरदाश कर सकें । इसके विपरीत, ज्योंही उनके बच्चों के कोमल अंग थोड़ा बहुत मेहन कर सकने के योग्य होते हैं, माता-पिता को अपनी जिन्दगी की आवश्यकताएं पू करने के लिए उन बच्चों से अब मेहनत मजदूरी करानी पड़ती है ।"

उद्योगधन्धों और शिक्षा का ह्रास

अर्थात् उन्नीसवीं शताब्दी के शुरू में भारत की प्राचीन सार्वजनिक शिक्षा प्रणा के नाश का एक मुख्य कारण यह था कि प्राचीन भारतीय उद्योगधंधों के सर्वनाश औ

कम्पनी की लूट और अत्याचारों के कारण देश उस समय तेज़ी के साथ निर्धन होता जा रहा था और देश के उन करोड़ों नन्हे-नन्हे बालकों को, जो पहले पाठशालाओं में शिक्षा पाते थे, अब अपना और अपने मां बाप का पेट पालने के लिए मेहनत मज़दूरी में मां बाप का हाथ बटाना पड़ता था।

और आगे चल कर अपने से पहले की हालत और अपने समय की शिक्षा की हालत की तुलना करते हुए कैम्पवेल लिखता है—

"इस जिले की करीब दस लाख आबादी में से इस समय सात हजार बच्चे भी शिक्षा नहीं पा रहे हैं, जिससे पूरी तरह जाहिर है कि शिक्षा में निर्धनता के कारण कितनी अवनति हुई है। बहुत से ग्रामों में, जहां पहले पाठशालाएं मौजूद थीं, वहां अब कोई पाठशाला नहीं है और बहुत से दूसरे ग्रामों में जहां पहले बड़ी बड़ी पाठशालाएं थीं वहां अब केवल अत्यन्त धनाढ्य लोगों के थोड़े से बालक शिक्षा पाते हैं, दूसरे लोगों के बालक निर्धनता के कारण पाठशाला नहीं जा सकते।

"इस जिले की अनेक पाठशालाओं की, जिनमें देशी भाषाओं में लिखना पढ़ना और हिसाब सिखाया जाता ह, जैसा कि भारत में सदा से होता रहा है, इस समय यह दशा है। × × × विद्या × × × कभी किसी भी देश में राज दरबार की सहायता के बिना नहीं बढ़ी, और भारत के इस भाग में विज्ञान को देशी दरबारों से जो सहायता और प्रोत्साहन पहले दिया जाता था वह अंगरेज़ी राज के आने के समय से, बहुत दिन हुए, बन्द कर दिया गया है।

"इस जिले में अब घटते-घटते शिक्षा सम्बन्धी 533 संस्थाएं रह गई हैं और मुझे यह कहते लज्जा आती है कि इनमें से किसी एक को भी अब (अंगरेज़) सरकार की ओर से किसी तरह की सहायता नहीं दी जाती।"

प्राचीन पाठशालाओं की व्यवस्था

इसके बाद प्राचीन भारत में इन असंख्य पाठशालाओं के ख़र्च की व्यवस्था को बयान करते हुए कैम्पवेल लिखता है—

"इसमें कोई सन्देह नहीं कि पुराने समय में, विशेषकर हिन्दुओं के शासन काल में, विद्या प्रचार की सहायता के लिए बहुत बड़ी रक़में और बड़ी-बड़ी जागीरें राज की ओर से बंधी हुई थीं।*

"× × × पहले समय में राज की आमदनी का एक बहुत बड़ा हिस्सा विद्या प्रचार को प्रोत्साहन और उन्नति देने में खर्च किया जाता था, जिससे राज का भी मान बढ़ता था। किन्तु हमारे शासन में यहां तक अवनति हुई है कि राज की आमदनी से अब उलटा अज्ञान को उन्नति दी जाती है। पहले जो जबरदस्त सहायता राज की ओर से विज्ञान को दी जाती थी उसके बन्द हो जाने के कारण अब विज्ञान केवल थोड़े से दानशील व्यक्तियों की आकस्मिक उदारता के सहारे

ज्यों-त्यों कर जीवित है । भारत के इतिहास में विद्या के इस तरह के पतन क
दूसरा समय दिखा सकना कठिन है×××।"*

---

*"The economy with which children are taught to write in the nat
schools and the system by which the more advanced scholars are caus
to teach the less advanced, and at the same time to confirm their ow
knowledge, is certainly admirable, and well deserved the imitation it h
received in England. . . .

". . . there are multitudes who cannot even avail themselves of the adva
tages of the system . . .

"I am sorry to state, that this is ascribable to the gradual but gener
impoverishment of the country. The means of the manufacturing classes ha
been of late years greatly diminished by the introduction of our own Engl
manufacturers in lieu of the Indian cotton fabrics. The removal of many of
troops from our own territories to the distant frontiers of our new
subsidized allies has also, of late years affected the demand for grain;
transfer of the capital of the country from the native government and th
officers, who liberally expanded it in India, to Europeans, restricted by law fr
employing if even temporarily in India, and daily draining it from the la
has likewise tended to this effect, which has not been alleviated by a less ri
enforcement of the revenue due to the state. The greater part of the middl
and lower classes of the people are now unable to defray the expenses incid
upon the education of their offspring, while their necessities require the as
tance of their children as soon as their tender limbs are capable of the small
labour.

"......of nearly a million of souls in this District, not 7,000 are now
school, a proportion which exhibits but too strongly the result above stated.
many villages where formerly there were large schools, there are now no
and in many others where there were large schools, now only a few children
the most opulent are taught, others being unable from poverty to attend..

"Such is the state in this District of the various schools in which read
writing and arithmetic are taught in the vernacular dialects of the country,
has been always usual in India......learning......has never flouri
in any country except under the encouragement of the ruling power, and t
countenance and support once given to science in this part of India has l
been withheld.

"Of the 533 institutions for education now existing in this District, I
ashamed to say, not one now derives any support from the State......

"There is no doubt, that in former times, especially under the Hind
Governments, very large grants, both in money and in land, were issued f
the support of learning......

"......considerable alienations of revenue, which formerly did hon
to the state by upholding and encouraging learning, have deteriora
under our rule into the means of supporting ignorance; whilst science, dese
by the powerful aid she formerly received from Government, has often be
reduced to beg her scanty and uncertain meal from the chance benevolence
charitable individuals; and it would be difficult to point out any period in t
history of India when she stood more in need......"—The Report of A
Campbell, Collector of Bellary, dated 17th August, 1823, from the Report
the Select Committee etc., vol. i, published 1832.

यह सारी कहानी मद्रास प्रांत की है। ठीक इसी तरह की कहानी, महाराष्ट्र और बम्बई प्रांत के विषय में, एलफ़िन्सटन ने सन् 1824 की एक सरकारी रिपोर्ट में बयान की है, किंतु उसे दोहराना व्यर्थ है।

साहित्यिक अवनति

एक और अंगरेज़ विद्वान वाल्टर हैमिल्टन ने सन् 1828 में सरकारी रिपोर्ट के आधार पर लिखा था —

"भारतवासियों के अन्दर साहित्य और विज्ञान की दिन-प्रतिदिन अवनति होती जा रही है। विद्वानों की तादाद घटती जा रही है और जो लोग अभी तक विद्याध्ययन करते हैं उनमें भी अध्ययन के विषय बेहद कम होते जा रहे हैं। दर्शन विज्ञान का पढ़ना लोगों ने छोड़ ही दिया है; और सिवाय उन विद्याओं के, जिनका सम्बन्ध विशेष धार्मिक कर्मकाण्डों या फलित से है, और किसी भी विद्या का अब लोग अध्ययन नहीं करते। साहित्य की इस अवनति का मुख्य कारण यह मालूम होता है कि इससे पहले देशी राज में राजा लोग, सरदार लोग और धनवान लोग सब विद्या प्रचार को प्रोत्साहन और सहायता दिया करते थे। वे देशी दरबार अब सदा के लिए मिट चुके और अब वह प्रोत्साहन और सहायता साहित्य को नहीं दी जाती।"*

सारांश यह कि जो कहानी कैम्पबेल ने मद्रास प्रांत की बयान की है वही कहानी वास्तव में सारे ब्रिटिश भारत की थी।

भारतीय शिक्षा के सर्वनाश के कारण

प्राचीन शिक्षा प्रणाली और शिक्षा संस्थाओं के सर्वनाश के चार मुख्य कारण गिनाए जा सकते हैं—

(1) भारतीय उद्योगधन्धों के नाश और कम्पनी की लूट से देश की बढ़ती हुई दरिद्रता ;

(2) प्राचीन ग्राम पंचायतों का नाश और उस नाश के कारण लाखों ग्राम पाठशालाओं का अंत ;

(3) प्राचीन हिंदू और मुसलमान नरेशों की ओर से शिक्षा सम्बंधी संस्थाओं को जो आर्थिक सहायता और जागीरें बंधी हुई थीं, कम्पनी के राज में उनका छिन जाना ; और

(4) नये अंगरेज़ शासकों की ओर से भारतवासियों की शिक्षा का विधिवत विरोध।

इस चौथे कारण को अधिक विस्तार के साथ बयान करना ज़रूरी है। सन् 1757 से लेकर पूरे सौ साल तक लगातार बहस होती रही कि भारतवासियों को शिक्षा देना अंगरेज़ों की सत्ता के लिए हितकर है या अहितकर। शुरू के दिनों में करीब करीब सब अंगरेज़ शासक भारतवासियों को शिक्षा देने के विरोधी थे।

---

*Walter Hamilton in 1828, Ibid, vol. i, p. 203.

जे० सी० मार्शमैन ने 15 जून, सन् 1853 को पार्लियामेंट की सिलेक्ट कमेटी सामने गवाही देते हुए कहा था—

“भारत में अंगरेज़ी राज के क़ायम होने के बहुत दिनों बाद तक भार वासियों को किसी तरह की भी शिक्षा देने का प्रबल विरोध किया जाता रहा।”

मार्शमैन बयान करता है कि सन् 1792 में जब ईस्ट इंडिया कम्पनी के लिए न चार्टर ऐक्ट पास होने का समय आया तो पार्लियामेंट के एक सदस्य विलबरफ़ोर्स ने न क़ानून में एक धारा इस तरह की जोड़नी चाही जिसका ज़ाहिरा अभिप्राय थोड़े से भार वासियों की शिक्षा का प्रबंध करना था। इस पर पार्लियामेंट के सदस्यों और कम्पनी हिस्सेदारों ने विरोध किया और विलबरफ़ोर्स को अपनी तजवीज़ वापस ले लेनी पड़ी

मार्शमैन लिखता है—

“उस अवसर पर कम्पनी के एक डाइरेक्टर ने कहा कि—‘हम लोग अप इसी मूर्खता से अमरीका हाथ से खो बैठे हैं, क्योंकि हमने उस देश में स्कूल औ कालेज क़ायम हो जाने दिए, अब फिर भारत में उसी मूर्खता को दोहराना ठी नहीं है।’××× इसके बीस साल बाद तक, यानी सन् 1813 तक भारतवासि को शिक्षा देने के विरुद्ध ये ही भाव इंगलिस्तान के शासकों के दिलों में बने रहे।”

जातपांत से अंगरेज़ों को लाभ

सन् 1813 में विलायत के अंदर सर जान मैलकम ने, जो उन विशेष अनुभ नीतिज्ञों में से था जिन्होंने 19वीं सदी के शुरू में भारत के अंदर अंगरेज़ी साम्राज्य विस्तार दिया, ब्रिटिश पार्लियामेंट की जांच कमेटी के सामने गवाही देते हुए कहा—

“ ××× इस समय हमारा साम्राज्य इतनी दूर तक फैला हुआ है जो असाधारण ढंग की हकूमत हमने उस देश में क़ायम की है उसके बने रहने लिए केवल एक बात का हमें सहारा है, वह यह कि जो बड़ी-बड़ी जातियां इस सम अंगरेज़ सरकार के अधीन हैं वे सब एक दूसरे से अलग-अलग हैं और जातियों भी फिर अनेक जातियां और उप जातियां हैं; जब तक ये लोग इस तरह विभाजि रहेंगे, तब तक कोई भी बलवा हमारी सत्ता को नहीं हिला सकता। ××× जितनी-जितनी लोगों में एकता पदा होती जाएगी और उनमें वह बल आता जाएग

---

*“For a considerable time after the British Government had been est lished in India, there was great opposition to any system of instruction for t natives”—J. C. Marshman, in his evidence before the Select Committee of t House of Lords appointed to enquire into the affairs of the East India Compa 15th June, 1853.

†“On that occasion, one of the Directors stated that we had just America from our folly, in having allowed the establishment of schools colleges, and that it would not do for us to repeat the same act of folly regard to India; . . . For twenty years after that period down to the y 1813, the same feeling of opposition to the education of the natives contin to prevail among the ruling authorities in this country.”—J. C. Marshm 15th June, 1853, Ibid.

जिससे वे वर्तमान अंगरेजी सरकार की सत्ता को अपने ऊपर से हटा कर फेंक सके, उतना-उतना ही हमारे लिए शासन कठिन होता जाएगा।"

इसलिए—

"मेरी राय है कि कोई इस तरह की शिक्षा, जिससे हमारी भारतीय प्रजा के इस समय के जातपांत के भेद धीरे-धीरे टूटने की सम्भावना हो, या जिसके जरिए उनके दिलों से यूरोपियनों का आदर कम हो, अंगरेजी राज के राजनैतिक दल को नहीं बढ़ा सकती × × ×।"*

जाहिर है कि सर जान मैलकम भारतवासियों को सदा के लिए जातपांत और मत-मतांतरों के भेदों में फंसाए रखना, आपस में एक दूसरे को लड़ाए रखना और उन्हें अशिक्षित रखना अंगरेजी राज की सलामती के लिए आवश्यक समझता था।

सन् 1813 की मंजूरी

सन् 1813 में इंगलिस्तान की पार्लियामेंट ने जो चार्टर ऐक्ट पास किया, उसमें एक धारा यह भी थी कि—"ब्रिटिश भारत की आमदनी की बचत में से गवर्नर जनरल को इस बात का अधिकार होगा कि हर साल एक लाख रुपये तक साहित्य की उन्नति और पुनरुज्जीवन के लिए और विद्वान भारतवासियों को प्रोत्साहन देने के काम में लाए।" किंतु यह समझना भूल होगी कि यह एक लाख रुपये सालाना की रक़म वास्तव में भारतवासियों की शिक्षा के लिए मंजूर की गई थी। इस मंजूरी के साथ-साथ जो पत्र डाइरेक्टरों ने 3 जून, सन् 1814 को गवर्नर जनरल के नाम भेजा उसमें साफ़ लिखा है कि यह रक़म "राजनैतिक दृष्टि से भारत के साथ अपने सम्बंध को मजबूत रखने के लिए", "बनारस" और एक दो और स्थानों के "पंडितों को देने के लिए", "अपनी ओर विचारवान भारतवासियों के हृदय के भावों का पता लगाने के लिए", "प्राचीन संस्कृत साहित्य का अंगरेजी में अनुवाद कराने के लिए", "संस्कृत पढ़ने की इच्छा रखने वाले अंगरेज़ों को सहायता देने के लिए", "उस समय की रही सही भारतीय शिक्षा संस्थाओं का पता लगाने के लिए", और "अपने साम्राज्य के स्थायित्व की दृष्टि से अंगरेजों और भारतीय नेताओं में अधिक

---

*"......In the present extended state of our Empire, our security for preserving a power of so extraordinary a nature as that we have established, rests upon the general division of the great communities under the Government, and their sub-division into various castes and tribes; while they continued divided in this manner, no insurrection is likely to shake the stability of our power.........

* * *

"......we shall always find it difficult to rule in proportion as it (the Indian community) obtains union and possesses the power of throwing off that subjection in which it is now placed to the British Government."

"......I do not think that the communication of any knowledge, which tended gradually to do away the subsisting distinctions among our native subjects or to diminish that respect which they entertain for Europeans' could be said to add to the political strength of the English Government......"—Sir John Malcolm, before the Parliamentary Committee of 1813.

मेलजोल पैदा करने के उद्देश्य से" मंजूर की गई है। इसी पत्र में यह भी साफ़ लिखा कि इस रक़म की मदद से कोई "सार्वजनिक कालेज न खोले जाएं।"*

लिओनेल स्मिथ का डर

भारतवासियों की शिक्षा की ओर अंगरेज़ शासकों का विरोध इसके बहुत बाद तक बराबर जारी रहा। सन् 1831 की जांच के समय, सर जान मैलकम के साल पहले के विचारों को दोहराते हुए, मेजर जनरल सर लिओनेल स्मिथ ने कहा—

> "शिक्षा का नतीजा यह होगा कि वे सब साम्प्रदायिक और धार्मिक पक्षपात जिनके द्वारा हमने अभी तक मुल्क को वश में रखा है——और हिन्दू मुसलमानों को एक दूसरे से लड़ाए रखा है, इत्यादि——दूर हो जाएंगे; शिक्षा का नतीजा यह हो कि इन लोगों के दिमाग खुल जाएंगे और उन्हें अपनी विशाल शक्ति का प लग जाएगा।"†

अंगरेज़ी राज के लिए शिक्षा की आवश्यकता

किंतु 18वीं शताब्दी के अंत से ही इस मामले में अंगरेज़ शासकों के विचारों अंतर पैदा होना शुरू हो गया। कारण यह था कि धीरे-धीरे अंगरेज़ों को भारत के दो विशेष कठिनाइयां अनुभव होने लगीं। (1) चूंकि शिक्षित भारतवासियों की ताद दिन-दिन घटती जा रही थी, इसलिए अंगरेजों को अपने सरकारी महकमों और अदालतों के लिए योग्य हिंदू और मुसलमान कर्मचारियों की कमी महसूस होने ल जिनके बिना उन महकमों और अदालतों का चल सकना असंभव था; और (2) थोड़े से इस तरह के भारतवासियों की भी आवश्यकता थी, जिनके ज़रिए भारतीय जन के हृदय के भावों का उन्हें पता लगता रहे और जिनकी मदद से वे जनता के भावों अपनी ओर मोड़ सकें।

सन् 1830 की पार्लियामेन्टरी कमेटी की रिपोर्ट में इन दोनों आवश्यकताओं बार-बार जिक्र आता है और साफ़ लिखा है कि कलकत्ते का 'मुसलमानों का मदरसा' औ बनारस का 'हिन्दू संस्कृत कालेज', दोनों अठारहवीं सदी के अन्त में ठीक इन्हीं उद्देश्यों क़ायम किए गए थे। इसी उद्देश्य से सन् 1821 में पूना का डेकन कालेज, सन् 1835 कलकत्ते का मेडिकल कालेज और सन् 1847 में रुड़की का इंजीनियरिंग का कायम हुए।

डाइरेक्टरों ने 5 सितम्बर, सन् 1827 के एक पत्र में गवर्नर जनरल को लि कि इस शिक्षा का धन—"उच्च और मध्यम श्रेणी के उन भारतवासियों के ऊपर किया जाए, जिनमें से आपको अपने शासन के कामों के लिए सबसे अधिक योग्य दे

Affairs of the East India Company, published 1832, vol. i, pp. 446, 4

†"The effect of education will be to do away with all the prejudices sects and religions by which we have hitherto kept the country—the Mussalm against Hindoos, and so on; the effect of education will be to expand minds, and show them their vast power."—Major-General Sir Lionel Sm K. C. B., the enquiry of 1831.

CC-0. In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust. Funding IKS-MoE Grant-2

एजेण्ट मिल सकते हैं, और जिनका अपने बाकी देशवासियों के ऊपर सबसे अधिक प्रभाव है।"*

1833 में दस लाख की मंजूरी

मतलब यह कि बिना पढ़े लिखे भारतवासियों की सहायता के केवल अंगरेज़ों के बल ब्रिटिश भारतीय साम्राज्य का चल सकना असम्भव था। इसीलिए थोड़े बहुत भारतवासियों को किसी न किसी तरह की शिक्षा देना भारत के विदेशी शासकों के लिए अनिवार्य हो गया। इस काम के लिए सन् 1813 वाली एक लाख रुपये सालाना की मंजूरी को सन् 1833 में बढ़ा कर दस लाख रुपये सालाना कर दिया गया, क्योंकि इन बीस साल के अन्दर भारत का बहुत अधिक भाग विदेशी राज के रंग में रंगा जा चुका था।

सन् 1757 से लेकर 1857 तक भारतवासियों की शिक्षा के बारे में अंगरेज़ शासकों के सामने मुख्य प्रश्न केवल यह था कि भारतवासियों को शिक्षा देना साम्राज्य के स्थायित्व की दृष्टि से हितकर है या अहितकर, और यदि हितकर या आवश्यक है तो उन्हें किस तरह की शिक्षा देना उचित है।

ईसाई धर्म प्रचार

उस समय अनेक अंगरेज़ नीतिज्ञ भारतवासियों में ईसाई धर्म का प्रचार करने के पक्षपाती थे। इन लोगों को ईसाई धर्मग्रन्थों का भारतीय भाषाओं में अनुवाद कराने, इंगलिस्तान से आने वाले पादरियों को सहायता देने और सरकार की ओर से मिशन स्कूलों को आर्थिक मदद करने की आवश्यकता अनुभव हो रही थी। यह भी एक कारण था कि जिससे अनेक अंगरेज़ भारतवासियों को शिक्षा देने के पक्ष में हो गए। सन् 1813 के बाद की बहसों में इस बात का बार-बार जिक्र आता है।

शिक्षित भारतवासियों से डर

सन् 1853 में ईस्ट इण्डिया कम्पनी के लिए अन्तिम चार्टर ऐक्ट पास हुआ। उस समय भारतवासियों की शिक्षा के प्रश्न पर अनेक अनुभवी अंगरेज़ नीतिज्ञों और विद्वानों की गवाहियां जमा की गईं। इन गवाहियों में से नमूने के तौर पर दोनों पक्षों की एक-एक या दो-दो गवाहियां नकल करना काफी है।

4 अगस्त, सन् 1853 को मेजर रालैण्डसन ने, जो 17 साल तक मद्रास प्रान्त के कमाण्डर-इन-चीफ के यहां फ़ारसी अनुवादक रह चुका था और वहां की शिक्षा कमेटी का मन्त्री भी रह चुका था, ब्रिटिश पार्लियामेण्ट की कमेटी के सामने यह गवाही दी—

प्रश्न—आपने यह राय प्रकट की है कि भारतवासियों को शिक्षा देने का नतीजा यह होता है कि वे अंगरेज सरकार के विरुद्ध हो जाते हैं। क्या आप यह

---

*"...with the superior and middle classes of the natives, from whom the native agents whom you have occasion to employ, in the functions of Government are most fitly drawn, and whose influence on the rest of their countrymen is the most extensive."—Letter from the Court of Directors to the Governor-General in Council, dated 5th September, 1827, Ibid, p. 490.

समझाएंगे कि इसका कारण क्या है और सरकार की ओर उनकी शत्रुता किस ढंग की और कैसी होती है?

उत्तर—मेरा अनुभव यह है कि भारतवासियों को ज्यों-ज्यों ब्रिटिश भारतीय इतिहास के भीतरी हाल का पता लगता है और आमतौर पर यूरोप के इतिहास का ज्ञान होता है, त्यों-त्यों उनके मन में यह विचार उत्पन्न होता है कि भारत जैसे एक विशाल देश का मुट्ठी भर विदेशियों के कब्जे में होना एक बहुत बड़ा अन्याय है; इससे स्वभावतः उनके मन में यह इच्छा उत्पन्न हो जाती है कि वे अपने देश को इस विदेशी शासन से स्वतन्त्र करने में सहायक हों; और चूंकि इस विचार को दूर करने वाली कोई बात नहीं होती और न उनमें वफ़ादारी का भाव ही पक्का होता है, इसलिए ब्रिटिश सरकार की ओर द्रोह का भाव इन लोगों में पैदा हो जाता है ।××× मैंने देखा है कि हिन्दुओं और मुसलमानों, दोनों में यह भाव मौजूद है और मुसलमानों में अधिक है ।××× खासकर जब ये लोग ब्रिटिश साम्राज्य के रहस्य को जान जाते हैं तो उनके दिलों में असन्तोष का भाव पैदा हो जाता है और आशा जाग उठती है ××× ।*

इसी प्रश्नोत्तर में यह भी साफ़ सुझाया गया कि यदि शिक्षा के साथ भारतवासियों के दिलों में यह भय उत्पन्न करने का भी प्रयत्न किया जाए कि यदि अंगरेज़ भारत से चल गए तो उत्तर की दूसरी जातियां आकर भारत पर राज करने लगेंगी या भारत में अराजकता फैल जाएगी, तो इसका नतीजा कहां तक हितकर होगा ।

कुछ विपरीत विचार

अनेक अंगरेज़ों के विचार मेजर रालैण्डसन के विचारों से मिलते थे । किन्तु कुछ के विचार इसके विपरित थे । उनका खयाल था कि अशिक्षित भारतवासी शिक्षित भारतवासियों की अपेक्षा विदेशी शासन के लिए अधिक खतरनाक होते हैं और भारतवासियों को केवल पश्चिमी शिक्षा देकर ही उन्हें राष्ट्रीयता यानी भारतीयता के भावों से दूर रखा जा सकता है और विदेशी राज के लिए उपयोगी तन्त्र बनाया जा सकता है। प्रसिद्ध नीतिज्ञों में से सर फ्रेडरिक हैलिडे की गवाही, जो बंगाल का पहला लेफ्टिनेण्ट गवर्नर था और मार्शमैन की गवाही इसी मतलब की थी ।

पूर्वी और पश्चिमी शिक्षा पर बहस

एक और महत्वपूर्ण प्रश्न जो 19वीं शताब्दी के शुरू से भारत के उन अंगरेज़ शासकों के सामने आया जो भारतवासियों को शिक्षा देने के पक्ष में थे, यह था कि किस तरह की शिक्षा देना अधिक उपयोगी होगा । दो अलग-अलग विचारों के लोग उस समय के अंगरेज़ों में मिलते हैं । एक वे जो भारतवासियों को प्राचीन भारतीय साहित्य, भारतीय विज्ञान और संस्कृत, फ़ारसी, अरबी और देशी भाषाएं पढ़ाने के पक्ष में थे और दूसरे वे जो उन्हें अंगरेज़ी भाषा, पश्चिमी साहित्य और पश्चिमी विज्ञान की शिक्षा देना अपने लिए अधिक हितकर समझते थे । पहले विचार के लोगों को 'ओरियंटलिस्ट' और दूसरे

**Sixth Report from the Select Committee on Indian Territories,* 1853, pp. 155-57.

विचार के लोगों को 'आक्सिडेंटलिस्ट' कहा जाता है। अनेक वर्षों तक इन दोनों विचार के अंगरेज़ों में खूब वाद-विवाद होता रहा। इसी बहस के दिनों में सन् 1834 में भारत के अंदर लार्ड मैकाले का आगमन हुआ, जिसके चरित्र का थोड़ा-सा जिक्र हम पिछले अध्याय में कर आए हैं। मैकाले से पहले, करीब 12 साल तक, इस प्रश्न के ऊपर बहुत तीव्र वाद-विवाद होता रहा। मैकाले के विचारों का प्रभाव इस प्रश्न पर निर्णायक साबित हुआ। मैकाले भारतवासियों को प्राचीन भारतीय साहित्य की शिक्षा देने के विरुद्ध और उन्हें अंगरेज़ी भाषा, अंगरेज़ी साहित्य और अंगरेज़ी विज्ञान सिखाने के पक्ष में था। मैकाले का निर्णय भारतवासियों के लिए अंत में हितकर रहा हो या अहितकर, किंतु मैकाले का अपना उद्देश्य केवल यह था कि उच्च श्रेणी के भारतवासियों में राष्ट्रीयता के भावों को उत्पन्न होने से रोका जाए और उन्हें अंगरेज़ी सत्ता के चलाने के लिए उपयोगी तंत्र बनाया जाए। अपने पक्ष का समर्थन करते हुए मैकाले ने एक स्थान पर लिखा है—

> **"हमें भारत में इस तरह की श्रेणी पैदा कर देने का भरसक प्रयत्न करना चाहिए जो कि हमारे और उन करोड़ों भारतवासियों के बीच, जिन पर हम शासन करते हैं, एक दूसरे को समझाने बुझाने का काम दे सकें। ये लोग ऐसे होने चाहिए जो कि केवल खून और रंग की दृष्टि से हिन्दोस्तानी हों, किन्तु जो अपनी रुचि, भाषा, भावों और विचारों की दृष्टि से अंगरेज़ हों।"***

बेंटिक का फ़ैसला

गवर्नर जनरल लार्ड विलियम बेंटिक मैकाले का बड़ा दोस्त और उसके समान विचारों का था। मैकाले की इस रिपोर्ट के ऊपर 7 मार्च, सन् 1835 को बेंटिक ने आज्ञा दे दी कि—

> **"जितना धन शिक्षा के लिए मंजूर किया जाए उसका सबसे अच्छा उपयोग यही है कि उसे केवल अंगरेज़ी शिक्षा के ऊपर खर्च किया जाए।"** †

मैकाले के विचारों और उन पर लार्ड बेंटिक के फ़ैसले के नतीजे को बयान करते हुए 5 जुलाई, सन् 1853 को प्रसिद्ध इतिहास लेखक प्रोफेसर एच० एच० विलसन ने पार्लियामेंट की सिलेक्ट कमेटी के सामने कहा—

> **"वास्तव में हमने अंगरेज़ी पढ़े लिखे लोगों की एक अलग जाति बना दी है, जिन्हें अपने देशवासियों के साथ या तो सहानुभूति है ही नहीं, और यदि है तो बहुत ही कम।"‡**

---

*"We must do our best to form a class who may interpreters between us and the millions whom we govern; a class of persons Indian in blood and colour, but English in taste, in opinions, words and intellect."—Macaulay's Minute of 1835.

†" . . . all the funds appropriated for the purposes of education would be best employed on English education alone."—Lord Bentick's Resolution, dated 7th March, 1835.

‡" . . . we created a separate caste of English scholars, who had no longer any sympathy, or very little sympathy with their countrymen;"—Prof. H. H. Wilson before the Select Committee of the House of Lords, 5th July, 1853.

देशी भाषाओं को दवाना

अंगरेज़ी भाषा और अंगरेज़ी साहित्य की शिक्षा के साथ-साथ जहां तक हो स देशी भाषाओं को दवाना भी मैकाले और बेंटिक, दोनों का उद्देश्य था। इतिहास लेख डाक्टर डफ़ ने, इस बारे में बेंटिक और मैकाले की नीति की सराहना करते हुए तुल करके यह दिखलाया है कि जब कभी प्राचीन रोमन लोग किसी देश को विजय करते तो उस देश की भाषा और साहित्य को यथाशक्ति दवा कर वहां के उच्च श्रेणी के लो में रोमन भाषा, रोमन साहित्य और रोमन आचार-विचार के प्रचार का प्रयत्न करते और साथ ही यह दर्शाया है कि यह नीति रोमन साम्राज्य के लिए कितनी हितकर साबि हुई, और अंत में लिखा है—

> "××× मैं यह विचार प्रकट करने का साहस करता हूं कि भारत अन्दर अंगरेज़ी भाषा और अंगरेज़ी साहित्य को फैलाने और उसे उन्नति देने लार्ड विलियम बेंटिक का क़ानून××× भारत के अन्दर अंगरेज़ी राज के तक के इतिहास में कुशल राजनीति की सबसे ज़बरदस्त चाल मानी जाएगी।"*

डाक्टर डफ़ ने अपने से पहले के एक दूसरे अंगरेज़ विद्वान के विचारों का समर्थ करते हुए लिखा है कि भाषा का प्रभाव इतना जबरदस्त होता है कि जिस समय त भारत के अंदर देशी नरेशों के साथ अंगरेज़ों का पत्र-व्यवहार फ़ारसी भाषा में हो रहेगा, उस समय तक भारतवासियों की भक्ति और उनका प्रेम दिल्ली के सम्राट की ओ बराबर बना रहेगा। लार्ड बेंटिक के समय तक देशी नरेशों के साथ कम्पनी का सा पत्र-व्यवहार फ़ारसी भाषा में हुआ करता था। बेंटिक पहला गवर्नर जनरल जिसने यह आज्ञा दे दी और नियम कर दिया कि भविष्य में सारा पत्र-व्यवहार फ़ार की जगह अंगरेज़ी भाषा में हुआ करे।

आयरलैंड के अंदर भी आइरिश भाषा को दवाने और यदि "संभव हो आइरिश लोगों को अंगरेज़ बना डालने के लिए"† वहां की अंगरेज़ सरकार ने स समय पर अनेक अनोखे क़ानून पास किए।

लार्ड मैकाले की रिपोर्ट

सन् 1835 के बाद से अंगरेज़ शासकों का मुख्य लक्ष्य भारत में अंगरेज़ी शि के प्रचार की ओर ही रहा। फिर भी 'ओरिएंटलिस्ट' और 'आक्सिडेंटलिस्ट' दलों थोड़ा बहुत विरोध इसके बीस साल बाद तक जारी रहा। कुछ अंगरेज़ शासक भार वासियों को किसी तरह की भी शिक्षा देने में बराबर संकोच करते रहे। यहां तक

---

*"........I ventured to hazard the opinion, that Lord William Ben double act for the encouragement and diffusion of the English lang and English literature in the East......the grandest master-stroke of s policy that has yet characterized the administration of the British Govern in India."—Dr. Duff in the Lords' Committee's Second Report on In Territories, 1953, p. 409.

†"For the purpose of changing Irishmen into Englishmen, if that possible."—Professor H. Holman in his *English National Education*, p. 50.

लार्ड मैकाले की सन् 1835 की रिपोर्ट 29 साल वाद सन् 1864 में पहली बार प्रकाशित की गई। पर अंत में पल्ला अंगरेज़ी शिक्षा के पक्ष वालों का ही भारी रहा।

भारत के अंगरेज़ शासकों की शिक्षा नीति और बाद की अंगरेज़ी शिक्षा के उद्देश्य को साफ़ कर देने के लिए, हम अंगरेज़ी शिक्षा के प्रवल पक्षपाती लार्ड मैकाले के बहनोई, सर चार्ल्स ट्रेवेलियन, के उन विचारों की नीचे नकल करते हैं जो ट्रेवेलियन ने सन् 1853 की पार्लियामेंटरी कमेटी के सामने प्रकट किए।

अंगरेज़ी शिक्षा का उद्देश्य

सर चार्ल्स ट्रेवेलियन ने सन् 1853 की पार्लियामेंटरी कमेटी के सामने "भारत की अलग-अलग शिक्षा प्रणालियों के अलग-अलग राजनैतिक नतीजे" शीर्षक से एक लेख लिख कर पेश किया। यह लेख इतने महत्व का है और अंगरेज़ सरकार की शिक्षा नीति का इतना अच्छा द्योतक है कि उसके कुछ अंशों का यहां नक़ल करना आवश्यक है। भारतवासियों को अरबी और संस्कृत पढ़ाने और उनके प्राचीन विचारों और प्राचीन राष्ट्रीय साहित्य को जीवित रखने के बारे में सर चार्ल्स ट्रेवेलियन लिखता है कि ऐसा करने से —

"मुसलमानों को सदा यह बात याद आती रहेगी कि हम विधर्मी ईसाइयों ने मुसलमानों के अनेक सुन्दर से सुन्दर प्रदेश उनसे छीन कर अपने अधीन कर लिए हैं और हिन्दुओं को सदा यह याद रहेगा कि अंगरेज़ लोग इस तरह के नापाक दरिन्दे हैं जिनके साथ किसी तरह का मेलजोल रखना लज्जाजनक और पाप है। हमारे बड़े से बड़े शत्रु भी इससे अधिक और कुछ इच्छा नहीं कर सकते कि हम इस तरह की विद्याओं का प्रचार करें जिनसे मानव स्वभाव के उग्र से उग्र भाव हमारे विरुद्ध भड़क उठें।

"इसके विपरीत अंगरेज़ी साहित्य का प्रभाव अंगरेज़ी राज के लिए हितकर हुए बिना नहीं रह सकता। जो भारतीय युवक हमारे साहित्य द्वारा हमसे भलीभांति परिचित हो जाते हैं, वे हमें विदेशी समझना प्रायः बन्द कर देते हैं। वे हमारे महापुरुषों का जिक्र उसी उत्साह के साथ करते हैं जिस उत्साह के साथ कि हम करते हैं। हमारी ही जैसी शिक्षा, हमारी ही जैसी रुचि और हमारे ही जैसे रहन-सहन के कारण इन लोगों में हिन्दोस्तानियत कम हो जाती है और अंगरेज़ियत अधिक आ जाती है। × × × फिर बजाय इसके कि वे हमारे तीव्र विरोधी हों, या यदि हमारे अनुयायी भी हों तो उनके हृदय में हमारी ओर से क्रोध भरा रहे, वे हमारे जोशीले और चतुर मददगार बन जाते हैं। × × × फिर वे हमें अपने देश से बाहर निकालने के प्रचण्ड उपाय सोचना बन्द कर देते हैं × × ×

"× × × जब तक हिन्दोस्तानियों को अपनी पहली स्वाधीनता के बारे में सोचने का मौक़ा मिलता रहेगा, तब तक उनके सामने अपनी दशा सुधारने का एकमात्र उपाय यह रहेगा कि वे अंगरेज़ों को तुरन्त देश से निकाल कर बाहर कर दें। पुराने तर्ज़ के भारतीय देशभक्तों के सामने इसके सिवा और कोई उपाय नहीं है; × × × भारतीय राष्ट्र के विचारों को दूसरी ओर मोड़ने का केवल एक

ही उपाय है । वह यह कि उनके अन्दर पाश्चात्य विचार पैदा कर दिए जाएं । जो युवक हमारे स्कूलों और कालेजों में पढ़ते हैं वे फिर उस जंगली तानाशाही को, जिसके अधीन उनके पूर्वज रहा करते थे, घृणा की दृष्टि से देखने लगते हैं, और फिर अपनी राष्ट्रीय संस्थाओं को अंगरेज़ी ढंग पर ढालने की आशा करने लगते हैं । × × × बजाय इसके कि उनके दिलों में यही विचार सबसे ऊपर हो कि हम अंगरेज़ों को निकाल कर समुद्र में फेंक दें, वे इसके विपरीत अब उन्नति का कोई ऐसा विचार तक नहीं कर सकते जो उनके ऊपर अंगरेज़ी राज को रिक्ति लगा कर और भी अधिक पक्का न कर दे, और जिनके द्वारा वे अंगरेज़ों की शिक्षा और अंगरेज़ों की रक्षा पर सर्वथा निर्भर न हो जाएं । × × ×

× × ×

"× × × हमारे पास उपाय केवल यह है कि हम भारतवासियों को यूरोपियन ढंग की उन्नति में लगा दें, × × × फिर पुराने ढंग पर भारत को स्वाधीन करने की इच्छा ही उनमें से जाती रहेगी और उनका लक्ष्य ही यह न रह जाएगा । देश में अचानक राजक्रान्ति फिर असम्भव हो जाएगी और हमारे लिए भारत पर अपना साम्राज्य क़ायम रखना बहुत काल के लिए असन्दिग्ध हो जाएगा । × × × भारतवासी फिर हमारे विरुद्ध विद्रोह न करेंगे × × × फिर उनके राष्ट्र भर के प्रयत्न यूरोपियन शिक्षा प्राप्त करने और उसे फैलाने और अपने यहां यूरोपियन संस्थाएं क़ायम करने में ही पूरी तरह लगे रहेंगे, जिससे हमें कोई हानि न हो पाएगी । शिक्षित भारतवासी × × × स्वभावतः हमसे चिपटे रहेंगे । × × × हमारी सारी प्रजा में किसी भी श्रेणी के लोगों के लिए हमारा रहना इतना अनिवार्य नहीं ह जितना उन लोगों के लिए, जिनके विचार अंगरेज़ी सांचे में ढाले गए हैं । ये लोग शुद्ध भारतीय राज के काम के ही नहीं रह जाते; यदि जल्दी से देश में स्वदेशी राज फिर क़ायम हो जाए तो उन्हें उससे हर तरह का भय रहता है; × × × ।

"× × × मुझे आशा है कि थोड़े ही दिनों में भारतवासियों का सम्बन्ध हमारे साथ वैसा ही हो जाएगा जैसा किसी समय हमारा रोमन लोगों के साथ था। रोमन विद्वान टैसीटस लिखता है कि जूलियस ऐग्रीकोला (जो ईसा से 78 साल बाद इंगलिस्तान का रोमन गवर्नर नियुक्त हुआ था और जिसने उस देश में रोमन साम्राज्य की नींवों को पक्का किया) की यह नीति थी कि बड़े-बड़े अंग्रेज़ों के लड़कों को रोमन साहित्य और रोमन विज्ञान की शिक्षा दी जाए और उनमें रोमन सभ्यता के ऐश आराम की रुचि पैदा कर दी जाए । हम सब जानते हैं कि जूलियस ऐग्रीकोला की यह नीति इंगलिस्तान में कितनी सफल साबित हुई । यहां तक कि जो अंगरेज़ पहले रोमन लोगों के कट्टर शत्रु थे वे शीघ्र ही उनके विश्वासपात्र और उनके वफ़ादार मित्र बन गए; और उन अंगरेज़ों के पूर्वजों ने जितने प्रयत्न अपने देश पर रोमन लोगों के हमले को रोकने के लिए किए थे उससे कहीं अधिक जोरदार प्रयत्न अब उनके वंशज रोमन लोगों को "अपने यहां बनाए रखने के लिए करने लगे । हमारे पास रोमन लोगों से कहीं अधिक बढ़ कर उपाय मौजूद

हूँ, इसलिए हमारे लिए यह शर्म की बात होगी यदि हम भी रोमन लोगों की तरह भारतवासियों के मन में यह भय उत्पन्न न कर दें कि यदि हम जल्दी से देश से निकल गए तो तुम लोगों पर भयंकर विपत्ति आ जाएगी ।

× × ×

“ये विचार मैंने केवल अपने दिमाग से सोच कर ही नहीं निकाले, वरन् स्वयं अनुभव करके और देखभाल कर मुझे इन नतीजों पर पहुंचना पड़ा है । मैंने कई साल हिन्दोस्तान के ऐसे हिस्सों में बिताए जहां हमारा राज अभी नया-नया जमा था, जहां पर कि हमने लोगों के भावों को दूसरी ओर मोड़ने की अभी कोई कोशिश भी नहीं की थी और जहां पर कि उनके राष्ट्रीय विचारों में अभी कोई परिवर्तन नहीं हुआ था । उन प्रान्तों में छोटे और बड़े, धनी और दरिद्र, सब लोगों के सामने केवल अपनी राजनैतिक दशा सुधारने की ही एकमात्र चिन्ता थी । उच्च श्रेणी के लोगों के दिलों में यह आशा बनी हुई थी कि वे फिर से अपने प्राचीन प्रभुत्व को प्राप्त कर लें; और नीचे की श्रेणी के लोगो में यह आशा बनी हुई थी कि यदि देशी राज फिर से क़ायम हो गया तो धन और वैभव प्राप्त करने के मार्ग हमारे लिए फिर से खुल जाएंगे । जिन समझदार भारतवासियों को औरों की अपेक्षा हमसे अधिक प्रेम था उन्हें भी अपनी क़ौम की पतित अवस्था को सुधारने का इसके सिवा और कोई उपाय न सूझता था कि अंगरेजों को तुरन्त देश से निकाल कर बाहर कर दिया जाए । इसके बाद मैं कुछ साल बंगाल में रहा । वहां मैंने शिक्षित भारतवासियों में बिल्कुल दूसरी तरह के विचार देखे । अंगरेजों के गले काटने का विचार करने के स्थान पर, वे लोग अंगरेजों के साथ जूरी बन कर अदालतों में बैठने या बेन्च मैजिस्ट्रेट बनने की आकांक्षाएं कर रहे थे ।×××”*

---

*......would be perpetually reminding the Mohammadans that we are infidel usurpers of some of the fairest realms of the faithful, and the Hindoos, that we are unclean beasts, with whom it is a sin and a shame to have any friendly intercourse. Our bitterest enemies could not desire more than that we should propagate system of learning which excite the strongest feelings of human nature against ourselves.

“The spirit of English literature, on the other hand, cannot but be favourable to the English connection. Familiarly acquainted with us by means of our literature, the Indian youth almost cease to regard us as foreigners. They speak of our great men with the same enthusiasm as we do. Educated in the same way, interested in the same objects, engaged in the same pursuits with ourselves, they become more English than Hindoos......they cease to think as violent opponents, or sullen conformists, they are converted into zealous and intelligent co-operators with us......they cease to think of violent remedies......

“......As long as the natives are left to brood over their former independence, their sole specific for improving their condition is, the immediate and total expulsion of the English. A native patriot of the old school has no notion of anything beyond this......It is only by the infusion of European ideas, that a new direction can be given to the national views. The youngmen, brought up at our seminaries, turn with contempt from the barbarous despotism under which their ancestors groaned, to the prospect of improving their national

ट्रेवेलियन के और अधिक स्पष्ट विचार

सर चार्ल्स ट्रेवेलियन के इस लेख के बारे में पार्लियामेंट की कमेटी के सदस्यों और ट्रेवेलियन में कई दिन तक प्रश्नोत्तर होता रहा, जिसमें ट्रेवेलियन ने और अधिक स्पष्टता

---

institution on the English model......So far from having the idea of driving the English into the sea uppermost in their minds, they have no notion of any improvement but such as rivets their connection with the English, and makes them dependent on English protection and instruction......

* * *

"The only means at our disposal......is, to set the natives on a process of European improvement, to which they are already sufficient inclined. They will then cease to desire and aim at independence on the old Indian footing. A sudden change will then be impossible, and a long continuance of our present connection with India will even be assured to us......The natives will not arise against us......The national activity will be fully and harmlessly employed in acquiring and diffusing European knowledge, and naturalising European institution. The educated classes......will naturally cling to us...... There is no class of our subjects to whom we are so thoroughly necessary as those whose opinions have been cast in the English mould; they are spoiled for a purely native regime; they have everything to fear from the premature establishment of a native Government......

"......The Indians will, I hope, soon stand in the same position towards us in which we once stood towards the Romans. Tacitus informs us, that it was the policy of Julius Agricola to instruct the sons of the leading men among the Britons in the literature and science of Rome and to give them a taste for the refinements of Roman civilization. We all know how well this plan answered. From being obstinate enemies, the Britons soon became attached and confiding friends; and they made more strenuous efforts to retain the Romans, than their ancestors had done to resist their invasion. It will be a shame to us if, with our greatly superior advantages, we also do not make our premature departure be dreaded as a calamity......

* * *

"These views were not worked out by reflection, but were forced on me by actual observation and experience. I passed some years in parts of India, where owing to the comparative novelty of our rule and to the absence of any attempt to alter the current of native feeling, the national habits of thinking remained unchanged. There high and low, rich and poor, had only one idea of improving their political condition. The upper classes lived upon the prospect of regaining their former pre-eminence; and the lower, upon that of having the avenues to wealth and distinction reopened to them by the re-establishment of a native government. Even sensible and comparatively well-effected natives had no notion that there was any remedy for the existing depressed state of their nation except the sudden and absolute expulsion of the English. After that, resided for some years in Bengal, and there I found quite another set of ideas prevalent among the educated natives. Instead of thinking of cutting the throats of the English, they were aspiring to sit with them on the grand jury or on the bench of magistrates......"—A paper on *The political tendency of the different systems of education in use in India* by Sir Charles, E. Trevelyan, submitted to the Parliamentary Committee of 1853.

के साथ अपने विचारों को दोहराया और उनका समर्थन किया । इस प्रश्नोत्तर में ही 23 जून, सन् 1853 को ट्रेवेलियन ने कमेटी के सामने बयान किया—

> “अपने यहां की शुद्ध स्वदेशी पद्धति के अनुसार मुसलमान लोग हमें ‘काफ़िर’ समझते हैं, जिन्होंने कि इसलाम को कई सर्वोत्तम बादशाहतें मुसलमानों से छीन ली हैं × × × उसी प्राचीन स्वदेशी विचार के अनुसार हिन्दू हमें ‘म्लेच्छ’ समझते हैं अर्थात् इस तरह के अपवित्र विधर्मी जिनके साथ किसी तरह का भी सामाजिक सम्बन्ध नहीं रखा जा सकता; और वे सब मिल कर, अर्थात् हिन्दू और मुसलमान दोनों, हमें इस तरह के आक्रमक विदेशी समझते हैं जिन्होंने उनका देश उनसे छीन लिया है और उनके लिए धन और मान प्राप्त करने के सब रास्ते बन्द कर दिए हैं । यूरोपियन शिक्षा देने का नतीजा यह होता है कि भारतवासियों के विचार एक बिल्कुल दूसरी ही दिशा में मुड़ जाते हैं । पाश्चात्य शिक्षा पाए हुए युवक स्वाधीनता के लिए प्रयत्न करना बन्द कर देते हैं × × × वे फिर हमें अपना शत्रु और राज्यापहारी नहीं समझते, बल्कि हमें अपना मित्र, अपना मददगार और बलवान और उपकारी व्यक्ति समझने लगते हैं × × × वे यह भी समझने लगते हैं कि भारतवासी अपने देश के पुनरुज्जीवन के लिए जो कुछ इच्छा भी कर सकते हैं वह धीरे-धीरे अंगरेजों के ही संरक्षण में सम्भव है, कभी न कभी एक दिन के अन्दर हमारा अस्तित्व भारत से मिट जाए । वास्तव में जो लोग इस ढंग से भारत की उन्नति की आशा कर रहे हैं, वे इस लक्ष्य को सामने रख कर हमारे विरुद्ध लगातार षड्यन्त्र और योजनाएं रचते हैं । इसके विपरीत नयी और उन्नत पद्धति के अनुसार विचार करने वाले भारतवासी यह समझते हैं कि उनका उद्देश्य बहुत धीरे-धीरे पूरा होगा और उन्हें अन्तिम लक्ष्य तक पहुंचते-पहुंचते सम्भव है युग बीत जाएं ।”

भारत की पराधीनता को चिरस्थायी करना

जांच कमेटी के अध्यक्ष ने ट्रेवेलियन से और अधिक स्पष्ट शब्दों में पूछा कि आपकी तजवीज़ का अंतिम लक्ष्य भारत और इंगलिस्तान के राजनैतिक सम्बंध को तोड़ना है या उसे सदा के लिए क़ायम रखना है । इस पर ट्रेवेलियन ने फिर उत्तर दिया—

> “× × × मुझे विश्वास है कि भारवतासियों को शिक्षा देने × × × का अन्तिम परिणाम यह होगा कि भारत और इंगलिस्तान का पृथक हो सकना दीर्घ और अनिश्चित काल के लिए टल जाएगा × × × यदि इसके विरुद्ध नीति का अनुसरण किया गया × × × तो नतीजा यह होगा कि किसी भी समय हम भारत से निकाले जा सकते हैं, और निस्सन्देह बहुत जल्दी और ज़िल्लत के साथ निकाल दिए जाएंगे । × × ×

× × ×

> “मैं एक ऐसा रास्ता बता रहा हूं जो हमारे राज के बने रहने के लिए सबसे अधिक हितकर होगा । अनेक बरसों तक खूब अच्छी तरह सोच समझ कर मैंने ये

विचार क़ायम किए हैं । मुझे विश्वास है कि मैं इस विषय को पूरी तरह समझता हूं । ××× मैं एक परिचित उदाहरण आपके सामने पेश करता हूं । मैं बार वर्ष भारत में रहा । इनमें से पहले 6 वर्ष मैंने उत्तर भारत में गुज़ारे । मेरा मुख्य स्थान दिल्ली था । शेष छह वर्ष मैंने कलकत्ते में बिताए । जहां पर मैंने पहले छह वर्ष गुज़ारे वहां पर पुराने शुद्ध देशी विचारों का राज था, वहां पर लगातार युद्ध और युद्धों की ही अफ़वाहें सुनने में आती थीं । उत्तर भारत में भारतवासियों की देशभक्ति केवल एक ही रूप धारण करती थी, वे हमारे विरुद्ध साज़िशें करते रहते थे, हमारे विरुद्ध विविध शक्तियों को मिलाने की तजवीज़ें सोचते रहते थे, इत्यादि। उसके बाद में कलकत्ते आया । वहां मैंने बिल्कुल दूसरी हालत देखी । वहां पर लोगों का लक्ष्य था—स्वतन्त्र अखबार निकालना, म्युनिसिपैल्टियां क़ायम करना, अंगरेज़ी शिक्षा फैलाना, अधिकाधिक हिन्दोस्तानियों को सरकारी नौकरियां दिलवाना और इसी तरह की और अनेक बातें ।"

इस पर फिर लार्ड मांटीगल ने ट्रैवेलियन से पूछा—

"अब अनुमान कीजिए कि इन दोनों में से एक मार्ग का अनुसरण किया जाए; पहला यह कि भारतवासियों को शिक्षा देने और नौकरियां देने का विचार छोड़ दिया जाए और दूसरा यह कि उन्हें अधिक शिक्षा दी जाए और उचित अहतियात के साथ उन्हें अधिकाधिक नौकरियां दी जाएं । आपकी राय में इन दोनों मार्गों में किस मार्ग पर चलने से हिन्दोस्तान और इंगलिस्तान का सम्बन्ध अधिक से अधिक देर तक क़ायम रह सकता है ?"

ट्रैवेलियन ने उत्तर दिया—

"निस्सन्देह शिक्षा को बढ़ाने और भारतवासियों को अधिकाधिक नौकरियां देने से; मुझे इस बात में किसी तरह का ज़रा-सा भी शक नहीं हैं ।" *

---

* "According to the unmitigated native system the Mohammadans regar us as *Kafirs,* as infidel usurpers of some of the finest realms of Islam.... According to the same original native views, the Hindoos regard us as *Mlechh* that is, impure outcasts with whom no communion ought to be held; and th all of them, both Hindoo and Mohammadan, regard us as usurping foreigne who have taken their country from them, and excluded them from the avenu to wealth and distinction. The effect of a training in European learning is t give an entirely new turn to the native mind. The young men educated i this way cease to strive after independence.

They cease to regard us as enemies and usurpers, and they look upon u as friends and patrons, and powerful beneficent persons, under whose protection all they have most at heart for the regeneration of their country, w gradually be worked out. According to the original native view of politi change, we might, be swept off the face of India in a day, and, as a matt of fact, those who took for the improvement of India according to this mod are continually meditating on plots and conspiracies with that object; wherea according to new and improved system, the object must be worked out b very gradual steps, and ages may elapse before the ultimate end will b attained, ...

इंगलिस्तान के प्रभुत्व को क़ायम रखना

सर चार्ल्स ट्रैवेलियन या उस विचार के दूसरे अंगरेज़ों के बयानों से अधिक वाक्य नक़ल करने की आवश्यकता नहीं है। निस्सन्देह ठीक यही विचार वेंटिक और मैकाले के थे। भारत के अन्दर अंगरेज़ी शिक्षा के प्रचार का एकमात्र उद्देश्य राजनैतिक था और वह उद्देश्य यह था कि भारत के ऊपर इंगलिस्तान के राजनैतिक प्रभुत्व को अनन्त काल तक के लिए क़ायम रखा जाए।

एजूकेशन डिसपैंच

सन् 1853 की तहक़ीक़ात के बाद कम्पनी के डाइरेक्टरों ने 19 जुलाई, सन् 1854 को गवर्नर जनरल लार्ड डलहौज़ी के नाम वह प्रसिद्ध ख़रीता भेजा, जो सन् 1854 के 'एजूकेशन डिसपैंच' के नाम से प्रसिद्ध है, और जिसे 'वुड्स डिसपैंच' भी कहते हैं, क्योंकि सर चार्ल्स वुड उस समय कम्पनी के 'बोर्ड आफ़ कण्ट्रोल' का प्रेसीडेण्ट था। बोर्ड आफ़ कण्ट्रोल के प्रेसीडेण्ट का पद बाद के (1929) भारत मन्त्री के पद के समान था।

भारत को इंगलिस्तान की मण्डी बनाना

इस पत्र में डाइरेक्टरों ने अपनी भारत हितैषिता की काफ़ी डींग हांकी है, किन्तु

"......Now my belief is, that the *ultimate result of the policy of improving and educating India will be, to postpone the separation for a long indefinite period,* ......Whereas I conceive that result of the opposite policy......may lead to a separation at any time, and must lead to it at a much earlier period and under much more disadvantageous circumstances.

* * *

"I am recommending the course which according to my most deliberate view which I have held for a great many years, founded, I believe, on a full knowledge of the subject, will be most conducive to the continuance of our dominion, ...I may mention, as familiar illustration, that I was 12 years in India, and that the first six years were spent up the country, with Delhi for my headquarters, and the other six at Calcutta. The first six years represent the old regime of pure native ideas, and there were continual wars and rumours of wars. The only from which native patriotism assumed up the country was plotting against us, and meditating combinations against us and so forth. Then I came to Calcutta: and there I found quite new state of things. The object there was to have a free press, to have municipal institutions, to promote English education and the employments of the Natives, and various things of that sort.

6724, Lord Monteagle of Bradon. Then, supposing one of two courses to be taken, either the abandonment of the education and employment of the Natives, or an extension of education, or an extension with due precaution of the employment of the Natives, which of those two courses, in your judgment, will lead to the longest possible continuance of the connexion of India with England ?"

"Decidedly the extension of education and the employment of the Natives; I entertain no doubt whatever upon the question."—Sir Charles E. Trevelyan, before the Parliamentary Committee of 1853.

पत्र में यह भी लिखा है कि शिक्षा की इस नयी योजना का उद्देश्य "शासन के हर मह के लिए आपको विश्वसनीय और होशियार नौकर दिलवाना है" और इसका एक उद्दे इस बात को "पक्का कर लेना है कि इंगलिस्तान के उद्योगधन्धों के लिए जिन अने पदार्थों की आवश्यकता होती है और जिनकी इंगलिस्तान की हर श्रेणी के लोगों में खपत होती है, वे सब पदार्थ अधिक परिणाम में और अधिक निश्चिन्तता के साथ इंगलिस्तान पहुंचते रहे और इसके साथ ही इंगलिस्तान के बने हुए माल के लिए भारत अनन्त मांग बनी रहे।"*

सौ साल का अनुभव

सन् 1757 से लेकर 1854 तक करीब 100 साल के अनुभव और सलाह मश के बाद इंगलिस्तान के नीतिज्ञों को इस बात का विश्वास हुआ कि थोड़े से भारतवासि को अंगरेज़ी शिक्षा देना इस देश में अंगरेजी साम्राज्य को क़ायम रखने के लिए आवश्य है। किन्तु इस पर भी ये लोग इतने बड़े प्रयोग के लिए एकाएक साहस न कर सके ट्रेवेलियन ने अपने लेख और बयान, दोनों में उन्हें साफ़ आगाह कर दिया था कि अशिक्षि या अंगरेज़ी शिक्षा से वंचित भारतवासियों के दिलों में अपनी पराधीनता के विरुद्ध गह असन्तोष भीतर ही भीतर भड़कता रहता था, जिसका विदेशी शासकों को पता तक न चल सकता था। यह स्थिति अंगरेज़ों के लिए बेहद ख़तरनाक थी। ट्रेवेलियन के बयान दिल्ली और उत्तर भारत के अन्दर सन् 1857 से दस साल पहले से क्रान्ति की तैयारियों और सम्भावनाओं की ओर साफ़ संकेत मिलता है। ट्रेवेलियन की आशं बहुत शीघ्र सच्ची साबित हुई। सन् 1857 की क्रान्ति ने एक बार इस देश के अन्दर ब्रि साम्राज्य की जड़ों को बुरी तरह हिला दिया।

सरकारी विश्वविद्यालय

अंगरेज़ शासकों को अब ट्रेवेलियन, मैकाले जैसों की नीतिज्ञता और दूरद में कोई सन्देह न रहा। उनका बताया हुआ उपाय ही इस देश में अंगरेज़ राज को नि स्थायी करने का एकमात्र उपाय था। लार्ड कैनिंग उस समय भारत का गवर्नर-जन था। ठीक सन् 1857 में कलकत्ते, बम्बई और मद्रास के अन्दर सरकारी विश्वविद्या क़ायम करने के लिए एक क़ानून पास किया गया। सन् 1859 में इंगलिस्तान के प्र मन्त्री ने सन् 1854 के खरीते को फिर से दोहरा कर पक्का किया।

सन् 1854 का यह मशहूर ख़रीता ही भारत की आजकल (1929) की अंग्रे शिक्षा प्रणाली और अंगरेज़ शासकों की शिक्षा नीति, दोनों का मूल स्रोत है। ब्रि सरकार का शिक्षा विभाग इसी का नतीजा है।

---

* "......enabling you to obtain the services of intelligent and trustw persons in every department of Government."—Para 72 and

"......secure to us a larger and more certain supply of many ar necessary for our manufactures and extensively consumed by all classes of population as well as an almost in-exhaustible demand for the produ British labour."—Para 4, *The Education Despatch* of 1854.

शिक्षित भारतवासियों का चरित्र

दिल्ली कालेज के शुरू के विद्यार्थी, सर चार्ल्स ट्रेवेलियन के पटु शिष्य और पहले अफ़गान युद्ध में अंगरेज़ों के परम सहायक, पण्डित मोहनलाल से लेकर आज (1929) तक के अधिकांश अंगरेज़ी शिक्षा पाए हुए भारतवासियों के जीवन, उनके रहन-सहन और उनके चरित्र से ज़ाहिर है कि लार्ड मैकाले और सर चार्ल्स ट्रेवेलियन जैसों की नीति कितनी दूरदर्शिता की थी। नतीजा यह है कि क़रीब डेढ़ सौ साल पहले तक जो देश संसार के शिक्षित देशों की अग्रतम श्रेणी में गिना जाता था, डेढ़ सौ साल के विदेशी शासन के बाद अब (1929) संसार के सभ्य कहलाने वाले देशों में, शिक्षा की दृष्टि से, सबसे अधिक पिछड़ा हुआ है। जिस देश में प्रायः प्रत्येक मनुष्य लिखना पढ़ना और हिसाब करना जानता था, वहां अब (1929) क़रीब 94 प्रतिशत अशिक्षित हैं और थोड़े-से अंगरेज़ी शिक्षा पाए हुए लोग अधिकतर अपने बाक़ी देशवासियों के सुख दुख की ओर से उदासीन, सच्ची राष्ट्रीयता के भावों से कोसों दूर, विदेशी सत्ता के पृष्ठपोषक बने हुए हैं।

सतीसवां अध्याय

पहला अफ़ग़ान युद्ध

लार्ड आकलैण्ड

लार्ड बेंटिक के बाद मार्च सन् 1835 से मार्च सन् 1836 तक एक साल सर चार्ल्स मेटकाफ़ गवर्नर जनरल रहा ।

इस बीच इंगलिस्तान के शासकों ने प्रसिद्ध अंगरेज़ नीतिज्ञ एलफ़िन्सटन को जिसके कारनामों का जिक्र नागपुर और पूना दरबारों के सम्बन्ध में ऊपर आ चुका है पेशवा राज का अन्त कर देने के इनाम में भारत की गवर्नर-जनरली के पद पर नियुक् करना चाहा । एलफ़िन्सटन कुछ समय तक बम्बई का गवर्नर रह चुका था । किन्तु कह जाता है, स्वास्थ्य खराब होने के कारण वह इस समय अपने मालिकों की इच्छा पू न कर सका । अन्त में सन् 1836 ई० में लार्ड बेंटिक की राय से लार्ड आकलैण्ड गवर्नर जनरल नियुक्त करके भारत भेजा गया ।

सिन्धु नदी की सर्वे का नतीजा

लार्ड बेंटिक के समय में सिन्धु नदी की जो सर्वे महाराजा रणजीतसिंह को उ हार भेजने के बहाने की गई थी, उसके गुल अब अफ़ग़ान युद्ध के रूप में आकर खिले इस निगाह से लार्ड आकलैण्ड का शासन काल ब्रिटिश भारत के इतिहास में एक विशे सीमा चिह्न है । इस शासन काल में ही ब्रिटिश भारतीय साम्राज्य की 'वैज्ञानिक सरह (साइण्टिफ़िक फ्रण्टियर) खोजने का प्रयत्न शुरू हुआ ; जिनके फलस्वरूप धीरे-धी सिन्ध, पंजाब, बलूचिस्तान, चितराल और उस समय के अफ़ग़ानिस्तान के कुछ भाग अपनी स्वाधीनता खोनी पड़ी ।

लार्ड आकलैण्ड के समय में दोस्तमोहम्मद खां अफ़ग़ानिस्तान का बादशाह था उससे पहले का बादशाह शाहशुजा उन दिनों लुधियाने में अंगरेजों का मेहमान था।

बर्न्स की मध्य एशिया की यात्रा

सिन्धु नदी की सर्वे करने और महराजा रणजीतसिंह को बादशाह विलि की ओर से घोड़े और गाड़ी भेंट करने का काम एक चतुर अंगरेज़, लेफ्टिनेण्ट बर्न्स सपुर्द था । इन उपहारों को रणजीतसिंह को नज़र करने के बाद बर्न्स को सन् 18 में मध्य एशिया भेजा गया । कारण यह बताया गया कि चूंकि अंगरेज़ों को रूस के ह का डर है, इसलिए भारत और मध्य एशिया के बीच की ताक़तों को कम्पनी की करने के लिए बर्न्स को भेजा जा रहा है। बर्न्स के साथ एक और अंगरेज़, डाक्टर गेरा एक कशमीरी पण्डित, मुन्शी मोहनलाल और एक मुसलमान सरवेयर, मोहम्मद भी थे । यह पण्डित मोहनलाल अत्यन्त चालाक और दिल्ली कालेज के शुरू के विद्यार्थि में से था । ये लोग सबसे पहले अफ़ग़ानिस्तान पहुंचे । अमीर दोस्तमोहम्मद ख़ां ने इन

ख़ूब ख़ातिर की। उसके बाद एक साल तक मध्य एशिया में घूमने के बाद सन् 1833 में ये लोग अनेक पत्रों, मानचित्रों आदि सहित भारत लौट आए। भारत और इंगलिस्तान, दोनों में बर्न्स की बहुत बड़ी इज्जत हुई। बर्न्स की इस यात्रा ने ही पहले अफ़गान युद्ध की बुनियाद डाली। बर्न्स के भारत लौटने के कुछ दिनों बाद लार्ड आकलैण्ड ने गवर्नर जनरल का पद संभाला।

बर्न्स का व्यापारी मिशन

अंगरेज़ बहुत दिनों से अफ़ग़ानिस्तान तक अपने पैर फैलाने के लिए लालायित थे। रूस का डर अधिकतर केवल एक बहाना था। सन् 1836 के अन्त में बर्न्स को दूसरी बार 'व्यापारी मिशन' (कमर्शियल मिशन) पर काबुल भेजा गया। इतिहास लेखक सर जान के इस मिशन के सम्बन्ध में लिखता है—

> **"हमारी एशियाई परिभाषा में 'व्यापार' केवल 'देशविजय' का दूसरा नाम है। × × × और यह 'व्यापारी मिशन' गम्भीर राजनैतिक कुचक्रों को अपने भीतर छिपाए रखने का एक कपट वेश बन गया।"***

अंगरेज़ों के इस 'व्यापारी मिशन' ने 20 सितम्बर, सन् 1837 को काबुल में प्रवेश किया। भोले अफ़ग़ान बादशाह ने बड़े उत्साह के साथ उसका स्वागत किया। मिशन का एक उद्देश्य यह था कि दोस्तमोहम्मद खां को रूस के विरुद्ध अंगरेज़ों के पक्ष में कर लिया जाए। किन्तु यह उद्देश्य पूरा न हो सका और बर्न्स और उसके साथियों को असफल भारत लौट आना पड़ा।

दोस्तमोहम्मद की मांग

इस असफलता का कारण यह था कि अफ़ग़ानिस्तान का कुछ पूर्वी इलाक़ा, ख़ासकर पेशावर, का ज़रख़ेज़ ज़िला, महाराजा रणजीतसिंह ने अफ़ग़ानिस्तान से छीन कर अपने अधीन कर रखा था। दोस्तमोहम्मद खां ने कहा कि यदि अंगरेज़ रूस के विरुद्ध अफ़ग़ानिस्तान की मदद चाहते हैं, तो इसके बदले में वे अफ़ग़ानिस्तान का पूर्वी इलाक़ा रणजीतसिंह से वापस लेने में मुझे मदद दें। दोस्तमोहम्मद खां की मांग बेजान थी। किन्तु अंगरेज़ों की नीति उस समय अफ़ग़ानिस्तान को अधिक मज़बूत करने की न थी। दोस्तमोहम्मद खां एक योग्य और बलवान शासक था। अंगरेज़ बहुत दिनों पहले से अफ़ग़ानिस्तान के स्वाधीन अस्तित्व को मिटा देने की फ़िक्र में थे। शाहशुजा उनके हाथों में एक ख़ासा अच्छा साधन मौजूद था। वे केवल युद्ध का बहाना ढूंढ रहे थे। उस समय के अनेक लेखों से यह भी साफ़ ज़ाहिर है कि अंगरेज़ों को इस बात का पूरा विश्वास था कि रणजीतसिंह के मरने के बाद रणजीतसिंह का राज आसानी से कम्पनी के क़ब्ज़े में आ जाएगा। बर्न्स ने दोस्तमोहम्मद खां की बात न मानी। इसीलिए उसे असफल भारत लौट आना पड़ा।

---

* "Commerce, in the vocabulary of the East, is only another name to conquest……and this commercial mission became the cloak of grave political designs"—Kaye's *Lives of Indian Officers,* vol. ii, p. 33.

अफ़ग़ानिस्तान के साथ युद्ध की तैयारी

बर्न्स के भारत पहुंचते ही अफ़ग़ानिस्तान के साथ युद्ध की तैयारियां शुरू हो ग इतिहास लेखक जान के लिखता है कि ठीक उस समय, जब कि बर्न्स काबुल में दोस् मोहम्मद खां से दोस्ती करने की दिखावटी कोशिशें कर रहा था —

> “हिमालय पहाड़ के ऊपर साज़िशों के उस बड़े अड्डे, शिमले, में दूसरी त की सलाहें हो रही थीं × × × उन लोगों ने शाहशुजा के पुराने पदच्युत कु को फिर से काबुल की गद्दी पर बैठाने का इरादा कर लिया और शाहशुजा क लुधियाने की खाक में से उठा कर उसे अपना एक साधन और अपने हाथ की ए कठपुतली बना लिया × × ×।”*

पार्लियामेन्ट के क़ागज़ों में जालसाज़ी

निस्सन्देह इन कुचक्रों के सूत्रधार शिमले में रहने वाले कम्पनी के अंगरेज़ प्रति निधि थे। पहले अफ़ग़ानिस्तान युद्ध से अंगरेज़ों की राजनीति और उनके राष्ट्रीय चरि पर एक आश्चर्यजनक रोशनी पड़ती है। एक खास बात इस युद्ध के समय यह खुली इंगलिस्तान की पार्लियामेण्ट के सरकारी पत्रादिक भी सत्य-असत्य की दृष्टि से विश्वसनी नहीं कहे जा सकते। बर्न्स ने दोस्त मोहम्मद खां के बारे में काबुल से कुछ पत्र लिखे थ इन पत्रों में दोस्तमोहम्मद खां के चरित्र की प्रशंसा की थी; किन्तु अब अंगरेज़ दोस् मोहम्मद खां से युद्ध करना चाहते थे। इसलिए दोस्तमोहम्मद खां को जन साधा की दृष्टि में गिराना आवश्यक था। बर्न्स के भेजे हुए उन पत्रों में, जो पार्लियामेण्ट की स कारी रिपोर्ट में दर्ज थे, काट-छांट की गई; यहां तक कि जिस दोस्तमोहम्मद खां चरित्र की बर्न्स ने खूब प्रशंसा की थी, उसकी बर्न्स की ही कलम से उ पत्रों में खूब बुराई दिखला दी गई। इस काट-छांट का भेद कुछ समय बाद अचान बर्न्स के मर जाने पर उसके पिता ने प्रकट किया और इंगलिस्तान के बा शाह के सम्मुख बाज़ाब्ता शिकायत की कि आपके मन्त्रियों ने इस तरह चाल च कर मेरे पुत्र के यश को कलंकित करने का प्रयत्न किया है; इसी काट-छांट बारे में इतिहास लेखक जान के लिखता है——

> “राज कर्मचारियों के सरकारी पत्र व्यवहार में जालसाज़ी करने की प्रथा के प्रति निस्सन्देह, मैं अपनी घृणा प्रकट किए बिना नहीं रह सकता। × × जिस बेईमानी के साथ झूठ पर झूठ ‘सच’ कहकर संसार के सामने पेश कर दि जाता है, उसमें कोई भी भलाई की बात नहीं है। × × × इस मामले में × × दोस्तमोहम्मद के चरित्र पर झूठे कलंक लगाए गए हैं; बर्न्स के चरित्र पर झूठे क लगाए गए हैं; बर्न्स के पत्र व्यवहार में काट-छांट करके बर्न्स और दोस्तमोह दोनों के बयानों में भयंकर झूठ मिला दिया गया है——दोनों ने जो बातें

---

*“Other counsels were prevailing at Simla—that great hotbed of int on the Himalayan hills......They conceived the idea of reinstating the deposed dynasty of Shah Shuja, and they picked him out of the d Ludhiyana to make him a tool and a puppet.”—Kaye's *Lives of Indian Of* vol. ii, p. 36.

की, वे कहा गया है, उन्होंने की, और जो बातें उन्होंने की, वे कहा गया है, उन्होंने नहीं की ।×××" *

मई, सन् 1838 में बर्न्स काबुल से शिमले वापस आ गया । कहते हैं कि बर्न्स के आते ही रूसी राजदूत का प्रभाव काबुल के दरबार में बढ़ने लगा ।

अपहरण नीति

निरपराध अफ़ग़ानों के साथ युद्ध छेड़ने के लिए केवल भारत के अंगरेज ही जिम्मेवार न थे । इतिहास लेखक कीन साफ लिखता है कि खुद इंगलिस्तान के मन्त्री पहले अफ़ग़ानिस्तान पर हमला करने का निश्चय कर चुके थे, और उनसे ही इस युद्ध का सूत्रपात हुआ । इंगलैण्ड के प्रधान मन्त्री, लार्ड पामर्सटन के कई गुप्त पत्र इस विषय के गवर्नर जनरल के नाम आ चुके थे । कम्पनी के डाइरेक्टरों के चेयरमैन ने गवर्नर जनरल को एक पत्र लिखा, जिसमें उसने गवर्नर जनरल को पहले पंजाब विजय करने और फिर पंजाब द्वारा काबुल पर हमला करने की सलाह दी । जनरल जान ब्रिग्स ने 8 मई सन् 1872 को मेजर ईवान्सवेल के नाम एक पत्र लिखा । उसने लिखा है कि लार्ड आकलैण्ड के समय में लार्ड लैन्सडाउन के मकान पर इंगलिस्तान के मन्त्रियों और प्रधान नीतिज्ञों की एक गुप्त सभा हुई थी, जिसमें यह निर्णय किया गया था कि जिस तरह हो सके, भारत की बाकी देशी रियासतों का, जो कम्पनी की सामन्त हैं, अन्त करके उनके इलाकों को कम्पनी के राज में मिला लिया जाए । लिखा है कि इसी निर्णय के अनुसार बम्बई की सरकार ने कोलम्बो की रियासत को, जो खासी बड़ी थी, केवल यह बहाना लेकर कम्पमी के राज में मिला लिया कि दत्तक पुत्र को गद्दी का कोई अधिकार नहीं है । इसी के अनुसार कुछ समय बाद लार्ड डलहौजी ने झांसी, नागपुर इत्यादि रियासतों को हजम किया । वास्तव में यह अपहरण नीति इंगलिस्तान के मन्त्रियों की निश्चित नीति थी ।†

रणजीतसिंह की मृत्यु

युद्ध शुरू करने से पहले कम्पनी, महाराजा रणजीतसिंह और शाहशुजा; तीनों के बीच एक सन्धि हो गई । इस सन्धि ने सिन्ध के स्वाधीन अस्तित्व को भविष्य के लिए संकट में डाल दिया । अंगरेज़ों ने शाहशुजा को ले जाकर काबुल के तख्त पर बैठाने का वादा किया । शाहशुजा ने अंगरेजों को सिन्ध में आजाद छोड़ने का वचन दिया । रणजीतसिंह को इस सन्धि से कोई खास लाभ न था ।

---

* "I cannot indeed suppress the utterance of my abhorrence of this system of garbling the official correspondence of public men. ......The dishonesty by which lie upon lie is palmed upon the world has not one redeeming feature...... In the case before us......the character of Dost Mohammad has been lied away; the character of Burnes has been lied away; both, by the mutilation of the correspondence of the latter, have been fearfully misrepresented—both have been set forth as doing what they did not, and omitting to do what they did......"—Kaye's *Lives of Indian Officers*, vol. ii.

† Memoir of General John Briggs, p. 277.

यह भी कहा जाता है कि रणजीतसिंह इस सन्धि के साथ पूरी तरह सहमत न था, फिर भी किसी तरह उससे हस्ताक्षर करा लिए गए। इस सन्धि के थोड़े दिनों बाद ही महाराजा रणजीतसिंह की मृत्यु हो गई।

इसके बाद आगामी अफ़ग़ान युद्ध के बारे में कम्पनी की ओर से एक ऐलान प्रकाशित किया गया, जो इस तरह के अन्य अनेक ऐलानों के समान आद्योपा झूठ से भरा हुआ है।

अफ़ग़ानिस्तान पर चढ़ाई

अफ़ग़ानिस्तान पर चढ़ाई कर दी गई। बम्बई की सेना सिन्ध और बलू चिस्तान से होती हुई और उत्तर भारत की सेना पंजाब और ख़ैबर के रास्ते अफ़ग़ानिस्तान पहुंची। इन सेनाओं की यात्रा को विस्तार से बयान करने की आवश्यकता नहीं है। केवल मार्ग में सिन्ध के अमीरों के साथ अंगरेज़ों ने जो अत्याचार किए, उन्हें बहुत बयान करना आवश्यक है।

सिन्ध के अमीरों के साथ ज़बरदस्ती

हैदराबाद सिन्ध के अमीर अपने देश के स्वाधीन नरेश थे। फिर भी बिना उनकी अनुमति लिए अंगरज़ी सेना जबरदस्ती सिन्धु नदी से होती हुई अफ़ग़ानिस्ता की ओर बढ़ चली। कम्पनी सरकार की यह कार्रवाई उस सिन्ध के भी वि थी जो हाल ही में अंगरेज़ों और सिन्ध के अमीरों के बीच हो चुकी थी। ि समय सिन्ध के अमीरों ने अंगरेज़ों को सिन्धु नदी से होकर महाराजा रणजीतसि के पास उपहार ले जाने की इजाजत दी थी, तो इस साफ़ शर्त दी थी कि कभी किसी तरह का भी फौजी सामान उस नदी के रास्ते ले जाया जाएगा। अब लार्ड आकलैण्ड ने उस समय की इस सन्धि को कागज़ की तरह फाड़ फेंका। केवल इतना ही नहीं वरन् जान के लिखता है—

> **"यह मालूम था कि अमीर निर्बल हैं; यह भी माना जाता था कि उनके पास खूब धन है; तय हुआ कि उनका धन ले लिया जाए और उनके देश पर क़ब्ज़ कर लिया जाए। उनकी सन्धियों की संगीनों के जोर तोड़ देने का निश्चय कि गया किन्तु साथ ही मित्रता और परस्पर प्रेम के अनेक कपट वाक्यों की बौछ जारी रखी गई।"***

अमीरों के साथ नयी सन्धि

सिन्ध के अमीरों से कहा गया कि आइन्दा से आप शाहशुजा को अप अधिराज स्वीकार करें और उसे अफ़ग़ानिस्तान की गद्दी पर बैठने के लि अंगरेजों को धन की सहायता दें। अमीरों से तीन लाख रुपये सालाना भविष्य लिए बतौर ख़िराज के और इक्कीस लाख रुपया नक़द युद्ध खर्च के लि

---

* "The Amirs were known to be weak; and they were believed to wealthy. Their money was to be taken; their country to be occupied: treaties to be set aside at the point of the bayonet but amidst a show hypocritical expressions of friendship and goodwill."—Kaye's *History of War in Afghanistan*, vol. i, p. 401.

तलब किए गए। इस सब के लिए एक नई सन्धि उनके सामने पेश की गई। उस समय की इस समस्त घटना को बयान करते हुए एक इतिहास लेखक, जो अंगरेजों के साथ था, लिखता है—

> "कप्तान ईस्टविक ने अवसर पाकर अपने मिशन का काला घूंट अपने मेज़बानों के गले से उतार दिया × × × अमीरों ने शान्ति के साथ सुना × × × जब नयी सन्धि पढ़ी जा चुकी, तब बलूचियों में बड़ी व्याकुलता दिखाई दी। उस समय यदि अमीर थोड़ा-सा भी इशारा कर देते, तो जो अनेक असभ्य और निर्दय बलूची नंगी तलवारें लिए हमारे पीछे खड़े हुए थे, उनकी तलवारें हम सबकी ज़िन्दगियों को वहीं समाप्त कर देने के लिए काफ़ी थीं। पहले अमीर नूर मोहम्मद खां ने अपने दोनों साथियों से बलूची ज़बान में कहा कि—"लानत है उस शख्स के ऊपर जो इन फ़िरंगियों के वादों का एतबार करे।" इसके बाद गम्भीरता के साथ अंगरेज प्रतिनिधि की ओर मुखातिब होकर उसने फ़ारसी में यह कहा—"मैं समझता हूं, आप अपनी सन्धियों को जब चाहें अपनी इच्छा और सुविधा के अनुसार बदल सकते हैं; क्या अपने दोस्तों और मेहरबानों के साथ सलूक करने का आपका यही तरीक़ा है ? आपने हमसे इस बात की इजाजत मांगी कि हम आपकी फ़ौज को अपने इलाके से होकर जाने दें। हमने आपकी मित्रता और आपके × × × वादों पर विश्वास कर के बिना संकोच मंजूर कर लिया। यदि हमें यह मालूम होता कि अपनी सेना को हमारे मुल्क में ले आने के बाद आप हमें ही धमकी देंगे और ज़बरदस्ती सन्धि हमारे सिर मढ़ेंगे और हमसे तीन लाख रुपये सालाना ख़िराज और इक्कीस लाख रुपये नक़द फ़ौज के ख़र्च के लिए तलब करेंगे, तो हम उस सूरत में अपनी जान और अपने मुल्क की रक्षा के लिए उपाय कर रखते। आप जानते हैं, हम लोग बलूची हैं बनिए नहीं हैं, जिन्हें आप आसानी से डरा लें।
>
> "कप्तान ईस्टविक ने ये सब बाते शान्ति से सुनीं और फ़ारसी और अरबी कहावतों में संक्षिप्त उत्तर दिए, और कहा—'दोस्तों को जरूरत के समय अपने दोस्तों की मदद करनी चाहिए।' मीर नूर मोहम्मद ने मुस्करा कर अपने भाइयों से बलूची जबान में कुछ कहा × × × फिर आह भर कर कप्तान ईस्टविक से कहा—'आप 'दोस्त' शब्द का जिन माइनों में उपयोग करते हैं, उसे मैं चाहता हूं कि मैं समझ सकता। हम आपकी इस समय की मांगों का फ़ौरन फैसला नहीं कर सकते।' "*

सिन्धी प्रजा पर लूट और अत्याचार

इसके बाद सिन्ध के अमीरों को वश में करने के लिए अंगरेज़ी सेना ने सिन्धी प्रजा को लूटना-मारना और उन पर तरह-तरह के अत्याचार करना शुरू किया। इस लूटमार का उद्देश्य शायद अमीरों को यह दरशाना था कि यदि मित्रता के तौर पर आपने कम्पनी को सहायता न दी, तो मजबूर कम्पनी की सेना प्रजा से अपनी आवश्यकताओं को पूरा करेगी।

---

* *Autobiography of Lutfullah*, pp. 277-279, 294-296.

देश भर में अब स्थान-स्थान पर अंगरेज़ अफ़सरों ने बलूची प्रजा के साथ जिस तरह के अत्याचार किए, जिस तरह निर्दोष बलूची लड़कों के लम्बे बाल एक खूंटे में बांध कर निर्दयता के साथ अपनी बन्दूकों की गोलियों से उनके भेजों को निकाल बाहर किया, उस सबकी रोमांचकारी कहानी खुद सेना के अंगरेज अफ़सरों के लिखे हुए बयानों में मौजूद है।*

अन्त में अपने और खास कर अपनी प्रजा के इन असह्य कष्टों से विवश होकर जुलाई सन् 1839 में सिन्ध के अमीरों ने नए सन्धिपत्र पर हस्ताक्षर कर दिए। अनन्त लूट का माल और 21 लाख रुपये नकद युद्ध के खर्च के लिए लेकर अंगरेज़ी सेना आगे बढ़ी।

काबुल पर क़ब्ज़ा

इसके बाद अंगरेज़ी सेना अफ़ग़ानिस्तान पहुंची। थोड़े ही दिनों में केवल अपनी साज़िशों के प्रताप से अफ़ग़ानिस्तान के अनेक सरदारों को अपनी ओर फोड़ कर, शाहशुजा के नाम पर अंगरेज़ों ने एक बार काबुल पर क़ब्ज़ा कर लिया। शाहशुजा काबुल के तख्त पर बैठा दिया गया और दोस्तमोहम्मद खां को कैद करके भारत की ओर रवाना कर दिया गया।

अफ़ग़ानिस्तान की परिस्थिति

जिस उद्देश्य को सामने रख कर अंगरेज़ों ने अफ़ग़ानिस्तान में प्रवेश किया था, वह ज़ाहिरा पूरा हो गया। किन्तु अफ़ग़ानिस्तान के अन्दर युद्ध समाप्त नहीं हुआ। अंगरेज़ों की प्रारम्भिक सफलता का कारण केवल यह था कि उन्होंने वहां के अनेक सरदारों और बहुत-सी प्रजा को, झूठे वादे करके और शाहशुजा को सामने रख कर, अपने पक्ष में कर लिया था। जो अफ़गान अंगरेज़ों और शाहशुजा, दोनों के विरुद्ध थे, उन्होंने दोस्तमोहम्मद खां के वीर पुत्र, अकबर खां, के अधीन बराबर दो साल तक युद्ध जारी रखा। इस अरसे में अंगरेज़ अधिकारियों की दुरंगी चालों, उनके अत्याचारों और दुराचारों को देख-देख कर धीरे-धीरे उन अफ़गानों का हृदय भी अंगरेज़ों से फिर गया, जो आरम्भ में अंगरेज़ों और शाहशुजा के पक्ष में हो गए थे।

अफ़ग़ानिस्तान के अन्दर अंगरेज़ों के अत्याचारों के बारे में स्वयं पण्डित मोहनलाल ने, जो उस समय अंगरेज़ों के साथ था और उनका एक खास आदमी था, अपनी पुस्तक, 'लाइफ़ आफ़ दोस्तमोहम्मद खां,' में साफ़-साफ़ लिखा है कि अंगरेज़ों ने राजशासन न खुले अपने हाथों में लिया और न शाहशुजा के सुपुर्द किया। ऊपर से दिखाने के लिए उन्होंने तख्त शाहशुजा को दे दिया, किन्तु भीतर ही भीतर वे सल्तनत की छोटी से छोटी बातों में सन्धिपत्र के विरुद्ध हस्तक्षेप करते रहे। परिणाम यह हुआ कि शाहशुजा और उसके आदमी भी अंगरेजों से असन्तुष्ट हो गए। इसके अतिरिक्त, मोहनलाल लिखता है कि अंगरेज़ों ने वहां के विविध

---

* *Narrative of the Campaign of the Army of Indus in Sindh and Cabul,* in 838-39, by **P. H. Kennedy, 2 vols.**

सरदारों के साथ गम्भीर वादे किए थे, उनमें से एक को भी पूरा न किया। अंगरेज़ अफ़सरों की दस्तख़ती चिट्ठियां इन सब सरदारों के पास मौजूद थीं, किन्तु उनकी जरा परवाह न की गई। पण्डित मोहनलाल के शब्द हैं कि—"वास्तव में, हमारे अपने वादों को तोड़ने की और अपने राजनैतिक व्यवहार में लोगों को धोखा देने की मिसालें जिनका मुझे पता है, इतनी अधिक हैं कि उन सबको एक सिलसिले में जमा कर सकना कठिन है।"*

अफ़ग़ानिस्तान और बंगाल

अंगरेज़ उस समय अफ़ग़ानिस्तान के अन्दर ठीक वही खेल खेलना चाहते थे, जो प्लासी के संग्राम के समय वे बंगाल में सफलता के साथ खेल चुके थे। दोस्तमोहम्मद खां काबुल का सिराजुद्दौला था और शाहशुजा उस देश का मीर-ज़ाफर था। क्लाइव के मुकावले में इस समय अफ़ग़ानिस्तान के अन्दर कम्पनी सरकार का प्रतिनिधि विलियम मैकनाटन था, जो अपनी रीति-नीति में ठीक क्लाइव का अनुकरण करने का यत्न कर रहा था।

पण्डित मोहनलाल

मैकनाटन और उसके साथियों ने अपनी साजिशों से अफ़ग़ानिस्तान के लोगों में सदा के लिए फूट डालने का भरसक प्रयत्न किया। इस काम के लिए कश्मीरी पण्डित मोहनलाल उनके हाथों में एक अत्यन्त उपयोगी यन्त्र साबित हुआ। इतिहास लेखक जान के लिखता है —

> **"मालूम होता है कि मुन्शी मोहनलाल में देशद्रोही पैदा करने की असाधारण योग्यता थी; उसकी इस योग्यता की दमक युद्ध के अन्त तक फीकी नहीं पड़ी।"†**

गुप्त हत्याओं का प्रबन्ध

मोहनलाल का खास काम था रिश्वतें देकर अफ़ग़ान सरदारों को अपने देश के विरुद्ध फोड़ना, अफ़ग़ानियों में फूट डालना, शिया और सुन्नियों को एक दूसरे से लड़ाना, और जो सरकार अंगरेज़ों के हाथों में न आए, धन खर्च करके उन सब को गुप्त रीति से मरवा डालने का प्रबन्ध करना। अंगरेज अफ़सर लेफ्टिनेन्ट जान कोनोली ने 5 नवम्बर सन् 1841 को बालाहिसार के किले से मोहनलाल के नाम यह पत्र लिखा —

> **"क़ज़िलबाश सरदारों, शीरीनखां, नायबशरीफ़, और शिया मजहब के और सब सरदारों से कहो कि विद्रोहियों के विरुद्ध मिल जाएं। खान शीरीन को आप एक लाख रुपये देने का वादा कर सकते हैं, इस शर्त पर कि वह विद्रोहियों को मार डाले या गिरफ्तार कर ले; और सब शियाओं को हथियार देकर उन्हें लेकर**

---

* "There are, in fact, such numerous instances of violating our engagements and deceiving the people in our political proceedings, within what I am acquainted with, that it would be hard to assemble them in one series."—*Life of Dost Mohammad Khan*, pp. 208, 209.

† "The Munshi (Mohanlal) seems to have been endowed with a genius for traitor-making, the lustre of which remained undimmed to the very end of the war."—*History of the Afghan War*, by **Kaye, vol. i, p. 459.**

फ़ौरन तमाम विद्रोहियों पर हमला करें। शियाओं के लिए खैरखाही दिखाने का यही वक्त है। जो सरदार हमारी तरफ़ झुके हुए हैं, उनसे कहिए कि वे (अंगरेज़) एलची के पास अपनी ओर से बाइज्ज़त एजेण्ट भेज दें। कोशिश कीजिए और विद्रोहियों के अन्दर 'निफ़ाक़' (फूट) फैला दीजिए। आप जो कुछ करें, मुझसे सलाह कर लें और मुझे अकसर लिखते रहें।

"खास-खास विद्रोही सरदारों में से एक एक के सिर के लिए मैं दस-दस हज़ार रुपये देने का वादा करता हूं।" *

मालूम होता है, मुन्शी मोहनलाल काफी चालाक था। वह यह चाहता था कि अंगरेज़ एलची मैकनाटन की क़लम से भी यह बात साफ़ करा ली जाए। अंगरेज़ एलची के नाम उसने एक पत्र में लिखा :—

"लेफ्टिनेण्ट कोनोली के पत्र से मैं यह नहीं समझ सका कि विद्रोहियों को किस तरह क़त्ल किया जाए, किन्तु जिन लोगों को मैंने अब इस काम के लिए नियुक्त किया है, वे वादा करते हैं कि वे इन लोगों के घरों में जाकर ऐसे मौक़ों पर, जब वे अकेले हों, उनके सिर काट डालेंगे।"

लिखा है कि सबसे पहले सरदार अब्दुल्ला खां और मीर मसजिद जी को इन गुप्त हत्यारों की कटारों का शिकार बनाया गया।

अंगरेज़ों की घृणित पाशविक वृत्तियां

केवल इतना ही नहीं, वरन् इन दो साल में अंगरेज़ राजदूतों और अंगरेज़ अफ़सरों की घृणित पाशविक वृत्तियों में सम्भ्रान्त अफ़ग़ान घरों के अन्दर त्राहि-त्राहि मचा दी। अंगरेज़ इतिहास लेखक सर जान के लिखता है—

"हमारे अंगरेज़ अफ़सर उन प्रलोभनों को भी न जीत सके, जिनका जीतना सबसे अधिक कठिन है। काबुल की स्त्रियों के आकर्षण का वे मुकाबला न कर सके। अफ़ग़ानों को अपनी औरतों की इज्ज़त का बड़ा जबरदस्त खयाल रहता है; और काबुल के अन्दर इस तरह की कारंवाइयां की गई, जिनके कारण वे लोग शरम से पानी-पानी हो गए और बदले के लिए उतारू हो गए। ××× पूरे दो साल तक यह शरम काबुलियों के दिलों में आग की तरह धधकती रही। कुछ बाअसर और मशहूर आदमियों के घरों की भी इस तरह इज्ज़त ली गई। उन्होंने शिकायतें कीं, किन्तु व्यर्थ। यह कलुषित काम खुलेआम किया जा रहा था, सब पर प्रकट था, और प्रसिद्ध था। इसका कोई चारा न था। पाप कम होता दिखाई न

---

* "Tell the Kuzzil Bash chiefs, Shereen Khan, Nayab Sheriff, in fact, all the chiefs of Shiyah persuasion, to join against the rebels. You can promise one lakh of rupees to Khan Shereen on the condition of his killing and seizing the rebels and arming all the Shiyas, and immediately attacking all rebels. This is the time for the Shiyas to do good service. Tell the chiefs who are well disposed, to send respectable agents to the Envoy. Try and spread 'Nifak' among the rebels. In everything that you do consult me, and write very often.

"I promise ten thousand rupees for the head of each of the principal rebel chiefs."—Kaye's *History of the Afghan War*, vol. i, p. 202.

दिया। बल्कि उस समय तक जारी रहा, जब तक कि वह असह्य न हो गया। तब अत्याचारपीड़ितों ने देखा कि हमारे दुख का एकमात्र इलाज हमारे अपने हाथों में है। इस दुखकर घटना को केवल इन मोटे शब्दों में बयान कर देना ही काफ़ी है।"*

अफ़ग़ान चरित्र

अफ़ग़ान भोले थे। वे इन विदेशियों के चरित्र को न समझते थे। शुरू में वे उनकी साज़िशों के चक्कर में फंस गए। किन्तु वे वीर थे, उनमें आत्मस्वाभिमान था। वे एक सुसंगठित क़ौम थे। उन के राष्ट्रीय चरित्र में अभी तक वे घातक बुराइयां पैदा होने न पाई थीं, जिनके कारण उनसे कहीं अधिक प्राचीन और कहीं अधिक सभ्य भारतवासी अपने प्यारे देश की आजादी से हाथ धो चुके थे। अफ़ग़ानों ने अब अच्छी तरह देख लिया कि इन विदेशियों के हाथ हमें सिवाय दगा, बेईमानी, लूट, हत्या और अपनी स्त्रियों के सतीत्व नाश के और कुछ न मिल सका। उनकी आंखें खुल गईं। विदेशियों के चरित्र को अब वे पूरी तरह समझ गए। अपनी क़ौमी आजादी के साथ-साथ क़ौमी इज्जत तक का उन्हें निकटवर्ती भविष्य में ख़ात्मा दिखाई देने लगा। उनका खून खौलने लगा, वे बदले के लिए कटिबद्ध हो गए।

शाहशुजा का वध

अफ़ग़ानियों ने अब एक दिल होकर, अंगरेज़ों को अपने देश से बाहर निकाल देने का संकल्प कर लिया। वे समझ गए कि शाहशुजा हमारी सारी विपत्तियों की जड़ है। शाहशुजा को पता लग गया। वह डर गया। उसने फिर एक बार काबुल से भागकर भारत में आश्रय लेने का इरादा किया। किन्तु इसी बीच 5 अप्रैल, सन् 1842 को एक जोशीले अफ़गान ने अपनी बन्दूक से उस अफ़ग़ानी मीर जाफ़र के पापमय जीवन का अन्त कर दिया।

बर्न्स की हत्या

दूसरा मनुष्य, जिससे अफ़ग़ानी इस समय हद दरजे की घृणा करने लगे थे, अंगरेज राजदूत बर्न्स था। अफ़ग़ानों ने देख लिया कि जिस बर्न्स की अफ़ग़ान बादशाह और वहां

---

* "The temptations which are most difficult to withstand, were not withstood by our English officers. The attractions of the women of Cabul they did not know how to resist. The Afghans are very jealous of the honour of their women; and there were things done in Cabul which covered them with shame and roused them to revenge......For two long years, now had this shame been burning its into the hearts of the Cabulies; and there were some men of note and influence among them who knew themselves to be thus wronged, complaints were made; but they were made in vain. The scandal was open, undisguised, notorious. Redress was not to be obtained. The evil was not in course of suppression. It went on till it became intolerable and the injured then began to see that the only remedy was in their own hands. It is enough to state broadly this painful fact."—Kay's *History of the Afghan War*, vol. i, pp. 143, 144.

की जनता ने इतनी जबरस्त खातिर की थी, वह वास्तव में एक जासूस था। उसने अफ़ग़ान क़ौम के साथ विश्वासघात किया। एक दिन दिन-दहाड़े कुछ अफ़ग़ानियों ने आकर बर्न्स के टुकड़े-टुकड़े कर डाले।

मैकनाटन का छल

तीसरा मनुष्य, जो कि अफ़ग़ानिस्तान का क्लाइव बनना चाहता था, अंगरेज़ एलची मैकनाटन था। मैकनाटन को शुरू में यह पता न था कि अफ़ग़ानिस्तान बंगाल नहीं है। अब हवा बिगड़ी हुई देख कर मैकनाटन ने नये गवर्नर-जनरल, लार्ड एलेनब्रु की इजाज़त से दोस्तमोहम्मद खां के बेटे, अकबर खां, से यह वादा कर लिया कि हम दोस्तमोहम्मद खां को फिर वापस अफ़ग़ानिस्तान लाकर यहां के तख्त पर बैठा देंगे। इस अहदनामे पर मैकनाटन के दस्तख़त तक हो गए। इस पर भी मैकनाटन के दिल से दग़ा न गई। उसने अकबर खां को एक पत्र लिखा, जिसमें अपनी मित्रता का विश्वास दिलाते हुए लिखा कि मैं आपसे मिलना चाहता हूं। इसी पत्र के अन्त में उसने अकबर खां को सलाह दी कि आपके अमुक-अमुक सरदार आपके साथ दगा करने वाले हैं, आप उनका ख़ात्मा कर डालिए। ठीक उसी समय मैकनाटन ने उन सरदारों को अलग-अलग पत्र लिखे, जिनमें उन्हें उलटा अकबर खां के विरुद्ध भड़काने की कोशिश की। अकबर खां ने पत्र पाते ही अपने समस्त सरदारों को जमा किया। इनमें वे लोग भी शामिल थे, जिनके विरुद्ध मैकनाटन ने अकबर खां को आगाह किया था। इन सरदारों के सामने अकबर खां ने मैकनाटन का पत्र रख दिया। उन सरदारों के हाथों में भी वे पत्र मौजूद थे, जो मैकनाटन ने उनके नाम भेजे थे। इन लोगों ने ये पत्र भी अपने देश भाइयों के सामने पेश कर दिए। अन्त में सब लोग मैकनाटन के इस छल को देख कर आश्चर्य और क्रोध से भर गए।

अकबर खां उस समय चुप रहा। बाद में शीघ्र ही उसने मैकनाटन की प्रार्थना के अनुसार मैकनाटन को मुलाक़ात के लिए बुलाया। किन्तु मालूम होता है कि मैकनाटन इस समय अफ़ग़ानिस्तान के अन्दर अंगरेज़ों के सबसे बड़े शत्रु, मोहम्मद अकबर खां की हत्या की गुप्त योजना कर रहा था।

मैकनाटन की हत्या

लार्ड एलेनब्रु ने 5 अक्तूबर, सन् 1842 को मलका विक्टोरिया के नाम एक पत्र लिखा जिसमें स्पष्ट लिखा है कि उन दिनों गवर्नर-जनरल ने यह ऐलान कर दिया था कि जो मनुष्य अकबर खां का सिर काट कर लाएगा, उसे एक बहुत बड़ी रक़म नक़द बतौर इनाम के दी जाएगी। इस ऐलान की सूचना मैकनाटन को मिल चुकी थी। मैकनाटन जब अकबर खां से मिलने गया, तो अपने कुछ सिपाही छिपा कर साथ ले गया। इन सिपाहियों को उसने अकबर खां के खेमे के बाहर घात में छिपे रहने की आज्ञा दी और यह हुक्म दे दिया कि एक ख़ास इशारा पाते ही तुम लोग फौरन अपने गुप्त स्थानों से निकल कर अकबर खां पर टूट पड़ना। जिस समय कि मैकनाटन और अकबर खां में बातचीत हो रही थी और अकबर खां मैकनाटन से उसके दुरंगे पत्रों का उद्देश्य पूछ रहा था, अकस्मात एक अफ़ग़ान दौड़ता हुआ अकबर खां के सामने आया। आते ही उसने अकबर खां को घात में छिपे हुए

अंगरेज़ सिपाहियों का समाचार दिया। इस पर अकबर खां और मैकनाटन, दोनों खड़े हो गए, फिर कुछ बातचीत हुई। पहली गोली मैकनाटन ने चलाई और वार खाली गया। दूसरा वार अकबर खां का हुआ और मैकनाटन अपने घृणित पापों के प्रायश्चित रूप उसी खेमे के अन्दर गिर कर ढेर हो गया।*

इन घटनाओं के होते हुए भी अनेक अंगरेज़ इतिहास-लेखक लिखते हैं कि अकबर खां ने दगा करके मैकनाटन को मार डाला।

अंगरेज़ी फ़ौज का नाश

इस तरह अफ़ग़ानों की राष्ट्रीय विपत्तियों के तीन मुख्य अगुवा, शाहशुजा, बर्न्स और मैकनाटन, तीनों का अन्त हुआ। इसके बाद और बेशुमार अंगरेज़ों को एक-एक कर अफ़ग़ानी तलवारों के घाट उतरना पड़ा। बाकी की अंगरेज़ी सेना ने अकबर खां से प्रार्थना की कि हमें भारत लौटने की इजाज़त दी जाए और वादा किया कि हम यहां से जाते ही तुरन्त दोस्तमोहम्मद खां को अफ़ग़ानिस्तान लौटा देंगे। अकबर खां ने उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली। कुछ अंगरेज़ अफ़सर अपनी स्त्रियों सहित बतौर बन्धक के काबुल में रख लिए गए। बचीखुची अंगरेज़ी सेना ऐन कड़कड़ाती सरदी में भारत की ओर लौटी। यह यात्रा इन लोगों के लिए युद्ध के मैदान की निस्बत कहीं अधिक नाश कर साबित हुई। मार्ग भर में अनगिनत अफ़ग़ानी और बलूची दो साल तक अंगरेज़ी सेना के अत्याचारों का अनुभव प्राप्त कर चुके थे। इन लोगों ने अब पिछले जुल्मों का जी खोल कर बदला लिया। अनेक को मार्ग की सरदी और यात्रा की थकान के कारण सरहद की पहाड़ियों में सदा के लिए विश्राम लेना पड़ा। अन्त को सोलह हजार की उस विशाल सेना में से, जो अफ़ग़ानिस्तान विजय करने के लिए दो साल पहले भारत से निकली थी, केवल एक व्यक्ति, डाक्टर ब्राइडन, थका मांदा जलालाबाद तक बच कर जिन्दा पहुंचा।

लार्ड एलेनब्रु

इसी बीच फरवरी सन् 1842 में लार्ड आकलण्ड की जगह लार्ड एलेनब्रु भारत का गवर्नर-जनरल नियुक्त होकर कलकत्ते पहुंच चुका था। शाहशुजा, बर्न्स और मैकनाटन, तीनों की हत्याएं लार्ड एलेनब्रु ही के शासन काल में हुईं।

एलेनब्रु के विचार

शासन नीति में लार्ड एलेनब्रु के गुरु, वे दोनों वेल्सली भाई थे, जिनमें से एक गवर्नर-जनरल मार्क्विस आफ वेल्सली के नाम से, और दूसरा जनरल वेल्सली—और बाद में ड्यूक आफ़ वेलिंगटन—के नाम से ब्रिटिश साम्राज्य के इतिहास में प्रसिद्ध हैं। अफ़ग़ान युद्ध के बाकी हाल से हट कर हम अब एक क्षण के लिए एलेनब्रु के कुछ विचार दरशा देना चाहते हैं। गवर्नर-जनरल नियुक्त होने से 9 साल पहले 5 जुलाई, सन् 1833 को लार्ड एलेनब्रु ने इंगलिस्तान के हाउस आफ़ लार्ड्स में बोलते हुए कहा था—

“कोई भी मनुष्य, जिसका होश ठिकाने है, हिन्दोस्तान के अन्दर, राजनैतिक

---

*[*Nairang-i-Afghanistan*](#) by Syed Fida Hussain, Reviewed in the Modern Review for February 1907, p. 224.

और सैनिक शक्ति हिन्दोस्तानियों के हाथों में देनें की तजवीज नहीं कर सकता ।× × ×

''हिन्दोस्तान के अन्दर हमारा अस्तित्व ही इस बात पर निर्भर है कि उस देश में देशवासियों को सैनिक और राजनैतिक अधिकार से बिल्कुल दूर रखा जाए ।× × ×हमने भारतीय साम्राज्य तलवार से जीता है और तलवार से ही हमें उसे कायम रखना होगा ।× × ×''*

इन वाक्यों से और वेल्सली वन्धुओं के नाम लार्ड एलेनब्रु के अनेक पत्रों से भारतवासियों के प्रति लार्ड एलेनब्रु के विचार और भाव स्पष्ट विदित हैं । इंगलिस्तान छोड़ने से पहले 15 अक्तूबर, सन् 1841 को एलेनब्रु ने ड्यूक आफ़ वेलिंगटन के नाम एक पत्र लिखा, जिससे पता चलता है कि उसकी खास नज़र उस समय पंजाब और नेपाल, इन दो राज्यों के ऊपर थी । वह जिस तरह बन पड़े, इन दोनों को ब्रिटिश साम्राज्य में मिला लेने के लिए उत्सुक था । उसके अनेक पत्रों से यह भी सावित है कि भारतीय नरेशों के साथ जव चाहे सन्धियों को तोड़ देना वह उतना ही न्यायोचित समझता था, जितना कि उससे पहले का कोई भी और गवर्नर-जनरल ।

झूठे ऐलान

अफ़ग़ान युद्ध की जिल्लत भरी हारों और विपत्तियों का असर भारत के नरेशों और भारतीय प्रजा के ऊपर अंगरेज़ों के लिए हितकर न था । लार्ड एलेनब्रु ने 17 मई, सन् 1842 को ड्यूक आफ़ वेलिंगटन के नाम एक पत्र में गर्व के साथ स्वीकार किया है कि ''इस अहितकर प्रभाव को दूर करने के लिए मैंने भारतवर्ष भर में ऐलानों के जरिए झूठी खबरों के फैलाने में तनिक भी संकोच नहीं किया ।'' इस तरह के झूठे ऐलान ख़ास कर हैदराबाद दक्खिन में, सिन्ध में, नेपाल में, सागर जिले में और वुन्देलखण्ड में प्रकाशित कराए गए ।

मुसलमानों का शत्रु

पहले अफ़ग़ान युद्ध से सम्बन्ध रखने वाली लार्ड एलेनब्रु के समय की एक और घटना उल्लेख करना योग्य है । यूरोप के अन्दर करीब एक हजार साल से मुसलमानों और ईसाइयों में युद्ध चले आते थे । लार्ड एलेनब्रु मुसलमानों को अंगरेज़ों का ख़ास दुश्मन समझता था । उसका विचार था कि मुसलमान कभी अंगरेज़ों का साथ न देंगे । इसलिए वह हिन्दुओं को खुश करके उन्हें मुसलमानों के विरुद्ध अंगरेज़ों की ओर मिलाए रखना चाहता था । अफ़ग़ान युद्ध के समय हिन्दुओं को प्रसन्न करने का लार्ड एलेनब्रु को एक बड़ा सुन्दर अवसर हाथ आया ।

---

* "No man in his senses would propose to place the political and military power in India in the hands of the natives......

"Our very existence in India depended upon the exclusion of the natives from military and political power in that country......We had won the Empire of India by the sword, and we must preserve it by the same means......"— Lord Ellenborough in the House of Lords, July 5th, 1833.

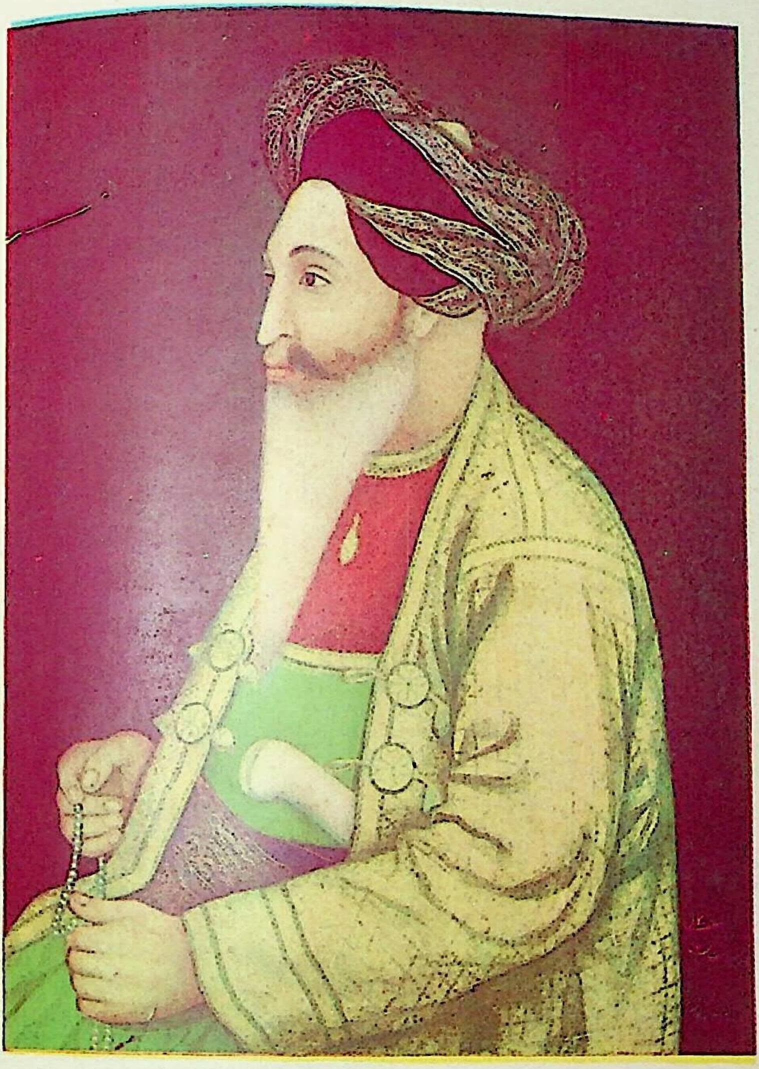

दोस्त मोहम्मद खां

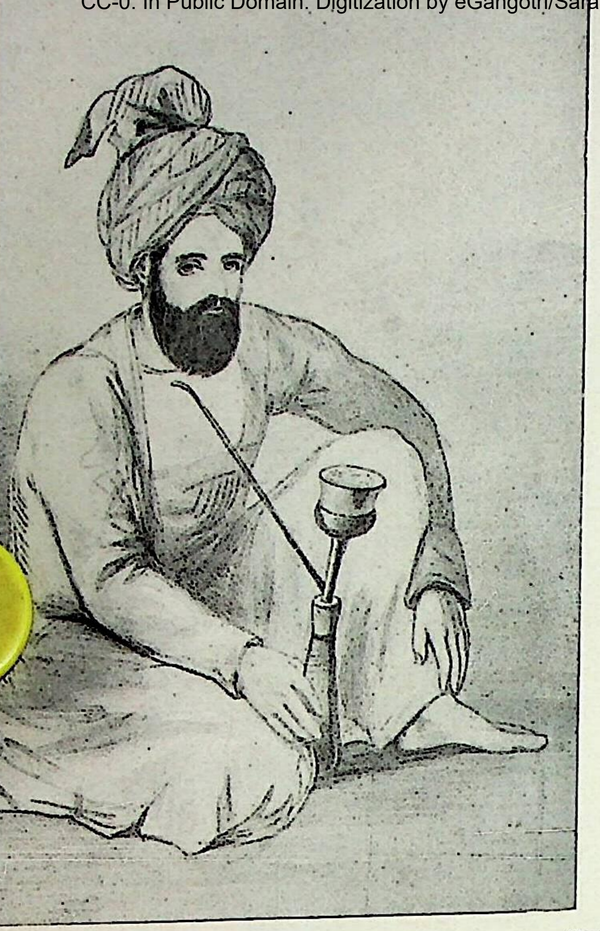

कप्तान एण्डरसन अफगान वेष में

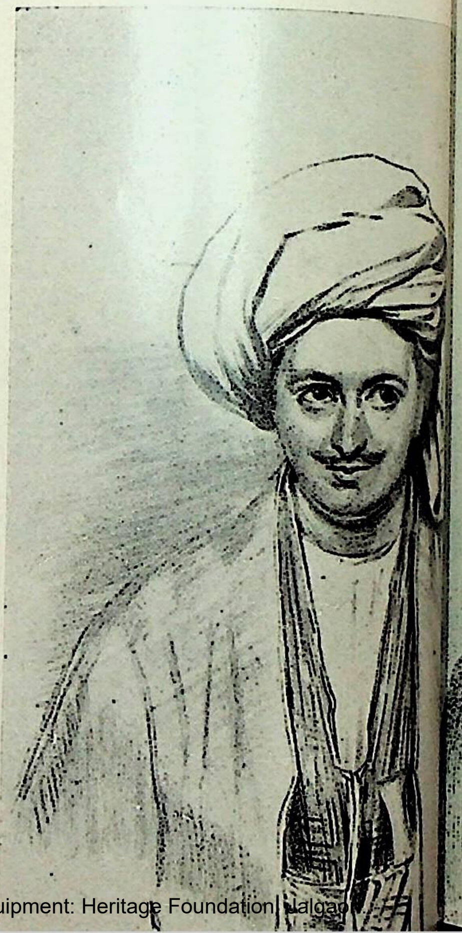

बोखारा की पोशाक में
सर अलेक्जेण्डर बर्न्स

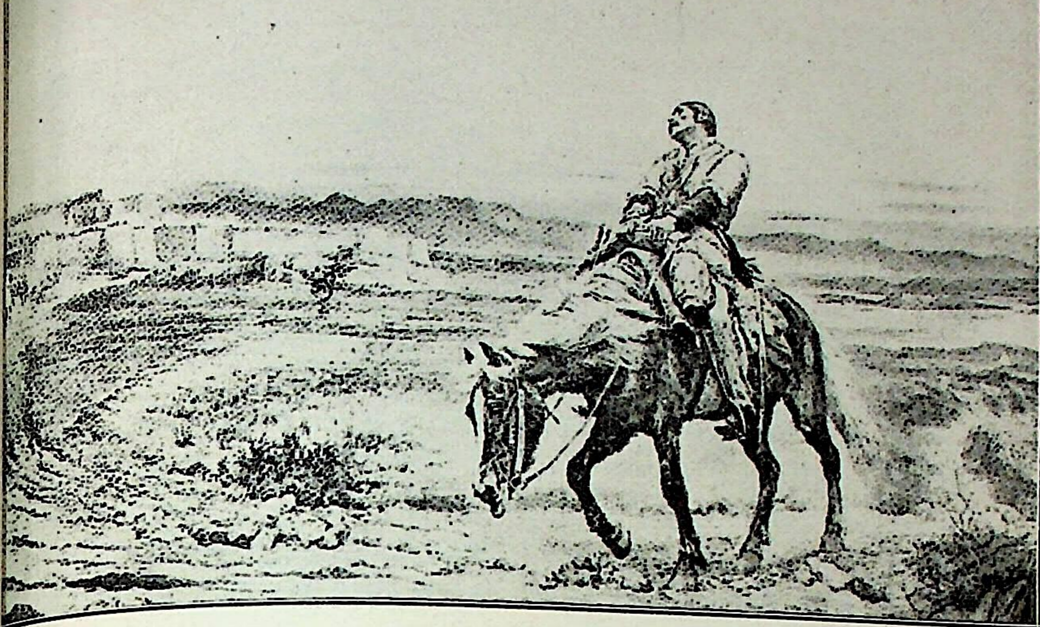

अफ़गानिस्तान से लौटती हुई सोलह हजार की फ़ौज में से अकेला जिन्दा बचने वाला डाक्टर ब्राइडन जलालाबाद के निकट

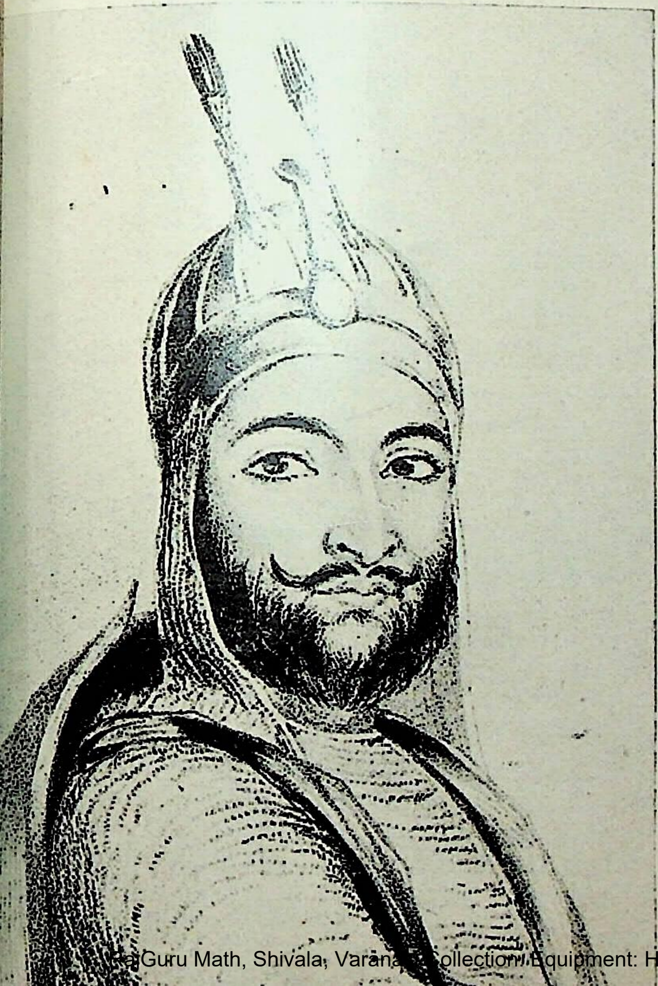

मोहम्मद अकबर खां

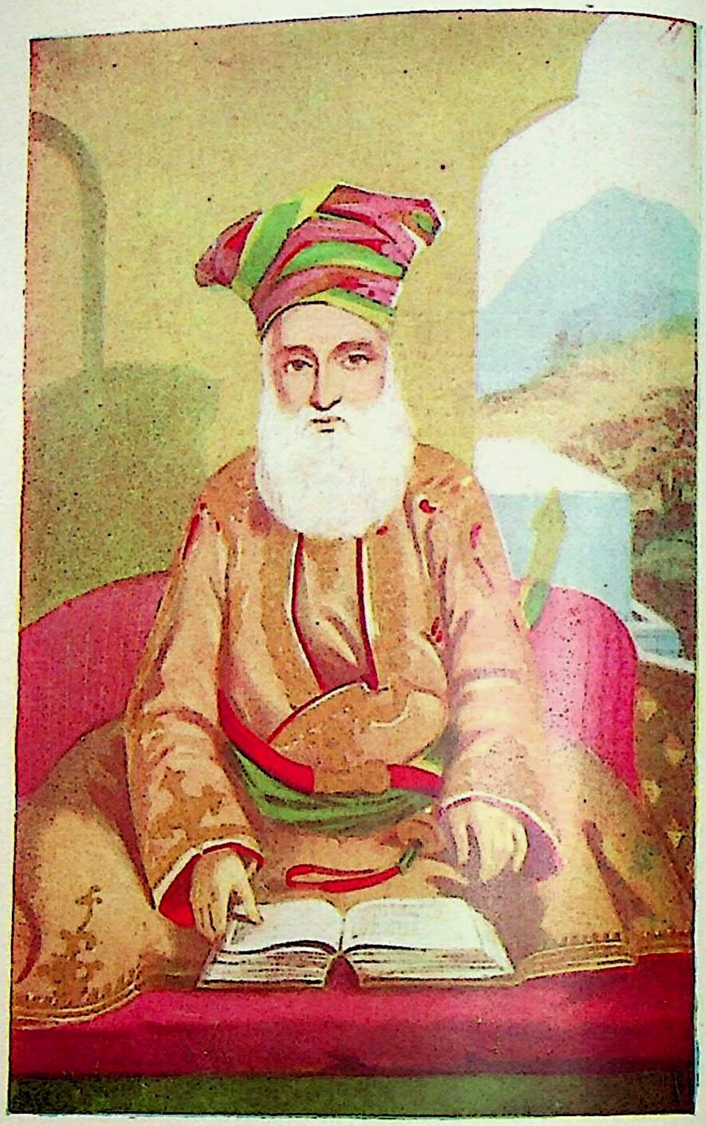

मीर रुस्तम खाँ

सोमनाथ का फाटक और युद्ध का अन्त

ईसा की ग्यारहवीं शताब्दी में, कहा जाता है, महमूद गज़नवी सोमनाथ के मन्दिर के फाटक के दो सुन्दर जड़ाऊ किवाड़ उखड़वा कर अपने साथ ग़ज़नी ले गया था। इन किवाड़ों की चित्रकारी इतनी सुन्दर थी कि वे बाद में महमूद के मकबरे पर लगा दिए गए। लार्ड एलेनब्रु ने हुक्म दिया कि ये प्राचीन किवाड़ गज़नी से भारतवर्ष लाकर एक शानदार जलूस के साथ सारे हिन्दोस्तान में फिराए जाएं, और अन्त में सोमनाथ के मन्दिर में पहुंचा कर अपनी प्राचीन जगह पर फिर से क़ायम कर दिए जाएं।

एलेनब्रु की आज्ञा का पालन किया गया। सोमनाथ के किवाड़ अफ़ग़ानिस्तान से लाए गए। पंजाब भर में इन किवाड़ों का शानदार जलूस निकाला गया। लार्ड एलेनब्रु ने 16 नवम्बर, सन् 1842 को भारत के सब हिन्दू सरदारों, राजाओं, महाराजाओं और सारी हिन्दू प्रजा के नाम एक ऐलान प्रकाशित किया, जिसमें अंगरेज़ सरकार को हिन्दुओं और हिन्दू धर्म का समर्थक बतलाया और उन्हें यह सूचना दी कि सोमनाथ के किवाड़ फिर से उसी मंदिर में लाकर लगा दिए जाएंगे। फिर भी, जो किवाड़ अफ़ग़ानिस्तान से आए थे, वे आगरे से आगे न बढ़ सके।

इसका कारण यह था कि उस समय के अंगरेज़ शासकों में दो विचारों के लोग मौजूद थे। एक वे, जो लार्ड एलेनब्रु के समान मुसलमानों की परवाह न करके हिन्दुओं को अपनी ओर मिलाए रखने के पक्ष में थे। दूसरे वे, जो मुसलमानों को अधिक नाराज कर लेना भी अंगरेज़ी राज के लिए हितकर न समझते थे। लार्ड मैकाले इस पक्ष का था। सोमनाथ के इन किवाड़ों के बारे में 18 जनवरी, सन् 1843 को लार्ड एलेनब्रु ने ड्यूक आफ वेलिंगटन को लिखा—

> **"मुझे हर तरह से विश्वास है कि सोमनाथ के मन्दिर के किवाड़ों को फिर से स्थापित करने के ऐलान से असंख्य हिन्दू जनता प्रसन्न और सन्तुष्ट हो गई है। मुझे कोई वजह यह मानने की नजर नहीं आती कि मुसलमान इससे नाराज हुए हों; किन्तु मैं इस विश्वास की ओर से अपनी आंखें बन्द नहीं कर सकता कि मुसलमान जाति जड़ से ही हमारी दुश्मन है, इसलिए हमारी सच्ची नीति हिन्दुओं को अपनी ओर मिलाए रखने की होनी चाहिए×××।"***

इसी तरह के विचार लार्ड एलेनब्रु के दूसरे पत्रों में भी भरे हुए हैं। अनेक पत्रों से यह भी साफ मालूम होता है कि वह औरंगजेब जैसे मुसलमानों के कामों की याद दिला-दिला कर उन्हें हिन्दू धर्म का शत्रु, और अंगरेज़ सरकार को हिन्दू धर्म और हिन्दू जाति का रक्षक दिखलाना चाहता था।

---

* "I have every reason to think that the restoration of the gates of the temple of Somnath has conciliated and gratified the great mass of the Hindoo population. I have no reason to suppose that it has offended the Mussalmans, but I can not close my eyes to the belief that, that race is fundamentally hostile to us, and therefore our true policy is to conciliate the Hindoos....."—Lord Ellenborough to the Duke of Wellington, January 18, 1843.

मैकाले की वक्तृता

सोमनाथ के किवाड़ अभी आगरे तक भी पहुंचने न पाए थे कि कई अंगरेज़ों ने एलेनब्रु की इस कार्रवाई के विरुद्ध शोर मचाना शुरू कर दिया। लार्ड मैकाले ने इंगलिस्तान की पार्लियामेण्ट में वक्तृता देते हुए कहा—

"मुसलमानों की तादाद कम है, किन्तु उनका महत्व उनकी तादाद से कहीं अधिक है; कारण यह है कि मुसलमान जाति संयुक्त, जोशीली, महत्वाकांक्षी और युद्धप्रेमी है।××× जो मनुष्य हिन्दोस्तान के मुसलमानों के बारे में कुछ भी जानकारी रखता है, उसे इसमें सन्देह नहीं हो सकता कि इस तरह उनके धर्म का अपमान करने से उनमें भयंकर क्रोध भड़क उठेगा।"*

अंगरेज़ शासकों की भारतीय नीति

लार्ड एलेनब्रु पर यह इलज़ाम लगाया गया कि उसने मूर्तिपूजा का समर्थन करके ईसाई धर्म को कलंकित किया। वास्तव में, न लार्ड एलेनब्रु को हिंदुओं की मूर्तिपूजा से कोई प्रेम था और न लार्ड मैकाले को मुसलमानों के धर्म से। किन्तु उस समय से बराबर भारत के हिंदुओं और मुसलमानों को एक दूसरे से लड़ाए रखना अंगरेज़ शासकों की भारतीय नीति का एक विशेष अंग रहा है।

लार्ड मैकाले जैसों के विरोध के कारण लार्ड एलेनब्रु की बात न चल सकी। हम ऊपर लिख चुके हैं कि सोमनाथ के मंदिर के किवाड़ आगरे में रोक दिए गए।

राजनैतिक छल

पाठकों को आश्चर्य होगा कि जब अफ़ग़ानिस्तान पर हमला करने वाली सारी अंगरेज़ी सेना में से केवल एक अंगरेज़ ज़िंदा बच कर हिन्दोस्तान लौट सका, तब वे प्राचीन किवाड़ अफ़ग़ानिस्तान से यहां तक किस तरह आ गए। इस सम्बंध में सबसे अधिक चमत्कारिक बात यही है कि जो किवाड़ इतनी धूमधाम से जलूस के साथ आगरे लाए गए, वह सोमनाथ मंदिर के किंवाड़ थे ही नहीं, न वे ग़ज़नी से लाए गए थे। वे चंदन के किवाड़ एलेनब्रु के हुक्म से जलालाबाद में बनाए गए थे। यह सारा ढोंग और बनावटी किवाड़ों का जलूस केवल एक राजनैतिक छल था। कम्पनी के शासकों की कूटनीति का इससे सुंदर उदाहरण और क्या मिल सकता है।

अफ़ग़ान युद्ध का खमियाजा

इसके बाद पहले अफ़ग़ान युद्ध की केवल थोड़ी-सी कहानी बाकी रह जाती है। युद्ध का खर्च दो साल से कम्पनी सरकार के लिए असह्य हो रहा था। 15 सितम्बर, सन् 1841 को लार्ड एलेनब्रु ने मलका विक्टोरिया के नाम एक पत्र में लिखा कि अफ़ग़ान युद्ध

---

* "The Mohammedans are a minority, but their importance is much more than proportioned to their number: for they are an united, a zealous, an ambitious, a war like class......Nobody who knows anything of the Mohammedans of India can doubt that this affront to their faith will excite their fiercest indignation."—Lord Macaulay, March 1843.

का खर्च इस समय कम्पनी सरकार को साढ़े बारह लाख पाउंड (करीब सवा करोड़ रुपये) सालाना देना पड़ रहा है। इसके अतिरिक्त करीब साढ़े ग्यारह लाख पौंड सालाना उस समय सिंधु नदी के इस पार नयी फ़ौजों पर खर्च करना पड़ता था। ब्रिटिश भारतीय सरकार के बजट में सन् 1839-40 में 24 लाख पौंड का घाटा हुआ, जो सन् 1840-41 में बीस लाख पौंड और बढ़ गया।

लेकिन फिर भी एशिया के अंदर कम्पनी की सेना की इस ज़बरदस्त ज़िल्लत को धोना आवश्यक था। दोस्तमोहम्मद खां अभी तक भारत में क़ैद था और अनेक अंगरेज़ बंधक अफ़ग़ानिस्तान में मौजूद थे। युद्ध बंद करने के लिए अफ़ग़ानिस्तान के साथ कोई बाज़ाब्ता सन्धि भी न हुई थी।

दोबारा चढ़ाई

जनरल पोलक एक नयी विशाल सेना सहित अफ़ग़ानिस्तान भेजा गया। लार्ड एलेनब्रु के नाम ड्यूक ऑफ़ वेलिंगटन के एक पत्र में लिखा है कि काबुल पहुंच कर जनरल पोलक ने अपनी सेना को आज्ञा दी कि काबुल के मुख्य बाजार और वहां की दो सुंदर मस्जिदों को आग लगा दी जाए। जनरल पोलक की आज्ञा का पालन किया गया। उसके बाद, कहा जाता है, कम्पनी की सेना ने काबुल के नगर को लूटा और कई इमारतों को ज़मीन से मिला दिया।

युद्ध का अन्त

किंतु अंत में अंगरेज़ों को फिर एक बार अफ़गानों के हाथों हार स्वीकार करनी पड़ी। अकबर खां और उसके अफ़ग़ानों ने इस बार भी अंगरेज़ों के साथ काफ़ी उदारता का व्यवहार किया और संधि हो गई। दोस्तमोहम्मद खां और उसके साथ के अफ़गान कदी काबुल वापिस पहुंचा दिए गए। दोस्तमोहम्मद खां फिर अफ़गानिस्तान के तख्त पर बैठा। युद्ध के समस्त अंगरेज़ बंधक छोड़ दिए गए। पोलक को अपने बाकी आदमियों सहित अफ़ग़ानिस्तान की सरहद छोड़ कर चले जाने की इजाज़त मिल गई। इस तरह अफ़ग़ानिस्तान की राष्ट्रीय स्वाधीनता को हरने का अंगरेज़ों का पहला प्रयत्न निष्फल गया। इतिहास लेखक सर जॉन के इस युद्ध के नतीजे के बारे में लिखता है—

> **"एक महान् सचाई पाठकों की आंखों के सामने आ जाती है। जब कभी हमारे किसी पाप कर्म के ऊपर परमात्मा का भारी श्राप होता है, तो हमारे राजनीतिज्ञों की बुद्धिमत्ता मूर्खता साबित होती है, और हमारी सेनाओं की शक्तिमत्ता निर्बलता बन जाती है।"***

---

*"......The readar recognises one great truth, that the wisdom of our statesmen is but foolishness, and the might of our armies is but weakness, when the curse of God is sitting heavily upon an unholy cause."—Kaye's *History of the Afghan War.*

अड़तीसवां अध्याय

सिन्ध पर अंगरेज़ों का क़ब्जा

सिन्ध की राजनैतिक स्थिति

सम्राट हुमायूं के समय से सन् 1749 तक, अर्थात् दो सौ वर्ष से ऊपर तक, सि भारतीय मुग़ल साम्राज्य का एक सूबा था। सन् 1740 में नादिरशाह ने सिन्ध पर हम किया। सन् 1749 में सिन्ध के अमीर दिल्ली सम्राट के स्थान पर अफ़ग़ानिस्तान बादशाह को सालाना ख़िराज भेजने लगे। इसके बाद करीब 90 साल तक के अधि समय में सिन्ध के अमीर अपने देश के सर्वथा स्वाधीन शासक बने रहे।

कम्पनी की कोठी और ठट्ठे का पतन

सिन्ध के साथ ईस्ट इण्डिया कम्पनी का सम्बंध 18 वीं सदी के मध्य में शुरू हु सन् 1758 ईसवी में अमीर गुलामशाह कल्होर ने कम्पनी को ठट्ठा और औरंगबंदर कोठियां बनाने की इजाज़त दे दी। ठट्ठा उस समय सिन्ध में कपड़े के व्यवसाय का विशेष केंद्र था। सर हेनरी पार्टिजर लिखता है कि उन दिनों नफ़ीस कपड़ों लुंगियों के बुनने वाले 40,000 कारीगर ठट्ठा में रहते थे, 20,000 और कई तर कारीगर थे, और इसके अतिरिक्त 60,000 महाजन, साहूकार, नाज के व्यापारी दूसरे दुकानदार थे। बच्चे, स्त्रियां और दूसरे लोग अलग रहे। किंतु कम्पनी की क़ायम होने के पचास साल के अंदर, यानी सन् 1809 में, ठट्ठे की कुल आब घटते-घटते केवल 20,000 रह गई।*

कम्पनी को व्यापार की सुविधाएं

अमीर गुलामशाह ने कम्पनी को तिजारत के लिए अनेक सुविधाएं प्रदान कर थीं। किंतु कम्पनी के एजेंटों का व्यवहार इतना अनुचित होने लगा कि सन् 177 गुलामशाह के बेटे सरफ़राज ने कम्पनी की कोठियां बंद करवा दीं। सन् 179 कम्पनी का एक नया एजेंट, नैथन क्रो, हैदराबाद पहुंचा। क्रो की प्रार्थना पर उस के अमीर, फतहअली खां, ने अंगरेज़ों को सिन्ध में तिजारत करने की फिर से इजा दी, और कराची में क्रो को अपने लिए एक मकान बनाने की भी अनुमति मिल गई। फिर दूसरी बार क्रो और उसके गुमाश्तों का व्यवहार सिन्ध के कारीगरों और वह प्रजा के साथ इतना असह्य हो गया कि सन् 1802 में क्रो को आज्ञा दी गई कि दस के भीतर सिन्ध छोड़ कर चले जाओ।

सिन्ध में कम्पनी का एलची

इसके बाद सन् 1807 में बम्बई के अंगरेज़ गवर्नर ने फिर कम्पनी की ओ

---

* *Sind Gazetteer*, vol. A, p. 116.

एक एलची सिन्ध भेजा । अमीर गुलामअली, अमीर करमअली और अमीर मुरादअली उस समय सिन्ध के शासक थे । सिन्ध के अमीरों में यह एक विचित्र प्रथा चली आती थी कि कभी-कभी कई-कई भाई मिल कर प्रेम से एक साथ देश पर शासन करते थे । अंगरेज़ एलची की प्रार्थना पर अमीरों ने अब अंगरेज़ कम्पनी के साथ मित्रता की एक सन्धि कर ली, जिसमें लिखा था—

> "यह सन्धि पीढ़ी-दर-पीढ़ी क़यामत के दिन तक क़ायम रहेगी और अंगरेज़ सरकार सिन्ध के अमीरों की एक फुट ज़मीन की भी कभी इच्छा न करेगी ।"* इत्यादि ।

सन् 1809 की दूसरी सन्धि

इस सन्धि में लिखा था कि अंगरेज़ सरकार और सिन्ध की सरकार, दोनों एक-दूसरे के शत्रुओं के विरुद्ध एक-दूसरे की मदद करेंगे । किंतु गवर्नर-जनरल को यह शर्त पसन्द न थी, इसलिए इस सन्धि पर हस्ताक्षर हुए अभी दो साल भी न हुए थे कि सन् 1809 में एक दूसरा अंगरेज़, स्मिथ, सन् 1807 की सन्धि को रद्द करने और एक दूसरी सन्धि करने के लिए सिन्ध पहुंचा ।

22 अगस्त, सन् 1809 को अंगरेज़ों और सिन्ध के अमीरों के बीच फिर एक सन्धि हुई, जिसकी चार धाराएं ये थीं—

> 1—अंगरेज़ सरकार और सिन्ध की सरकार के बीच सदा के लिए दोस्ती Eternal friendship क़ायम रहेगी × × × इत्यादि ।
>
> 2—इन दोनों बादशाहतों के बीच कभी शत्रुता उत्पन्न न होगी ।
>
> 3—अंगरेज़ सरकार और सिन्ध सरकार, दोनों एक दूसरे के यहां अपने वकील भेजती रहेंगी । और
>
> 4—सिन्ध की सरकार सिन्ध में फ्रान्सीसी क़ौम को बसने न देगी ।

इस दूसरी सन्धि के बारे में कप्तान ईस्टविक, जो बाद में अंगरेज़ कम्पनी की ओर से सिन्ध में असिस्टेंट रेज़िडेंट नियुक्त हुआ, लिखता है—

> "जब हम अपनी मित्रता और शुभकामना दरशाने के लिए सिन्ध के दरबार में अपना राजदूत भेज रहे थे, ठीक उसी समय हमारा जो राजदूत काबुल गया हुआ था, वह गवर्नर जनरल के सामने यह योजना पेश कर रहा था कि सिन्ध को विजय कर लिया जाए × × × और सिन्ध का इलाक़ा भारतीय ब्रिटिश राज में मिला लिया जाए ।"†

किंतु सिन्ध को अंगरेज़ी राज में मिलाने का अभी समय न आया था । गवर्नर-जनरल लार्ड मिंटो ने अपने राजदूत की सलाह को अस्वीकार किया ।

---

* *Dry Leaves from Young Egypt*, by W. J. Eastwick, M. P., p. 334.

† "......at the very moment we were sending an ambassador to the court of Sindh with expressions of friendship and good will, our envoy at Kabul was proposing to the Governor-General to subjugate the country...... and incorporate the territory with the British possessions in India."—*Dry Leaves from Young Egypt*, by an Ex-political, p. 243.

सन् 1820 की सन्धि

सन् 1816 में अंगरेज़ों ने कच्छ पर हमला किया । तीन साल बाद कच्छ पर कर लिया गया । कच्छ की सरहद सिन्ध से मिली हुई है, इसलिए सिन्ध के साथ फिर सन्धि की आवश्यकता अनुभव हुई । सन् 1820 में तीसरी बार सिन्ध के अमीरों के मित्रता की सन्धि की गई ।

हमें इन सन्धियों और अंगरेज़ों की ओर से उनके हर बार के उल्लंघन को से बयान करने की आवश्यकता नहीं है । कप्तान ईस्टविक साफ़ लिखता है—

> **"हम उस समय तक के लिए चिरस्थायी मित्रता की क़समें खा लेते थे, तक कि हमें देश पर कब्जा करने और अपने 'मित्रों' का नाश करने और उन्हें कर लेने का सुविधाजनक अवसर न मिल जाए ।"***

दरियाना की सलाह

इसके बाद वह समय आया, जब जनवरी सन् 1831 में सर अलेक्जेंडर जो उस समय लेफ्टिनेंट बर्न्स था, महाराजा रणजीतसिंह के लिए उपहार लेकर पहुंचा । ऊपर एक अध्याय में बयान किया जा चुका है कि उपहार ले जाने के बहाने और उसको भेजने वालों का गुप्त उद्देश्य सिन्धु नदी के मार्ग की थाह लेना था । सर मैंकिटाश लिखता है कि सिन्ध का एक हिंदू व्यापारी, जिसका नाम दरियाना था, सिन्ध के अमीरों को आगाह करता रहता था कि अंगरेज़ों पर विश्वास न किया जाए उन्हें मुल्क में घुसने न दिया जाए । वह अमीरों से कहता था——

> **"इस क़ौम ने जब कभी किसी के साथ शुरू में दोस्ती की, अन्त में वे दुश्मन साबित हुए । जिस देश में भी वे अत्यन्त मित्रता की प्रतिज्ञाएं करते हुए उसी पर अन्त में उन्होंने कब्जा कर लिया ।"†**

सर जेम्स मैंकिटाश इस हिंदू व्यापारी के बारे में लिखता है कि वह "एक कुत्ता" था ।‡

बर्न्स की सिन्धु यात्रा

सिन्ध के अमीर भी बर्न्स की इस सिन्धु-यात्रा पर संदेह करते थे । वे इजाज़त देने के विरुद्ध थे । फिर भी, अमीरों ने एशियाई तरीके पर बर्न्स और उसके की खूब खातिर तवाज़ो की और उन्हें जिस तरह बहका कर और डरा कर अंत में रज़ामंदी हासिल कर ली गई, उसका बयान ऊपर किया जा चुका है । बर्न्स अपनी के वृतांत में लिखता है कि जिस समय वह महाराजा रणजीतसिंह के लिए उपहार लिए हुए अपने जहाज़ों में नदी के ऊपर की ओर चढ़ा चला जा रहा था, एक के किनारे खड़ा हुआ अपने पास के साथी से कहने लगा——

---

* "......we swore perpetual amity until a convenient opportunity propriating the country, and the destruction and imprisonment allies."—*Dry Leaves from Young Egypt*, p. 244.

† Sir James Mackintosh in his journal, dated 9th February, 1812.

‡ **"A shrewd dog."**

"अफ़सोस ! सिन्ध अब गया, क्योंकि अंगरेज़ों ने दरिया का रास्ता देख लिया और यही सिन्ध को विजय करने का रास्ता है ।"*

कप्तान ईस्टविक लिखता है—

"यह पता लगा लिया गया कि सिन्धु नदी से जहाज़ आ सकते हैं; अमीरों के जवाहरात को देख कर, और जो नज़रें उन्होंने अपने यूरोपियन मेहमानों को भेंट कीं उन्हें देख कर यह भी मालूम हो गया कि सिन्ध के अमीरों के पास खूब धन है ।" †

मित्रता बढ़ाने के लिए सन् 1832 और सन् 1834 में और नयी-नयी सन्धियां की गईं । सिन्धु नदी से अंगरेज़ों के आने-जाने का अधिकार प्राप्त कर लिया गया । सन् 1834 की सन्धि में लिखा गया—

"दोनों शक्तियां, जिनके बीच यह सन्धि हो रही हैं, प्रतिज्ञा करती ह कि हम पीढ़ी-दर-पीढ़ी कभी भी एक दूसरे के इलाके को लोभ की दृष्टि से न देखेंगे ।"‡

सिन्ध के विरुद्ध सन्धि

इसके बाद 26 जून, सन् 1838 को अंगरेज़ कम्पनी महाराजा रणजीतसिंह और शाहशुजा, इन तीनों के बीच वह सन्धि हुई, जिसका जिक्र पहले अफ़ग़ान युद्ध के सम्बंध में किया जा चुका है । सिन्ध के अमीरों से इसमें कोई सलाह नहीं ली गई । फिर भी, इस सन्धि में ऊपर ही यह तय कर लिया गया कि सिन्ध के साथ अंगरेज़ जो भी व्यवहार करें, शाहशुजा या रणजीतसिंह को कोई एतराज़ न होगा । इस संधि के बारे में इतिहास लेखक सर जान के लिखता है—

"26 जून, सन् 1838 की उस घड़ी से सिन्ध के अमीरों का सर्वनाश शुरू होता है । उस घड़ी से ही वास्तव में सिन्ध के अमीरों की स्वाधीनता खत्म हो जाती है ।"

अमीरों से खिराज की मांग

उस समय तक जितनी सन्धियां सिन्ध के अमीरों के साथ की जा चुकी थीं, वे सब अब रद्द करार कर दी गईं । अफ़ग़ानिस्तान पर हमला करने के लिए अंगरेज़ी सेना सिन्ध भेज दी गई । सिन्ध के अमीरों से कहा गया कि इस सेना को अपने देश में से होकर अफ़ग़ानिस्तान जाने दो, कम्पनी के जहाज़ों के लिए जलाने की लकड़ी और मार्ग में सेना के लिए रसद इत्यादि का प्रबंध करो, मार्ग के ख़ास-ख़ास क़िले अंगरेज़ी सेना के हवाले कर दो, और चूंकि यह युद्ध अफ़ग़ानिस्तान के पदच्युत बादशाह शाहशुजा को फिर से गद्दी पर बैठाने के लिए किया जा रहा है, और पहल चूंकि किसी समय सिन्ध अफ़ग़ानिस्तान के बादशाह

---

* "Alas! Sindh is now lost, since the English have seen the river which is the road to its conquest."—Burnes, *Travels*, vol. iii.

† *Dry Leaves from Young Egypt*, p. 249.

‡ "The two contracting powers bound themselves from generation to generation never to look with the eye of covetousness on the possessions of each other." Ibid, p. 249.

को ख़िराज दिया करता था, इसलिए युद्ध के खर्च के लिए 21 लाख रुपये नक़द और आइंदा हमेशा के लिए 3 लाख रुपये सालाना तुम अंगरेज कम्पनी को दिया करो, इत्यादि।

इससे पहले सन् 1809 की सन्धि के समय गवर्नर-जनरल स्वीकार कर चुका था कि अफ़ग़ानिस्तान के बादशाह को सिन्ध के अमीरों से ख़िराज लेने का कोई हक़ नहीं है। इसके अतिरिक्त सिन्ध के अमीरों ने इस समय अफ़गानिस्तान के बादशाह के लिखे दो प्रतिज्ञापत्र पेश किए, जिन पर अफ़ग़ानिस्तान के बादशाह के दस्तखत और मोहर मौजूद थी और जिनमें लिखा था कि भविष्य में सिन्ध के अमीरों से कभी किसी तरह का कोई ख़िराज न लिया जाएगा।*

अंगरेज़ों की ईमानदारी

किंतु इनमें से किसी बात का कोई ख्याल नहीं किया गया। सिन्ध के अमीरों से कहा गया कि अंगरेज़ों को इस समय जरूरत है और दोस्ती केवल इसी शर्त पर क़ायम रह सकती है कि तुम अंगरेज़ों की मदद करो। इस अनुचित व्यवहार पर इतिहास लेखक सर जान के लिखता है—

> **“और इसी का नाम अंगरेज़ों की ईमानदारी है। × × × सबसे पहले अंगरेज़ों ने अपने वादों को तोड़ा। उन्होंने सिन्ध के अमीरों को सिखा दिया कि सन्धियों का केवल उस समय तक पालन करना चाहिए, जिस समय तक कि उनका पालन करने में फ़ायदा हो। × × × भेड़िए और मेमने के क़िस्से में मेमने को खा जाने के लिए भेड़िए ने जो बहाने गढ़े, वे उन बहानों से अधिक चतुराई के न थे, जिनका अंगरेज़ सरकार ने अमीरों के साथ अपने सारे व्यवहार में उपयोग किया।”†**

जनवरी सन् 1839 में हैदराबाद के अमीर नूरमोहम्मद खां और कप्तान ईस्टविक के बीच इस सम्बंध में जो बातचीत हुई, उसका बयान पिछले अध्याय में किया जा चुका है।

सिन्ध का राज उस समय दो भागों में बंटा हुआ है। ऊपर के भाग की राजधानी खैरपुर थी। नीचे का हिस्सा हैदराबाद दरबार के शासन में था। दोनों में हैदराबाद के अमीर मुख्य समझे जाते थे। फिर भी, हैदराबाद के अमीरों और खरपुर के अमीरों में प्रेम और समानता का व्यवहार था। दोनों एक ही कुल से थे। कप्तान ईस्टविक की बातचीत हैदराबाद के तीनों अमीरों के साथ हुई थी। इसके बाद खैरपुर के अमीर मीर रुस्तम खां की बारी आई।

---

* Blue Book, p. 31.

† “And this is British justice!......The British were the first to perpetra a breach of good faith. They taught the Amirs of Sindh that treaties we to be regarded, only so long as it was convenient to regard them......The wo in the fable did not show greater cleverness in the discovery of a pretext fo devouring the lamb that the British Government has shown in all its dealin with the Amirs.”—Kaye, *The Calcutta Review*, vol. i, pp. 220-223.

मीर रुस्तम खां

मीर रुस्तम खां एक अस्सी वर्ष का बूढ़ा और अत्यंत शांतिप्रिय बलूची नरेश था। हैदराबाद के अमीर, जिनका वह चाचा लगता था, उसका बड़ा आदर करते थे। सर अलेक्जेंडर बर्न्स अपने यात्रा वृत्तांत में लिखता है कि अमीर रुस्तम खां ने बड़े प्रेम और आदर के साथ बर्न्स और उसके साथियों का स्वागत किया। उसने अपने बूढ़े वज़ीर, फ़तह-मोहम्मद खां ग़ोरी, को पालकियों, घोड़ों, और उपहारों सहित बर्न्स का स्वागत करने के लिए अस्सी मील भेजा। तीन सप्ताह तक उसने अंगरेज़ एलची को अपनी राजधानी में रोक कर उसकी ख़ूब ख़ातिरदारी की और बड़ी-बड़ी दावतें हुईं। मीर रुस्तम खां के चरित्र के बारे में सर अलेक्ज़ेण्डर बर्न्स लिखता है कि उसकी बातचीत अत्यन्त मीठी थी, और वह स्वभाव से उदार, सुशील और सब पर विश्वास करने वाला मनुष्य था।*

मीर रुस्तम खां के साथ इससे पहले अंगरेज़ कम्पनी की यह साफ़ सन्धि हो चुकी थी कि सिन्धु नदी के दाईं ओर या बाईं ओर अंगरेज़ कभी किसी भी स्थान या क़िले पर कब्जा न करना चाहेंगे। किन्तु अब अंगरेज़ों को अफ़ग़ान युद्ध की सफलता के लिए भक्खर का क़िला लेने की आवश्यकता अनुभव हुई। यह क़िला सिन्धु नदी के बीच में एक टापू पर बना हुआ था। मीर रुस्तम खां नें पिछली सन्धि की याद दिलाई। गवर्नर-जनरल ने लिखा कि केवल युद्ध के लिए कम्पनी को भक्खर के क़िले की आवश्यकता है और वादा किया कि अफ़ग़ान युद्ध समाप्त होते ही क़िला मीर रुस्तम खां को वापस कर दिया जाएगा। ईस्टविक लिखता है कि इस गम्भीर और साफ़ वादे पर क़िला अंगरेज़ों के सुपुर्द कर दिया गया और गवर्नर-जनरल ने बड़ी प्रशंसा के शब्दों में मीर रुस्तम खां को धन्यवाद दिया। किन्तु यह क़िला फिर कभी भी मीर रुस्तम खां को वापस नहीं किया गया।

रुस्तम खां के साथ नयी सन्धि

24 दिसम्बर, सन् 1838 को गवर्नर-जनरल के वादे के ऊपर 10 धाराओं की एक नयी सन्धि मीर रुस्तम खां के साथ और बहुत समझाने बुझाने के बाद 11 मार्च, सन् 1839 को 14 धाराओं की एक नयी सन्धि हैदराबाद के अमीरों के साथ हुई।

जिस समय यह नयी सन्धि अंगरेजों की ओर से पेश की गई, तो उनमें से एक अमीर पिछली सब सन्धियां सामने रख कर कहने लगा—

> **"इन सबका अब क्या होगा? जिस दिन से हमने पहली सन्धि की है, हमेशा कोई न कोई नयी चीज पेश की जाती है। हम आपके साथ दोस्ती क़ायम रखना चाहते हैं, किन्तु हम इस तरह लगातार दिक़ किया जाना नहीं चाहते। हमने आपकी सेना को अपने मुल्क से रास्ता दे दिया और अब आप अपनी सेना को यहां कायम करना चाहते हैं × × ×।"†**

फिर भी, दोनों सन्धियां हो गईं।

ख़ैरपुर की सन्धि में मुख्य-मुख्य बातें ये थीं—

1—अंगरेज़ कम्पनी और ख़ैरपुर-दरबार में सदा के लिए मित्रता क़ायम रहेगी।

---

* 'Burnes' *Travels*, vol. iii.

† Torrens' *Empire in Asia*, p. 295.

2—अंगरेज़ ख़ैरपुर के राज की रक्षा करेंगे और ख़ैरपुर दरबार हर काम में अं रेज़ों की सहायता करेगा ।

3—दूसरी विदेशी सल्तनतों के साथ ख़ैरपुर के अमीर, बिना कम्पनी की सलाह के, किसी तरह का समझौता या पत्र-व्यवहार न करेंगे ।

4—मीर रुस्तम खां के विरुद्ध अंगरेज़ उसके किसी रिश्तेदार या कुटुंबी या भ की कोई शिकायत न सुनेंगे और न राज के अंदरुनी मामलों में किसी तरह का हस्तक्षे करेंगे ।

5—दोनों सरकारों के एलची एक दूसरे के दरबारों में रहा करेंगे, इत्यादि ।*

सन्धिपत्र पर दोनों ओर के हस्ताक्षर हो गए । अंगरेज़ी सेना ने भक्खर के क़िले पर कब्जा कर लिया । जगह-जगह अंगरेज़ी छावनियां पड़ गईं । अंगरेज़ राजदूत ख़ैरपुर दरबार में पहुंच गए । बूढ़े और भोले मीर रुस्तम खां के साथ अंगरेज़ों का व्यवहार अ अधिकाधिक धृष्टता का होता गया । ख़ैरपुर के बूढ़े और सम्मानित वज़ीरों का अपमा किया गया । नित्य नयी ज्यादतियां होने लगीं, जिनको विस्तार से बयान करना अनावश्यक है । ईस्टविक लिखता है—

> "हर ऐसा काम, यानी हर तरह की ज्यादती, जो हम बिना खतरे पड़े कर सकते थे, हमने करनी शुरू कर दी । अधिक उग्र अन्याय, जिन यह साफ़ डर था कि हमें सिन्ध के साथ कुसमय युद्ध करना पड़ जाएगा, उस स तक के लिए मुलतवी कर दिए गए, जिस समय तक कि सन्धि में हमारा प्रभ क़ायम न हो जाए, यानी दूसरे शब्दों में जिस समय तक कि सिन्ध अंगरेज़ी सत्ता अधीन न हो जाए । और इसी को हम मित्रता की सन्धि करना कहते हैं ।"†

मीर अली मुराद

सिन्ध के अंदर अब तेजी के साथ उसी तरह की साज़िशें शुरू हो गईं, जिस तरह समय-समय पर भारत के दूसरे सब राजदरबारों में की जा चुकी थीं । मीर रुस्तम खां एक छोटे भाई, मीर अली मुराद को चुपचाप मीर रुस्तम खां के विरुद्ध फोड़ा गया । भा से बड़े-बड़े अभ्यस्त कूटनीतिज्ञ इस काम के लिए सिन्ध के दरबारों में पहुंचे । धीरे- 24 दिसंबर, सन् 1838 की सन्धि के साफ़ विरुद्ध अंगरेज़ों ने मीर अली मुराद का प लेकर बात-बात में मीर रुस्तम खां से झगड़ना शुरू किया ।

सिन्ध के अमीरों पर कई नये-नये इलज़ाम लगाए गए । कहा गया है कि हैदराबा के अमीर, मीर नासीर ख़ां ने सुलतान के दीवान सावनमल को अंगरेज़ों के विरुद्ध क पत्र लिखा है । इसी तरह कहा गया कि मीर रुस्तम खां ने शेरसिंह को अंगरेज़ों के विरु एक पत्र लिखा है । इन पत्रों और इलज़ामों के विस्तार में पड़ने की आवश्यकता न है ।

---

[*] *Dry Leaves from Young Egypt*, pp. 252-53.

[†] "Every step, *i.e.*, every encroachment that could be made with hazard was made; and the more violent aggressions, which obviously co not be inflicted without risking an inopportune war, were suspended until o own influence should be substituted in Sindh; in other words, until Sindh w reduced to a British dependency. And this is what we call making alliance."—*Dry Leaves from Young Egypt*, pp. 253-54.

इतिहास लेखक ईस्टविक जिसे सिन्ध में अंगरेज़ों की राजनैतिक चालों का व्यक्तिगत अनुभव था, लिखता है—

> **"यह सारा मामला दोपहर की धूप से भी अधिक साफ है। मीर अली मुराद ने इन जाली पत्रों को तैयार किया था।***

उन सब पत्रों के जाली होने की ईस्टविक ने विस्तृत दलीलें दी हैं। इन्हीं की बिना पर उस समय सिन्ध के अमीरों की रियासत छीनने की योजना की जा रही थी।

इस बीच 3 दिसंबर, सन् 1840 को हैदराबाद के अमीर नूरमोहम्मद खां की मृत्यु हो गई।

सिन्ध पर कब्जा करने की अंगरेज़ों की प्रबल उत्कंठा के उस समय पांच मुख्य कारण थे।

सिन्ध पर कब्जा करने के मुख्य कारण

पहला और सबसे बड़ा कारण यह था कि इतने दिनों सिन्ध में रह कर अंगरेज़ पता लगा चुके थे कि अमीरों के खज़ानें सोने, चांदी और जवाहरात से लबालब हैं। सर चार्ल्स डिल्क लिखता है—

> **"अंगरेज क़ौम का निकास प्राचीन स्कैंडिनेविया के समुद्री लुटेरों से है, सैंकड़ों बरसों की शिक्षा ने भी अंगरेज़ों के खून को उस बुराई से पाक नहीं किया। भारत में पहुंचते ही हमें अपनी वह उत्पत्ति याद आ जाती है। वहां पर हमारे आदमी ज्यों-ही किसी देशी नरेश या हिन्दू महल पर निगाह डालते हैं, तुरन्त वे विवश होकर चिल्ला उठते है, 'सेंध लगाने के लिए वह कैसी अच्छी जगह है!' या 'लूटने के लिए यह कैसा अच्छा आदमी है'!"†**

दूसरा कारण यह था कि सिन्ध पर कब्जा करके अभी भी आवश्यकता के समय सिन्धु नदी के जरिए भारत की उत्तरी-पश्चिमी सीमा पर फ़ौज भेजी जा सकती थी। लार्ड एलेनब्रु ड्यूक आफ वेलिंग्टन के नाम अपने पत्रों में इस कारण को बयान किया है।

तीसरा कारण रूस इत्यादि के हमले से अपने भारतीय साम्राज्य को सुरक्षित रखने की चिंता थी।

चौथा कारण इतिहास लेखक सर जान के ने इन शब्दों में बयान किया है—

> **"किन्तु सिन्ध के अमीरों को इस तरह सजा देने का असली कारण यह था कि हाल में अफ़गान अंगरेज़ों को सजा दे चुके थ। अपनी महान् राजनैतिक यात्रा**

---

* "Why the whole matter is clearer than the Sun at noon! Mir Ali Murad forged those letters......"—*Dry Leaves from Young Egypt*, by Eastwick, M. P., p. 259.

† "It is in India......we begin to remember our descent from Scandinavian sea-king robbers. Centuries of education have not purified the blood; our men in India can hardly set eyes on a native prince or a Hindoo palace before they cry, 'What a place to break!' 'What a fellow to loot!'—*Greater Britain*, by Sir Charles Dilke.

के इस अवसर पर अंगरेज़ों को आवश्यक मालूम हुआ कि संसार को यह दिखा दिया जाए कि अंगरेज़ भी किसी-न-किसी को पीट सकते हैं, इसीलिए सिन्ध के अमीरों को पीटने का निश्चय किया गया। × × × गवर्नर-जनरल ने तय कर लिया कि उन अमीरों को इस उदार (?) नीति का शिकार बनाया जाए, जिन्होंने कि कुछ महीने पहले ऐसे अवसर पर हमारी सेना को छोड़ दिया था, जिस अवसर पर यदि वे चाहते तो उसे निर्मूल कर सकते थे।"*

ड्यूक आफ वेलिंगटन ने 30 मार्च, सन् 1842 को एक पत्र में लार्ड एलेनब्रु को सलाह दी कि अफ़ग़ानिस्तान की हार और शर्म को मिटाने और अंगरेज़ों की कीर्ति फिर से क़ायम करने के लिए किसी न किसी भारतीय नरेश पर फ़ौरन हमला करके उसके राज को कम्पनी के इलाके में मिला लिया जाए।

पांचवां कारण मुसलमानों के प्रति एलेनब्रु का विशेष द्वेष और उन पर उसका अविश्वास था।

लार्ड एलेनब्रु ने 22 मार्च, सन् 1843 को ड्यूक आफ वेलिंगटन के नाम एक पत्र लिखा, जिसमें उसने साफ़ स्वीकार किया है कि सिन्ध के अमीरों पर पत्र-व्यवहार के सम्बंध में जो इलजाम लगाए गए थे, वे बेबुनियाद थे। कुछ दिनों बाद इंगलिस्तान की पार्लियामेंट के सामने भी यह बात साबित हो गई कि वे सब पत्र जाली थे।

साज़िश पक्की करना

फिर भी 26 अगस्त, सन् 1842 को लार्ड एलेनब्रु ने सिन्ध के अमीरों को सज़ा देने के लिए जनरल नेपियर को एक विशाल सेना देकर सिन्ध भेज दिया। 9 सितम्बर, सन् 1842 को सर चार्ल्स नेपियर सिन्ध पहुंचा। हैदराबाद होते हुए वह अली मुराद के साथ साज़िश पक्की करने के लिए सक्खर पहुंचा। ईस्टविक लिखता है कि—'तुरंत अंगरेज़ सेनापति ने अली मुराद के पास उसके हौसले को बढ़ाने के लिए पत्र भेजे। अंगरेज़ सेनापति ने पहले मीर रुस्तम खां से गद्दी छीनने का संकल्प कर लिया। उसने × × × उस बूढ़े अमीर को, जो अंगरेज़ों का मित्र था, पदच्युत करने और उसका राज छीन लेने का इरादा कर लिया।"†

नेपियर की सेना के मार्ग में न रोके जाने का कारण यह था कि अभी तक नेपियर ऊपर से अमीरों के साथ मित्रता की ही दुहाई दे रहा था। 1 दिसम्बर, सन् 1842 को अचानक सिन्ध में एक ऐलान प्रकाशित किया गया, जिसमें पूर्वोक्त जाली पत्रों की बिना

---

* "But the real cause of this chastisement of the Amirs consisted in the chastisement which the British had received from the Afghans. It was deemed expedient at this stage of the great political journey, to show that the British could beat some one, and so it was determined to beat the Amirs of Sindh...... the Governor-General resolved, that the Amirs who a few months before had spared our army, when they might have annihilated it, should be the victims of this generous policy".—Sir John Kaye in *The Calcutta Review*, vol. p. 232.

† *Dry Leaves from Young Egypt*, p. 264.

पर लोगों को यह सूचना दी गई कि रोहरी से लेकर सब्ज़लकोट तक का मीर रुस्तम खां का इलाक़ा कम्पनी सरकार ने ज़ब्त कर लिया । कप्तान ईस्टविक और कर्नल ऊटरम, दोनों ने अपनी-अपनी पुस्तकों में इस घोर अन्याय को स्पष्ट शब्दों में स्वीकार किया है । मीर रुस्तम खां या दूसरे अमीरों को जवाबदेही का कोई मौक़ा नहीं दिया न गया, उन्हें उनके अपराध की सूचना तक दी गई । अली मुराद के ज़रिए अनेक झूठी सच्ची शिकायतें मीर रुस्तम खां के विरुद्ध जमा कर ली गईं । कप्तान ईस्टविक लिखता है—

> **"जनरल नेपियर ने खुले तौर पर यह प्रकट किया कि मुझे अमीरों का दमन करने के लिए किसी भी बहाने की आवश्यकता है ; फिर भी इसमें क्या आश्चर्य हो सकता है कि कुछ-न-कुछ इस तरह के अधम और नीचतम लोग मिल गए, जिन्होंने अपने नरेशों के दुर्व्यवहार की शिकायत की, या अली मुराद के एजेण्टों ने इस सार्वजनिक प्रोत्साहन से लाभ उठा कर जालसाज़ियां शुरू कर दीं ?"***

हैदराबाद के अमीरों के विरुद्ध भी 24 इलजामों की एक सूची तैयार कर ली गई, जिनके बारे में ईस्टविक लिखता है—

> **"ये सब इलज़ाम थोथे थे, जो केवल एक बहाना ढूंढने के लिए गढ़ लिए गए थे ।"** †

मीर रुस्तम खां पर झूठा इलज़ाम

7 दिसम्बर को बिना अमीरों से बातचीत किए सर चार्ल्स नेपियर ने रोहरी से सब्जकोट तक के इलाक़े पर क़ब्जा करने के लिए अपनी फ़ौज को तैयार करना शुरू किया । 14 दिसम्बर को अमीर रुस्तम खां ने सर चार्ल्स नेपियर को पत्र लिखा कि आप से जो शिकायतें की गई हैं, वे सब झूठी हैं और मैं पूर्ववत् अंगरेज़ों के साथ मित्रता कायम रखने के लिए उत्सुक हूं । इस समय एक और नयी बात उड़ाई गई कि मीर रुस्तम खां ने कहीं पर अंगरेज़ों की डाक लुटवा दी । कप्तान ईस्टविक साफ़ लिखता है कि यह डाक लूटने का काम अली मुराद के ज़रिए कराया गया था, ताकि मीर रुस्तम खां पर एक और झूठा इलज़ाम लगाया जा सके । इस पर ईस्टविक के शब्द हैं—

> **"यह देख कर कि जो लोग अपने को अंगरेज़ कहते थे, वे इन असभ्य और द्वेष भरी झूठी बातों को सहन कर सकते थे, हम लज्जा और घृणा से भर जाते हैं ।"‡**

---

* "The general openly avowed his anxiety to obtain a pretext for coercing them; and can we wonder that there were found—among the besest and lowest of the people—some to complain of illtreatment at the hands of their rulers, or that the agents of Ali Murad should have taken advantage of such general encouragement for their fabrications?"—*Dry Leaves from Young Egypt*, p. 267.

† "Frivolous accusations, which were concocted for the simple purpose of making out a case."—Ibid, p. 269.

‡ "One feels sick with shame and disgust that such barbarous and malignant falsehoods could be winked at by men calling themselves Englishmen."—Ibid, p. 271.

गवर्नर-जनरल के नाम पर सर चार्ल्स नेपियर के इस समय के पत्र वास्तव में घृणित और अकथनीय छलों से भरे हुए हैं।

कर्नल ऊटरम लिखता है—

"बूढ़े नरेश रुस्तम खां ने या उसके किसी भाई ने कभी किसी अंगरेज के सर के बाल तक को हानि नहीं पहुंचाई थी; इसके विपरीत, उन्होंने उस समय, जब हमें सबसे बड़ी आवश्यकता थी, अपना देश और माल हमारी सेवा के लिए उपस्थित कर दिया था।"*

रुस्तम खां की सुलह की इच्छा

मीर रुस्तम खां ने फिर भी शांति से निबटारा करना चाहा। उसने कई वार सर चार्ल्स नेपियर से मिलने की इच्छा प्रकट की, किंतु नेपियर ने मिलना तक स्वीकार न किया।

अली मुराद के विश्वासघात और अंगरेज़ी सेना की सहायता से अब बूढ़े अमीर रुस्तम खां को तरह-तरह की विपत्तियों में डाला गया, उसका तरह-तरह से अपमान किया गया।

इस बीच सक्खर से जनरल नेपियर ने कप्तान स्टेनली को एक नया सन्धिपत्र देकर हैदराबाद के अमीरों के पास भेजा। इस सन्धिपत्र की शर्तें बहुत अपमानजनक थीं। हैदराबाद के अमीरों ने नये सन्धिपत्र को देख कर बातचीत के लिए अपने दूत नेपियर के पास भेजे। नेपियर ने दूतों से बात करने तक से इनकार कर दिया। इसी बीच नेपियर ने अपनी सेना और तोपों सहित अकारण खैरपुर पर चढ़ाई की और बूढ़े रुस्तमखां को कहला भेजा कि यदि आप अपनी जान बचाना चाहते हैं, तो शीघ्र खैरपुर छोड़कर हैदराबाद चले जाइए, मैं वहीं आकर दूसरे अमीरों के साथ आपसे बातचीत करूंगा। बूढ़े रुस्तम खां को नगर छोड़ कर अपनी स्त्रियों और बच्चों सहित ऊंटों पर बैठ कर हैदराबाद की ओर भाग जाना पड़ा।

अमीरों पर अत्याचार

मीर रुस्तम खां की आयु इस समय 85 वर्ष की थी। ईस्टविक दुख के साथ लिखता है कि—

"हमने खानदानी नरेशों के विरुद्ध, जो कि हमारे मित्र थे, अनेक झूठी बातों के आधार पर, उनका सर्वस्व छीन लिया, उन्हें जगह-जगह भगाया, उन्हें क़ैद में डाल दिया, यहां तक कि सिवाय मौत के उनके पास आपत्ति से छुटकारा पाने का और कोई उपाय न रहा।"

---

* "Neither the venerable Prince......nor any of his brethren had ever injured the hair of a head of any British subject; but they had, in the hour of our greatest need, placed their country and its resources at our disposal."—*Conquest of Sindh, a commentary, by Colonel Outram,* vol. i, p. 90.

नगर की लूट

नेपियर की सेना ने खैरपुर के नगर को लूटा। इसके बाद नेपियर ने इमामगढ़ के क़िले पर हमला किया, क़िले को तोड़ डाला और नगर को लूट लिया। इमामगढ़ के बाद नेपियर ने हैदराबाद की ओर बढ़ना शुरू किया।

हैदराबाद के अमीर

समाचार पाते ही हैदराबाद के अमीरों ने नेपियर के पास फिर अपने दूत भेजे, नये सन्धिपत्र पर हस्ताक्षर कर देने की रजामंदी प्रकट की और नेपियर से प्रार्थना की कि आप हैदराबाद की ओर बढ़कर वृथा रक्तपात से देश को बरबाद न कीजिए। खैरपुर और हैदराबाद के बीच में नौशहरा नामक स्थान पर इन दूतों ने नेपियर से भेंट की। नेपियर ने दूतों के उत्तर में उन्हें हैदराबाद के अमीरों के नाम एक पत्र दिया, जिसमें लिखा था कि आप मीर रुस्तम खां को हैदराबाद बुला लीजिए। मैं मेजर ऊटरम को यहां से भेजता हूं। मेजर ऊटरम वहां पर मीर रुस्तम खां के बारे में भी सब बातें तय कर देगा और नये सन्धिपत्र पर आपके दस्तखत भी करा लेगा। मैं अभी हैदराबाद की ओर न बढ़ूंगा।

8 फरवरी, सन् 1842 को मेजर ऊटरम हैदराबाद पहुंचा। मेजर ऊटरम के कहने के अनुसार अमीरों ने युद्ध से बचने की इच्छा से अपनी मोहरें मेजर ऊटरम के हवाले कर दीं।

हैदराबाद की ओर अंगरेजी सेना

किंतु नेपियर बराबर अपनी सेना सहित हैदराबाद की ओर बढ़ता रहा। हैदराबाद के निकट बलूचियों में खलबली मच गई। हैदराबाद के अमीरों ने मेजर ऊटरम से कहा कि आप अपना आदमी भेज कर जनरल नेपियर को रोकिए, नहीं तो बलूची प्रजा में बेचैनी बढ़ रही है। सन्धि के लिए हमारी मोहरें आपके हाथ में हैं। मेजर ऊटरम ने स्वीकार कर लिया और अपनी ओर से एक अंगरेज़ इस काम के लिए मीर नसीर खां के पास भेजा। मीर नसीर खां ने 9 फरवरी की रात को इस अंगरेज़ को एक तेज़ ऊंट के ऊपर नेपियर के पास रवाना किया। 12 फरवरी को सिन्धी ऊंट वाले ने मीर नसीर ख़ां को आकर सूचना दी कि ऊटरम के दूत और जनरल नेपियर में मुलाकात हो गई, किंतु जनरल नेपियर बजाय रुकने के अपनी सेना सहित हैदराबाद की ओर बढ़ रहा है।

ऊटरम के वादों पर विश्वास

मीर नसीर ख़ां ने तुरंत ऊटरम को इसकी सूचना दी। उसी दिन तीसरे पहर ऊटरम अमीरों से आकर मिला। ऊटरम ने शपथ खाकर मीर नसीर खां को विश्वास दिलाया कि जनरल नेपियर का उद्देश्य युद्ध करना या अमीरों का राज छीनना नहीं है। ऊटरम ने अमीरों से कहा कि आप सन्धिपत्र पर हस्ताक्षर कर दीजिए, मैं इसी समय जनरल नेपियर के नाम एक पत्र लिख कर आपको दे दूंगा। आप उस पत्र को अपने आदमियों के हाथ नेपियर के पास भेज दीजिए, नेपियर तुरंत हैदराबाद की ओर आने का इरादा छोड़ कर उत्तर की ओर लौट जाएगा।

दशा

अमीरों ने स्वीकार कर लिया। उन्होंने नेपियर के भेजे हुए सन्धिपत्र पर हस्ताक्ष कर दिए। इस सन्धिपत्र पर अमीरों की मोहरें भी लगा दी गईं। ऊटरम ने नेपियर के ना पत्र लिखकर मीर नसीर ख़ां के हवाले किया। तुरंत एक तेज़ सांड़नी-सवार के हाथों यह पत्र नेपियर के पास भेजा गया। सांड़नी-सवार ने लौट कर फिर यही आश्चर्यजन सूचना दी कि ऊटरम के पत्र को पाने के बाद भी जनरल नेपियर ने पूर्ववत् सेना सहि हैदराबाद की ओर अपनी चढ़ाई जारी रखी।

इस बीच वृद्ध मीर रुस्तम ख़ां हैदराबाद पहुंच चुका था। उसकी विपत्तियों को दे कर हैदराबाद की प्रजा और सेना में क्रोध बढ़ता जा रहा था।

इसी समय जनरल नेपियर ने अपनी यात्रा में एक बूढ़े निरपराध बलूची सरदा हयात ख़ां को, जो हैदराबाद की ओर आ रहा था, पकड़ कर क़ैद कर लिया। नगर अंदर कुछ बलूचियों ने मेजर ऊटरम पर इसका बदला उतारना चाहा, किंतु अमीर नसी ख़ां ने उन्हें समझा-बुझा कर शांत कर दिया।

अमीरों का नेपियर से प्रश्न

हैदराबाद के अमीरों ने जनरल नेपियर को फिर एक पत्र भेजा, जिसमें उससे पू कि हमारे सन्धिपत्र पर हस्ताक्षर कर देने के बाद भी आप सेना लेकर हैदराबाद की अ क्यों आ रहे हैं? नेपियर ने कोई उत्तर न दिया, वह बराबर हैदराबाद की ओर बढ़ता रहा करीब पांच हज़ार बलूची नेपियर के मुक़ाबले के लिए हैदराबाद नगर के बाहर जमा गए। मीर नसीर ख़ां ने 15 फरवरी को सवेरे फिर अपने महल से निकल कर इन बलूचियों को शांत करने का प्रयत्न किया और कहा कि मैं कल फिर अपना एक व नेपियर के पास भेजूंगा और प्रयत्न करूंगा कि बिना प्रजा के रक्तपात और बरबादी शांति से सब मामला तय हो जाए।

बलूचियों में रोष

उसी दिन दोपहर को मेजर ऊटरम के सिपाहियों के साथ कुछ बलूचियों का झग हो गया, जिसमें दो बलूची और ऊटरम का एक सिपाही, कुल तीन आदमी मारे ग मेजर ऊटरम ने इस पर नगर छोड़ कर एक जहाज़ में आश्रय लिया। बलूचियों ने दो अंग सिपाहियों को क़ैद कर लिया। मीर नसीर ख़ां और मीर मोहम्मद ख़ां ने दोनों गोरे सि हियों को खाना खिला कर फिर स्वतंत्र कर दिया।

मियानी का संग्राम

मीर नसीर ख़ां का दूसरा वकील अभी सर चार्ल्स नेपियर से मिलने भी न पा था कि 17 फरवरी, सन् 1843 को मियानी नामक स्थान पर अमीरों की इच्छा के वि नेपियर की सेना में और उन बलूचियों में, जो हैदराबाद की रक्षा के लिए जमा हो गए संग्राम शुरू हो गया। मीर नसीर ख़ां का बयान है कि पहला वार नेपियर की ओर से हु इन पांच हज़ार बलूचियों के अलावा नसीर ख़ां के पास हैदराबाद के क़िले के अंदर

समय करीव 12 हज़ार वलूची सेना और थी। किंतु मीर नसीर ख़ां ने ऊटरम के वार वार यह विश्वास दिलाने पर कि नेपियर का इरादा शत्रुता करना या अमीरों का राज छीनना नहीं है, उन्हें नेपियर के विरुद्ध शस्त्र उठाने से रोके रखा।

बलूचियों की वीरता

फिर भी मियानी के मैदान में सुबह चार वजे से लेकर सायंकाल तक अत्यंत घमासान संग्राम हुआ। अंगरेज़ों की ओर कुछ गोरी और वाकी हिंदोस्तानी पलटनें थीं। बलूचियों ने अपनी वंदूकें फेंक कर तलवारों और ढालों से मुकावला करना शुरू किया। एक दूसरे के वाद अनेक अंगरेज़ अफ़सर और सहस्रों अंगरेज़ सिपाही मैदान में कट-कट कर गिरने लगे। वार-वार अंगरेज़ी सेना को हार कर पीछे हट जाना पड़ा। वलूचियों ने इस वीरता के साथ सामना किया और अंगरेज़ों और हताहतों की संख्या इतनी वढ़ गई कि मेजर बेंडिगटन, जो उस समय संग्राम में उपस्थित था, लिखता है कि एक वार जनरल नेपियर को भी अंगरेज़ों की विजय में संदेह हो गया।*

अमीरों के कारण अंगरेज़ों की विजय

मियानी के वचे हुए अनेक अंगरेज़ अफ़सरों ने वलूचियों की वीरता की मुक्त कंठ से प्रशंसा की है। करनल वेंडिगटन लिखता है कि एक स्थान पर केवल पचास कदम के अंदर चार सौ लाशें गिनी गईं। किंतु अंगरेज़ी सेना की संख्या इन वलूचियों से कहीं अधिक थी। वलूचियों की ओर कोई विशेष नेता भी न था। हैदराबाद के अमीर अभी तक कायरतावश या शांतिप्रियतावश क़िले के अंदर वैठे हुए शांति के साथ समस्त मामले का निवटारा करने का स्वप्न देख रहे थे, क्योंकि इस बीच मेजर ऊटरम वरावर अपने को अमीरों का दोस्त वता कर उन्हें यह समझा रहा था कि यदि आप शांति क़ायम रखें, तो आपका राज आपके हाथों में पूर्ववत् कायम रहेगा। मीर नसीर ख़ां मैदान में पहुंचा, किंतु अपने योद्धाओं को प्रोत्साहित करने के लिए नहीं, वरन् उन्हें समझा-वुझा कर वापस करने के लिए। अंत में, इतिहास लेखक टारेंस के अनुसार 6,000† वीर वलूचियों की लाशों के ऊपर से 17 फरवरी की रात को मियानी के मैदान को तय करते हुए विजयी अंगरेज़ी सेना ने अगले दिन सुवह हैदरावाद में प्रवेश किया।

अंगरेज़ी सेना के हताहत

अंगरेज़ सेनापतियों के वयानों और प्रकाशित सरकारी रिपोर्टों में झूठ की मात्रा इतनी अधिक है कि अंगरेज़ी सेना के हताहतों की ठीक तादाद का पता नहीं चलता। जनरल नेपियर लिखता है कि अंगरेज़ी सेना कुल 1,700 थी, मेजर वेंडिगटन इसके विरुद्ध दलीलें देता हुआ लिखता है कि अंगरेज़ी सेना 3,000 थी और मियानी के संग्राम में जीवित वचे हुए जिन अफ़सरों और सिपाहियों में लूट-मार का माल वांटा गया, केवल उनकी

---

* *Dry Leaves from Young Egypt*, p. 353.

† Torrens' *Empire in Asia*, etc., on the Amirs of Sindh.

तादाद सरकारी रिपोर्ट के अनुसार 4,856 थी । जो हो, इसमें संदेह नहीं कि कम्पनी के हज़ारों गोरे और देशी सिपाही और अफ़सर मियानी के मैदान में काम आए।

अंगरेज़ों की विजय का रहस्य

सर रिचर्ड बर्टन ने मियानी के संग्राम ने अंगरेज़ों की विजय के सम्बन्ध में एक और रहस्य प्रकट किया है । वह लिखता है—

> “न तो उस समय के इतिहास लेखकों से हमें इस बात का पता चलता है, और न हम सरकारी काग़ज़ों से इस बात को जानने की आशा कर सकते हैं कि जिस दोग़ले अफ़सर के सुपुर्द सिन्ध के अमीरों की तोपें थीं । उसे किस तरह अपनी ओर फोड़ कर तोपों के मुंह इतने ऊंचे करवा दिए गए कि गोले अंगरेज़ी सेना को बचा कर दूर जाकर गिरें; न यह पता चलता हैं कि किस तरह टालपुर का वह देशघातक, जो अमीरों की सवार सेना का प्रधान सेनापति था, खुल्लमखुल्ला अपनी सेना को मैदान से हटा ले गया, और उसने मैदान से निर्लज्ज होकर भागने की मिसाल दूसरों के लिए क़ायम कर दी । जब कभी वह दिन आएगा कि हिन्दोस्तान के अन्दर गुप्त सेवाओं के लिए जो धन व्यय किया जाता है, उसका ब्यौरेवार हिसाब छापा जाए, तब लोगों को अजीब-अजीब बातों का पता चलेगा । इस बीच हममें से जो लोग अपनी जिन्दगी में यह देख चुके हैं कि इतिहास किस तरह लिखा जाता है, वे इस इतिहास का एक घटिया उपन्यास से अधिक मूल्य नहीं लगा सकते।”*

इससे मालूम होता है कि भारतवासियों के समान वीर बलूची भी 17 फरवरी को अंगरेज़ों की चांदी की गोलियों का शिकार होने से न बच सके !

अमीर द्वारा बलूची सेना की बरख़ास्तगी

18 फरवरी को सवेरे नगर में प्रवेश करने के बाद जनरल नेपियर ने मेजर ऊट की मौजूदगी में मीर नसीर ख़ां को फिर यह विश्वास दिलाया कि सिन्ध के अमीरों की सल्तनत उन्हें वापस दे दी जाएगी, इस शर्त पर कि आप अपनी सेना को बरख़ास्त कर दें और उन्हें नगर से बाहर कर दें । मालूम होता है कि नसीर ख़ां के दिल से अब भी अंगरेज़ों का विश्वास न हटा था । नसीर ख़ां ने स्वीकार कर लिया, उसने अपनी बलूची सेना को बरख़ास्त कर दिया । किंतु बलूची सेना के बरख़ास्त करते ही नेपियर ने मीर नसीर ख़ां, मीर शहदाद ख़ां और मीर रुस्तम ख़ां तीनों को क़ैद कर लिया । इसके तीन दिन बा

---

* “Neither of our authorities tell us, nor can we expect a public docu to do so, how the mulatto who had charge of the Amirs' guns had b persuaded to fire high and how the Talpur traitor who commanded the cav openly drew off his men and showed the shameless example of fight. W the day shall come to publish details concerning disbursement of 'Secret Se money in India' the public will learn strange things. Meanwhile those of who have lived long enough to see how history is written, can regard it but little better than a poor romance.”—*Life of Sir Richard Burton*, by L Burton, p. 141.

जनरल नेपियर ने एक पलटन सवार, एक पलटन पैदल, दो तोपों और कुछ अंगरेज अफ़सरों सहित हैदराबाद के क़िले में प्रवेश किया।

जनानख़ानों पर हमला

नेपियर ने क़ैदी मीर नसीर ख़ां से यह कहला भेजा कि मैं केवल क़िले को देखना चाहता हूं, आप अपने कुछ आदमी साथ कर दीजिए। मीर नसीर खां ने दीवान मिठाराम, बहादुर ख़िदमतगार और अखूंद वाचाल को नेपियर के पास भेज दिया। जो हृदय-विदारक दृश्य अब हैदराबाद के क़िले के अंदर देखने में आया, उसे हम ठीक-ठीक दीवान मिठाराम के ही मर्मस्पर्शी शब्दों में नीचे देते हैं। दीवान मिठाराम ने अपने बयान में जिन-जिन अंगरेज़ अफ़सरों के नाम दिए थे, कप्तान ईस्टविक ने अपनी पुस्तक में उनके नामों का स्थान छोड़ कर केवल 'साहब' सामने लिख दिया है। हम यह बयान कप्तान ईस्टविक की पुस्तक से ज्यों-का-त्यों नक़ल कर रहे हैं। दीवान मिठाराम लिखता है—

"इसके बाद——साहब दूसरे अफ़सरों और सिपाहियों के साथ परलोकवासी मीर करमअली खां के जनानखाने में गया। उसने मिरजा खुसरोबेग का गला पकड़ कर उसका अपमान किया और उसे आज्ञा दी कि जनानखाने में जो कुछ धन और ज़ेवर हैं, वे हमारे हवाले कर दो। इन ज़ेवरों की क़ीमत 15 लाख रुपये थी। मीर क़रमअली की बेगमों ने यह दृश्य देख कर——साहब से कहला भेजा कि आप हमें पालकियां दिलवा दीजिए और केवल बदलने के लिए तीन-तीन जोड़ी कपड़े हर एक के साथ देकर हमें शहर से निकल जाने दीजिए।——साहब ने इनकार कर दिया, मुन्शी अलीअकबर के साथ वह ज़बरदस्ती जनानखाने में घुस गया, वहां पर स्त्रियों के जितने ज़ेवर, जवाहरात, सोने-चांदी के बरतन और कपड़े इत्यादि मिले, उसने सब लूट लिए, और जो ज़ेवर स्त्रियां अपनी कमर के नीचे और पैरों पर पहने हुई थीं, उन तक को उसने खींच कर उतार लिया। अभागी स्त्रियां भय और लज्जा के मारे नगर से भाग-भाग कर पैदल हैदराबाद से पांच कोस दूर कहतर पहुंच गईं। और——साहब और——साहब और——साहब ने अमीर मीर नूरमोहम्मद खां के जनानखाने में प्रवेश किया और उन्हें इसी तरह लूटा, यहां तक कि वहां की स्त्रियां भी इसी तरह विवश होकर अपने घरों से भाग-भाग कर कुछ दिन बाद पैदल कहतर पहुंच गईं। 22 फरवरी, सन् 1843 को अमीर मीर मोहम्मद खां को किले से लाकर अंगरेजी कैम्प में क़ैद कर लिया गया, उसके जनानखाने में भी इसी तरह जबरदस्ती घुस कर उसे लूटा गया। इसके बाद मीर सोबदार खां की बेगमों को लूटा गया। वे पैदल भाग कर होसरी चली गईं।——साहब ने मीर सोबदार खां के लड़के, फ़तहअली खां, से दो क़ीमती कड़े मांगे, जो दे दिए गए। मीर सोबदार खां के जनानखाने की एक स्त्री ने कुछ रुपये अपने कमरबन्द में बांध लिए थे। भागते समय इनमें से कुछ रुपये गिर पड़े, तुरन्त उस स्त्री को पकड़ लिया गया, उसका कमरबन्द काट दिया गया, और रुपये उससे ले लिए गए। इसके बाद एक स्त्री को अलग ले जाकर उसके हाथों, पैरों, नाक और कान से सब ज़ेवर उतारे गए। इसके बाद क़िले में बाहर से आना-जाना बन्द कर दिया गया। परलोकवासी मीर नूर मोहम्मद ख़ां और मीर नसीर ख़ां की स्त्रियां अभी उस समय तक किले में ही

थीं । दो दिन तक उन्हें बिना दाना पानी के रखा गया । मीर नसीर खां के बेटे मीर हुसेनअली खां और मीर अब्बासअली खां, क़िले में क़ैद थे । उन्होंने एक आदमी को——साहब के पास पानी के लिए भेजा । उत्तर मिला कि सर चार्ल्स नेपियर की आज्ञा है कि जिस किसी को पानी पीना हो, चाहे वह पुरुष हो या स्त्री, उसे गारद के कमांडिंग अफ़सर के बंगले पर जाकर पानी पीना होगा । पूर्वोक्त अमीरों के जनानखानों में नौकर-चाकर मिलाकर कुल पांच सौ प्राणी थे । अन्त में बड़ी कठिनाई के बाद इन पांच सौ मनुष्यों के लिए एक मश्क पानी दिया गया, जिससे सब ने अपने गले तर कर लिए, प्यास किसी की न बुझ सकी। थोड़ी देर बाद——साहब और——साहब कुछ सिपाही लेकर इन जनानखानों के दरवाज़ों पर पहुंचे। दरवाज़े बन्द थे। इन लोगों ने कुल्हाड़ों से दरवाज़ों को तोड़ा और वहां की स्त्रियों से सब जेवर मांगे । स्त्रियों को विवश होकर सब जेवर उतार देने पड़े । अगले दिन——साहब ने आकर जनानखाने का बाकी सब सामान निकाल लिया। एक स्त्री ने बच कर निकल जाना चाहा । संयोगवश वह रेशमी पाजामा पहने हुए थी; क़िले के दरवाज़े पर सिपाहियों ने उसे रोक लिया और उसके सब कपड़े उतरवा लिए । परलोकवासी नूर मोहम्मद खां की बेगम ने कुछ कपड़े अपनी एक दासी को दिए कि उन्हें बेच कर मेरे लिए कुछ खाना ले आओ ।——साहब के मुन्शी ने उस स्त्री को पकड़ कर पीटा और उससे कपड़े छीन लिए । इसके बाद दो (अंगरेज़) औरतें क़िले के फाटक पर बैठा दी गईं, और भीतर से जो स्त्री बाहर जाती थी, ये दोनों औरतें उसकी तलाशी लेती थीं । सारांश यह कि अमीरों की एक-एक चीज़ ले ली गई, उनका सर्वस्व लूट लिया गया । उसके बाद मीर सोबदार खां को बाहर लाकर अंगरेज़ी कैम्प में क़ैद कर लिया गया, और पहले दिन मीर नसीर खां के बेटों को जो तलवारें दी गई थीं, वे उनसे छीन ली गईं । इसके बाद मिरज़ा खुसरो बेग का मकान लूटा गया और उसे ले जाकर अंगरेज़ी कैम्प में क़ैद कर दिया गया। मिरज़ा खुसरो बेग को फिर किले में वापस लाया गया । वहां पर उसे इतनी बुरी तरह पीटा गया कि वह बहुत देर तक बेहोश रहा । जब उसे होश आया, तो बांध कर फिर अंगरेज़ी कैम्प में पहुंचा दिया गया और वहां पर क़ैद कर दिया गया ।"*

इतिहास लेखक जे० पी० फ़ैरियर दीवान मिठाराम के इस कथन का पूरी तरह समर्थन करता है ।†

महलों की लूट का तखमीना

एक और अंगरेज़ अफ़सर, जो 1857 के विप्लव में लड़ा था और जिसका बाप उस समय सिन्ध में जनरल नेपियर के साथ था, लिखता है कि विजयी अंगरेज़ों ने सिन्ध की

---

* Translated from the English translation of Diwan Mitharam's Statemen etc., published in *Dry Leaves from Young Egypt*, by W. J. Eastwick, an ex political, sometime M.P., pp. 342-44.

† *History of the Afghans* by J. P. Ferrier, translated by Captain Jess London, John Murray, 1858, P. 287.

बेगमों के कानों और उनकी नाकों से इस बेदर्दी के साथ वालियां इत्यादि उतारीं कि उनके नाक और कान बुरी तरह कट गए ।*

मीर नसीर ख़ां का बयान है कि हैदराबाद के महलों की कुल लूट की क़ीमत करीब अठारह करोड़ रुपये थी। यह सब धन जहाजों में बंद करके बम्बई भेज दिया गया।

सिन्ध पर अंगरेज़ों का कब्जा

सिन्ध पर अंगरेज़ों का कब्ज़ा हो गया । मीर रुस्तम ख़ां के राज का एक भाग विश्वासघातक अलीमुराद को दे दिया गया । बाक़ी सारा सिन्ध अंगरेज़ कम्पनी के राज में मिला लिया गया ।

इसके सात साल बाद अलीमुराद पर भी यह दोष लगा कर कि तुमने सन् 1843 में मीर रुस्तम ख़ां के विरुद्ध जालसाज़ी की थी, उसका आधा राज उससे छीन लिया गया। ख़ैरपुर की बाकी छोटी सी रियासत पर अभी (1929) तक अलीमुराद के वंशजों का शासन है ।

अमीरों का शोकजनक अन्त

एक अलीमुराद को छोड़ कर सिन्ध के और सब अमीरों और उनके पुत्रों को क़ैद करके बेड़ियां पहना कर, जहाज़ पर बैठा कर अपने राज और देश, दोनों से निर्वासित कर दिया गया। उनमें से कुछ को पूना में और कुछ को कलकत्ते, हज़ारीबाग आदि स्थानों में क़ैद करके रखा गया। बेटों को उनके बापों से अलग रखा गया। कलकत्ते में ही अंगरेजों की क़ैद में कुछ दिनों बीमार रह कर मीर नसीर ख़ां की मृत्यु हुई। पूना में कई साल क़ैद में रहने के बाद बूढ़े मीर रुस्तम ख़ां की मृत्यु हुई। टालपुर राजकुल के बाक़ी लोग सूरत और दूसरी जेलों में धीरे-धीरे सड़-सड़ कर मरे ।

मीर रुस्तम ख़ां का एक लड़का मीर मोहम्मद हुसैन अपने घर की बूढ़ी स्त्रियों और आश्रितों सहित भूखा प्यासा अपने देश से निर्वासित बहुत दिनों तक गृहविहीन घूमता रहा। उसके कुछ छोटे भाई सिन्ध में रहे, जिनके बारे में ईस्टविक लिखता है कि—"भूख और प्यास, नंग और सर्दी उनके पल्ले पड़ी । †"

सिन्ध के राजकुल की दुर्दशा

हैदराबाद और ख़ैरपुर की बेगमों की हालत इससे भी अधिक हृदय-विदारक थी। सिन्ध के राजकुलों की इस दुर्दशा को अत्यन्त मर्मस्पर्शी शब्दों में बयान करते हुए ईस्टविक लिखता है—

> **"××× ये लोग हमारे मित्र थे ××× हमने इनके चारों तरफ़ कूटनीति और धूर्तता का एक जाल पूर दिया, और उन्हें इस तरह की झूठी बातों के**

---

* "The harem ladies were not only plundered of their ornaments they had on their person, but their noses and ears were horribly mutilated."—Captain S—as quoted by a Traveller, in his letter on the *Conquest of Sindh*, in the *Tribune* of Lahore, September 1893.

† "Hunger and thirst, cold and nakedness, have been their portion."—*Dry Leaves from Young Egypt*, p. 298.

जाल में फंसा लिया, जिन्हें यदि इस समय प्रकट किया जाए, तो सुन कर दिन में भी डर लगने लगे। इंगलिस्तान के पुरुषों ! जिस स्वतन्त्रता का तुम्हें घमण्ड है, उसका चिन्तन करो, और देखो कि तुम्हारे हृदय में उन लोगों के प्रति वास्तविक सहानुभूति उत्पन्न होती है या नहीं, जो अपने देश और अपनी स्वाधीनता की रक्षा के लिए तुम्हारी तलवार से कट कर मर गए, और उन थोड़े से, किन्तु कहीं अधिक अभागे अमीरों के लिए, जो किसी समय तुम्हारे मित्र थे, बल्कि किसी समय तुम पर उपकार करते थे, और जो अब दूर-दूर के देशों में बड़े दुख के साथ निर्वासन के दिन काट रहे हैं, जिनके आतिथ्य-सत्कार और जिनकी मित्रता की एक समय तुम्हें चाह थी, उनको क़ैद रखने वाले जेलरों को आज तुम तनखाहें दे रहे हो। इंगलिस्तान की स्त्रियों ! सोचो कि बादशाहों की माताएं और बहिनें, जिनके समस्त आभूषण उतार लिए गए हैं, अपने देश से निर्वासित, गृहविहीन और असहाय, विषैले दलदलों और भीषण जंगलों में मारी-मारी फिर रही हैं !"*

सिन्ध के मुसलमान अमीरों और उनके बाल बच्चों के साथ यूरोप के ईसाई विजेताओं के इस भीषण व्यवहार की अमानुषिकता को संसार की दृष्टि में कम करने के लिए जनरल सर चार्ल्स नेपियर के भाई, सर विलियम नेपियर, ने 'सिन्ध की विजय'† नाम से अंगरेज़ी में एक मशहूर पुस्तक लिख डाली।

अंगरेज़ों का एक रिवाज

इतिहास लेखक सर जान के ने एक स्थान पर लिखा है—

"हम लोगों में यह एक रिवाज है कि पहले किसी देशी नरेश का राज ले लेते हैं और फिर पदच्युत नरेश या उसके उतराधिकारी की बुराइयां करने लगते हैं।"‡

विलियम नेपियर की पुस्तक की झूठी बातें

ब्रिटिश भारत के इतिहास में इसके अनेक शोकजनक उदाहरण मिलते हैं। किन्तु

---

* "......our own allies......victims, round whom was woven a web of cunning villainy, and who were trapped with falsehoods which now make day hideous by their revelation! Men of England! think of your boasted freedom, and let your pulse beat quick for those who died by your sword in defence of their own liberties and homes, and for that smaller but far more wretched band, once your friends, once aye! your benefactors, now lingering out a miserable exile in distant land, whose jailers you now pay, whose hospitalities, whose alliance, you once sought. Women of England! think of the mothers and sisters of princes, stripped of their ornaments, torn from their homes, driven to wander houseless and friendless in the wild jungles and poisonous swamps......"—*Dry Leaves from Young Egypt* by Captain Eastwick, M. P., p. 238.

† *The Conquest of Sindh*,—By Sir William Napier.

‡ "......it is a custom among us......to take a native ruler's kingdom and then to revile the deposed ruler or his would be successor."—Sir John Kaye's *History of the Sepoy War*, vol. iii, p. 361.

शायद अंगरेज़ लेखकों के लिखे हुए ब्रिटिश भारत के इतिहासों में भी कहीं पर कल्पित घटनाओं और लज्जास्पद झूठों की इतनी अधिक और इतनी भयंकर मिसालें न मिलेंगी, जितनी सर विलियम नेपियर की 'सिन्ध की विजय' में। अपने भाई चार्ल्स नेपियर और उसके साथियों के कारनामों को थोड़ा बहुत जायज़ क़रार देने के लिए विलियम नेपियर ने सिन्ध के अमीरों और वहां की प्रजा, दोनों के ऊपर अनेक कल्पित और अनसुने दोष गढ़ कर लगाए हैं। मिसाल के तौर पर, विलियम नेपियर ने अपनी पुस्तक में लिखा है कि सिन्ध के अमीर लिखने पढ़ने से सर्वथा अनभिज्ञ थे, वे मादक द्रव्यों के व्यसनी थे। बूढ़े मीर रुस्तम ख़ां के विषय में लिखा है कि वह निर्बल, शराबी और व्यभिचारी था। लिखा है कि अमीरों का व्यवहार हिन्दुओं के साथ बहुत बुरा था; बलूची लोग अपने हाथ से अपने बच्चों को मार डालते थे ! इत्यादि, इत्यादि।"*

इस तरह के झूठे कलंक न केवल नेपियर और उसके साथियों के अमानुषिक अत्याचारों को जायज़ क़रार ही नहीं दे सकते, बल्कि सिन्ध के अमीरों और वहां की प्रजा के ज़ख्मों के ऊपर नमक का भी काम करते हैं। हम इनमें से केवल मुख्य-मुख्य इलज़ामों की असत्यता को कुछ निष्पक्ष अंगरेज़ इतिहास लेखकों के शब्दों मे दरशाने का प्रयत्न करेंगे।

सिन्ध के अमीरों का चरित्र

सर अलेक्ज़ेण्डर बर्न्स का भाई, प्रसिद्ध डाक्टर जेम्स बर्न्स, जो बहुत दिनों तक सिन्ध के अमीरों के साथ रह चुका था, लिखता है——

> **"जब मैं हैंदराबाद जा रहा था, तो मार्ग भर में मीर नसीर खां के सद्गुणों और उसकी कवित्वशक्ति की प्रशंसा होती रही। मैंने अवसर पाकर मीर नसीर खां से प्रार्थना की कि वे मुझे कृपा कर अपनी रची हुई कविताओं का संग्रह 'दीवाने जाफ़र' देने का अनुग्रह करें।"†**

मीर नसीर ख़ां 'जाफ़र' के नाम से कविता किया करता था। इतिहास लेखक ईस्टविक लिखता है कि अमीरों के कुल के न केवल सब पुरुष ही, बल्कि हर स्त्री भी फ़ारसी और अरबी लिखना पढ़ना जानती थी।‡

अमीरों के मादक द्रव्यों के उपयोग के बारे में डाक्टर बर्न्स, जो महीनों उनमें से एक-एक के साथ रहा, लिखता है——

> **"आम मुसलमान नरेशों की अपेक्षा सिन्ध के अमीर अय्याशी और आरामतलबी में कम डूबे हैं। × × × इस बात की पूरी तरह जांच की जा चुकी है कि अमीर कभी भी मदिरा या मादक द्रव्यों का उपयोग नहीं करते। × × × अमीरों के दरबार में कहीं हुक्का तक दिखाई नहीं देता ओर न उनके कुटुम्ब में कोई अफीम खाता है।"§**

---

* "And how did these monsters destroy their own children? etc., etc.,"—*Conquest of Sindh*, by Sir William Napier, part ii, p. 348.

† *Amirs of Sindh*—by Dr. James Burns, F. R. S.

‡ *Dry Leaves from Young Egypt*, p. 68.

§ *Amirs of Sindh*—by Dr. James Burns, p. 67.

कप्तान ईस्टविक, जिसे बरसों सिन्ध में अमीरों के साथ रहने का अवसर मिला और जो वहां की प्रजा के हर श्रेणी के लोगों में पूरी तरह मिलता जुलता रहा, लिखता है—

> "मैं सचाई के साथ कह सकता हूं कि मैंने किसी भी अमीर के विरुद्ध कभी कोई ऐसी बात नहीं सुनी कि जो अधिकांश अंगरेज़ भद्र पुरुषों के विरुद्ध न कही जा सकती हो ।××× जहां तक मैंने सुना है, केवल एक मिसाल को छोड़ कर उस कुल के किसी भी व्यक्ति के ऊपर कभी किसी जुर्म का इलज़ाम नहीं लगाया गया×××।"*

जिस एकमात्र मिसाल का ईस्टविक ने ज़िक्र किया है, वह 15 साल पहले की यह घटना थी । कोई स्त्री बाहर से पढ़ाने के लिए मीर रुस्तम खां के ज़नानख़ाने में आया करती थी। राजकुल के एक युवक मोहम्मद खां ने उस स्त्री की ओर अनुचित प्रेम दरशाया। स्त्री के पिता को पता लग गया । उसने महल में घुस कर मोहम्मद ख़ां को बुरी तरह घायल कर दिया । मोहम्मद ख़ां बच गया । किन्तु मीर रुस्तम ख़ां ने इस मामले का पता चलने पर बजाय स्त्री के पिता को किसी तरह का दण्ड देने के, निर्णय किया कि—'इतना घोर पाप करने वाले के साथ हम कोई सम्बन्ध नहीं रख सकते ।' मोहम्मद ख़ां को राजधानी से निकाल दिया गया, और फिर इसके बाद ज़िन्दगी भर उसे ख़ैरपुर लौटने की इजाज़त न मिली ।†

यह घटना अमीर रुस्तम खां के दरबार की है । हैदराबाद दरबार के अमीर नसीर ख़ां के जीवन की भी इस तरह की घटनाएं ईस्टविक ने नक़ल की हैं, जिनसे मालूम होता है कि स्त्री जाति और उसके सतीत्व और मान का सिन्ध के अमीरों को असाधारण ख़याल रहता था ।

जिस बूढ़े अमीर मीर रुस्तुम ख़ां को सर विलियम नेपियर ने 'शराबी' और 'अय्याश' बयान किया है, उसके बारे में, पूना का अंगरेज़ सिविल सर्जन, डाक्टर पीयर्ट, लिखता है—

> "ख़ैरपुर का पदच्युत अमीर रुस्तम ख़ां, उसका सबसे छोटा लड़का अलीबख्श ख़ां और भतीजा पदच्युत अमीर नसीर ख़ां मार्च सन् 1844 से अब तक मेरी निगरानी में रहे हैं, और मुझे यह तसदीक करते हुए अत्यन्त सन्तोष का अनुभव होता है कि इन मुसीबतों में भी उनका आचरण अत्यन्त उदार और उत्कृष्ट था । मैं अच्छी तरह कह सकता हूं कि जब से मुझे उनके परिचय का सौभाग्य प्राप्त हुआ है, मैंने कभी कोई भी बात ऐसी नहीं देखी, जिससे किसी तरह की बदपरहेज़ी या अय्याशी का उन पर अणुमात्र भी संदेह किया जा सके; और मुझे इस बात की परीक्षा के काफ़ी अवसर मिले हैं । जिस समय चाहा, मैं उनके पास पहुंच गया हूं । मीर रुस्तम ख़ां की उम्र इस समय 80 से ऊपर है, उसकी समस्त शक्तियां ज्यों-की-त्यों बनी हुई हैं, उसकी स्मरण शक्ति बहुत अच्छी है; वह अपनी धार्मिक क्रियाओं का ठीक-ठीक पालन करता है, उसका रहन-सहन परहेज़

---

* *Dry Leaves from Young Egypt*, p. 68.

† Ibid, p. 68.

गारी का है, वह दिन में केवल एक बार खाना खाता है, और सिवाय पानी या दूध के और कोई चीज नहीं पीता ।"*

कर्नल ऊटरम ने उस समय के उन सब अंगरेज़ राजनैतिक अफ़सरों की, जिन्हें समय-समय पर सिन्ध के अमीरों के साथ रहने का अवसर मिला, इस विषय में गवाहियां जमा की हैं, और लिखा है कि वे सब गवाह एकमत से इस बात का समर्थन करते हैं कि सर विलियम नेपियर ने अपनी पुस्तक के अन्दर अमीरों के ऊपर जो जो इलज़ाम लगाए हैं, वे सब के सब सर्वथा कल्पित हैं ।†

मादक द्रव्यों से अमीरों को नफ़रत

इसके बाद हम केवल एक और अंगरेज़, कप्तान गार्डन की राय नीचे नक़ल करते हैं, जो बहुत दिनों तक हैदराबाद में अमीरों के साथ रहा । वह ऊटरम को लिखता है—

> "आपके प्रश्न के उत्तर में मैं कहता हूं कि सिन्ध के अमीर हद दरजे के परहेजगार मनुष्य हैं । वे शराब और हर तरह की मादक चीज से बहुत सख्त परहेज करते हैं । तम्बाकू से भी उन्हें बड़ी प्रबल घृणा है । वे तम्बाकू की गन्ध तक सहन नहीं कर सकते । इसलिए तम्बाकू और शराब पीने के बारे में हममे से बहुतों के लिए, जिन्हें कि अपनी अधिक उच्च सभ्यता और अधिक संयमी चरित्र का घमण्ड है, सिन्ध के अमीर एक आदर्श हैं ।" ‡

मीर रुस्तम खां की मृत्यु

मीर रूस्तम खां के बारे में ईस्टविक लिखता है—"मीर रूस्तम खां प्रेम और आदर के योग्य मनुष्य था × × × उसके अन्दर मानवीय सहृदयता भरी हुई थी । वह सुशील, शान्त स्वभाव, दयावान और हद दरजे का सहनशील था ।"

अमीरों के उच्च और आदर्श चरित्र के विषय में इससे अधिक सम्मतियां उद्धृत करने की आवश्यकता नहीं है । पूना जेल के अंदर मीर रूस्तम खां की शोकजनक मृत्यु को बयान करते हुए ईस्टविक लिखता है——

> "मीर रुस्तम ख़ां के जीवन के अन्त के दिनों को उन लोगों के हाथों क़ैद ने कड़वा कर दिया था, जिनके ऊपर उसने इतने अधिक उपकार किए थे । शीघ्र ही अत्याचारों के इस ढेर के नीचे दब कर बूढ़ा मीर रुस्तम ख़ां समाप्त हो गया ।"

ईस्टविक लिखता हैं कि मीर रूस्तम खां के पिता, मीर सोहराब की मृत्यु सौ साल की आयु में गिर कर हुई थी । मीर सोहराब कभी सिवाय पानी के और कोई चीज़ न पीता

---

* *The Conquest of Sindh, a Commentary,* by Colonel Outram, part ii, p. 524.

† Ibid, part ii.

‡ "I observe, therefore, in reply to your query, that the Amirs are the most temperate of men, rigidly abstaining from wine and every kind of liquor while to smoking also, they have a strong aversion and cannot even endure the smell of tobacco. In regard, therefore, to smoking and drinking, the Amirs are examples to most of us, who boast a higher civilization, and a more self-denying morality."—*Dry Leaves from Young Egypt*, p. 286.

था, और वह भी दिन में केवल एक बार। "निस्सन्देह मीर रूस्तम उसी आयु को प्राप्त होता, किन्तु अंगरेज़ों के हाथों उसने जो अन्याय सहन किए, उन अन्यायों ने उसके अन्यथा सबल शरीर को तोड़ डाला।" फिर भी मीर रूस्तम की आयु मृत्यु के समय 85 के ऊपर थी।

अमीरों का शासन प्रबन्ध

ईस्टविक लिखता है कि "अपने यहां के न्यायशासन में अमीर दया की ओर अधिक झुकते थे, खून बहाने के वे अत्यन्त विरुद्ध थे।"*

हेड्ल ने बम्बई सरकार के नाम अपनी रिपोर्ट में लिखा था कि "सिन्ध में व्यापारियों की इतनी अच्छी तरह रक्षा की जाती है और उनके व्यापार को इतना प्रोत्साहन दिया जाता है कि दूसरे प्रान्तों और दूसरे देशों से व्यापारी लोग जा-जाकर इन अमीरों के राज में बसते हैं।"†

सिन्ध का सारा व्यापार हिन्दुओं के हाथों में था, जिसमें खासकर कराची के अन्दर मोतियों का व्यापार बड़ा लाभदायक था।

ईस्टविक लिखता है—

> **"सिन्ध के अमीरों के शासन में हैदराबाद का नगर अत्यन्त धन सम्पन्न और आबाद हो गया। × × × और उस समय, जब कि भारत के अन्दर स्वयं हमारे इलाकों में चारों ओर लूट और रक्तपात का दौर था, सिन्ध में शान्ति और सुशासन कायम था।"‡**

खेती और आबपाशी

ईस्टविक के अनुसार सिन्ध के अमीरों की प्रजा खुशहाल और सन्तुष्ट थी। किसान से लगान अधिकतर अनाज के रूप में लिया जाता था और राज का भाग सदा के लिए नियत था। इसी कारण उन दिनों सिन्ध की समस्त भूमि हरी-भरी और पदावार से लहलहाती हुई नज़र आती थी।

आबपाशी के लिए सिन्ध के मुसलमान अमीरों की बनवाई हुई सिन्धु नदी की लम्बी नहर, जिसे फुलैली कहते हैं, अभी तक (1929) मौजूद है। यह नहर निर्माण-कला का एक अत्यन्त सुन्दर नमूना है। इसका एक चमत्कार यह है कि इसमें जगह-जगह पर इस तरह ढाल दिया गया है कि ब्रिटिश भारत की अन्य नहरों के समान इसे समय समय पर साफ़ कराने और मिट्टी निकलवाने की आवश्यकता नहीं पड़ती।

धार्मिक सद्भावना

अमीरों की तुच्छ से तुच्छ प्रजा भी दाद फ़रियाद लेकर अपने नरेश के पास पहुंच सकती थी। हैदराबाद में अधिकांश आबादी मुसलमानों की थी, फिर भी कच्छ, गुजरात

---

* "In the administration of justice the Amirs erred on the side of clemency. They were most averse to the sheding of blood."—Ibid, p. 68.

† *Amirs of Sindh*, by Dr. J. Burnes, p. 16.

‡ *Dry Leaves from Young Egypt*, p. 242.

और राजपूताने के अनेक धनाढ्य हिन्दू व्यापारी हैदराबाद में रहते थे । उन सबके साथ बहुत अच्छा व्यवहार किया जाता था । दीवाली के रोज़ हैदराबाद के सारे शहर में, यहां तक कि हर मसजिद और मक़बरे में और सिन्धु नदी के दोनों तटों पर, बड़े जोर की रोशनी की जाती थी । ईस्टविक लिखता है कि दिवाली की रात को भक्खर के किले का दृश्य अत्यन्त मनोरम होता था और चारों ओर जल में दीपक और लक्ष्मी की मूर्तियां तख्तों के ऊपर बहती हुई दिखाई देती थीं ।*

कम्पनी के शासन का प्रारम्भ

इस सबके विपरीत कम्पनी का शासन शुरू होते ही सिन्ध का सारा नक्शा बदल गया । "ज़मीन की पैदावार कम होने लगी, जगह जगह खेती मन्द हो गई, सैनिक शासन प्रारम्भ हो गया, हर श्रेणी के लोगों में असन्तोष फैल गया और जो लगान अमीर विना किसी प्रयत्न के वसूल कर लेते थे, उसे वसूल करने में नए शासकों को कठिनाई होने लगी ।"†

दग़ा और लूट का दौर

बड़े-बड़े सिन्धी कर्मचारियों की जगह अंगरेज़ अफ़सर नियुक्त कर दिए गए । जनरल नेपियर सिन्ध का पहला गवर्नर हुआ । ईस्टविक लिखता है कि— "चारों ओर दग़ाबाज़ी और लूट शुरू हो गई ।"‡ प्रजा के जानमाल की कोई हिफ़ाज़त न रही । लगान की पद्धति अत्यन्त विगड़ गई । किसान के उपर भार इतना बढा दिया गया कि जो लगान सन् 1843 में 9,37,937 रुपये था, वह 1844 में 27,40,722 रुपये हो गया और सन् 1850 में 29,83,750 रुपये ।

सर हेनरी पाटिन्जर, जिसकी अपेक्षा सिन्ध के साथ अंगरेज़ों के सम्पर्क और व्यवहारों से कोई दूसरा अंगरेज़ अधिक परिचित न था और जो बाद में मद्रास का गवर्नर हुआ, लिखता है—

> **"मेरी राय में, चाहें हम किसी तरह की भी दलील क्यों न दें, सिन्ध के अमीरों के साथ हमारे व्यवहार से जो कलंक हमारी ईमानदारी और हमारी आबरू पर लग चुका है, वह किसी तरह नहीं धुल सकता ।"**§

जनरल नेपियर के उद्‌गार

अन्त में हम सिन्ध के विजेता, जनरल सर चार्ल्स नेपियर के ही कुछ शब्द उसके अपने कारनामे के बारे में देते हैं । जनरल नेपियर लिखता है—

> **"भारत में ज़्यादती अंगरेजों की ओर से की गई × × × कभी भी**

---

[*] *Dry Leaves from Young Egypt*, p. 89.

[†] Ibid, p. 71.

[‡] "Then began a system of universal fraud and peculation."—*Dry Leaves from Young Egypt*, p. 306.

[§] "No reasoning can, in my opinion, remove the fowl stain it (the case of the Amirs) has left on our faith and honour;"—Sir Henry Pottinger's letter to the *Morning Chronicle*, 8th January, 1844.

किसी बड़ी क़ौम ने इससे अधिक नीच और क्रूर अन्याय के लिए अपनी शक्ति उपयोग नहीं किया । भारत (सिन्ध) को विजय करने में हमारा लक्ष्य, हम समस्त अत्याचारों का लक्ष्य, धन था---पैसा था; कहा गया है कि पिछले साल के अन्दर एक हजार मिलियन पौंण्ड (यानी करीब दस अरब रुपया) भा से निचोड़ा जा चुका हैं । इस धन का एक-एक शिलिंग खून में से उठाया गया उसे पोंछा गया हैं और हत्यारों नें उसे अपनी जेबों में रख लिया है; किन्तु हम धन को चाहे कितना भी क्यों न पोंछे और धोएं, उस पर से 'खून का दाग़ नहीं सकता ।' यह दाग उस पर सदा के लिए क़ायम रहेगा; और यदि आसमान पर खुदा है, जिसके सामने कि किसी 'क़ौम के व्यापारिक हित' नहीं देखे जाते, निस्सन्देह हमें कभी न कभी अपने पाप का दण्ड मिलेगा, अन्यथा हम खुदा को जो समझ बैठे हैं और आशा करते है, वह सब मिथ्या है । 'तिजारती माल ब वाली एक महान क़ौम' की दृष्टि में न्याय और धर्म मजाक की चीजें हैं; इस की क़ौम का सच्चा खुदा 'धन' है । सम्भव हैं मेरा विचार विचित्र प्रतीत हो, वास्तव में मैं, ईस्ट इण्डिया कम्पनी के स्वेच्छाचारियों की अपेक्षा, स्वेच्छा नेपोलियन को अधिक पसन्द करता हूं । जो मनुष्य चक्रवर्ती राज का आकांक्षी है, वह आमतौर पर पराजित क़ौमों के भले के लिए शासन करता है; किन्तु लोगों को चक्रवर्ती लूट की आकांक्षा होती है, वे केवल अपने को धनी बनाने के शासन करते हैं । उन्होंने दस करोड़ मनुष्यों के सुख का नाश कर दिया पहला मनुष्य स्वर्ग से गिरा हुआ फ़रिश्ता हो सकता हैं, किन्तु दूसरा मनुष्य में पैदा हुआ शैतान है !"*

ईस्टविक चकित होकर लिखता है कि—"क्या ये उसी आदमी के शब्द हो हैं, जो खून की नदी में से चल कर हैदराबाद के ख़ज़ानों तक पहुंचा था ।"

---

*The English were the aggressors in India......and a more base and tyranny never wielded the power of a great nation. Our object in conq India (Sindh ?), the object of all our cruelties, was money—lucre; a tho millions sterling are said to have been squeezed out of India in the last years. Every shilling of this has been picked out of blood, wiped, and into the murderers' pockets; but, wipe and wash the money as you will, 'damned spot' will not 'out'. There it sticks for ever, and we shall yet for the crime, as sure as there is a God in heaven, where the 'comm interests of the nation' find no place, or, heaven is not what we hope believe it to be. Justice and religion are mockeries in the eyes of 'a manufacturing country', for the true God of such a nation is Mammo may be singular, but, in truth, I prefer the despotic Napoleon to the of the East India Company. The man ambitious of universal power rules to do good to subdued nations; but the men ambitious of peculation rule only to make themselves rich, to the destruction of hap among a hundred-millions of people. The one may be fallen angel; the is a hell-born devil !"—*Lights and Shades of Military Life*, edited by Charles Napier, pp. 297, 298.

सिन्ध की स्वाधीनता का अन्त

जो हो, सिन्ध की स्वाधीनता का अन्त हो गया और अंगरेज़ी माल की ख़पत के लिए एक नयी विशाल मण्डी और इंगलिस्तान के लड़कों की जीविका के लिए एक नया क्षेत्र तैयार हो गया।

इंगलिस्तान की पार्लियामेण्ट ने गवर्नर-जनरल एलेनब्रु, सर चार्ल्स नेपियर और अंगरेज़ी सेना के लिए अंगरेज़ क़ौम की ओर से धन्यवाद का प्रस्ताव पास किया।

उन्तालीसवां अध्याय

भारत के दूसरे नरेश और एलेनब्रु

सिंधिया

मराठा मण्डल के पांच मुख्य स्तम्भों से सबसे अधिक बलवान सिंधिया था। माधो सिंधिया के अधीन एक बार क़रीब-क़रीब समस्त मुग़ल साम्राज्य के शासन की बाग इस के हाथों में आ गई थी। कम्पनी के शासकों की सदा से इस राज पर आंखें थीं। माधो सिंधिया के उत्तराधिकारी, दौलतराव सिंधिया को पंगुल करने के लिए जो अनेक प्र किए गए, उनका जिक्र पिछले अध्यायों में आ चुका है। ग्वालियर राज के विरुद्ध बेंटिक की साज़िशों का ज़िक्र भी ऊपर आ चुका है। फिर भी सन् 1843 तक महा सिंधिया अंगरेज़ कम्पनी का बाज़गुज़ार न था। सन् 1832 की ब्रिटिश पार्लियामेण्ट की रिपोर्ट में दर्ज है—"इस प्रायद्वीप के अन्दर अकेला सिंधिया ही एक ऐसा नरेश है, जि अभी तक अपनी ज़ाहिरा स्वाधीनता बनाए रखी है।"* उस समय तक अंगरेज़ों सिंधिया के बीच जितनी सन्धियां हुई थीं, उनसे महाराजा सिंधिया की स्वाधीनता में अन्तर न पड़ता था और न कम्पनी सरकार को महाराजा सिंधिया के शासन में ह करने का कोई अधिकार था।

ग्वालियर दरबार का सुशासन

7 फरवरी, सन् 1843 को महाराजा जंकोजी सिंधिया की अचानक मृत्यु हो जंकोजी के कोई औलाद न थी। कहा जाता है, विधवा महारानी की आयु केवल 1 की थी। महारानी ने समस्त ग्वालियर दरबार की सम्मति से अपने एक निकट सम्ब भागीरथराव को, जिसकी आयु उस समय आठ वर्ष की थी, गोद ले लिया। भागीरथ जयाजीराव सिंधिया के नाम से ग्वालियर की गद्दी पर बैठा। महारानी बालक जयाजी की ओर से रीजेण्ट नियुक्त हुई। किन्तु महारानी की आयु भी कम थी, इसलिए राज समस्त प्रबन्ध दरबार के सुपुर्द कर दिया गया। उस समय के ऐतिहासिक उल्लेखों से स्प और स्वयं लार्ड एलेनब्रु ने अपने पत्रों में स्वीकार किया है कि ग्वालियर दरबार योग्यता और सफलता के साथ राज का सारा कारबार चला रहा था।

फिर भी, इतिहास लेखक जान होप लिखता है—

> **"चूंकि लार्ड एलेनब्रु ने इस बात का पक्का इरादा कर लिया था कि ए सिंधिया राज के अधिकारों की अवहेलना की जाए और फिर धीरे-धीरे उस की स्वाधीनता छीन ली जाए, इसलिए लाज़मी तौर पर लार्ड एलेनब्रु के लिए ए काम यह था कि महारानी की कमउमरी का बहाना लेकर उसे अलग कर दे**

---

* "Within the Peninsula Sindhia is the only Prince who preserves semblance of independence."—*Report of the Select Committee of the H of Commons*, 1832.

उसकी जगह किसी ऐसे आदमी को रीजेण्ट बना दे, जो हर बात में खुशी से अंगरेज सरकार का कहना मान ले। शुरू में लार्ड एलेनब्रु ने अपना यह इरादा दूसरों पर जाहिर नहीं किया। रीजेण्ट चुनने का अधिकार ग्वालियर दरबार को था। दरबार की कौन्सिल के अन्दर उस समय केवल एक व्यक्ति ऐसा था, जो अपनी क़ौम के हित के विरुद्ध कार्रवाई करने को राजी हो सकता था। यह व्यक्ति मामा साहब कहलाता था। इसलिए यद्यपि अभी तक यह असूल चला आता था कि रेजिडेण्ट रियासत के इस तरह के मामलों में हस्तक्षेप न करे, फिर भी अब इस असूल का उल्लंघन करके मामा के चुने जाने के लिए एलेनब्रु ने अपनी शक्ति भर कोशिश की।"*

अनुचित हस्तक्षेप

महाराजा जंकोजी की मृत्यु का समाचार सुनते ही लार्ड एलेनब्रु ने आगरे की ओर कूच किया और बिना किसी कारण आगरे के निकट ग्वालियर राज की सरहद पर कम्पनी की फ़ौजें जमा कर लीं। आगरे में बैठ कर वहां से लार्ड एलेनब्रु ने ग्वालियर दरबार के अन्दर साज़िशें शुरू कीं।

दादा ख़ासजीवाला

ग्वालियर दरबार उस समय नाबालिग़ महाराजा और रीजेण्ट महारानी की ओर से राज प्रबन्ध करने के लिए दादा ख़ासजीवाला नामक एक मनुष्य को सर्वसम्मति से प्रधान मन्त्री नियुक्त करना चाहता था। दादा ख़ासजीवाला योग्य, ईमानदार और सर्वप्रिय था। इसके विरुद्ध जिस मनुष्य को एलेनब्रु बढ़ाना चाहता था, वह अयोग्य, अविश्वसनीय और ग्वालियर के लोगों में अत्यन्त अप्रिय था। फिर भी, ठीक उस समय, जब कि प्रधान मन्त्री का चुनाव होने वाला था, लार्ड एलेनब्रु का एक पत्र ग्वालियर पहुंचा, जिसमें लिखा था —

> "गवर्नर जनरल खुश होगा, यदि रीजेण्ट का पद मामा साहब को दे दिया जाए।" †

अंगरेज़ों का दूत मामा साहब

राज की हालत उस समय निर्बल थी। कोई प्रौढ़ और प्रभावशाली नीतिज्ञ दरबार

---

* "As Lord Ellenborough had firmly resolved, though his resolution was not then made known, first to disregard the rights of this 'state' and afterwards deprive it of its independence the preliminary step would necessarily be to set aside the Maharanee on the ground of her infancy and to put up in her place as Regent, person who would cheerfully do the bidding of the British Government. The election was in the hands of the Durbar. Now their was only one individual in that council who would lend himself to carry out an anti-national policy, and he was called the Mama Saheb. Accordingly, the resident laid aside the principle of non-intervention which hitherto had guided his conduct and strained every nerve to effect this man's election."—*Sketch of the House of Sindhia*, by John Hope, p. 42.

† "The Governor-General would gladly see the Regency conferred upon the Mama Saheb."—Lord Ellenborough.

में न था । अंगरेज़ी सेना सरहद पर पड़ी हुई थी, इस सब पर दरबार के अन्दर अंगरे रेजिडेण्ट की साज़िशें । नतीजा यह हुआ कि रीजेण्ट के रूप में नहीं, किन्तु प्रधान मन्त्री रूप में राज की बाग एक बार मामा साहब के हाथों में दे दी गई । किन्तु मामा साहब अधि दिनों तक राजसत्ता अपने हाथों में न रख सका । अंगरेज़ी रेज़िडेण्ट के साथ उसकी साज़ि के कारण शीघ्र ही सारा दरबार उसके विरुद्ध हो गया । महारानी की इच्छा के विरु रेज़िडेण्ट के उकसाने पर उसने अपनी एक छह साल की भतीजी का महाराजा जयाजीरा के साथ विवाह कर देना चाहा । करीब पन्द्रह दिन इस पर दरबार के नीतिज्ञों में बह होती रही । अंत में 20 मई, सन् 1843 को सब दरबारियों और महारानी ने एक म से मामा साहब को पदच्युत कर दिया । मामा साहब को महारानी की आज्ञानुसा ग्वालियर छोड़कर चला जाना पड़ा । 24 मई, सन् 1843 को मामा साहब ग्वालिय से रवाना हुआ । 26 मई को महारानी ने राज के समस्त दरबारियों और सरदारों आज्ञा दी कि आप लोग मिल कर मामा साहब की जगह दूसरा मन्त्री चुनें । दरबा ने दादा ख़ासजीवाला को सर्वसम्मति से मन्त्री नियुक्त किया ।

एलेनब्रु का नया बहाना

लार्ड एलेनब्रु ने अब यह बहाना गढ़ा कि सिंधिया राज और अंगरेज़ी इलाके मिली हुई सरहद पर कई जगह विद्रोह खड़े हो रहे हैं और डाके पड़ रहे हैं, जिन्हें ग्वालि दरबार दबाने में असमर्थ है । इतिहास लेखक जान होप ने इस बहाने के थोथेपन और उस झूठ को बड़ी सुन्दरता के साथ दिखाया है । उसने लिखा है कि ठीक उस समय, जब लार्ड एलेनब्रु ने सिंधिया राज के प्रबन्ध में यह दोष निकाला, बुन्देलखण्ड में, जो कि अंगरे के अधीन था, और सागर व नरबदा के अंगरेज़ी इलाकों में, जिनकी सरहद सिंधिया सरहद से मिली हुई थी, पिछले दो साल से अनेक विद्रोह खड़े हो रहे थे और जगह-ज डाके पड़ रहे थे । यहां तक कि सिंधिया की राजधानी ग्वालियर से केवल सौ मी दूर कुछ लोग खिमलासा, नामक एक धनसम्पन्न नगर का, जो अंगरेज़ी इलाके में नाश कर देना चाहते थे, और सिंधिया को दो हजार सब्सीडियरी सेना द्वारा अंगरे खिमलासा की रक्षा करने में लगे हुए थे । इसी समय अंगरेज़ी इलाके के एक दू नगर बालाबेहूत को कुछ विद्रोही जला देना चाहते थे और ग्वालियर की विध महारानी की सेना बालाबेहूत की रक्षा कर रही थी । निस्सन्देह यदि विद्रोहियों डाकुओं का दमन करने की अयोग्यता के कारण किसी राज के शासन प्रबन्ध में कि पड़ोसी नरेश को हस्तक्षेप करने का अधिकार दिया जा सकता है, तो लार्ड एलेनब्रु ग्वालियर के शासन में हस्तक्षेप करने के बजाय ग्वालियर दरबार को कम्पनी के शा में हस्तक्षेप करने का अधिकार मिलना चाहिए था । किन्तु लार्ड एलेनब्रु के लिए भी बहाना काफ़ी था ।

रेजिडेण्ट स्लीमैन

ग्वालियर का अंगरेज़ रेजिडेण्ट कर्नल स्पायर्स एलेनब्रु के दिल का आदमी न इसलिए स्पायर्स को फ़ौरन ग्वालियर से हटा कर उसकी जगह कर्नल स्लीमैन जिसकी बाबत उस समय के इतिहास से साफ पता चलता है और उन दिनों

बात मशहूर भी थी कि उसका भारत के ठगों और डाकुओं पर बहुत बड़ा असर था, रेजिडेण्ट नियुक्त करके ग्वालियर भेजा गया। यह स्लीमैन आगे चल कर अवध के अन्दर भी अपनी कूटनीति के लिए खासा प्रसिद्ध हुआ।

दादा ख़ासजीवाला की सर्वप्रियता

लार्ड एलेनब्रु ने इंगलिस्तान की मलका विक्टोरिया के नाम 13 अगस्त, सन् 1843 के एक पत्र में स्वीकार किया है कि दादा ख़ासजीवाला एक अत्यन्त योग्य शासक था। ग्वालियर की सेना की तनखाहें कुछ दिनों से चढ़ी हुई थीं। दादा ख़ासजीवाला ने तमाम पिछली तनखाहें अदा कर दीं और भविष्य में ठीक समय पर सबको तनखाहें मिलने का प्रबन्ध कर दिया। मामा साहब ने राज के अनेक योग्य पदाधिकारियों को लार्ड एलेनब्रु के इशारे पर बरखास्त कर दिया था। दादा ख़ासजीवाला ने सब को फिर से अपने अपने पदों पर बहाल कर दिया। ग्वालियर राज की सेना में उस समय कई यूरोपियन और अर्द्ध-यूरोपियन अफसर थे। इनमें से कुछ ने अपनी मातहत सेना को दरबार के विरुद्ध भड़काना शुरू किया। कहीं-कहीं छोटे-मोटे विद्रोह भी हो गए। दादा ख़ासजीवाला ने इनमें से कई अफ़सरों को बरख़ास्त करके रियासत से बाहर निकाल दिया। राजमाता और महाराज जयाजीराव, ये दोनों भी दादा से प्रसन्न थे; यही सब बातें थीं, जिनके कारण दादा खासजीवाला अंगरेज़ों की नजरों में खटक रहा था। लार्ड एलेमब्रु ने अपने पूर्वोक्त पत्र में महारानी विक्टोरिया को सूचना दी कि मैंने दादा ख़ासजीवाला और दरबार ग्वालियर का दमन करने के लिए करीब बारह हजार सेना और तोपखाना आगरे में जमा कर लिया है। और सेना भी जमा की जा रही है।

ख़ासजीवाला पर झूठा इलजाम

दादा ख़ासजीवाला पर अब एक और विचित्र इलज़ाम लगाया गया। वह यह कि तुमने रीजेण्ट महारानी के नाम एलेनब्रु के किसी एक पत्र को बीच में रोक लिया। इस इलज़ाम की बिना पर लार्ड एलेनब्रु ने महारानी और ग्वालियर दरबार को लिखा कि दादा ख़ासजीवाला को फौरन अंगरेज़ों के हवाले कर दिया जाए। निस्सन्देह एक स्वाधीन राज के प्रधान मन्त्री पर इस तरह का इलज़ाम अत्यन्त लचर और बेमानी थी। लार्ड एलेनब्रु की मांग भी न्याय, नीति और सन्धियों, सब के विरुद्ध थी।

ख़ासजीवाला की गिरफ़्तारी

महारानी और ग्वालियर दरबार, दोनों ने एक मत से लार्ड एलेनब्रु की इस मांग पर एतराज किया, और लार्ड एलेनब्रु से उस पर फिर से विचार करने की प्रार्थना की। एलेनब्रु अपनी जिद्द पर अड़ा रहा। वह काफ़ी सेना सरहद पर जमा कर चुका था। स्वयं ग्वालियर के अन्दर करनल स्लीमैन की साज़िशें जारी थीं। महारानी की प्रार्थना के उत्तर में एलेनब्रु ने साफ युद्ध की धमकी दी। कातर महारानी ने एलेनब्रु को सन्तुष्ट करने के लिए अपने योग्य मन्त्री और संरक्षक, निर्दोष दादा ख़ासजीवाला को क़ैद तक कर लिया और उसकी जगह रामराव फलकिया को मन्त्री नियुक्त कर दिया। फिर भी लार्ड

एलेनब्रु को सन्तोष न हो सका। उसने दो विशाल सेनाएं एक सिंधिया राज के उत्तर में और दूसरी पूर्व में जमा कीं। युद्ध में अब कोई कसर बाकी न रही। ग्वालियर दरबार युद्ध से बचना चाहता था। विवश होकर दरबार ने दादा ख़ासजीवाला को लार्ड एलेनब्रु के सुपुर्द कर दिया। लार्ड एलेनब्रु ने दादा को क़ैद कर लिया। दो साल बाद बनारस में अंगरेज़ों की क़ैद के अन्दर सिंधिया के इस वफ़ादार मन्त्री दादा ख़ासजीवाला की मृत्यु हुई।

एलेनब्रु का वास्तविक इरादा

एलेनब्रु की मांग अब पूरी हो चुकी थी। फिर भी उसे सन्तोष न हुआ। मलका विक्टोरिया के नाम एलेनब्रु के 19 दिसम्बर, सन् 1843 के पत्र से पता चलता है कि वह शुरू में पंजाब पर हमला करना चाहता था और इस विचार से कि पंजाब पर हमला करते के समय सिंधिया की सन्नद्ध सेना अंगरेज़ों को पीछे से दिक़ न करे, वह जिस तरह हो सके, पहले सिंधिया की सेना का नाश कर देना चाहता था।

नया मन्त्री रामराव फलकिया एलेनब्रु से मिलने के लिए आगरे भेजा गया। एलेनब्रु ने रामराव फलकिया से एक नयी बात छेड़ी। उसने कहा कि कुछ साल हुए, बरहानपुर में दौलतराव सिंधिया और अंगरेज़ों के दरमियान जो सन्धि हुई थी, उस में यह तय हो गया था कि यदि किसी समय महाराजा सिंधिया अपने यहां के किसी विद्रोह का दमन करने या अपने शत्रुओं को परास्त करने के लिए अंगरेज़ सरकार से सेना की सहायता मांगे, तो अंगरेज़ उसकी मदद करेंगे। इस धारा के अनुसार लार्ड एलेनब्रु ने रामराव फलकिया को सूचना दी कि चूंकि ग्वालियर के राज में इस समय विद्रोह मौजूद है, इसलिए अंगरेज़ सरकार ने महाराजा जयाजीराव सिंधिया को सहायता के लिए अपनी सेना ग्वालियर भेजने का निश्चय कर लिया है किन्तु न महाराजा सिंधिया पर उस समय कोई आपत्ति थी, और न महाराजा जयाजीराव ने या उसकी माता महारानी ने या ग्वालियर में किसी ने भी अंगरेज़ों से सहायता मांगी थी। इसके जवाब में लार्ड एलेनब्रु ने रामराव फलकिया से कहा कि महाराजा के नाबालिग होने के कारण महाराजा की आवश्यकताओं को समझने का अधिकार केवल अंगरेज़ गवर्नर-जनरल को ही है। रामराव फलकिया इस उत्तर को सुन कर चकित रह गया। इसका अर्थ केवल यह था कि अब तक की तमाम सन्धियों और प्रतिज्ञापत्रों को रद्दी के टोकरे में फेंक कर लार्ड एलेनब्रु एक स्वाधीन किन्तु नाबालिग नरेश के राज पर हमला करने के लिए कटिबद्ध था और उसका कुछ न कुछ इलाका हज़म कर लेना चाहता था।

इतिहास लेखक होप ने लिखा है कि बरहानपुर की जिस सन्धि का लार्ड एलेनब्रु ने हवाला दिया था, वह सन्धि तक अंगरेज़ों की ही इच्छा के अनुसार कुछ समय पहले रद्द करा दी जा चुकी थी अर्थात् एलेनब्रु का सारा बहाना सिर से पांव तक झूठा था।

ग्वालियर पर हमला

इस तरह, बिना किसी कारण के लार्ड एलेनब्रु ने महाराजा सिंधिया के राज में घुस कर राजधानी ग्वालियर पर हमला किया। ग्वालियर दरबार इस हमले के लिए तैयार न था। 29 दिसम्बर, सन् 1843 को महाराजपुर और पनियार नामक स्थानों पर दो प्रसिद्ध

संग्राम हुए, जिनमें टारेन्स के अनुसार अंगरेजी सेना को असाधारण हानि सहनी पड़ी। फिर भी एलेनब्रु ने कम्पनी की पुरानी पद्धति के अनुसार कुछ अपनी सेना के बल और कुछ कूटनीति के बल जयाजीराव सिंधिया की सेना पर अन्त में विजय प्राप्त की। इतिहास लेखक होप लिखता है कि सिंधिया की सब्सीडियरी सेना, जिसके कुछ सैनिक ठीक उसी गांव के रहने वाले थे, जिस गांव में महाराजा जयाजीराव सिंधिया का जन्म हुआ था, अपने स्वामी के विरुद्ध अंगरेज़ों की ओर से लड़ी। जान होप ने यह भी बयान किया है कि किस तरह इन दोनों लड़ाइयों के बाद अंगरेज़ों ने सिंधिया की सेना और प्रजा के साथ अनेक तरह के अत्याचार किए, किस तरह लोगों को मकानों के अन्दर बन्द करके बाहर से आग लगा दी गई और सिंधिया के इस तरह के अफ़सरों को, जिन्होंने हार स्वीकार कर ली थी, दग़ा देकर मरवा डाला गया। होप ने इस सब मामले के सम्बन्ध में लार्ड एलेनब्रु के झूठ, उसकी कूटनीति और उसकी स्वार्थमय साम्राज्य-पिपासा अच्छी तरह से प्रकट की है।

नई सन्धि

लार्ड एलेनब्रु ने अपने 16 फरवरी, सन् 1844 के एक पत्र में बतलाया है कि यदि इस समय वह सारे सिंधिया राज को अंगरेजी राज में मिलाने का प्रयत्न करता, तो उसे डर था कि दूसरे भारतीय नरेश कम्पनी के विरुद्ध भड़क उठेंगे, इसलिए एक नई सन्धि कर ली गई। ग्वालियर की सब्सीडियरी सेना की तादाद बढ़ा दी गई। उसके खर्च के लिए सिंधिया से कई नए जिले ले लिए गए। विधवा महारानी के हाथों से सब सत्ता छीन ली गई; तय कर दिया गया कि जब तक महाराजा जयाजीराव नाबालिग हैं, एक कौन्सिल राज का समस्त प्रबन्ध करे। कौन्सिल के लिए अंगरेज़ रेज़िडेण्ट की आज्ञाओं का मानना आवश्यक कर दिया गया। महारानी के लिए उसके अधिकारों के बदले में तीन लाख रुपये सालाना की पेंशन मंजर कर दी गई। इस तरह से कम से कम दस साल के लिए ग्वालियर राज का प्रबन्ध अंगरेज़ शासकों के हाथों में आ गया।

कैथल पर कब्जा

जिन दूसरे भारतीय नरेशों के साथ लार्ड एलेनब्रु का व्यवहार उल्लेखनीय है, उनमें से एक कैथल का राजा था। कैथल सतुलुज के इस पार करनाल से 30 मील पर एक सिख रियासत थी, जिसने दुर्भाग्यवश सन् 1809 में कम्पनी सरकार के साथ मित्रता की सन्धि कर ली थी। कैथल के राजा की मृत्यु हो गई। उसके कोई पुत्र न था। किन्तु रानी को गोद लेने का अधिकार था। लार्ड एलेनब्रु ने फ़ौरन तीन सौ सिपाहियों का एक दस्ता कैथल पर ज़बरदस्ती क़ब्जा करने के लिए भिजवा दिया। एलेनब्रु लिखता है कि राजकुल के लोगों और दरबारियों ने अंगरेज़ी सेना को अकस्मात् अपनी राजधानी में देख कर सत्याग्रह शुरू कर दिया। इतने में आसपास की प्रजा शस्त्र लेकर राजधानी में जमा हो गई। उन्होंने अंगरेज़ी सेना को मार कर पीछे हटा दिया। बचे-खुचे अंगरेज़ सिपाहियों को करनाल लौट आना पड़ा।

यह घटना 10 अप्रैल, सन् 1843 की थी। 14 अप्रैल को अठारह सौ नयी सेना थानेश्वर में जमा की गई। 16 अप्रैल को इस सेना ने कैथल में प्रवेश किया किन्तु मलका

विक्टोरिया के नाम लार्ड एलेनब्रु के एक पत्न में लिखा है कि 15 तारीख को ही कैथल की सशस्त्र प्रजा विधवा महारानी का साथ छोड़ कर वहां से चल दी और कैथल दरबार के कुछ मंत्री और नगर के कुछ व्यापारी अंगरेजों की ओर चले आए। सारांश यह कि कैथल पर अंगरेज़ कम्पनी का कब्ज़ा हो गया।

रणजीतसिंह की मृत्यु और पंजाब में अराजकता

इससे कहीं अधिक विशाल राज, जिसमें लार्ड एलेनब्रु ने अपने षड्यंत्र रचने शु किए, पंजाब का राज था। सन् 1839 में महाराजा रणजीत सिंह की मृत्यु हुई। रणजीत-सिंह का एक पुत्र खड़गसिंह पंजाब का राजा हुआ। किन्तु रणजीतसिंह के मरते ही सारे पंजाब में विद्रोहों, हत्याओं और अराजकता का बाज़ार गरम हो गया। इस अराजकता के सम्बन्ध में दिसम्बर सन् 1843 की 'ब्रिटिश फ्रेण्ड आफ़ इण्डिया' नामक लन्दन की ए पत्रिका ने लिखा था—

> "××× हमें जबरदस्त सन्देह है कि कम्पनी ने रिश्वत दे-देकर इन उपद्रवों को खड़ा करवाया है और उन्हें भड़काया है। ××× एक धनलोलु कम्पनी, जिसके पास किराए की एक सेना है, बिना लूट मार के नहीं रह सकती। ××× चूंकि इस समय जरूरी तौर पर इंगलिस्तान की तमाम शक्ति इन उपद्रवों की जड़ में है, इसलिए हमें बिल्कुल साफ़ दिखाई दे रहा है कि लाहौर का नगर लूटा जाएगा और वहां के राज के टुकड़े-टुकड़े किए जाएंगे।"*

एलेनब्रु की योजनाएं

ड्यूक आफ वेलिंगटन और लार्ड एलेनब्रु के अनेक पत्नों से जाहिर है कि बहुत दिनों पहले से पंजाब के ऊपर अंगरेज़ों के दांत थे और लार्ड एलेनब्रु ने महाराजा खड़गसिंह और शेरसिंह के अनुयायियों, कर्मचारियों और सरदारों को सिख राज के विरुद्ध अपनी ओर फ़ोडने के अनेक प्रयत्न किए। अफ़गानों और सिखों को एक दूसरे के विरुद्ध भड़काया गया और लड़ाया गया। एक पत्न में लार्ड एलेनब्रु ने लिखा है कि मैंने जलालाबाद पर सिखों को इसलिए कब्ज़ा कर लेने दिया, ताकि प्रधान सिख सेना लाहौर और अमृतसर से हट कर जलालाबाद की ओर चली जाय और मुझे राजधानी लाहौर पर हमला करने का मौक़ा मिल जाय। जनरल वेञ्चुरा नामक एक यूरोपियन अफ़सर उन दिनों पंजाब की सेना में अंगरेजों का गुप्तचर था। 20 अक्तूबर, सन् 1843 को लार्ड एलेनब्रु ने ड्यूक आफ़ वेलिंग्टन को लिखा कि मुझे आशा है कि एक दो साल के अन्दर ही पंजाब हमारे हाथों में आ जाएगा। सन् 1844 में राजा हीरासिंह लाहौर दरबार का प्रधान मंत्री था। अंगरेजों ने सिख सेना को राजा हीरासिंह के विरुद्ध भड़काया और जम्मू के रा

---

* "......we strongly suspect the Company's corrupt influence has b employed in framing and fomenting these plots, ...a mercenary Comp wielding a hireling army, cannot live but by plunder......we see too cle that backed as it necessarily now is, by all the resources of Britain. Lah will be sacked, the Kingdom rent in prices"—*The British Friend of In* December 1843, pp. 247, 248.

गुलाबसिंह को लाहौर दरबार के विरुद्ध उकसाया। लार्ड एलेनब्रु को आशा थी कि नवम्बर सन् 1845 तक मुझे लाहौर पर हमला करने का अवसर मिल जाएगा। इस सम्बन्ध में एलेनब्रु के पत्र पाश्चात्य कूटनीति का सुन्दर नमूना और पढ़ने योग्य हैं।

देशद्रोहियों का असफल प्रयत्न

मई सन् 1844 में, जब कि बालक दलीपसिंह लाहौर की गद्दी पर था, अंगरेज़ों ने भाई भीमसिंह, अतरसिंह और काश्मीरासिंह के अधीन एक सेना थानेश्वर से दलीपसिंह और उसके मंत्री, राजा हीरासिंह पर हमला करने के लिए लाहौर भिजवाई। 7 मई को फ़ीरोजपुर के निकट इस सेना का लाहौर दरबार की सेना के साथ संग्राम हुआ, जिसमें भीमसिंह, अतरसिंह और काश्मीरासिंह, तीनों देशद्रोही मारे गए। अतरसिंह उस अजीत सिंह का भाई था, जिसने रणजीतसिंह के पुत्र महाराजा शेरसिंह की हत्या की थी। अंगरेज हीरासिंह की जगह अतरसिंह को मंत्री बनाना चाहते थे। काश्मीरासिंह के विषय में कहा जाता है कि वह महाराजा रणजीत सिंह का दत्तक पुत्र था। सम्भव है कि उसे दलीपसिंह की जगह गद्दी देने का विचार रहा हो। अंगरेज़ों की यह कार्रवाई महाराजा रणजीतसिंह के साथ उनकी सन्धि का स्पष्ट उल्लंघन थी। लार्ड एलेनब्रु के उपद्रव पंजाब के अन्दर इसके बाद भी जारी रहे, किन्तु उनका फल पकने से पहले ही उसे भारत छोड़ कर इंगलिस्तान चला जाना पड़ा। फिर भी, जाने से पहले वह पंजाब की सरहद पर देशी और अंगरेज़ी फ़ौजों, तोपों, कश्तियों, पुल बांधने के सामान इत्यादि, आगामी युद्ध की समस्त सामग्री का पूरा इंतज़ाम कर गया था।

निज़ाम पर दांत

दक्षिण भारत में हैदराबाद के विरुद्ध एलेनब्रु ने अनेक साज़िशें कीं। मुसलमानों के विरुद्ध वह था ही। निज़ाम को आर्थिक कठिनाइयों में फंसा कर और उसे कर्ज़ दे-देकर एलेनब्रु धीरे-धीरे उसके ज़रखेज़ राज को हड़प लेना चाहता था। हैदराबाद के क़रीब आधे क़िले उन दिनों वीर और वफ़ादार अरब सिपाहियों के संरक्षण में थे। एलेनब्रु इन अरबों को निज़ाम के राज से निकाल देना चाहता था।

मलका विक्टोरिया के नाम एलेनब्रु के 13 अगस्त, सन् 1843 के एक पत्र में लिखा है—

> "निजाम की सरकार की आर्थिक कठिनाइयों के कारण पुराने मन्त्री ने इस्तीफा दे दिया है। इन कठिनाइयों का परिणाम यह होता नजर आता है कि हम निजाम को दस लाख रुपये क़र्ज़ देंगे और उसके बदले में निज़ाम का सारा राज, यदि सदा के लिए नहीं तो अनेक वर्षों के लिए, अंगरेज़ों के शासन में आ जाएगा। यह क़र्ज हमें फौज को देने के लिए और कुछ साहूकारों और दूसरे लोगों के क़र्ज़ अदा करने के लिए देना पड़ेगा। मैंने कई बातों पर निज़ाम का फ़ैसला पूछा है। चन्द रोज़ के अन्दर उसका फ़ैसला मालूम हो जाएगा।"

किन्तु लार्ड एलेनब्रु उत्तर भारत में इतना फंसा हुआ था कि अपने अल्प शासन काल के अन्दर वह निज़ाम राज के बारे में अपनी इच्छा पूरी न कर सका।

जेतपुर की रियासत

एक और छोटी-सी रियासत जेतपुर नाम की बुन्देलखण्ड में थी, जिसके स्वतन्त्र अस्तित्व को लार्ड एलेनब्रु ने समाप्त कर दिया। केवल जिसकी लाठी उसकी भैंस के सिद्धांत पर 27 नवम्बर, सन् 1842 को लार्ड एलेनब्रू ने जेतपुर के दोनों क़िलों पर क़ब्ज़ा कर लिया और 7 दिसम्बर को जेतपुर का राज अपने हाथों में लेकर बुन्देलखण्ड के ही एक दूसरे राजा को, जो अंगरेज़ों के कहने में था, सौंप दिया। जेतपुर का पहला राजा क़रीब दस साथियों सहित राज छोड़ कर भाग गया। इस काम में मेजर स्लीमैन ने एलेनब्रु को सबसे अधिक सहायता दी।

अवध से क़र्ज़

अपने से पहले के दूसरे गवर्नर-जनरलों के समान एलेनब्रु भी अवध के नवाब से समय-समय पर ख़ूब धन चूसता रहा। 16 दिसम्बर, सन् 1842 को एलेनब्रु ने ड्यूक आफ़ वेलिंगटन को लिखा—

> **"मैंने अवध के बादशाह से और दस लाख रुपए बतौर क़र्ज़ वसूल कर लिए हैं।"**

दिल्ली सम्राट की नज़रें बन्द

दिल्ली सम्राट की प्राचीन मान मर्यादा को लार्ड ऐमहर्स्ट के समय से लेकर प्रायः हर अंगरेज़ गवर्नर-जनरल ने थोड़ा बहुत आघात अवश्य पहुंचाया। अंगरेज शासक इस बात को अच्छी तरह समझते थे कि यदि उस समय किसी एक व्यक्ति के झण्डे के नीचे भारत के हिन्दू और मुसलमान मिल कर फिर से अपनी स्वाधीनता के लिए हाथ पैर मार सकते थे, तो वह दिल्ली का मुगल सम्राट ही हो सकता था। दिल्ली सम्राट के मान पर वार करना उस समय भारत के राष्ट्रीय मान पर वार करना था। सम्राट बहादुरशाह उस समय दिल्ली के तख्त पर था। सन् 1842 तक यह नियम चला आता था कि जो कोई अंगरेज़ दिल्ली सम्राट से मिलने जाता था, वह अपनी पदवी के अनुसार कुछ न कुछ नज़र सम्राट के सामने पेश करता था। इस नियम के अनुसार हर गवर्नर-जनरल मुलाक़ात के समय 101 अशरफ़ी सम्राट की नज़र किया करता था। लार्ड एलेनब्रु ने सन् 1842 में सम्राट के सामने अंगरेज़ों की ओर से इस तरह नज़रों का पेश किया जाना बन्द कर दिया।

दिल्ली पर कब्ज़ा करने की इच्छा

एलेनब्रु की हार्दिक इच्छा यह भी थी कि यदि हो सके, तो दिल्ली के शहर और क़िले पर कब्जा करके उसे ब्रिटिश भारत की राजधानी बनाया जाय। किन्तु ड्यूक आफ़ वेलिंगटन ने अपने 27 सितम्बर, सन् 1842 के पत्र में उसे आगाह कर दिया कि मुगल सम्राट और उसके कुल के मान में इससे अधिक हस्तक्षेप करना अंगरेज़ी राज के लिए खतरनाक साबित हो सकता है। इस पत्र के उत्तर में 18 दिसम्बर सन् 1842 को लार्ड एलेनब्रु ने ड्यूक आफ़ वेलिंगटन को लिखा—

> **"××× मैं पहले ही आपकी तरह इस नतीजे पर पहुंच चुका था कि कों**

ऐसा काम करना, जिससे यह मालूम हो कि हम बूढ़े सम्राट के साथ अत्याचार कर रहे हैं, उचित न होगा। यह सम्भव है कि मेरा उत्तराधिकारी सम्राट के उत्तराधिकारी के साथ कोई ऐसा समझौता कर सके, जिससे दिल्ली का क़िला हमारे हाथों में आ जाए। साम्राज्य की पुरानी राजधानी का हमारे हाथों में होना और हमारा वहीं से बैठ कर शासन चलाना मुझे सदा से एक बहुत बड़ा लक्ष्य प्रतीत हुआ है।"*

लार्ड एलेनब्रु की वापसी

केवल ढाई साल गवर्नर-जनरल रहने के बाद 1 अगस्त, सन् 1844 को लार्ड एलेनब्रु ने अपनी पदवी का भार लार्ड हार्डिंग को सौंप दिया। जाने से पहले एलेनब्रु ने इस देश की गरीब प्रजा के लिए नमक का महसूल तक बढ़ा दिया। फ़ौज के लिए नयी बैरकों और छावनियों के बनवाने में उसने इतना अधिक खर्च किया कि कहा जाता है; कम्पनी के डायरेक्टर इस फ़जूलखर्ची के कारण उससे असन्तुष्ट हो गए, और यह भी उसके इतनी जल्दी वापस बुला लिए जाने का एक कारण था। दूसरा कारण डाइरेक्टरों के उससे नाराज़ होने का यह बताया जाता है कि वह मुसलमानों को नाराज करके हिन्दुओं को खुश करना चाहता था। डाइरेक्टरों में संभवतः लार्ड मैकाले की राय के आदमी अधिक थे। वास्तव में, इस मामले में अंगरेज़ी राज की तराजू का पलड़ा कभी भी देर तक एक ओर को झुका हुआ नहीं रहा। एलेनब्रु के समय से आज (1929) तक इस बारे में ब्रिटिश राजनीति बारी-बारी से कभी एक ओर, और फिर कभी दूसरी ओर को झुकती दिखाई दी है।

---

* "......I had already come to your conclusion that it would be an unadvisable step to do anything having the appearance of violence towards the old King. With his successor my successor may be able to make some arrangement for the transfer to us of the citadel. To have in our hands the ancient seat of Empire and to administer the Government from it, has ever back again, in the same ratio of velocity, the same course of our original insignificance."—Carnaticus, in the *Asiatic Journal*, 1821.

चालीसवां अध्याय

पहला सिख युद्ध

हार्डिंग और युद्ध का श्रीगणेश

महाराजा रणजीतसिंह के समय से ही कम्पनी के शासकों के पंजाब पर दांत लगे हुए थे। लार्ड एलेनब्रु ने रणजीतसिंह की मृत्यु के बाद पंजाब के अन्दर विद्रोह खड़े करने और अराजकता फ़ैलाने का पूरा प्रयत्न किया। सिखों के साथ युद्ध करने की उसने तैयारी भी कर ली थी। किन्तु सिख-युद्ध का श्रीगणेश करने का श्रेय गवर्नर-जनरल सर हेनरी हार्डिंग को प्राप्त हुआ। यही सर हेनरी हार्डिंग के शासन काल की सबसे अधिक महत्वपूर्ण घटना थी।

लार्ड एलेनब्रु ने 17 जून, सन् 1844 को एक पत्र में अपने मित्र मेजर ब्राडफुट को लिखा—

> **"तुमने सुना होगा कि डाइरेक्टरों ने मुझे वापस बुला लेना उचित समझा है। मेरा उत्तराधिकारी मेरे तमाम इरादों को पूरा करेगा। वह मेरा अत्यन्त विश्वस्त मित्र है, और पिछले तीस साल से सब सार्वजनिक प्रश्नों पर मैं उसके साथ पत्र व्यवहार करता रहा हूं।"**

सिख युद्ध की तैयारी

निस्सन्देह गवर्नर-जनरल हार्डिंग ने एलेनब्रु के काम को ज्यों-का-त्यों जारी रखा। गवर्नर-जनरली का पद सम्हालते ही उसने पंजाब की सरहद पर युद्ध की तैयारी और अधिक ज़ोरों के साथ शुरू कर दी। सतुलुज नदी के दाईं ओर उस समय महाराजा रणजीतसिंह के बालक पुत्र, महाराजा दलीपसिंह का राज था और बाईं ओर फीरोज़पुर, लुधियाना, अम्बाला और मेरठ, इन चारों जगहों पर अंगरेज़ों की बड़ी-बड़ी छावनियां थीं। एलेनब्रु के जाते समय फ़ीरोज़पुर की छावनी में 4,596 सिपाही और बारह तोपें थीं। हार्डिंग ने इसे बढ़ा कर 10,472 सिपाही और 24 तोपें कर दीं। लुधियाने की छावनी में 3,030 सिपाही थे, जिन्हें हार्डिंग ने बढ़ा कर 7,235 कर दिए। अम्बाले की छावनी में हार्डिंग से पहले 4,113 सिपाही और 24 तोपें थीं, जिन्हें हार्डिंग ने बढ़ा कर 12,972 सिपाही और 32 तोपें कर दीं। मेरठ की छावनी में 5,873 सिपाही और 18 तोपें थीं, जिनकी जगह हार्डिंग ने 9,844 सिपाही और 25 तोपें कर दीं। इस तरह इन चार छावनियों के अन्दर 17,612 सिपाहियों और 66 तोपों को बढ़ा कर हार्डिंग ने 40,523 सिपाही और 94 तोपें कर दीं। खासकर लुधियाना और फ़ीरोजपुर की छावनियों को, जो दोनों सतुलुज के ऊपर थीं, उसने ख़ूब मज़बूत कर लिया। सितम्बर, सन् 1845 में उसने 56 बड़ी-बड़ी कश्तियां मंगा कर फ़ीरोजपुर के निकट जमा कर लीं। लार्ड एलेनब्रु का विचार नवम्बर सन् 1845 तक इस सब तैयारी को पूरा कर लेने का था। हार्डिंग ने इस मियाद के अन्दर ही तमाम तैयारी पूरी कर ली।

देशद्रोही लालसिंह

अब पंजाब पर हमला करने के लिए एक वहाने की आवश्यकता थी। महाराजा दलीपसिंह के नाबालिग होने के कारण उसकी माता रानी झिन्दां कौर राज का अधिकतर कारबार चलाती थी। कहा जाता है कि प्रधान मंत्री राजा लालसिंह महारानी झिन्दां-कौर का कृपापात्र और लाहौर दरबार में सबसे अधिक प्रभावशाली व्यक्ति था। कम्पनी के प्रतिनिधियों नें अपना मतलब पूरा करने के लिए अब लाहौर दरबार के कई मुख्य-मुख्य व्यक्तियों को नाबालिग दलीपसिंह, महारानी झिंदां कौर और अपने देश, तीनों के विरुद्ध अपनी ओर मिला लिया। इनमें सबसे पहला व्यक्ति प्रधान मन्त्री राजा लालसिंह था। फ़ीरोज़पुर की छावनी में उन दिनों एक कप्तान निकल्सन रहता था। इतिहास लेखक कनिंघम लिखता है —

> **"यह बात उस समय काफ़ी असन्दिग्ध और मशहूर थी कि लालसिंह का फ़ीरोजपुर के अंगरेज एजेण्ट कप्तान निकल्सन के साथ पत्र व्यवहार था, किन्तु निकल्सन की अकाल मृत्यु के कारण अब यह पक्की तरह मालूम नहीं हो सकता कि लालसिंह से क्या-क्या वादे किए गए और उसे क्या-क्या आशाएं दिलाई गईं।"***

बहुत सम्भव है कि अदूरदर्शी और स्वार्थी लालसिंह को दलीपसिंह की जगह पंजाब की गद्दी का लालच दिया गया हो। जो हो, लालसिंह की विश्वासघातकता के और अधिक सबूत देने की आवश्यकता नहीं है।

देशद्रोही तेजसिंह

दूसरा प्रमुख व्यक्ति, जिसे अंगरेज़ों ने अपनी ओर तोड़ा, सरदार तेजसिंह नाम का सहारनपुर जिले का रहने वाला एक ब्राह्मण था। यह तेजसिंह नाबालिग़ महाराजा दलीपसिंह की सब सेनाओं का प्रधान सेनापति था। धन के लोभ में आकर तेजसिंह भी अपने स्वामी और देश, दोनों को बचने के लिए तैयार हो गया।

देशद्रोही गुलाबसिंह

तीसरा ज़बरदस्त देशद्रोही, जिसने पंजाब को विदेशियों के हाथों में सौंप दिया, जम्मू का राजपूत राजा गुलाबसिंह था। राजपूत इतिहास में दूरदर्शी नीतिज्ञ प्रायः कम देखने में आते हैं। 19वीं सदी के शुरु तक तरह तरह की अय्याशी और आराम-तलबी के कारण राजपूतों के चरित्र का पूरी तरह पतन हो चुका था। राजा गुलाबसिंह ने सिख़ कौम, अपने देश और अपने स्वामी, महाराजा रणजीतसिंह के नाबालिग पुत्र, तीनों के साथ दग़ा करके अंगरेजों का साथ दिया, जिसके इनाम में उसे और उसके वंशजों को बाद में काश्मीर की विशाल रियासत प्रदान की गई है।

---

* "It was sufficiently certain and notorious at the time that Lal Singh was in communication with Captain Nicolson, the British agent at Ferozepur but owing to the untimely death of that officer, the details of the overtures made and expectation held out, cannot now be satisfactorily known."—*History of the Sikhs, by Captain Cunningham*, p. 305.

भारतीय चरित्र का पतन

भारतीय चरित्र का वह पतन, जिसके कारण अंगरेजों ने इस देश में अपना साम्राज्य कायम किया, किसी भी दूसरे प्रान्त के इतिहास में इतनी बार और इतने ज़ोरों के साथ नहीं चमकता, जितना पंजाब के इतिहास में। आज से सौ साल पहले का एक अंगरेज़ अफ़सर लिखता है —

> "हमें फौरन यह स्वीकार कर लेना चाहिए कि भारत के एक संग्राम में हमारी विजय का कारण इतना अधिक हमारे अपने शानदार कारनामे नहीं है जितना कि एशियाई चरित्र की निर्बलता ।×××। उसी असूल पर हमें यह निश्चित समझ रखना चाहिए कि जब कभी भी भारत की आबादी का बीसवां हिस्सा भी इतना दूरदर्शी और इतना चालाक हो जायगा, जितने हम हैं, तो हमें फिर उतनी ही तेजी के साथ पीछे हट कर वैसी ही एक तुच्छ चीज बन जाना पड़ेगा, जैसे हम पहले थे।"*

निस्सन्देह पंजाब के राजनैतिक पतन का मुख्य कारण पंजाब के उस समय के राजनैतिक नेताओं और प्रभावशाली कुलों के चरित्र का आश्चर्यजनक पतन था। ख़ासकर महाराजा रणजीत सिंह के उत्तराधिकारियों का चरित्र काफी गिर चुका था, जिस पर अधिक कहने की आवश्यकता नहीं है। राजकुल से उतर कर लालसिंह, तेजसिंह और गुलाबसिंह, सिख साम्राज्य के तीन मुख्य स्तम्भ थे और ये तीनों ही स्वार्थी, विश्वासघात और देशद्रोह की मूर्ति साबित हुए।

मेजर ब्राडफुट

तैयारी पूरी करने के बाद हार्डिंग के मन में आक्रमण करने का कोई बहाना ढूंढ़ निकालने की चिन्ता उत्पन्न हुई। लुधियाना, पंजाब और ब्रिटिश भारत की सरहद पर था। मेजर ब्राडफुट लुधियाने में गवर्नर-जनरल का एजेण्ट था। सिखों को भड़का कर या जिस तरह हो सके, आक्रमण का बहाना ढूंढने का काम ब्राडफुट को सौंपा गया। ऐलनब्रु इंगलिस्तान से बैठा हुआ पंजाब के मामले में इतनी अधिक दिलचस्पी ले रहा था कि 7 मई, सन् 1845 को उसने एक पत्र में लन्दन से ब्राडफुट को सावधान किया कि— "आप जहां तक हो सके, लाहौर दरबार के विविध दलों में मेल न होने दें।" ब्राडफुट अपने मालिकों की इच्छा को योग्यता के साथ पूरा करता रहा।

सतलुज नदी के इस पार कुछ इलाका महाराजा पटियाला जैसे सिख नरेशों का था और ये सब नरेश अंगरेज सरकार के संरक्षण में थे। कुछ थोड़ा-सा इलाका लाहौर दरबार का था, जिनसे अंगरेजों का कोई सम्बन्ध न था। महाराजा रणजीतसिंह के साथ

---

* "We must at once admit that our conquest of India was, through every struggle, more owing to the weakness of the Asiatic character than to the bare effect of our own brilliant achievement; ......on the same principle we may set down as certain, that whenever one twentieth part of the population of India becomes as provident and as scheming as ourselves, we shall run back again, in the same ratio of velocity, the same course of our original insignificance."—Carnaticus, in the *Asiatic Journal*, 1821.

कम्पनी की जो सन्धि हो चुकी थी, उसमें अंगरेजों ने यह वादा किया था कि हम रणजीतसिंह के इस इलाके में किसी तरह का भी हस्तक्षेप न करेंगे। इतिहास लेखक कप्तान कनिंघम लिखता है —

"मेजर ब्राडफुट की सबसे पहली कार्रवाइयों में से एक यह थी की उसने यह ऐलान कर दिया कि लाहौर दरबार का वह इलाका, जो सतुलुज के इस पार है, उतना ही अंगरेजों के संरक्षण में है, जितना कि पटियाला और दूसरे नरेशों के इलाके; और यदि महाराजा दलीपसिंह की मृत्यु हुई या उसे तख्त से उतार दिया गया, तो अंगरेज कम्पनी को इस इलाके को जब्त कर लेने का अधिकार होगा। इस बात की सूचना बाजाब्ता सिख दरबार को नहीं दी गई, किन्तु सबको इसका पता था और मेजर ब्राडफुट ने इसी पर अमल किया × × ×।

"इसके अलावा (सतुलुज पर) पुल बांधने के लिए जो कश्तियां बम्बई में तैयार कराई गई थीं वे सन् 1845 की पतझड़ में फ़ीरोजपुर की ओर रवाना कर दी गईं। मेजर ब्राडफुट ने यह जाहिर करने के लिए कि इन सशस्त्र कश्तियों पर हमले का डर ह, हुकुम दिया कि सिपाहियों की जबरदस्त गारदें हिफ़ाजत के लिए फ़ीरोजपुर तक इन कश्तियों के साथ जायें। कश्तियों के फ़ीरोजपुर पहुंचते ही उसने अपने आदमियों को पुल बनाने का अभ्यास कराना शुरू किया। इन सब बातों से उसने क़रीब करीब यह जाहिर कर दिया कि युद्ध शुरू हो गया।"*

निसन्देह ब्राडफुट की गरज किसी तरह सिखों को भड़का कर उनकी ओर से युद्ध शुरु कराना था।

उधर गवर्नर-जनरल हार्डिंग युद्ध का बहाना न मिलने से बैचेन हो रहा था। 23 अक्तूम्बर, सन् 1845 को उसने लार्ड एलेनब्रु के नाम एक पत्र में लिखा—

"किन्तु पंजाब या तो सिखों का होना चाहिए या अंगरेजों का; × × × देर करना केवल इस प्रश्न के निबटारे को कुछ दिनों के लिए टालना है; साथ ही हमें याद रखना चाहिए कि अभी तक उन्होंने युद्ध का कोई कारण हमारे हाथों में नहीं दिया।"†

बहाने की तलाश

इससे नौ महीने पहले, 23 जनवरी, सन् 1845 को उसने लार्ड एलेनब्रु को एक और पत्र में लिखा था —

"यदि अपने मित्र (पंजाब) को उसकी इस विपत्ति की अवस्था में हड़प जाने के लिए हमारे पास वजह भी हो, तो भी हम इस समय तैयार नहीं हैं और उस समय तक तैयार नहीं हो सकते, जब तक कि लू न चलने लगे और सतुलुज

---

* Cunningham's *History of the Sikhs*, pp. 297, et seq.

† "The Punjab must, however, be Sikh or British; ......The delay is merely a postponement of the settlement of the question; at the same time we must bear in mind that as yet no cause of war has been given."—Sir Henry Harding to Lord Ellenborough, October 23, 1845.

जोर से न बहने लगे ।× × ×किन्तु यदि यह महीना अक्तूबर का भी होता और हमारी सेना बिल्कुल तैयार होती, तो भी हम पंजाब पर हमला करने का बहाना क्या ले सकते थे ?

"आत्मरक्षा हमसे यह चाहती है कि हम सिखों की सेना को तितर-बितर कर दें; किन्तु× × ×हम अपने उस दोस्त के इलाके पर कब्जा जमा लेने का बहाना क्या बताएंगे, जिसने कि हमारी विपत्ति के समय में हमे अपनी बिगड़ी हुई अवस्था फिर से सुधारने में मदद दी थी ?"*

निस्सन्देह सिख युद्ध करना न चाहते थे। सिख निर्दोष थे। अंगरेज़ युद्ध के लिए उत्सुक थे और आगामी युद्ध का एकमात्र कारण अंगरेज कम्पनी की साम्राज्य पिपासा थी ।

कहा जाता है कि मार्च, सन् 1845 के लगभग पहले सिखों ने अपनी सरहद से निकल कर अंगरेजी इलाके पर हमला किया; अर्थात् सिख सवार सेना, सतुलुज पार करके हरीके पतन के निकट तलवण्डी ग्राम पर आ पहुंची । कम्पनी के अफ़सरों ने और मेजर ब्राडफुट ने इस घटना को सिख सेना का कम्पनी के इलाके पर हमला करना जाहिर किया है। किन्तु सुप्रसिद्ध इतिहास लेखक कनिंघम से पता चलता है कि वास्तव में यह घटना क्या थी ।

राई का पहाड़

कनिंघम लिखता है कि सतुलुज के इस पार कोटकपूरा नाम का एक नगर लाहौर दरबार के राज में था। वहां पर नगर की रक्षा के लिए लाहौर दरबार की ओर से कुछ सवार पुलिस रहा करती थी । इस पुलिस की समय-समय पर तबदीली होती रहती थी। इस मौके पर कुछ सिख सवार फ़ीरोजपुर के निकट सतुलुज पार करके इन संरक्षकों की जगह लेने के लिए कोटकपूरा जा रहे थे । सतुलुज पार करने के लिए उन लोगोंने अंगरेज सरकार से पहले से इजाज़त नहीं ली थी । कनिंघम का मत है कि इतने थोड़े-से सवारों के लिए, जो इस तरह के काम के लिए जा रहे हों, सन्धि के अनुसार इजाज़त की कोई आवश्यकता न थी। फिर भी मेजर ब्राडफुट, ने जो केवल झगड़ा मोल लेना चाहता था इन सिख सवारों को बिना आगे बढ़े फिर से सतुलुज पार कर वापस लौट जाने की आज्ञा दी। सिख अफसर लड़ना न चाहते थे। उन्होंने मेजर ब्राडफुट का कहना मान लिया। वे पीछे लौट पड़े । इस पर भी मेजर ब्राडफुट को तसल्ली न हुई । उसने अपनी सेना सहित उनका पीछा किया। ठीक उसी समय, जब कि सिख सवार नदी को पारकर लौट रहे थे अंगरेजी सेना उनके पीछ आ पहुंची। अंगरेजी सेना ने बिना कारण सिख सवारों पर

---

* Even if we had a case for devouring our ally in his adversity, we ar not ready and could not be ready until the hot winds set in and the Su becomes a torrent, ...but on what plea could we attack the Punjab if it were the month of October, and we had our army in readiness?

"Self preservation may require the dispersion of this Sikh army;... but......how are we to justify the seizure of our friend's territory, who i our adversity assisted us to retrieve our affairs?"—Harding to Ellenborough January 23, 1845.

गोली चला दी। सिख दलपति को इस बात की चिन्ता थी कि मैं अकारण अपने दरबार को अंगरेजों के साथ युद्ध में घसीटने का कारण न बन जाऊं। इसलिए बिना अंगरेजी सेना की गोलियों का जवाब दिए वह शान्ति के साथ नदी पार कर पीछे लौट गया और यह छोटा-सा मामला यहीं समाप्त हो गया। फिर भी अपने मतलब के लिए इसे राई का पहाड़ बनाया गया। यह सारा बयान कप्तान कनिंघम का दिया हुआ है।*

सन्धि का लगातार उल्लंघन

लाहौर दरबार अपनी सरहद के ऊपर कम्पनी की युद्ध की तैयारियों को और इन सब बातों को अच्छी तरह देख रहा था। वह अब समझ गया कि अंगरेजों का इरादा शान्ति कायम रखने का नहीं है। लाहौर दरबार को अंगरेजों के विरूद्ध और भी कई शिकायतें थीं। उनकी शिकायत थी कि कई बार अंगरेजों ने पिछली सन्धि का उल्लंघन किया। निस्सन्देह ये शिकायतें अत्यन्त गम्भीर थीं। फिर भी हमें उनके विस्तार में पड़ने की आवश्यकता नहीं है। सिखों की शिकायतों में से एक शिकायत यह भी थी कि फ़ीरोजपुर का नगर वास्तव में लाहौर दरबार का था और अंगरेजों की प्रार्थना पर उन्हें कुछ शर्तों पर दे दिया गया था। इन शर्तों में से एक यह थी कि अंगरेज एक ख़ास तादाद से अधिक सेना वहां पर न रखेंगे। फिर भी अंगरेज बिना लाहौर दरबार की इजाज़त के फ़ीरोजपुर की सेना को बेताहाशा बढ़ाते चले गए। लाहौर दरबार का कहना था कि सन्धि के अनुसार सिख कर्मचारियों इत्यादि के सतुलुज पार करने पर अंगरेजों को किसी तरह की बाधा न डालनी चाहिए थी, किन्तु अंगरेज इस बारे में भी लगातार सन्धि का उल्लंघन करते रहे और बार-बार लाहौर के उन कर्मचारियों का अपमान करते रहे जो सतुलुज पार करते थे, इत्यादि।

अहसान फ़रामोशी

उस समय के सरकारी और गैरसरकारी लेखकों ने अंगरेजों के ऊपर महाराजा रणजीतसिंह के अनेक अहसानों को मुक्त कण्ठ से स्वीकार किया है। अंगरेजों को प्रसन्न करने के लिए रणजितसिंह ने अपने देशवासियों के साथ और आपत्ति में पड़े हुए जसवन्त राव होल्कर के साथ विश्वासघात किया; और वह भी ऐसे अवसर पर, जबकि यदि रणजीतसिंह होलकर का साथ दे जाता, तो बहुत सम्भव है, बल्कि करीब-करीब निश्चित है, कि अंगरेज़ी साम्राज्य की जड़ें भारत से उसी समय उखड़ गई होतीं।† दलीपसिंह के गद्दी पर बैठने के समय गवर्नर-जनरल ने उसे रणजीतसिंह का सच्चा उत्तराधिकारी स्वीकार कर लिया था और वादा किया था कि अंगरेज किसी दूसरे हक़दार का पक्ष न लेंगे। लेकिन रणजीतसिंह के साम्राज्य को नष्ट करने, दलीपसिंह को उसके पैतृक राज से वंचित रखने और पंजाब को अंगरेज़ी साम्राज्य में मिलाने के लिए इस समय साजिशों का एक विशाल जाल पूरा जा रहा था।

---

* Cunningham's *History of the Shiks*, p. 296.

† *The Career of Major Broadfoot*, p. 268.

सिख सेना को भड़काने के प्रयत्न

नवम्बर सन् 1845 का महीना निकट आ रहा था लार्ड एलेनब्रु के अनुमान के अनसार अंगरेज़ों की तैयारी पूरी हो चुकी थी। अक्तूबर सन् 1845 में सर हेनरी हार्डिंग ने कलकत्ते से पंजाब की ओर कूच किया। सरहद के ऊपर अंगरेज़ी फौजों के जमा होने और गवर्नर-जनरल के उस ओर कूच करने से सिख पूरी तरह समझ गए कि अंगरेज़ों का इरादा क्या है। अभी तक लाहौर दरबार शान्ति और धैर्य के साथ सब बातों को बरदाश्त कर रहा था। इसी कारण अंगरेज़ों को हमला करने का कोई जाहिरा बहाना हाथ न आ रहा था। अब हार्डिंग ने लालसिंह और तेजसिंह पर जोर दिया कि जिस तरह हो सके, सिख सेना को भड़का कर उससे अंगरेज़ी इलाके पर फौरन हमला करा दिया जाय ताकि अंगरेज़ों को युद्ध छेड़ने का बहाना मिल सके। सिखों को भड़काने के लिये सेना में अनेक गुप्तचर नियुक्त किए गए। अन्त में लालसिंह और तेजसिंह ने कुछ सिख सेना को भड़का कर उससे अंगरेज़ी सरहद पर हमला करवा दिया। कप्तान कनिंघम इस बारे में लिखता है—

> **"यदि सिख सेनाओं के चतुर नेताओं को अंगरेजों की सैनिक तैयारियां दिखाई न दे गई होतीं, तो वे लालसिंह और तेजसिंह जैसे जरखरीद लोगों के कपट-पूर्ण भड़काने की ओर कुछ भी ध्यान न देते। सिख सेनासे ताने दे-देकर पूछा गया कि क्या तुम खालसा राज की सीमाओं को सिकुड़ते हुए और लाहौर के मैदान पर दूरवर्ती यूरोप के बाशिन्दों को कब्जा करते हुए चुपचाप बैठे देखते रहोगे? उन लोगों ने उत्तर दिया कि हम गुरु गोविन्दसिंह के राज की समस्त प्रजा की रक्षा करने में अपने प्राण न्योछावर कर देंगे और आगे बढ़कर हमला करने वालों की सरहद के अन्दर उनसे युद्ध करेंगे।"***

वीर सिख सिपाहियों के साथ नीच चालें

जाहिर है कि सीधे और बहादुर सिख सिपाहियों के साथ कितनी नीच चालें चली गईं। जिन लोगों को वे अपने नेता समझ रहे थे, वे ही उनके सर्वनाश की तदबीरें कर रहे थे।

कप्तान निकलसन ने मेजर ब्राडफुट के नाम 23 नवम्बर, सन् 1845 के पत्र में साफ़ लिखा है कि राजा लालसिंह ने अंगरेज़ों की इच्छा के अनुसार सिख सेना को भड़का कर उससे अंगरेजी सरहद पर हमला करवाया। निस्सन्देह उस समय के लाखों गरीब सिख सिपाहियों की सच्ची वीरता, उनके बढ़े हुए धार्मिक उत्साह और

---

* "Had the shrewd committees of the armies observed no military preparations on the part of the English, they would not have heeded the insidious exhortations of such mercenary men as Lal Singh and Tej Singh......the men were tauntingly asked whether they would quietly look on while the limits of the Khalsa dominion were being reduced, and the planes of Lahore occupied by the remote strangers of Europe, they answered that they would defend with their lives all belonging to the Commonwealth of Govind, and that they would march and give battle to the invaders on their own ground."—*History of the Sikhs*, by Cunningham, p. 299.

उनके आत्मोत्सर्ग के मुकाबले में सिख नेताओं के कपट, उनके नीच स्वार्थ, उनके देशद्रोह और उनके विश्वासघात का दृश्य अत्यन्त दुखकर है।

पंजाब हड़पने का बहाना

सारांश यह है कि ठीक नवम्बर 1845 के मध्य में लालसिंह के ही अधीन सिख सेना लाहौर से चल पड़ी। इस सेना ने सतुलुज नदी को पार किया और अंगरेजों को पंजाब 'हड़पने' का बहाना हाथ आया। सारा नाटक पहले से निश्चित था।

रणजीत सिंह के यूरोपियन नौकर

हैदरअली, दौलतराव सिंधिया और दूसरे भारतीय नरेशों के समान महाराजा रणजीतसिंह ने भी अनेक यूरोपियन अफ़सरों को अपनी सेना में नौकर रखा था। ये यूरोपियन अफ़सर संकट के समय अपने हिन्दोस्तानी मालिकों की ओर प्रायः कभी भी नमकहलाल साबित नहीं हुए। इन्हीं में से एक, जनरल वेङ्चुरा, इस समय लाहौर सेना के अन्दर अंगरेजों का खास गुप्तचर था। सिखों की सैनिक कौन्सिल ने सबसे पहला दूरदर्शिता का काम यह किया कि इस तरह के सब यूरोपियन अफ़सरों को अपनी सेना से बरखास्त कर दिया। किन्तु अपने घर के भेदियों का उन्हें उस समय तक भी पता न था।

युद्ध का ऐलान

युद्ध का काफ़ी बहाना मिल गया। 13 दिसम्बर, सन् 1845 को गवर्नर-जनरल सर हेनरी हार्डिंग ने महाराजा दलीपसिंह के साथ युद्ध का ऐलान किया और इस ऐलान द्वारा सतुलुज के इस पार के दलीपसिंह के तमाम इलाके को कम्पनी के राज में मिला लिया। पंजाब के सरदारों और पंजाब की प्रजा के नाम गवर्नर-जनरल का यह ऐलान, इस तरह के राजनैतिक ऐलानों के समान, झूठ और छल से भरा हुआ था। इस ऐलान द्वारा पंजाब के जागीरदारों, जमींदारों, सरदारों और वहां की प्रजा को बहका कर और प्रलोभन दे देकर बालक दलीपसिंह के विरुद्ध करने की पूरी चेष्टा की गई।

सरकारी लेखों से मालूम होता है कि गवर्नर-जनरल हार्डिंग को उस समय सिखों के दिल्ली पर हमला करने की आशंका थी। इसलिए दिल्ली नें सेना बढ़ा दी गई और चारों ओर की सड़कों की रक्षा का खास प्रबन्ध किया गया।

मुदकी का संग्राम

यदि राजा लालसिंह अंगरेजों से मिला न होता, तो सिख सेना के सतुलुज पार करते ही वह फीरोजपुर की अंगरेजी छावनी पर हमला करता। किन्तु वह सिखों को उलटा मुदकी की ओर बढ़ा ले गया। 18 दिसम्बर, सन् 1548 को मुदकी में दोनों ओर की सेनाओं के बीच घमासान युद्ध हुआ। अंगरेज इतिहास लेखकों का कहना है कि जिस भयंकर वीरता के साथ सिखों ने अंगरेजी सेना का मुकाबला किया और जितनी जबरदस्त हानि अंगरेजों को सहनी पड़ी, उससे इसमें कुछ भी सन्देह नहीं हो सकता कि यदि सिख

सेना के साथ विश्वासघात न किया जाता, तो मुदकी के ऐतिहासिक मैदान में अंगरेज़ी से का एक सिपाही भी जिन्दा न बचता। किन्तु राजा लालसिंह और तेजसिंह की कोशि से सिख सिपाहियों को छर्रे की जगह सरसों और बारूदों की जगह रंगा हुआ आटा बोरों में भर-भर कर दे दिया गया था। स्वभावतः मुदकी का मैदान अंगरेज़ों के हाथों में रहा।

फ़ीरोजशहर का संग्राम

मुदकी की लड़ाई के बाद सिख सेना वहां से हट कर फ़ीरोजशहर पहुंची। फ़ीरोज़-शहर में फिर एक जबरदस्त संग्राम हुआ, जिस में एक बार विजय सिखों की रही। कहा जाता है कि फ़ीरोजशहर में अंगरेज़ों को जितनी भारी हानि सहनी पड़ी, उतनी भारत के किसी भी दूसरे मैदान में नहीं सहनी पड़ी थी। स्वंय गवर्नर-जनरल हार्डिंग, जो अपनी सेना के साथ था, इतना घबरा गया कि उस दिन रात को उसने अंगरेज अफ़सरों और उनके बाल बच्चों को पीछे हटा लेने का पूरा प्रबन्ध कर लिया। बाक़ी अंगरेज़ अफ़स इससे भी अधिक घबराए हुए थे। यदि पूरी सिख सेना उस समय आगे बढ़ आती, तो अंगरेजों का कहीं पता न चलता, किन्तु देशद्रोही लालसिंह ने इस विजय के बाद सिखों को आगे बढ़ने से रोके रखा। इतिहास लेखक विलियम एडवर्ड्स लिखता है—

> **"यदि सिख सेना रात को आगे बढ़ आती, तो नतीजा हमारे लिए निस्सन्दे अत्यन्त घातक होता, क्योंकि हमारी यूरोपियन सेनाओं की तादाद बहुत घट चु थी और बन्दूकों और तोपों दोनों के लिए हमारा गोला बारूद क़रीब क़रीब ख हो चुका था। उस समय हम लोग यह न समझ सके कि सिखों की नयी सेना अ साथियों की मदद के लिए आगे क्यों न बढ़ी। किन्तु बाद में लाहौर में प चला कि सिखों के नेताओं ने यह बहाना लेकर सेना को रोके रखा कि आज का दि लड़ाई के लिए अशुभ है। कारण यह था कि रीजेंण्ट राजा लालसिंह का हरगिज़ इरादा न था कि उनकी फ़ौजें विजय प्राप्त करें; इसके विपरीत वह यह चाह था कि अंगरेज सदा के लिए सिख फ़ौजों का नाश कर डालें।"***

लालसिंह की विश्वासघातकता का इससे अधिक प्रमाण और क्या हो सकता है फ़ीरोजशहर का मैदान भी अन्त में अंगरेज़ों के हाथ रहा।

सिखों को प्रलोभन

कनिंघम लिखता है कि गवर्नर-जनरल ने इस समय एक नया ऐलान प्रका किया, जिसमें उन सिपाहियों और अफ़सरों को, जो सिख सेना को छोड़ कर अंगरेज़ों ओर आ मिले, तीन तरह के प्रलोभन दिए गए—एक तुरन्त नक़द इनाम; दूसरे, भवि के लिए पेनशनें; और तीसरे, सबसे अद्भुत प्रलोभन यह कि जो लोग सिख से को छोड़ कर अंगरेज़ों की ओर चले आएंगें, उनके यदि कोई मुकदमे अंगरेज़ी अदा के सामने पेश होंगे, तो उन मुकदमों का फ़ैसला तुरन्त (उनके हक में?) कर दि जाएगा।†

---

* *Reminiscences of a Bengal Civilian*, by William Edwards, p. 91.

† "The anxiety of the Governor-General may be further inferred fr his proclamation encouraging desertion from the Sikh ranks, with

फ़ीरोज़शहर की लड़ाई में अनेक बड़े-बड़े अंगरेज अफ़सरों और सैनिकों की मृत्यु हुई जिनमें से एक मेजर ब्राडफुट भी था।

महाराजा पटियाला को प्रलोभन

इस समय के निकट गवर्नर-जनरल को डर हुआ कि कहीं पटियाले का राजा जोशीले खालसा सिपाहियों के साथ न मिल जाय। महाराजा पटियाला को अपनी ओर रखने के लिए विलियम एडवर्ड्स को उसके पास भेजा गया। पूरब से आने वाली अंगरेज़ी सेना का रास्ता भी पटियाले की रियासत से होकर था, और हार्डिंग को इस बात का डर था कि यदि पटियाला सिखों के साथ मिल गया, तो अंगरेज़ी सेना के लिए बच कर निकल सकना या पीछे से अपना संबंध क़ायम रख सकना असम्भव हो जाएगा। विलियम एडवर्ड्स ने महाराजा पटियाला से वादा किया कि यदि आपने कम्पनी का साथ दिया, तो युद्ध के बाद जो इलाका कम्पनी के हाथ आएगा, उसका एक हिस्सा आपको दिया जाएगा और आपका रुतबा बढ़ा कर न केवल सतलुज के इस पार की रियासतों में सबसे ऊंचा कर दिया जायगा, बल्कि हिन्दोस्तान से बड़े से बड़े और पुराने महाराजाओं के बराबर आपकी पदवी कर दी जायगी।*

विलियम एड्वर्ड्स को अपने उद्देश्य में पूरी सफलता मिली।

अंगरेज़ी सेना के सतलुज पार कर लाहौर की ओर बढ़ने से पहले अलीवाल और मुदकी नामक स्थानों पर दो और लड़ाइयां लड़ी गईं।

अलीवाल की लड़ाई

इन दोनों लड़ाइयों में अलीवाल की लड़ाई अधिकतर एक कपोलकल्पित लड़ाई थी। बुडीवाल में अंगरेज़ी सेना का सामान सिख सेना ने छीन लिया था। इस घटना को किसी तरह खींच-तान कर भी अंगरेज़ों की विजय नहीं कहा जा सकता था। थोड़ी देर बाद अलीवाल में सिख सिपाहियों का एक छोटा-सा दस्ता चला जा रहा था। अंगरेजी सेना के कुछ सिपाहियों ने उनके पीछे गोली चला दी। दोनों ओर से थोड़ी-सी फट-फट हुई। फ़ीरोजशहर की हार के कारण अंगरेज़ों के युद्ध बल का उस समय चारों ओर मजाक उड़ रहा था। फ़ौरन अलीवाल की इस छोटी-सी घटना को बढ़ा कर अंगरेजों की एक शानदार विजय ज़ाहिर किया गया। एक अंगरेज़ लेखक, जो मौके पर मौजूद था, लिखता है कि—"अलीवाल की लड़ाई केवल सरकारी पत्रों की लड़ाई थी क्योंकि जब तक हम लोगों ने सरकारी रिपोर्ट नहीं पढ़ी, तब तक हममें से किसी को यह पता भी न था कि हम कोई लड़ाई लड़ चुकें है!"†

---

assurance of present rewards and future pensions, and the immediate decision of any law suits in which the deserters might be engaged in the British provinces."—Cunningham's *History of the Sikhs*, page 311.

[*] Reminiscences of a Bengal Civilian, pp. 92, 93.

[†] "Aliwal was the battle of the despatch, for none of us knew we had fought a battle until the particulars appeared in a document……"—*Wanderings of a Naturalist in India*, by Andrew Leith Adams, M.D., etc.

सुबरांव की लड़ाई

सुबरांव की लड़ाई, नीति की दृष्टि से अंगरेज़ी क़ौम के लिए और भी अधिक लज्जाजनक थी। इतिहास लेखक विलियम एडवर्ड्स लिखता है कि "जिस समय गवर्नर-जनरल फ़ीरोजपुर में था, उस समय राजा लालसिंह के गुप्तचरों ने आकर सिख सेना की स्थिति इत्यादि के बारे में गवर्नर-जनरल को बड़ी क़ीमती खबरें दी। सिखों ने बड़ी वीरता के साथ जान लड़ा कर युद्ध किया किन्तु उन्हें कश्तियों के पुल की ओर हटा दिया गया। उधर यह बात पहले से ही तय हो चुकी थी कि संग्राम शुरू होते ही सिखों के नेता राजा लालसिंह और तेजसिंह स्वयं पुल के पार पहुंच कर पुल को तोड़ डालेंगे। उन्होंने ऐसा ही किया।"*

सिखों के विश्वासघाती नेता

सुबरांव के मैदान में अकेले लालसिंह और तेजसिंह ही असहाय सिख सिपाहियों के साथ विश्वासघात करने वाले न थे। विलियम एडवर्ड्स आगे चल कर लिखता है—

> **"मुदकी, फीरोजशहर और अलीवाल में सिखों की पराजय के बाद सिख सेना का विश्वास राजा लालसिंह, तेजसिंह और अपने दूसरे नेताओं पर से बिलकुल उठ गया। वे उन पर यह दोष लगाने लगे कि ये लोग सिखों के नाश के लिए अंगरेज सरकार के साथ मिले हुए हैं। उन्होंने अब जम्मू के राजा गुलाबसिंह को अपना नेता बनाने के लिए बुला भेजा। राजा गुलाबसिंह ने स्वीकार कर लिया और अपनी एक बहुत बड़ी विश्वस्त पहाड़ी सेना लेकर लाहौर आ पहुंचा। लाहौर दरबार को उसने यह समझाया कि मैं अपनी इस सेना से लाहौर के किले की रक्षा कर लूंगा, किले के अन्दर की सिख सेना को सतलुज नदी (सुबरांव) की ओर भेज दिया जाय। × × × गुलाबसिंह ने इस सिख सेना से जोर देकर यह भी कह दिया कि जब तक मैं तुमसे न आ मिलूं, तब तक अंगरेजों पर हमला करने का प्रयत्न न करना। यह कह कर वह एक न एक बहाना लेकर अपना जाना टालता रहा। वह अच्छी तरह जानता था कि उचित समय पर अंगरेज हमला करके सुबरांव जीत लेंगे।"†**

इतिहास लेखक कनिंघम ने भी साफ़ लिखा है कि अंगरेज़ों और सिख सेना के नेताओं में यह पहले से तय हो चुका था कि अंगरेज़ों के हमला करने पर सिख नेता अपनी फ़ौज को छोड़ कर अलग हो जाएं, उसे कट जाने दें, सतलुज पार करने में अंगरेजों का विरोध न करें और लाहौर तक की सड़क अंगरेज़ी सेना के लिए खोल दें।‡

सिख सैनिकों की असीम वीरता

कनिंघम ने विस्तार के साथ लिखा है कि किस तरह सुबरांव में विश्वासघाती नेताओं ने सिख सेना को ले जाकर ऐसे स्थान पर पहुंचा दिया, जहां पर कि नदी की

---

* *Reminiscences of a Bengal Civilian*, pp. 99, 100.

† Ibid, p. 104.

‡ *History of the Sikhs*, p. 324.

पार कर सकना असम्भव था। वहां पर अंगरेजी सेना ने उन्हें दोनों ओर से घेर कर उन पर हमला किया; फिर भी एक भी सिख सिपाही विदेशियों के शरण में आने के लिए तैयार न हुआ। निर्दयी नेताओं ने अपनी इस वीर सेना का सर्वनाश कर देने के उद्देश्य से तोपखाने सहित उन्हें नदी के अन्दर बढ़ा दिया और वहां अपनी आंखों के सामने अंगरेज़ी सेना के हाथों उनका वध करवाया। यहां तक कि सतुलुज नदी लाशों से पट गई और नदी का जल खून से रंग गया। इस तरह सुबरांव के मैदान में सतुलुज नदी के ऊपर देशद्रोही लालसिंह, तेजसिंह और गुलाबसिंह ने रणजीतसिंह के क़ायम किए हुए साम्राज्य, पंजाब की स्वाधीनता और वीर तथा अजेय सिख कौम, तीनों का खून करवा डाला !

शामसिंह अटारीवाला

उस समय के देशभक्त और वफ़ादार सिख सरदारों में शामसिंह अटारीवाला का नाम सदा के लिए स्मरणीय रहेगा। कनिंघम लिखता है—

“किन्तु बूढ़े शामसिंह को अपनी प्रतिज्ञा का स्मरण रहा। उसने शोक की पोशाक (कोरे सफ़ेद कपड़े) धारण किए और अपने आसपास के सब सैनिकों को यह याद दिला कर कि गुरु ने युद्ध में मरने वाले वीरों से अनन्त सुख का वादा किया है, उसने बार-बार उन्हें अपने चारों ओर जमा कर लिया और गुरु के नाम पर प्राण न्योछावर करने के लिए प्रेरित किया। अन्त में अपने इन्हीं देशबन्धुओं की लाशों के ढेर के ऊपर वह स्वयं शहीद होकर गिर पड़ा।”*

सिखों की तोपें

प्रथम सिख युद्ध में सिखों की 220 तोपें अंगरेज़ों के हाथ लगीं। इनमें 80 तोपों के बारे में गवर्नर जनरल ने लिखा कि इतनी बड़ी तोपें उस समय यूरोप में कहीं भी मौजूद न थीं—उनकी मार अंगरेज़ी तोपों के मुक़ाबले में कहीं अधिक दूर तक जाती थी, पीछे को धक्का कम लगता था और चलाते समय जितनी जल्दी अंगरेज़ी तोपें गरम हो जाती थीं, उतनी जल्दी ये न होती थीं।

लाहौर दरबार के साथ सन्धि

सुबरांव की लड़ाई के बाद 12 फ़रवरी, सन् 1846 को गवर्नर-जनरल हार्डिंग सतुलुज पार कर लाहौर की ओर बढ़ा। मेजर ब्राडफुट के पद पर इस समय मेजर लारेन्स था, जो बाद में सर हेनरी लारेन्स के नाम से विख्यात हुआ। लाहौर में देशद्रोही राजा गुलाबसिंह ने इस सुन्दरता के साथ समस्त प्रबन्ध कर रखा था कि मार्ग में किसी ने भी एक गोली अंगरेजी सेना पर न चलाई। फिर भी विलियम एडवर्ड्स लिखता है कि पंजाब पर क़ब्ज़ा जमाने के लिए गवर्नर जनरल को अंगरेजी सेना बिल्कुल थोड़ी मालूम हुई। गवर्नर जनरल सिखों की वीरता देख चुका था। इसलिए उसे यह भी विश्वास न था कि देश भर में समस्त सिख क़ौम आसानी से अंगरेज़ों की अधीनता स्वीकार कर लेगी। उसने लाहौर दरबार के साथ सन्धि कर लेना ही उचित समझा।

---

* Ibid, p. 327.

मार्च, सन् 1846 में लाहौर दरबार के साथ पहली सन्धि की गई। पंजाब का इलाका लाहौर दरबार और बालक दलीपसिंह से छीन कर अंगरेज़ी राज में मि लिया गया और बाक़ी के ऊपर देशद्रोही लालसिंह को वजीर की हैसियत से नियुक्ति कर दिया गया।

देशद्रोहियों को इनाम

किन्तु शीघ्र ही इस सन्धि को तोड़ कर एक दूसरी सन्धि की आवश्यकता अनु हुई। मालूम होता है कि लालसिंह को कुछ और अधिक इनाम की आशा थी। गुलाबसि को उसके देशद्रोह के पारितोषिकस्वरूप कश्मीर का विशाल राज, शेख इमामुद्दीन छीन कर, एक करोड़ रुपया लेकर दे दिया गया। लालसिंह का असन्तोष और भी अधि बढ़ा। कहा जाता है कि उसने गुलाबसिंह के कश्मीर पर क़ब्ज़ा करने में बाधाएं डा अन्त में लाहौर में ही एक दूसरी सन्धि की गई, जिसे भैरोंवाल की सन्धि कहते हैं। सन्धि 16 दिसम्बर, सन् 1846 को की गई। इस सन्धि के अनुसार रानी झिंदां को पन्द्रह हजार पाउण्ड अर्थात् डढ़ लाख रुपये सालाना की पेनशन देकर राज प्र से अलग कर दिया गया, लालसिंह की भी सत्ता समाप्त कर दी गई। बाद में उसे करके देहरादून भेज दिया गया और दलीपसिंह के नाबालिग रहने के समय तक के लि आठ सरदारों की एक कौन्सिल बना दी गई। तेजसिंह इस कौन्सिल का एक सदस्य र यह तय कर दिया गया कि यह कौन्सिल अंगरेज रेज़िडेण्ट की हिदायतों के अनुसार रा का सारा प्रवन्ध करे। युद्ध के दण्डस्वरूप एक वहुत बड़ी रक़म लाहौर दरवार से व की गई; दरबार की सेना का एक बड़ा भाग तोड़ दिया गया; और उसकी ज कम्पनी की सेना पंजाब में नियुक्त कर दी गई, जिसका खर्च लाहौर दरबार पर डा गया।

हार्डिग को इनाम

पंजाब की स्वाधीनता का इस तरह अन्त करने के इनाम में गवर्नर जनरल हेनरी हार्डिंग को 'लार्ड' की उपाधि और कम्पनी की ओर से असहाय भारतवासियों दिए हुए टैक्सों में से तीन हज़ार पाउण्ड सालाना की आजीवन पेन्शन अदा की गई

जम्मू का नाम लेना अपशकुन

इस युद्ध में राजा गुलाबसिंह के विश्वासघात की याद में आज (1929) तक पं के अनेक लोग 'जम्मू' शहर का नाम लेना अपशकुन समझते हैं और उसे 'बड़ा शहर' कर पुकारते हैं।

हार्डिग के शासनकाल की दूसरी घटनाएं

गवर्नर जनरल लार्ड हार्डिंग के शासन-काल की बाक़ी मुख्य-मुख्य घटनाएं थोड़े में बयान की जा सकती हैं। शिवाजी के वंशज सतारा के निर्दोष और पदच्युत रा प्रतापसिंह को उसने बनारस के अन्दर ऐसी बुरी हालत में रखा कि राजा प्रतापसिंह रानी बीमार होकर मर गई, प्रतापसिंह का स्वास्थ्य बेहद बिगड़ गया, उसके अंगरेज़

मेजर कारपेण्टर, तक ने प्रतापसिंह की निर्दोषिता को तसदीक करते हुए गवर्नर जनरल से दया की सिफारिश की, फिर भी लार्ड हार्डिंग ने परवाह न की, और अक्तूबर सन् 1847 में राजा प्रतापसिंह घुल-घुल कर मर गया। अंगरेज़ इतिहास लेखक लडलो लिखता है—"यह पापकर्म लार्ड हार्डिंग के नाम के साथ सदा के लिए लगा रहेगा।"* नेपाल के अन्दर अराजकता, हत्याओं और साज़िशों का वैसा ही बाज़ार गरम किया गया, जैसा सिख युद्ध से पहले पंजाब में। उस समय से ही नेपालियों में एक मसल मशहूर है कि "सौदागर के साथ-साथ बन्दूक चलती है और इंजील के साथ साथ संगीन।" किन्तु नेपाल में मैदान इतनी आसानी से तैयार न हो सका। अवध के बादशाह को भी 'तम्बीह' करने के लिए लार्ड हार्डिंग लखनऊ पहुंचा, किन्तु वहां भी मामला पकने में अभी देर थी।

हार्डिंग की धर्मनिष्ठा

लार्ड हार्डिंग अपने आपको एक धर्मनिष्ठ ईसाई प्रकट करता था। अक्तूबर सन् 1846 में उसने एक क़ानून पास किया कि रविवार के दिन कोई किसी से काम न ले। यूरोपियन सिपाहियों के लिए उसने हिन्दुस्तान में अनेक नयी सुविधाएं पैदा कर दीं। अन्त में 18 जनवरी, सन् 1848 को उसने भारत से प्रस्थान किया और लार्ड डलहौज़ी उसकी जगह गवर्नर जनरल नियुक्त हुआ।

---

* "With this evil deed Lord Hardinge's name is inseparably connected."—*British India*, by Ludlow, vol. ii, p. 154.

इकतालीसवां अध्याय

दूसरा सिख़ युद्ध

लार्ड डलहौजी की निश्चित नीति

भारत के अन्दर अंगरेज़ी साम्राज्य को विस्तार देने वालों में डलहौज़ी का अन्तिम है, अर्थात् डलहौज़ी के शासन-काल के बाद भारत के मानचित्र में कोई हिस्सा लाल नहीं रंगा गया ।* ऊपर आ चुका है कि लार्ड आकलैण्ड के समय में इंगलि के अन्दर लार्ड लैण्ड्सडाउन के मकान पर वहां के मंत्रियों और ख़ास-ख़ास नीतिज्ञों एक सभा हुई थी, जिसमें यह निश्चय किया गया था कि हमें भारत में अपने मित्र नरेशों के राज्यों को, जिस तरह बन पड़े, अपने साम्राज्य में मिला कर अपनी आमदनी को बढ़ाना चाहिए ।† इसी निश्चित नीति के अनुसार लार्ड डलहौज़ी ने एक कर भारत के रहे-सहे देशी राज्यों का खात्मा करना शुरू कर दिया ।

इनमें दो सबसे बड़े राज्य पंजाब और बर्मा थे, जिनमें सबसे पहले हम पंजाब कहानी संक्षेप में बयान करते हैं ।

पंजाब में असन्तोष

लार्ड हार्डिंग अपने समय में पंजाब की अवस्था को देखते हुए पंजाब को साम्राज्य में मिला लेने का साहस न कर सका था । फिर भी 16 दिसम्बर, सन् वाली भैरोंवाल की संधि पर जिस तरह अमल किया जा रहा था, उससे मालूम कि पंजाब के लोगों को भड़का कर दूसरे सिख युद्ध के लिए बहाने पैदा किए जा ताकि अन्त में मौका पाकर पंजाब की स्वाधीनता का अन्त कर दिया जाय । सर करी इस समय लाहौर का रेज़िडेण्ट था । उसके पत्रों से प्रकट है कि वह आरम्भ से ही दलीपसिंह और सिख राज, दोनों का शत्रु था और दोनों को समूल नष्ट कर देना था । रेजिडेण्ट की हैसियत से भैरोंवाल की सन्धि के अनुसार करी ही इस समय पंजाब क्रियात्मक शासक था । राज के एक-एक महकमे में उच्च और ज़िम्मेवार पदों से वासियों को निकाल-निकाल कर उसने उनकी जगह अंगरेज़ भरती करने शुरू कर पंजाबियों में असन्तोष बढ़ने लगा और उन्हें यह सन्देह होने लगा कि अंगरेज़ों का महाराजा दलीपसिंह के बालिग़ हो जाने पर भी सन्धि की शर्तों के अनुसार पंजाब का उसे सौंप देने का नहीं है, वरन् वे पंजाब पर स्वयं क़ब्ज़ा करने की फ़िक्र में हैं । करी के समस्त व्यवहार से इस सन्देह को अधिकाधिक पुष्टि मिलती गई ।

मुलतान की घटना

इस समय की पंजाब की घटनाओं में सबसे मुख्य मुलतान की घटना थी । यहां कि यह घटना ही दूसरे सिख युद्ध का सबसे बड़ा कारण बताई जाती है ।

---

*उन दिनों लाल रंग अंगरेज़ी राज का रंग माना जाता था ।—लेखक

† *Memoir of General John Briggs*, p. 279.

सावनमल का योग्य शासन

मुलतान का प्रान्त महाराजा रणजीतसिंह ने सन् 1818 में अपने साम्राज्य में शामिल किया था। दीवान सावनमल को लाहौर दरबार की ओर से वहां का शासक नियुक्त किया गया था। मुलतान प्रान्त की आमदनी उस समय 35 लाख रुपये सालाना थी, जिसमें से $17\frac{1}{2}$ लाख रुपये सालाना सावनमल को लाहौर के खजाने में जमा कराने पड़ते थे। अपने प्रान्त के और सब शासन प्रबन्ध में दीवान सावनमल पूर्ण रूप से स्वाधीन था। कम्पनी की सरकारी रिपोर्टों में दर्ज है कि दीवान सावनमल के सुयोग्य शासन में मुलतान की भौतिक और आर्थिक स्थिति में बहुत बड़ी उन्नति हुई। उसने कई नहरें खुदवाई, बहुत-से बंजर इलाकों को जरख़ेज़ बना दिया, खेती, तिजारत और कारीगरी को खूब उन्नति दी, यहां तक कि आसपास के इलाकों से अनेक लोग आ आकर मुलतान प्रान्त में बसने लगे; और उस प्रान्त का वैभव दिनों दिन बढ़ता चला गया।

दीवान मूलराज

सावनमल की मृत्यु के बाद उसका बेटा मूलराज मुलतान का शासक हुआ। देशद्रोही लालसिंह उस समय बालक दलीपसिंह की ओर से लाहौर दरबार का कर्ता-धर्ता था। उसने मूलराज से बाप की गद्दी पर बैठने के लिए 18 लाख की रकम बतौर नज़राने के मांगी। दीवान मूलराज ने एक ख़ास समय के अन्दर यह रक़म पूरी कर देने का वादा किया। किन्तु इसके बाद ही अंगरेज़ों के प्रताप से लाहौर दरबार के अन्दर नित्य नये उपद्रव खड़े होने लगे। कुछ दिनों तक यह भी पता न चलता था कि राज की वास्तविक बाग किसके हाथों में है, अंगरेज़ों के या सिखों के। मूलराज ने ऐसी स्थिति में 18 लाख रुपये नज़राने के भेजना उचित न समझा। पहले सिख युद्ध और लाहौर की पहली सन्धि के बाद लालसिंह ने अपने भाई भगवानसिंह के अधीन एक सेना मूलराज को ज़ेर करने और उससे यह रक़म वसूल करने के लिए मुलतान भेजी। मालूम होता है कि अंगरेज़ और लालसिंह दोनों, मूलराज को हटा कर उसकी जगह भगवानसिंह को मुलतान की दीवानी देना चाहते थे। किन्तु भगवानसिंह की सेना को मूलराज के मुक़ाबले में हार खाकर लौट आना पड़ा। फिर भी मुलतान प्रान्त का एक इलाक़ा जुन्नक, जिसकी आमदनी आठ लाख रुपये सालाना थी, दीवान मूलराज से छीन कर भगवानसिंह को दे दिया गया।

कुछ दिनों बाद दीवान मूलराज को हिसाब साफ करने के लिए लाहौर बुलाया गया। मूलराज को सन्देह हुआ, फिर भी वह लाहौर आया। सब बातें तय हो गईं। मूलराज अपने पद पर बहाल रखा गया और मुलतान लौट गया।

मुलतान में अंगरेजों का हस्तक्षेप

इसके बाद भैरोंवाल की सन्धि हुई। इस सन्धि को चन्द महीने भी न बीतने पाए थे कि अंगरेज़ों ने फिर दीवान मूलराज को हटा कर उसकी जगह अपना एक आज्ञाकारी अनुचर नियुक्त करने की आवश्यकता अनुभव की। दीवान मूलराज को अब इस उद्देश्य

से दिक किया जाने लगा ताकि वह तंग आकर अपने पद से इस्तीफ़ा दे दे। मुलतान प्रान्त की आमदनी इस समय पौने सैंतीस लाख रुपये सालाना थी, जिसमें लाहौर दरबार का ख़िराज $17\frac{1}{2}$ लाख रुपये था। इसे बढ़ा कर अब पौने बीस लाख रुपये कर दिया गया और यह तय कर दिया गया कि दो साल बाद पौने बीस लाख रुपये से बढ़ा कर इस ख़िराज को 25 लाख रुपये कर दिया जायगा और उसके तीन साल बाद 30 लाख रुपये।* इतना ही नहीं, मुलतान प्रान्त के शासन में दीवान मूलराज की सहायता के लिए ज़बरदस्ती से अंगरेज़ कमिशनर, नौ अंगरेज़ कलेक्टर और सात अंगरेज़ जज नियुक्त करके मुलतान भेजने की तजवीज़ की गई। दीवान मूलराज का शासन प्रबन्ध इतना सुन्दर था; उसकी प्रजा इतनी सुखी, सन्तुष्ट और समृद्ध थी कि उस समय के अंगरेज़ लेखकों तक ने इन सब बातों को स्वीकार किया है। मूलराज का वीरोचित आत्मसम्मान और उसकी प्रजा-पालकता, दोनों में से किसी ने भी उसे इजाज़त न दी कि वह अपने यहां के शासन में इस अनुचित हस्तक्षेप को गवारा करे। विवश होकर नवम्बर सन् 1847 में वह लाहौर पहुंचा। वहां उसने अंगरेज़ रेज़िडेण्ट से प्रार्थना की कि दीवानी के पद से मेरा इस्तीफ़ा स्वीकार किया जाय। जान लारेन्स इस समय लाहौर का रेज़िडेण्ट था। किन्तु अंगरेज़ अभी तक मुलतान का शासन मूलराज के हाथों से लेने के लिए तैयार न हो पाए थे। दीवान मूलराज को समझा-बुझा कर फिर मुलतान वापस कर दिया गया।

मूलराज की बरखास्तगी

इसके बाद सर फ्रेडरिक करी रेज़िडेण्ट नियुक्त होकर लाहौर पहुंचा। उसने मूलराज को और अधिक दिक़ करना शुरू कर दिया। मुलतान प्रान्त का धन-वैभव उस समय अत्यन्त बढ़ा हुआ था। पंजाब के समस्त प्रान्तों में अंगरेज़ों के सबसे अधिक उसी पर दांत थे। रेज़िडेण्ट करी, अब जिस तरह हो सके, दीवान मूलराज से झगड़ा मोल लेने के लिए कृतसंकल्प था। ये सब बातें करी और दूसरे अंगरेज़ों के उस समय के पत्र-व्यवहार से स्पष्ट हैं। करी ने लाहौर दरबार की मारफ़त दीवान मूलराज पर इस्तीफ़ा देने के लिए फिर से जोर दिया। इस बार उसका इस्तीफ़ा मंजूर कर लिया गया। काहनसिंह मान नामक एक व्यक्ति तीस हजार रुपये सालाना तनख़ाह पर मूलराज की जगह मुलतान का शासक नियुक्त किया गया। यह भी तय कर दिया गया कि दो अंगरेज़ अफ़सर—एगन्यू और एण्डरसन—काहनसिंह के साथ मुलतान जाएं और इन दोनों की सलाह से काहनसिंह शासन का सारा काम करें।

अंगरेज़ों का गुलाम काहनसिंह

काहनसिंह, एगन्यू, और एण्डरसन कुछ सेना सहित 18 अप्रैल, सन् 1848 को मुलतान पहुंचे। 19 अप्रैल को दीवान मूलराज ने शासन का भार बाज़ाब्ता काहनसिंह के सुपुर्द कर दिया। एगन्यू ने फ़ौरन नगर के सब दरवाज़ों के ऊपर अंगरेज़ी गारद नियुक्त कर दी। उसी दिन नगर के लगभग सब मुलतानी सिपाहियों को बरख़ास्त करके उनकी

---

* *Notes on the Revenues and Resources of the Punjab, by Elliots, p. 41.*

जगह गोरे नियुक्त कर दिए गए। मुलतान निवासी समझ गए कि शासन की वाग काहन-सिंह के हाथों में नहीं, बल्कि वास्तव में विदेशियों के हाथों में चली गई। इन विदेशियों के विरुद्ध असन्तोष समस्त पंजाव में बढ़ता जा रहा था। 19 अप्रैल को ही, जब कि एगन्यू अपने घोड़े पर चढ़ रहा था, दो मुलतानी सवारों ने, जिन्हें उसी दिन बरख़ास्त किया गया था, तेजी से आकर एगन्यू पर वार किया। एगन्यू बुरी तरह घायल हो गया। किन्तु काहनसिंह ने फ़ौरन बीच में पड़कर एगन्यू को मरने से बचा लिया।

मुलतान का संग्राम

एगन्यू और एण्डरसन के रहने के लिए नगर के वाहर एक ईदगाह तजवीज़ की गई। मूलराज नगर छोड़ कर चला गया। किन्तु अनेक मुलतानी सिपाहियों ने, जो 19 तारीख को बरख़ास्त किए गए थे, 20 अप्रैल की सुबह ईदगाह को आकर घेर लिया। गोरी सेना के अतिरिक्त काहनसिंह के साथ एक हिन्दोस्तानी सेना भी थी। इस सेना के सब सिपाही अब मुलतानियों की ओर जा मिले; किन्तु उनके सरदार अधिकतर काहनसिंह और उसके विदेशी साथियों की ओर रहे। एगन्यू और एण्डरसन्, दोनों उस दिन के संग्राम में मार डाले गए। काहनसिंह जख़्मी होकर क़ैद कर लिया गया। निस्सन्देह इस दुर्घटना का कारण था, मुलतानियों की स्वाधीनता पर हमला और उनमें से हजारों वेगुनाहों की जीविका का छीन लिया जाना।

महारानी झिन्दां कौर के साथ अन्याय

पंजाव को हड़प जाने के लिए अभी और अधिक बहानों की ज़रूरत थी। लाहौर में बैठे-बैठे रेज़िडेण्ट करी ने महाराज दलीपसिंह की माता, महारानी झिन्दां कौर पर यह इलज़ाम लगाया कि मुलतान के विद्रोह में झिन्दां कौर का हाथ था। रेज़िडेण्ट करी ने स्वयं अपने पत्रों में स्वीकार किया है कि महारानी के विरुद्ध उसके पास कोई सबूत न था। न कोई तहक़ीक़ात की गई और न यह मामला लाहौर दरबार या कौन्सिल के सामने पेश किया गया। केवल अंगरेज़ रेज़िडेण्ट के हुकुम से 15 मई, सन् 1848 को महाराजा रणजीतसिंह की विधवा महारानी और महाराजा दलीपसिंह की माता, झिन्दां कौर को शेखूपुरे के महल से कैद करके तुरन्त बनारस भेज दिया गया। हुकुम दे दिया गया कि महारानी झिन्दां कौर बिना अपने अंगरेज़ पहरेदार की इजाजत के न किसी से पत्र-व्यवहार करे और न किसी तरह का सम्बन्ध रखे।

सारा पंजाव और ख़ास कर सारी सिख जाति महारानी जिन्दां कौर को अपनी माता के समान समझती थी। विधवा महारानी के साथ इस तरह के व्यवहार को देखते ही सारी सिख जाति में एक आग-सी लग गई।

महारानी की गिरफ्तारी

15 मई को महारानी को क़ैद किया गया। 25 मई को रेज़िडेण्ट करी ने गवर्नर-जनरल को लिखा कि ख़ालसा सेना महारानी की गिरफ्तारी की ख़बर सुनते ही भड़क उठी, सिख सिपाही चिल्लाने लगे—"महारानी झिन्दां कौर हमसे जुदा कर दी गई, बालक

दलीपसिंह अंगरेज़ों के हाथों में हैं, अब हम किसके लिए लड़ें और किसके झण्डे के नीचे जमा हों।" सारी सिख जाति अब दीवान मूलराज और उसके विद्रोही सिपाहियों साथ सहानुभूति अनुभव करने लगी।

सिखों में असन्तोष

लाहौर के सिख सरदार भी इस अत्याचार को देख कर क्रोध और दुख से भर गए। लाहौर कौन्सिल के प्रमुख सदस्य, राजा शेरसिंह, ने सारे पंजाब में एक ऐलान प्रकाशित किया, जिसके शुरू में लिखा था—

> "पंजाब के तमाम बाशिन्दों को, तमाम सिखों को और वास्तव में तमाम दुनिया को अच्छी तरह मालुम है कि फिरंगियों ने स्वर्गवासी महान् महाराज रणजीतसिंह की विधवा महारानी के साथ कितनी जियादती और बेजा जबरदस्ती का व्यवहार किया है।
>
> "लोगों की माता महारानी को कैद करके और हिन्दोस्तान भेज कर फिरंगियों ने सन्धि को तोड़ डाला है, इत्यादि।"

अमीर दोस्तमोहम्मद की सहानुभूति

यहां तक कि अफ़गानिस्तान के अमीर दोस्तमोहम्मद खां की सहानुभूति भी इस समय पंजाबियों के साथ थी। दोस्तमोहम्मद खां ने कप्तान ऐबट के नाम एक पत्र में लिखा—

> "इसमें कोई सन्देह नहीं हो सकता कि सिखों में असन्तोष दिन-दिन बढ़ता जा रहा है। कुछ को नौकरी से बरखास्त कर दिया गया है, कुछ को जलावतन करके हिन्दोस्तान भेज दिया गया है, खास कर महाराजा दलीपसिंह की मां को कैद कर लिया गया है और उनके साथ बेजा सलूक किया गया है। सब मजहबों के लोग इस तरह के सलूक को बेजा समझते हैं और छोटे और बड़े, दोनों इसकी निस्बत मर जाने को बेहतर समझते हैं, इत्यादि।"

सिख युद्ध का मुख्य कारण

निस्सन्देह महारानी झिन्दां कौर के साथ अंगरेज़ों का अत्याचार दूसरे सिख युद्ध के कारणों में से एक मुख्य कारण था।

समस्त सिख साम्राज्य के अन्दर इस समय दो सरदार सबसे अधिक दबंग और स्वतन्त्रताप्रिय मालूम होते थे—एक मुलतान का दीवान मूलराज और दूसरा हजारा प्रान्त का शासक सरदार चतरसिंह अटारीवाला। जिस तरह इस समय दीवान मूलराज को दिक़ किया जा रहा था, उसी तरह बूढ़े सरदार चतरसिंह अटारीवाला को भी दिक किया जा रहा था।

चतरसिंह अटारीवाला

हज़ारा का प्रान्त पहले कश्मीर में शामिल था और राजा गुलाबसिंह को दिया जा चुका था। बाद में कुछ और इलाके के बदले यह प्रान्त राजा गुलाबसिंह से लेकर महा-

राजा दलीपसिंह के अधीन कर दिया गया। लाहौर-कौन्सिल के प्रसिद्ध सदस्य, राजा शेरसिंह का पिता, सरदार चतरसिंह अटारीवाला, इस प्रान्त का नाज़िम नियुक्त किया गया। सरदार चतरसिंह उस समय पंजाब का एक बहुत प्रतिष्ठित व्यक्ति था।

दलीपसिंह के विवाह में हस्तक्षेप

सरदार चतरसिंह की बेटी की सगाई महाराजा दलीपसिंह के साथ हो चुकी थी। जुलाई, सन् 1848 में विवाह की बातचीत होने लगी। रेज़िडेण्ट करी ने बिना किसी कारण के चतरसिंह को लिख दिया कि—"बिना रेज़िडेण्ट की रज़ामन्दी व मंज़ूरी के विवाह नहीं किया जा सकता।" रेज़िडेण्ट की ओर से कप्तान ऐवट ने सरदार चतरसिंह के साथ इतना बुरा व्यवहार करना शुरू कर दिया कि जिसे कोई भी स्वाभिमानी मनुष्य सहन नहीं कर सकता था। स्वयं रेजिडेण्ट करी ने अपने पत्रों में कप्तान ऐवट का अनुचित व्यवहार और सरदार चतरसिंह का निर्दोष होना स्वीकार किया है।

ऐवट की साम्प्रदायिक शरारतें

कप्तान ऐवट की शरारतें और साज़िशें हद को पहुंच गईं। हज़ारा प्रान्त में अधिकतर आबादी मुसलमानों की थी। ये सब लोग वीर और सशस्त्र थे। कप्तान ऐवट ने उन पर खूब धन खर्च करना शुरू किया और उन्हें यह समझाया कि सिख क़ौम सदा से मुसलमानों की शत्रु है। कप्तान ऐवट ने इन भोले, किन्तु युद्ध प्रेमी मुसलमानों को सिखों के विरुद्ध भड़का कर उनसे यह वादा किया कि यदि तुम सिख राज को मिटाने में अंगरेज़ों को मदद दोगे तो सिखों से बदला निकालने का तुम्हें काफ़ी मौक़ा दिया जायगा। सरदार चतरसिंह हरीपुर में रहता था। 6 अगस्त, सन् 1848 को कप्तान ऐवट के उकसाने पर आसपास के मुसलमानों ने आकर हरीपुर को घेर लिया। नगर की रक्षा के लिए कुछ सेना चतरसिंह के अधीन हरीपुर में रहती थी। कर्नल कैनोरा नामक एक अंगरेज़ इस सेना का अफ़सर था। सरदार चतरसिंह ने कर्नल कैनोरा को नगर की रक्षा का हुकुम दिया। कर्नल कैनोरा ने चतरसिंह का हुकुम मानने से इनकार कर दिया। इतना ही नहीं, बल्कि कर्नल कैनोरा ने अपनी तोपें भर कर, स्वयं उनके बीच में खड़े होकर, यह साफ़ कह दिया कि यदि चतरसिंह का कोई आदमी निकट आएगा, तो मैं उस पर वार करूंगा। सरदार चतरसिंह ने अपने पैदल सिपाही कर्नल कैनोरा से तोपें छीनने के लिए भेजे। कैनोरा ने अपने एक हवलदार को इन सिपाहियों पर गोली चलाने का हुकुम किया। पंजाबी हवलदार ने इनकार कर दिया। इस पर बाग़ी कर्नल ने हवलदार को क़त्ल कर डाला। इतने ही में दो पैदल सिपाहियों ने अपनी बन्दूकों से नमकहराम कर्नल कैनोरा का खात्मा कर दिया।

कप्तान ऐबट को और अधिक बहाना मिल गया। उसने चतरसिंह के विरुद्ध मुसलमानों की एक सेना जमा करनी शुरू कर दी। रेज़िडेण्ट करी ने कप्तान ऐबट के नाम अपने एक निजी पत्र में कर्नल कैनोरा की हत्या के सम्बन्ध में सरदार चतरसिंह को निरपराध और कैनोरा को साफ़ क़सूरवार स्वीकार किया है। फिर भी करी और ऐबट, दोनों भीतर ही भीतर सरदार चतरसिंह और सिख राज के नाश का संकल्प कर चुके थे।

सरहदी मुसलमानों को सिखों के विरुद्ध भड़काना

कप्तान ऐबट ने हज़ारा प्रान्त के सब मुसलमान सरदारों को जमा किया; उन्हें पुराने मजहबी झगड़ों की याद दिलाई और सिख राज को नष्ट करने में उनसे स्पष्ट मदद चाही। प्रान्त भर में उसने इस विषय के खुले परवाने जारी कर दिए। कप्तान ऐबट इससे पहले दीवान ज्वाला सहाय और सरदार झण्डासिंह आदि पंजाब के कई और प्रान्तीय शासकों का इस तरह नाश कर चुका था।

सरदार चतरसिंह ने बार-बार लाहौर दरबार और रेज़िडेण्ट करी से कप्तान ऐबट की इन हरकतों की शिकायत की किन्तु कोई सुनवाई न हुई। लाचार होकर बूढ़े सरदार चतरसिंह को अपने देश, धर्म और खालसा राज की रक्षा के लिए तैयार हो जाना पड़ा।

रेज़िडेण्ट करी की वास्तविक इच्छा

अब हम फिर मुलतान की ओर आते हैं। रेज़िडेण्ट करी ने लाहौर दरबार पर ज़ोर दिया कि दरबार की सेना भेज कर दीवान मूलराज को दण्ड दिया जाय। किन्तु भैरोंवाल की सन्धि के अनुसार दरबार की अधिकांश सेना बरखास्त की जा चुकी थी। उसकी जगह लाहौर, जालन्धर और फ़ीरोज़पुर में कम्पनी की सेनाएं रहती थीं। इन अंगरेज़ी सेनाओं का खर्च लाहौर दरबार से लिया जाता था और सन्धि में यह तय हो चुका था कि देश के अन्दर के विद्रोहों का दमन करने और शान्ति क़ायम रखने में ये सेनाएं सदा दरबार को मदद देंगी। इस सहायता के बदले में ही लाहौर दरबार ने इन सेनाओं का खर्च स्वीकार किया था। इस अवसर पर लाहौर दरबार ने रेजिडेण्ट से प्रार्थना की कि कम्पनी को इन सेनाओं में से जितनी आवश्यक हों, मुलतान के विद्रोहों का दमन करने के लिए भेज दी जायं। रेज़िडेण्ट ने भैरोंवाल की सन्धि का साफ़ उल्लंघन कर कम्पनी की उन फ़ौज़ों में से, जो वास्तव में लाहौर दरबार की ही फ़ौजें थी, एक भी सिपाही मुलतान भेजने से इन्कार कर दिया। साथ ही उसने दरबार को यह धमकी दी कि यदि दरबार की निजी सेना मुलातन के विद्रोह का दमन न कर सकी, तो पंजाब का राज ज़ब्त कर लिया जाएगा। वास्तव में रेज़िडेण्ट करी को मुलतान के विद्रोह से बढ़ कर डलहौजी की वास्तविक इष्टसिद्धि का बहाना न मिल सकता था। लाहौर, जालन्धर और फ़ीरोजपुर की फ़ौजें वास्तव में लाहौर दरबार की सहायता के लिए न थीं, वरन् उसके सर्वनाश के लिए रखी गई थीं।

लाहौर दरबार की मजबूरी

रेज़िडेण्ट करी की ज़िद पर लाहौर दरबार ने सरदार चतरसिंह के पुत्र, राजा शेरसिंह, को दरबार की सेना सहित मूलराज का दमन करने के लिए भेजा। रेज़िडेण्ट की आज्ञा से मेजर एडवर्ड्स शेरसिंह के साथ हो लिया। मेजर एडवर्ड्स ने सरहद के अनेक मुसलमानों को हिन्दुओं और सिखों के खिलाफ़ भड़का कर उनकी एक नयी सेना तैयार की। नवाब बहावलपुर की सेना भी इस समय एडवर्ड्स के साथ आ मिली। मार्ग में मेजर एडवर्ड्स ने सरदार फ़तहखां तवाना को एक पत्र लिखा कि आप अपने आदमियों को

जमा करके डेराग़ाज़ीखां और बन्नू के सिखों को लूट लीजिए और उन्हें मार डालिए। फ़तहखां और मूलराज का पहले से कुछ झगड़ा चला आता था। उसने एडवर्ड्स की बात मान ली। एडवर्ड्स ने फतहखां को डेराग़ाज़ीखां और बन्नू का शासक नियुक्त कर दिया। किन्तु ज्यों ही फ़तहखां ने सिखों को लूटने के लिए आदमी जमा किए, सिखों ने उसे मार डाला।

मूलराज के साथ संग्राम

दीवान मूलराज की सेना के साथ एडवर्डस और शेरसिंह की सेनाओं के कई संग्राम हुए, जिनके विस्तार में पड़ने की आवश्यकता नहीं हैं। किनेरी और सद्दूसाम की लड़ाइयों में, मालूम होता है, एडवर्डस की जीत रही। इसके वाद मुलतान के मोहासरे का समय आया। एडवर्ड्स ने इस मोहासरे के लिए रेज़िडेण्ट करी से सहायता चाही। करी ने सहायता भेजने से इन्कार कर दिया। इस बीच वहावलपुर और पंजाव से हजारों हिन्दू, मुसलमान और सिख आकर मूलराज के झण्डे के नीचे जमा होने लगे। अन्त में, एक दिन मूलराज ने क़िले से निकल कर एडवर्ड्स और उसके साथियों को बुरी तरह शिकस्त दी। एडवर्ड्स को अपनी जान बचा कर मुलतान से भाग आना पड़ा। लिखा है कि यदि एडवर्ड्स के सिख साथी समय पर उसकी सहायता न करते, तो एडवर्ड्स के लिए जान वचा कर आ सकना असम्भव था।

एडवर्ड्स की जालसाजी

राजा शेरसिंह को भी मूलराज के विरुद्ध सफलता प्राप्त न हो सकी। शेरसिंह की सिख सेना मूलराज से जा मिली। मालूम होता है कि शेरसिंह भी मूलराज की ओर जा मिलता किन्तु एडवर्ड्स ने वड़ी चाल से शेरसिंह की ओर से मूलराज के मन में अविश्वास वनाए रखा। एक मुसलमान लेखक सर चार्ल्स नेपियर के नाम अपने 6 अक्तूबर, सन् 1848 के पत्र में लिखता है—

> **"एडवर्ड्स बड़ी मेहनत से जनरल शेरसिंह की ओर से इस तरह के जाली खत लिखता रहा है कि जो मूलराज के हाथों में पड़ जायं और जिनसे मूलराज के चित्त में शेरसिंह की ओर से सन्देह उत्पन्न हो जाय। इस काम में एडवर्ड्स को थोड़ी बहुत सफलता भी प्राप्त हुई है और मूलराज एडवर्ड्स पर हमला करने से रुक रहा है।"***

मुलतान का मोहासरा

राजा शेरसिंह के लाहौर से चलते समय तक सरदार चतरसिंह और कप्तान ऐबट के बीच झगड़ा अधिक न बढ़ा था। कप्तान ऐबट और उसके साथियों ने इसके बाद हजारा निवासियों से यह वादा किया कि यदि तुम चतरसिंह को बाहर निकालने में अंगरेज़ों को मदद दोगे, तो तुम्हारा तीन साल का लगान माफ़ कर दिया जायगा। मामला इस हद

---

*"Edwards has been busy, writing false letters from General Sher Singh, to fall into the hands of Mool Raj to create suspicion, in which he partially succeeded and prevented Mool Raj attacking him."—*Life of Sir Charles Napier*, vol. iv, p. 129.

को पहुंचा कि शेरसिंह को मुलतान छोड़ कर अपने पिता की मदद के लिए उत्तर की ओर चला जाना पड़ा। मुलतान का क़िला एक क़ाफ़ी मजबूत क़िला था। उसे विजय करना इतना आसान न था। अगस्त सन् 1848 में सर चार्ल्स नेपियर ने अपने भाई के नाम एक पत्र में लिखा—

> "यदि एडवर्डस् ने मूलराज को हरा दिया, तो उसे कोई खतरा नहीं; किन्तु यदि मूलराज जीत गया, तो एडवर्ड्स की हालत खतरनाक हो जाएगी; × × × यदि मूलराज के आदमी ईमानदार रहे, तो एडवर्ड्स मुलतान नहीं ले सकता; यदि वे बेईमान साबित हुए, तो मुलतान का नगर स्वयं ही अपने दरवाजे खोल देगा।"*

सितम्बर 1848 में मुलतान का मोहासरा हटा दिया गया।

दूसरे सिख युद्ध का प्रारम्भ

मुलतान के मोहासरे की असफलता के कारण सिखों की हिम्मत बढ़ गई। अंगरेज़ों के विरुद्ध सारे पंजाब में असंतोष फैला हुआ था। सब लोग ख़ालसा राज की रक्षा के लिए चतरसिंह और शेरसिंह के झण्डे के नीचे आ आकर जमा होने लगे। यही दूसरे सिख युद्ध का प्रारम्भ था।

पहले सिख युद्ध में लालसिंह, तेजसिंह और गुलाबसिंह जैसे देशद्रोहियों की मदद से अंगरेज़ों को सफलता प्राप्त हुई थी। इस बार सिख सरदारों तक को अंगरेज़ों की दुरंगी चालों का इतना काफ़ी परिचय मिल चुका था कि सिखों में अब इस तरह का देशद्रोही मिल सकना कठिन था। जिस मुसलमान लेखक का हम ऊपर ज़िक्र कर चुके हैं, वह सर चार्ल्स नेपियर के नाम अपने पत्र में लिखता है—

> "सन् 1846 की अपेक्षा इस समय पंजाब को काबू में करना कई गुना ज्यादा कठिन है × × × उस समय × × × सिख सरदारों ने हमारे वादों पर विश्वास कर लिया था, बल्कि हमसे रिश्वतें ले ली थीं किन्तु अब वे रिश्वतें स्वीकार न करेंगे। जिस तरह का उनके साथ व्यवहार किया गया है, उससे उनके मन में जबरदस्त घृणा उत्पन्न हो गई है। यदि कोई असाधारण बात, जिसकी इस समय मुझे आशा नहीं है, सिखों को रोकने वाली न हुई तो एक-एक सिख हमारे विरुद्ध निकल पड़ेगा।"†

मुसलमानों को भड़काना

इस कमी को पूरा करने के लिए अंगरेज़ों ने इस बार पंजाब और सरहद के

---

* "If he (Lt. H. B. Edwardes) beats Mool Raj, he will be safe; but if Mool Raj gets an advantage, Edwardes' position will be dangerous......If Mool Raj's men are true, Edwardes cannot take Multan; if they are false, the town will open its gates."—Ibid, vol. iv, p. 106.

† "It is now many more times more difficult to subdue Punjab than in 1846......then...the Sirdars accepted promises, many took bribes, too, but now they will not take bribes, and animated with great hatred for the way they were treated,......the Sikh will turn out to a man, unless something extraordinary may happen to present, which I cannot vouch for at present."—Ibid, vol. iv, p. 125.

मुसलमानों को सिखों के विरुद्ध भड़काया। सिखों और मुसलमानों के पुराने आपसी झगड़ों के अनेक झूठे-सच्चे क़िस्से उनके सामने रखे गए। फ़क़ीर अजीजुद्दीन महाराजा रणजीत सिंह का एक अत्यन्त विश्वस्त मन्त्री था। अज़ीजुद्दीन का भाई नूरुद्दीन इस समय लाहौर की रीजेन्सी कौन्सिल का एक सदस्य था। यह नूरुद्दीन अंगरेज़ों की बातों में आकर उनसे मिल गया। नूरुद्दीन का लड़का शम्सुद्दीन गोविन्दगढ़ के क़िले का थानेदार था। उसने सिख राज के साथ विश्वासघात करके दूसरे सिख युद्ध में गोविन्दगढ़ का क़िला अंगरेज़ों के हवाले कर दिया और वह भी ऐसे संकट के समय, जब कि कहा जाता है कि यदि शम्सुद्दीन अंगरेज़ों से न मिल जाता, तो सम्भव है, अंगरेज़ों के लिए परिणाम अत्यन्त नाशकर होता।* कहा जाता है कि अधिकतर ऐसे लोगों की ही सहायता से अंगरेज़ों ने दूसरे सिख युद्ध में सिखों पर विजय प्राप्त की ।

शेरसिंह की वीरता

इस युद्ध के अनेक संग्रामों को विस्तार से बयान करने की आवश्यकता नहीं है। अक्तूबर सन् 1848 में जब कि मूलराज छै महीने तक सफलता के साथ अंगरेज़ों का मुक़ाबला कर चुका था, पंजाब के सिख सरदारों ने चतरसिंह के झण्डे के नीचे जमा होकर अपने देश को विदेशियों के पंजे से छुड़ाने का प्रयत्न प्रारम्भ किया। अंगरेज़ पहले ही अपनी फ़ौजें चारों ओर जमा कर चुके थे। मुलतान का फिर से मोहासरा शुरू किया गया। उसी पुरानी कूटनीति से काम लिया गया। सबसे मशहूर लड़ाइयां रामनगर, चिलियानवाला और गुजरात की लड़ाइयां थीं। राजा शेरसिंह ने अपनी वीरता और युद्ध कौशल से अंगरेज़ कमाण्डर-इन-चीफ़ लार्ड गफ़ के छक्के छुड़ा दिए।

चिलियानवाला का संग्राम

जनवरी सन् 1849 में चिलियानवाला के मैदान में सिख सेना की तादाद अंगरेज़ी सेना से कम थी; फिर भी अंगरेज़ों को बड़ी ज़िल्लत के साथ ज़बरदस्त हार खानी पड़ी। अंगरेज़ों के 23,000 से ऊपर आदमी चिलियानवाला के मैदान में घायल हुए और मारे गए। 26 अंगरेज़ अफ़सर मारे गए और 66 घायल हुए। कम्पनी की कई पैदल रेजिमेण्टें बेकार हो गईं। उनके झण्डे तक उनके हाथों से छीन लिए गए। किन्तु चिलियानवाला की विजय हिन्दोस्तान की भूमि पर सिख जाति की अन्तिम विजय थी। अनेक अंगरेज़ इतिहास लेखकों ने इस युद्ध के समय की सिखों की वीरता और उनके युद्ध कौशल की खुले शब्दों में प्रशंसा की है और इन दोनों गुणों में उन्हें अंगरेज़ों से कहीं बढ़ा हुआ स्वीकार किया है। चिलियानवाला के बाद ही न जाने क्यों और कैसे शेरसिंह और दूसरे सिख सरदारों में बड़ा मतभेद उत्पन्न हो गया। शेरसिंह यदि चाहता, तो उस समय गफ़ और उसकी सेना के अस्तित्व को ख़ाक में मिला सकता था किन्तु ऐसा करने के बजाय वह लाहौर की ओर बढ़ा।

गुजरात का संग्राम

मार्ग में गुजरात नामक स्थान पर दोनों ओर की सेनाओं में फिर एक घमासान युद्ध हुआ। इस बीच अंगरेज़ों को अपनी कूटनीति के लिए काफ़ी मौक़ा मिल चुका था।

---

* *The Punjab Chiefs,* (New Edition) 1890, vol. i, p. 1109.

गुजरात के मैदान में ही पंजाब की स्वाधीनता और सिखों की राजसत्ता दोनों का ख़ात्मा हो गया। उधर मुलतान में भी 9 महीने तक वीरता के साथ मुक़ाबला करने के बाद दीवान मूलराज को अपने आपको अंगरेज़ों के हवाले कर देना पड़ा। कहते हैं कि किसी ने दग़ा से मूलराज की मेगज़ीन में आग लगा दी थी।

पंजाब की स्वाधीनता का अन्त

29 मार्च 1849 को गवर्नर जनरल लार्ड डलहौजी ने एक ऐलान प्रकाशित किया जिसमें सिखों की हुकूमत का आइन्दा के लिए ख़ात्मा कर दिया गया। पंजाब पर अंगरेज़ों की हुकूमत क़ायम हो गई और पंजाब ब्रिटिश भारतीय साम्राज्य का एक प्रान्त बन गया।

राष्ट्रीयता का अभाव

यह एक ध्यान देने योग्य बात है कि जब पंजाब के बहुत से मुसलमान अंगरेज़ों के बहकावे में आकर विदेशी आक्रमकों का साथ दे रहे थे, उसी समय अफ़ग़ानिस्तान का अमीर दोस्त मोहम्मद खां सिखों और लाहौर दरबार के साथ पूरी सहानुभूति प्रकट कर रहा था। इतना ही नहीं, बल्कि लार्ड डलहौजी का बयान है कि दोस्त मोहम्मद खां और उसके पठान, सिखों को मदद तक दे रहे थे। हमें यह भी याद रखना चाहिए कि ठीक उसी समय बहावलपुर और दूसरे स्थानों के हज़ारों मुसलमान, दीवान मूलराज के झण्डे के नीचे आकर जमा हो रहे थे। फिर भी यदि पहले सिख युद्ध में तेजसिंह और लालसिंह मौजूद थे, तो दूसरे सिख युद्ध में शम्सुद्दीन और नूरुद्दीन मौजूद थे। हिन्दू हों या मुसलमान, इसमें सन्देह नहीं कि दूसरे भारतवासियों के समान पंजाबियों और विशेषकर, उच्च और मध्यम श्रेणी के पंजाबियों का चरित्र भी उस समय बेहद गिरा हुआ था; राष्ट्रीयता के भाव का उनमें अभाव था। यही कारण था कि शासन की योग्यता, असीम वीरता, युद्ध कौशल और साहस के होते हुए भी वे अल्पसंख्यक, कायर, अकुशल किन्तु चालाक विदेशियों के एक दो झोंकों के सामने निस्सत्व होकर गिर पड़े।

मेजर ईवन्स बेल के विचार

मेजर ईवन्स बेल का मत है कि पंजाब में जो कुछ उपद्रव खड़े हो गए थे, उनके कारण, उन्हें शान्त कर लेने के बाद भी, पंजाब को कम्पनी के राज में मिला लेने का डलहौजी को कोई अधिकार न था। उसका कहना है—

> "सन् 1849 के युद्ध के बाद ब्रिटिश भारत के साथ पंजाब के भावी सम्बन्ध को तय करने में लार्ड डलहौजी की कारवाई बिलकुल इस तरह थी—एक आदमी रुपये के बदले में एक कष्टकर और खतरनाक जायदाद के प्रबन्ध की जिम्मेदारी किसी नाबालिग मालिक की ओर से अपने ऊपर ले लेता है। उस आदमी को पहले से पूरी तरह बता दिया जाता है और आगाह कर दिया जाता है कि इस जायदाद का प्रबन्ध करने और नाबालिग मालिक की रक्षा करने में तुम्हें अमुक अमुक कष्टों और विपत्तियों का सामना करना पड़ेगा, फिर भी उन कष्टों और विपत्तियों के पैदा होते ही वह इस बात का ऐलान कर देता है कि आइन्दा के लिए अपने प्रयत्नों और अपने संरक्षण के बदले में नाबालिग की तमाम जायदाद और माल असबाब पर

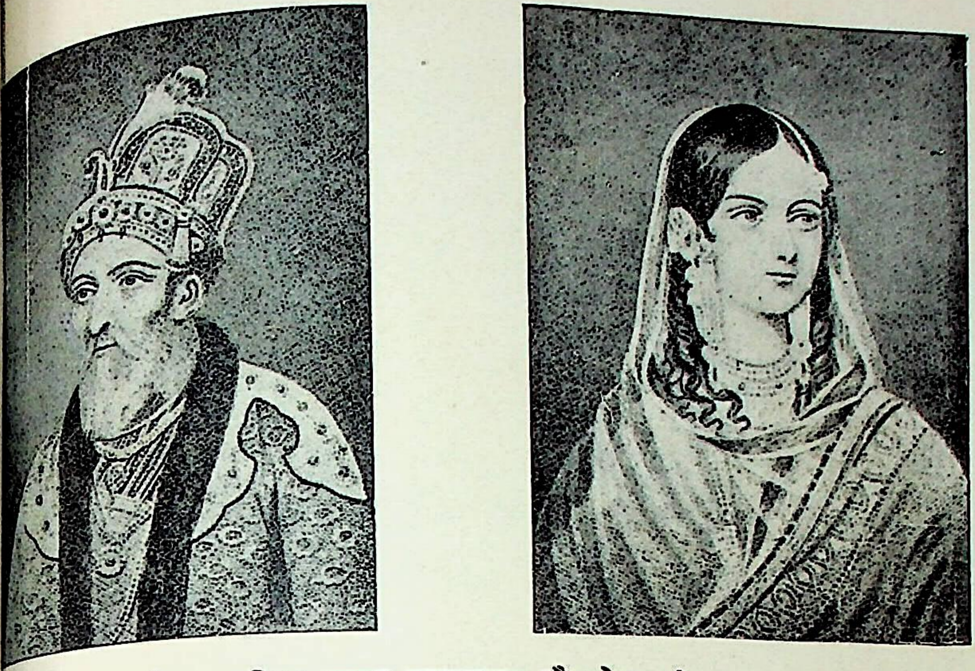

दिल्ली का अन्तिम सम्राट बहादुरशाह और बेगम ज़ीनत महल

इलाहाबाद में चौक मोहल्ले के नीम के सात पेड़, जिन पर सन् 57 में लगभग 800 निर्दोष नागरिकों को फांसी पर लटकाया गया

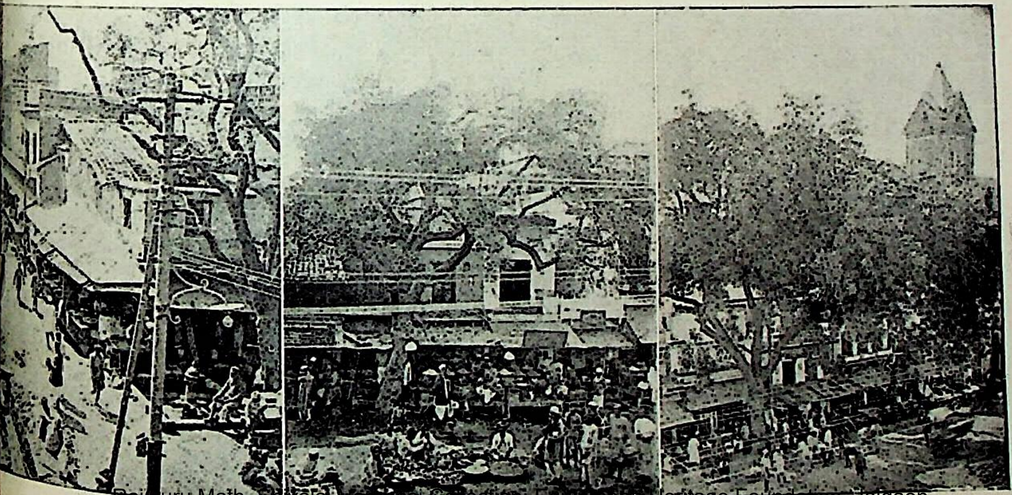

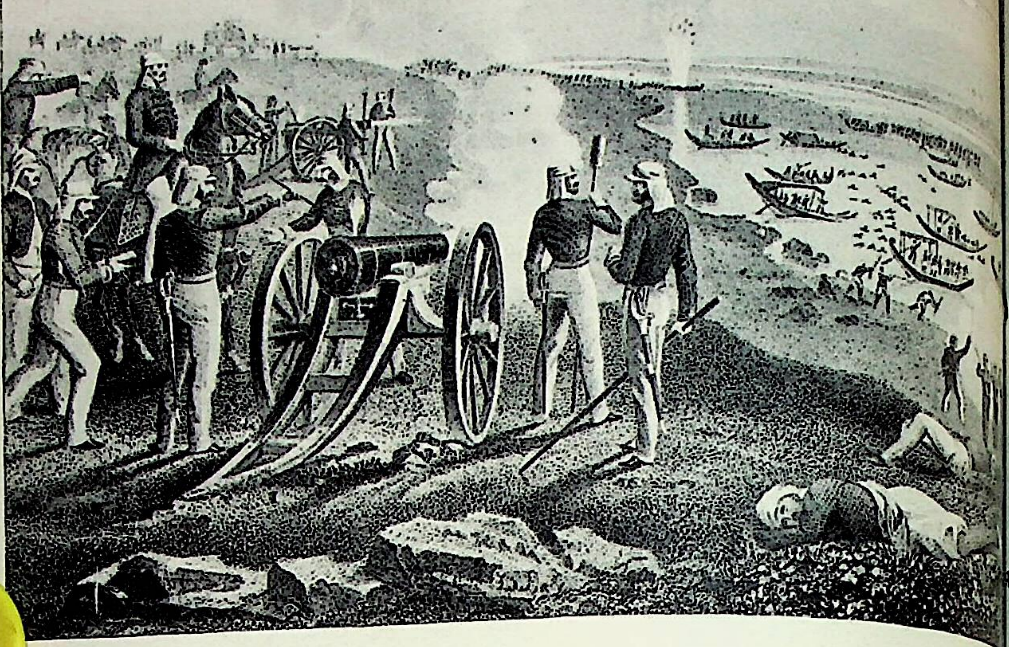

क़िश्तियों में बैठ कर इलाहाबाद से भागते हुए हिन्दोस्तानियों पर अंगरेजी सेना द्वारा गोला

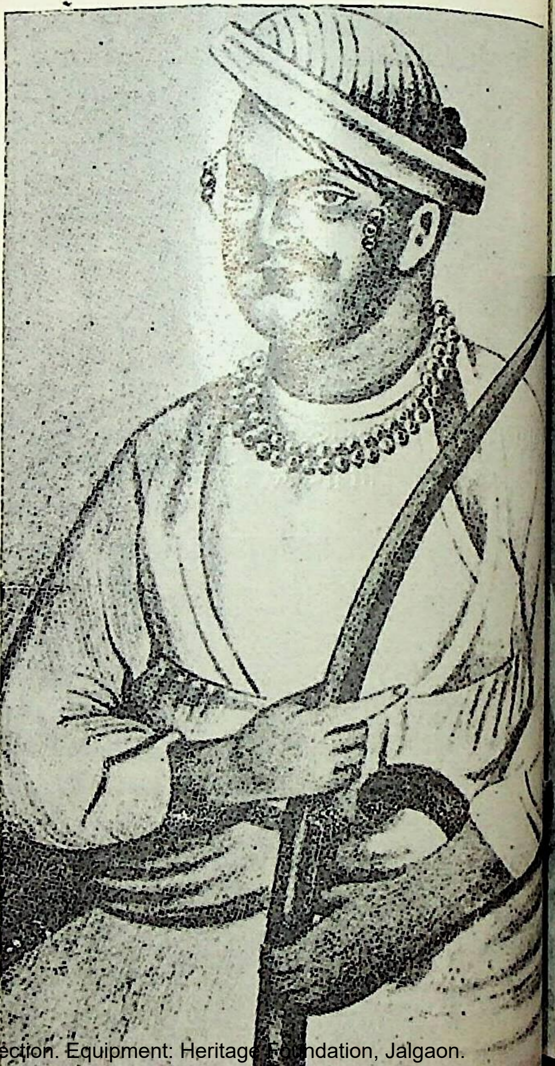

नाना साहब

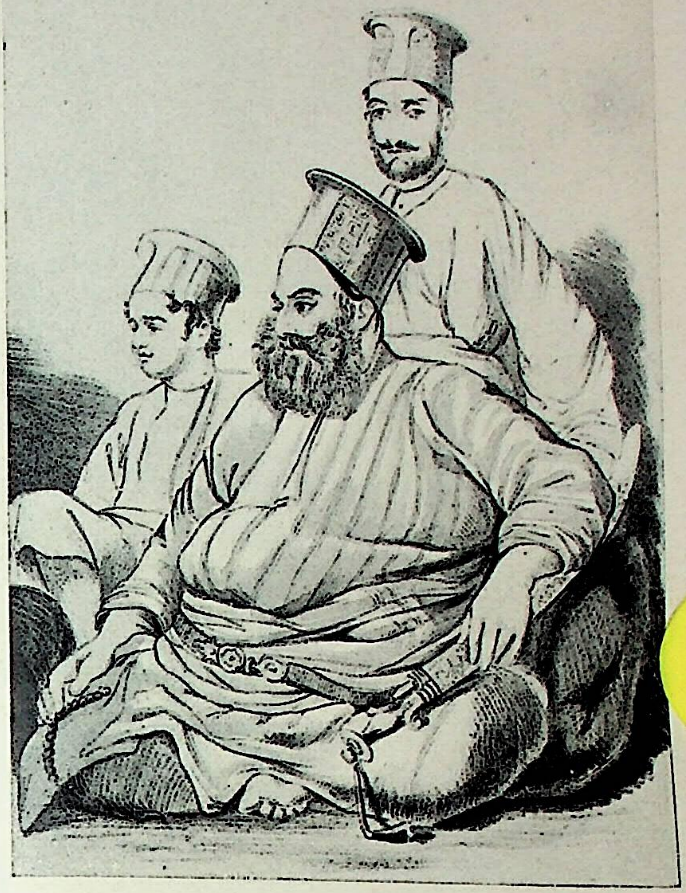

मीर नसीर खां और उसके दो बेटे

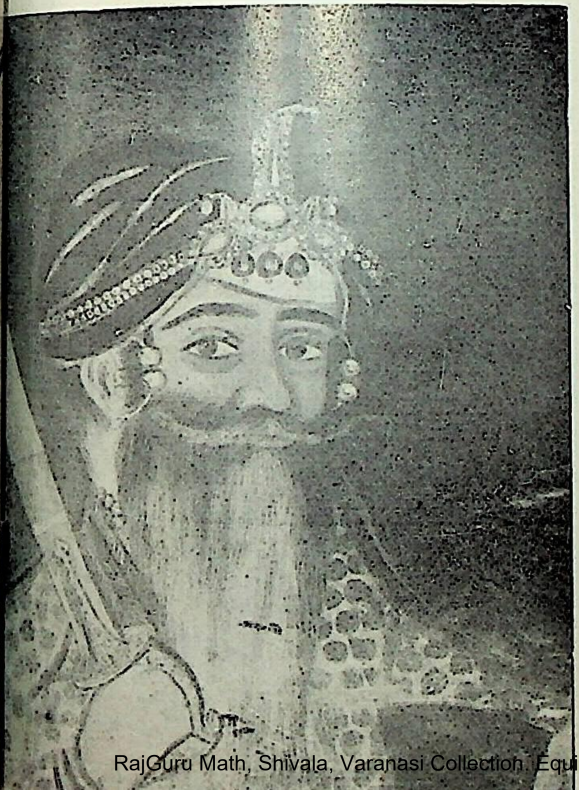

शामसिंह अटारीवाला

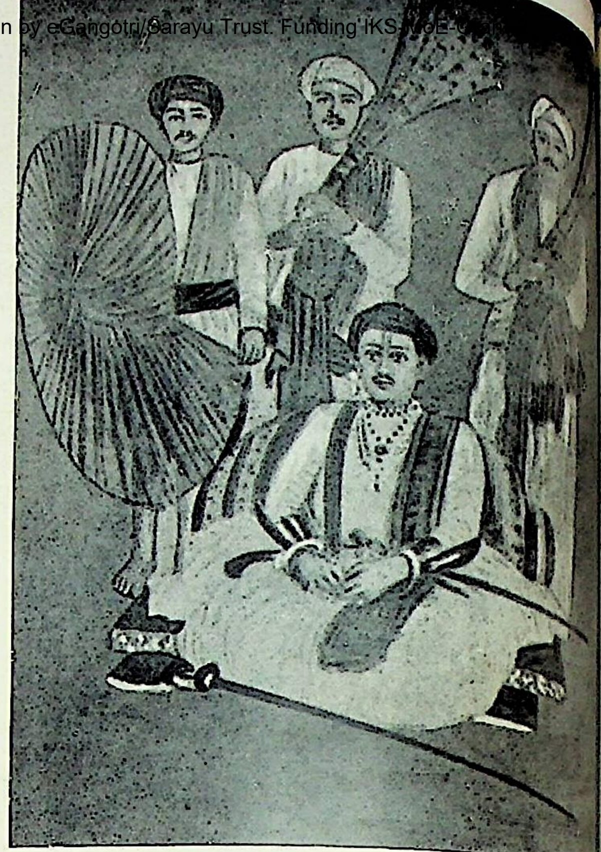

सतारा नरेश प्रतापसिंह

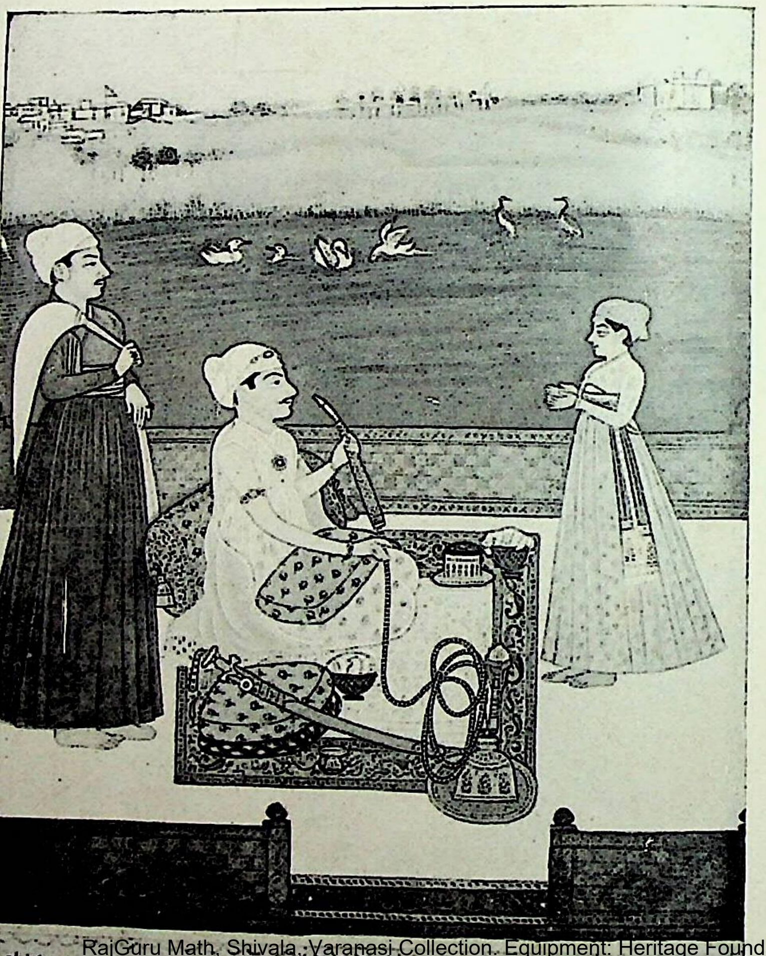

दीवान मूलराज

में अपना कब्जा जमा लूंगा और यह इस सूरत मे जब संरक्षण का जो कुछ खर्च हो, उसको पूरा करनें के लिए और अपनें फ़र्ज के अदा करने में जो कुछ उसे नुकसान सहना पड़े, वह सब भरने के लिए उस संरक्षक के हाथों में काफी जमानत पहले से ही दे दी गई हो।"*

इसी विद्वान लेखक ने बड़े विस्तार के साथ दिखलाया है कि लार्ड डलहौज़ी का 29 मार्च वाला ऐलान कल्पित और झूठी बातों से भरा हुआ था। लाहौर दरबार ने सन्धि का या अपने वादों का कभी भी उल्लंघन नहीं किया था और लार्ड डलहौज़ी का नाबालिग़ महाराजा दलीपसिंह का राज छीन कर उसे अंगरेजी राज में मिला लेना एक जबरदस्त राजनैतिक अन्याय था।† किन्तु राजनीति में और विशेषकर पाश्चात्य राजनीति में इस तरह के न्याय और अन्याय के विचारों के लिए शायद कोई स्थान नहीं।

---

*"Lord Dalhousie's procedure in settling the future relations of the Punjab with British India after the Campaign of 1849, just amounts to this:—a guardian, having undertaken for valuable consideration, a troublesome and dangerous trust, declares, on the first occurrence of those troubles and dangers, of which he had full knowledge and forewarning, that as a compensation for his exertions and a protection for the future, he shall appropriate his Ward's estate and personal property to his own purposes. And this, although the guardian holds ample security in his own hands for the repayment of any outlay, and the satisfaction of any damages he might have incurred, in executing the conditions of the trust."—*Retrospects and Prospects of Indian Policy*, by Major Evans Bell, p. 142.

†Ibid., chapter vi.

बयालीसवां अध्याय

दूसरा बर्मा युद्ध

बहाने का अभाव

लार्ड डलहौज़ी के शासन की एक और महत्वपूर्ण घटना बर्मा देश के साथ कम्पनी का दूसरा युद्ध था। इस युद्ध के लिए वास्तव में इतना बहाना भी न था, जितना दूसरे सिख युद्ध के लिए।

कप्तान शैपर्ड का मुकदमा

जून सन् 1851 में 'मानर्क नामक एक अंगरेज़ी जहाज मोलमई से चल कर रंगून पहुंचा। जहाज़ के अंगरेज़ कप्तान का नाम शैपर्ड था। रंगून की बन्दरगाह बर्मा के राज में था। रंगून पहुंचने के बाद दो मुकदमे रंगून की बर्मी अदालत में कप्तान शैपर्ड के विरुद्ध दायर किए गए। पहला मुकदमा चटगांव के रहने वाले हाजिम नामक एक व्यक्ति ने दायर किया। हाजिम की शिकायत यह थी कि कप्तान शैपर्ड ने मोलमई और रंगून के बीच में मेरे एक भाई, युसुफ़ मल्लाह को समुद्र में फैंक दिया। दूसरा मुक़दमा यूसुफ के एक दूसरे भाई, दीवानअली ने दायर किया। दीवानअली की शिकायत यह थी कि युसुफ़ को जब समुद्र में फेंका गया, उस समय उसके पास 500 रु० नक़द मौजूद थे और कप्तान शैपर्ड ने उसे समुद्र मे फेंकने से पहले उससे यह रक़म छीन ली।

बर्मी अदालत के सामने कप्तान शैपर्ड पर नरहत्या और लूट, दोनों का मुकदमा चलाया गया। जहाज़ के दूसरे लोगों की गवाहियां ली गई। अन्त में शैपर्ड दोनों जुर्मों का दोषी साबित हुआ। अदालत ने नरहत्या के अपराध में उस पर 46 पाउण्ड जुर्माना किया और दीवानअली को शैपर्ड से 55 पाउण्ड हरजाना दिलवाया। इस तरह कप्तान शैपर्ड को अपने समस्त अपराध के बदले में कुल 101 पाउण्ड यानी क़रीब एक हज़ार रुपये देकर छुटकारा मिल गया।

कप्तान लुई का मुकदमा

अगस्त सन् 1851 में इसी तरह एक दूसरी घटना हुई। "चैम्पियन" नामक एक दूसरा अंगरेजी जहाज़ मारीशस से रंगून पहुंचा। इस जहाज के कप्तान, लुई के विरुद्ध दो बंगाली कुलियों ने नरहत्या और अन्य कई संगीन जुर्मों की शिकायत की। कप्तान लुई दोषी पाया गया और उस पर 70 पाउण्ड जुर्माना करके छोड़ दिया गया।

डलहौजी का हस्तक्षेप

इसमें कोई संदेह नहीं हो सकता कि रंगून की बर्मी अदालत को इन दोनों अपराधियों का मुकदमा सुनने और उन्हें दण्ड देने का पूरा अधिकार था। जो दण्ड इन्हें दिए गए थे, वे अपराध के मुक़ाबले में बहुत हलके थे। फिर भी कप्तान शैपर्ड और

कप्तान लुई दोनों ने भारत पहुंच कर कम्पनी सरकार से शिकायत की। बर्मा एक स्वाधीन देश था। भारत की कम्पनी सरकार को बर्मी अदालत के फ़ैसले के विरुद्ध अपील सुनने का कोई अधिकार न था किन्तु लार्ड डलहौजी बर्मा के साथ छेड़-छाड़ का बहाना ढूंढ रहा था। उसने फ़ौरन फ़ैसला कर दिया कि इन दोनों अंगरेज़ों को मिला कर 910 पाउण्ड बतौर हरजाने के बर्मा सरकार के दिलवाए जाएं; 350 पाउण्ड कप्तान शैपर्ड को और 560 पाउण्ड कप्तान लुई को। याद रखना चाहिए कि इन दोनों से मिला कर बर्मी अदालत ने केवल 171 पाउण्ड दंड के वसूल किए थे, और वह भी इतने संगीन जुर्मों के लिए।

युद्ध के लिए अंगरेजी जहाजों की रवानगी

सन् 1840 से उस समय तक जितना पत्र-व्यवहार अंगरेज़ सरकार और बर्मा सरकार के दरमियान हुआ करता था, वह तैनासई के कमिशनर की मारफ़त हुआ करता था। यह उचित या अनुचित मांग भी तेनासई के कमिशनर की मारफ़त ही बर्मा दरबार तक पहुंचाई जा सकती थी। बात इतनी छोटी-सी थी कि यदि उसके लिये किसी विशेष दूत की आवश्यकता भी थी, तो कोई भी सिविल अफ़सर काफ़ी हो सकता था। किन्तु लार्ड डलहौज़ी का उद्देश्य कुछ और ही था। फ़ौरन बर्मा दरबार के साथ किसी तरह का पत्र-व्यवहार किए बिना या कुछ पूछे गिने दो अंगरेज़ी जंगी जहाज़ कमाण्डर लैम्बर्ट के अधीन 910 पाउण्ड बर्मा दरबार से वसूल करने के लिए कलकत्ते से रंगून भेज दिए गए इन जहाज़ों में से एक का नाम ''फ़ाक्स'' (अर्थात् लोमड़ी) और दूसरे का नाम 'सरपेण्ट' (अर्थात् सांप) था। युद्ध के जहाज़ों का रंगून भेजना ही एक तरह से युद्ध छेड़ना था।

डलहौजी की हिदायतें

कमाण्डर लैम्बर्ट के हाथ एक पत्र बर्मा के महाराजा के नाम भेजा गया और लैम्बर्ट को यह हिदायत कर दी गई कि यदि रंगून का बर्मी शासक अंगरेज़ सरकार की मांग को पूरा न करे, तो वह पत्र महाराजा के पास भेज दिया जाय। इस युद्ध से सम्बन्धित ब्रिटिश पार्लियामेण्ट के कागज़ों मे साफ़ लिखा है कि कमाण्डर लैम्बर्ट के नाम लार्ड डलहौज़ी की प्रकट हिदायतें कुछ और थीं और उसे गुप्त जबानी हिदायतें कुछ और दी गईं।

अंगरेज बाशिन्दों की शिकायतें

नवम्बर सन् 1851 के अन्त में कमाण्डर लैम्बर्ट अपने दोनों जहाज़ों सहित रंगून पहुंचा। पहुंचते ही उसने रंगून के अंगरेज़ बाशिन्दों से, जिनमें अधिकतर व्यापारी थे, रंगून दरबार के विरुद्ध अनेक शिकायतें जमा कीं। 27 नवम्बर को उसने रंगून के बर्मी शासक के पास एक अत्यन्त धृष्टतासूर्ण पत्र भेजा। 28 नवम्बर को उसने रंगून के गवर्नर की मारफ़त बर्मा के महाराजा के नाम कम्पनी सरकार का पत्र रवाना कर दिया। जो शिकायतें, कहा जाता है कि रंगून के अंगरेज़ बाशिन्दों ने बर्मा दरबार के विरूद्ध या रंगून के गवर्नर के विरुद्ध लिख कर लैम्बर्ट के हाथों में दीं, उनकी तादाद 38 थी कोई भी निष्पक्ष मनुष्य उन शिकायतों का कौडी भर मूल्य नहीं कर सकता। इन पर शिकायत

करने वालों के कोई हस्ताक्षर तक न थे। अधिकतर शिकायतों की कोई तारीख तक न थी। प्रसिद्ध अंगरेज़ राजनीतिज्ञ काबडेन ने, जिसने ब्रिटिश पार्लियामेण्ट के सरकारी कागज़ों से लेकर दूसरे बर्मा युद्ध का एक निष्पक्ष इतिहास तैयार किया है, इन 38 शिकायतों की सूची को 'बेहूदा' (Absurd) बतलाया है। वार्ड एलेनब्रु तक ने 6 फ़रवरी सन् 1852 को इंगलिस्तान के पार्लियामेण्ट के सामने कहा कि जिस श्रेणी के लोगों ने लैम्बर्ट के सामने शिकायतें पेश कीं वे किसी तरह भी विश्वासनीय नहीं कहे जा सकते। इन 'बेहूदा' शिकायतों की किसी तरह की कोई जांच नहीं की गई। कमाण्डर लैम्बर्ट को विश्वास था कि वर्मा दरबार मेरी शिकायतों को न मंजूर करेगा और न हरजाना देना स्वीकार करेगा। इस तरह लम्बर्ट को आशा थी कि डलहौज़ी को बर्मा के साथ युद्ध आरम्भ करने का आसानी से बहाना मिल जाएगा। उसने बर्मा दरबार को पत्र में लिख दिया था कि पांच सप्ताह के अन्दर इसका उत्तर मेरे पास पहुंच जाना चाहिए।

बर्मा सरकार की शान्तिप्रियता

किन्तु कमाण्डर लैम्बर्ट की दिली आशा पूरी न हुई। पांच सप्ताह के अन्दर अन्दर 1 जनवरी सन् 1852 को बर्मा के महाराज़ा का उत्तर कमाण्डर लैम्बर्ट के पास पहुंच गया। बर्मा का बौद्ध महाराजा अंगरेज़ों के साथ लड़ना न चाहता था। उसने बिना जांच लैम्बर्ट की सब शिकायतों को सच मान लिया, राज की ओर से क्षतिपूर्ति का वादा किया और अपनी सच्चाई और मित्रता प्रकट करने के लिए रंगून के बर्मी गवर्नर को फ़ौरन बदल कर उसकी जगह दूसरा गवर्नर नियुक्त कर दिया। 1 जनवरी, सन् 1852 को लैम्बर्ट ने भारत सरकार के नाम एक पत्र में लिखा—"बर्मा की सरकार ने रंगून के गवर्नर को बरख़ास्त कर दिया है और कम्पनी की मांग को पूरा करने का वादा किया है। मेरी सम्मति में बर्मा का बादशाह सच्चा है और उसकी सरकार अपने वादों को पूरा करेगी।"

रंगून का नया गवर्नर

4 जनवरी, सन् 1852 को नया बर्मी गवर्नर रंगून पहुंचा। कमाण्डर लैम्बर्ट की अब जिस तरह हो सके, इस नये शासक के साथ झगड़ा मोल लेने की चिन्ता हुई। 5 जनवरी को लैम्बर्ट ने एडवर्ड्स नामक अपने एक आदमी को इस नये शासक के पास भेजकर यह दरयाफ्त करवाया कि कमाण्डर लैम्बर्ट भारत सरकार की सब शिकायतों और मांगों का एक ब्योरेवार पत्र आप के पास भेजना चाहता है। आप उस पत्र को कब लेने के लिए तैयार होंगे। बर्मी शासक ने उत्तर में कहला भेजा कि पत्र कल ही या जब कमाण्डर लैम्बर्ट को सुविधा हो मेरे पास भेज दिया जा सकता है। एडवर्ड्स् के जबानी कहने पर नये बर्मी शासक ने अंगरेज़ों की ओर कई छोटी-छोटी शिकायतें भी हाथ के हाथ दूर कर दीं।

युद्ध का काफ़ी बहाना

अगले दिन कमाण्डर लैम्बर्ट ने बजाय पत्र भेजने के पांच अंगरेज़ फ़ौजी अफ़सरों का एक डेपुटेशन ठीक दोपहर के समय रंगून के नयें शासक के पास भेजा। बर्मी शासक

से बात एक पत्र भेजने की हुई थी । वह उस समय डेपुटेशन से मुलाकात करने के लिए तैयार न था । फिर भी उसने उन्हें मुलाक़ात के लिए बुला लिया । बाद में कमाण्डर लैम्बर्ट ने डलहौज़ी को यह शिकायत लिख कर भेजी कि—"डेपुटेशन के लोगों को पूरा पाव घण्टा धूप में इन्तजार करना पड़ा !" बस, बर्मा के साथ युद्ध छेड़ने के लिए काफ़ी बहाना मिल गया. . . . !

बर्मी जहाज़ की गिरफ्तारी

कमाण्डर लैम्बर्ट ने रंगून के नये शासक से अब किसी तरह का जवाब तलब करने की जरूरत महसूस न की ; और न बर्मा दरबार को किसी तरह की कोई सूचना दी गई। लैम्बर्ट ने तुरन्त रंगून के सभी अंगरेज़ वाशिन्दों को सूचना दी कि आप लोग अपनी स्त्रियों और बच्चों समेत आज शाम तक नगर छोड़ कर अंगरेज़ी जहाजों पर आ जाएं। बर्मा के महाराजा का एक जहाज़ बन्दरगाह में कुछ दूर ऊपर खड़ा हुआ था। लैम्बर्ट ने उसी दिन शाम को इसी बर्मी जहाज़ को पकड़ लिया । उसी दिन लैम्बर्ट ने अंगरेज़ सरकार की ओर से ब्रर्मा सरकार के साथ युद्ध का ऐलान कर दिया और रंगून का मोहासरा शुरू कर दिया। बर्मी जहाज़ का पकड़ना ही युद्ध का श्रीगणेश था। कॉबडन लिखता है—

> **"रंगून के शासक का व्यवहार इसके बाद बहुत कम महत्व का विषय रह जाता है— राजनीतिज्ञ लोग, इतिहास लेखक और धर्म-अधर्म की विवेचना करने वालों के लिए प्रयत्न यह है कि बर्मी शासक का व्यवहार चाहे कुछ भी क्यों न रहा हो, जब तक हम यह जानते थे कि बर्मा के महाराजा का भाव हमारी ओर मित्रता का था, तब क्या हमारे लिए बर्मी कौम के साथ युद्ध प्रारम्भ कर देना न्यायोचित था ?"***

राजकर्मचारियों की प्रार्थना

रंगून के वाशिन्दे और राजकर्मचारी लैम्बर्ट के इस व्यवहार को देख कर चकित रह गए। राजकर्मचारियों ने बड़ी नम्रता के साथ और बार-बार लैम्बर्ट से प्रार्थना की कि आप बर्मा के सरकारी जहाज़ को छोड़ दें और बर्मा दरबार के साथ आपकी जो कुछ शिकायतें हैं, एक बार मित्र भाव से उनके निबटारे का हमें अवसर दें।

गोलाबारी

किन्तु कमाण्डर लैम्बर्ट ने एक न सुनी। 6 जनवरी को बर्मी जहाज़ पकड़ा गया। तीन दिन तक कमाण्डर लम्बर्ट के आदमियों ने उसे बन्दरगाह के अन्दर रखा। इन तीन दिनों के अन्दर भी बर्मी कर्मचारियों ने अपनी ओर से युद्ध की कोई कार्रवाई न की । 10 जनवरी को लैम्बर्ट ने इस जहाज़ को रंगून की बन्दरगाह से बाहर ले जाना चाहा।

---

* "The conduct of the Governor of Rangoon is now a subject of minor importance—the question for the statesman, the historian and the moralist is, were we justified, whatever his behaviour was, with the known friendly disposition of the king, in commencing war with the Burmese nation?"—*How Wars are Got up in India*, by Cobden, p. 55.

मजबूर होकर बर्मी कर्मचारियों ने लैम्बर्ट को सूचना दी कि यदि जहाज़ को बन्दरगाह से बाहर ले जाने की कोशिश की गई, तो उसकी रक्षा के लिए गोली चलाना हमारा कर्त्तव्य हो जाएगा। इस पर भी 10 जनवरी के साढ़े-नौ बजे सुबह अंगरेज़ी जहाज़ 'फ़ाक्स', बर्मी जहाज़ को जिसे 'यलो शिप' कहते थे, अपने साथ बांध कर बन्दरगाह से बाहर निकला। बन्दरगाह के बर्मी संरक्षकों को विवश होकर गोली चलानी पड़ी। जवाब में जहाज़ 'फ़ाक्स' से रंगून नगर के ऊपर गोले बरसाए गए। स्वयं अंगरेज़ों के सरकारी कागजों में दर्ज है कि इस गोलाबारी के कारण हजारों निरपराध बर्मियों की हत्या हुई। काबडेन लिखता है—

> **"आशा की जा सकती थी कि एक जंगी जहाज को ले जाकर और असंख्य बर्मियों की हत्या करके 910 पाउण्ड के दावे का काफ़ी हरजाना अंगरेज़ों को मिल चुका था। किन्तु युद्ध का ऐलान बराबर जारी रहा।"**

नयी मांगें

काबडेन ने दिखलाया है कि जो पत्र व्यवहार इस समय अंगरेज़ों और बर्मियों के दरमियान हुआ, उस सब में बर्मियों की ओर से न्याय, निष्कपटता और सुजनता, और अंगरेज़ों की ओर से इनके विपरीत गुण साफ़ दिखाई देते थे। तथापि गवर्नर-जनरल लार्ड डलहौज़ी ने इस सारे मामले की खबर पाते ही एक और ज़बरदस्त सेना बर्मा की ओर रवाना की और पिछली मांगों के अतिरिक्त इस बार दस लाख रुपये नक़ बतौर हरजाने के बर्मा दरबार से तलब किए। काबडेन ने उस पत्र को, जो इस सम डलहौज़ी ने बर्मा दरबार के नाम भेजा, "राजनीति, धर्म, और तर्क, तीनों के विरुद्ध"[*] बतलाया है।

बर्मा महाराजा का नम्र पत्र

ठीक उस समय जिस समय कि लार्ड डलहौज़ी रंगून के लिए और अधिक से रवाना कर रहा था, बर्मा के बौद्ध महाराजा का एक अत्यन्त शान्त, नम्र और मित्र सूचक पत्र, लम्बर्ट के 7 जनवरी के पत्र के उत्तर में, लार्ड डलहौज़ी के नाम रंगून कलकत्ता जा रहा था। किन्तु डलहौज़ी को इस पत्र का इन्तजार कहां हो सकता था 11 अप्रैल, सन् 1852 को ईस्टर रविवार के दिन अंगरेज़ी जंगी जहाजों ने रंगून के डाला के तटों के बराबर गोलाबारी शुरू कर दी।

विध्वंस और क़त्लेआम

दूसरे बर्मा युद्ध की अनेक लड़ाईयों के विस्तार में पड़ने की आवश्यकता नहीं है बर्मी जाति इस युद्ध के लिए बिलकुल तैयार न थी। काबडेन लिखता है—

> **"उसे युद्ध कहा ही नहीं जा सकता। युद्ध की अपेक्षा उसे विध्वंस, क़त्लेआ या एक बला कहना अधिक उचित होगा।"[†]**

---

[*] "An unstatesmanlike, immoral, and illogical production."—Ibid, p

[†] "A war it can hardly be called. A rout, a massacre, or a vi would be a more appropriate term."—*Ibid*, p. 98.

युद्ध के दिनों में निरपराध वर्मी प्रजा का खूब संहार किया गया और खूब लूट-खसोट हुई। अन्त में वर्मी साम्राज्य का सबसे अधिक उपजाऊ और विशाल प्रान्त 'पेगू' जिसे प्राचीन पुस्तकों में 'स्वर्णभूमि' कहा गया है, जिसमें पृथ्वी के ऊपर धन-ही-धन और पृथ्वी के नीचे अपार सोने की खानें छिपी हुई थीं, बर्मा के बौद्ध महाराजा से छीन कर कम्पनी के भारतीय साम्राज्य में मिला लिया गया। यही लार्ड डलहौज़ी और उसके साथियों की हार्दिक कामना थी। दिसम्बर सन् 1852 में यह प्रान्त अंगरेज़ों के शासन में आया। 50 साल के अंगरेज़ी शासन ने उसे संसार के सबसे अधिक धनसम्पन्न प्रदेशों की श्रेणी से गिरा कर सबसे अधिक निर्धन देशों की श्रेणी में पहुंचा दिया।

कावडेन के विचार

कावडेन ने इस युद्ध के कारणों, उसकी प्रगति और उसके परिणाम के बारे में बड़े मार्मिक शब्दों में लिखा है—

"ये युद्ध हिन्दोस्तानियों के खर्च से चलाए जाते हैं। × × × बंगाल के अर्धनग्न किसानों को कप्तान शैपर्ड और कप्तान लुई के दावों की वसूली से क्या विशेष लाभ था, कि इन दावों के कारण जो युद्ध खड़ा हो गया, उसका सब खर्च इन किसानों के सर पर डाला गया।

"शुरू में लार्ड डलहौजी ने बर्मियों से हजार पाउण्ड से कम का दावा किया; इसके बाद रंगून के शासक ने हमारे अफ़सरों की जो हतक की, उसके लिए गवर्नर से माफी मांगने के लिए कहा गया; इसके बाद लार्ड डलहौजी ने अपनी मांगों को बढ़ा कर एक लाख पाउण्ड नक़द कर दिया और बर्मा के महाराजा के वजीरों से माफ़ी मांगने के लिए कहा; फिर बर्मा के राज पर हमला कर दिया गया; इस पर नकदी और माफ़ियों की सब मांगें एकाएक बन्द हो गईं और लार्ड डलहौजी पिछली तमाम बातों के 'बदले' और 'हरजाने' में पेगू का प्रान्त ले लेने के लिए राजी हो गया।"*

बर्मा युद्ध पर अमरीकन सेनेटर

दिसम्बर सन् 1852 में संयुक्त राज्य अमेरिका की सेनेट में वक्तृता देते हुए सेनेट के एक सदस्य, जनरल कैस ने इसी युद्ध के बारे में कहा था —

"हिन्दोस्तान की एक और देशी रियासत एक जबरदस्त व्यापारी मण्डली की बढ़ौती का शिकार हो गई। और उसके अस्सी लाख अथवा एक करोड़ लोग

---

* "These wars are carried on at the expense of the people of India...... What exclusive interest had the half-naked peasant of Bengal in the settlement of the claims of Captains Shepperd and Lews, that he should alone be made to bear the expense of the war which grew out of them?

"Lord Dalhousie begins with a claim on the Burmese for less than a thousand pounds; which is followed by the additional demand of an apology from the Governor of Rangoon for the insult offered to our officers; next his terms are raised to one hundred thousand pounds, and an apology from the king's ministers then follows the invasion of the Burmese territory; when, suddenly, all demands for pecuniary compensation and apologies cease, and His Lordship is willing to accept the cession of Pegu as a 'compensation' and reparation' for the past."—Ibid. by Cobden, pp. 101-104.

अंगरेज़ों की असंख्य भारतीय प्रजा में शामिल कर लिए गए। और आप क्या समझते हैं कि इस युद्ध का क्या कारण रहा होगा, जिसके परिणामस्वरूप अंगरेज़ अभी हाल में ही बर्मा के राज को हड़प गए ? × × × यदि हमारे पास अत्यन्त अकाट्य गवाहियां न होतीं, तो हम इस सच्ची लूट के क़िस्से पर विश्वास करने से इनकार कर देते। किन्तु यह एक निर्विवाद तथ्य है कि इंगलिस्तान का बर्मा के साथ युद्ध करने और बर्मा के राजनैतिक अस्तित्व को मिटाने का कारण यह था कि बर्मा ने 910 पाउण्ड की एक विवादास्पद रक़म अदा नहीं की थी। × × × दूसरी क़ौमों को नम्रता और निःस्वार्थता का उपदेश देना इस जाति को खूब शोभा देता है !"*

पेगू प्रान्त पर कम्पनी का क़ब्जा

लार्ड डलहौज़ी के इस युद्ध का वृत्तान्त हमने काबडेन की पुस्तक से लिया है। काबडेन ने अपनी पुस्तक की भूमिका में लिखा है कि उसने तमाम हाल ब्रिटिश पार्लियामेण्ट के सरकारी -काग़जों से लिया है। काबडेन ने यह भी लिखा है—"मुझे सन्देह है कि दूसरे बर्मा युद्ध के सरकारी काग़ज़ों में काटछांट की गई है।" निस्सन्देह यदि इस युद्ध का सच्चा वृत्तान्त बर्मियों से सुना जाय, तो वह इससे भी अधिक भयंकर और अन्यायपूर्ण होगा। इतिहास लेखक लडलो लिखता है कि पेगू पर क़ब्जा करना अंगरेज़ों के लिए इतना सरल न था। अप्रैल सन् 1855 तक बर्मियों और अंगरेज़ों में बराबर लड़ाई झगड़े होते रहे। अन्त में बर्मा की राजधानी आवा में किसी तरह (?) एक क्रान्ति हुई एक दूसरा महाराजा बर्मा की गद्दी पर बैठा और पेगू का प्रान्त अंगरेज़ कम्पनी को हज़म हो गया।

---

* "Another of the native Powers of Hindostan has fallen before the march of a great commercial corporation and its 8,000,000 or 10,000,000 of people have gone to swell the immense congregation of British subjects in India. And what do you think was the cause of the war which has just ended in the swallowing up of the Kingdom of Burmah ?......Had we not the most irrefragable evidence we might well refuse credence to this story of real rapacity. But the fact is indisputable that England went to war with Burmah, and annihilated its political existence, for the non-payment of the disputed demand of £s. 910......Well does it become such a people to preach homilies to other nations upon disinterestedness and moderation."—Speech by General Case in the Senate of the United States, December, 1852.

ततालिसवां अध्याय

डलहौज़ी की भू-पिपासा

"लैंप्स" की नीति

दूसरे सिख युद्ध और दूसरे वर्मा युद्ध के अतिरिक्त और कोई युद्ध लार्ड डलहौज़ी के शासन काल में नहीं लड़ा गया ; फिर भी बिना युद्ध के डलहौजी ने आठ और हिन्दोस्तानी राज्यों के अस्तित्व का अन्त कर दिया और एक नये विशाल राज का अंग-भंग कर डाला। जिस नीति के अनुसार इनमें से सात राज्यों अर्थात् सतारा, नागपुर, झांसी, सम्वलपुर, जेतपुर, तंजौर और कर्नाटक को अंगरेज़ी राज में मिलाया गया, उसे अंगरेज़ी में "लैप्स" कहते हैं। "लैप्स" का अर्थ यह था कि जिन देशी नरेशों ने कम्पनी के साथ मित्रता की सन्धि कर रखी थी अथवा जिनके पूर्वजों की सहायता से कम्पनी ने भारत में अपना राज क़ायम किया था, उनमें से किसी के मर जाने पर, यदि उसके कोई पुत्र न हो तो, उसकी समस्त रियासत पर अंगरेज़ कम्पनी का हक़ हो जाता था और कम्पनी तुरन्त उस रियासत पर क़ब्जा कर लेती थी।

पुत्र न होने की सूरत में अपने किसी नज़दीकी रिश्तेदार को गोद लेने का हक़ हर भारतवासी को धर्म और रिवाज़, दोनों के अनुसार सदा से रहा है। पति के पुत्रहीन मरने पर उसकी विधवा को गोद ले लेने का हक़ होता है। यह हक़ और गोद लेने की प्रथा अत्यन्त प्राचीन समय से भारत में चली आती है। किन्तु पूर्वोक्त "लैप्स" की नीति के अनुसार किसी भी भारतीय नरेश को, जिसने दुर्भाग्यवश एक बार अंगरेज़ों के साथ मित्रता कर ली हो, या उसकी विधवा महारानी को, गोद लेने का कोई हक़ न था। गोद लिए हुए पुत्र को गद्दी का अधिकारी न माना जाता था, और न ही ऐसी सूरत में किसी भाई, भतीजे, चाचा, पुत्री आदि को गद्दी का हक़दार माना जाता था। इस विचित्र नीति पर अमल करके लार्ड डलहौज़ी ने इन रियासतों के साथ कम्पनी की पहली सब सन्धियों और अहदनामों को उठा कर ताक़ पर रख दिया।

यह नीति वास्तव में सन् 1834 से प्रारम्भ हुई। उस साल कम्पनी के डाइरेक्टरों ने भारत की अंगरेज सरकार को लिखा —

> **"जब कभी किसी गोद लेने की क्रिया को मंजूर करना या न करना आपके हाथों में हो, आपको बहुत ही क़म मंजूरी देनी चाहिए, आम तौर पर नहीं, और जब कभी आप मंजूरी दें तो वह आपका विशेष अनुग्रह समझा जाना चाहिए।"***

इसी नीति के अनुसार लार्ड डलहौज़ी से पहले कोलाबा, माण्डवी और अम्बाला की रियासतों पर कब्जा किया जा चुका था। लार्ड डलहौज़ी ने और अधिक जोरों के

---

* "Whenever it is optional with you to give or to withhold your consent to options, the indulgence should be the exception and not the rule, and should never be granted but as a special mark of approbation."—Court of Directors of the East India Company, 1834.

साथ इस नीति पर अमल किया। निस्सन्देह यदि लार्ड डलहौज़ी के बाद सन् 1857 का विप्लव न हुआ होता तो बीस साल के अन्दर भारत में शायद एक भी हिन्दू या मुसलमान देशी रियासत न बची होती।

सतारा के राजा से वादा

सब से पहला भारतीय राज, जिसे इस नीति के अनुसार लार्ड डलहौज़ी ने ज किया, सतारा का राज था। सन् 1818 में पेशवा बाजीराव की सत्ता का नाश करने के लिए जो ऐलान कम्पनी ने प्रकाशित किया था, उसमें मराठा मण्डल के और सब नरेशों और जागीरदारों से यह वादा किया गया था कि आपके और आपके उत्तराधिकारियों के अधिकारों में कभी किसी तरह का हस्तक्षेप न किया जाएगा। सतारा के राजा शिवाजी के वंशज थे। उस समय पेशवा के विरुद्ध सतारा के राजा के नाम का उपयोग करने के लिए सतारा के राजा से यह साफ़ वादा किया गया कि पेशवा की सत्ता का अन्त कर मराठा साम्राज्य का आधिपत्य फिर से आपको दान कर दिया जाएगा और सतारा को ही समस्त मराठा साम्राज्य की राजधानी बना दिया जाएगा।*

अंगरेज़ों द्वारा वचन भंग

इस ऐलान और सतारा के राजा की मदद से ही अंगरेज़ों ने पेशवा बाजीराव का नाश किया। बाद में सतारा के राजा के साथ की गई प्रतिज्ञाओं और उस ऐलान के वादों को तोड़ दिया गया। राबर्ट नाइट नामक एक अंगरेज़ लिखता है—

> **"ऐलान के वादों और सतारा के राजा की पुनःस्थापना, इन दोनों ने मिल कर पेशवा का नाश कर दिया; और अब हमारा जानबूझ कर उन वादों से पीछे हटना, जो हमने उस समय किए थे, एक ऐसा काम है, जिसे कोई भी ईमानदार आदमी निन्दनीय ठहराए बिना नहीं रह सकता, चाहे इस वचन भंग के लि कैसी भी ऊपरी दलीलें क्यों न दी जाएं।"†**

राजा प्रतापसिंह की योग्यता

राजा का नाम प्रतापसिंह था। प्रतापसिंह उस समय नाबालिग था। युद्ध के बा प्रतापसिंह को महाराजा स्वीकार किया गया और कप्तान ग्राण्ट डफ़ को प्रतापसिंह के बालिग होने तक राजकार्य चलाने के लिए रेज़िडेण्ट नियुक्त करके सतारा भेज दि गया। बालिग होने पर प्रतापसिंह बुद्धिमान और योग्य शासक निकला। अपनी इ योग्यता और बुद्धिमता के कारण ही वह अपने अंगरेज़ मित्रों की नजरों में और अधि खटकने लगा। बम्बई के गवर्नर सर राबर्ट ग्राण्ट ने फ़ैसला किया कि प्रतापसिंह को

---

* *The Bakhar or Historical Sketch*, by Balwant Rao Chitnavis, trans into English, by Dr. Milne.

† "The assurances of the proclamation, and the reinstatement of the R of Satara, ruined the Peshwa; and our deliberate withdrawal now from t pledges then given, merits the reprobation of every conscientious man, h ever spacious the arguments upon which the withdrawal has been recomm ed."—*The Inam Commission Unmasked*, by Robert Knight, pp. 45, 46.

कुचल दिया जाय। फ़ौरन एक षड्यन्त्र रचा गया। निरपराध प्रतापसिंह को क़ैद करके बनारस भेज दिया गया और उसके भाई को उसकी जगह सतारा के तख्त पर बैठा दिया गया।

प्रतापसिंह की मृत्यु पर हाबहाउस

सन् 1848 के क़रीब दोनों भाईयों की मृत्यु हो गई। दोनों में से किसी के भी आत्मज पुत्र न था किन्तु दोनों के दत्तक पुत्र मौजूद थे। 24 दिसम्बर सन् 1847 को राजा प्रतापसिंह की मृत्यु पर आलोचना करते हुए इंगलिस्तान के भारत मन्त्री, हाबहाउस ने लार्ड डलहौजी को एक पत्र में लिखा—

> **"सतारा के पदच्युत राजा की मृत्यु निस्सन्देह बड़े ही अच्छे मौक़े पर हुई है। मैंने सुना है कि वर्तमान राजा का स्वास्थ्य भी बहुत खराब है; और यह किसी तरह असम्भव नहीं है कि हमें शीघ्र ही उसके राज के भाग्य का फैसला करना पड़े। मेरी यह निश्चित राय है कि वर्तमान राजा के पुत्रविहीन मरने पर दत्तक पुत्र को स्वीकार न किया जाय और इस छोटे-से राज को ब्रिटिश साम्राज्य में मिला लिया जाय। यदि यह प्रश्न मेरे मंत्री रहते हुए तय हो गया, तो मैं इस काम को पूरा करने में कोई कसर उठा न रखूंगा।"***

सतारा का अपहरण

इसी आदेश के अनुसार लार्ड डलहौजी ने सतारा के राजा के मरते ही तमाम पिछली सन्धियों का उल्लंघन करके, राजा के पुत्र न होने का बहाना लेकर और गोद लेने की प्राचीन प्रथा को नाजायज कह कर, जबरदस्ती सतारा के राज पर कम्पनी का क़ब्जा जमा लिया।

सन् 1857 के सत्तरह साल बाद सन् 1874 में सतारा की विधवा रानी ने इस अन्याय के विरुद्ध महारानी विक्टोरिया के नाम एक प्रार्थनापत्र भेजा किन्तु उसका नतीजा क्या हो सकता था!

नागपुर का अन्तिम राजा

नागपुर के अन्तिम राजा, राघोजी भोंसले तृतीय की मृत्यु 11 दिसम्बर, सन् 1853 को हुई। इतिहास से पता चलता है कि राघोजी समझदार और नेक नरेश था। उसका शासन प्रवन्ध अत्यन्त सराहनीय था। किन्तु लार्ड डलहौजी ने राजा की मृत्यु के बाद ही उसके चरित्र पर अनेक झूठे और लज्जाजनक इलजाम लगाने शुरू कर दिए।

---

* "The death of the Ex-Raja of Satara certainly comes at a very opportune moment. The reigning Raja is, I hear, in very bad health and it is not at all impossible we may soon have to decide upon the fate of his territory. I have a very strong opinion that on the death of the present prince without a son, no adoption should be permitted, and this petty principality should be merged in the British Empire; and if the question is decided in my "day of sextonship", I shall leave no stone unturned to bring about that result."—Letter from Hobhouse to Lord Dalhousie, 24th December, 1847.

राजा का दत्तक पुत्र

राघोजी के कोई पुत्र न था। विधवा महारानी ने विधिवत् यशवन्तराव नामक अपने एक नजदीकी रिश्तेदार को गोद ले लिया। यशवन्तराव ने ही पुत्र की तरह परलोकवासी राजा का श्राद्ध किया।

नागपुर का अपहरण

लार्ड डलहौज़ी नें सन् 1826 की सन्धि की अवहेलना करते हुए 28 जनवरी सन् 1854 को यह ऐलान कर दिया कि नागपुर के तख्त का कोई हक़दार न होने के कारण नागपुर का सारा राज अंगरेज़ कम्पनी के कब्जे में आ गया।

अंगरेज शासकों के असूलों में परिवर्तन

मेजर ईवन्स बेल ने इस अन्याय को बयान करते हुए लिखा है कि केवल 10 साल पहले अर्थात् सन् 1844 में नागपुर के रेजिडेण्ट के एक पत्र के उत्तर में गवर्नर जनरल ने यह साफ़ स्वीकार किया था कि पुत्र न होने की सूरत में राजा को और राजा की मृत्यु हो जाने पर उसके कुटुम्बियों को गोद लेने का पूरा अधिकार है। किन्तु केवल दस साल के अन्दर अंगरेज़ शासकों के असूल बदल गए। राघोजी के कुटुम्बियों और विधवा रानियों से किसी तरह की राय नहीं ली गई और न उनसे कोई पूछताछ की गई। उन्हें यह भी नहीं बतलाया गया कि किन कारणों से अंगरेज़ सरकार ने उनके और उनके कुल के पैतृक अधिकारों का क्षण भर के अन्दर अन्त कर दिया। उन्हें केवल यह सूचना दे दी गई कि तुम्हारा राज अब अंगरेज़ी साम्राज्य में मिला लिया गया।

28 जनवरी सन् 1854 के ऐलान में लार्ड डलहौज़ी ने यह निर्लज्ज झूठ तक लिखा दिया "रानियां दत्तक यशवन्तराव को गद्दी देना पसन्द नहीं करतीं और यशवन्तराव को गद्दी न देना अंगरेज़ सरकार का रानियों के ऊपर अहसान करना है।"

इंगलिस्तान में डलहौजी की प्रशंसा

गवर्नर जनरल की कौन्सिल का एक सदस्य जनरल लो, किसी कारण इस अत्याचार के विरुद्ध था। उसने भोंसले कुल की ओर से डलहौज़ी के इस अन्याय को बड़े जोरदार शब्दों में बयान किया है। फिर भी, इंगलिस्तान के उदार से उदार नीतिज्ञों ने इस काम के लिए लार्ड डलहौज़ी की खूब प्रशंसा की।

नागपुर राज का एक भाग इससे पहले ही अंगरेज़ी राज में मिला लिया गया था। बाक़ी भाग अब कम्पनी के भारतीय राज में शामिल कर लिया गया।

नागपुर में महलों की लूट

किन्तु लार्ड डलहौज़ी और उसके अंगरेज़ साथियों की धनलोलुपता यहीं पर समाप्त नहीं हुई। इतिहास लेखक सर जान के लिखता है कि नागपुर के राजमहल का सारा असबाब यहां तक कि घोड़े, हाथी, ऊंट, बैल, गाय इत्यादि और रानियों के तमाम जेवर और जवाहरात, घर का सामान, बर्तन और पहनने के कपड़े तक जबरदस्ती बाहर निकाल

कर नीलाम कर दिए गए ! सर जान के लिखता है कि उस दिन सीतावल्डी में शाही हाथी, घोड़े और सवारी के बैल मास के दामों बचे गए ! अस्सी साल की बूढ़ी राजमाता ही महारानी बंकाबाई इस अपमान को देखकर इतनी दुखी हुई कि एक बार उसने कह दिया कि यदि महल का सामान बाहर निकाला गया, तो मैं महल में आग लगा दूंगी। फिर भी, सामान बाहर निकाल लिया गया। महल के भीतर का फर्श तक खोद डाला गया। रानियों के जेवर जवाहरात और सोने चांदी के जड़ाऊ बरतन और दूसरा क़ीमती सामान कलकत्ते ले जाकर नीलाम किया गया। नागपुर में करीब 600 हाथी, घोड़े, ऊंट और बैल 13,000 रुपये में नीलाम हुए। यह नीलाम अधिकतर 4 सितम्बर को हुआ। कलकत्ते की "हैमिल्टन एण्ड कम्पनी" नामक एक अंगरेज़ कम्पनी को इस नीलाम का ठेका दिया गया। एक-एक जोड़ी बैलों की और शाही घोड़ों की पांच-पांच रुपये में बेची गई। हाथी सौ रुपये में और करोड़ों के जवाहरात लाखों और हजारों में नीलाम कर दिए गए।

पाप का प्रायश्चित

नागपुर का राजकुल छत्रपति शिवाजी के वंश का था। इसी कुल ने उस समय जब कि नाना फड़नवीस और हैदरअली जैसे देशभक्त विदेशियों से भारत को स्वाधीन रखने के विकट प्रयत्न कर रहे थे, विदेशियों का साथ देकर कम्पनी के भारतीय साम्राज्य के कोमल अंकुरों को नष्ट होने से बचाया था। इसी पाप ,के प्रायश्चित रूप इस कुल के एक नरेश को निर्वासित होकर अकेले देश-देश और जंगल-जंगल घूमना पड़ा और दूसरे कुटुम्बियों, रानियों और उत्तराधिकारी को इस तरह ज़िल्लत सहनी पड़ी।

नागपुर की रूई

एक इतिहास लेखक लिखता है कि नागपुर राज के अन्दर रूई अधिक और उत्तम पैदा होती थी। इंगलिस्तान की अपनी बढ़ती हुई कपड़े की कारीगरी के लिए रूई की आवश्यकता थी। इसीलिए नागपुर पर कब्जा करना उस समय आवश्यक था।

वही लेखक यह भी लिखता है कि नागपुर पर कब्जा जमाने से पहले राज के अनेक कर्मचारियों को अंगरेज़ों ने रिशवतें देकर अपनी ओर करने का प्रयत्न किया किन्तु "इसमें आसानी से सफलता न मिल सकी।"*

झांसी की रियासत

पेशवा सत्ता के दिनों में पेशवा का एक सूबेदार झांसी के राज पर शासन किया करता था। धीरे-धीरे सूबेदार का पद पैतृक हो गया किन्तु झांसी के राजा के ऊपर पेशवा का आधिपत्य बराबर बना रहा।

सन् 1817 में कम्पनी ने झांसी के राजा रामचन्द्रराव के साथ मित्रता की सन्धि की, जिसमें कम्पनी सरकार ने वादा किया कि झांसी का समस्त राज "सदा के लिए

---

* "......They were not easily seduced......"—*Calcutta Review* vol. 38, 1863, pp. 230-31.

राजा रामचन्द्रराव, उसके उत्तराधिकारियों और वंशजों के शासन में पैतृक रूप से दे दिया जाएगा ।"*

21 नवम्बर, सन् 1853 को झांसी के राजा गंगाधरराव का देहान्त हुआ। मृत्यु के समय गंगाधरराव की आयु बहुत थोड़ी थी। मृत्यु के पहले उसने विधिवत् दामोदरराव नामक एक बालक को गोद ले लिया। दामोदरराव गंगाधरराव के ही कुल का और गंगाधरराव का अत्यन्त नजदीकी रिश्तेदार था।

मेजर ईवन्स बेल लिखता है—

> **"××× गोद लेने का संस्कार बिलकुल ठीक ठीक हिन्दू शास्त्र की मर्यादा के अनुसार किया गया, अंगरेज अफसर संस्कार में मौजूद थे और राजा ने मरने से पहले बाजाब्ता पत्र द्वारा अंगरेज सरकार को उसकी सूचना दे दी थी।"†**

झांसी का अपहरण

फिर भी, लार्ड डलहौजी ने 27 फरवरी, सन् 1854 को फ़ैसला किया कि दत्तक पुत्र को राज का कोई अधिकार नहीं है। 13 मार्च, सन् 1854 को एक ऐलान द्वारा झांसी की रियासत ज़बरदस्ती कम्पनी के राज में मिला ली गई। इतिहास लेखक मेजर ईवन्स बेल ने अपनी पुस्तक 'द एम्पायर इन इण्डिया' में लार्ड डलहौज़ी के इस अन्याय को स्पष्ट शब्दों में और विस्तार के साथ बयान किया है।

झांसी की प्रजा और राजकुल के साथ कम्पनी के इस घोर अन्याय का ही फल था कि सन् 1857–58 के विप्लव में झांसी की प्रसिद्ध रानी लक्ष्मीबाई ने शस्त्र धारण कर अद्भुत वीरता के साथ अंगरेज़ी सेना का मुकाबला किया। किन्तु रानी लक्ष्मीबाई के चरित्र और कारनामों का सम्बन्ध एक अगले अध्याय से है।

सम्बलपुर का अपहरण

सम्बलपुर का जिला, जो इस समय (1929) बिहार और उड़ीसा प्रान्त में है इससे पहले मध्य प्रान्त में था। सन् 1849 में लार्ड डलहौज़ी ने इसी 'लैप्स' के सिद्धान्त के अनुसार सम्बलपुर के स्वतन्त्र किन्तु निर्बल राज पर अपना कब्जा जमाया।

जेतपुर और तंजौर का अपहरण

जेतपुर का छोटा-सा राज बुन्देलखण्ड में था। सन् 1849 में इसी तरह जेतपुर को भी खत्म किया गया। तंजौर का रहा सहा इलाका सन् 1855 में इस प्रणाली के अनुसार कम्पनी के राज में मिला लिया गया। तंजौर की विधवा महारानी कामाक्षीबाई ने मद्रास गवरमेण्ट के विरुद्ध मद्रास के सुप्रीम कोर्ट में इस बात की नालिश की कि मेरे पति की वैयक्तिक सम्पत्ति को भी मद्रास की कम्पनी गवर्नमेण्ट ने जब्त कर लिया है, वह मुझे दिलवा दी जाए। मद्रास के सुप्रीम कोर्ट ने फैसला रानी के हक में किया। मद्रास गवर्नमेण्ट ने इस फैसले के विरुद्ध इंगलिस्तान की प्रिवी कौन्सिल के सामने अपील

---

* **Aitchison's *Treaties*, etc., revised edition.**

† ***Empire in India*, by Major Evans Bell, pp. 212-13.**

की। प्रिवी कौन्सिल के विद्वान जजों ने फैसला दिया कि यद्यपि अंगरेज़ सरकार को तंजौर पर कब्जा करने का कोई कानूनी अधिकार हासिल न था और रानी के साथ जबरदस्त अन्याय किया गया है, फिर भी यह मामला राजनैतिक है और अदालत को इस में दखल देने का कोई हक नहीं है; इसलिए मद्रास सुप्रीम कोर्ट का फैसला रद्द किया जाता है और रानी का दावा खारिज!

कर्नाटक का अपहरण

मद्रास का नगर और उसके आसपास का तमाम इलाका किसी समय कर्नाटक की मुसलमान सल्तनत में शामिल था। कम्पनी ने सबसे पहले मद्रास और कड्डलूर कर्नाटक के नवाब से प्राप्त किए। उसके बाद नवाब मोहम्मदअली बालाजाह ने पूनामाली का तालुका और अन्य कई तालुके अंगरेज कम्पनी को प्रदान कर दिए। सन् 1763 में नवाब ने चिंगलपुर की जागीर, जिसकी आमदनी उस समय 18 लाख रुपये सालाना थी अपने मित्र अंगरेज़ों को दे दी। इन तमाम इलाकों के लिए कम्पनी के नाम नवाब के दरबार से बाज़ाब्ता सनदें जारी की गईं। इसके बहुत समय बाद तक अंगरेज कम्पनी कर्नाटक के नवाब को इन इलाकों के लिए खिराज देती थी और वहां पर रहने वाले अंगरेज अपने को नवाब की प्रजा कहते थे। नवाब मोहम्मदअली दूसरे भारतीय नरेशों के विरुद्ध अंगरेजों का सदा मददगार रहा। फिर भी मोहम्मदअली के बेटे, उमदतुलउमरा की मृत्यु पर कर्नाटक का बहुत सा इलाका और नवाब के अनेक अधिकार ज़बरदस्ती कम्पनी ने अपने हाथों में ले लिए। किन्तु सन् 1801 की सन्धि में भी कम्पनी और नवाब कर्नाटक का यह नाममात्र का सम्बन्ध कायम रखा गया। सन् 1855 के अक्तूबर मास में नवाब मोहम्मद गौस का देहान्त हुआ और उसके उत्तराधिकारी अजीम जाह को अंगरेज़ों ने नवाब स्वीकार करने से ही इनकार कर दिया। मद्रास के गवनर लार्ड हैरिस ने लार्ड डलहौज़ी को लिखा—"कर्नाटक के नवाब की सत्ता केवल एक दिखावटी तमाशा है, किन्तु किसी भी समय वह हमारे विरुद्ध विद्रोह और आन्दोलन का एक केन्द्र बन सकती है। इसलिए इस तमाशे को जारी रखना अब बुद्धिमत्ता नहीं है।"

डलहौजी ने हैरिस की राय को पसन्द किया। कर्नाटक का सारा रहा-सहा इलाका अंगरेजी राज में मिला लिया गया और भारत के एक और प्राचीन राजकुल का अन्त हुआ।

इतिहास लेखक लडलो लिखता है—

> **"जिस समय से गवर्नर जनरल ने अपनी इस अपहरण नीति का ऐलान किया, उस समय से ही भारतीय नरेशों में पुत्रविहिन मौतें इतनी अधिक होने लगीं कि जिसे देखकर मनुष्य को आश्चर्य हुए बिना नहीं रह सकता।"** *

---

* "One cannot fail to be struck with the frequency of death without heirs among Indian sovereigns from the moment when the policy of annexation is proclaimed by a Governor-General,"—Ludlow's *British India,* vol. ii, p. 190.

उस समय की भारतीय रियासतों के अन्दर किसी भारतवासी के हाथ का लिखा हुआ कम्पनी के कारनामों का कोई सच्चा इतिहास नहीं मिलता, इसलिए इतिहास लेखक लडलो के आश्चर्य को हल कर सकना अब असम्भव है।

मुसलिम रियासतें

हिन्दू, सिख, बौद्ध या मुसलमान, किसी भी धर्म के भारतीय नरेश डलहौजी के चंगुल से न बच सके। उसके भारत आगमन के समय दो विशाल मुसलमान राज भारत में मौजूद थे। उत्तर में अवध का राज और दक्खिन में निज़ाम की रियासत। इनमें से हर एक की वार्षिक आमदनी कई करोड़ रुपये थी। अवध हिन्दोस्तान के सबसे अधिक ज़रखेज़ हिस्सों में गिना जाता था और बरार में अनेक धातुओं की खाने थी।

राबर्ट नाइट ने सन् 1880 में लिखा कि सन् 1851 के करीब अंगरेज सरकार की प्रधान नीति यह थी कि जब भी मौका मिल सके, देशी रियासतों की तादाद को कम किया जाय, तथा हैदराबाद और अवध के नाश में यदि देर हुई, तो केवल पंजाब और बर्मा के युद्धों के कारण हुई।*

सब्सीडियरी सेना देने से इनकार

सन् 1800 की सन्धि के अनुसार हैदराबाद के निजाम को सब्सीडियरी सेना के खर्च के लिए सालाना बहुत बड़ी रकम कम्पनी को देनी होती थी। बरार का प्रान्त दूसरे मराठा युद्ध के बाद नागपुर के राजा से छीन कर निज़ाम को दे दिया गया था। उस समय से बराबर बरार के अन्दर निज़ाम के विरुद्ध विद्रोह होते रहते थे। कहा जाता है कि बरार के हिन्दू देशमुख अक्सर निज़ाम के विरुद्ध विद्रोह करते रहते थे। इतिहास लेखक लायल लिखता है कि बरार के शहरों में आए दिन हिन्दुओं और मुसलमानों में झगड़े होते रहते थे, किन्तु ये झगड़े निज़ाम के बाकी राज में कहीं सुनने में न आते थे। इन उपद्रवों को शान्त करने के लिए गवर्नर-जनरल ने निज़ाम को सब्सीडियरी सेना देने से इनकार कर दिया; यद्यपि यह सेना वास्तव में निज़ाम की ही सेना थी, निज़ाम के ही खर्च से रखी गई थी और जिस सन्धि द्वारा यह सेना निज़ाम के इलाके में रखी गई थी, उसमें यह बात दर्ज था कि इस सेना का उद्देश्य निज़ाम के इलाके में शान्ति कायम रखना और निज़ाम को हर तरह की सहायता देना है। बरार के उपद्रवों को शान्त करने के लिए निज़ाम पर जोर दिया गया कि वह बरार के अन्दर नयी सेना रखे। यह नयी सेना भी कम्पनी की ही थी, इसके भी अफ़सर अंगरेज़ थे और वह अंगरेज़ों के ही नियंत्रण में थी, इसका खर्च भी निज़ाम पर डाला गया।

निज़ाम की मुसीबतें

नतीजा यह हुआ कि निज़ाम का खर्च और मुसीबत, दोनों बढ़ती चली गईं। सब्सीडियरी सेना का खर्च अदा करने के लिए निज़ाम को धन की कमी होने लगी। इस पर हैदराबाद के अन्दर कई नयी अंगरेज़ कम्पनियां खोली गईं, जो निज़ाम को कर्ज देने के लिए तुरन्त राज़ी हो गईं। मजबूरन इन अंगरेज़ बैंकिंग कम्पनियों से निज़ाम को बार-बार कर्ज

---

*The *Statesman*, July 1, 1880, p. 162.

लेना पड़ा और दूसरी मुसीवत के साथ-साथ निज़ाम का कर्ज भी बढ़ता चला गया। इन विदेशी साहूकार कम्पनियों की पूंजी भी अधिकतर हैदराबाद से ही कमाई हुई थी।

बरार का अपहरण

6 जून, सन् 1851 को लार्ड डलहौज़ी ने निज़ाम के नाम एक अत्यन्त धृष्टतापूर्ण पत्र लिखा। निज़ाम के राज में थोड़े-से ऐसे क़िले रह गए थे, जो दरबार के वफादार अरब सिपाहियों के हाथों में थे। ये वीर अरब कहीं भी अंगरेज़ों के काबू में नहीं आए थे। लार्ड डलहौज़ी ने निज़ाम को धमकी दी कि फ़ौरन इन अरबों को बरख़ास्त कर दिया जाय। और यद्यपि निज़ाम के ज़िम्मे कम्पनी का एक पैसा भी कर्ज़ न था, निज़ाम के ज़िम्मे जो कुछ कर्ज़े थे, वे व्यक्तिगत कम्पनियों के क़र्ज़े थे, फिर भी "अपने क़र्जों की अदायगी में" निज़ाम से उसका एक तिहाई राज अर्थात् बरार का उपजाऊ प्रान्त फौरन कुछ बरसों के लिए पट्टे पर मांगा गया। निज़ाम ने बहुतेरे एतराज किए किन्तु अंगरेज़ी फौज ने ज़बरदस्ती बरार पर कब्जा कर लिया। लार्ड डलहौजी ने संजीदगी के साथ यह भी ऐलान किया कि बरार बाद में निज़ाम को लौटा दिया जायगा। पर इसके क़रीब पचास साल बाद गवर्नर-जनरल लार्ड कर्जन ने बरार के पट्टे को उस समय की अंगरेज़ सरकार के नाम स्थायी कर लिया। निज़ाम के पास मान लेने के सिवा और कोई चारा न था।

भारत भर में सबसे अच्छी रूई बरार के ही प्रान्त में पैदा होती है।

डलहौज़ी की मां का नवाब अवध से परिचय

सबसे अन्तिम भारतीय राज, जिसे लार्ड डलहौज़ी ने अंगरेजी राज में शामिल किया, अवध का राज था। लार्ड डलहौजी के इस काम को बयान करने से पहले कुछ साल पहले की एक और घटना को बयान करना अप्रासंगिक न होगा। डलहौज़ी का बाप एक समय कम्पनी की भारतीय सेना का कमाण्डर-इन-चीफ था। अपने समय के और अंगरेज़ अफ़सरों के समान वह एक बार लखनऊ के नवाब से भेंट करने गया। कमाण्डर-इन-चीफ ने अवध के नवाब से अपनी अर्धांगिनी का परिचय कराया। सम्भवतः कमाण्डर-इन-चीफ का उद्देश्य अपनी पत्नी को महल में भिजवा कर बेगमों से कुछ नज़रें कमाना था। पुरुषों से स्त्रियों का इस तरह परिचय कराने का रिवाज भारत में न था। अवध का नवाब अंगरेज़ कमाण्डर-इन-चीफ का मतलब न समझ सका। वह यह समझा कि कमाण्डर-इन-चीफ अपनी बीवी को नवाब के हाथ बेचना चाहता है। निस्सन्देह अवध के नवाब को इस तरह का सौदा रुचिकर न हो सकता था। थोड़ी देर के बाद नवाब ने अपने मुलाज़िमों से कहा—"काफी हो चुका! इस औरत को यहां से हटाओ"!*

अवध के नवाब वज़ीर

अंगरेजों और अवध का इतिहास पिछले कई अध्यायों में दिया जा चुका है। उसे यहां पर संक्षेप में दोहराना ठीक होगा। आरम्भ में अवध का राज विशाल मुग़ल साम्राज्य

---

* *The Life and Opinions of General Sir Charles James Napier G.C.B.*,—by Lieutenant-General Sir W. Napier, K.C.B., 2nd Edition 1857, vol. iv, p. 296.

का एक अंग था। अवध के नवाब दिल्ली सम्राट के पैतृक वजीर समझे जाते थे। धीरे-धीरे मुग़ल साम्राज्य की निर्बलता के अन्तिम दिनों में अवध नरेश बहुत दर्जे तक उस साम्राज्य से स्वतन्त्र होते चले गए।

कम्पनी और नवाब अवध का सम्बन्ध

कम्पनी के साथ अवध के नवाब का सम्बन्ध सन् 1764 में प्रारम्भ हुआ। आरम्भ में अवध के नवाब को अपनी सल्तनत की रक्षा के लिए सल्तनत के अन्दर कम्पनी की सेना रखने की सलाह दी गई। इस सेना के खर्च के लिए सोलह लाख रुपये सालाना नवाब से लिए जाने लगे। धीरे-धीरे इस सब्सीडियरी सेना की तादाद बढ़ने लगी। उसके खर्च की रक़म भी बढ़ती चली गई। यहां तक कि इस विशाल सेना के खर्च के लिए रुहेलखण्ड और दोआब का पूरा इलाका, जिसकी बचत उस समय दो करोड़ रुपये सालाना थी, नवाब से ले लिया गया।

1801 की सन्धि

सन् 1801 में अवध के नवाब और कम्पनी के बीच एक और नयी सन्धि हुई, जिसमें अंगरेजों ने वादा किया कि नवाब का बाकी सब राज पीढ़ी-दर-पीढ़ी नवाब के शासन में क़ायम रहेगा और अंगरेज़ उसमें कभी किसी तरह का दखल न दें। किन्तु इसी सन्धि की एक धारा यह भी थी कि—"अंगरेज़ सरकार नवाब वज़ीर के सारे इलाके को बाहर के आक्रमणों और भीतर की बग़ावतों से रक्षा करने का वादा करती है।" वास्तव में, यही धारा अवध की सारी भावी मुसीबतों की जड़ साबित हुई।

अवध के कर्ज़

इसके बाद समय-समय पर अंगरेज़ गवर्नर जनरलों ने अपने भारतीय युद्धों के लिए करोड़ों रुपए, कभी बतौर कर्ज़ और कभी बतौर सहायता के, अवध के नवाब से वसूल किए। बेशुमार अंगरेज़ शासकों और अफ़सरों की व्यक्तिगत आर्थिक कठिनाइयों को दूर करने के लिए भी अवध के खज़ाने ने समय-समय पर कामधेनु का काम दिया। वास्तव में, अवध और कर्नाटक, इन दो राज्यों से धन चूस-चूस कर ही अधिकतर कम्पनी के नवजात साम्राज्य ने भारत में अपने शरीर को हृष्ट-पुष्ट किया।

अंगरेज़ों का अनुचित हस्तक्षेप

आए दिन की इन नित्य नयी मांगों के कारण अवध के नवाब की आर्थिक कठिनाई बढ़ती चली गई। एक अंगरेज़ रेज़िडेण्ट लखनऊ के दरबार में रहने लगा। शासन के छोटे-से-छोटे मामलों में नित्य हस्तक्षेप होने लगे। कई छोटे-छोटे इलाकों का शासन नवाब से कह कर अंगरेज़ अफसरों को सौंप दिया गया। इन अंगरेज़ अफ़सरों ने स्थान-स्थान पर अपने ही कानून जारी कर दिए। इस अनुचित्त हस्तक्षेप के कारण प्रजा में दुख और दारिद्र्य बढ़ने लगा। नवाब ने प्रजा की दशा सुधारने के अनेक प्रयत्न किए। हर बार कम्पनी के प्रतिनिधियों ने इन प्रयत्नों को सफल होने से रोक लिया।

हस्तक्षेप के परिणाम

अंवध के शासन में कम्पनी के प्रतिनिधियों के इस अनुचित हस्तक्षेप और उसके परिणामों को बयान करते हुए सर हेनरी लारेन्स लिखता है—

"हमारे भारतीय इतिहास में अवध का अध्याय हमारे लिए एक कलंक है। उससे हमें यह भयंकर चेतावनी मिलती है कि जो राजनीतिज्ञ एक बार नेकी-बदी के सीधे नियम को छोड़ कर उसकी जगह क्षणिक उपयोगिता या अपने विचार के अनुसार 'राष्ट्रहित' की दृष्टी से काम करने लगता है, वह किस बुरी हद तक पहुंच सकता है। अवध के इतिहास के हर लेखक ने जो घटनाएं बयान की हैं उन सबसे यही सिद्ध होता है कि उस प्रान्त में अंगरेजों का दखल देना जिस दर्जे तक अंगरेजों के नाम पर कलंक था, उस दर्जे तक ही अवध दरबार और यहां की प्रजा के लिए हानिकर था। × × × हम जिधर भी नजर डालते हैं, हमें अपने हस्तक्षेप के हानिकर नतीजे साफ अक्षरों में लिखे हुए दिखाई देते हैं। × × × यदि कहीं पर कुशासन बनाए रखने के लिए कोई पक्की तरकीब की जा सकती ह, "तो वह यह है कि नरेश देशी हों, उसका वजीर देशी हो, दोनों की मदद के लिए विदेशी संगीनें हों और एक अंगरेज रेजिडेण्ट उन्हें पीछे से चलाने वाला हो।"*

अवध के असहाय नवाब

जब कि एक और अवध के शासन में इस तरह पद-पद पर हस्तक्षेप किया जा रहा था, दूसरी ओर अवध के नवाब को दिल्ली के दरबार से तोड़ने की पूरी कोशिशें जारी थीं। कम्पनी के प्रतिनिधि इस बात के लिए चिन्तित मालूम होते थे कि अवध के नरेश दिल्ली की ओर से सर्वथा स्वाधीन हों। यहां तक कि मार्क्विस आफ हेस्टिंग्स ने अवध के 'नवाब वजीर' को 'अवध के बादशाह' की उपाधि दी और इसके बाद नवाब के उत्तराधिकारियों को इसी उपाधि से पुकारा गया किन्तु ज्यों-ज्यों मुगल दरबार की ओर से अवध के नवाबों की स्वतन्त्रता बढ़ती गई, उतनी-उतनी ही अंगरेज कम्पनी की ओर से उनकी परतन्त्रता बढ़ती चली गई; यहां तक कि अवध के अदूरदर्शी भारतीय नरेश कम्पनी की मित्रता के चंगुल में पड़ कर थोड़े-ही दिनों में सर्वथा पंगुल हो गए।

अवध निवासियों में असन्तोष

नवाब पर बार-बार यह इलजाम लगाया जाने लगा कि तुम्हारा राज-प्रबन्ध ठीक नहीं, तुम्हारी प्रजा असन्तुष्ट है। वास्तव में, जो कुछ कुप्रबन्ध या असन्तोष उस समय अवध

---

* "Oude affords but a discreditable chapter in our Indian annals, and furnishes a fearful warning of the lengths to which a statesman may be carried, when once he substitutes expediency and his own view of public advantage, for the simple rule of right and wrong. The facts furnished by every writer on Oude affairs all testify to the same point, that British interference with that province has been as prejudicial to its Court and people as it has been disgraceful to the British name.........In short whrever we turn, we see written in distinct characters the blighting influences of our interference.........If ever there was a device for insuring mal-government it is that of a Native Ruler and Minister, both relying on foreign bayonets, and directed by a British Resident."—Sir Henry Lawrence, in the *Calcutta Review*, for January, 1845.

में मौजूद था, वह जान-बूझ कर अंगरेजों का ही पैदा किया हुआ था। लार्ड हेस्टिंग्स लिखता है—

"वास्तव में, इस तरह का शासन कायम करने का, जिससे प्रजा सुखी हो, एकमात्र सच्चा और कारगर उपाय यही हो सकता था कि अंगरेज रेजिडेण्ट को वापस बुला लिया जाता और नवाब को अपने राज के प्रबन्ध में आजाद छोड़ दिया जाता। इसलिए, उस इलाके में असन्तोष होने का सारा कसूर कम्पनी के सर पर है।"*

सन 1837 में नवाब के साथ एक नयी सन्धि की गई, जिससे नवाब को और भी अधिक जकड़ दिया गया।

नवाब वाजिदअली शाह का शासन

सन् 1847 में नवाब वाजिदअली शाह तख्त पर बैठा। वाजिदअली शाह नौजवान, उत्साही और समझदार था। उसने अवध के शासन में अनेक सुधार किए। वह समझ गया कि अवध की सल्तनत का असली रोग क्या है। जिस अभागे वाजिदअली शाह के ऊपर विषय लोलुपता के असंख्य बिलकुल झूठे और द्वेषपूर्ण इलजाम लगाए जा चुके हैं, उसने तख्त पर बैठते ही सबसे पहले अपनी रही-सही सेना को सुधारने और उसे फिर से मजबूत करने के जोरदार प्रयत्न किए। सेना अनुशासन के लिए उसने अनेक नए और कठोर नियम बनाए। उसने रोज अपने सामने फौज से कवायद करवानी शुरू की।

सेना का संगठन

लखनऊ दरबार की समस्त पलटनों को प्रतिदिन सूर्योदय से पहले कवायद के मैदान में जमा हो जाना पड़ता था। नवाब वाजिदअली शाह स्वयं सूर्योदय से पहले सेनापति की वरदी पहन कर, घोड़े पर सवार होकर, मैदान में पहुंच जाता था। यदि किसी पलटन को आने में देर होती थी, तो उससे दो हजार रुपये जुर्माना वसूल किया जाता था। इतिहास लेखक मेटकाफ लिखता है कि वाजिदअली शाह अपने नियमों का इतना पाबन्द था कि यदि कभी किसी कारणवश उसे देर होती थी, तो जुरमाने की इतनी ही रकम वह स्वयं अदा करता था।† किन्तु वाजिदअली शाह को प्रायः कभी भी देर न होती थी। दोपहर तक सारी पलटनें कवायद करती थीं और वाजिदअली शाह बराबर घोड़े पर सवार आखिर तक मैदान में मौजूद रहता था।

वाजिदअली शाह पर जबरदस्ती

कम्पनी के प्रतिनिधि को अवध के नवाब की ये हरकतें कहां पसन्द आ सकती थीं! अनेक तरह से जोर डाल कर नवाब को इस काम से रोका गया। यहां तक कि वाजिदअली शाह को विवश होकर कवायद के मैदान में जाना बन्द कर देना पड़ा।

---

* "As a matter of fact, the true and effectual way of introduction of an administration which would render the people happy would have been to call British Resident back and to give the Nabob a free hand in the administration of his dominion. Thus the whole guilt of unrest in his territory rests on the head of the Company."—Charles Ball's *History of the Indian Mutiny*, vol. i p. 152.

†*Native Narrative of the Mutiny*, by Metcalfe, pp. 32, 33.

अवध का मनोरम प्रदेश

थोड़े ही दिनों बाद डलहौजी का समय आया। अवध की हरी-भरी भूमि का प्रलोभन डलहौजी के लिए कोई साधारण प्रलोभन न था। अवध के विषय में पार्लियामेण्ट की रिपोर्टों में दर्ज है—

"इस सुन्दर भूमि में हर जगह जमीन की सतह से बीस फूट नीचे और कहीं-कहीं पर दस फुट नीचे विपुल जल भरा हुआ है। यह प्रदेश अत्यन्त मनोरम और वैभव-पूर्ण है। इसमें लम्बे और ऊंचे बांसों के जंगल-के-जंगल हैं, मैदानों में आम के वृक्षों की ठण्डी छाया है, खेत हरी-भरी पैदावार से लहलहाते हैं। स्वयं प्रकृति ने यहां की भूमि को अत्यन्त सुन्दर बनाया है, उस पर इमली के वृक्षों का घना साया, सन्तरे के बागों की सुगन्ध, अंजीर के दरख्तों का गहरा रंग और फूलों की रज की सुन्दर और व्यापक खुशबू यहां के दृश्य को और भी अधिक वैभव प्रदान करती रहती है।"

डलहौजी का प्रलोभन

निस्सन्देह अवध का धन-वैभव उस समय कल्पनातीत था। इसी कारण डलहौजी के लिए इस प्रलोभन को जीत सकना असम्भव हो गया। किन्तु अवध के अपहरण के लिए उतना भी बहाना न मिल सका, जितना नागपुर, झांसी या सतारा के लिए। अवध के नवाब ने सदा अंगरेजों की मदद की थी। सन्धि का वे सदा ईमानदारी के साथ पालन करते रहे थे। वाजिदअली शाह अपने पूर्वाधिकारी का आत्मज था, और वाजिदअली शाह के अनेक पुत्र लखनऊ के महल में मौजूद थे। फिर भी सन् 1856 में लार्ड डलहौजी ने अपने इस निश्चय का ऐलान कर दिया कि अवध की सल्तनत कम्पनी के राज में मिला ली जायगी। इसका कारण यह बताया गया कि नवाब अपने शासन में उचित सुधार नहीं कर रहा है या करने के अयोग्य है।

निस्संदेह डलहौजी की यह करतूत सन् 1801 और 1837 की सन्धियों का साफ उल्लंघन थी।

अवध का अपहरण

लार्ड डलहौजी की आज्ञा से लखनऊ का रेजिडेण्ट ऊटरम वाजिदअली शाह से महल में मिलने गया। ऊटरम ने नवाब के सामने एक कागज पेश किया, जिसमें लिखा था कि 'मैं (वाजिदअली शाह) खुशी से अपनी सल्तनत कम्पनी को देने के लिए राजी हूं।' रेजिडेण्ट ऊटरम ने उस कागज पर दस्तखत करने के लिए नवाब पर जोर दिया। नवाब ने पत्र पढ़ कर दस्तखत करने से साफ इनकार कर दिया। रिशवतों और धमकियों के जरिए वाजिदअली शाह से दस्तखत कराने का प्रयत्न किया गया। तीन दिन गुजर गए, वाजिदअली शाह ने फिर भी दस्तखत करने से इनकार किया। इस पर कम्पनी की सब्सीडियरी सेना ने सब सन्धियों को खाक में मिला कर लखनऊ के महल में जबरदस्ती प्रवेश किया। कम्पनी की मर्यादा के अनुसार महलों को लूटा गया और अवध पर कम्पनी का कब्जा हो गया।

वाजिदअली शाह पर झूठे कलंक

इसी समय के निकट वाजिदअली शाह के शासन और उसके चरित्र पर तरह-तरह के झूठे कलंक लगा कर अनेक पुस्तकें लिखवाई गईं। इनमें एक प्रसिद्ध पुस्तक लार्ड डलहौजी के जीवन चरित्र के रचयिता आरनाल्ड की लिखी हुई है। हमें इन रद्दी पुस्तकों और इनके झूठे इलजामों पर बहस करने की आवश्यकता नहीं है। सर जान के शब्दों में कम्पनी की यह एक प्रथा थी कि जिस देशी नरेश का राज छीना जाता था, उसे जनसामान्य की दृष्टि में गिराने के लिए उसके चरित्र पर अनेक झूठे दोष लगाए जाते थे। किन्तु इतिहास में दुर्भाग्यवश आरनाल्ड जैसों की पुस्तकों के आधार पर अनेक उपन्यास रचे गए। वाजिदअली शाह के कल्पित पाप इतिहास-से-इतिहास में नकल किए जाने लगे और आज तक वाजिदअली शाह के असंख्य देशनिवासी तक इनमें से अनेक गन्दे इलजामों को सच्चा मानते चले आ रहे हैं।

वाजिदअली शाह का चरित्र

हमारा कदापि यह अभिप्राय नहीं है कि वाजिदअली शाह के जीवन में ऐशपरस्ती लेशमात्र भी न थी, या यह कि उसका व्यक्तिगत चरित्र सर्वथा एक आदर्श चरित्र था। किन्तु हम उस भारतीय नरेश के साथ केवल सत्य और न्याय की दृष्टि से नीचे लिखी बातें कहना चाहते हैं —

पहली यह, कि वाजिदअली शाह का ऐशपरस्ती का जमाना केवल उस समय प्रारम्भ हुआ, जिस समय अंगरेज गवर्नर जनरल और रेजिडेण्ट के हस्तक्षेप द्वारा उसे अपनी फौज को कवायद करने तक से रोका गया। उस जमाने में भी वाजिदअली शाह की ऐशपरस्ती की निस्बत जितनी बातें कही जाती हैं, उनमें 90 फीसदी कल्पित और झूठी हैं और उनमें सत्य की मात्रा कदापि उससे अधिक नहीं है, जितनी संसार के 90 फी सदी नरेशों के जीवन में कहीं अधिक पतित और असभ्य रूप में पाई जाती थी। साथ ही इस अनुचित हस्तक्षेप से पहले वाजिदअली शाह का जीवन एक नरेश की हैसियत से असाधारण संयम का जीवन था।

वाजिदअली शाह की स्वाधीनता

दूसरी बात यह, कि वाजिदअली शाह शुजाउद्दौला के बाद अवध का पहला नवाब था जिसने अपनी सल्तनत को अंगरेजों के प्रभाव से मुक्त करने का विचार किया और यही उसकी आपत्तियों और उस पर झूठे कलंकों का कारण हुआ।

वाजिदअली शाह की सर्वप्रियता

तीसरी बात यह, कि सन् 1857 के स्वाधीनता युद्ध ने, जिसका जिक्र अगले अध्याय में किया जायेगा, पूरी तरह साबित कर दिया कि नवाब वाजिदअली शाह अपनी हिन्दू और मुसलमान प्रजा में सर्वप्रिय था, और कम्पनी का हस्तक्षेप अवध के अन्दर किसी भी अवध निवासी को रुचिकर न था।

ताल्लुकेदारों के साथ जुल्म

अवध के नवाबों के अधीन अधिकांश बड़े-बड़े जमींदार और ताल्लुकेदार हिन्दू

थे। कम्पनी की सत्ता जमते ही इनमें से अधिकांश की जमीनें छीनी जाने लगीं, उनके गांव जब्त किए जाने लगे, उनके किले गिराए जाने लगे। सर जान के लिखता है कि इन प्राचीन पैतृक जमींदारों के साथ 'घोर अन्याय' (a cruel wrong) किया गया। सारे अवध के अन्दर वह जबरदस्ती और बरबादी शुरू हो गई, जिसका नतीजा सन् 1857 के भंयकर विप्लव में दिखाई दिया।

अधिकांश अंगरेज इतिहास लेखकों ने अत्यन्त स्पष्ट और जोरदार शब्दों में अवध के नरेश और अवध की प्रजा के साथ डलहौजी के इस अन्याय की गम्भीरता को स्वीकार किया है।

इनाम कमीशन

भारत की और सब छोटी-बड़ी ज़मींदारियों के लिए लार्ड डलहौज़ी ने 'इनाम कमीशन' नाम की एक जांच कमेटी कायम की। इस कमेटी ने समस्त भारत की लगभग 35 हजार जागीरों और 'इनामों' की जांच की और दस बरस के अन्दर उनमें से क़रीब 21 हज़ार को ज़ब्त करके कम्पनी के राज में मिला लिया।

इसके 23 साल बाद के दूसरे अफ़गान युद्ध और 30 साल बाद के तीसरे बर्मा युद्ध से पहले और कोई नया इलाक़ा ब्रिटिश भारतीय राज में नहीं मिलाया गया। वास्तव में लार्ड डलहौजी के अन्तिम दिनों में कम्पनी के राज की सीमाएं उस हद को पहुंच गईं कि जहां से दूरदर्शी लोगों को निकटतम महान विपत्ति की झलक दिखाई देने लगी और उस विपत्ति के आते ही भारत के अंगरेज़ शासकों की इस अपहरण नीति को एक गहरा धक्का लगा।

चवालीसवां अध्याय

सन् 1857 की क्रान्ति से पहले

लार्ड कैनिंग

मार्च सन् 1856 में लार्ड डलहौजी की जगह लार्ड कैनिंग ने भारत का गवर्नर-जनरल का पद संभाला। लार्ड कैनिंग के समय की सबसे अधिक महत्व की घटना सन् 1857 की वह प्रसिद्ध क्रान्ति थी, जिसकी प्रचण्ड ज्वाला में एक बार इस देश के अन्दर अंगरेज़ी राज और अंगरेज़ी क़ौम का अस्तित्व तक भस्मीभूत होता हुआ मालूम होता था।

प्लासी का बदला

सन् 57 की क्रान्ति भारत में अंगरेज़ी राज के इतिहास की सबसे ज़बरदस्त और सबसे महत्वपूर्ण घटना थी। उस क्रान्ति के कारणों को ठीक-ठीक समझने के लिए हमें उससे ठीक सौ साल पहले के इतिहास पर एक निगाह डालनी होगी। सन् 1857 की क्रान्ति की नींव वास्तव में सन् 1757 में प्लासी के मैदान में रखी गई थी। जो अनेक तरह के नारे सन् 1857 की अनगिनत लड़ाइयों में भारतीय सिपाहियों के मुख से निकलते हुए सुनाई देते थे, उनमें एक नारा यह भी था—"आज हम प्लासी का बदला चुकाएंगे!" मई और जून (1857) के महीनों में दिल्ली के हिन्दोस्तानी अखबारों में यह भविष्यवाणी छपी थी कि ठीक प्लासी की शताब्दी के दिन यानी 23 जून, सन् 1857 को भारत के अन्दर अंगरेज़ी राज का अन्त हो जायगा। इस पेशीनगोई का उत्तर से दक्षिण और पूरब से पश्चिम तक सारे भारत में ऐलान कर दिया गया और इसमें कोई सन्देह नहीं कि क्रान्ति में भाग लेने वाले भारतवासियों के दिलों पर इसका बहुत भारी असर पड़ा।

प्लासी से वेलोर के ग़दर तक

प्लासी के समय से ही अनेक भारतवासियों के दिलों में अंगरेज़ों और अंगरेज़ी राज के विरुद्ध क्रोध और असन्तोष के भाव बढ़ते जा रहे थे। क्लाइव के समय से लेकर डलहौजी के समय तक जिस तरह कम्पनी के प्रतिनिधियों ने अपने गम्भीर वादों और दस्तखती सन्धियों की खाक परवा न कर भारत के अगणित राजकुलों को पद-दलित किया और उनकी रियासतों को एक-एक कर अंगरेजी राज में शामिल किया, जिस तरह देश के प्राचीन उद्योग-धन्धों को नष्ट कर लाखों भारतवासियों से उनकी जीविका छीनी, जिस तरह असहाय बेगमों और रानियों के महलों में घुस कर उन्हें लूटा और उनका अपमान किया, जिस तरह जमींदारों की जमींदारियां जब्त करके, असंख्य प्राचीन घरानों का खात्मा किया और गोरखपुर और बनारस के समान लाखों भारतीय किसानों को उनकी पैतृक ज़मीनों से बाहर निकाल कर गृहविहीन बना दिया, इस सबकी शोकजनक कहानी पिछले अध्यायों में बयान की जा चुकी है। निस्सन्देह इन सब बातों

के कारण भारतीय नरेशों और भारतीय प्रजा, दोनों में अंगरेजों के विरुद्ध असन्तोष की आग भीतर ही भीतर सुलग रही थी। सन् 1780 के क़रीब पूना दरबार के प्रधान मन्त्री नाना फडनवीस और मैसूर राज के मालिक हैदरअली का मिलकर, दिल्ली सम्राट और दूसरे भारतीय नरेशों को अपनी ओर कर, अंगरेजों को भारत से निकालने का प्रयत्न करना इसी असन्तोषाग्नि का एक रूप और सन् 1857 की क्रान्ति का पेशखेमा था। सन् 1806 का वेलोर का विद्रोह भी इसी अग्नि का एक छोटा-सा स्वरूप था।

राजघरानों के प्रति डलहौज़ी का बर्ताव

इसके बाद डलहौज़ी का समय आया। डलहौज़ी के समय में कम्पनी और इंगलिस्तान के नीतिज्ञों की साम्राज्य-पिपासा हद को पहुंच गई। डलहौज़ी ने महाराजा रणजीत सिंह के साथ कम्पनी की सन्धियों को खाक में मिला कर पंजाब पर हमला किया, लाहौर दरबार के अन्दर फूट डलवाई, दलीपसिंह और उसकी विधवा माता महारानी झिन्दां कौर को भारत से देश निकाला दिया, और पंजाब के उर्वर प्रान्त को कम्पनी के राज में शामिल कर लिया। डलहौज़ी ने निरपराध बर्मा के साथ युद्ध छेड़ कर पेगू के प्रान्त को बर्मा राज से अलग कर लिया। भारतीय नरेशों में गोद लेने की प्राचीन प्रथा का तिरस्कार कर डलहौज़ी ने सतारा, झांसी, नागपूर इत्यादि अनेक रियासतों का अन्त कर उन्हें अंगरेजी राज में शामिल कर लिया। नवाब के 'कुशासन' का बहाना लेकर उसने सन् 1856 में अवध की ज़रखेज़ सल्तनत को कम्पनी के राज में मिला लिया, नवाब वाजिदअली शाह को कैद करके कलकत्ते भेज दिया और भारत के सैकड़ों पुराने ताल्लुकेदारों और ज़मींदारों की पैतृक जागीरें छीन कर उन्हें कंगाल बना दिया।

साधारण प्रजा के साथ अंगरेजों का बर्ताव

यह सब व्यवहार तो भारतीय नरेशों और सामन्तों के साथ हुआ। किन्तु साधारण प्रजा के साथ भी अंगरेजों का आए दिन का व्यवहार अनेक प्रकार से अधिकाधिक असह्य होता जा रहा था। स्थान-स्थान पर अंगरेज अफ़सर अपने सामने से घोड़े पर आने वाले हिन्दोस्तानियों को घोड़े से उतर कर चलने के लिए विवश करते थे। उनके धार्मिक और सामाजिक रिवाज की भी परवा न की जाती थी।

सहारनपुर का अंगरेजी अस्पताल

लार्ड डलहौज़ी के शुरू के दिनों में सहारनपुर में एक नया अंगरेज़ी अस्पताल बना, जिसमें हर मज़हब के रोगियों को आने की 'आज्ञा' दी गई। सहरानपुर के अंगरेज़ हाकिमों ने यह ऐलान प्रकाशित किया कि हर जाति के रोगी, पुरुष और स्त्री, यहां तक कि परदानशीन स्त्रियां भी इलाज के लिए इसी अस्पताल में आएं और कोई देशी हकीम या वैद्य न किसी रोगी को दवा दे और न किसी का इलाज करे।

इस ऐलान के प्रकाशित होते ही सहरानपुर की जनता में तहलका मच गया। लोगों के भाव यहां तक बिगड़े कि अफ़सरों को अपना ऐलान वापस ले लेना पड़ा।*

---

* *Narrative of the Indian Revolt*, p. 359.

अंगरेजों के अनुचित व्यवहार की कुछ मिसालें

इस तरह के अनुचित व्यवहार की और अनेक मिसालें दी जा सकती हैं।

मोटे तौर पर सन् 1857 की क्रान्ति के पांच मुख्य कारण कहे जा सकते हैं—

1. दिल्ली सम्राट के साथ अंगरेजों का लगातार अनुचित व्यवहार;

2. अवध के नवाब और अवध की प्रजा के साथ अत्याचार;

3. डलहौज़ी की अपहरण नीति;

4. अन्तिम पेशवा बाजीराव के दत्तक पुत्र नाना साहब के साथ कम्पनी का अन्याय; और

5. भारतवासियों को ईसाई बनाने की आकांक्षा और भारतीय सेना में ईसाई मत का प्रचार।

अब इनमें से एक-एक कारण को थोड़े विस्तार के साथ बयान करना आवश्यक है।

दिल्ली सम्राट और अंगरेज

सम्राट शाहआलम के समय तक, जो सन् 1759 से 1806 तक दिल्ली के तख्त पर रहा, भारत में रहने वाले सब अंगरेज़ अपने तईं दिल्ली सम्राट की प्रजा कहा करते थे। सम्राट के फ़रमानों द्वारा ही अंगरेज़ कम्पनी को अपनी तिजारती कोठियां बनाने के लिए कलकत्ता, मद्रास, सूरत आदि में जागीरें मिलीं। उन जागीरों के लिए अंगरेज़ दिल्ली दरबार को बराबर खिराज देते थे और गवर्नर जनरल से लेकर छोटे-से-छोटे तक जो अंगरेज़ सम्राट के दरबार में जाता था, वह और दरबारियों की तरह आदाब बजा लाता था, सम्राट को नजर पेश करता था, और अपने स्थान पर अदब के साथ खड़ा रहता था। हर गवर्नर जनरल की मुहर में 'दिल्ली के बादशाह का फ़िदवी-ए-खास' (ख़ास नौकर) ये शब्द खुदे रहते थे। सम्राट शाहआलम ने सबसे पहले 1765 में क्लाइव को बंगाल और बिहार की दीवानी के अधिकार प्रदान किए।

सम्राट शाह आलम और माधोजी सिंधिया

इसके बाद धीरे-धीरे दिल्ली सम्राट के दरबार में साज़िशें और ख़ानेजंगियां बढ़ गईं। दिल्ली सम्राट का बल घटता गया और अंगरेज़ कम्पनी का बल बढ़ता गया। माधोजी सिंधिया ने दिल्ली पर चढ़ाई करके भारत सम्राट के बल को फिर से थोड़ा-बहुत स्थापित किया और सम्राट, उसकी राजधानी और आसपास के इलाके की सैनिक रक्षा का भार अपने हाथों में लिया। सम्राट शाहआलम की लिखी हुई एक फ़ारसी कविता अब तक प्रचलित है, जिसमें उसने माधोजी सिंधिया को 'फ़रजन्द जिगरबन्दे मन' कहा है और दिल में उसकी तारीफ़ की है।* कम्पनी ने भारत में अपना राज जमाने के लिए मराठों की बढ़ती हुई सत्ता को कुचलना आवश्यक समझा। यह दूसरे मराठा युद्ध का समय था।

---

*माधोजी सिंधिया फरजन्द जिगरबन्दे मन, हस्त मसरूफ तलाफीए सितम गारि-ए-मा।

लेक का इक़रारनामा

जनरल लेक ने अंगरेज़ कम्पनी की ओर से अपने दस्तख़तों से एक 'इक़रारनामा' लिखकर शाहआलम के सामने पेश किया, जिसमें कम्पनी ने शाहआलम से वादा किया कि हम सारे देश पर आपका प्राचीन क्रियात्मक आधिपत्य फिर से क़ायम कर देंगे, इत्यादि। अभागा, निर्बल और अदूरदर्शी शाहआलम फिर अंगरेजों की चालों में आ गया। शाहआलम की ही मदद से अंगरेजों ने सन् 1804 में मराठों को दिल्ली से निकाल दिया, अपने तईं सम्राट की वफ़ादार और फ़रमांबरदार प्रजा ज़ाहिर किया, सम्राट के निजी खर्च के लिए 12 लाख रुपए सालाना का तुरन्त प्रबन्ध कर दिया और राजधानी की सैनिक रक्षा का भार अपने हाथों में ले लिया। उस समय तक भी अंगरेज़ दिल्ली सम्राट के देशव्यापी मान, मराठों और अफ़ग़ानों के बल और अपनी निर्बलता के कारण दिल्ली सम्राट और उसके ऊपरी मान को क़ायम रखना और अपने तईं सम्राट की प्रजा ज़ाहिर करना आवश्यक समझते थे।

लार्ड वेल्सली की तजवीज़

भारत सम्राट और उसके भारतीय हितचिन्तकों को सबसे पहला सन्देह अंगरेजों की नीयत में उस समय हुआ, जिस समय लार्ड वेल्सली ने यह तजवीज़ की कि शाहआलम और उसके दरबार को दिल्ली के लाल क़िले से हटा कर मुंगेर के क़िले में लाकर रखा जाय। लिखा है कि बूढ़ा शाहआलम इस तजवीज़ को सुनते ही क्रोध से भर गया। लार्ड वेल्सली को अपनी तजवीज के वापस ले लेने में ही कुशल दिखाई दी। किन्तु अनेक दिल्ली निवासियों के चित्त उसी समय से अंगरेज़ों की ओर से सशंक हो गए। दिल्ली के अन्दर 1857 के विप्लव का एक प्रकार से यही बीजारोपण था। इसके बाद ही सन् 1806 में शाहआलम की मृत्यु हो गई।

सम्राट अकबरशाह

शाहआलम के बाद अकबरशाह दिल्ली के तख्त पर बैठा। इससे पहले सीटन दिल्ली में कम्पनी के रेज़िडेण्ट की हैसियत से रहा करता था। सीटन जब कभी दरबार में जाता था, तो निम्न श्रेणी के एक भारतीय अमीर के समान सम्राट के सामने बाक़ायदा 'तसलीम, कोरनिश और मुजरा' किया करता था और सम्राट-कुल के हर बच्चे की ओर यथोचित मान दरशाता था। सीटन के बाद चार्ल्स मेटकाफ रज़िडेण्ट नियुक्त हुआ। मेटकाफ़ ने तुरन्त अपने अंगरेज़ मालिकों की आज्ञा से सम्राट अकबरशाह की ओर अपना व्यवहार बदल दिया और अनेक ऐसी हरकतें करनी शुरू कर दीं, जो सम्राट और उसके दरबार के लिये अपमानजनक थीं। सम्राट और उसके हितचिन्तकों के दिलों में अंगरेज़ों की ओर से घृणा बढ़ती चली गई। दिल्ली में अंगरेज़ों के विरुद्ध असन्तोष फैलने का यह दूसरा कारण हुआ।

सम्राट अकबरशाह ने अपने एक पुत्र, मिरज़ा सलीम को, जिसे मिरज़ा जहांगीर भी कहते थे, युवराज नियुक्त करना चाहा। कहा जाता है, मिरज़ा सलीम अंगरेज़ों से घृणा करता था। अंगरेज़ों ने किसी बहाने मिरज़ा सलीम को इलाहाबाद भेज कर वहां नज़रबन्द

कर दिया। सम्राट-दरबार का बल अनेक आन्तरिक कारणों से पहले ही क्षीण हो रहा सम्राट ने इसके बाद अपने एक दूसरे बेटे, मिरज़ा नीली को युवराज बनाने का प्रयत्न कि अंगरेज़ों ने इसका भी विरोध किया। सन् 1837 में सम्राट अकबरशाह की मृत्यु हुई अन्त में सुप्रसिद्ध सम्राट बहादुरशाह अपने पिता के सिंहासन पर बैठा।

राजा राममोहन राय

जनरल लेक ने सम्राट शाहआलम को जो 'इक़रारनामा' लिखकर दिया था, वह तक पूरा न किया गया था। सम्राट अकबरशाह ने उस इक़रारनामे की शर्तों को पूरा क चाहा, किन्तु उसे सफलता न मिल सकी। इस पर अकबरशाह ने राजा राममोहन को अपना एलची नियुक्त करके इंगलिस्तान भेजा। वहां पर भी राजा राममोहन राय किसी ने न सुनी। इंगलिस्तान के शासकों ने कम्पनी की मुहर लगे हुए 'इक़रारनामे' कदर रद्दी कागज़ से अधिक न की। इस बात की खबर जब दिल्ली पहुंची, तो वहां लोगों को अंगरेजों के रहते दिल्ली और दिल्ली के सम्राट-कुल के भविष्य के सम्बन्ध तरह-तरह की गहरी शंकाएं होने लगीं।

सम्राट बहादुरशाह और अंगरेज़

सम्राट बहादुरशाह ने भी 'इक़रारनामे' की एक शर्त के अनुसार अपने ख़र्च की र को बढ़वाना चाहा। इस बीच दिल्ली और उसके पास के इलाके के ऊपर कम्पनी का प कसता जा रहा था, और वह दिल्ली सम्राट, जो कुछ समय पहले सारे भारत के खज़ानों मालिक समझा जाता था, अब अपने हज़ारों कुटुम्बियों और आश्रितों सहित बड़ी आर्थि कठिनाई के साथ दिल्ली के क़िले के अन्दर दिन बिता रहा था। सम्राट को उत्तर मिला यदि आप अपने और अपने वंशजों के सब रहे-सहे अधिकार विधिवत् कम्पनी को दें, तो ख़र्च की रक़म बढ़ा दी जायगी। बहादुरशाह ने स्वीकार न किया। दिल्ली के अ अंगरेजों के विरुद्ध असन्तोष के बढ़ने का यह तीसरा ज़बरदस्त कारण हुआ।

सम्राट की नज़रें बन्द

हर ईद को, नौरोज़ को और सम्राट की सालगिरह के दिन गवर्नर जनरल औ कमाण्डर-इन-चीफ़, दोनों सम्राट के दरबार में खुद हाजिर होकर या रेजिडेण्ट द्वारा सम्र के सामने नज़रें पेश किया करते थे। सन् 1837 में बहादुरशाह के तख्त पर बैठने के स भी ये नज़रें पेश की गई थीं। किन्तु इसके कुछ साल बाद लार्ड एलेनब्रु ने गवर्नर जनर बनते ही इन नज़रों का पेश किया जाना बन्द कर दिया। यह नज़र का बन्द किया जा पूर्वोक्त असन्तोष का चौथा कारण गिना जा सकता है। इसी तरह की और भी अनेक बा में अंगरेज़ों ने पद-पद पर दिल्ली सम्राट का अपमान करना शुरू कर दिया।

जवांबख्त को युवराज बनाने का प्रश्न

सन् 1839 में सम्राट बहादुरशाह के पुत्र, युवराज दाराबख्त, की मृत्यु हुई। सम्राट उसके बाद बेगम जीनतमहल के पुत्र शहज़ादे जवांबख्त को युवराज नियुक्त करना चाह

था। सन् 57 में साबित हो गया कि ज़ीनतमहल की योग्यता और संगठन-शक्ति, दोनों असाधारण थीं और जवांबख्त एक होनहार और ख़ुद्दार युवक था। अंगरेज़ ज़ीनतमहल और उसके पुत्र, दोनों के विरुद्ध थे। रेज़िडेण्ट और गवर्नर-जनरल के उस समय के पत्रों से ज़ाहिर है कि वह भविष्य के लिए हिन्दोस्तान के 'बादशाह' की उपाधि को ही तोड़ देने की चिन्ता में थे। गवर्नर-जनरल ने गुप्त साज़िश करके बहादुरशाह के एक दूसरे पुत्र मिरज़ा फ़ख़रू से एक अहदनामा लिखवा लिया, जिसमें एक शर्त यह थी कि यदि मुझे युवराज बनवा दिया गया, तो तख्त पर बैठते ही मैं दिल्ली का लाल क़िला छोड़कर, जहां अंगरेज़ कहेंगे, वहां जाकर रहने लगूंगा। बहादुरशाह को जब इसका पता चला, तो उसने एतराज़ किया। फिर भी कहा जाता है कि बहादुरशाह की इच्छा के विरुद्ध मिरज़ा फ़ख़रू के ही युवराज नियत होने का दिल्ली में ऐलान कर दिया गया। यह समय लार्ड डलहौजी का समय था। राजधानी के अन्दर अंगरेज़ों के विरुद्ध गहरे असन्तोष का यह पांचवाँ कारण हुआ।

सन् 1854 में मिरज़ा फ़ख़रू की भी मृत्यु हो गई। रेज़िडेण्ट टामस मेटकाफ बहादुरशाह के दरबार में मिलने गया। बहादुरशाह के उस समय नौ बेटे थे, जिनमें सबसे होनहार और होशियार मिरज़ा जवांबख्त समझा जाता था। बहादुरशाह ने एक पत्र रेज़िडेण्ट को दिया, जिसमें लिखा था कि जवांबख्त को युवराज बनाया जाय। इस पत्र के साथ एक अलग पत्र था, जिस पर बाकी आठों शहज़ादों के दस्तख़त थे और यह लिखा था कि हम सब जवांबख्त के युवराज बनाए जाने में खुश हैं और यही चाहते हैं।

मिरज़ा कोयाश के साथ साज़िश

इस पर अंगरेज़ों ने इन आठ शहज़ादों में से एक, मिरज़ा क़ोयाश, को फिर अपनी ओर जोड़ा। मिरज़ा क़ोयाश से गवर्नर जनरल के नाम एक गुप्त पत्र लिखाया गया। इस अवसर पर गवर्नर-जनरल ने रेजिडेण्ट को लिखा—

> **"सम्राट के ऊपरी वैभव और ऐश्वर्य के अनेक भूषण उतर चुके हैं, जिससे उस वैभव की पहले-सी चमक-दमक नहीं रही, और सम्राट के वे अधिकार, जिन पर तैमूर के कुल वालों को घमण्ड था, एक दुसरे के बाद छिन चुके हैं, इसलिए बहादुरशाह के मरने के बाद क़लम के एक डोब में 'बादशाह' की उपाधि का अन्त कर देना कुछ भी कठिन नहीं है। बादशाह की नज़र, जो गवर्नर जनरल और कमाण्डर-इन-चीफ़ देते थे, बन्द हुई। कम्पनी का सिक्का, जो बादशाह के नाम से ढाला जाता था, वह भी बन्द कर दिया गया। गवर्नर जनरल की मोहर में जो पहले 'बादशाह का फ़िदवी-ए-खास' (बादशाह का खास नौकर) ये शब्द रहते थे, वे निकाल दिए गए और हिन्दोस्तानी रईसों को मनाही कर दी गई कि वे भी अपनी मोहरों में बादशाह के प्रति ऐसे शब्दों का प्रयोग न करें। इन सब बातों के बाद अब अंगरेज सरकार ने फैसला कर लिया है कि दिखावे की कोई भी ऐसी बात बाक़ी न रखी जाए, जिससे हमारी गवर्नमेण्ट बादशाह के अधीन मालूम हो। इसलिए दिल्ली के 'बादशाह' की उपाधि एक**

ऐसी उपाधि है, जिसका रहने देना हमारी गवर्नमेण्ट की इच्छा पर नि
है ।"*

क़ोयाश के साथ शर्तें

गवर्नर जनरल ने शहज़ादे जवांबख्त के विरुद्ध मिरज़ा क़ोयाश को युवराज स्वीकार किया । सम्राट को इसकी सूचना दे दी गई, और मिरज़ा क़ोयाश से ये तीन श कर ली गईं—(1) तुम्हें 'बादशाह' के स्थान पर 'शहज़ादा' कहा जाया करेगा, (2) तुम्हें दिल्ली का क़िला ख़ाली करना होगा और (3) एक लाख रुपए मासिक के स्था पर तुम्हें 15 हज़ार रुपए मासिक ख़र्च के लिए मिला करेंगे ।

इस समाचार को पाते ही सम्राट बहादुरशाह और दिल्ली निवासियों के दिलों क्रोध की आग भड़क उठी । यह छठा और अन्तिम कारण था, जिसने दिल्ली वालों को क्रा के लिए कटिबद्ध कर दिया, और वे जिस तरह हो, अंगरेज़ों के पंजे से देश को आज़ाद क के उपाय सोचने लगे । यह घटना सन् 1856 की थी । इसके अगले साल ही भारत इस ओर से उस ओर तक आग भड़क उठी ।

अवध के साथ अत्याचार

क्रान्ति का दूसरा मुख्य कारण था अवध के नवाब और अवध की प्रजा के कम्पनी के अत्याचार । विप्लव के केवल एक साल पहले बिना किसी बहाने के अवध सारी सल्तनत के अंगरेज़ी राज में मिला लिए जाने और नवाब वाजिदअली शाह निर्वासित कर कलकत्ते भेजे जाने का ज़िक्र पिछले अध्याय में आ चुका है । लिखा जा च है कि किस तरह कम्पनी की सेना ने ज़बरदस्ती लखनऊ पर कब्ज़ा किया, महल लूटा और बेगमों का अपमान किया । अवध के मुसलमान नवाब के अधीन अधि बड़े-बड़े जमींदार और ताल्लुकेदार हिन्दू थे । इन असंख्य ज़मींदारों और ताल्लुकेदा की पैतृक जमींदारियां बिना किसी कारण छीन ली गईं और उनमें से अनेक को दर-ब घूमने पर विवश किया गया । इतिहास लेखक जान के लिखता है कि बहुत कम पु जमींदार या ताल्लुकेदार इस अन्याय से बच सके । इतिहास से पता चलता है कि अ के हजारों गांव के लाखों किसान नवाब वाजिदअली शाह और उसके कुटुम्बियों इस विपत्ति का हाल सुन कर रो पड़ते थे और हजारों ग्राम निवासी अपने गृहवि जमींदारों और ताल्लुकेदारों से मिल कर उनके साथ सहानुभूति प्रकट करते थे । कम्प की फौज के अधिकांश हिन्दोस्तानी सिपाही अवध से ही लिए जाते थे । इसलिए अ निवासियों के साथ लार्ड डलहौजी के अत्याचारों ने सारे अवध और कम्पनी की फ़ौ दोनों के अन्दर गहरे असन्तोष के बीज बो दिए ।

डलहौज़ी की अपहरण नीति

तीसरा मुख्य कारण लार्ड डलहौज़ी की व्यापक अपहरण नीति थी । एक दू के बाद सतारा, पंजाब, झांसी, नागपुर, पेगू, सिक्किम, सम्बलपुर इत्यादि रियासतों

---

*ख्वाजा हसन निजामी कृत "देहली की जांकनी"

अपहरण का जिक्र पिछले अध्यायों में आ चुका है। इन भारतीय रियासतों को आमतौर पर जिस तरह कम्पनी के राज में मिलाया गया और उसका जो नतीजा हुआ, उसके बारे में मद्रास कौन्सिल का सदस्य जान सलीवन लिखता है —

"जब किसी देशी रियासत का अन्त किया जाता है, तो वहां के नरेश को हटा कर एक अंगरेज उसकी जगह नियुक्त कर दिया जाता है। उस अंगरेज को 'कमिश्नर' कहा जाता है। तीन या चार दर्जन खानदानी देशी दरबारियों और मन्त्रियों के स्थान पर कमिश्नर के तीन या चार सलाहकार नियुक्त हो जाते हैं। हर देशी नरेश जिन हजारों सैनिकों का पालन करता है, उनकी जगह हमारी सेना के चन्द सौ सिपाही नियुक्त कर दिए जाते हैं। वह पुराना छोटा-सा दरबार लुप्त हो जाता हैं, वहां का व्यापार ढीला पड़ जाता है, राजधानी वीरान हो जाती है, लोग निर्धन हो जाते हैं, अंगरेज फलते हैं और स्पंज की तरह गंगा के किनारे से धन खींच कर उसे टेम्स के किनारे जाकर निचोड़ देते हैं।"*

इन रियासतों का अपहरण का जिक्र करते हुए इतिहास लेखक लुडलो लिखता है—

"निस्सन्देह यदि इस तरह के हालात में जिन नरेशों की रियासतें अंगरेजी राज में मिला ली गईं, उनके पक्ष में अंगरेजों के विरुद्ध भारतवासियों के भाव न भड़क उठते, तो भारतवासियों को मनुष्यता से गिरा हुआ कहा जाता। निस्सन्देह एक भी स्त्री ऐसी न होगी, जिसे इन रियासतों के अपहरण नें हमारा शत्रु न बना दिया हो; एक भी बच्चा ऐसा न होगा, जिसे हमारे इन कामों के कारण फिरंगी राज के विरुद्ध आरम्भ से घृणा की शिक्षा न दी जाती हो।" †

निस्संदेह सन् 1857 तक भारतवासी 'मनुष्यत्व से इतने गिरे हुए' न थे।

---

* "Upon the extermination of a native state, an Englishman takes the place of the sovereign under the name of Commissioner; three or four of his associates displace as many dozen of the native official aristocracy, while some hundreds of our troops take the place of the many thousands that every native chief supports. The little court disappears, trade languishes, the capital decays, the people are impoverished, the Englishman flourishes, and acts like a sponge, drawing up riches from the banks of the Ganges, and squeezing them down upon the banks of the Thames."—*A Plea for the Princes of India*, by John Sullivan, Member of the Madras Council, p. 67.

† "Surely, the natives of India must be less than men if their feelings could not be moved under such circumstances in favour of the victims of annexation, and against the annexer. Surely there was not a woman whom such annexations did not tend to make our enemy, not a child whom they did not tend to train up in hatred to the *Firangee* rule."—Ludlow's *Thoughts on the Policy of the Crown*, pp. 35, 36.

लार्ड डलहौजी के उस 'इनाम कमीशन' का जिक्र भी पिछले अध्याय में किया चुका है, जिसने 10 साल के अन्दर भारत की 21 हजार प्राचीन जमींदारियां जब्त कर और सारे भारत के अन्दर हजारों पुराने घरानों को बर्बाद कर दिया ।

इन सब कार्रवाइयों ने देश भर के अन्दर लाखों भारतवासियों को अंगरेजों की से दुखी और बेजार कर दिया था ।

नाना साहब के साथ अन्याय

चौथा कारण पेशवा बाजीराव के दत्तक पुत्र, सुप्रसिद्ध नाना साहब के कम्पनी का अन्याय था । सन् 1851 में अन्तिम पेशवा बाजीराव की मृत्यु हुई । के राज के बदले में कम्पनी ने सन् 1818 में उसे "उसके, उसके कुटुम्बियों और आश्रितों के पोषण के लिए" आठ लाख रुपए सालाना देते रहने का वादा किया सन् 1827 में बाजीराव ने नाना धुन्धुपन्त को गोद लिया । नाना की आयु उस तीन साल की थी । कानपुर के पास बिठूर में पेशवा के साथ उस समय लगभग हजार पुरुष, स्त्री और बच्चे रहा करते थे । इन सबका पोषण इसी आठ लाख सालाना की पेन्शन से होता था । बाजीराव की मृत्यु से पहले की पेन्शन के 62 रुपए कम्पनी की ओर बाकी थे । डलहौजी ने इसे भी देने से इनकार किया । नाना को यह भी नोटिस दे दिया गया कि बिठूर की जागीर भी तुमसे जिस समय चाहे ली जायेगी ।

सब अंगरेज़ इतिहास लेखक स्वीकार करते हैं कि इससे पहले युवक नाना का व्यवहार अंगरेजों के साथ बहुत ही अच्छा था । सर जान के लिखता है कि नाना—

> **"शान्त स्वभाव और आडम्बररहित युवक था, उसमें कोई भी आदत नहीं थी और वह अंगरेज़ कमिश्नर की सलाह मानने के लिए तैयार रहता था ।"***

नाना की मेहमानवाजी

कानपुर के सब अंगरेज़ और उनकी मेमें नाना साहब के महल में जाकर रहती थीं । नाना उनकी खूब खातिर तवाजो करता था और चलते समय कीमती दुशाले और आभूषण भेंट करता था । नाना के हाथी, घोड़े और सदा अंगरेज़ों की सेवा के लिए खड़ी रहती थीं । फिर भी लार्ड डलहौजी ने के मरते ही नाना साहब की पेन्शन को बन्द कर दिया । नाना ने अपने खर्च, और कम्पनी की सन्धियों को दरशाते हुए डलहौजी के पास प्रार्थनापत्र

---

*"Quiet, unostentatious young man, not at all addicted to any habits, and invariably showing a ready disposition to attend to the the British Commissioner."—*History of the Sepoy War* by Sir John vol. I, p. 101.

कि पेंशन जारी रखी जाए । नाना ने इंगलिस्तान के शासकों से अपील की और अपने एक योग्य वकील अजीमुल्ला खां को इस काम के लिए विलायत भेजा । किंतु वहां पर भी नाना के साथ किसी ने न्याय न किया । सर जान के, चार्ल्स बाल, ट्रेवेलियन और मार्टिन, चारों प्रसिद्ध अंगरेज़ इतिहास लेखक स्वीकार करते हैं कि न्याय नाना के पक्ष में था । नतीजा यह हुआ कि उसी समय से युवक नाना साहब के दिल में अंगरेज़ों की ओर से घृणा पदा हो गई और वह अपने को और अपने देश को अंगरेज़ों के पंजे से छुड़ाने की तदबीरें सोचने लगा ।

भारतवासियों को ईसाई बनाने की आकांक्षा

क्रांति का पांचवां कारण था भारतवासियों को ईसाई बनाने की आकांक्षा और खास कर हिंदोस्तानी सेनाओं में अंगरेज़ अफसरों का ईसाई मत प्रचार । सन् 57 के बहुत पहले से अनेक बड़े-बड़े अंगरेज़ नीतिज्ञों को भारतवासियों के ईसाई हो जाने में ही अपने राज की स्थिरता दिखाई देती थी । ईस्ट इण्डिया कंपनी के अध्यक्ष, मिस्टर मैंगल्स ने सन् 1857 में पार्लियामेंट के अंदर कहा था—

> "परमात्मा नें हिन्दोस्तान का विशाल साम्राज्य इंगलिस्तान को सौंपा है, इसलिए ताकि हिन्दोस्तान के एक सिरे से दूसरे सिरे तक ईसा मसीह का विजयी झंडा फहराने लगे । हममें से हर एक को अपनी पुरी शक्ति इस काम में लगा देनी चाहिए, ताकि सारे भारत को ईसाई बना लेने के महान काम में देश भर के अन्दर कहीं पर किसी-कारण जरासी-ढील-न आने पाए ।"*

य वाक्य ब्रिटिश भारतीय राजनीति की दृष्टि से उस समय के सबसे अधिक ज़िम्मेदार अंगरेज़ नीतिज्ञ के हैं । उसी समय के निकट एक दूसरे विद्वान अंगरेज़ रेवरेण्ड कैनेडी में लिखा——

> "हम पर कुछ भी आपत्तियां क्यों न आएं, जब तक भारत में हमारा साम्राज्य क़ायम है, तब तक हमें यह नही भूलना चाहिए कि हमारा मुख्य कार्य उस देश में ईसाई मत को फैलाना है । जब तक कन्याकुमारी से लेकर हिमालय तक सारा हिन्दोस्तान ईसा के मत को ग्रहण न कर ले और हिंदू और मुसलमान धर्मों की निन्दा न करने लगे, तब तक हमें लगातार प्रयत्न करते रहना चाहिए। इस काम के लिए हम जितने भी प्रयत्न कर सकें, हमें करने चाहिए, और हमारे हाथों में जितने अधिकार और जितनी सत्ता है, उसका इसी के लिए उपयोग करना चाहिए ।"*

---

* "Providence has entrusted the extensive Empire of Hindustan to England in order that the banner of Christ should move triumphant from one end of India to the other. Every one must exert all his strength that there may be no dilatoriness on any account in continuing in the country the grand work of making all India Christian."—Mr. Mangles, Chairman of the Directors of the East India Company, in the House of Commons, 1857.

उस समय के अनेक अंगरेज़-नीतिज्ञों, शासकों और विद्वानों के इसी तरह के और भी वाक्य नकल किए जा सकते हैं। यही विचार लार्ड मैकाले के लेखों में पाया जाता है और यही एक दर्जे तक ब्रिटिश भारतीय शिक्षा प्रणाली की जड़ में था।

धार्मिक भावों पर आघात

कारण स्पष्ट है। अंगरेज़ नीतिज्ञ इस बात को समझते थे कि किसी जाति को देर तक पराधीन रखने के लिए उसमें किसी तरह का राष्ट्रीय अभिमान या अपनी श्रेष्ठता या अपने प्राचीनत्व की आन का विचार नहीं रहने देना चाहिए; और कम से कम उस समय भारतवासियों को सबसे अधिक अभिमान अपने धर्म या मज़हब का था, धर्म ही उनकी मुख्य आन थी; इसलिए भारतवासियों को धर्मच्युत या बेदीन कर देना उनके राष्ट्रीय अभिमान और हौसलों का एक दीर्घ काल के लिए अंत कर देना था। अनन्त काल तक उन्हें विदेशी राज के भक्त और उसकी विनीत प्रजा बनाए रखने का यही सबसे अच्छा उपाय हो सकता था।

मज़हबी जोश के साथ ईसाई मत प्रचार

मद्रास के गवर्नर की हैसियत से लार्ड विलियम बेंण्टिक ने जिस तरह अपने प्रांत और विशेषकर वहां की सेना के अंदर ईसाई मत के प्रचार को सहायता और उत्तेजना दी, उसी का नतीजा सन् 1806 की वेलोर के सिपाहियों की बग़ावत थी, जिसका ज़िक्र ऊपर एक अध्याय में आ चुका है। गवर्नर-जनरल होने के बाद भी लार्ड बेंण्टिक की यह नीति इसी तरह जारी रही। सन् 1832 में एक नया कानून पास किया गया, जिसका मतलब यह था कि जो भारतवासी ईसाई हो जाएं, उनका अपनी पैतृक संपत्ति पर अधिकार बना रहे। अंगरेज़ी राज की स्थापना होने के साथ-साथ हज़ारों प्राचीन मंदिरों और मसजिदों की माफ़ी की जागीरें छिन गईं। क़ैदियों के लिए जेलखाने में अपने धर्म का पालन कर सकना असम्भव कर दिया गया। लार्ड डलहौजी ने भारतवासियों की गोद लेने की प्राचीन धार्मिक प्रथा को नाजायज़ करार दिया। इस तरह के और भी अनेक काम दिए गए, जो भारतवासियों के धार्मिक नियमों और उनके धार्मिक रीति-रिवाज के स्पष्ट विरुद्ध थे। स्वयं लार्ड कैनिंग ने लाखों रुपये ईसाई मत प्रचारकों में बांटे। भारतीय खजाने से पादरी बिशपों और आर्क बिशपों को बड़ी-बड़ी तनखाहें मिलने लगीं। दफ़्तरों के अंदर अनेक अंगरेज़ अफ़सर अपने भारतीय मातहतों पर ईसाई होने के लिए ज़ोर देने लगे।

---

* "Whatever misfortunes come on us, as long as our Empire in India continues, so long let us not forget that our chief work is the propagation of Christianity in the land until Hindustan, from Cape Comorin to the Himalayas, embraces the religion of Christ and until it condemns the Hindoo and the Moslem religions, our efforts must continue persistently. For this work, we must make all the efforts we can and use all power and all the authority in our hands;........."—Rev. Kennedy, M. A.

अनेक अंगरेज़ ईसाई पादरी अपने भाषणों और पत्रिकाओं में हिंदू और मुसलमान धर्मों की निंदा करने लगे और दोनों धर्मों के पूज्य पुरुषों के लिए अपमानजनक शब्दों का प्रयोग करने लगे।

22 मार्च, सन् 1832 को ब्रिटिश पार्लियामेण्ट की सिलेक्ट कमेटी के सामने गवाही देते हुए कप्तान टी० मैकेन ने बयान किया—

> "××× बहुत से योग्य भारतीय मुसलमानों ने मुझसे बयान किया है कि अंगरेज़ गवर्नमेंट ईसाई पादरियों के साथ बड़ी रिआयतें करती है और ये पादरी लोग गलियों तक में उनके धार्मिक रिवाजों की निन्दा करने में हद को पहुंच जाते हैं। इनमें से एक पादरी हिन्दू मुसलमान जनता को व्याख्यान देते हुए कह रहा था—'तुम लोग मोहम्मद के जरिए अपने पापों की माफ़ी की आशा करते हो, किन्तु मोहम्मद इस समय दोज़ख़ में है और यदि तुम लोग मोहम्मद के असूलों पर विश्वास करते रहोगे, तो तुम सब भी दोज़ख़ जाओगे।"*

ईसाई पादरियों के विरुद्ध इस तरह की शिकायतें उन दिनों बहुत आम थीं।

पंजाब को ईसाई बनाने की कोशिश

सन् 1849 में पंजाब पर कंपनी का क़ब्जा हुआ। उसके बाद पंजाब को एक आदर्श ईसाई प्रांत बनाने के लिए खास कोशिशें की गईं। सर हेनरी लारेन्स, सर जान लारेन्स, सर राबर्ट माण्टगुमरी, डानेल्ड मेकलिआड, कर्नल एडवर्ड्स इत्यादि पंजाब के प्रसिद्ध अंगरेज़ शासक सब उसी राय के थे। इनमें से अनेक की राय यह थी कि पंजाब में शिक्षा का सारा काम यूरोप के ईसाई पादरियों के हाथों में दे दिया जाय, सरकार की ओर से ईसाई मदरसों को धन की पूरी सहायता दी जाए और अंगरेज़ सरकार अपने स्कूल बंद कर दे। गवर्नर-जनरल लार्ड डलहौजी और कंपनी के डाइरेक्टर भी इन लोगों के साथ सहमत थे। इनमें से कुछ की राय यह भी थी कि सरकारी स्कूलों और कालेजों में इंजील और ईसाई मत की शिक्षा दी जाया करे, अंगरेज़ सरकार हिंदु धर्म और इसलाम को किसी तरह की सहायता, प्रोत्साहन या स्वीकृति न दे, किसी सरकारी महकमे में किसी भी हिन्दू या मुसलमान त्यौहार की छुट्टी न दी जाय, अपने न्यायालयों में अंगरेज़ सरकार हिन्दु या मुस्लिम धर्मशास्त्रों और धार्मिक रिवाजों को कोई स्थान न दे, हिन्दुओं या मुसलमानों के धार्मिक कीर्तन बंद कर दिए जाएं, इत्यादि।

फ़ौज में ईसाई मत प्रचार

ज़ाहिर है कि भारत की विचित्र परिस्थिति में उस समय के शासकों की यह नीति इस खुले रूप में देर तक न चल सकी; किंतु ईसाई धर्म प्रचार के पक्ष में प्रयत्न बराबर जारी रहे। धीरे-धीरे इन धर्मोन्मत्त शासकों का ध्यान हिंदोस्तानी सिपाहियों की ओर गया। इतिहास लेखक नालेन लिखता है कि अंगरेज़ सरकार सिपाहियों के धार्मिक

---

* "Evidence by Captain T. Macan, before the Commons Committee, 22nd March, 1832.

† *Memorandum on The Elimination of all Un-Christian Principles from the Government of British India,* by Sir, Herbert Edwards.

भावों की अवहेलना करने लगी और बात-बात में उनके धार्मिक नियमों का उल्लंघन किया जाने लगा । यहां तक कि कंपनी की सेना के अनेक अंगरेज़ अफ़सर खुले तौर पर अपने सिपाहियों का धर्म परिवर्तन करने के काम में लग गए । बंगाल की पैदल सेना के एक अंगरेज़ कमांडर ने अपनी सरकारी रिपोर्ट में लिखा है कि "मैं लगातार 28 साल से भारतीय सिपाहियों को ईसाई बनाने की नीति पर अमल करता रहा हूं और गैरईसाइओं की आत्माओं को शैतान से बचाना मेरे फ़ौजी कर्त्तव्य का एक अंग रहा है । "काजेज आफ द इंडियन रिवोल्ट" नामक पत्रिका का भारतीय रचयिता लिखता है—

"सन् 1857 के शुरू में हिन्दोस्तानी सेना के बहुत-से कर्नल सेना को ईसाई बनाने के अत्यन्त पैशाचिक और दुष्कर काम में लगे हुए पाए गए । उसके बाद यह पता चला कि इन जोशीले अफसरों में से अनेक × × × न रोज़ी के खयाल से फ़ौज में भरती हुए थे, न इसलिए भरती हुए थे कि फ़ौज का काम उनकी प्रकृति के सबसे अधिक अनुकूल था, बल्कि उनका एकमात्र उद्देश्य यही था कि इस जरिए से लोगों को ईसाई बनाया जाय । फ़ौज को उन्होंने खास तौर पर इसलिए चुना, क्योंकि शान्ति के दिनों में फ़ौज के अन्दर सिपाहियों और अफसरों, दोनों को हद दरजे की फुरसत रहती है, और वहां पर बिना खर्च, मेहनत इत्यादि के या बिना गांव-गांव भटके हर तरफ़ बहुत बड़ी तादाद में गैरईसाई मिल सकते हैं । × × × इन लोगों ने हिन्दू और मुसलमान अफ़सरों और सिपाहियों में प्रचार करना और उनमें ईसाई पुस्तकों के अनुवाद और पत्रिकाएं बांटना शुरू किया । शुरू में सिपाहियों ने कभी घृणा के साथ और कभी उदासीनता के साथ यह सब बरदाश्त कर लिया । किन्तु जब इन लोगों का काम बराबर जारी रहा, जब इनके ईसाई बनाने के प्रयत्न दिन प्रतिदिन अधिकाधिक गहरे और तक़लीफ़ देह होते गए, तो दोनों धर्मों के सिपाही चौंक पड़े । × × × इस अरसे में ये विचित्र अफ़सर, जिन्हें 'मिशनरी कर्नल' और 'पादरी लेफिटनेंट' कहा जाने लगा था, चुप न बैठे । सिपाहियों की सहनशीलता से इनका साहस और बढ़ गया और वे पहले की अपेक्षा और अधिक जोश दिखलाने लगे । हिन्दू धर्म और इसलाम की वह पहले से अधिक जोरदार शब्दों में निन्दा करने लगे । पहले से अधिक जोश के साथ वे अविश्वासी लोगों पर जोर देने लगे कि अपने तैतीस करोड़ कुरूप देवी देवताओं को छोड़ कर उनकी जगह एक सच्चे परमात्मा की, उसके बेटे ईसा के रूप में पूजा करो । मोहम्मद और राम को अभी तक वे केवल ऐसे वैसे मनुष्य कहा करते थे, अब वे उन्हें बड़ा दगाबाज और पक्का धूर्त बतलाने लगे । × × × धीरे-धीरे इन धर्म प्रचारक कर्नलों ने सिपाहियों को रिशवतें देकर उन्हें ईसाई बनाना शुरू किया और ईसाई बनने वालों को तरक्की तथा दूसरे इनामों का भी लालच दिया । इस नापाक काम में उन्होंने निर्लज्जता के साथ अपने अफ़सरों के प्रभाव का उपयोग किया । सिपाहियों ने इतराज किया, उनके यूरोपियन अफ़सरों ने वादा किया कि हर सिपाही को जो अपना धर्म छोड़ देगा, हवलदार बना दिया जायगा, हर हवलदार

को सूबेदार मेजर बना दिया जायगा, इत्यादि । इसका नतीजा यह हुआ कि भारतीय सिपाहियों में बहुत बड़ा असन्तोष फैलने लगा ।"*

सन् 1857 की क्रान्ति के ठीक बाद यह पत्रिका लंदन से प्रकाशित हुई । इसके बाद भारतीय क्रान्ति और उसके कारणों के ऊपर अनगिणत पुस्तकें, पत्रिकाएं और लेख इंगलिस्तान और भारत में प्रकाशित हुए; किंतु किसी लेखक को भी पूर्वोक्त पत्रिका के गंभीर इलज़ामों को असत्य कहने का साहस न हो सका ।

अंगरेज शासकों का सलूक

इसी पत्रिका का अंगरेज़ सम्पादक मैलकम लुइन, जो मद्रास सुप्रीम कोर्ट का जज और मद्रास कौंसिल का सदस्य रह चुका था, अपने तजरबे से भारत-वासियों के साथ उस समय के अंगरेज़ शासकों के सलूक को बयान करते हुए, भूमिका में लिखता है—

"समाज के सदस्य की हैसियत से हम दोनों, यानी अंगरेज और हिन्दोस्तानी, एक दूसरे से अनभिज्ञ हैं, हमारा एक दूसरे से वही सम्बन्ध रहा है, जो कि मालिकों और गुलामों में होता हैं । हमने हर ऐसी चीज पर अपना अधिकार जमा लिया है, जिससे कि देशवासियों का जीवन सुखमय हो सकता था ; हर ऐसी वस्तु

---

* "At the beginning of the present year (1857) a great many colonels in the Indian army were detected in a task not less monstrous and arduous than that of Christianizing it. It has afterwards transpired that some of these earnest......worthies......entered the army; not as a means of subsistence, not as the theatre of exertion most congenial to their temperament, but solely and wholly for the purpose of conversion. The army was specially selected, as in times of peace it affords the utmost leisure to both soldiers and commanders. And as there heathens may be found in great abundance on all sides, without the trouble and expense, and other et cetras, or scampering from village to village......they began preaching and distributing tracts and translations among the Hindoo and Mohammadan officers and soldiers. In the beginning these were tolerated, sometimes with disgust, and sometimes with indifference. When, however, the thing continued, when the evangelizing endeavours became more serious and troublesome day by day, the Sepoys of either persuasion felt alarmed......In the meantime, the 'Missionary Colonels', and 'Padre Lieutenants' as these curious Militaries were called, were not inactive. Emboldened by the toleration of the Sepoys, they grew more violent than ever. They were louder in their denunciations of Hinduism and Islam. They were warmer in their exhortations to the unbelievers, to substitute the worship of the one true God in his son Jesus, for the thirty three millions of their hideous deities. Mohammed and Rama, hitherto mere so-so beings, turned sublime imposters and unmitigated blackguards......By and by the proselytizing Colonels tempted the Sepoys to Christianity with bribes and offered promotions and other rewards to converts. They unblushingly used their influences as officers in this unholy affair. The Sepoys protested, and their European officers promised to make every Sepoy that forsook his religions a Havildar, every Havildar a Subedar Major, and so on! Great discontent was the consequence."—*Causes of the Indian Revolt*, by A Hindoo of Bengal, Dated Calcutta the 18th August 1857, published from London, by Edward Stanford, 6 Charing Cross.

जो कि देशवासियों को समाज में उभार सकती थी या मनुष्य की हैसियत से उन्हें ऊंचा कर सकती थी, हमनें उनसे छीन ली है। हमने उन्हें जातिभ्रष्ट कर दिया है। उनके उत्तराधिकार के नियमों को हमने रद्द कर दिया है। उनकी विवाह की संस्थाओं को हमने बदल दिया है। उनके धर्म के पवित्रतम रिवाजों की हमने अवहेलना की है। उनके मन्दिरों की जायदादें हमने जब्त कर ली हैं। अपने सरकारी उल्लेखों में हमनें उन्हें काफिर (हीदन) कह कर कलंकित किया है। उनके देशी नरेशों के राज हमने छीन लिए है और उनके अमीरों और रईसों की जायदादें जब्त कर ली हैं। अपनी लूट खसोट से हमनें देश को बरबाद कर दिया है, और लोगों को सता-सता कर उनसे मालगुजारी वसूल की है। हमने संसार के सबसे प्राचीन उच्च कुलों को निर्मूल कर देने और उन्हें गिरा कर पैरिया बना देनें का प्रयत्न किया है।"*

भारतीय धर्मों की श्रेष्ठता

इसके बाद भारतवासियों को ईसाई बनाने के प्रयत्न के अनौचित्य और भारतीय धर्म और भारतीय सभ्यता की श्रेष्ठता का बयान करते हुए मैलकम लुइन लिखता है—

> "× × × नहीं, यदि वृक्ष की परख उसके फलों से की जाती है, यदि इंगलिस्तान और भारत के अलग-अलग सदाचारों को वहां के धर्मों की कसौटी मान लिया जाय, तो भारत का सर मुकाबले में ऊंचा रहेगा।"†

सिपाहियों के साथ सलूक

अपने भारतीय सिपाहियों के साथ कंपनी और कंपनी के अफसरों का सामान्य व्यवहार भी बहुत अच्छा न था। सामान, वेतन, रहने के मकान इत्यादि के बारे में सिपाहियों की ओर से अनेक शिकायतें बार-बार की जा चुकी थीं, किंतु उन पर यथोचित ध्यान कभी न दिया गया। नतीजा यह हुआ कि हिंदोस्तानी सिपाहियों के

---

* "We are ignorant of each other, as members of society, the bond of union has been that of Spartan and Helot. Grasping everything that could render life desirable, we have denied to the people of the country all that could raise them in society, all that could elevate them as men; we have insulted their caste; we have abrogated their laws of inheritance, we have changed their marriage institutions, we have ignored the most sacred rites of their religion; we have delivered up their pagoda-property to confiscation: we have branded them in official records as 'heathens'; we have seized the possessions of their native princes, and confiscated the estates of their nobles; we have unsettled the country by our exactions, and collected the revenue by means of torture; we have sought to uproot the most ancient aristocracy of the world and to degrade it to the condition of pariahs.

† "......Nay, if a tree be known by its fruits, if the moral of England and of India are to be held as the tests of their respective creeds, India would not lose by the comparison."—Malcolm Lewin in the Preface to *Causes of Indian Revolt*.

दिल अंगरेज़ों की ओर से भीतर ही भीतर असंतोष और क्रोध से भर गए। सन् 1857 की क्रांति का यह पांचवां और एक तरह से सबसे जबरदस्त कारण था।

चिनगारी की प्रतीक्षा

ऊपर के पांचों कारणों ने मिल कर सारे भारत के अंदर अंगरेज़ी राज के विरुद्ध हर श्रेणी के लोगों में ज़बरदस्त स्फोटक सामग्री जमा कर रखी थी। केवल किसी एक योग्य नेता की आवश्यकता थी जो इस सामग्री से लाभ उठा कर सारे देश को स्वाधीनता के एक महान संग्राम के लिए तैयार कर सके और सौ साल से जमे हुए विदेशी शासन को उखाड़ कर फेंक सके; या कोई अकस्मात् चिनगारी इस मसाले पर पड़ कर देश में एक भयंकर आग लगा दे, नतीजा फिर चाहे कुछ भी क्यों न हो।

क्रान्ति का सच्चा रूप

सन् 1857 की क्रांति वास्तव में भारत के हिंदू और मुसलमान नरेशों और भारतीय जनता, दोनों की ओर से देश की विदेशियों की राजनैतिक अधीनता से मुक्त कराने की एक ज़बरदस्त और व्यापक कोशिश थी।

'लंदन टाइम्स' का विशेष प्रतिनिधि, सर विलियम हावर्ड रसल, जो सन् 57 की क्रांति के समय भारत में मौजूद था, उसके विषय में लिखता है—

> **"वह एक ऐसा युद्ध था, जिसमें लोग अपने धर्म के नाम पर, अपनी कौम के नाम पर, बदला लेने के लिए और अपनी आशाओं को पूरा करने के लिए उठे थे। उस युद्ध में समूचे राष्ट्र ने अपने ऊपर से विदेशियों के जुए को फेंक कर उसकी जगह देशी नरेशों की पूरी सत्ता और देशी धर्मों का पूरा अधिकार फिर से कायम करने का संकल्प कर लिया था।"***

क्रान्ति की योजना का सूत्रपात

इस राष्ट्रीय प्रयत्न की तह में एक उतनी ही गहरी योजना और उतना ही व्यापक और गुप्त संगठन भी था। जहां तक मालूम हो सकता है, इस विशाल योजना का सूत्रपात दोनों में से किसी एक स्थान पर हुआ—कानपुर के निकट बिठूर में या इंगलिस्तान की राजधानी लंदन में।

नाना का वकील अजीमुल्ला खां लन्दन में

अंतिम पेशवा बाजीराव का दत्तक पुत्र नाना साहब धुन्धुपन्त क्रांति के सबसे बड़े नेताओं में से था। ऊपर आ चुका है कि नाना साहब ने अपनी पेंशन के बारे में

---

* "......we had a war of religion, a war of race and a war of revenge, of hope, of national determination to shake off the yoke of a stranger and to reestablish the full power of native Chiefs and the full sway of native religions"—*My Diary in India in the Year* 1858-59, by Sir William Howard Russell, p. 164.

अपील करने के लिए अज़ीमुल्ला खां को इंगलिस्तान भेजा था । यह अजीमुल्ला ख़ां, नाना का विश्वस्त सलाहकार और क्रांति का दूसरा मुख्य नेता था । अज़ीमुल्ला खां, अत्यंत योग्य नीतिज्ञ था । अंगरेज़ी और फ़्रान्सीसी, दोनों भाषाओं का वह पूरा पंडित था । विलायत में वह हिंदोस्तानी वेश में ही रहता था । देखने में वह अत्यंत सुंदर था । लंदन के उच्च समाज के लोगों में उसका आचार व्यवहार इतना आकर्षक रहा कि लिखा है कि उच्चतम श्रेणी के अंगरेज़ी समाज की अनेक स्त्रियां उस पर मुग्ध हो गईं । फिर भी अज़ीमुल्ला खां को अपने उद्देश्य में सफलता प्राप्त न हो सकी, यानी नाना की पेंशन के बारे में इंगलिस्तान के नीतिज्ञों या शासकों ने उसकी एक न सुनी।

अजीमुल्ला खां और रंगो बापूजी की भेंट

ठीक उन्हीं दिनों सतारा के पदच्युत राजा की ओर से अपील करने के लिए रंगो बापूजी नामक एक मराठा नीतिज्ञ भी इंगलिस्तान गया हुआ था । रंगो बापूजी को भी अपने काम में सफलता न मिल सकी । लंदन में अजीमुल्ला खां और रंगो बापूजी की भेंट हुई । संभव है कि सन् 57 की क्रांति की योजना का सूत्रपात भारत से अज़ीमुल्ला के चलने से पहले बिठूर ही में हो चुका हो । किंतु इसमें संदेह नहीं कि रंगो बापूजी और अज़ीमुल्ला खां ने लंदन के कमरों में बैठ कर बहुत दर्जे तक इस राष्ट्रीय योजना को रंग और रूप दिया । उसके बाद रंगो बापूजी दक्षिण के नरेशों को इस योजना के पक्ष में करने के उद्देश्य से सतारा वापस आया और चतुर अज़ीमुल्ला खां यूरोप के अंदर अंगरेज़ों के बल और स्थिति को समझने के लिए भारत के भावी स्वाधीनता संग्राम में दूसरे देशों की सहायता या सहानुभूति प्राप्त करने के लिए यूरोप के विविध देशों में भ्रमण करने लगा ।

यूरोप के देशों में अजीमुल्ला खां

और देशों में होते हुए अज़ीमुल्ला खां टर्की की राजधानी कुस्तुनतुनिया पहुंचा। उन दिनों रूस और इंगलिस्तान के बीच युद्ध जारी था । अज़ीमुल्ला ख़ां ने सुना कि हाल में सेबस्तेपोल की लड़ाई में रूस ने अंगरेज़ों को हरा दिया । अज़ीमुल्ला खां रूस पहुंचा । कई अंगरेज़ इतिहास लेखकों ने यह राय प्रकट की है कि अज़ीमुल्ला खां नाना साहब की ओर से अंगरेज़ों के विरुद्ध रूस के साथ संधि करने के लिए रूस गया था । रूस में प्रसिद्ध अंगरेज़ विद्वान रसल के साथ, जो लंदन के अखबार 'टाइम्स' का संवाददाता था, अजीमुल्ला खां की मुलाकात हुई । एक दिन रसल के साथ बैठ कर अजीमुल्ला ख़ां बड़े शौक के साथ दिन भर अंगरेज़ों और रूसियों की लड़ाई देखता रहा। रसल ने लिखा है कि रूसी तोप का एक गोला अजीमुल्ला खां के ठीक पैर के पास आकर फटा किन्तु अजीमुल्ला खां अपनी जगह से बाल भर भी न हिला। मालूम नहीं कि रूस के बाद अजीमुल्ला खां और कहां-कहां गया किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि अजीमुल्ला खां ने इटली, रूस, टर्की, मिस्र, इत्यादि देशों की सहानुभूति अपने भावी स्वाधीनता युद्ध की ओर करने की कोशिश की । लार्ड राबर्ट्स ने अपनी पुस्तक 'फार्टी इयर्स इन इण्डिया' में लिखा है कि उस ने इस सम्बन्ध में टर्की के सुलतान और उमरपाशा के नाम अजीमुल्ला खां के कई पत्र देखे, जिनमें भारत के अन्दर अंगरेजों के अत्याचारों का जिक्र था ।

गैरीबाल्डी और भारतीय क्रान्ति

यह मालूम नहीं कि अजीमुल्ला खां को अपने इन प्रयत्नों में कहां तक सफलता प्राप्त हुई किन्तु दो बातें ध्यान में रखने योग्य हैं। एक यह, कि क्रान्ति के दिनों में भारत के अन्दर यह एक आम अफवाह थी कि नाना साहब ने अंगरेजों के विरुद्ध रूस के जार के साथ कुछ सन्धि कर ली है। दूसरी यह, कि जिन दिनों भारत में विप्लव जारी था, उन दिनों इटली का प्रसिद्ध देशभक्त, सेनापति गैरीबाल्डी, भारतवासियों की सहायता के लिए अपने देश से सेना और सामान लाने की तैयारी कर रहा था। इटली की आन्तरिक कठिनाइयों और विद्रोहों के कारण गैरीबाल्डी को जल्दी वहां से चलने का अवकाश न मिल सका; और जिस समय गैरीबाल्डी अपने यहां के जहाजों में सेना का सामान भर कर भारतीय क्रान्तिकारियों की सहायता के लिए अपने देश से चलने को तैयार हुआ, उसी समय उसे मालूम हुआ कि भारत की क्रान्ति शान्त हो चुकी थी। गैरीबाल्डी ने बड़े दुख के साथ अपनी सेना को जहाजों से उतार लिया।

बिठूर में क्रान्ति की योजना

यूरोप और एशिया के अनेक देशों के भ्रमण करने के बाद अजीमुल्ला खां भारत लौटा। अब एक और रंगो बापूजी सतारा में बैठा हुआ दक्षिण के नरेशों और वहां के लोगों को तैयार कर रहा था और दूसरी ओर अजीमुल्ला खां और नाना साहब बिठूर में बैठे हुए आगामी क्रान्ति के नक्शे को पूरा कर रहे थे।

क्रान्ति की योजना करने वालों का मुख्य विचार यह था कि भारत के सब हिन्दू और मुसलमान बूढ़े सम्राट बहादुरशाह के झण्डे के नीचे मिल कर अंगरेज़ों को देश से बाहर निकाल दें और फिर सम्राट के ही झण्डे के नीचे अपने देश के सुशासन का नए सिरे से प्रबन्ध करें। इसके लिए एक विशाल और गुप्त संगठन की आवश्यकता थी; और संगठन के बाद इस बात की भी आवश्यकता थी कि सारे भारत में एक साथ, एक दिन अंगरेज़ों के विरुद्ध विद्रोह खड़ा कर दिया जाय।

गुप्त संगठन और तैयारी

इस विशाल गुप्त संगठन की नींव, मालूम होता है कि बिठूर में ही रखी गई। संगठन इतना विशाल होते हुए भी इतना सम्पूर्ण, सुन्दर और सुव्यवस्थित था और उसे अंगरेज़ों जैसी जागरूक कौम से बरसों इतनी अच्छी तरह गुप्त रखा गया कि इस विषय में अनेक अंगरेज़ इतिहास लेखकों तक ने क्रान्ति के प्रवर्तकों और संचालकों की योग्यता की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की है। अधिकतर अगरेज़ों की ही पुस्तकों से हम इस संगठन के बारे में जो कुछ मालूम हो सकता है, उससे पता चलता है कि सन् 1856 से कुछ पहले नाना साहब ने बिठूर से बैठे हुए भारत भर में चारों ओर अपने गुप्त दूत और प्रचारक भेजने शुरू कर दिए। नाना के विशेष दूत दिल्ली से लेकर मैसूर तक सब भारतीय नरेशों के दरबारों में पहुंचे और उसके गुप्त प्रचारक कम्पनी की सारी देशी फौज़ों तथा जनता को अपनी ओर करने के लिए निकल पड़े। जो गुप्त पत्र नाना ने इस समय भारतीय नरेशों को लिखे, उनमें उसने दिखलाया कि किस तरह अंगरेज़

एक-एक देशी रियासत को हड़प कर पूरे भारत को पराधीन करने के प्रयत्नों में लगे हुए है। कुछ समय बाद अंगरेज़ों ने नाना के एक दूत को पकड़ा जो मैसूर दरबार के नाम नाना का पत्र ले कर गया था। इसी दूत से अंगरेज़ों को पता लगा कि इस तरह के कितने ही पत्र नाना अनेक नरेशों को भेज चुका था। इतिहास लेखक सर जान के लिखता है—

> "महीनों से, बल्कि बरसों से ये लोग सारे देश के ऊपर अपनी साजिशों का जाल फैला रहे थे। एक देशी दरबार से दूसरे दरबार तक विशाल भारतीय महाद्वीप के एक सिरे से दूसरे सिरे तक, नाना साहब के दूत पत्र लेकर घूम चुके थे। इन पत्रों में होशियारी के साथ और शायद रहस्यपूर्ण शब्दों में भिन्न-भिन्न धर्मों के नरेशों और सरदारों को सलाह दी गई थी और उन्हें आमन्त्रित किया गया था कि आप लोग आगामी युद्ध में भाग लें।"*

इस राष्ट्रीय योजना को फूलने-फलने के लिए सबसे अच्छा स्थान दिल्ली के लाल किले में मिला जिसके कारण ऊपर बयान किए जा चुके हैं। सम्राट बहादुरशाह, उसकी योग्य बगम जीनतमहल और उनके सलाहकारों ने देश और नाना का पूरा साथ देने का निश्चय कर लिया। लिखा है कि इस विषय में दिल्ली के सम्राट और ईरान के शाह के बीच भी कुछ पत्र-व्यवहार हुआ। दिल्ली के नगर में भी गुप्त सभाएं होने लगीं और तदबीरें सोची जाने लगीं।

अवध और क्रान्ति

इसके बाद अवध को अंगरेज़ी राज में मिलाए जाने का समय आया। सर जान के लिखता है कि इस एक घटना से नाना को बहुत बड़ी सहायता मिली। सर जान के के शब्द हैं—

> "अंगरेज़ों के इस अन्तिम राज अपहरण का इतना प्रबल प्रभाव पड़ा कि लोग एक दूसरे से पूछने लगे कि अब कौन सुरक्षित रह सकता है; यदि अंगरेज सरकार ने अवध के नवाब जैसे अपने वफादार दोस्त और मददगार का राज छीन लिया, जिसने कि आवश्यकता के समय अंगरेज़ों को मदद दी थी तो अंगरेज़ों के साथ वफ़ादारी करने से क्या लाभ? कहा जाता है कि जो राजा और नवाब उस समय तक क्रान्ति में भाग लेने से पीछे हट रहे थे, वे अब आगे बढ़ने लगे और नाना साहब को अपने पत्रों का यथेच्छ उत्तर मिलने लगा।"

लखनऊ का निर्वासित नवाब वाजिदअली शाह, उसका होशियार वजीर अली नकी खां, अवध के सब ताल्लुकेदार, जमींदार और वहां की सारी प्रजा अब इस राष्ट्रीय क्रान्ति की सफलता पर अपना सर्वस्व न्योछावर कर देने के लिए तैयार हो गई।

---

* "For months, for years indeed, they had been spreading their net work of intrigues all over the country. From one native court to another, from one extremity to another of the great continent of India, the agents of the Nana Saheb had passed with overtures and invitations discreetly, perhaps mysteriously, worded to princes and chiefs of different races and religions."—Kaye's *Indian Mutiny*, vol. 1, p. 24.

वाजिदअली शाह की बेगम हजरत महल और वजीर अली नकी खां, दोनों की गणना क्रान्ति के मुख्य प्रवर्तकों में की जाती है। वजीर अली नकी खां ने कलकत्ते से बैठ कर मुसलमान फकीरों और हिन्दू साधुओं के रूप में अपने गुप्त दूत उत्तर भारत की तमाम देशी फौजों में भेजने शुरू किए और उन फौजों के भारतीय अफसरों के साथ गुप्त पत्र-व्यवहार प्रारम्भ किया। बेगम हजरत महल ने अवध के तमाम रईसों और जनता को राष्ट्रीय क्रान्ति के लिए तैयार करना शुरू किया। इतिहास लेखक के लिखता है कि अली नकी खां के निमन्त्रण पर हजारों हिन्दू सिपाहियों और उनके अफसरों ने गंगाजल लेकर और मुसलमानों ने कुरान हाथ में लेकर राष्ट्रीय संग्राम में भाग लेने और अंगरेजों को देश से बाहर निकालने की शपथ खाई।

क्रान्ति में धन की सहायता

इस विशाल संगठन के लिए धन की कमी न थी। हजारों रईसों और साहूकारों ने अपनी थलियां राष्ट्रीय नेताओं के कदमों पर रख दीं। बैरकपुर से पेशावर तक और लखनऊ से सतारा तक हजारों राष्ट्रीय फ़कीर और संन्यासी घूम-घूम कर एक-एक ग्राम और एक-एक पलटन में स्वाधीनता के युद्ध का प्रचार करने लगे। हजारों मौलवी और हजारों पण्डित क्रान्ति की सफलता के लिए जगह-जगह ईश्वर से प्रार्थनाएं करने लगे।

क्रान्ति के केन्द्र

क्रान्ति के इस समय पांच मुख्य केन्द्र थे—दिल्ली, बिठूर, लखनऊ, कलकत्ता और सतारा। निस्सन्देह जिस शीघ्रता और वेग के साथ सारे भारत और विशेषकर उत्तर भारत में क्रान्ति का प्रचार किया गया, वह अत्यन्त आश्चर्यजनक था। तारीफ यह कि अंगरेज़ों को अन्त समय तक इस तैयारी का कुछ भी ज्ञान न हो सका।

आश्चर्यजनक गुप्त संगठन

सन् 1857 के इस गुप्त संगठन के बारे में एक अंगरेज़ लेखक जैकब लिखता है—

> **"जिस आश्चर्यजनक गुप्त ढंग से यह समस्त षड़यन्त्र चलाया गया, जितनी दूरदर्शिता के साथ योजनाएं की गई, जिस सावधानी के साथ इस संगठन के विविध समूह एक दूसरे के साथ काम करते थे, एक समूह का दूसरे समूह के साथ सम्बन्ध रखने वाले लोगों का किसी को पता न चलता था और इन लोगों को केवल इतनी ही सूचना दी जाती थी, जितनी उनके काम के लिए आवश्यक होती थी, उन सब बातों को बयान कर सकना कठिन है। और ये लोग एक दूसरे के साथ आश्चर्यजनक वफादारी का व्यवहार करते थे।"***

---

* "But it is difficult to describe the wonderful secrecy with which the whole conspiracy was conducted and the forethought supplying the schemes, and the caution with which each group of conspirators worked apart, concealing the connecting links and instructing them with just sufficient information for the purpose in view. And all this was equalled only by the fidelity with which they adhered to each other."—*Western India,* by Sir George Le Grand Jacob, K.C.S.I., CB.

क्रान्ति और सरकारी कर्मचारी

इसका एक कारण यह भी था कि अधिकांश अंगरेज़ी थानों में पुलिस, अनेक सरकारी मुलाज़िम और अंगरेज़ों के बावर्ची और भिश्ती तक इस राष्ट्रीय योजना में शामिल थे। कहीं-कहीं अंगरेज़ों ने किसी प्रचारक को पकड़ भी लिया। एक अंगरेज़ इतिहास लेखक लिखता है कि एक बार मेरठ छावनी के निकट कोई फ़क़ीर ठहरा हुआ क्रान्ति का प्रचार कर रहा था। अंगरेज़ों ने उसे बाहर निकाल दिया। वह फ़क़ीर अपने हाथी पर बैठ कर पास के गांव में चला गया और वहां से अपना काम करता रहा।* इन राजनैतिक फ़क़ीरों को प्रायः सवारी के लिए हाथी और रक्षा के लिए सशस्त्र सिपाही मिले हुए थे। यहां तक कि काशी, प्रयाग और हरिद्वार में अंगरेज़ी राज के नाश के लिए खुली प्रार्थनाएं होने लगीं और हज़ारों यात्री भावी क्रान्ति में भाग लेने का संकल्प उठाने लगे। तमाशों, पवाड़ों, लावनियों, कठपुतलियों, नाटकों आदि से भी क्रान्ति के संचालकों ने पूरा लाभ उठाया।† इस तरह का व्यापक प्रचार कम या अधिक एक साल से ऊपर तक जारी रहा।

राष्ट्रीय गान

दिल्ली दरबार के राजकवि ने एक राष्ट्रीय गान तैयार किया, जो देश भर में स्थान-स्थान पर गाया जाने लगा। खेद है कि वह गान हमें नहीं मिल सका।

क्रान्ति के ऐलान

धीरे-धीरे संगठन के केन्द्रों की तादाद बढ़ने लगी। इन केन्द्रों के बीच गुप्त पत्र-व्यवहार जारी हो गया। जगह-जगह क्रान्ति के ऐलान प्रकाशित होने लगे, जिनमें लोगों को देश और धर्म के नाम पर शहीद होने के लिए आमन्त्रित किया गया। इस तरह का एक ऐलान सन् 1857 के प्रारम्भ में मद्रास में भी लगा हुआ पाया गया। जगह-जगह गुप्त सभाएं होने लगीं, जिनमें एक-एक समय दस-दस हज़ार आदमी भाग लेते थे। पत्र-व्यवहार के लिए गुप्त लिपियां तैयार हो गईं।‡

नाना साहब की तीर्थयात्रा

अन्त में इस गुप्त संगठन के अनेक केन्द्रों को एक सूत्र में बांधने और देश भर में क्रान्ति का दिन नियत करने के लिए मार्च, सन् 1857 के प्रारम्भ में नाना साहब और अज़ीमुल्ला खां तीर्थयात्रा के बहाने बिठूर निकले। नानासाहब का भाई बाला साहब भी उनके साथ था। सबसे पहले ये लोग दिल्ली पहुंचे, लाल किले के दीवान खास में सम्राट बहादुरशाह, बेगम जीनतमहल और दिल्ली के मुख्य-मुख्य नेताओं के साथ इन लोगों की गुप्त मन्त्रणाएं हुईं। इसके बाद नाना अम्बाला गया। अन्य अनेक स्थानों में चक्कर लगाने के बाद 18 अप्रैल को नाना और उसके साथी लखनऊ पहुंचे। लखनऊ में नाना का बड़े समारोह के साथ जलूस निकाला गया। नाना जहां

---

* *The Meerut Narrative.*

† Trevelyan's *Cawnpore.*

‡ Innes' *Sepoy Revolt.*, p. 55.

जाता था, वहां के अंगरेज़ अफसरों से मिल कर उन्हें तरह-तरह के बहाने करके अपनी ओर से निःशंक कर देने के पूरे प्रयत्न करता रहता था। इसके बाद कालपी इत्यादि होते हुए नाना अप्रैल के अन्त में बिठूर वापस आ गया। रसल लिखता है कि अपनी इस यात्रा में नाना और अज़ीमुल्ला खां रास्ते की सब अंगरेज़ी छावनियों में होते जाते थे।

क्रान्ति का मुख्य प्रचारक अहमदशाह

क्रान्ति के उन हज़ारों प्रचारकों में, जिन्होंने घूम-घूम कर जनसामान्य के हृदयों को अपनी ओर किया, सबसे मुख्य नाम फ़ैज़ाबाद के एक ज़मींदार मौलवी अहमदशाह का है। लखनऊ और आगरे के शहरों में दस-दस हज़ार आदमी मौलवी अहमदशाह का व्याख्यान सुनने के लिए जमा होते थे। हिन्दू और मुसलमान अपनी सौ साल की पराधीनता की कहानी सुनकर मौलवी अहमदशाह के व्याख्यानों से यह शपथ खाकर उठते थे कि हम लोग आगामी स्वाधीनता संग्राम में अपने प्राणों की बाजी लगा देंगे। मौलवी अहमदशाह का बाक़ी हाल आगे चल कर सुनाया जायगा।

क्रान्ति के चिह्न: कमल और चपाती

सन् 57 के इस अद्भुत संगठन का बयान समाप्त करने से पहले दो और चीजों को बयान करना आवश्यक है। क्रान्ति के नेताओं ने अपने संगठन के दो मुख्य चिन्ह नियत किए—एक कमल का फूल, और दूसरा, चपाती। कमल का फूल उन सब पलटनों में, जो इस संगठन में शामिल थीं, घुमाया जाता था। किसी एक पलटन का सिपाही फूल लेकर दूसरी पलटन में जाता था। उस पलटन भर में हाथों-हाथ वह फूल सबके हाथों से निकलता था। जिसके हाथों में वह सब से अन्त में आता था, उसका कर्त्तव्य होता था कि वह अपने पास की दूसरी पलटन तक उस फूल को पहुंचा दे। इसका गुप्त अर्थ यह लिया जाता था कि उस पलटन के सब सिपाही क्रान्ति में भाग लेने के लिए तैयार हैं। इस तरह के सहस्रों कमल पेशावर से बैरकपुर तक विविध पलटनों के अन्दर घुमाए गए।

चपाती (रोटी) एक गांव का चौकीदार दूसरे गांव के चौकीदार के पास ले जाता था। इस चौकीदार का कर्तव्य होता था कि वह उस चपाती में से थोड़ी-सी स्वयं खाकर बाकी गांव के दूसरे लोगों को खिला दे और फिर गेहूं या दूसरे आटे की उसी तरह की चपातियां बनवा कर अपने पास के गांव तक पहुंचा दे। इसका अर्थ यह होता था कि उस गांव की जनता राष्ट्रीय क्रान्ति में भाग लेने के लिए तैयार है। चमत्कार-सा मालूम होता है कि चन्द महीने के अन्दर ये अलौकिक चपातियां भारत-जैसे विशाल देश में इस सिरे से उस सिरे तक लाखों ग्रामों के अन्दर पहुंच गईं। निस्सन्देह सिपाहियों के लिए रक्तपूर्ण कमल और जनता के लिए रोटी, दोनों चिन्ह गम्भीर और अर्थसूचक थे।

रविवार, 31 मई, 1857

नाना की इस यात्रा में ही रविवार 31 मई, सन् 1857 का दिन समूचे भारत में एक साथ क्रान्ति करने के लिए नियत कर दिया गया।* किन्तु इस तिथि की सूचना हर केन्द्र के केवल मुख्य-मुख्य नेताओं को और हर पलटन के तीन-तीन अफ़सरों को दी गई। औरों का कर्तव्य केवल अपने नेताओं की आज्ञा पर काम करना था।

पलटनों के बीच पत्र-व्यवहार

विविध देशी पलटनों के बीच भी इस समय खूब पत्र-व्यवहार हो रहा था। इस तरह के एक पत्र में, जो अंगरेजों के हाथों में पड़ा, लिखा था—"भाइयो, हम स्वयं विदेशियों की तलवार अपने शरीर के अन्दर घोंप रहे हैं। यदि हम खड़े हो जायं, तो सफलता निश्चित है। कलकत्ते से पेशावर तक सारा मैदान हमारा होगा।" इतिहास लेखक जान के लिखता है कि सिपाही लोग रात को अपनी गुप्त सभाएं किया करते थे, जिनमें बोलने वालों के मुंह पर नकाब पड़ा होता था।

---

* "From the available evidence I am quite convinced that the 31st of May, 1857 had been decided on as the date for simultaneous rising."—J. C Wilson's *Official Narrative*, and White's *Complete History of the Great Sepoy War*, p. 17.

पैंतालीसवां अध्याय

चर्बी के कारतूस और क्रान्ति का आरम्भ

दमदम की घटना

किसी भी विप्लव या क्रान्ति के सफल होने के लिए एक आवश्यक शर्त यह होती है कि विप्लव सब स्थानों पर नियत समय पर और नियत ढंग से हो। जनवरी सन् 1857 में कलकत्ते के पास दमदम नामक गांव में अकस्मात् एक छोटी-सी घटना हो गई, जिसने सन् 57 की क्रान्ति के विषय में यह शर्त पूरी न होने दी।

सन् 1853 में एक नयी किस्म के कारतूस कम्पनी ने अपनी भारतीय सेना के लिए प्रचलित किए। भारत में कई जगह पर इन कारतूसों के बनने के लिए कारखाने खोले गए। इससे पहले के कारतूस सिपाहियों को हाथों से तोड़ने पड़ते थे, किन्तु नए कारतूस को दांत से काटना पड़ता था। आरम्भ में केवल एक दो पलटनों में उन्हें प्रचलित किया गया। भारतीय सिपाहियों ने अज्ञात में कई जगह नये कारतूसों को दांत से काटना स्वीकार कर लिया। धीरे-धीरे नये कारतूसों का इस्तेमाल बढ़ाया गया।

बैरकपुर के पास कारतूसों के बनने के लिए एक कारखाना खोला गया। एक दिन दमदम का एक ब्राह्मण सिपाही पानी का लोटा हाथ में लिए बैरक की ओर जा रहा था। अकस्मात एक मेहतर ने आकर पानी पीने के लिए सिपाही से लोटा मांगा। सिपाही ने हिन्दू प्रथा के अनुसार लोटा देने से इनकार किया। इस पर मेहतर ने कहा—"अब जात-पांत का घमण्ड छोड़ो! क्या तुम्हें मालूम नहीं कि शीघ्र ही तुम्हे अपने दांतों से गाय का मांस और सुअर की चर्बी काटनी पड़ेगी? जो नये कारतूस बन रहे हैं, उनमें जान-बूझ कर ये दोनों चीजें लगाई जा रही हैं।" ब्राह्मण सिपाही इसे सुनते ही क्रोध से भर कर छावनी में गया। जब दूसरे सिपाहियों ने यह समाचार सुना, तो वे भी क्रोध से लाल हो गए। वे सोचने लगे कि अंगरेज़ सरकार इस तरह जान-बूझ कर हमें धर्मभ्रष्ट करना चाहती है। उन्होंने अपने अंगरेज़ अफसरों से असलियत पूछी। अफ़सरों ने उन्हें उत्तर दिया कि यह अफवाह बिलकुल झूठी है और नये कारतूसों में इस तरह की चीज नहीं है। सिपाहियों को विश्वास न हुआ। उन्होंने बैरकपुर के कारखाने में काम करने वाले छोटी जाति के हिन्दोस्तानी मजदूरों से पता लगाया। उन्हें पता लगा कि वास्तव में नये कारतूसों के अन्दर दोनों चीजें, जो हिन्दू और मुसलमान धर्मों में निषिद्ध है, लगाई जाती हैं। इस तरह अपनी तसल्ली करने के बाद बैरकपुर के सिपाहियों ने यह खबर सारे हिन्दोस्तान में फैला दी। लिखा है कि इसके दो महीने के अन्दर बैरकपुर से पेशावर और महाराष्ट्र तक इस विषय के हज़ारों पत्र भेजे गए और नये कारतूसों का समाचार बिजली के समान भारत के एक-एक हिन्दोस्तानी सिपाही के कानों तक पहुंच गया। हर हिन्दू और मुसलमान सिपाही अब

अंगरेज़ों से इस अन्याय का बदला लेने के लिए बेचैन हो गया किन्तु सिपाहियों के नेताओं ने उन्हें 31 मई तक के लिए रोके रखने का प्रयत्न किया।

चर्बी के कारतूस

अब हमें यह देखना होगा कि नए कारतूसों में गाय और सुअर की चर्बी का उपयोग किया जाना कहां तक सच था। आजकल (1929) लगभग सब अंगरेज़ इतिहास लेखक और विशेषकर वे अंगरेज और हिन्दोस्तानी लेखक जो सरकारी स्कूलों के लिए पाठ्य पुस्तकें लिखते हैं, इस अफ़वाह को झूठा बताते हैं और उस पर विश्वास करने वाले सिपाहियों को पागल कहते हैं। सन् 1857 में भी गवर्नर जनरल ला कैनिंग से लेकर छोटे से छोटे अंगरेज़ अफसर तक, सब ने गम्भीरता के साथ यह ऐलान किया और सिपाहियों को विश्वास दिलाने का प्रयत्न किया कि कारतूसों में चर्बी का किस्सा बिलकुल झूठा है और बदमाश लोगों ने फ़ौज को बरबाद करने के लिए फैलाया है। किन्तु सर जान के, जो सन् 57 की क्रान्ति का सबसे अधिक प्रामाणिक इतिहास लेखक माना जाता है, लिखता है—

> **"इसमें कोई सन्देह नहीं की इस चिकने मसाले के बनाने में गाय की चर्बी का उपयोग किया गया था।"***

सर जान के यह भी लिखता है कि दिसम्बर सन् 1853 में करनल टकर ने बहु साफ़ शब्दों में इस बात को लिखा था कि नए कारतूसों में गाय और सुअर, दोनों की चर्बी लगाई जाती थी। दमदम के कारखाने में जिस ठेकेदार को कारतूसों के लि चर्बी का ठेका दिया गया था, उससे ठेके के कागज़ में यह साफ़ शब्दों में लिख लिया गया था कि "मैं गाय की चर्बी लाकर दूंगा" और चर्बी का भाव चार आने से रखा गया था। लार्ड राबर्ट्स ने जो इस क्रान्ति के समय भारत में मौजूद था लिखा है—

> **"मिस्टर फारेस्ट ने भारत सरकार के काग़जों की हाल में जांच की है उस जांच से साबित है कि कारतूसों के तैयार करने में जिस चिकने मसाले का उपयोग किया जाता था, वह मसाला वास्तव में दोनों निषिद्ध पदार्थों, यानी गाय की चर्बी और सुअर की चर्बी को मिला कर बनाया जाता था और इन कारतूसों के बनाने में सिपाहियों के धार्मिक भावों की ओर इतनी बेपरवाही दिखाई जाती थी कि जिसका विश्वास नहीं होता।"†**

इस पर प्रसिद्ध इतिहास लेखक विलियम लैकी लिखता है—

---

* "There is no question that beef fat was used in the composition of t tallow."—Kaye's *Indian Mutiny*, vol. i, p. 381.

† "The recent researches of Mr. Forrest in the records of the Governm of India prove that the lubricating mixture used in preparing the cartrid was actually composed of the objectionable ingredients, cow's fat and la and that incredible disregard of the soldiers' religious prejudices was displa in the manufacture of these cartridges."—*Forty Years in India* by Lord Rob p. 431.

"यह एक लज्जाजनक और भयंकर सत्य है कि जिस बात का सिपाहियों को विश्वास था, वह बिलकुल सच थी।"*

और आगे चलकर लैकी लिखता है—

"इस घटना पर फिर से दृष्टि डालते हुए अंगरेज लेखकों को लज्जा के साथ स्वीकार करना चाहिए कि भारतीय सिपाहियों ने जिन बातों के कारण बग़ावत की, उनसे जियादा जबरदस्त बातें कभी किसी बग़ावत को जायज़ क़रार देने के लिए हो ही नहीं सकती।"*

सिपाहियों के साथ जबरदस्ती

सिपाहियों में इस प्रकार असन्तोष के फैलने के थोड़े ही दिनों बाद कम्पनी सरकार की ओर से एक ऐलान प्रकाशित हुआ कि इस तरह का एक भी कारतूस फ़ौज में नहीं भेजा गया। किन्तु हाल ही में साढ़े बाइस हज़ार कारतूस अम्बाला डिपो से और चौदह हज़ार कारतूस सियालकोट डिपो से, यानी केवल दो डिपो से साढ़े छत्तीस हजार कारतूस भारतीय फ़ौज में भेजे जा चुके थे। कई पलटनों में अंगरेज अफसरों ने देसी सिपाहियों को धमकाना शुरू किया कि तुम्हें नए कारतूसों का उपयोग करना पड़ेगा। एक दो जगह सिपाहियों ने जिद की, तो सारी रेजिमेण्ट को कड़ी सजा दी गई।

क्रान्ति की चिनगारी का काम

इस तरह इन गाय और सुअर की चर्बी से सने हुए कारतूसों ने उस समय की हिन्दोस्तानी फ़ौज के अन्दर विस्फोटक मसाले के ऊपर चिनगारी का काम किया।

कोई-कोई अंगरेज इतिहास लेखक कारतूसों के मामले को ही सन् 57 की क्रान्ति का एकमात्र या मुख्य कारण बतलाते हैं। इन दोनों के उत्तर में हम केवल दो-तीन प्रामाणिक अंगरेज इतिहास लेखकों की राय नीचे देते है। जस्टिन मैकार्थी लिखता है—

"सच यह है कि हिन्दोस्तान के उत्तरी और उत्तर-पश्चिमी प्रान्तों के अधिकांश भाग में वह देशी क़ौमों की अंगरेजी सत्ता के विरुद्ध बग़ावत थी ××× चर्बी के कारतूसों का मामला केवल इस तरह की एक चिनगारी थी, जो अकस्मात इस सारे विस्फोटक मसाले में आ पड़ी। ××× वह युद्ध एक राष्ट्रीय और धार्मिक युद्ध था!"†

---

* "It is a shameful and terrible truth that as far as the fact was concerned, the Sepoys were perfectly right in their belief……but in looking back upon it, English writers must acknowledge with humiliation that, if mutiny is ever justifiable, no stronger justification could be given than that of the Sepoy troops"—*The Map of Life,* by W.E.H. Lecky, pp. 103, 104.

† "The fact was that throughout the greater part of the northern and north-western provinces of the Indian peninsula, there was a rebellion of the native races against the English power……The quarrel about the greased cartridges was but the chance spark flung in among all the combustible material……a national and religious war!"—*History of Our own Times,* by Justin McCarthy, vol. iii.

एक दूसरा इतिहास लेखक लिखता है—

"किन्तु वास्तव में जमीन के नीचे ही नीचे जो विस्फोटक मसाला अनेक कारणों से बहुत दिनों से तैयार हो रहा था, उस पर चर्बी लगे हुए कारतूसों ने केवल दियासलाई का काम किया।"*

चार्ल्स बाल ने अपने सन् 57 के इतिहास में लिखा है कि डिजरैली, जो बाद में इंगलिस्तान का प्रधान मन्त्री हुआ, कहा करता था कि कोई भी मनुष्य कारतूसों को उस विप्लव का वास्तविक कारण नहीं मानता।

एक इतिहास लेखक लिखता है कि जिन कारतूसों पर भारतीय सिपाही एतराज करते थे, उन्हीं को उनमें से अनेक ने बेखटके ऐन क्रान्ति के दिनों में अंगरेजों के विरुद्ध इस्तेमाल किया।

बैरकपुर से क्रान्ति का श्रीगणेश

हम ऊपर लिख चुके हैं कि इन नए कारतूसों के कारण क्रान्ति नियत समय से पहले प्रारम्भ हो गई। सन् 57 की क्रान्ति का श्रीगणेश इस तरह बैरकपुर से हुआ। फ़रवरी सन् 57 में बैरकपुर की 19 नम्बर पलटन को नए कारतूस उपयोग करने के लिए दिए गए। सिपाहियों ने उन कारतूसों का उपयोग करने से साफ़ इनकार कर दिया। बंगाल भर में उस समय कोई गोरी पलटन न थी इसलिए अंगरेज़ अफ़सरों ने फ़ौरन बर्मा से एक गोरी पटलन मंगवा कर 19 नम्बर पलटन से हथियार रख लेने और सिपाहियों को बरखास्त कर देने का इरादा कर लिया। सिपाहियों को जब इस बात का पता चला, तो उनमें से कुछ ने चुपचाप हथियार रख देने के बजाय तुरन्त क्रान्ति प्रारम्भ कर देने का विचार किया। उनके हिन्दोस्तानी अफ़सरों ने उन्हें 31 मई तक रुके रहने की सलाह दी किन्तु 19 नम्बर पलटन का एक नौजवान सिपाही, मंगल पांडे अपने आपको न रोक सका।

मंगल पांडे

29 मार्च 1857 को पलटन परेड के मैदान में बुलाई गई। जिस समय पलटन आकर खड़ी हुई, मंगल पांडे तुरन्त अपनी भरी हुई बन्दूक लेकर सामने कूद पड़ा और चिल्ला कर बाकी सिपाहियों को अंगरेजों के विरुद्ध धर्मयुद्ध प्रारम्भ करने के लिए आमन्त्रित करने लगा। एक अंगरेज अफ़सर, सारजेन्ट मेजर ह्यूसन, ने जब यह देखा, तो अपने सिपाहियों को आज्ञा दी कि मंगल पांडे को गिरफ्तार कर लो किन्तु कोई सिपाही इसके लिए आगे न बढ़ा। इतने में मंगल पांडे ने अपनी बन्दूक की गोली से तुरन्त सारजेन्ट मेजर ह्यूसन को वहीं ढेर कर दिया। इस पर एक दूसरा अफ़सर, लेफ्टिनेण्ट बाघ, अपने घोड़े पर आगे लपका। उसका घोड़ा अभी कुछ दूर ही था कि पांडे ने एक दूसरी

---

* "But, in fact, the greased catridge was merely the match that exploded the mine which had, owing to a variety of causes, been for a long time preparing"—Medlley's *A Year's Campaigning in India from March 1857 to March* 1858.

गोली से घोड़े और सवार दोनों को ज़मीन पर गिरा दिया। मंगल पांडे ने तीसरी बार अपनी बन्दूक भरने का इरादा किया। लेफ्टिनेण्ट बाघ ने उठ कर और आगे बढ़कर पांडे पर अपनी पिस्तौल चलाई, पर पांडे बच गया। पांडे ने अब फौरन अपनी तलवार निकालकर इस दूसरे अंगरेज़ अफसर को भी वहीं पर समाप्त कर दिया। थोड़ी देर बाद करनल ह्वीलर ने आकर सिपाहियों को हुक्म दिया कि मंगल पांडे को गिरफ्तार कर लो। सिपाहियों ने इनकार कर दिया। कर्नल घबरा कर जनरल के बंगले पर गया। जनरल हीयर से समाचार पाकर कुछ गोरे सिपाहियों सहित पांडे की ओर बढ़ा। मंगल पांडे ने यह देख कर स्वयं अपनी छाती पर गोली चलाई। वह ज़ख्मी होकर गिर पड़ा और गिरफ्तार कर लिया गया।

मंगल पांडे को फांसी

मंगल पांडे का कोर्ट मार्शल हुआ। उसे फांसी की सज़ा दी गई। 8 अप्रैल का दिन फांसी के लिए नियत किया गया। किन्तु बैरकपुर भर में कोई मेहतर तक मंगल पांडे को फांसी देने के लिए राज़ी न हुआ। अन्त में कलकत्ते से चार आदमी इस काम के लिए बुलाए गए और 8 तारीख के सबेरे मंगल पांडे को फांसी दे दी गई।

चार्ल्स बाल और लार्ड राबर्ट्स, दोनों लिखते है कि उसी दिन से सन् 1857 के समस्त क्रान्तिकारी सिपाहियों को "पांडे" के नाम से पुकारा जाने लगा।*

19 और 34 नम्बर की देशी पलटनें

मंगल पांडे की फांसी के बाद अंगरेज़ों को पता चला कि 19 नम्बर और 34 नम्बर की देशी पलटने विप्लव के लिए गुप्त सलाहें कर रही हैं। तुरन्त इन दोनों पलटनों से हथियार रखा कर सिपाहियों को बरखास्त कर दिया गया। 34 नम्बर के सूबेदार को इस अपराध में, कि उसके यहां गुप्त सभाएं हुआ करती थीं, फांसी दे दी गई। फिर भी इन दोनों पलटनों के नेताओं ने क्रान्ति के संचालकों की आज्ञा का ध्यान रखते हुए 31 मई से पहले विप्लव की कोई कार्रवाई नहीं की। शीघ्र ही यह समाचार भी सारे उत्तर भारत में फैल गया। यह बात तय हो चुकी थी कि क्रान्ति प्रारम्भ करने से पहले हर जगह अंगरेज़ों के बंगलों और बैरकों में आग लगा दी जाएगी। अप्रैल के महीने में लखनऊ, मेरठ और अम्बाला में अनेक अंगरेज़ों के मकान जला दिए गए। अफ़सरों ने इन आकस्मिक घटनाओं के अपराधियों का पता लगाने का भरसक प्रयत्न किया किन्तु पुलिस भी क्रान्तिकारियों के साथ मिली हुई थी इसलिए कुछ पता न चल सका।

मेरठ की घटना

इसके बाद मई का महीना आया। 6 मई, सन् 1857 को मेरठ में तजरबे के तौर पर 90 हिन्दोस्तानी सवारों की एक कम्पनी को नए चर्बी लगे कारतूस दिए गए।

---

* "The name has become a recognized distinction for the rebellious Sepoys throughout India"—Charles Bal. "This name was the origin of the Sepoys generally being called 'Pandaye'"—*Forty one Years in India,* by Lord Roberts.

सवारों से उन्हें दांत से काटने के लिए कहा गया । 90 में से 85 सवारों ने साफ इनकार कर दिया । इन सिपाहियों का कोर्ट मार्शल हुआ । आज्ञा न मानने के अपराध में उन सबको आठ-आठ और दस-दस साल की सख्त क़ैद की सजा दी गईं । 9 मई को सवेरे इन 85 सिपाहियों को परेड पर लाकर खड़ा किया गया । उनके सामने गोरी फ़ौज और तोपखाना था । छावनी के बाकी सब हिन्दोस्तानी सिपाहियों को भी यह दृश्य दिखाने के लिए परेड पर बुला लिया गया । 85 अपराधियों से उनकी वरदियां उतरवा ली गईं, और वहीं परेड़ पर खड़े-खड़े उनके हथकडियां और बेडियां डाल दी गईं । उनसे कहा गया कि तुम्हें दस-दस साल की सजा दी गई है । इसके बाद बेड़ियां पड़े हुए उन्हें जेलखाने की ओर भेजा गया । उनके साथ के हज़ारों हिन्दोस्तानी सिपाही, जो उन्हें बिलकुल निर्दोष मानते थे, भीतर ही भीतर दुख और क्रोध से बेताब हो गए किन्तु उन्हें अभी तीन सप्ताह और शान्त रहनें की आज्ञा थी । वे अपने क्रोध को पीकर बैरकों की ओर वापस आ गए ।*

यह घटना सुबह की थी । शाम को मेरठ के ये हिन्दोस्तानी सिपाही शहर में घूमने के लिए गए । लिखा है कि शहर की स्त्रियों ने स्थान-स्थान पर उन्हें यह कह कर लांछना दी—"छि ! तुम्हारे भाई जेलखाने में हैं और तुम यहां बाजार में मक्खियां मार रहे हो । तुम्हारे जीने पर धिक्कार है ।"†

सिपाहियों ने अभी तक काफ़ी धीरज से काम लिया था । अब मेरठ की स्त्रियों के शब्द उनके दिलों में चुभ गए । रात को बैरकों में गुप्त सभाएं हुईं । निश्चय हुआ कि 31 मई तक चुप बैठना असम्भव है ।

9 मई की ही रात को सिपाहियों ने दिल्ली के नेताओं को खबर भेज दी कि हम कल या परसों तक दिल्ली पहुंच जाएंगे । आप लोग तैयार रहें ।‡

मेरठ में क्रान्ति का पहला दिन

अगले दिन, 10 मई को इतवार था । मेरठ शहर के अन्दर नगरनिवासी और हज़ारों हथियारबन्द ग्राम निवासी बाहर से आ-आकर जमा हो रहे थे । उधर छावनी में ज़ोरों की तैयारी थी । सबसे पहले कुछ सवार ज़ेल खानों की ओर गए । जेलर भी क्रान्तिकारियों के साथ मिले हुए थे । जेलखानों की दीवारें गिरा दी गईं । सब क़ैदियों की बेड़ियां काट दी गई । हिन्दू और मुसलमान, पैदल, सवार और तोपखाने के सिपाही इधर-उधर मेरठ के तमाम अंगरेज़ों का खात्मा करने के लिए दौड़ पड़े । अनेक अंगरेज मारे गए । बंगलों, दफ्तरों को आग लगा दी गई । "दीन ! दीन !" "हर हर महादेव ।" और "मारो फ़िरंगी को !" की आवाजें शहर और छावनी में चारों और गूंजने लगीं । नियत योजना के अनुसार तार काट दिए गए और रेलवे लाइन पर क्रान्तिकारियों का पहरा हो गया । जो अंगरेज बचे, उनमें से कुछ अस्पतालों और

---

* Kaye's *History of the Sepoy War*, Book iv, Chap. ii.

† J. C. Wilson's *Official Narrative.*

‡ *The Red Pamphlet* by G. B. Mallison.

नालियों में छिप गए और बाकी ने अपने हिन्दोस्तानी नौकरों के घरों में पनाह ली। चूंकि शहर और छावनी, दोनों में बगावत की आग लगी हुई थी, इसलिए जो छोटी-सी अंगरेज़ी सेना मेरठ में मौजूद थी वह भी कर्त्तव्यविमूढ़ हो गई। अनेक अंगरेज, स्त्रियां और बच्चे बंगलों के अन्दर जल कर खत्म हो गए।

10 तारीख की ही रात को मेरठ के सैनिक दिल्ली की ओर रवाना हो गए।

क्रान्तिकारियों का दिल्ली में प्रवेश

*मालेसन, ह्वाइट और विलसन, ये तीनों इतिहास लेखक स्वीकार करते हैं कि मेरठ में क्रान्ति का समय से पहले आरम्भ हो जाना अंगरेज़ों के लिए बरकत और भारतीय क्रान्तिकारियों के लिए हानिकर साबित हुआ। मालेसन स्पष्ट लिखता है कि यदि पूर्वनिश्चय के अनुसार एक साथ, एक तारीख को ही सारे भारत में स्वाधीनता का युद्ध शुरू हुआ होता, तो भारत में एक अंगरेज जिन्दा न बचता और भारत में अंगरेज़ी राज का उसी समय अन्त हो गया होता।

†जे० सी० विलसन लिखता है कि वास्तव में मेरठ शहर की स्त्रियों ने वहां के सिपाहियों को समय से पहले भड़का कर अंगरेज़ी राज को ग़ारत होने से बचा लिया। फिर भी मेरठ में बग़ावत शुरू होते ही भारत में इस सिरे से उस सिरे तक एक प्रचण्ड आग भड़क उठी। दो हजार सशस्त्र हिन्दोस्तानी सवार मेरठ से चल कर 11 मई को आठ बजे सवेरे दिल्ली पहुंच गए। दिल्ली के नेताओं को उनके आने का पहले से पता था। किन्तु अंगरेज़ों को इसका गुमान तक न था। दिल्ली में कम्पनी की फ़ौज का अंगरेज़ अफ़सर कर्नल रिपले समाचार पाते ही 54 नम्बर की देशी पलटन को जमा करके मेरठ के विद्रोहियों का मुकाबला करने के लिए बढ़ा। आमना-सामना होते ही जिस समय मेरठ के सवारों ने "अंगरेज़ी राज का क्षय!" और "सम्राट बहादुरशाह की जय!" के नारे बुलन्द किए, दिल्ली के सिपाही तुरन्त बजाय हमला करने के, आगे बढ़ कर अपने मेरठ के भाइयों के साथ गले मिलने लगे। कर्नल रिपले घबरा गया और तुरन्त वहीं पर मार डाला गया। दिल्ली की सेना के सब अंगरेज अफ़सर मार डाले गए। अब संयुक्त सेना ने कश्मीरी दरवाजे से दिल्ली में प्रवेश किया। दरियागंज के तमाम अंगरेज़ी बंगले जला दिए गए। दिल्ली के क़िले पर तुरन्त क्रान्तिकारियों का कब्जा हो गया। सम्राट बहादुरशाह और बेगम ज़ीनतमहल ने सोचा कि अब 31 मई तक ठहरे रहना गलती होगी।

इतने में मेरठ की पैदल सेना और तोपखाना भी दिल्ली पहुंच गया। मेरठ के तोपखाने ने लाल क़िले में घुसते ही सम्राट बहादुरशाह के नाम पर 21 तोपों की सलामी दी। चार्ल्स बाल लिखता है कि सेना के भारतीय अफ़सरों ने सम्राट बहादुरशाह को जाकर सलाम किया और मेरठ का सब हाल कह सुनाया। इन अफ़सरों में हिन्दू और मुसलमान दोनों शामिल थे। मेटकाफ़ लिखता हैं कि सम्राट ने उनसे कहा—"मेरे पास कोई खजाना नहीं है, मैं आप लोगों को

---

* Malleson, vol. v.

† J. C. Wilson's *Official Narrative.*

तनखाहें कहां से दूंगा !" सिपाहियों ने उत्तर दिया—"हम लोग हिन्दोस्तान भर के अंगरेज़ी खज़ाने ला-लाकर आपके कदमों पर डाल देंगे।" बूढ़े सम्राट ने स्वाधीनता संग्राम का नेतृत्व स्वीकार कर लिया और समस्त क़िला सम्राट की जयध्वनि से गूंज उठा !

दिल्ली के सहस्त्रों नगरनिवासी क्रान्तिकारियों के साथ मिल गए जो अंगरेज़ जहां मिला, उसे वहीं समाप्त कर दिया गया। लिखा है कि जिस समय मेरठ की फ़ौज दिल्ली पहुंची, तो दिल्ली के हज़ारों मुसलमान उनके चारों तरफ जमा हो गए और दिल्ली के हिन्दू वाशिन्दे जगह-जगह अपनी लुटियों में मेरठ से आए हुए सिपाहियों को ओलों और बताशों का शरबत पिलाने लगे। दिल्ली के अंगरेज़ी बैंक पर कब्जा कर लिया गया और दूसरी अंगरेज़ी इमारतों को मिसमार कर दिया गया।

दिल्ली का मैगज़ीन

"दिल्ली के अन्दर उस समय कोई गोरी पलटन न थी। क़िले के पास अंगरेज़ों का एक बहुत बड़ा मैगज़ीन था, जिसमें क़रीब नौ लाख कारतूस, दस हज़ार बन्दूकें और बहुत-सा गोला बारूद था। क्रान्तिकारी सेना मैगज़ीन की ओर बढ़ी। उन्होंने दिल्ली सम्राट के नाम पर मैगज़ीन के अंगरेज़ अफ़सर लेफ्टिनेंट विलोबी को सन्देश भेजा की मैगज़ीन हमारे हवाले कर दो। विलोबी ने इनकार किया। मैगज़ीन के भीतर नौ अंगरेज और कुछ हिन्दोस्तानी थे। हिन्दोस्तानियों ने जब लालकिले के ऊपर सम्राट बहादुरशाह का हरा और सुनहरा झण्डा फहराते हुए देखा, तो वे अपने भाइयों से जा मिले। यह हरा झण्डा ही सन् 1857-58 की क्रान्ति में सारे भारत के अन्दर क्रान्तिकारियों का युद्ध का झण्डा था। नौ अंगरेज़ों ने कुछ देर वीरता के साथ शत्रु का मुकाबला किया। अन्त में मैगज़ीन को बचा सकना असम्भव देख उन्होंने उसमें आग लगा दी। लिखा है कि मैगज़ीन के उड़ने पर एक हजार तोपों के एक साथ छूटने का सा धड़ाका हुआ। जिससे सारी दिल्ली के मकान हिल गए। नौ अंगरेज वीर उसी आग के अन्दर समाप्त हो गए और उसी के साथ 25 हिन्दोस्तानी सिपाही और आस-पास की गलियों में करीब 300 और नगर निवासी टुकड़े-टुकड़े होकर उड़ गए। बन्दूकें सब क्रान्तिकारियों के हाथ आईं और हर सिपाही को चार-चार बन्दूके मिल गईं। छावनी के अन्दर सब अंगरेज़ अफ़सर मार डाले गए। शहर के अन्दर अंगरेज़ों का क़त्लेआम 11 मई से 16 मई तक जारी रहा। इसी बीच सैंकड़ों अंगरेज़ जान बचा कर दिल्ली से भाग निकले। अनेकों ने अपने मुंह काले रंग लिए और हिन्दोस्तानी फ़क़ीरों के से कपड़े पहन लिए। अनेक गरमी से और मार्ग की कठिनाई से मर गए और अनेक को आसपास के गांव वालों ने खत्म कर दिया। कुछ की रहमदिल गांव वालों ने आश्रय दिया और अपने यहां छिपा लिया।

दिल्ली की स्वाधीनता

16 मई, सन् 1857 को भारत की प्राचीन राजधानी दिल्ली पूरी तरह कम्पनी के हाथों से आज़ाद हो गई और सम्राट बाहदुरशाह फिर से दिल्ली का

क्रियात्मक सम्राट गिना जाने लगा। निस्सन्देह बाक़ी भारत पर इसका बहुत जबरदस्त प्रभाव पड़ा। नाना साहब और क्रान्ति के दूसरे नेताओं ने बहादुरशाह के ही नाम पर सारे भारत के नरेशों, सैनिकों और प्रजा का अंगरेज़ों के विरुद्ध युद्ध के लिए आह्वान किया था। बहादुरशाह का झण्डा ही उस समय भारत भर के क्रान्तिकारियों का झण्डा था।

यह एक बात ध्यान देने योग्य है कि यद्यपि मेरठ, दिल्ली और उसके आस-पास के ग्रामों में उन दिनों एक-एक अंगरेज़ को चुन-चुन कर मारा गया फिर भी एक अंगरेज़ स्त्री का अपमान, क्रान्तिकारियों की ओर से नहीं किया गया। इसके सबूत में हम केवल कम्पनी की खुफ़िया पुलिस के प्रधान अफसर, आनरेबुल सर विलियम म्योर, के० सी० एस० आई० का बयान नीचे देते हैं। वह लिखता है कि—

> **"चाहे और कितना भी अत्याचार और रक्तपात क्यों न हुआ हो, जो क़िस्से अंगरेज स्त्रियों की बेइज्जती के फैल गए थे, वे सब, जहां तक मैंने देखा और जांच की, बिलकुल निराधार थे।"***

अलीगढ़ की स्वाधीनता

दिल्ली की स्वाधीनता की खबर बिजली की तरह सारे देश में फैल गई। अनेक स्थानों के नेता यह निश्चय न कर पाए कि हमें अपने यहां तुरन्त क्रान्ति शुरू कर देनी चाहिए या नियत तिथि का इन्तजार करना चाहिए; फिर भी 11 मई से लेकर 31 मई तक समस्त उत्तर भारत में जगह-जगह क्रान्ति की ज्वाला भड़क उठी। कम्पनी की 9 नम्बर पैदल पलटन अलीगढ़, मैनपुरी, इटावा और बुलन्दशहर में बंटी हुई थी। मई के शुरू में एक ब्राह्मण प्रचारक बुलन्दशहर की छावनी में सिपाहियों को क्रान्ति का उपदेश देने के लिए पहुंचा। पलटन के तीन सिपाहियों ने मुखबिरी करके उस ब्राह्मण को पकड़वा दिया। पलटन का मुख्य स्थान अलीगढ़ था; उस ब्राह्मण को फांसी के लिए अलीगढ़ लाया गया। 20 मई की शाम को सब देशी सिपाहियों के सामने उसे फांसी पर लटका दिया गया। ब्राह्मण को फांसी पर लटका हुआ देख कर सिपाहियों का खून खौलने लगा। लिखा है कि तुरन्त एक सिपाही क़तार से निकल कर अपनी तलवार से उसके शरीर की ओर इशारा करके चिल्लाने लगा—"भाइयो! यह शहीद हमारे लिए रक्त का स्नान कर रहा है।" सिपाहियों के लिए अब 31 तारीख का इन्तजार कर सकना असम्भव था। तुरन्त समस्त 9 नम्बर पलटन बिगड़ खड़ी हुई। किन्तु इस पलटन के सिपाहियों ने शान्ति के साथ अपने अंगरेज अफ़सरों से कहा कि यदि आप लोग अपनी जान बचाना चाहते हैं, तो तुरन्त अलीगढ़ छोड़ दीजिए। उसी समय अलीगढ़ के सब अंगरेज़ अपनी स्त्रियों और बच्चों सहित अलीगढ़ से चल दिए और 20 तारीख की आधी रात से पहले स्वाधीनता

---

* "However much of cruelty and bloodshed there was, the tales which gained currency of dishonour to ladies were, so far as my observation and enquiries went, devoid of any satisfactory proof."—Hon, Sir Wm. Muir, K. C. S. I. Head of the Intelligence Deptt.

का हरा झण्डा अलीगढ़ के ऊपर फहराने लगा । सिपाही बहुत-सा खज़ाना और अस्त्र-शस्त्र लेकर दिल्ली की ओर रवाना हो गए ।

मैनपुरी की स्वाधीनता

अलीगढ़ का यह समाचार 22 तारीख को मैनपुरी पहुंचा । उसी दिन वहां के सिपाही बिगड़ खड़े हुए । इन लोगों ने भी तमाम अंगरेज़ों की जान वख्श दी और ठीक अलीगढ़ के सिपाहियों के समान गोला बारुद और शस्त्र ऊंटों पर लाद कर 23 मई को राजधानी की ओर रवाना हो गए। स्वाधीनता का झण्डा मैनपुरी के ऊपर भी फहराने लगा । ये वे स्थान थे, जहां-जहां कम्पनी की सेनाएं उन दिनों रहा करती थीं ।

इटाव की स्वाधीनता

यही हालत इटावे की हुई । इटावे के कलेक्टर मि० ह्यूम ने पुलिस और जनता से मदद चाही । किन्तु इन दोनों ने खुले आम क्रान्तिकारियों का साथ दिया । असिस्टेंट मैजिस्ट्रेट, डेनियल लड़ाई में मारा गया । 23 मई को हिन्दोस्तानी सिपाहियों ने खज़ाने पर कब्जा कर लिया, जेलखाने को तोड़ दिया, अंगरेज़ों को अपने बच्चों और स्त्रियों समेत भाग जाने का मौक़ा दिया। लिखा है कि ह्यूम साहब एक भारतीय स्त्री का रूप धारण करके इटावा से निकल भागे ।* शहर में स्वाधीनता का ढिंढोरा पीट दिया गया । इस तरह 9 नम्बर पलटन के सब सिपाही अलीगढ़, वुलन्दशहर, मैनपुरी, इटावा और आसपास के इलाके को स्वाधीन करके, कम्पनी के खजाने पर कब्जा करते हुए, अंगरेज़ों की जान बख्शते हुए, रसद और हथियार साथ लेकर दिल्ली की ओर चल दिए । इन नगरों के शासन का प्रवन्ध नगर निवासियों को सौंप दिया गया ।

नसीराबाद में क्रान्ति

अजमेर के निकट नसीराबाद में कम्पनी की एक पलटन देशी पैदल की, एक कम्पनी गोरों की और कुछ तोपखाना रहा करता था। मेरठ के सिपाही इस समय दूर-दूर तक फैल गए थे जिनमें से कुछ नसीराबाद भी पहुंचे । 28 मई को वहां की हिन्दोस्तानी सेना विगड़ी । गोरों की कम्पनी से उनका संग्राम हुआ। कुछ अंगरेज मारे गए और बाकी जान बचा कर भाग गए। देशी सिपाहियों के नेता दिल्ली सम्राट के नाम पर नगर के शासन का प्रबन्ध करके ख़ज़ाना, हथियार और कई हज़ार सिपाहियों को साथ लेकर दिल्ली की ओर चल दिए ।

रुहेलखण्ड का नेता खानबहादुर खां

रुहेलखण्ड का प्रान्त कुछ दिन पहले ही रुहेला पठानों के स्वाधीन शासन में रह चुका था। बरेली वहां की राजधानी थी । अन्तिम रुहेला नवाब का वंशज खानबहादुर खां इस समय अंगरेज कम्पनी के अधीन जज के पद पर नियुक्त था । यह खानबहादुर खां ही रुहेलखण्ड में क्रान्ति का मुख्य नेता था ।

**The Red Pamphlet*, Part ii, p. 70.

हेलखण्ड की पलटनों से अपील

बरेली में कम्पनी की ओर से 8 नम्बर देशी सवार, 18 और 68 नम्बर पैदल पलटनें और कुछ तोपखाना रहता था। जनरल सिवल्ड वहां का सेनापति था। मेरठ की क्रान्ति की खबर 14 मई को बरेली पहुंची। मेरठ की क्रान्ति के बाद ही अंगरेज़ कमाण्डर-इन-चीफ़ ने हिन्दोस्तान भर की सेनाओं में इस बात का ऐलान करा दिया था कि नए कारतूस बन्द कर दिए गए हैं और सब सिपाही पुराने कारतूसों का ही उपयोग करें। किन्तु क्रान्ति पर इसका अब कोई असर न हो सकता था। देहली से नीचे लिखा पत्र रुहेलखण्ड की पलटनों के नाम पहुंचा—

"दिल्ली की सेना के सेनापति की ओर से बरेली और मुरादाबाद की पलटनों के सेनापतियों के नाम हार्दिक आलिंगन! भाइयों! दिल्ली में अंगरेज़ों के साथ जंग हो रही है। खुदा की दुआ से हमने अंगरेज़ों को जो पहली शिकस्त दी है, उससे वे इतना घबरा गए हैं, जितना किसी दूसरे मौके पर दस शिकस्तों से भी न घबराते। बेशुमार हिन्दोस्तानी बहादुर दिल्ली में आ-आकर जमा हो रहे हैं। ऐसे मौके पर अगर आप वहां पर खाना खा रहे हैं, तो हाथ यहां आकर धोइए। शाहों का बादशाह, जहांपनाह, हमारा दिल्ली का शहनशाह आपका इस्तक़बाल करेगा और आपकी खिदमत को सिला देगा। हमारे कान इस तरह से आपकी ओर लगे हुए हैं, जिस तरह रोज़ेदारों के कान अजान देने वाले की पुकार की ओर लगे रहते हैं। हम आपकी तोपों की आवाज सुनने के लिए बेचैन हैं। आपके दीदार की प्यासी हमारी आंखें उसी तरह सड़क पर लगी हैं, जिस तरह कासिद की आंखें लगी रहती हैं। आइए! आपका फर्ज है कि फौरन आइए। हमारा घर आपका घर है! भाइयों! आइए, बिना आपकी आमद की बहार के गुलाब में फूल नहीं आ सकते! बिना बारिश के कली नहीं खिल सकती! बिना दूध के बच्चा नहीं जी सकता!"*

पूर्व योजना का निश्चय

फिर भी बरेली के नेता ख़ानबहादुर ख़ां ने शुरू की योजना के अनुसार 31 मई तक ठहरे रहने का निश्चय किया। ख़ानबहादुर ख़ां और बरेली की सब देशी पलटनों का व्यवहार अंगरेज़ों के साथ इतना सुन्दर रहा कि अंगरेज़ों को अन्त समय तक उनकी वफ़ादारी में सन्देह न होने पाया।

बरेली में स्वाधीनता का झण्डा

ठीक 31 मई को सवेरे सबसे पहले कप्तान ब्राउनलो का बंगला जलाया गया। ठीक 11 बजे दोपहर को अचानक एक तोप छूटी। यही क्रान्ति के शुरू होने का चिह्न था। बरेली का संगठन बड़ा अच्छा था। 68 नम्बर पलटन ने अंगरेज़ों के बंगलों में आग लगाना और अंगरेज़ों को मारना शुरू कर दिया। अंगरेज़ नैनीताल की ओर भागने

---

* *Narrative of the Indian Revolt*, p. 33.

लगे। जनरल सिवल्ड और अनेक अन्य अफसर मारे गए। केवल 32 अंगरेज जान बचा-कर नैनीताल पहुंचे। 6 घंटे के अन्दर बरेली के ऊपर स्वाधीनता का हरा झण्डा फहराने लगा। जिस समय अंगरेज़ी झण्डा उतार कर उसकी जगह हरा झण्डा लगाया गया, उसी समय तोपखाने के सूबेदार बख्त ख़ां ने विप्लवकारी सेनाओं का प्रधान सेनापतित्व ग्रहण किया। इतिहास लेखक चार्ल्स बाल लिखता है कि बख्त खां ने सिपाहियों को उपदेश दिया कि स्वाधीनता प्राप्त करने के बाद तुम्हें शान्ति और न्याय का व्यवहार करना चाहिए। समस्त प्रजा ने खानबहादुर खां को सम्राट की ओर से रुहेलखण्ड का सूबेदार स्वीकार किया। उसी दिन सूर्यास्त से पहले-पहले खानबहादुर खां की ओर से एक दूत सम्राट को रुहेलखण्ड की स्वाधीनता की सूचना देने के लिए दिल्ली की ओर रवाना हो गया।

शाहजहांपुर की स्वाधीनता

बरेली से 47 मील दूर शाहजहांपुर में 28 नम्बर पैदल पलटन थी। ठीक बरे- के ही समान शाहजहांपुर भी इस पलटन के प्रयत्नों द्वारा 31 मई की शाम तक आज़ाद हो गया।

मुरादाबाद की स्वाधीनता

बरेली के दूसरी ओर मुरादाबाद है। वहां पर 29 नम्बर देशी पलटन थी। 1 मई को अंगरेज़ अफ़सरों को पता चला कि मेरठ के कुछ क्रान्तिकारी सिपाही मुरादाबाद के पास आकर ठहरे हुए हैं। रात के समय 29 नम्बर के सिपाहियों को मेरठ के सिपाहियों पर हमला करने का हुक्म मिला। सिपाहियों ने उन पर हमला किया। लड़ाई के बाद इन सिपाहियों ने अपने अफ़सरों को इत्तला दी कि सिवाय एक के बाकी सब मेरठ वाले भाग गए। कुछ दिनों बाद पता चला कि ये सब मेरठ के सिपाही मुरादाबाद के सिपाहियों के साथ बैरकों में आए और रात को खाने-पीने और बातचीत के बाद वहीं आनन्द के साथ रात बिताई।

31 मई को सवेरे 29 नम्बर पलटन के सब सिपाही परेड पर जमा हुए। उन्होंने अपने अंगरेज़ अफ़सरों को नोटिस दिया—"अंगरेज़ कम्पनी का राज समाप्त हो गया। आप सब लोग दो घन्टे के अन्दर मुरादाबाद छोड़ दीजिए, नहीं तो आप सबको मार डाला जाएगा।" मुरादाबाद की पुलिस और जनता भी क्रान्तिकारियों के साथ थी। कुछ अंगरेज़, जिनमें वहां के जज, कलक्टर और सिविल सर्जन भी शामिल थे, अपने बाल-बच्चों को लेकर मुरादाबाद से भाग निकले। मुरादाबाद का कमिश्नर पावेल और उसके कुछ अंगरेज़ साथी मुसलमान हो गए; उनकी जानें बख्श दी गईं। सिपाहियों ने ख़ज़ाने और तमाम सरकारी माल पर क़ब्ज़ा कर लिया। सूर्यास्त से पहले-पहले मुरादाबाद के ऊपर भी आज़ादी का हरा झण्डा फहराने लगा।

बदायूं की स्वाधीनता

बरेली, शाहजहांपुर और मुरादाबाद के अतिरिक्त रुहेलखण्ड में एक और बड़ा

शहर बदायूं है। पहली जून की शाम को बदायूं में क्रान्ति प्रारम्भ हुई। सिपाहियों, मुख्य-मुख्य नगर निवासियों और पुलिस ने मिल कर ढिंढोरा पिटवा दिया कि अंगरेज़ी राज का अन्त हो गया और सूबेदार खानबहादुर खां का शासन शुरू हो गया। बदायूं के अंगरेज़ जंगलों में भाग गए। उनमें से अनेक बड़े कष्टों के साथ जंगलों में मरे। इस तरह सारा रुहेलखण्ड दो दिन के अन्दर कम्पनी के शासन से निकल गया। खानबहादुर खां ने एक नयी फ़ौज बना कर सारे रुहेलखण्ड में शान्ति और सुशासन स्थापित किया अधिकांश महकमों के हिन्दोस्तानी मुलाज़िम पूर्ववत् बहाल रखे गए और लगान दिल्ली के सम्राट के नाम पर वसूल किया जाने लगा। ख़ानबहादुर खां ने अपने हाथ से रुहेलखण्ड की स्वाधीनता का सब हाल लिख कर सम्राट को भेजा।

खानबहादुर खां का ऐलान

एक ऐलान लिख कर उसने तमाम रुहेलखण्ड में बंटवाया, जिसके मुख्य वाक्य ये थे—

“हिन्दोस्तान के रहने वालों! स्वराज्य का पाक दिन, जिसका बहुत अरसे से इन्तजार था, आ पहुंचा है! आप लोग इसे मंजूर करेंगे या इससे इंकार करेंगे? आप इस जबरदस्त मौके से फ़ायदा उठाएंगे या इसे हाथ से जाने देंगे? हिन्दू और मुसलमान भाइयों! आप सबको मालूम होना चाहिए कि अगर अंगरेज हिन्दोस्तान में रह गए, तो हम सबको क़त्ल कर देंगे और आप लोगों के मजहब को मिटा देंगे! हिंदोस्तान के बाशिंदे इतने दिनों तक अंगरेजों के धोखे में आते रहे और अपनी ही तलवारों से अपने गले काटते रहे। इसलिए अब हमें मुल्कफ़रोशी के अपने इस गुनाह का प्रायश्चित करना चाहिए! अंगरेज अब भी अपनी पुरानी दगाबाजी से काम लेंगे। वे हिंदुओं को मुसलमानों के खिलाफ और मुसलमानों को हिंदुओं के खिलाफ उभारने की कोशिश करेंगे। लेकिन हिंदू भाइयो! इनके फ़रेब में न पड़ना। हमें अपने होशियार हिन्दू भाइयों को यह बताने की जरूरत नहीं है कि अंगरेज कभी अपने वादे पूरे नहीं करते। ये लोग चाल और दगाबाजी में ताक़ हैं! ये हमेशा से सिवाय अपने मजहब के और सब मजहबों को दुनिया से मिटाने की कोशिश करते रहे हैं? क्या उन्होंने गोद लिए हुए बच्चों के हक नहीं छीन लिए हैं? क्या उन्होंने हमारे राजाओं के राज और मुल्क नहीं हड़प लिए हैं? नागपुर का राज किसने ले लिया? लखनऊ की बादशाहत किसने छीन ली? हिन्दू और मुसलमान, दोनों को पैरों तले किसने रौंदा? मुसलमानों! अगर तुम कुरान की इज्जत करते हो तो, और हिन्दुओं! अगर तुम गो-माता की इज्जत करते हो तो, अब अपने छोटे-छोटे तफ़रकों को भूल जाओ और इस पाक जंग में शामिल हो जाओ! लड़ाई के मैदान में कूद कर एक झंडे के नीचे लड़ो और खून की नदियों से अंगरेजों का नाम हिंदोस्तान से धो डालो! ××× गाय का मारा जाना बंद कर दिया जाय। इस पाक जंग में जो आदमी खुद लड़ेगा या जो लड़ने वालों की मदद करेगा, दोनों को इस लोक में और परलोक में दोनों जगह निजात मिलेगी! लेकिन अगर कोई मुल्कीजंग की

मुख़ालफ़त करेगा, तो वह अपने सर पर कुल्हाड़ी मारेगा और ख़ुदकुशी के गुनाह का ज़िम्मेदार होगा ! "

बख्त खां दिल्ली की ओर

बरेली, शाहजहांपुर, मुरादाबाद और बदायूं से कम्पनी की सारी हिन्दोस्तानी सेना कम्पनी के ख़ज़ानों, तोपों और दूसरे हथियारों सहित बख्त खां के नेतृत्व में राजधानी दिल्ली की ओर रवाना हो गई। ख़ानबहादुर ख़ां और बख्त ख़ां, दोनों की गिनती उस विप्लव के सबसे अधिक योग्य नेताओं में की जाती है।

रुहेलखण्ड के बाद हमें लखनऊ और कानपुर को कुछ देर के लिए बीच में छोड़कर, बनारस और इलाहाबाद की ओर दृष्टि डालनी होगी।

आजमगढ़ और गोरखपुर की स्वाधीनता

बनारस में कम्पनी की 37 नम्बर पैदल पलटन, एक लुधियाने की सिख पलटन और एक सवार पलटन थीं। वहां का तोपख़ाना गोरों के हाथों में था। आगरे कलकत्ते तक उस समय केवल दानापुर में एक पूरी गोरी रेजिमेण्ट थी अर्थात् यदि एक साथ सब जगह स्वाधीनता की लड़ाई शुरू होती, तो अंगरेज़ों के लिए कम से कम उत्त भारत में ठहर सकना सर्वथा असम्भव था।

31 मई को बनारस की बैरकों में आग लगी। 3 जून को गोरखपुर और आज़मगढ़ के ख़ज़ानों से सात लाख रुपये नक़द बनारस के लिए आ रहे थे। उसी दिन रा को 17 नम्बर पलटन ने जो आज़मगढ़ में थी, विप्लव प्रारम्भ कर दिया। केवल को छोड़कर और सब अंगरेज़ों की उन्होंने जान बख्श दी। यहां तक कि उनके और उनके बालबच्चों के बनारस जाने के लिए गाड़ियों तक का प्रबन्ध कर दिया। किन्तु सा लाख रुपये के उस ख़ज़ाने पर, कम्पनी के गोले-बारुद पर और जेलख़ाने, दफ्तरों इत्यादि पर क्रान्तिकारियों ने क़ब्जा कर लिया। आज़मगढ़ की पुलिस ने सिपाहियों का पू साथ दिया। आज़मगढ़ के नगर पर उसी रात को हरा झण्डा फहराने लगा।

जनरल नील

इस समय तक गवर्नर जनरल लार्ड कैनिंग ने मेरठ के विद्रोह और दिल्ली की स्वाधीनता का समाचार पाते ही बम्बई, मद्रास और रंगून से मंगा कर बहुत-सी गोरी सेना बंगाल में जमा कर ली। ठीक उन दिनों ईरान के साथ अंगरेज़ों का युद्ध समाप्त हुआ था और चीन के ऊपर अंगरेज़ हमला करने वाले थे। भारत के विप्लव के कारण अंगरेज़ों को चीन पर हमला करने का विचार छोड़ देना पड़ा। एक विशाल गोरी सेना ईरान से चीन की ओर जा रही थी। लार्ड कैनिंग ने इस सारी सेना को भारत में रोक लिया। इसमें से बहुत-सी सेना लेकर सुप्रसिद्ध जनरल नील बनारस पहुंचा। बनारस के अंगरेज़ों की हिम्मत बंध गई। 4 जून को आज़मगढ़ का समाचार बनारस पहुंचा। उसी दिन तीसरे पहर बनारस के अंगरेज़ अफ़सरों ने देशी सिपाहियों से हथियार रखा लेने का निश्चय किया।

परेड के मैदान में जिस समय देशी सिपाहियों को हथियार रख देने की आज्ञा दी गई, वे बजाय हथियार रख देने के मैगज़ीन पर और अंगरेज़ अफ़सरों पर टूट पड़े। तुरन्त सिख पलटन उनके मुक़ाबले के लिए आ खड़ी हुई। अभी लड़ाई शुरू ही हुई थी कि अंगरेज़ी तोपख़ाने ने आकर सब पर गोले बरसाने शुरू किए। यद्यपि सिख अंगरेज़ों का साथ दे रहे थे फिर भी उस समय की घबराहट में तोपख़ाने के अंगरेज़ अफ़सर हिन्दू और सिखों में तमीज़ न कर सके। उन्होंने दोनों पर गोले बरसाने शुरू किए। विवश होकर सिखों को विप्लवकारियों का साथ देना पड़ा। सन् 57-58 के तमाम विप्लव में शायद यही एकमात्र अवसर था जब कि सिख सेना ने हिन्दुओं और मुसलमानों का साथ दिया।

बनारस में क्रांतिकारियों की असफलता

बनारस की जनता विप्लवकारियों के साथ थी, किन्तु सिखों ने, वहां के कई रईसों ने और राजा चेतसिंह के वंशज, बनारस के उपाधिधारी राजा ने उस समय अंगरेज़ों को पूरी सहायता दी। विप्लवकारी नगर छोड़ कर इधर-उधर फैल गए।

जौनपुर की स्वाधीनता

5 जून को जौनपुर में क्रान्ति प्रारम्भ हुई। कई अंगरेज़ मारे गए। बाक़ी को नगर छोड़ने की आज्ञा दे दी गई। क्रान्तिकारियों ने ख़ज़ाने पर क़ब्ज़ा कर लिया जौनपुर के बचे हुए अंगरेज़ कश्तियों में बैठ कर बनारस की ओर चल दिए।

अपने-अपने नगरों को स्वाधीन करने के बाद आजमगढ़ और जौनपुर, दोनों जगह के सिपाही फ़ैज़ाबाद की ओर चल दिए। दोनों नगरों के ऊपर हरा झण्डा फहराने लगा। यद्यपि बनारस नगर पर कम्पनी का क़ब्ज़ा रहा फिर भी आसपास का अधिकांश इलाक़ा क्रान्तिकारियों के क़ब्ज़े में आ गया। जगह-जगह अंगरेज़ों के नियुक्त किए हुए नए ज़मींदारों को हटा कर पुराने पैतृक ज़मींदार उनकी जगह नियुक्त कर दिए गए। जगह-जगह अंगरेज़ी अदालतों, अंगरेज़ी जेलों और अंगरेज़ी दफ्तरों का खात्मा हो गया। तार काट डाले गए, रेलें उखाड़ कर फेंक दी गईं, गांव-गांव में हरा झण्ड लिए हुए स्वयंसेवक पहरा देने लगे।

बनारस के प्रान्त भर में क्रान्तिकारियों ने एक भी अंगरेज़ स्त्री को नहीं मारा और जिन अंगरेज़ों ने हथियार रख दिए, उन्हें शान्ति के साथ स्वयं गाड़ियों में बैठा कर नगर से चले जाने की इजाज़त दे दी।

इलाहाबाद का महत्व

क्रान्तिकारियों और अंगरेज़ों, दोनों की दृष्टि से इलाहाबाद का नगर बनारस की अपेक्षा कहीं अधिक महत्व का था। कलकत्ते से पश्चिमोत्तर प्रदेशों को जाने वाली सब सड़कें इलाहाबाद में मिलती थीं। इलाहाबाद का क़िला भारत के ज़बरदस्त क़िलों में से था। उसमें गोले-बारूद और अस्त्र-शस्त्रों का एक बहुत बड़ा संग्रह था। लिखा है की प्रयाग के पण्डे आसपास की हिन्दू जनता के अन्दर स्वाधीनता के युद्ध का प्रचार

करने में बहुत बड़ा भाग ले रहे थे। मुसलमानों में हिन्दुओं की अपेक्षा कहीं अधिक औ
था। चार्ल्स बाल लिखता है कि अंगरेज़ सरकार के अधिकांश बड़े और छोटे देशी मुस-
ज़िम इस संगठन में शामिल थे।

इलाहाबाद शहर पर क्रांतिकारियों का क़ब्ज़ा

जिस समय मेरठ का समाचार इलाहाबाद पहुंचा, इलाहाबाद में एक भी अंगरेज़ सिपाही न था, वहां 6 नम्बर देशी पलटन, क़रीब 200 सिख सिपाही और मुट्ठी भर अंगरेज़ अफ़सर थे। अवध से देशी सवारों की एक पलटन और बुला ली गई। 6 नम्बर पलटन ने अपने अंगरेज़ अफ़सरों को इतनी सुन्दरता के साथ बहकाए रखा कि अफ़सरों को अन्त समय तक उन पर सन्देह न हो पाया। दिल्ली का समाचार पाकर उन्होंने अपने अफ़सरों से कहा—"आप हमें दिल्ली भेज दीजिए, हम विद्रोहियों के टुकड़े टुकड़े कर डालेंगे।" इस पर गवर्नर-जनरल लार्ड कैनिंग तक ने 6 नम्बर पलटन को शाबाशी दी। लिखा है कि 6 जून को जब उनके अंगरेज़ अफ़सर बैरकों में उनसे मिलने के लिए गए तो कुछ सिपाहियों ने अपनी खैरखाही दरशाने के लिए लपक कर उन्हें छा से लगाया और उनके दोनों गालों को चूमा। किन्तु वही रात उनके विप्लव के लि नियत थी। 6 नम्बर की बैरकें क़िले से बाहर थीं। जिस वक्त अंगरेज़ अफ़सर खा खा रहे थे, सिपाहियों की बिगुल बजी। अनेक अंगरेज़ मारे गए। बाक़ी क़िले जाकर छिप गए। अंगरेज़ों ने सवार पलटन को अपनी मदद के लिए बुलाया। सवा जमा हुए किन्तु बजाय क्रान्तिकारियों पर हमला करने के वे मैदान में पहुंचते ही क्रान्ति-कारियों के साथ मिल गए। दोनों पलटनों के अधिकांश अफ़सर मारे गए। अंगरेज़ों के बंगलों को आग लगा दी गई।

यदि सिख क्रांतिकारियों का साथ देते !

सिख पलटन इस समय क़िले के अन्दर थी। यदि क़िले के सिख उस समय क्रान्ति-कारियों का साथ दे जाते तो आध घंटे के अन्दर इलाहाबाद का किला और उसके अन्द का तमाम सामान क्रान्तिकारियों के हाथों में आ जाता। किन्तु ठीक उस संकट के स सिखों ने अंगरेज़ों का साथ दिया। अंगरेज़ी झण्डा इलाहाबाद के क़िले पर फहरा रहा।

कोतवाली के ऊपर स्वाधीनता का झंडा

शहर के लोगों ने क्रान्तिकारी सिपाहियों का पूरा साथ दिया। अंगरेज़ों के मकान जला दिए गए। जेलख़ाने के क़ैदी रिहा कर दिए गए। ख़ज़ाने पर क़ब्ज़ा क लिया गया, रेल और तार तोड़ डाले गए। इलाहाबाद के ख़ज़ाने में क्रान्तिकारि को क़रीब तीस लाख रुपये मिले। 7 तारीख की शाम को शहर और छावनी में ह झण्डे का जलूस निकाला गया। नगर निवासियों और सिपाहियों ने झण्डे को सला दी। शहर की कोतवाली के ऊपर हरा झण्डा फहराने लगा।

हरे झंडे का जलूस

इलाहाबाद के आसपास के सैकड़ों गांवों में हिन्दू और मुसलमान रैयत और ज़मींदा सबने मिल कर अंगरेज़ी राज के ख़ात्मे का ऐलान कर दिया और इलाहाबाद के स

एक-एक गांव के ऊपर हरा झण्डा फहराने लगा। जगह-जगह अंगरेज़ों के नियुक्त किए हुए नए ज़मींदार हटा दिए गए और पुराने खानदानी ज़मींदार उनकी जगह नियुक्त कर दिए गए। लिखा है कि नगर के अन्दर दस-दस, बारह-बारह बरस के लड़के हरे झण्डे हाथों में लेकर जलूस बनाकर निकलने लगे। इतिहास लेखक सर जान के लिखता है—

> "न केवल गंगा के पार के इलाकों में ही, बल्कि गंगा और जमुना के बीच के इलाके में भी देहाती जनता बिगड़ खड़ी हुई। × × < शीघ्र ही हिन्दू या मुसलमान एक भी मनुष्य न बचा जो हमारे विरुद्ध न हो गया हो।"*

मौलवी लियाक़तअली

इलाहाबाद के स्वाधीन होने के बाद दो-चार दिन कुछ अराजकता रही। उसके बाद शहर के लोगों और आसपास के कुछ ज़मींदारों ने मिल कर मौलवी लियाक़तअली नामक एक योग्य मनुष्य को सम्राट बहादुरशाह की ओर से इलाहाबाद के इलाके का सूबेदार नियुक्त किया। लियाक़तअली एक असाधारण योग्यता का मनुष्य था। उसके चरित्र की पवित्रता के कारण सब लोग उसका आदर करते थे। उसने खुसरो बाग़ को अपना केन्द्र बनाया, शहर में पूरी शान्ति स्थापित कर दी और दिल्ली सम्राट को बराबर अपने यहां के हालात की सूचना देता रहा। इसके बाद मौलवी लियाक़तअली ने क़िले पर क़ब्ज़ा करने का प्रयत्न किया। क़िले के भीतर के सिखों को उसने स्वाधीनता के युद्ध में भाग लेने के लिए निमन्त्रित किया, किन्तु सिखों पर इसका कोई असर न हुआ।

यद्यपि क्रान्तिकारियों के सबसे अधिक महत्वपूर्ण कारनामों को बयान करना अभी बाक़ी है, फिर भी इस समय से ही अंगरेज़ों की ओर से प्रतिकार की आग भड़कनी शुरू हो गई।

---

*"For not only in the districts beyond the Ganges but in those lying between the two rivers, the rural population had risen……and, soon there was scarcely a man of either faith who was not arrayed against us."—Kaye's *Indian Mutiny*, vol. ii, page 195.

छियालीसवां अध्याय

प्रतिकार का प्रारम्भ

जनरल नील की दमन योजना

लार्ड कैनिंग एक विशाल सेना सहित, जिसमें अधिकांश गोरे, कुछ सिख औ कुछ मद्रासी थे, जनरल नील को बनारस की ओर रवाना कर चुका था। बनार का नगर अंगरेज़ों के हाथों में था। जनरल नील के बनारस पहुंचते ही पहले नगर बड़ी-बड़ी गिरफ्तारियां हुईं। इसके बाद जनरल नील ने आसपास के इलाके को से विजय करने के लिए अंगरेज़ों और सिख सिपाहियों के कई अलग-अलग दस्ते बनाए इस अवसर पर जनरल नील की आज्ञा से उसकी सेना ने हिन्दोस्तानी प्रजा के ऊपर भयंकर अत्याचार किए, उन्हें हम अंगरेज़ इतिहास लेखकों की ही पुस्तकों से लेकर स्थान पर दे रहे हैं।

कई तरह की फांसी

जनरल नील के सिपाही एक-एक गांव में घुसते थे। जितने आदमी उन्हें में मिलते थे, उन्हें वे बिना किसी भेद के तलवार के घाट उतार देते थे या से उड़ा देते थे या फांसी पर लटका देते थे। स्थान-स्थान पर फांसी के तख्ते किए गए जिन पर चौबीस-चौबीस घन्टे बराबर काम जारी रहता था। जब इनसे काम न चला तो अंगरेज़ अफ़सरों ने दरख्तों की शाखों से फांसी का काम लेना किया। जिस आदमी को फांसी देनी होती थी, उसे प्रायः हाथी पर बैठाया जाता हाथी को किसी ऊंची डाल के पास ले जाया जाता था। उस आदमी की गरदन से डाल के साथ बांध दी जाती थी। फिर हाथी को हटा लिया जाता था और लटक हुई लाश को उसी जगह छोड़ दिया जाता था।*

नरसंहार और अग्निकांड

जान के और मालेसन ने अपने 'विप्लव के इतिहास' में लिखा है कि जो लोग पर लटकाए जाते थे, उनके हाथों और पैरों को विनोद की ग़रज़ से अंगरेज़ी के आठ और नौ (8 and 9) की शक्ल में बांध दिया जाता था।† जब ये उपाय भी दिखाई न दिए तो अंगरेज अफ़सरों ने गांव जलाने शुरू कर दिए। गांव के बाहर लगा दी जाती थीं और सब पुरुष, स्त्रियों, बच्चों और पशुओं समेत गांव अलग-अलग आग लगा दी जाती थी। अनेक अंगरेज़ अफ़सरों ने बड़े गर्व के इन हृदय विदारक दृश्यों को अपने पत्रों में बयान किया है। आग इतनी होशियारी से लगाई जाती थी कि एक भी गांव वाला न बच सके। चार्ल्स बाल लिखता है कि

---

* *Narrative of the Indian Revolt*, p. 69.

† Kaye and Malleson's *History of the Indian Mutiny*, vol. ii, p. 17

अपने दुधमुंहे बच्चों समेत और अगणित बूढ़े पुरुष और स्त्रियां, जो अपनी जगह से हिल न सकते थे, बिछौने के अन्दर जला कर खाक कर दिए गए।*

भागने वाले गोलियों के शिकार

एक अंगरेज़ अपने एक पत्र में लिखता है—"हमने एक बड़े गांव को आग लगाई, जिसमें लोग भरे हुए थे। हमने उन्हें घेर लिया और जब वे आग की लपेटों में से निकल कर भागने लगे तो हमने उन्हें गोलियों से उड़ा दिया।"†

प्रतिकार की पहली बाढ़

अनेक स्थानों पर क्रान्तिकारियों ने अंगरेज़ मर्द, औरत और बच्चों की जानें बख्श दीं। असंख्य ग्रामों में लोगों ने भागे हुए अंगरेज़ों को अपने घरों में आश्रय दिया किन्तु अंगरेज़ कम्पनी ने पूरे इतिहास में अंगरेज़ों के अन्दर वीरोचित गुणों का सदा अभाव मिला है। जनरल नील की सेना ने भी दोषी-निर्दोषी, बालक-बूढ़े स्त्री-पुरुष का कोई ख़याल नहीं किया।

जनरल नील के अत्याचारों के बारे में एक अंगरेज़ इतिहास लेखक लज्जित होकर लिखता है—

> **"अच्छा यह है कि जनरल नील के प्रतिकार के बारे में कुछ न लिखा जाय!"‡**

इतिहास लेखक सर जान के लिखता है—

> **"फ़ौजी और सिविल, दोनों तरह के अंगरेज अफ़सर अपनी-अपनी खूनी अदालतें लगा रहे थे अथवा बिना किसी तरह के मुकदमे का ढोंग रचे और बिना मर्द-औरत या छोटे बड़े का विचार किए, भारतवासियों का संहार कर रहे थे। इसके बाद खून की प्यास और भी अधिक भड़की। भारत के गवर्नर-जनरल ने जो पत्र इंगलिस्तान भेजे, उनमें हमारी ब्रिटिश पार्लियामेंट के कागजों में यह बात दर्ज है कि 'बूढ़ी औरतों और बच्चों का उसी तरह वध किया गया है, जिस तरह उन लोगों का, जो विप्लव के अपराधी थे।' इन लोगों को ढंग से फांसी ही नहीं दी गई बल्कि उन्हें गांव के अंदर जला कर मार डाला गया, शायद कहीं-कहीं उन्हें इत्तफ़ाकिया गोली से भी उड़ा दिया गया। अंगरेजों को गर्व के साथ यह कहते हुए अथवा पत्रों में लिखते हुए भी संकोच न हुआ कि हमने एक भी हिंदोस्तानी को नहीं छोड़ा और काले हिंदोस्तानियों को गोलियों से उड़ाने में हमें बड़ा विनोद और आश्चर्यकारक आनंद अनुभव**

---

* Charles Ball's *Indian Mutiny*, vol. i, pp. 243-44.

† "We set fire to a large village which was full of them. We surrounded them, and when they came rushing out of the flames, we shot them!"—Charles Ball's *Indian Mutiny*, Vol. i, pp. 243-244.

‡ "It is better not to write anything about General Neill's revenge!"

होता था । एक पुस्तक में जिसका बड़े-बड़े अंगरेज अफसरों ने समर्थन किया है, लिखा है कि सड़कों के चौरास्तों पर और बाजारों में जो लाशें टंगी हुई थीं, उनको उतारने में सूर्योदय से सूर्यास्त तक मुरदे ढोने वाली आठ-आठ गाड़ियां बराबर तीन-तीन महीने तक लगी रहीं और इस तरह (केवल एक स्थान पर) 'छै हजार मनुष्यों को झटपट खत्म कर परलोक भेज दिया गया।'××× जब कोई अंगरेज यह पढ़ता है कि किसी काले रंग के बदमाश ने किसी मिस्टर चैंबर्स या किसी मिस जेनिंग्स को काट डाला तो क्रोध के मारे उसका दम घुटने लगता है, किन्तु भारतवासियों के इतिहासों में अथवा यदि इतिहास न लिखे गए तो उनके परम्परागत वृत्तांतों में हमारी कौम के विरुद्ध यह स्मरण रहेगा कि भारत की माताएं, पत्नियां और बच्चे जिनके नामों से हम इतनी अच्छी तरह परिचित नहीं है, अंगरेजों के प्रतिकार की पहली बाढ़ के निर्दयता के साथ शिकार हुए ।"*

यह दशा थोड़े-बहुत ग्रामों ही नहीं की गई । जनरल नील ने अपनी फ़ौज को अनेक दस्तों में बांट दिया था । एक-एक दस्ते में कई-कई अफ़सर होते थे । इनमें से एक अफ़सर अपने केवल एक दिन के कारनामे को अभिमान के साथ बयान करते हुए अपने किसी अंगरेज़ मित्र को लिखता है—

> "किंतु आप यह जान कर संतुष्ट होंगे कि मैंने बीस गांवों को जमीन से मिला कर बराबर कर दिया ।"

बनारस से जनरल नील अपनी विजयी सेना सहित इलाहाबाद की ओर बढ़ा। रास्ते में उसने बनारस से इलाहाबाद तक हज़ारों ग्रामों को ग्राम निवासियों सहित जला कर ख़ाक कर दिया ।

---

* "Soldiers and civilians alike were holding Bloody Assizes, or slaying Natives without any assize at all, regardless of sex or age. Afterwards the thirst for blood grew stronger still. It is on the records of our British Parliament, in papers sent home by the Governor-General of India in Council that 'the aged women, and children, are sacrificed, as well as those guilty of rebellion.' They were not deliberately hanged, but burnt to death in their villages, perhaps now and then accidentally shot. Englishmen did not hesitate to boast or to record their boasting in writing that they had spared no one and that peppering away at niggers was very pleasant pastime, enjoyed amazingly. And it has been stated, in a book patronised by official authorities that 'for three months eight dead carts daily went their rounds from sunrise to sunset to take down the corpses which hung at the cross roads and market places' and that six thousand beings had been thus 'summarily disposed of and launched into eternity,'......An Englishman is almost suffocated with indignation when he reads that Mr. Chambers or Miss Jennings was hacked to death by a dusky ruffian, but in Native histories or, history being wanting, in Native legends and traditions, it may be recorded against our people, that mothers and wives and children, with less familiar names, fell miserable victims to the first swoop of English vengeance......"—Kaye's *History of the Sepoy War*, vol. ii.

इलाहाबाद निवासियों से बदला

11 जून को जनरल नील इलाहाबाद पहुंचा । यदि इससे पहले क़िले के अन्दर सिख सिपाही क्रान्तिकारियों से मिल गए होते और क़िले के अन्दर की असंख्य बन्दूकें और युद्ध की सामग्री क्रान्तिकारियों के हाथों में आ गई होती, तो जनरल नील के लिए इलाहाबाद फिर से विजय कर सकना शायद असम्भव होता । लिखा है कि नील दूर से यह देख कर चकित रह गया कि इलाहाबाद के क़िले पर अभी तक अंगरेज़ी झण्डा फहरा रहा है । इस पर भी वह इलाहाबाद-जैसे क़िले के लिए किसी भारतवासी का एतबार न कर सकता था । उसने आते ही क़िले के भीतर के सिख सिपाहियों को पास के गांव जलाने के लिए बाहर भेज दिया और क़िला गोरे सिपाहियों के सुपुर्द कर दिया । सिखों ने सहर्ष नील की आज्ञा का पालन किया । क़िला और क़िले के सामान की सहायता से अंगरेज़ों ने 17 जून को खुसरो बाग़ पर हमला किया । दिन भर खूब घमासान संग्राम हुआ । क्रान्तिकारियों ने बड़ी वीरता के साथ सामना किया । किन्तु अन्त में मौलवी लियाक़तअली नें देख लिया कि नील की विशाल सेना के मुकाबले में उसका ठहर सकना असम्भव था । इसके अतिरिक्त लियाक़तअली के पास उस समय तीस लाख रुपये का भारी ख़ज़ाना था, जिसे वह शत्रु के हाथ में पड़ने न देना चाहता था । इसलिए लियाक़तअली अपने साथियों और ख़ज़ाने सहित 17 जून की रात को कानपुर की ओर निकल गया । कानपुर के आत्मसमर्पण के बाद लियाक़तअली दक्षिण की ओर गया । वहीं से गिरफ्तार करके उसे अण्डमान भेज दिया गया । वहां कई साल तक जलावतनी भुगतने के बाद मौलवी लियाक़तअली की मृत्यु हुई । इस समय इलाहाबाद से 15 मील पश्चिम महगांव में, जहां कि लियाक़तअली का जन्म स्थान था, उनकी एक कन्या अब (1929) तक जीवित है ।

छोटे-छोटे बालकों को फांसी

18 जून की रात को अंगरेज़ों ने सिखों की मदद से इलाहाबाद के नगर में प्रवेश किया ।

इस अवसर पर इलाहाबाद के नगर निवासियों से नील और उसके आदमियों ने जिस भयंकर रूप में बदला चुकाया, उसका कुछ अनुमान इस एक घटना से लगाया जा सकता है कि अनेक छोटे-छोटे लड़कों को केवल इस अपराध में फांसी पर लटका दिया गया कि वे हरे झण्डे हाथ में लेकर ढोल बजाते हुए जलूस की शक्ल में शहर की गलियों में घूम रहे थे ।*

ऋणदाताओं को फांसी

लन्दन 'टाइम्स' के सम्वाददाता, सर विलियम रसल, से कमाण्डर-इन-चीफ़ सर कालन कैम्पबैल ने कहा था कि उन दिनों इलाहाबाद का एक अंगरेज़ सौदागर विद्रोहियों का पता लगाने के लिए स्पेशल कमिशनर, नियुक्त किया गया। वह अनेक

---

* Kaye's *Indian Mutiny*, **Book v, chapter ii.**

हिन्दोस्तानी व्यापारियों का कर्ज़दार था। सबसे पहला काम उसने यह किया कि अपने सब क़र्ज़दाताओं को पकड़ कर फ़ांसी दे दी।

इलाहाबाद चौक के नीम के वृक्ष

इलाहाबाद के चौक के अन्दर उन सात नीम के वृक्षों में से अभी (सन् 1929) तक तीन मौजूद हैं जिनकी शाखों पर चन्द दिनों के अन्दर, कहा जाता है कि क़रीब आठ सौ निर्दोष नगर निवासियों को फांसी दे दी गई। इस फांसी के ढंग को बयान करते हुए हिन्दी के प्रसिद्ध विद्वान पण्डित बालकृष्ण भट्ट, जिनकी आयु सन् 57 में क़रीब 15 वर्ष की थी, कहा करते थे कि अहियापुर मुहल्ले का एक आदमी समाचार सुन कर फांसियां देखने के लिए चौक में पहुंचा। जो अंगरेज़ फांसी दिलवा रहा था, उसने पूछा —तुम क्यों खड़े हो? उसने उत्तर दिया—सुना था, यहां फांसियां लग रही हैं, इसलिए केवल देखने आया था। साहब ने आज्ञा दी, इसे भी फांसी दे दो। तुरन्त वह निर्दोष और चकित दर्शक एक नीम पर लटका दिया गया। जो काम सात नीम के वृक्षों पर चौक में हो रहा था, वही उस समय सैकड़ों नीम और आम के वृक्षों पर इलाहाबाद और उसके आसपास के इलाके भर में किया जा रहा था।

कश्तियों पर गोलाबारी

नगर के कुछ लोगों ने बचने के लिए कश्तियों में बैठ कर नगर से भाग जाना चाहा। किन्तु क़िले के नीचे तोपें लगी हुई थीं और अंगरेज़ी सेना किनारे पर मौजूद थी। कश्तियों में भागते हुए लोगों पर किनारे से गोलियों और गोलों की बौछार की गई और उन्हें वहीं समाप्त कर दिया गया।

फांसी के तरीके

इलाहाबाद के अपने एक दिन के कारनामों को बयान करते हुए एक अंगरेज़ अफ़सर लिखता है—

> "एक यात्रा में मुझे अदभूत आनन्द आया। हम लोग एक तोप लेकर एक स्टीमर पर चढ़ गए। सिख और गोरे सिपाही शहर की तरफ़ बढ़े। हमारी कश्ती ऊपर को चलती जाती थी और हम अपनी तोप से दाएं और बाएं गोले फेंकते जाते थे। यहां तक कि हम बुरे ग्रामों में पहुंचे। किनारे पर जाकर हमने अपनी बन्दूकों से गोलियां बरसानी शुरू कीं। मेरी पुरानी दोनली बन्दुक ने कई काले आदमियों को गिरा दिया। मैं बदला लेने का इतना प्यासा था। हमने दाएं और बाए गांवों में आग लगानी शुरू की। लपटें आसमान तक पहुंची और चारों ओर फैल गईं। हवा ने उन्हें फैलने में मदद दी जिससे मालूम होता था कि दग़ाबाज़ बदमाशों से बदला लेने का दिन आ गया है। हर रोज़

---

* Sir W. H. Russell's private letter to John Delane, Editor of the *London Times,* written from Lucknow.

हम लोग विद्रोही ग्रामों को जलाने और मिटा देने के लिए निकलते थे और हमने बदला ले लिया है ।××× लोगों की जान हमारे हाथों में है और मैं तुम्हें विश्वास दिलाता हूं कि हम किसी को नहीं छोड़ते । ××× अपराधी को एक गाड़ी के ऊपर बैठा कर किसी दरख्त के नीचे ले जाया जाता है । उसकी गरदन में रस्सी का फन्दा डाल दिया जाता है । फिर गाड़ी हटा ली जाती है और वह लटका हुआ रहा जाता है ।"*

इलाहाबाद में भयंकर संहार

इलाहाबाद के इस जन संहार से माताएं या बच्चे, बूढ़े या अपाहिज, कोई न बच सका । इतिहास लेखक होम्स दुख के साथ लिखता है—

> "बूढ़े आदमियों ने हमें कोई नुकसान न पहुंचाया था; असहाय स्त्रियों से जिनकी गोद में दूध पीते बच्चे थे, हमने उसी तरह बदला लिया जिस तरह बुरे से बुरे अपराधियों से ।"†

जिस स्थान का ज़िक्र चार्ल्स बाल ने ऊपर के वाक्यों में किया है, केवल उस एक स्थान के बारे में इतिहास लेखक जान के स्वीकार करता है कि वहां पर छै हज़ार भारतवासियों का संहार किया गया । निस्सन्देह अकेले इलाहाबाद के इलाक़े में नील ने इतने भारतवासियों का संहार किया, जितने अंगरेज़ पुरुष, स्त्रियों और बच्चों का समस्त भारत के अन्दर भी सन् 57–58 भर में क्रान्तिकारियों ने नहीं किया ।

सर जार्ज कैम्पबेल लिखता है—

> "और मैं जानता हूं कि इलाहाबाद में बिलकुल बिना किसी तमीज के क़त्लेआम किया गया था ।××× और इसके बाद नील ने वे काम किए जो क़त्लेआम से भी अधिक भयंकर मालूम होते थे, उसने लोगों को जान बूझ

---

* "One trip I enjoyed amazingly; we got on board a steamer with a gun while the Sikhs and the fusiliers marched up to the city. We steamed up throwing shots right and left till we got up to the bad places, when we went on the shore and peppered away with our guns, my old double-barrel bringing down several niggers. So thirsty for vengeance I was. We fired the places right and left and the flames shot up to the heavens as they spread, fanned by the breeze, showing that the day of vengeance had fallen on the treacherous villains. Everyday, we had expeditions to burn and destroy disaffected villages and we have taken our revenge......We have the power of life in our hands and, I assure you, we spare not......The condemned culprit is placed under a tree; with a rope round his neck, on the top of carriage, and when it is pulled off, he swing."—Charles Ball's *Indian Mutiny*, vol. i., p. 257.

† "Old men had done us no harm; helpless women, with suckling infants at their breasts, felt the weight of our vengeance no less than the vilest malefactors."—Holmes' *Sepoy War*, pp. 229-30.

कर इस तरह की यातनाएं दे देकर मारा जिस तरह की यातनाएं, जहां तक हमें सबूत मिले हैं, भारतवासियों ने कभी किसी को नहीं दीं।"*

अंगरेज़ों के साथ असहयोग

बनारस के समान इलाहाबाद के नगर पर भी अंगरेज़ों का फिर से क़ब्ज़ा हो गया। यद्यपि जनरल नील और उसके साथियों ने इलाहाबाद निवासियों से बदला चुकाने में कोई कसर नहीं की फिर भी चार्ल्स बाल लिखता है कि शहर के और आसपास के गांव के लोगों ने अंगरेज़ों का इतना पूरा बहिष्कार कर रखा था कि उन्हें डोलियां या मज़दूर तक नहीं मिल रहे थे। कोई गांव वाला उन्हें रसद देने के लिए तैयार न होता था। चार्ल्स बाल लिखता है कि जो कोई अंगरेज़ों का काम करता था, देहाती उसके हाथ और नाक काट डालते थे या उसे मार डालते थे। इसके ऊपर जून की गरमी। नतीजा यह हुआ कि अंगरेज़ी कैम्प में हैज़े की बीमारी शुरू हो गई।

कानपुर और नाना साहब

अब हम इलाहाबाद से हट कर सन् 57 की राष्ट्रीय योजना के उद्भव स्थान कानपुर की ओर आते हैं। नाना साहब, उसके दो भाई बाला साहब और बाबा साहब, नाना साहब का भतीजा राव साहब और चतुर अज़ीमुल्ला ख़ां कानपुर में क्रान्ति के मुख्य सेनापति थे। इनके अतिरिक्त प्रसिद्ध मराठा सेनापति तात्या टोपे भी, जिसके अद्भुत पराक्रम का ज़िक्र आगे चल कर किया जाएगा, उस सम्मय बिठूर के दरबार में मौजूद था। सर ह्यू, व्हीलर कानपुर की अंगरेज़ी सेना का सेनापति था। व्हीलर के अधीन तीन हज़ार देशी सिपाही और लगभग एक सौ अंगरेज़ सिपाही थे। दिल्ली की स्वाधीनता का समाचार नाना साहब को 15 मई को मिला और सर ह्यू व्हीलर को 18 मई को। इस पर एक अंगरेज़ लेखक लिखता है—

> "निस्सन्देह विप्लव के अत्यन्त आश्चर्यजनक पहलुओं में से एक यह रहा है कि भारतवासियों को दूर-दूर के स्थानों की सब महत्वपूर्ण घटनाओं की ख़बर अत्यन्त शीघ्र और असन्दिग्ध रूप में मिलती रहती हैं। ख़बर ले जाने वाले मुख्यतः हरकारे होते हैं, जो असाधारण वेग के साथ एक स्थान से दूसरे स्थान को सन्देश ले जाते हैं।"†

शहर में जलसे

दिल्ली की ख़बर के आते ही कानपुर शहर में हिन्दुओं और मुसलमानों के बड़े-

---

* "......and I know that at Allahabad there were far too wholesale executions......And afterwards Neill did things almost more than the massacre, putting to death with deliberate torture, in a way that has never been proved against the natives."—Sir George Campbell, Provisional Civil Commissioner in the Mutiny, as quoted in *The Other Side of the Medal* by Edward Thompson, p. 81.

†*Narrative of the Indian Revolt*, p. 33.

बड़े जलसे होने लगे। छावनी में सिपाहियों की गुप्त सभाएं होने लगीं। स्कूलों, बाज़ारों और सार्वजनिक स्थानों में आगामी स्वाधीनता संग्राम की चर्चा होने लगी। फिर भी नाना साहब ने 31 मई तक चुप रहने का निश्चय किया और सर ह्यू ह्वीलर ने गंगा के दक्षिण में एक नया स्थान घेर कर क़िलेबन्दी शुरू की, ताकि आवश्यकता के समय कानपुर के अंगरेज़ उसमें आश्रय ले सकें।

नाना पर अंगरेज़ों का विश्वास

लखनऊ से कुछ और सेना ह्वीलर की सहायता के लिए पहुंच गई। आश्चर्य की बात यह है कि उस समय तक भी अंगरेज़ों को नाना साहब पर पूरा विश्वास था। ह्वीलर ने नाना साहब को सन्देशा भेजा कि आप आकर कानपुर की रक्षा करने में अंगरेज़ों की मदद कीजिए। 22 मई, सन् 1857 को नाना साहब ने कुछ सेना और दो तोपों सहित बिठूर से निकल कर कानपुर नगर में प्रवेश किया। ह्वीलर ने कम्पनी का ख़ज़ाना नाना साहब को सौंप दिया। नाना ने अपने दो सौ सिपाही ख़ज़ाने पर पहरा देने के लिए नियुक्त कर दिए।

कम्पनी की देशी सेना के दो मुख्य नेता थे, सूबेदार टीकासिंह और सूबेदार शम्सुद्दीन खां। नाना साहब के दो मुख्य विश्वस्त सहायक ज्वालाप्रसाद और मोहम्मदअली थे। इन चारों ओर नाना साहब और अज़ीमुल्ला ख़ां में प्रायः कश्तियों में बैठ कर गंगा के ऊपर दो-दो घण्टे गुप्त सलाहें हुआ करती थीं। सर ह्यू ह्वीलर ने कम्पनी का मैगज़ीन भी नाना साहब की रक्षा में छोड़ दिया।

अंगरेज़ों का भय

कानपुर के अन्दर उस समय अंगरेज़ इतना डरे हुए थे कि 24 मई को रमज़ान के बाद की ईद थी। उसी दिन मलका विक्टोरिया की सालगिरह थी। सालगिरह के उपलक्ष्य में सदा तोपों की सलामी दी जाती थी। किन्तु 24 मई, सन् 1857 को कानपुर में इसलिए कोई तोप नहीं छोड़ी गई कि उससे हिन्दोस्तानी सिपाही न भड़क उठें। एक अंगरेज़ अफ़सर लिखता है जिस समय क्रान्ति की कोई झूठी अफ़वाह भी नगर में उड़ जाती थी, तुरन्त शहर के सब अंगरेज़ भाग कर अपने बाल बच्चों समेत जनरल ह्वीलर के नए क़िले में जमा हो जाते थे।

कानपुर की स्वाधीनता

4 जून की आधी रात को अचानक कानपुर की छावनी में तीन फ़ायर हुए। सिपाहियों को क्रान्ति प्रारम्भ करने के लिए यही पहले से निश्चित सूचना थी। सबसे आगे सूबेदार टीकासिंह घोड़े पर लपका। उसके पीछे-पीछे सैकड़ों सवार और हज़ारों पैदल सिपाही मैदान में निकल आए। पूर्व निश्चय के अनुसार कुछ ने अंगरेज़ी इमारतों को आग लगा दी, कुछ दूसरों को सूचना देने के लिए गए और कुछ ने जगह-जगह से अंगरेज़ी झण्डों को गिरा कर उनकी जगह हरे झण्डे फहरा दिए, नवाबगंज में नाना का ख़ेमा था। नाना के सिपाही क्रान्तिकारियों के साथ मिल गए। 5 जून को सुबह

तक अंगरेज़ी ख़ज़ाना और मैगज़ीन, दोनों क्रान्तिकारियों के हाथों में आ गए। भारतीय सेना और नगर निवासियों ने मिल कर दिल्ली सम्राट के अधीन नाना साहब को अपना राजा चुना। फ़ौज के लिए अफ़सर और नगर के लिए शासक भी उसी समय चुन लिए गए। 5 जून को ही हाथी के ऊपर दिल्ली सम्राट के झण्डे का जलूस बड़े समारोह के साथ शहर तथा छावनी में निकाला गया।

नगर निवासियों ने बड़े हर्ष के साथ नाना की सारी आज्ञाओं का पालन किया।

अंगरेज़ी किले का मोहासरा

6 जून को सवेरे नाना ने जनरल ह्वीलर को चेतावनी दी कि आज आप क़िला हमारे सुपुर्द कर दीजिए, नहीं तो शाम को क़िले पर हमला किया जायगा। उसी दिन शाम को क्रान्तिकारी सेना ने अंगरेज़ी क़िले का मोहासरा शुरू कर दिया। कानपुर के प्रायः सब अंगरेज़ स्त्री, पुरुष और बच्चे उस समय क़िले के अन्दर मौजूद थे।

नोटिस देने के बाद भी जो अंगरेज़ किसी कारण क़िले से बाहर रह गए या कानपुर शहर में मौजूद थे, उन्हें मार डाला गया। नाना के पास तोपों की कमी न थी। नाना की तोपों ने अब कानपुर के क़िले के अन्दर गोले बरसाने शुरू किए। क़िले के अन्दर अंगरेज़ इतनी तेज़ी के साथ मरने लगे कि लिखा है, उन्हें दफ़न करना तक कठिन हो गया। क़िले के अन्दर केवल एक कुआं था। नाना की सेना ने उस पर इस ढंग से गोले बरसाए कि अनेक अंगरेज़ पानी न मिलने के कारण तड़पने लगे। 21 दिन तक यह गोलाबारी जारी रही। अनेक लोग, जो गोलों से न मरे, पेचिश, बुखार और हैज़े के शिकार हुए। क़िले की दीवारों पर से कम्पनी की तोपें भी साहस और धैर्य के साथ अपना काम करती रहीं। क्रान्तिकारियों के पहरे के कारण अंगरेज़ों के लिए कोई सन्देशा बाहर भेज सकना कठिन हो गया। फिर भी कम्पनी का एक वफ़ादार हिन्दोस्तानी नौकर जनरल ह्वीलर का सन्देशा लेकर लखनऊ पहुंचा। यह सन्देशा एक पक्षी के पैरों के नीचे बंधा हुआ था। भाषा कुछ अंगरेज़ी, कुछ लातीनी और कुछ फ्रान्सीसी मिली हुई थी। पत्र का शब्दार्थ केवल यह था—

"Help ! Help !! Help !!! Send us help or we are dying! If we get help, we will come and save Lucknow!"

"मदद ! मदद !! मदद !!! हमें मदद भेजो, नहीं तो हम मर रहे हैं। हमें मदद मिल जाय, तो हम आकर लखनऊ को बचा लेंगे।"

इससे क़िले के अंगरेज़ों की स्थिति का ख़ासा पता चलता है। दूसरी ओर नाना के गुप्तचर सफलता के साथ अंगरेज़ी क़िले के अन्दर की ख़बरें नाना को ला-लाकर दे रहते थे।

नाना को सहायता

जब कि अंगरेज़ी कैम्प की यह हालत थी, नाना के पास चारों ओर के ज़मींदारों से धन और जन, दोनों की सहायता धड़ाधड़ चली आ रही थी। नाना और उसके

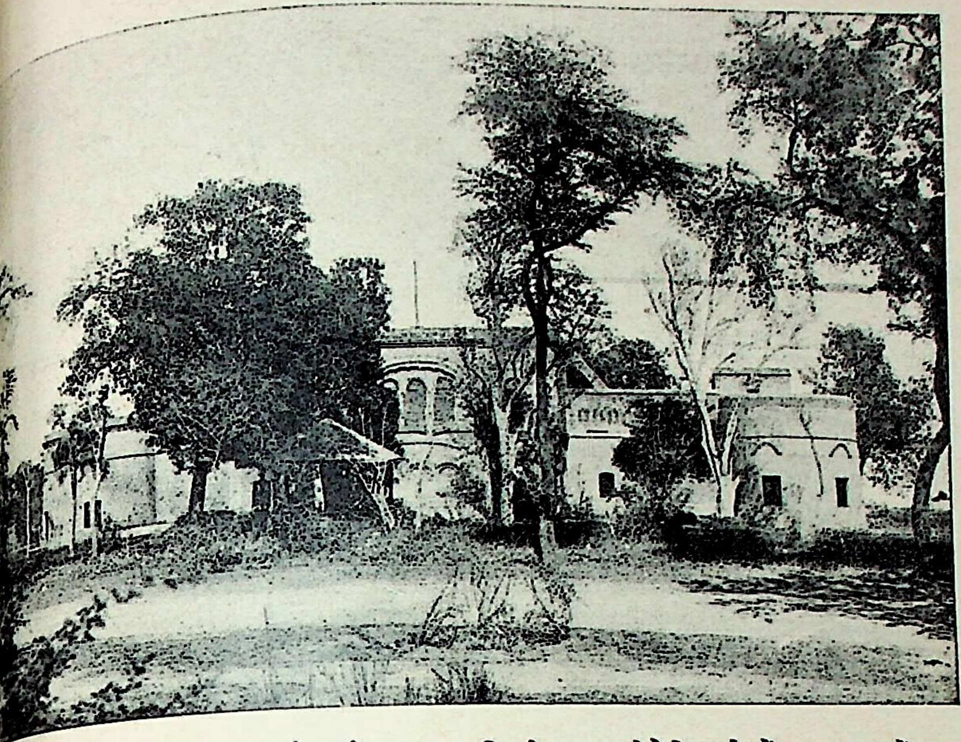

काल्यां-दा-बुर्ज (अजनाला) की इमारत, जिसके एक छोटे-से बुर्ज में सन् 57 में अंगरेजों ने 66 हिन्दोस्तानी बन्द कर दिए थे। इन 66 में से 45 व्यक्ति सुबह होने तक दम घुटने से मर चुके थे

काल्यां-दा-खह, अजनाला

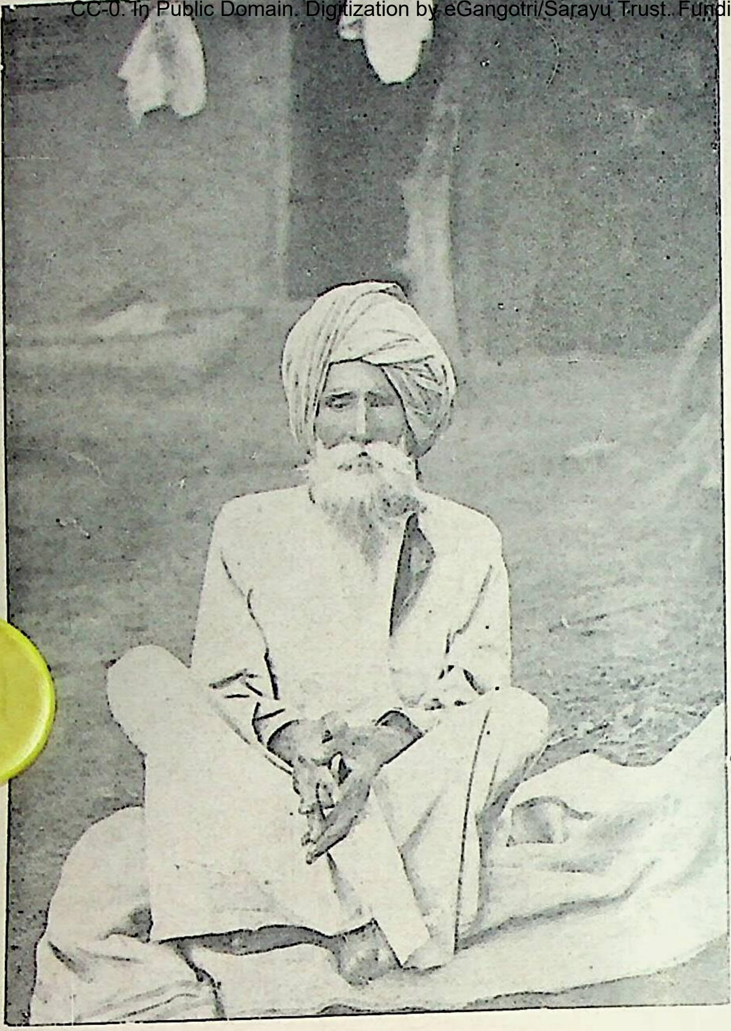

अजनाला के बाबा जगत

सम्राट बहादुरशाह की गिरफ्तारी

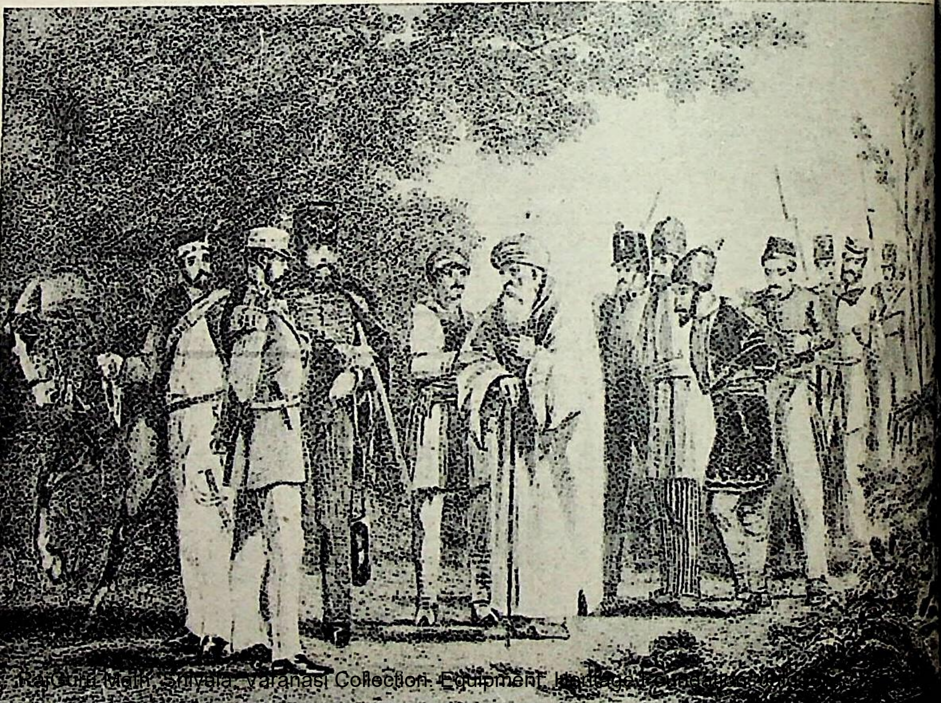

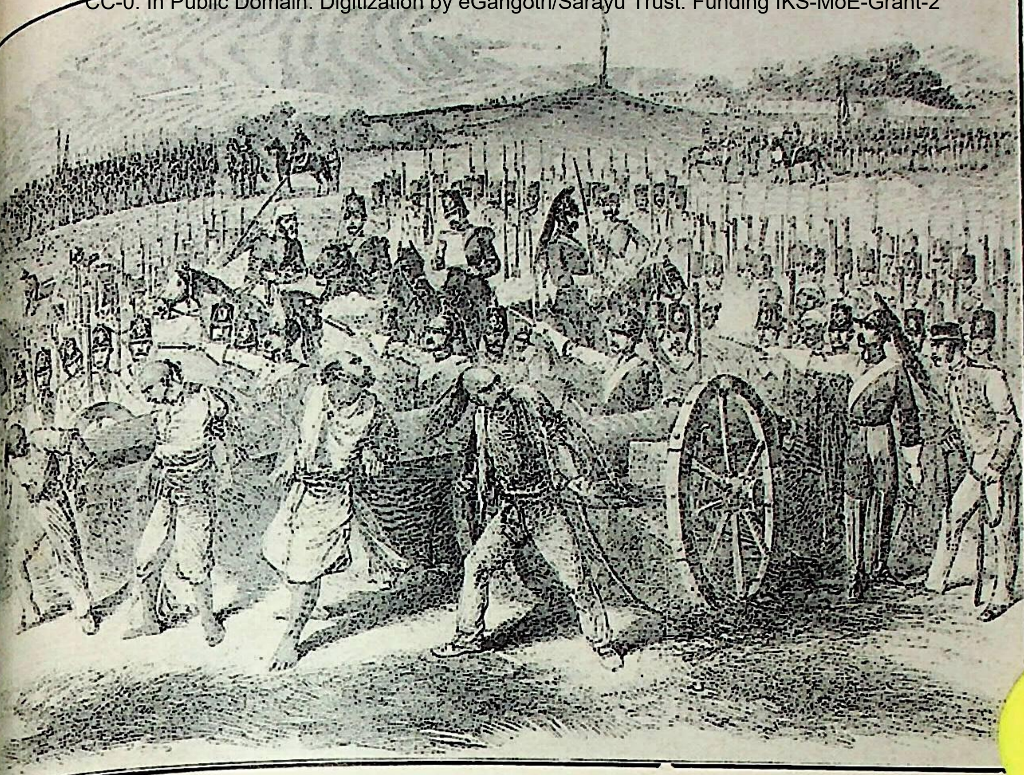

जून 1857 में बगावत के सन्देह पर हिन्दोस्तानी सिपाहियों को तोप के मुंह पर बांध कर उड़ाया जा रहा हैं

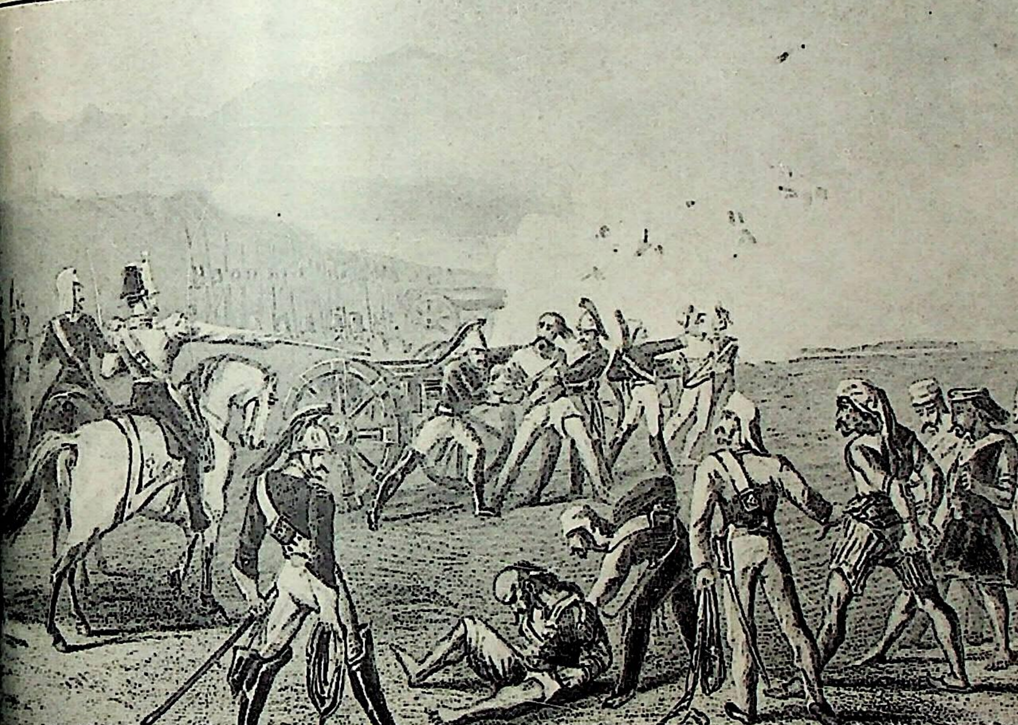

10 जून, सन् 1857 को पेशावर में हिन्दोस्तानी सिपाहियों को तोप से उड़ाया जा रहा हैं। चित्र में बारूद के धुएं में उड़ते हाथ, पैर और सिर दिखाए गए हैं

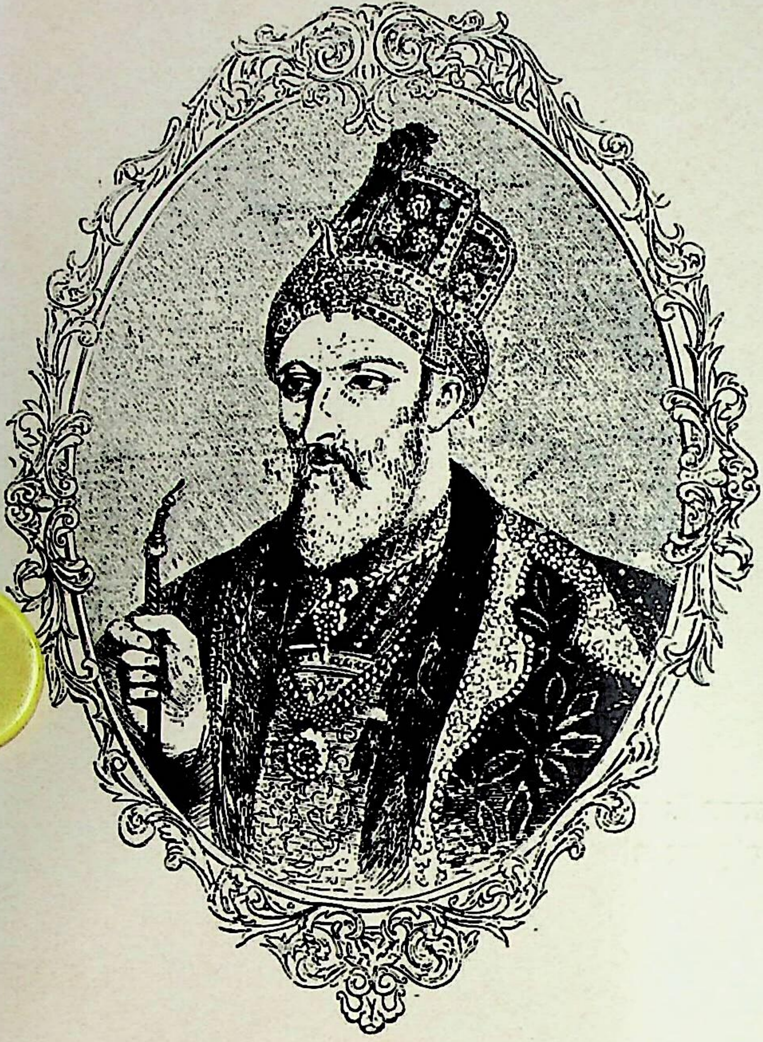

सम्राट बहादुरशाह 'ज़फ़र'

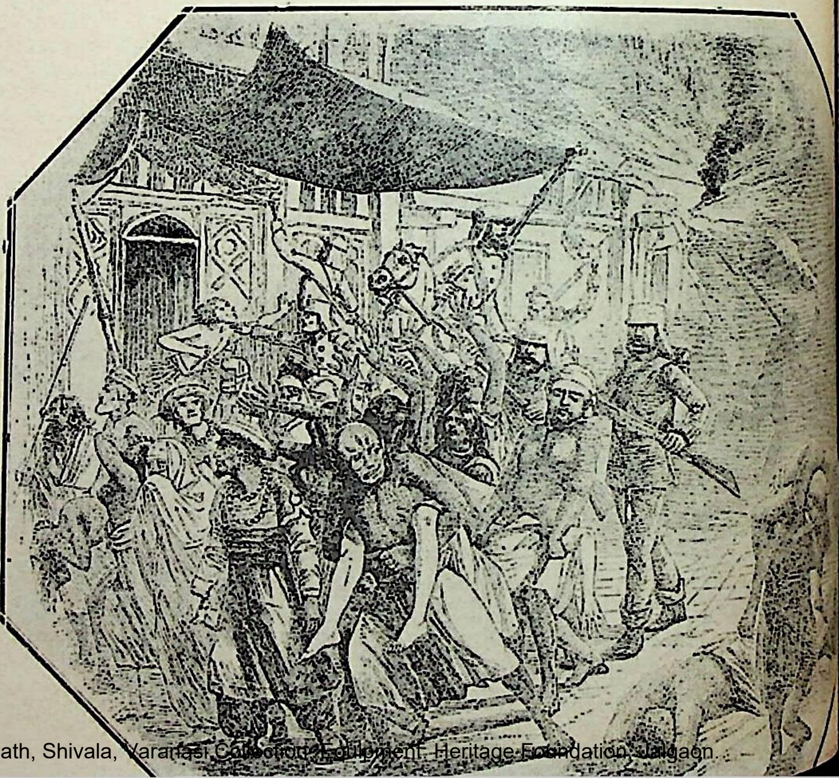

कानपुर के एक गांव को अंगरेज़ी फ़ौज के सिपाही आग लगा रहे हैं और गांव वाले जान लेकर भाग रहे हैं

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Eoundation Heritage Foundation, Jalgaon.

साथियों का उत्साह बढ़ा हुआ था । नाना के अधीन इस समय करीब चार हज़ार सेना थी ।

क्रान्ति में कानपुर की स्त्रियों का भाग

कानपुर की हिन्दू और मुसलमान स्त्रियां उस समय अपने घरों से निकल कर गोला-बारूद इधर से उधर ले जाने, सैनिकों को भोजन पहुंचाने और ठीक अंगरेज़ी क़िले की दीवार के नीचे तोपचियों को मदद देने का काम कर रही थीं । इन सब स्त्रियों में उस समय कानपुर की एक वेश्या अज़ीज़न का नाम अत्यन्त प्रसिद्ध है । एक इतिहास लेखक लिखता है कि यह अज़ीज़न हथियार बांधे हुए घोड़े पर चढ़ी हुई बिजली की तरह शहर की गलियों और छावनी के बीच दौड़ती फिरती थी । कभी वह गलियों के अन्दर थके हुए और घायल सिपाहियों को दूध और मिठाई बांटती थी और कभी अंगरेज़ी क़िले की दीवार के ठीक नीचे लड़ने वालों के हौसले बढ़ाती थी ।

नाना का शासन प्रबन्ध

ठीक उस समय, जब कि अंगरेज़ी क़िले का मोहासरा जारी था, नाना ने शहर के शासन का पूरा प्रबन्ध किया । शहर के प्रमुख लोगों को जमा करके उनके बहुमत से हुलाससिंह नामक एक व्यक्ति को मुख्य न्यायाधीश नियुक्त किया गया । फ़ौज को रसद पहुंचाने का काम मुल्ला नामक एक व्यक्ति के सुपुर्द कर दिया गया । दीवानी के मुक़दमों के लिए ज्वालाप्रसाद, अज़ीमुल्ला खां और बाबा साहब की एक अदालत क़ायम की गई । इतिहास लेखक टामसन लिखता है कि अपराधियों को कड़े दण्ड दिए जाते थे और नगर में पूरी तरह अमन-चैन था ।*

अंगरेज़ी क़िले पर सुलह का झण्डा

18 जून और 23 जून को दो गहरे संग्राम हुए । अन्त में कोई चारा न देख 25 जून, सन् 1857 को जनरल ह्वीलर ने अपने क़िले के ऊपर सुलह का सफ़ेद झण्डा गाड़ दिया । तुरन्त नाना साहब ने लड़ाई बन्द कर दी । इसके साथ ही नाना ने एक पत्र जनरल ह्वीलर के पास भेजा, जिसमें लिखा था—

> **'मलका विक्टोरिया की प्रजा के नाम—जिन लोगों का डलहौजी की नीति के साथ कोई सम्बन्ध नहीं रहा है और जो हथियार रख देने और आत्म-समर्पण कर देने के लिए तैयार हैं, उन्हें सुरक्षित इलाहाबाद पहुंचा दिया जायगा ।"**

26 तारीख को दोनों ओर के प्रतिनिधियों में बातचीत हुई । इस बातचीत के सम्बन्ध में यह एक बात ध्यान देने योग्य है कि यद्यपि अज़ीमुल्ला ख़ां अंगरेज़ी भाषा का विद्वान था, फिर भी ज्यों ही अंगरेज़ प्रतिनिधि ने अंगरेज़ी में बातचीत प्रारम्भ की, अज़ीमुल्ला ने एतराज़ किया । उसने अंगरेज़ प्रतिनिधियों को विवश किया कि सारी बातचीत हिन्दोस्तानी में की जाय; और हिन्दोस्तानी में ही बातचीत हुई ।

---

* *The Story of Cawnpore*, by M. Thompson.

अन्त में क़िले के अन्दर के सब अंगरेज़ों ने अपने आपको नाना के सुपुर्द कर दिया। क़िला, तोपखाना, और भीतर के तमाम अस्त्र-शस्त्र और ख़ज़ाना नाना के हवाले कर दिए गए । नाना की तरफ़ से वादा किया गया कि सब अंगरेज़ों को कश्तियों में बैठा कर और मार्ग के लिए रसद देकर इलाहाबाद भेज दिया जाएगा।

सतीचौरा घाट का हत्याकाण्ड

उसी रात को चालीस कश्तियों का इन्तज़ाम कर दिया गया । उनमें रसद का सामान रख दिया गया । 27 तारीख को सबेरे अंगरेज़ी झण्डा क़िले पर से उतार दिया गया । सम्राट बहादुरशाह का हरा झण्डा उसकी जगह फहराने लगा और सब अंगरेज़ों को हाथियों पर और पालकियों में बैठा कर क़िले से डेढ़ मील दूर, सतीचौरा घाट पर पहुंचा दिया गया ।

किन्तु इस बीच इलाहाबाद और उसके आसपास के इलाके से हज़ारों मनुष्य, जिनके घर-द्वार, सम्बन्धियों और बाल-बच्चों को जनरल नील के सिपाहियों ने जला कर खाक कर दिया था, कानपुर नगर में आ-आकर एकत्रित हो रहे थे । इन लोगों के बयानों और इलाहाबाद में अंगरेज़ कम्पनी की सेना के अत्याचारों को सुन-सुन कर कानपुर की जनता और वहां के देशी सिपाहियों का क्रोध भड़क रहा था। 27 जून को सवेरे दस बजे कश्तियां सतीचौरा घाट से चलने वाली थीं । नाना उस समय अपने महल में था । घाट पर सिपाहियों और जनता की भीड़ थी । कहा जाता है कि क्रोध से उन्मत्त सिपाहियों में से किसी एक ने पहले करनल ईवर्ट पर हमला किया। तुरन्त मार-काट शुरू हो गई । क़रीब-क़रीब सब अंगरेज़ इतिहास लेखक स्वीकार करते हैं कि ज्यों ही नाना को इसका समाचार मिला, उसने तुरन्त आज्ञा भेजी कि—"अंगरेज़ पुरुषों को भले ही मारो, किन्तु बच्चों और स्त्रियों को कोई हानि न पहुंचाओ !"* नाना की आज्ञा के पहुंचते ही 125 अंगरेज़ स्त्रियां और बच्चे कैद करके सौदा-कोठी पहुंचा दिए गए । अंगरेज़ पुरुषों को लाइन बांध कर सतीचौरा घाट पर खड़ा किया गया । उनमें से एक ने जो शायद पादरी था, प्रार्थना की कि मरने से पहले मुझे इज़ाज़त दी जाय कि मैं अपने भाइयों को इंजील में से कुछ प्रार्थना पढ़ कर सुना दूं। उसकी प्रार्थना स्वीकार कर ली गई ।† जब वह ईश्वर प्रार्थना कर चुका ; तो हिन्दोस्तानी सिपाहियों ने सब अंगरेज़ों के सर तलवार से क़लम कर दिए । अंगरेज़ पुरुषों में से केवल चार एक कश्ती में बैठ कर भाग निकले । इस तरह 7 जून को कानपुर के अन्दर जो क़रीब एक हज़ार अंगरेज़ थे, उनमें से 26 जून की शाम को केवल चार आदमी अपनी फुरती से और 125 स्त्रियां और बच्चे नाना की उदारता से जिन्दा बचे ।

इसमें सन्देह नहीं कि सतीचौरा घाट का हत्याकाण्ड जायज़ नहीं कहा जा सकता। निःशस्त्र लोगों पर वार करना युद्ध के सदाचार में क्षमतव्य नहीं है । इसके अतिरिक्त

---

* Forrest's *State Papers*, also Kaye and Malleson's *Indian Mutiny*, vol. ii, p. 258.

† Kaye and Malleson's *Indian Mutiny*, vol. ii, p. 263.

नाना ने इन लोगों ने प्राणदान का वादा कर लिया था। दूसरी ओर हमें यह याद रखना होगा कि सतीचौरा घाट के अत्याचार की ज़िम्मेदारी एक दरजे तक जनरल नील और उसके साथियों के उन कहीं अधिक वीभत्स अत्याचारों पर है, जिन्होंने कानपुर की जनता और वहां के हिन्दोस्तानी सिपाहियों के मस्तिष्कों को ठिकाने रहने नहीं दिया।

क़ैदी अंगरेज स्त्रियों के प्रति नाना का व्यवहार

नाना ने क़ैदी अंगरेज़ स्त्रियों और बच्चों के साथ जिस तरह का व्यवहार किया, उसके बारे में अनेक झूठी अफ़वाहें उन दिनों इंगलिस्तान और भारत में उड़ाई गईं। हम इन अफ़वाहों को दोहराना उचित नहीं समझते। इतना कह देना काफ़ी है कि बाद में अंगरेज़ों का ही एक कमीशन इन इलज़ामों की जांच करने के लिए नियुक्त हुआ। इस कमीशन ने पूरी जांच के बाद फ़ैसला दिया कि इस तरह की तमाम अफ़वाहें बिलकुल झूठी थीं।

जस्टिन मैकार्थी इन अफ़वाहों के सम्बन्ध में लिखता है—

> **"लोगों की क्रोधाग्नि को इस तरह की अफ़वाहें उड़ा उड़ा कर भड़काया गया कि आम तौर पर स्त्रियों की बेइज्जती की गई और निर्दयता के साथ उनके अंग-भंग किए गए। सौभाग्यवश ये अफ़वाहें झूठी थीं × × × सच यह है कि सिवाय उनसे नाज पिसवाने के और किसी तरह का भी अपमान अंगरेज स्त्रियों का नहीं किया गया। × × × सामान्य अर्थों में किसी स्त्री पर अत्याचार नहीं किया गया। न किसी अंगरेज स्त्री के कपड़े उतारे गए, न किसी की बेइज्जती की गई और न जान बूझ कर किसी का अंग-भंग किया गया।"**†

इतना ही नहीं, सतीचौरा घाट के हत्याकाण्ड की शुरू की गड़बड़ में कुछ हिन्दोस्तानी सिपाही चार अंगरेज़ स्त्रियों को पकड़ कर ले गए थे। समाचार पाते ही नाना ने तुरन्त उन सिपाहियों को कड़ा दण्ड दिया और चारों अंगरेज़ स्त्रियों को उनसे वापस ले लिया।‡

क़ैदी स्त्रियों और बच्चों के साथ नाना का व्यवहार अत्यन्त उदार था। उन्हें खाने के लिए चपाती और गोश्त दिया जाता था। कोई कड़ी मेहनत उनसे न ली जाती

---

* Muir's Report and Wilson's Report. Also Kaye and Malleson's *Indian Mutiny*, vol. ii, p. 267.

† "The elementary passions of manhood were inflamed by the stories, happily not true, of the wholesale dishonour and barbarous mutilation of women......As a matter of fact, no indignities, other than that of the compulsory corn grinding, were put upon the English ladies......There were no outrages, in the common acceptation of the term, upon women. No English women were stripped or dishonoured, or purposely mutilated."—*History of Our Own Times*, vol. iii, by Justin McCarthy.

‡ Sir George Trevelyan's *Cawnpore*, p. 299.

थी। बच्चों को दूध मिलता था और दिन में तीन बार उन्हें हवा खाने के लिए बा आने की इजाज़त थी। स्वयं जनरल नील अपनी रिपोर्ट में लिखता है—

> "शुरू में उन्हें बुरा खाना दिया गया, किन्तु बाद में उन्हें अच्छा खा दिया जाने लगा, साफ़ कपड़े मिलने लगे और खिदमत के लिए नौकर दे दि गए।"*

इनमें से केवल कुछ स्त्रियों को अपने खाने भर के लिए थोड़ा-सा आटा पीस पड़ता था।

अब हम इन अंगरेज़ क़ैदियों से हट कर कानपुर के वाक़ी हाल की ओर आते

पेशवा नानासाहब का दरबार

28 जून, सन् 1857 को कानपुर नगर, छावनी और आसपास के इलाके से अंगरेज़ी राज के सब चिह्न मिटाने के बाद नाना साहब ने एक बड़ा दरबार कि छै पलटन पैदल, दो पलटन सवार, अनेक ज़मींदार और असंख्य जनता इस दरबा उपस्थित थी। सबसे पहले सम्राट बहादुरशाह के नाम पर 101 तोपों की स हुई। इसके बाद 21 तोपों की सलामी नाना साहब को हुई। नाना साहब ने सि हियों और जनता को धन्यवाद दिया। एक लाख रुपये बतौर इनाम के फ़ौज में गए। दरबार के बाद नाना साहब कानपुर से बिठूर गया। बिठूर में 1 जुलाई, 1857 को नाना साहब धुन्धपन्त विधिवत् पेशवा की गद्दी पर बैठा। इस तरह 1857 की क्रांति में क्षण भर के लिए पेशवा की मृतप्राय सत्ता फिर से जीवन लाभ क हुई दिखाई देने लगी।

झांसी और रानी लक्ष्मीबाई

एक पिछले अध्याय में आ चुका है कि लार्ड डलहौज़ी ने राजा गंगाधर राव दत्तक पुत्र बालक दामोदर राव के उत्तराधिकारी को नाजायज़ कह कर झांसी की रि को ज़बरदस्ती कम्पनी के राज में मिला लिया था।

गंगाधरराव की मृत्यु के बाद 13 मार्च, सन् 1854 को झांसी की रि के कम्पनी के राज में मिलाए जाने का ऐलान प्रकाशित हुआ। सारी प्रजा में घोर अ उत्पन्न हो गया। विधवा रानी लक्ष्मीबाई ने, जिसकी आयु उस समय केवल साल की थी और जिसने अपने बालक पुत्र की ओर से आश्चर्यजनक योग्यता के राज का सारा काम संभाल लिया था, एतराज किया। किन्तु कोई सुनवाई न सकी। इतना ही नहीं, राजा गंगाधरराव मरते समय क़रीब साढ़े चार लाख के जवाहरात और ढाई लाख रुपये नक़द छोड़ गया था। लार्ड डलहौज़ी ने इस सम्पत्ति को ज़बरदस्ती छीन कर यह कह कर कम्पनी के ख़ज़ाने में जमा कर लिया जब दामोदरराव बालिग़ होगा, तब यह धन उसे दे दिया जायगा। डलहौजी ने

---

* "At first they were badly fed but afterwards they got better food clean clothing and servants to wait upon."—General Neill's Report.

लिखा कि दत्तक पुत्र को बालिग होने पर पिता की इस निजी सम्पत्ति को पाने का अधिकार होगा, किन्तु गद्दी का कभी नहीं ।*

रानी लक्ष्मीबाई पर आरोप

रानी लक्ष्मीबाई को इस सारी सम्पत्ति और राज के बदले में पांच हजार रुपये मासिक पेनशन देने का वादा किया गया । रानी ने तिरस्कार के साथ अस्वीकार कर दिया । विधवा रानी के साथ इससे भी कहीं अधिक एक और अन्याय किया गया ।

इतिहास लेखक सर जान के लिखता है—

“उस पर बुरे-बुरे दोष लगाए गए क्योंकि हम लोगों में यह एक रिवाज है कि × × × पहले किसी देशी नरेश का राज ले लेते हैं और फिर पदच्युत नरेश या उसके उत्तराधिकारी की झूठी बुराइयां करने लगते हैं । कहा गया कि रानी लक्ष्मीबाई केवल बच्ची है और दूसरों के प्रभाव में रहती है । यह भी कहा गया कि रानी को नशे का व्यसन है । यह बात कि रानी केवल बच्ची नहीं थी, उसकी बातचीत से पूरी तरह साबित था; और उसके नशा करने की बात बिलकुल झूठी कल्पना मालूम होती है ।”†

रानी लक्ष्मीबाई का चरित्र

निस्सन्देह किसी भी मनुष्य के साथ और विशेषकर किसी स्त्री के साथ इससे बढ़ कर अन्याय नहीं किया जा सकता । रानी लक्ष्मीबाई के व्यक्तिगत चरित्र के बारे में हम केवल एक विद्वान अंगरेज की राय उद्धृत करते हैं जो उस समय लक्ष्मीबाई के रहन-सहन इत्यादि से पूरी तरह परिचित था । मेजर मैलकम ने 16 मार्च, सन् 1855 को गवर्नर जनरल के नाम एक सरकारी पत्र में लिखा—“रानी का चरित्र बहुत ऊंचा है और झांसी में हर आदमी उसे बड़े आदर की दृष्टि से देखता है ।”‡

उस समय के समस्त इतिहास से साबित है कि लक्ष्मीबाई वास्तव में अत्यन्त सुचरित्र, योग्य, वीर और असाधारण बुद्धि की स्त्री थी ।§ युद्धविद्या में वह अत्यन्त निपुण थी । उसके माता-पिता बिठूर में पेशवा के दरबार में रहा करते थे । लिखा है कि बिठूर के दरबार में कुमारी लक्ष्मीबाई अत्यन्त सर्वप्रिय थी । छोटी आयु से ही वह निशानेबाजी और शस्त्रों के उपयोग में अत्यन्त निपुण हो गई थी । सात वर्ष की

***Jhansi Papers* 1858, p. 31.

† "Evil things were said of her, for it is a custom among us odisse quern *læseris*—to take a Native ruler's kingdom and then to revile the disposed ruler or his would be successor. It was alleged that the Rani was a mere child under the influence of others, and that she was much given to intemperance. That she was not a mere child was demonstrated by her conversation; and her intemperance seems to be a myth."—Sir John Kaye's *History of the Sepoy War*, vol. iii, pp. 361-62.

‡ "......bears a very high character and is much respected by every one at Jhansi."—*Jhansi Papers*, p. 28.

§ D. B. Parasnis' *Life of Lakshmi Bai.*

अल्पावस्था में ही वह घोड़े की बड़ी दक्ष सवार थी और प्राय: नाना साहब और भाइयों के साथ शिकार के लिए जाया करती थी ।

झांसी का स्वाधीन होना

वीर लक्ष्मीबाई झांसी की गद्दी के इस अपमान और झांसी की प्रजा के साथ अन्याय को सहन न कर सकी । सन् 57 के स्वाधीनता संग्राम की वह एक मुख् नेत्री थी । पूर्व निश्चय के अनुसार 4 जून, सन् 1857 को झांसी में क्रांति प्रारम्भ हु कम्पनी की सेना सन् 1854 के ऐलान के बाद ही झांसी पहुंच चुकी थी और झांसी कम्पनी का क़ब्ज़ा हो चुका था । 4 जून को सबसे पहले 12 नम्बर देशी पलटन हवलदार गुरुबख्श सिंह ने मैगज़ीन और ख़ज़ाने पर फिर से क़ब्ज़ा कर लिया । बाद रानी लक्ष्मीबाई ने महल से निकल कर शस्त्र धारण कर स्वयं क्रांतिकारी का सेनापतित्व ग्रहण किया । उस समय लक्ष्मीबाई की आयु केवल 21 साल थी । 7 जून को रिसालदार काले ख़ां और तहसीलदार मोहम्मद हुसैन ने रानी ओर से क़िले पर हमला किया । क़िले के अन्दर की हिन्दोस्तानी सेना ने भी साथ 8 जून को, कहा जाता है कि रिसालदार काले ख़ां की आज्ञा से क़िले के अन्दर अंगरेज़, जिनमें पुरुष, स्त्रियां और बच्चे शामिल थे, क़त्ल कर दिए गए । लेखक सर जान के लिखता है कि इस हत्याकाण्ड से रानी लक्ष्मीबाई का कोई न था, न उसका कोई आदमी मौके पर मौजूद था और न उसने इसकी इजाज़ थी ।* अन्त में उसी दिन झांसी पर से कम्पनी का राज हटा दिया गया । बालक के वली की हैसियत से रानी लक्ष्मीबाई फिर से झांसी की गद्दी पर बैठी । कम्पनी के झण्डे की जगह दिल्ली सम्राट की पताका झांसी के क़िले पर लगी । सारी रियासत में ढिंढोरा पिटवा दिया गया—"ख़ल्क़ ख़ुदा का, मुल्क बाद (अर्थात् दिल्ली के बादशाह) का, हुकम रानी लक्ष्मीबाई का ।" झांसी हो गई ।

अवध में क्रान्ति की तैयारी

सन् 57-58 के सबसे अधिक भयंकर संग्राम अवध की भूमि पर लड़े अवध की सल्तनत के अंगरेज़ी राज में मिलाए जाने और अवध निवासियों के दुखों शिकायतों का वर्णन एक पिछले अध्याय में आ चुका है । अवध के ज़मींदारों, की पुलिस, वहां की फ़ौज और क़रीब-क़रीब समस्त जनता ने स्वाधीनता के उस युद्ध की सफलता पर अपना सर्वस्व लगा दिया था । वास्तव में क्रांति की कहीं भी इतनी अच्छी न थी, जितनी अवध में । हज़ारों मौलवी और हज़ारों एक-एक बैरक और एक-एक गांव में स्वाधीनता युद्ध के लिए लोगों को तैयार फिरते थे ।

सात नम्बर पलटन से शस्त्र रखाना

सर हेनरी लारेन्स अवध का चीफ़ कमिशनर था । लखनऊ छावनी के कुछ सि

---

* *History of the Sepoy War*, by Sir John Kaye, vol. ii, p. 369.

मंगल पांडे के फांसी के बाद अपने आपको न रोक सके । मई के प्रारम्भ में वहां पर अंगरेज़ों के कुछ मकान जला दिए गए । चार्ल्स बाल लिखता है कि 3 मई को सात नम्बर पलटन के सात उच्छृंखल सिपाही लेफ्टिनेन्ट मीकम के ख़ेमे में पहुंचे और कहने लगे—"हमारा आपसे कोई ज़ाती झगड़ा नहीं, किन्तु आप फ़िरंगी हैं, इसलिए हम आपको मार डालेंगे !" भयभीत किन्तु चतुर लेफ्टिनेन्ट ने उनसे दया की प्रार्थना की और कहा—"मुझे, एक ग़रीब आदमी को मारने से आपको क्या लाभ होगा ? आपकी शत्रुता तो इस राज से है ।" सिपाहियों ने दया में आकर उसे छोड़ दिया किन्तु यह समाचार तुरन्त सर हेनरी लारेन्स तक पहुंचा । उसने एक चाल चल कर सात नम्बर पलटन से हथियार रखा लिए ।

हेनरी लारेन्स का दरबार

12 मई को सर हेनरी लारेन्स ने एक बहुत बड़ा दरबार किया जिसमें उसने हिन्दोस्तानी ज़बान में एक ज़ोरदार भाषण दिया । इस भाषण में उसने हिन्दू और मुसलमान सिपाहियों को कम्पनी सरकार की वफ़ादारी का महत्व दरशाया । उसने मुसलमान सिपाहियों से कहा कि पंजाब में महाराजा रणजीतसिंह ने इसलाम धर्म की कितनी तौहीन की थी, और हिन्दुओं को याद दिलाया कि बादशाह औरंगज़ेब ने हिन्दू धर्म पर किस तरह कुठार चलाया था, और दोनों को बतलाया कि केवल अंगरेज़ ही एक दूसरे से तुम्हारी रक्षा कर सकते हैं । इसके बाद उसने अपने ख़ैरख़ाह सिपाहियों को दुशाले, तलवारें और पगड़ियां इनाम दीं । किन्तु इन सब बातों का प्रभाव और अधिक उलटा हुआ । हिन्दू और मुसलमान सिपाहियों को पूरी तरह दिखाई दे गया कि अंगरेज़ हमें पुराने झगड़ों की याद दिला कर और एक दूसरे से लड़ा कर दोनों को पराधीन बनाए रखना चाहते हैं ।

लारेन्स की क़िलेबन्दी

13 मई को मेरठ के विप्लव का समाचार लखनऊ पहुंचा । 14 मई को दिल्ली की स्वाधीनता की ख़बर आई । सर हेनरी लारेन्स ने अब लखनऊ शहर के निकट दो स्थानों में खास तौर पर क़िलेबन्दी शुरू कर दी, ताकि आवश्यकता के समय लखनऊ के अंगरेज़ इनमें आश्रय ले सकें—एक मच्छ भवन और दूसरे रेज़ीडेन्सी । लखनऊ की सब अंगरेज़ स्त्रियां और बच्चे इन स्थानों में पहुंचा दिए गए और सब अंगरेज़ पुरुषों को फ़ौजी क़वायद सीखने का हुक्म हो गया ।

नेपाल से मदद की प्रार्थना

अवध की सरहद नेपाल से मिली हुई है । सर हेनरी लारेन्स ने विशेष दूत भेज कर नेपाल दरबार के प्रधान मन्त्री, सेनापति जंगबहादुर, से प्रार्थना की कि आप इस आपत्ति में सेना से अंगरेज़ों की सहायता कीजिए ।

क्रान्ति का प्रारम्भ

ठीक 30 मई की रात को 9 बजे छावनी की तोप छूटी । क्रान्ति के प्रारम्भ होने

का यही चिह्न तय था। सबसे पहले 71 नम्बर पलटन की बन्दूकों की आवाज़ सुनाई दी। अंगरेज़ों के बंगले जला दिए गए। जो अंगरेज़ मिला, मार डाला गया। 31 मई को सवेरे हेनरी लारेन्स ने कुछ गोरी सेना और 7 नम्बर देशी सवार पलटन साथ लेकर विप्लवकारियों पर हमला किया। उस समय तक 7 नम्बर पलटन अंगरेज़ों की ओर थी किन्तु मार्ग में इस पलटन ने भी कम्पनी का झण्डा फेंक कर हरा झण्डा हाथ में ले लिया। लारेन्स को उन्हें छोड़ कर अपने थोड़े-से अंगरेज़ सिपाहियों सहित रेज़िडेन्सी में आकर पनाह लेनी पड़ी। 31 मई की शाम तक 48 और 71 नम्बर पैदल और 7 नम्बर सवार और दूसरी देशी पलटनों में भी स्वाधीनता का हरा झण्डा फहराने लगा।

सीतापुर की स्वाधीनता

लखनऊ से क़रीब 50 मील उत्तर-पश्चिम में सीतापुर है। वहां पर कम्पनी की तीन देशी पलटनें थीं। 3 जून को इन पलटनों ने कम्पनी का झण्डा फेंक कर हरा झण्डा हाथ में ले लिया। उन्होंने ख़ज़ाने पर क़ब्ज़ा कर लिया और जो अंगरेज़ मिला उसे मार डाला। कहा जाता है कि 24 अंगरेज़ सीतापुर में मारे गए और कुछ ने आसपास के ज़मींदारों के यहां जाकर पनाह ली।

फ़र्रुख़ाबाद की स्वाधीनता

सीतापुर को स्वाधीन करने के बाद वहां के सिपाही फ़र्रुख़ाबाद पहुंचे। कम्पनी ने फ़र्रुख़ाबाद के नवाब तफ़ज्ज़लहुसैन खां को गद्दी से उतार दिया था। फ़र्रुख़ाबाद के क़िले में बहुत-से अंगरेज़ों ने पनाह ले रखी थी। एक ख़ासे ज़बरदस्त संग्राम के बाद क्रान्तिकारियों ने फ़र्रुख़ाबाद के क़िले पर क़ब्ज़ा कर लिया, वहां के सब अंगरेज़ों को मार डाला और पदच्युत नवाब को फिर से वहां की गद्दी पर बैठा दिया। पहली जुलाई तक फ़र्रुख़ाबाद की रियासत में एक भी अंगरेज़ बाकी न था।

अवध की स्वाधीनता

मोहम्मदी, मालन, बहराइच, गोंडा, सिकरोरा, मेलापुर इत्यादि आसपास के सब इलाक़े 10 जून, सन् 57 तक पूरी तरह आज़ाद हो गए। स्थान-स्थान पर अनेक अंगरेज़ मारे गए, अनेक भाग निकले और कुछ को आसपास के ज़मींदारों ने अपने यहां शरण दी।

यह बात ख़ासतौर पर ध्यान देने योग्य है कि अवध के जिन ज़मींदारों और ताल्लुकेदारों ने इस अवसर पर स्वाधीनता के संग्राम में खुले भाग लिया, उनमें से अनेक ने अपने महलों के अन्दर अंगरेज़ अफ़सरों और बच्चों को पनाह देने में बड़ी उदारता दिखलाई। इस समय के बचे हुए अनेक अंगरेज़ों के पत्रों और रिपोर्टों में इसका ज़िक्र आता है।

मौलवी अहमदशाह की गिरफ्तारी

अवध के पूर्वी भाग में फ़ैज़ाबाद का नगर सबसे मुख्य था। सर हेनरी लारेन्स

ने स्वीकार किया है कि फ़ैज़ाबाद ज़िले के ताल्लुकेदारों के साथ अंगरेज़ों ने भारी अन्याय किया था। कुछ की पूरी जागीरें ज़ब्त कर ली गई थीं और कुछ के आधे गांव छीन लिए गए थे।* मौलवी अहमदशाह, जिसका कुछ परिचय हम ऊपर दे आए हैं, इन्हीं पदच्युत ताल्लुकेदारों में से था। अवध की सल्तनत के छिनने के समय से मौलवी अहमदशाह ने अपना सारा समय इस स्वाधीनता महायुद्ध की तैयारी में लगा रखा था। फ़ैज़ाबाद से लखनऊ और आगरे तक वह बराबर दौरे करता रहता था। क्रान्ति पर उसने अनेक भाषण दिए और अनेक पत्रिकाएं लिखीं। अंगरेज़ों को जब इसका पता चला तब उन्होंने मौलवी अहमदशाह की गिरफ्तारी की आज्ञा दी। अवध की पुलिस ने उसे गिरफ्तार करने से इनकार कर दिया, इसलिए फौज भेजनी पड़ी। अहमदशाह पर बग़ावत का मुकदमा कायम किया गया। उसे फांसी का हुक्म सुना दिया गया और फांसी की तारीख तक के लिए फ़ैज़ाबाद जेल में बन्द कर दिया गया।

फ़ैज़ाबाद की स्वाधीनता

मौलवी अहमदशाह की गिरफ्तारी ने फ़ैज़ाबाद के इलाके भर में आग लगा दी। फ़ैज़ाबाद के शहर में उस समय दो पैदल पलटनें, कुछ सवार और कुछ तोपखाना था। तुरन्त फ़ैज़ाबाद के सिपाहियों और जनता ने मिल कर आज़ादी का झण्डा खड़ा कर दिया। परेड के ऊपर देशी सिपाहियों ने अपने अंगरेज अफ़सरों से साफ़ कह दिया कि इस समय के बाद हम केवल अपने हिन्दोस्तानी अफ़सरों की आज्ञा मानेंगे। सूबेदार दलीपसिंह ने फ़ौरन आगे बढ़ कर तमाम अंगरेज अफ़सरों को कैद कर लिया। जेलखाने की दीवारें तोड़ दी गईं। मौलवी अहमदशाह की बेड़ियां काट डाली गईं। फ़ैज़ाबाद के सब सिपाहियों और जनता ने मौलवी अहमदशाह को अपना नेता चुना। मौलवी अहमदशाह ने फ़ैज़ाबाद के सारे अंगरेज़ों को लिख भेजा कि आप सब लोग फ़ौरन फ़ैज़ाबाद छोड़ दीजिए। उसने सब अंगरेज़ों को किश्तियों में बैठा कर फ़ैज़ाबाद से रवाना कर दिया। उन्हें मार्ग के लिए खाने-पीने का सामान और कुछ सफ़र ख़र्च तक दे दिया गया। फ़ैज़ाबाद शहर में शान्ति क़ायम कर दी गई। 9 जून को सुबह शहर और आसपास के इलाक़े में ऐलान कर दिया गया कि कम्पनी की हकूमत ख़त्म हो गई और वाजिदअली शाह की हकूमत फिर से क़ायम हो गई।

फ़ैज़ाबाद की अहिंसात्मक क्रान्ति

शाहगंज के ताल्लुकेदार राजा मानसिंह को इससे पहले मालगुज़ारी के कुछ झगड़े में अंगरेज़ क़ैद कर चुके थे। मानसिंह इस समय क्रान्ति के नेताओं में से था; फिर भी उसने क्रान्ति के दूसरे नेताओं की इजाज़त से 29 अंगरेज़ स्त्रियों और बच्चों को अपने क़िले के अन्दर अन्त तक सुरक्षित रखा। मौलवी अहमदशाह की ख़ास आज्ञा के अनुसार फ़ैज़ाबाद शहर में एक भी अंगरेज़ नहीं मारा गया।

सुलतानपुर की स्वाधीनता

फ़ैज़ाबाद के बाद 9 जून को सुलतानपुर और 10 जून को सालोनी में स्वाधीनता का झण्डा फहराने लगा। सालोनी के ज़मींदार सरदार रुस्तमशाह और काला के

---

*Kaye and Malleson's *Mutiny Indian*, vol. iii, p. 266.

राजा हनुमन्तसिंह, दोनों ने प्रतिज्ञा कर ली थी कि बिना अंगरेज़ी राज्य को हिन्दोस्तान से निकाले विश्राम न लेंगे । फिर भी, इन दोनों भारतीय नरेशों ने आश्रित अंगरेज़ों और उनके बाल-बच्चों के साथ असाधारण उदारता का व्यवहार किया ।

राजा हनुमन्तसिंह

राजा हनुमन्तसिंह के विषय में इतिहास लेखक मालेसन लिखता है—

> "इस उदार राजपूत की अधिकांश जागीर अंगरेज़ों की नयी लगान पद्धति के कारण छीनी जा चुकी थी । वह इस अन्याय और अपमान को बहुत महसूस करता था । फिर भी वह स्वभाव से इतना उदार था कि जिस क़ौम ने उसको क़रीब-क़रीब बरबाद कर दिया था, उस क़ौम के भागे हुए अफ़सरों के साथ वह वैसा ही बरताव करता था जैसा कि दुखिया के साथ । उसने मुसीबत में उनकी सहायता की, उसने उन्हें उनके स्थानों तक सुरक्षित पहुंचा दिया । किन्तु जब विदा होते समय कप्तान बैरो ने राजा हनुमन्तसिंह से कहा कि—'मुझे आशा है, आप इस विप्लव को शान्त करने में अंगरेज़ों की मदद देंगे, तो राजा हनुमन्तसिंह सीधा खड़ा हो गया और बोला—'साहब, तुम्हारे मुल्क के लोग हमारे मुल्क में घुस आए और उन्होंने हमारे बादशाह (वाजिदअली शाह) को निकाल दिया । तुमने अपने अफ़सरों को ज़िलों में भेजा ताकि वे पुराने रईसों और ज़मींदारों के पट्टों की जांच करें । एक बार में तुमने मुझसे वे सब ज़मीनें छीन लीं जो प्राचीन काल से मेरे कुटुम्ब में चली आती थीं । मैंने सह लिया । अचानक तुम पर आफत आई । तुमने मुझे बरबाद किया था और तुम मेरे ही पास आए । मैंने तुम्हें बचा लिया । किन्तु अब—अब मैं अपनी सेना जमा करके लखनऊ जा रहा हूं और तुम्हें मुल्क से बाहर निकालने की कोशिश करूंगा ।"*

इतिहास से पता चलता है कि उस समय अवध के अन्दर अनेक हिन्दू और मुसलमान हनुमन्तसिंह जैसे मौजूद थे, जिनमें जितना जबरदस्त स्वाधीनता का प्रेम था, उतनी ही जबरदस्त वीरोचित उदारता भी थी ।

अवध निवासियों की उदारता

सारांश यह कि 31 मई और 10 जून के बीच केवल लखनऊ शहर के एक भाग को छोड़ कर सारा अवध अंगरेज़ी राज के चंगुल से निकल गया । प्रसिद्ध इतिहासवेत्ता फ़ारेस्ट लिखता है—

> "इस तरह दस दिन के अन्दर अवध से अंगरेज़ी राज सपने की तरह मिट गया । उसका कोई निशान तक बाक़ी न रहा । फ़ौज ने हमारे विरुद्ध विद्रोह किया । जनता ने पराधीनता की बेड़ियां तोड़ कर फेंक दीं, किन्तु उनमें से किसी ने बदला नहीं लिया, किसी ने अन्याय नहीं किया । एक दो अपवादों को

---

* Malleson's *Indian Mutiny*, vol. iii, p. 273 (footnote).

छोड़ कर बाक़ी सारी वीर और विद्रोही जनता ने भागते हुए अंगरेज़ों के साथ स्पष्ट दयालुता का व्यवहार किया। अवध निवासियों के जिन शासकों (अर्थात अंगरेज़ों) ने अपनी सत्ता के दिनों में, अत्यन्त अच्छी (?) नीयत से अनेक लोगों के साथ घोर अन्याय किया था, उन शासकों का जब पतन हो गया, तब अवध निवासियों ने उनके साथ अपने व्यवहार में उच्च श्रेणी की उदारता और दयालुता बरती। अवध निवासियों के ये गुण साफ़ चमकते हुए दिखाई दे रहे थे।"[*]

वाजिदअली शाह की सर्वप्रियता

लार्ड डलहौजी का बयान है कि वाजिदअली शाह के अत्याचारों से अवध की प्रजा दुखी थी! किन्तु जिस तरह सन् 57 में सारे अवध के ज़मींदारों, जागीरदारों, राजाओं, सिपाहियों, किसानों, सौदागरों, सारांश यह कि सब हिन्दुओं और मुसलमानों ने मिल कर वाजिदअली शाह को फिर से अवध के सिंहासन पर बैठाने के लिए दस दिन के अन्दर अंगरेज़ी राज को उखाड़ कर फेंक दिया, उससे वाजिदअली शाह के शासन की सर्वप्रियता और कम्पनी के शासन की अप्रियता, दोनों का साफ़ पता चल जाता है। अवध के अन्दर उस समय एक गांव भी ऐसा न बचा होगा, जिसने कम्पनी के झण्डे को फाड़ कर न फेंक दिया हो।

लखनऊ शहर की स्थिति

अवध के विविध भागों से ज़मींदारों के सिपाही और स्वयंसेवक हज़ारों की तादाद में अब लखनऊ में बेगम हज़रत महल के झण्डे के नीचे आ-आकर जमा होने लगे। अवध निवासियों की इस आज़ादी की लड़ाई में बेगम हज़रत महल के अधीन अवध की अनेक स्त्रियां तक मरदाना कपड़े पहन कर, हथियार बांध कर अपने अलग दल बना कर लड़ रही थीं। [†]लखनऊ शहर का एक भाग अभी तक अंगरेज़ों के हाथों में था। दो पलटन सिखों की, एक पलटन गोरों की और कुछ तोपख़ाना इस समय लारेन्स के पास था। कानपुर के अंगरेज़ी क़िले का मोहासरा उस समय जारी था। कानपुर में अंगरेज़ों के हारने का समाचार 28 जून को लखनऊ पहुंचा। लखनऊ के क्रान्तिकारियों ने अंगरेज़ों पर हमला करने के लिए चिनहट नामक स्थान पर चढ़ाई की। कानपुर की पराजय का समाचार सुनकर सर हेनरी लारेन्स की हिम्मत टूटी हुई थी। 29 जून को लोहे के पुल के पास कम्पनी की सेना जमा हुई। एक अत्यन्त घमासान संग्राम हुआ। अन्त में हार खाकर सर हेनरी लारेन्स को पीछे हटना पड़ा। अंगरेज़ों की तीन तोपें मैदान में

---

[*] "Thus in the course of ten days, the English administration in Oudh vanished like a dream and left not a wreck behind. The troops mutinied, the people threw off their allegiance. But there was no revenge, no cruelty. The brave and turbulent population, with a few exceptions, treated the fugitives of the ruling race with marked kindness, and the high courtesy and chivalry of the people of Oudh was conspicuous in their dealings with their fallen masters who, in the days of their power, had, from the best (?) of motives, inflicted on many of them a grave wrong."—Sir George W. Forrest's *State Papers*, vol. ii, p. 37.

[†] *Narrative of the Indian Revolt*, George Vickers, 1858.

रह गईं। सर हेनरी लारेन्स को लौट कर रेजिडेन्सी में आश्रय लेना पड़ा। इसके बाद क्रान्तिकारियों ने मच्छीभवन और रेज़िडेन्सी, दोनों को घेर लिया। अंगरेज़ों ने मच्छी-भवन के "मैगज़ीन को आग लगा दी। मच्छीभवन भी क्रान्तिकारियों के हाथों में आ गया।"

बेगम हज़रत महल का शासन

लखनऊ के अन्दर समस्त अंगरेज़ी सत्ता अब रेज़िडेन्सी के मकान में क़ैद हो गई। उसमें क़रीब एक हज़ार अंगरेज़ और आठ सौ हिन्दोस्तानी थे। अस्त्र-शस्त्र और रसद का सामान काफ़ी था। क्रान्तिकारियों ने चारों ओर से रेजिडेन्सी को घेरे रखा। लखनऊ के बाक़ी शहर और सारे अवध पर वाजिदअली शाह के पुत्र शाहज़ादे बिरजिस क़द्र के नाम पर बेगम हज़रत महल का शासन क़ायम हो गया।

मालेसन लिखता है—

> "सारे अवध ने हमारे विरुद्ध हथियार उठा लिए थे। न केवल बाज़ाब्ता फ़ौज ही, बल्कि पदच्युत नवाब की फ़ौज के आठ हज़ार आदमी, जमींदार, उनके सिपाही, ढाई सौ क़िले—जिनमें से बहुतों पर भारी तोपें लगी हुई थीं—स के सब हमारे विरुद्ध खड़े हो गए। इन लोगों ने कम्पनी के शासन को अपने नवाबों के शासन के साथ तोल कर देख लिया था और करीब-करीब एक मत से यह फ़ैसला कर दिया था कि उनके अपने नवाबों का शासन कम्पनी के शासन से बेहतर था। जो पेनशनर हमारी सेना में काम कर चुके थे, उन तक ने साफ़-साफ़ हमारे राज के विरुद्ध फ़ैसला दे दिया था और उनमें से हरेक विप्लव में शामिल था।"*

---

* *Red Pamphlet*, by G. B. Malleson.

सैंतालीसवां अध्याय

दिल्ली, पंजाब और बीच की घटनाएं

दिल्ली का महत्व

किन्तु सन् 57 की महान् क्रान्ति की योजना तैयार करने वालों की दृष्टि से सारी क्रान्ति का मर्मस्थान उस समय दिल्ली था। सम्राट बहादुर शाह के नाम पर क्रान्ति आरम्भ हुई थी। सम्राट बहादुर शाह ही क्रान्तिकारियों की आशाओं का मुख्य केन्द्र था। बहुत दरजे तक दिल्ली की सफलता पर भारत की स्वाधीनता निर्भर थी। इसीलिए भारत भर के अंगरेज़ों और क्रान्तिकारियों, दोनों की नज़रें दिल्ली पर जमी हुई थीं। सारे भारत से सेनाएं आ-आकर दिल्ली में जमा हो रही थीं और स्थान-स्थान के कम्पनी के खज़ाने ला-लाकर सम्राट बहादुर शाह के कदमों पर रख देती थीं अंग्रेजों ने भी दिल्ली को फिर से विजय करने के लिए अपनी पूरी शक्ति लगा रखी थी। किन्तु दिल्ली के महत्वपूर्ण संग्रामों को बयान करने से पहले हमें दिल्ली के उत्तर-पश्चिम में पंजाब की ओर एक दृष्टि डालनी होगी; खासकर इसलिए कि उस ओर से ही अंगरेज़ों ने दिल्ली पर हमला किया।

लार्ड कैनिंग की तैयारी और ऐलान

लार्ड कैनिंग ने मेरठ और दिल्ली के अशुभ समाचार पाते ही एक ओर मद्रास, कलकत्ता, रंगून इत्यादि से फौजें जमा करके जनरल नील के अधीन बनारस और इलाहाबाद की ओर भेजी और दूसरी ओर कमाण्डर-इन-चीफ ऐनसन को, जो उस समय शिमले में था, पंजाब से सेना जमा करके तुरन्त दिल्ली पर चढ़ाई करने और दिल्ली फिर से विजय करने की आज्ञा दी। इसी समय लार्ड कैनिंग ने भारतीय सिपाहियों को सान्त्वना देने के लिए सारे भारत में एक ऐलान प्रकाशित करवाया, जिसका सार यह था कि कम्पनी सरकार का विचार न कभी किसी के धर्म में हस्तक्षेप करने का था और न है ? सिपाही यदि चाहे, तो अपने कारतूस स्वयं बना सकते हैं और जिन लोगों ने कम्पनी का नमक खाया है, उनके लिए विप्लव में भाग लेना पाप है, इत्यादि। किन्तु इस तरह के ऐलानों का अब क्या प्रभाव हो सकता है।

यदि पंजाब क्रान्ति का साथ देता !

जनरल ऐनसन को दिल्ली फिर से विजय करने के लिए सेना केवल पंजाब से मिल सकती थी। यदि पंजाब ने उस समय क्रान्ति का उसी तरह साथ दिया होता, जिस तरह अवध और रुहेलखण्ड ने, तो अंगरेज़ों के लिए दिल्ली या भारत को फिर से विजय कर सकना सर्वथा असम्भव होता। पंजाब का चीफ कमिशनर सर जान लारेन्स इस बात को अच्छी तरह समझता था। इसीलिए पंजाब को और खासकर सिखों को

उस संकट के समय अंगरेज़ सरकार का भक्त बनाए रखने के लिए सर जान लारेन्स ने जो जो उपाय किए, वे अत्यन्त महत्वपूर्ण थे।

सिखों को भड़काना

सिखों को यह समझाया गया कि मुसलमान बादशाह तुम्हारे धर्म पर सदा हमले करते रहे हैं, यहां तक कि औरंगजेब ने दिल्ली के अन्दर गुरु तेगबहादुर का सर क़लम करवा दिया था। सिखों को बताया गया कि अब तुम्हें अंगरेज़ों की सहायता से अपने धर्म शत्रुओं से बदला लेने और दिल्ली के शहर को ज़मीन से मिला देने का मौका मिला है। इतना ही नहीं, वरन् बूढ़े सम्राट बहादूरशाह के नाम से एक जाली ऐलान उन दिनों जगह-जगह दीवारों पर लगा हुआ दिखाई दिया, जिसमें लिखा था कि बहादुरशाह का पहला फरमान यह है कि सब सिखों को मार डाला जाय। इतिहास लेखक मेटकाफ लिखता है कि जिस समय यह झूठा ऐलान प्रकाशित किया गया, ठीक उसी समय बूढ़ा बहादुरशाह हाथी पर बैठकर दिल्ली की गलियों में अपने मुंह से यह ऐलान करता फिर रहा था कि यह युद्ध केवल फ़िरंगियों के साथ है और किसी भी भारतवासी को किसी तरह की हानि न पहुंचाई जाय।

सिख सरदारों की सुस्ती और कायरता

सर जान्स लारेन्स की इन चालों का यथेष्ट प्रभाव पड़ा। सम्राट बहादुरशाह ने और क्रान्ति के दूसरे नेताओं ने सिखों और सिख राजाओं को अपनी ओर करने के भरसक प्रयत्न किए किन्तु उन्हें सफ़लता न मिल सकी। बहादुरशाह ने अपना एक विशेषदूत, ताजुद्दीन, पटियाला, नाभा, और जींद के राजाओं और दूसरे सिख सरदारों के पास भेजा। सिख राजाओं से मिलने के बाद ताजुद्दीन ने सम्राट को एक पत्र लिखा, जिसके कुछ वाक्य ये थे—

> "पंजाब के सब सिख सरदार सुस्त और कायर हैं। बहुत कम आशा है कि वे क्रान्तिकारियों का साथ दें। ये लोग फिरंगियों के हाथ के खिलौने बने हुए हैं। मैं स्वयं इन लोगों से एकान्त में मिला। मैंने उनसे बातचीत की और उनके सामने अपना कलेजा पानी कर दिया। मैंने उनसे कहा—'आप लोग फ़िरंगियों का साथ क्यों देते हैं और मुल्क की आज़ादी के साथ विश्वासघात क्यों करते हैं? क्या स्वराज्य में आप इससे अच्छे न रहेंगे? इसलिए कम-से-कम अपने फ़ायदे के लिए ही आपको दिल्ली के बादशाह का साथ देना चाहिए!' इस पर उन्होंने जवाब दिया—'देखिए, हम सब मौके के इन्तजार में हैं। ज्यों ही हमें सम्राट का हुक्म मिलेगा, हम एक दिन के अन्दर इन काफ़िरों (अंगरेज़ों) को मार डालेंगे।' × × × किन्तु मेरा खयाल है कि उन पर बिलकुल एतबार नहीं किया जा सकता।"

सिख राजाओं का विश्वासघात

कुछ दिनों बाद चन्द सवार सम्राट का सन्देशा लेकर इन सिख राजाओं के पास

पहुंचे। इस बीच लार्ड कैनिंग और सर जान लारेन्स के तीर भी सिख राजाओं के दिलों और दिमागों पर चल चुके थे। सिख राजाओं ने दिल्ली सम्राट के सन्देश का तिरस्कार किया और पत्र लाने वाले सवारों को मरवा डाला।

कम्पनी के राज में पंजाबी साहूकारों का हित

पंजाब की प्रजा को अपनी ओर रखने के लिए सर जान लारेन्स ने एक और उपाय यह किया कि उसने शुरू में ही पंजाब भर से 6 फ़ीसदी सूद पर कम्पनी के नाम से कर्ज़ लेना शुरू किया। इसके दो नतीज़े हुए। एक तो यह रकम बड़े संकट के समय कम्पनी के काम में आई और दूसरे, पंजाब के जिन हज़ारों हिन्दोस्तानी साहूकारों ने कम्पनी को कर्ज़ दिया, उन्हें कम्पनी के शासन के बने रहने में ही अपना हित दिखाई देने लगा।

सरहद में कम्पनी के जरखरीद मुल्ला

लखनऊ के क्रान्तिकारी नेताओं का कुछ पत्र-व्यवहार उस समय कावुल के अमीर, दोस्तमोहम्मद खां, के साथ जारी था। मालूम नहीं, अफ़ग़ानिस्तान में उसके मुकाबले के लिए अंगरेज़ों ने क्या-क्या किया, किन्तु सरहद की मुसलमान कौमों को अपनी ओर रखने के लिए सर जान लारेन्स ने खूब धन व्यय किया और उनमें प्रचार करने के लिए अनेक मुल्ला नौकर रखे। मालूम होता है कि पंजाबी हिन्दू साहूकारों के पैसे ने इसमें अंगरेज़ों को खूब काम दिया। इस तरह धन लेकर और देकर, दोनों तरह से अंगरेज़ कम्पनी ने पंजाव को अपने जाल में फंसाया।

हिन्दोस्तानी पलटनों से हथियार रखाया जाना

पंजाब के अन्दर सिख और गोरी पलटनों के अतिरिक्त हिन्दू और मुसलमान सिपाहियों की भी अनेक पलटनें थीं। ये लोग राष्ट्रीय क्रांति में भाग लेने की क़सम खा चुके थे। इनके अलावा पंजाब के अनेक नगरों की साधारण हिन्दू और मुसलमान जनता भी क्रान्ति के साथ पूरी सहानुभूति रखती थी। इसलिए अब हमें यह देखना होगा कि इन सब के प्रयत्नों को विफल करने के लिए अंगरेज़ अफ़सरों ने क्या-क्या उपाय किए और उनमें उन्हें कहां तक सफलता प्राप्त हुई।

राबर्ट माण्टगुमरी

पंजाब की सबसे बड़ी छावनी लाहौर के निकट मियांमीर में थी। मियांमीर में हिन्दोस्तानी सिपाही गोरे सिपाहियों से ठीक चौगुने थे। पंजाब की हिन्दोस्तानी सेना ने यह तय कर रखा था कि सबसे पहले मियांमीर के सिपाही लाहौर के किले पर चढ़ाई करके उस पर कब्ज़ा कर लें, और फिर पेशावर, अमृतसर, फ़िलौर और जालन्धर की पलटनें एक साथ क्रान्ति प्रारम्भ कर दें। मियांमीर की पलटनें राबर्ट माण्टगुमरी के अधीन थी। मेरठ का समाचार पाते ही माण्टगुमरी सावधान हो गया। उसे अपने एक गुप्तचर द्वारा सूचना मिली कि मियांमीर के सिपाही

भी क्रान्ति के लिए तैयार हैं। तुरन्त 13 मई को सबेरे माण्टगुमरी ने क़रीब एक हज़ार हिन्दोस्तानी सिपाहियों को परेड पर जमा किया। गोरे सवार तोपखाने सहित उनके चारों ओर खड़े कर दिए गए। सिपाहियों से हथियार रख देने के लिए कहा गया। सिपाहियों ने और कोई चारा न देख हथियार रख दिए। उसके बाद वे चुपचाप अपनी बैरकों में चले आए।

उसी समय एक पलटन गोरों की लाहौर के क़िले में भेजी गई, जिसने वहां पहुंच कर वहां के तोपखाने की मदद से क़िले के अन्दर के देशी सिपाहियों से हथियार रखा लिए, उन्हें क़िले से बाहर बैरकों में भेज दिया और लाहौर के किले पर स्वयं क़ब्ज़ा कर लिया।

यदि पंजाब चला जाता तो ....

निस्सन्देह माण्टगुमरी की ठीक समय की सूझ और फुरती ने पंजाब को कम्पनी के हाथों से निकल जाने से बचा लिया और समस्त क्रान्ति की भावी प्रगति पर बड़ा गहरा प्रभाव डाला।

सर जान लारेन्स बड़े दर्द के साथ लिखता है—

> "यदि पंजाब चला जाता तो हम अवश्य मिट जाते। उत्तरी प्रान्तों तक सहायता पहुंच सकने से बहुत पहले समस्त अंगरेज़ों की हड्डियां धूप में पड़ी सूखती होतीं। इंगलिस्तान कभी उस आफ़त से न पनप सकता था और न एशिया में फिर से अपनी सत्ता को क़ायम कर सकता था।"*

फ़िरोज़पुर में क्रान्ति

फ़िरोज़पुर में कम्पनी का एक बहुत बड़ा मैगज़ीन था। 13 मई को यह देखने के लिए वहां के सिपाहियों के भाव क्या है, अंगरेज़ों ने उन्हें परेड पर बुलाया। सिपाहियों का व्यवहार इतना सुन्दर रहा कि अंगरेज़ अफ़सरों का सन्देह उन पर से जाता रहा। किन्तु उसी दिन चन्द घण्टे बाद फ़िरोज़पुर के सिपाहियों ने क्रान्ति शुरू कर दी। अंगरेज़ों ने खुद मैगज़ीन को आग लगा दी। नगर निवासियों ने क्रान्ति में पूरा साथ दिया। अंगरेज़ों के मकान जला डाले गए। जो अंगरेज मिला, मार डाला गया। इसके बाद वहां की भारतीय सेना दिल्ली की ओर रवाना हो गयी। कुछ गोरी पलटन ने कुछ दूर तक उसका पीछा किया किन्तु अन्त में उसे असफल फ़िरोज़पुर लौट आना पड़ा।

पेशावर की देशी पलटनें

पेशावर के सम्बन्ध में कहा जाता है कि वहां पर 24, 27 और 51 नम्बर

---

* "Had the Punjab gone, we must have been ruined. Long before reinforcements could have reached the upper provinces, the bones of all Englishmen would have been bleaching in the sun. England could never have recovered from the calamity and retrieved her power in the East."—*Life of Lord Lawrence*. vol. ii, p. 335.

पैदल और 5 नम्बर सवार, इन चार देशी पलटनों ने 22 मई, सन् 1857 को क्रान्ति प्रारम्भ करने का निश्चय कर रखा था। ये चारों पलटनें पेशावर के आसपास अलग-अलग छावनियों में थी। मियांमीर का समाचार पाते ही पेशावर के अंगरेज़ अफ़सरों ने झेलम में आसपास की गोरी सेना को और अपनी विश्वासपात्र हिन्दोस्तानी पलटनों को जमा किया। 22 मई को प्रातःकाल कुछ गोरी सेना और कुछ तोपें चारों स्थानों पर भेज दी गईं और चारों देशी पलटनों को केवल सन्देह पर घेर कर उनसे हथियार रखा लिए गए।

फांसी और तोप के मुंह से उड़ाया जाना

इन निःशस्त्र सिपाहियों को अपनी बैरकों पर रहने की आज्ञा दी गई। लिखा है कि 22 तारीख की रात को उनमें से कुछ ने नगर की ओर जाना चाहा। डर था कि नगर में या आसपास विप्लव न खड़ा हो जाय। उन्हें रोक दिया गया और तुरन्त उनमें से 13 या 14 को इसलिए फांसी पर लटका दिया ताकि दूसरों को सबक मिले।* बैरकों के बाहर तोपें लगा दी गईं। उनमें से किसी को भी बाहर निकलने का साहस न हो सकता था। बाद में इनमें से अनेक को फांसी दी गई और अनेक को तोप के मुंह से बांध कर उड़ा दिया गया।

कर्नल स्पाटिश वुड की आत्महत्या

पेशावर के निकट मरदान में 55 नम्बर पैदल पलटन थी। इस पलटन के कर्नल स्पाटिश वुड को पुरा विश्वास था कि मेरी पलटन विद्रोह न करेगी। पंजाब के दूसरे अंगरेज़ों ने आग्रह किया कि इस पलटन से भी हथियार रखा दिए जाएं। कर्नल ने इसका विरोध किया। पंजाब सरकार ने हथियार रखा लेने के पक्ष में फैसला दिया। इस पर कहा जाता है कि कर्नल स्पाटिश वुड ने अपने कमरे में जाकर आत्महत्या कर ली।

होती मरदान की सेना का नाश

इस पलटन से हथियार रखा लेने के लिए पेशावर से गोरी सेना और तोपें मरदान भेजी गईं। 55 नम्बर के कुछ सिपाहियों ने यह समाचार पाते ही होती मरदान के क़िले से निकल कर भागना चाहा किन्तु कम्पनी की सेना ने, जो उनसे तादाद में अधिक थी और जिसके पास भारी तोपें थी, उन्हें घेर लिया। 150 हिन्दोस्तानी सैनिकों को उसी स्थान पर मार डाला गया, कुछ भाग निकले और बाकी गिरफ्तार कर लिए गए। लिखा है कि "55 नम्बर पलटन के कैदियों के साथ और भी अधिक भयंकर व्यवहार किया गया, ताकि दूसरों को सबक मिले। उनका कोर्ट मार्शल हुआ, उन्हें दण्ड दिया गया, और उनमें से हर तीसरे मनुष्य को तोप के मुंह से उड़ाने के लिए चुन लिया गया।"†

---

* *Narrative of the Indian Revolt*, p. 35.

† "Of the prisoners of the 55th a more aweful example was made. They were tried, condemned, and every third man was selected to be blown away from guns."—Ibid, p. 36.

वीभत्स दृश्य

एक अंगरेज़ अफ़सर, जो इन लोगों के तोप से उड़ाए जाने के समय मौजूद था, उस दृश्य को बयान करते हुए लिखता है—

> "उस दिन की परेड का दृश्य विचित्र था। परेड पर लगभग नो हज़ार सिपाही थे ××× एक चौरस मैदान के तीन ओर फ़ौज खड़ी कर दी गई। चौथी ओर दस तोपें थीं। ××× पहले दस क़ैदी तोपों के मुंह से बांध दिए गए। इसके बाद तोपखाने के अफ़सर ने अपनी तलवार हिलाई, तुरन्त तोपों की गरज सुनाई दी और धुएं के ऊपर हाथ, पर और सिर हवा में चारों ओर उड़ते हुए दिखाई देने लगे। यह दृश्य चार बार दोहराया गया। हर बार समस्त सेना में से एक जोर की गूंज सुनाई देती थी, जो दृश्य की वीभत्सता के कारण लोगों के हृदयों से निकलती थीं। उस समय से हर सप्ताह एक या दो बार उसी तरह के प्राणदण्ड की परेड होती रहती हैं और हमें उसकी इतनी आदत हो गई है कि अब हम पर उसका कोई असर नहीं होता।"*

इतिहास लेखक जान के लिखता है कि 55 नम्बर पलटन के अधिकांश सिपाहियों की निर्दोषिता को कर्नल निकल्सन और सर जान लारेन्स, दोनों ने अपने पत्रों में स्वीकार किया है। फिर भी, इस पलटन के छिपे और भागे हुए सिपाही जून और जुलाई के महीनों में बराबर दूर-दूर से पकड़ कर लाए जाते थे और इसी तरह तोप के मुंह से उड़ाए जाते थे। कभी-कभी और भी अधिक वीभत्स तरीकों से उनके प्राण लिए जाते थे।†

विप्लव के सन्देह पर उन दिनों लोगों का तोपों के मुंह से उड़ा जाना एक साधारण बात थी, जो अनेक स्थानों पर और अनेक बार दोहराई गई।

दस नम्बर पलटन की सिन्धु में जल समाधि

सन्देह पर ही 10 नम्बर सवार पलटन के हथियार रखा लिए गए। इन सब सवारों के घोड़े उनके अपने थे। ये घोड़े जब्त कर लिए गए और आठ हज़ार नक़द रुपये भी, जो सवारों के पास निकले, ले लिए गए। लिखा है कि घोड़ों को बेच कर ईस्ट इण्डिया कम्पनी के खज़ाने में पचास हजार रुपये जमा किए गए। सिपाहियों को जबरदस्ती कश्तियों में बैठाकर सिन्धु नदी में कहीं पर भेज दिया गया। मालूम नहीं, उनका अन्त क्या हुआ। एक अंगरेज़ अफ़सर, जो उस समय मौजूद था, लिखता

---

* "That parade was a strange scene. There were about nine thousand men on parade; ...... The troops were drawn up on three sides of a square, the fourth side being occupied by ten guns......The first ten of the prisoners were then lashed to the guns, the artillery officer waved his sword, you heard the roar of the guns, and above the smoke you saw legs, arms and heads—flying in all directions. There were four of these salvoes, and at each a sort of buzz went through the whole mass of the troops, a sort of murmur of horror. Since that time we have had execution parades once or twice a week, and such is the force of habit we now think little of them."—Ibid, p. 36.

†Kaye and Malleson's *History of the Indian Mutiny*, book vi, chap. iv.

है—"मुझे आशा है कि वहां पर उनमें से हर माई के लाल को तेज धार में डूबने का मौक़ा मिल जाएगा।"*

क्रूर यातनाएं

पेशावर और उसके पास के इलाक़े में क्रान्तिकारियों को या क्रान्ति के सन्देह पर लोगों को भयंकर यातनाएं दे-देकर मारा गया, जिनके बारे में इतिहास लेखक जान के लिखता है—

> "यद्यपि मेरे पास बहुत से पत्र मौजूद हैं, जिनमें यह बयान किया गया हैं कि हमारे अफ़सरों ने किस तरह की वीभत्स और क्रूर यातनाएं लोगों को पहुंचाई, फिर भी मैं उनके सम्बन्ध में एक शब्द भी नहीं लिखता, ताकि यह विषय ही अब संसार के सामने न रहे।"†

जालन्धर, फ़िलौर और लुधियाना में क्रान्ति

अब हम पेशावर से हट कर जालन्धर दोआब की ओर आते हैं। जालन्धर, फ़िलौर और लुधियाने की देशी पलटने चुपचाप, किन्तु दृढ़ता के साथ क्रान्ति की तैयारी कर रही थीं। 9 जून को अचानक जालन्धर की फ़ौज ने आधी रात को क्रान्ति का ऐलान किया। गोरी सेना जालन्धर में मौजूद थी, किन्तु देशी फौज इस तरह अचानक बिगड़ी कि गोरी सेना कर्तव्यविमूढ़ हो गई। जालन्धर के सिपाहियों ने वहां अंगरेज़ों का संहार करने में अपना समय नष्ट नहीं किया। वे तुरन्त दिल्ली की ओर चल दिए।

जालन्धर के सिपाहियों ने अपने में से एक सवार फ़िलौर के सिपाहियों को सूचना देने के लिए भेजा। उसी समय फ़िलौर की देशी फलटनें भी बिगड़ खड़ी हुईं। इसके बाद जालन्धर के सिपाही फिलौर पहुंच गए। दोनों जगह की पलटनें एक दूसरे से गले मिलीं, और फिर दिल्ली की ओर बढ़ चलीं। मार्ग में सतुलुज़ नदी थी, जिसके उस पार लुधियाना का नगर था। लुधियाना के अंगरेज़ अफ़सरों को जालन्धर और फ़िलौर के विद्रोह का पता लगने से पहले ही वहां के देशी सिपाहियों को इसकी सूचना मिल गई। लुधियाना के अंगरेज़ अफ़सरों ने सतुलुज के ऊपर का कश्तियों का पूल तोड़ दिया। गोरी और सिख पलटने और महाराजा नाभा की कुछ पलटनें सतुलुज नदी के ऊपर, फ़िलौर से आने वाली क्रान्तिकारी सेना को रोकने के लिए जमा हो गईं। क्रान्तिकारियों को जब इसका पता चला, तो उन्होंने रात्रि के समय चुपचाप चार मील ऊपर से सतलज को पार करना चाहा। किन्तु अभी उनमें से कुछ ही पार पहुंच पाए थे कि अंगरेज़ों और सिखों ने उन पर

---

* "......where I expect every mother's son will have a chance of being drowned in the rapids."—Narrative, p. 38.

† "Though I have plenty of letters with me describing the terrible and cruel tortures commited by our officers, I do not write a word about it, so that this subject should be no longer before the world!"—Kaye's *Sepoy Wer*, book vi, chap. iv.

तोपों के गोले बरसाने शुरू कर दिए। रात के क़रीब दस बजे थे, चांद के निकलने में अभी दो घण्टे बाकी थे। अंधेरे में क्रान्तिकारियों को यह भी पता नहीं चलता था कि शत्रु की सेना किस ओर है। उनकी तोपें भी अभी नदी को पार न कर पाई थी, फिर भी उसी हालत में वे दो घटे शत्रु का मुकाबला करते रहे। इतने में किसी सिपाही की एक गोली अंगरेज़ी सेना के कमाण्डर विलियम्स की छाती में जाकर लगी। वह वहीं पर ढेर हो गया। इसके बाद सुबह तक घमासान संग्राम होता रहा। अन्त में सिखों और अंगरेज़ों को पीछे हट जाना पड़ा।

विजयी क्रान्तिकारियों ने दोपहर के समय लुधियाना में प्रवेश किया। लुधियाना का नगर पंजाब में क्रान्ति का एक विशेष केन्द्र था। नगर भर में उस दिन सर्वत्र क्रान्ति थी। जेलखाना तोड़ दिया गया, अंगरेज़ी मकान जला दिए गए, सरकारी खजाने पर क़ब्जा कर लिया गया। इसके बाद जालन्धर, फ़िलौर और लुधियाना की सेनाएं मिलकर स्वाधीनता के उस युद्ध में भाग लेने के लिए दिल्ली की ओर रवाना हो गई।

सन् 57 की क्रान्ति में पंजाब की ओर से यही मुख्य सहायता थी।

'हिन्दोस्तानियों' का निर्वासन

पंजाब के अंगरेज शासकों को उस समय सबसे अधिक सन्देह पूर्व प्रान्तों के रहने वालों पर था, जिन्हें पंजाब में 'हिन्दोस्तानी' कहते हैं। इसलिए विप्लव के शुरू के दिनों में पंजाब के अनेक शहरों और ग्रामों से सहस्रों निर्दोष और प्रतिष्ठित 'हिन्दोस्तानियों' को जबरदस्ती पंजाब से निर्वासित कर सतुलुज के इस पार भेज दिया गया। इसके बाद पंजाब के अंगरेज़ों के लिए अपने यहां की गोरी और सिख सेनाओं को दिल्ली विजय करने के लिए भेजना और भी आसान हो गया।

ऐनसन के साथ हिन्दोस्तानी जनता का असहयोग

अब हम फिर क्रान्ति के सबसे बड़े केन्द्र दिल्ली की ओर आते हैं। हम ऊपर लिख चुके हैं कि लार्ड कैनिंग ने दिल्ली का समाचार पाते ही कमाण्डर-इन-चीफ जनरल ऐनसन को आज्ञा दी कि तुम फ़ौरन दिल्ली पर चढ़ाई करके दिल्ली फिर से विजय करो। जनरल ऐनसन शिमले से अम्बाला पहुंचा। अम्बाले पहुंचकर उसने दिल्ली पर चढ़ाई करने की तैयारी शुरू की। इस काम में ऐनसन को बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ा और बड़ी देर लगी। कारण यह था कि अम्बाले और उसके आसपास का कोई हिन्दोस्तानी अंगरेज़ों को किसी तरह की सहयता देने के लिए तैयार न था। ऐनसन को न गाड़ियां मिलती थीं और न मज़दूर, न रसद मिलती थी और न चारा। इतिहास लेखक जान के लिखता है—

> "हर श्रेणी के भारतवासी हमसे दूर रहे। ये लोग खामोश बैठे हुए इस बात की प्रतीक्षा कर रहे थे कि परिस्थिति किस ओर को मुड़ती है। पूंजीपतियों से लेकर कुलियों तक सब एक समान हमें सहायता देने में संकोच करते थे, क्योंकि उन्हें सन्देह था कि कदाचित हमारी सत्ता एक दिन के अन्दर उखड़ कर फिंक जाय।"*

---

* Ibid, vol. ii.

सिख राजाओं का देशद्रोह

एक दूसरी कठिनाई ऐनसन के सामने और थी। अम्बाले और दिल्ली के बीच में पंजाब की तीन बड़ी रियासतें—पटियाला, नाभा और जींद—के इलाके पड़ते थे। यदि यह तीनों रियासतें उस समय देश का साथ दे जातीं, तो इसमें अणु मात्र भी सन्देह नहीं हो सकता कि अंगरेज़ों के लिए दिल्ली फिर से विजय कर सकना सर्वथा असम्भव होता और भारत की भूमि से अंगरेज़ी राज की जड़ें उस समय वास्तव में निकल कर फिक गई होतीं। यदि पटियाला, नाभा और जींद तटस्थ भी रहते, तो नतीजा अंगरेज़ी राज के लिए शायद इतना ही अहितकर होता। किन्तु जनरल ऐनसन और अंगरेज़ी राज, दोनों के सौभाग्य से इन तीनों रियासतों ने उस समय भारतीय क्रान्तिकारियों के विरुद्ध अंगरेज़ों को धन, जन और माल, तीनों की भरपूर सहायता दी। सर जान लारेन्स और उसके साथियों की नीतिज्ञता के कारण ऐनसन को अपने साथ के लिए पंजाब से काफ़ी अंगरेज़ी सेना भी मिल गई।

अम्बाले से दिल्ली का रास्ता अब जनरल ऐनसन के लिए साफ हो गया और दिल्ली के क्रान्तिकारियों को पंजाब से और अधिक सहायता मिल सकना असम्भव हो गया।

पटियाले के राजा ने अपनी सेना और तोपखाना भेजकर अंगरेज़ों के लिए थानेश्वर की रक्षा की। जींद के राजा ने पानीपत की रक्षा का भार अपने हाथ में लिया।

कमाण्डर-इन-चीफ ऐनसन की मृत्यु

इसके बाद कमाण्डर-इन-चीफ़ ऐनसन अंगरेज़ी और सिख सेना सहित, जिसमें बहुत-सी सेना इन्हीं तीन रियासतों की थी, 25 मई को अम्बाले से दिल्ली की ओर रवाना हुआ। तथापि जनरल ऐनसन का हृदय उस विकट परिस्थिति में भीतर से घबरा रहा था। मार्ग में 27 मई को हैज़े से करनाल में उसकी मृत्यु हो गई। सर हेनरी बरनार्ड उसकी जगह कमाण्डर-इन-चीफ़ नियुक्त हुआ।

अंगरेज़ी सेना के अनसुने अत्याचार

अम्बाले से दिल्ली तक की यात्रा में अंगरेज़ी फ़ौज ने जो-जो अकथनीय अत्याचार किए, वे किसी अंश में जनरल नील के अत्याचारों से कम न थे। मार्ग में अनगिनत ऐसे लोगों को, जो पंजाब से दिल्ली की ओर आ रहे थे इस सन्देह में कि वे दिल्ली के क्रान्तिकारियों की सहायता के लिए जा रहे हैं, पकड़-पकड़ कर मार डाला गया। इससे भी बढ़कर एक अंगरेज़ अफ़सर, जो उस यात्रा में सेना के साथ था, लिखता है कि अम्बाले से दिल्ली तक मार्ग की जनता के ऊपर अंगरेज़ी सत्ता का दबदबा फिर से कायम करने के लिए सैंकड़ों ग्रामों में हज़ारों ही निर्दोष ग्रामनिवासियों को अत्यन्त तीव्र यातनाएं, दे-दे कर मार डाला गया, उनके सरों से एक-एक कर बाल उखाड़े जाते थे, उनके शरीरों को संगीनों से बींधा जाता था और सबसे अन्त में, मृत्यु से पहले भालों और संगीनों के जरिए इन हिन्दू ग्रामनिवासियों के मुंह में गाय का मांस ठूंस दिया जाता था।*

**History of the Siege of Delhi*, by an Officer who served there.

एक ओर उन्हें यातनाएं दी जाती थी और दूसरी ओर उनकी आंखों के सामने फांसियां तैयार की जाती थीं। फांसियां तैयार हो जाने पर उन्हें इस अधमरी अवस्था में उन फांसियों पर लटका दिया जाता था।

फ़ौजी अदालत का स्वांग

इन में से अधिकांश ग्रामनिवासियों ने कभी भी अंगरेजी राज के विरुद्ध शस्त्र न उठाए थे इसलिए इन्हें दण्ड देने से पहले तमाशे के लिए एक फ़ौजी अदालत बैठाई जाती थी। जो फ़ौजी अफ़सर जज नियुक्त होते थे, वे अपनी नियुक्ति से पहले इस बात की शपथ लेते थे कि हम एक भी कैदी को फांसी से न बचने देंगे*। इसके बाद ग्रामवासियों की कतारें दूर तक उनके सामने खड़ी कर दी जाती थीं और तुरन्त फैसला सुना दिया जाता था।

एक अज्ञात सिपाही

मेरठ की गोरी सेना, जो 10 मई को कर्तव्यविमूढ़ हो गई थी, अब जनरल बरनार्ड की सेना के साथ मिलने के लिए मेरठ से बढ़ी। इन दोनों के मेल से पहले दिल्ली की क्रान्तिकारी सेना ने आगे बढ़कर हिन्डन नदी के ऊपर 30 मई, सन् 1857 को मेरठ की अंगरेज़ी सेना पर हमला किया। संग्राम में क्रांन्तिकारी सेना का बाईं ओर का भाग कुछ कमजोर पड़ गया। उस ओर उनकी पांच तोपें थी, अंगरेज़ी सेना ने उन तोपों पर कब्जा करना चाहा। क्रान्तिकारी सेना उस ओर से हट चुकी थीं, केवल एक सिपाही तोपों के बीच में छिपा रह गया था। ठीक उसी समय जब कि कई अंगरेज़ अफ़सर और सिपाही तोपों पर कब्जा करने पहुंचे। इस भारतीय सिपाही ने चुपके से मैगज़ीन में आग लगा दी। कई अंगरेज़ उस भारतीय सिपाही के साथ-साथ वहीं पर जल कर खाक हो गए। इतिहास लेखक जान के इस अज्ञात सिपाही की सूझ और उसकी वीरता की प्रशंसा करते हुए लिखता है—

> **"इससे हमें यह शिक्षा मिली कि विद्रोहियों में इस तरह के वीर और साहसी लोग मौजूद थे, जो राष्ट्रीय हित के लिए तत्क्षण प्राण देने को तयार थे।" †**

अंगरेजी और क्रान्तिकारी सेना में संग्राम

दिल्ली की सेना उस दिन पीछे लौट गई। अगले दिन यानी 31 मई को वह मेरठ की सेना का मुकाबला करने के लिए नगर से निकली। दोनों ओर से गोलाबारी होने लगी। लिखा है कि उस दिन अंगरेजों की और बहुत अधिक जानें गईं। शाम को दिल्ली की सेना अंगरेज़ी सेना के एक बार तितर-बितर करके फिर दिल्ली की ओर वापस चली गई।

---

* Holmes' *History of the Sepoy War,* p. 124.

† "It taught us that, among the mutineers, there were brave and desperate men who were ready to court instant death for the sake of the national cause!" —Key's *History of the Sepoy War,* vol. ii, p. 138.

गोरखों का देशद्रोह

अगले दिन यानी 1 जून को मेजर रीड के अधीन एक गोरखा सेना मेरठ की अंगरेज़ी सेना की सहायता के लिए मौके पर पहुंच गई। अम्बाले से जनरल वरनार्ड के अधीन अंगरेज और सिख सेना भी 7 जून को इस सेना से आ मिली। दिल्ली के मोहासरे के लिए वहुत सा सामान महाराजा नाभा की ओर से इन लोगों के पास पहुंचा। इसके वाद यह विशाल संयुक्त सेना दिल्ली के निकट अलीपुर तक पहुंच गई।

बुन्देले की सराय का भीषण संग्राम

दिल्ली की सेना फिर एक वार इस सेना के मुकाबले के लिए निकली। बुन्देले की सराय के निकट 8 जून, सन् 1857 को सुवह से शाम तक भीषण संग्राम हुआ। क्रान्तिकारी सेना का सेनापति उस समय सम्राट वहादुरशाह का एक पुत्र, मिरज़ा मुगल, था, जिसने शायद जीवन में कभी भी लड़ाई का मैदान न देखा था। दूसरी ओर, योग्य से योग्य सेनापति, और सिखों और गोरखों की सहायता। सायंकाल तक दिल्ली की सेना को फिर नगर के अन्दर लौट आना पड़ा। उनकी कई तोपें शत्रु के हाथ आ गईं और कम्पनी की सेना दिल्ली की दीवार के नीचे तक पहुंच गई।

दिल्ली के भीतर अदम्य उत्साह

दिल्ली शहर के अन्दर उस समय एक विचित्र उत्साह था। प्रान्त-प्रान्त से पलटनें और खज़ाना आकर दिल्ली में जमा हो रहा था। स्थान-स्थान से सम्राट बाहदुरशाह के नाम वफ़ादारी के पत्र आ रहे थे। नगर के अन्दर वारूद बनाने और अस्त्र-शस्त्र ढालने के लिए अनेक कारखाने खुल गए थे, जिनमें अनेक तोपें रोजाना ढलती थीं और हज़ारों मन वारूद तैयार होती थी। सम्राट वहादुरशाह का एक खादिम, ज़हीर, अपनी पुस्तक "दास्ताने गदर" में लिखता है कि अकेले चूड़ीवालों के मोहल्ले के एक कारखाने में सात सौ मन वारूद रोजाना तैयार होती थी।

गोहत्या पर कड़ा दण्ड

सम्राट वहादुरशाह अकसर हाथी पर बैठकर शहर में निकला करता था और जनता और सिपाहियों को प्रोत्साहित करता था। ऐलान किया जा चुका था कि जो आदमी भी गोहत्या के अपराध का भागी होगा, उसके हाथ काट लिए जाएंगे या उसे गोली से उड़ा दिया जाएगा। गोहत्या के बारे में इस तरह की आज्ञा सम्राट वावर के समय से चली आती थी। कट्टर या अदूरदर्शी औरंगजेब तक ने इस हितकर आज्ञा पर अमल कायम रखा था। किन्तु दिल्ली और उसके आसपास के इलाक़े में कम्पनी का राज जमने के समय से गोरी सेना का पेट भरने के लिए फिर से गोहत्या शुरू हो गई थी। ऊपर एक अध्याय में लिखा जा चुका है कि मथुरा और दोआब के इलाके में इसके कारण भयंकर असन्तोष पैदा हो गया था। यही कारण था कि सम्राट वहादुरशाह को वास्तविक सत्ता हाथ में लेते ही फिर एक बार उस तीन सौ साल पुरानी आज्ञा को दोहराना पड़ा।

सम्राट बहादुरशाह के ऐलान

क्रान्ति के प्रारम्भ में, दिल्ली के स्वाधीन होते ही, सम्राट बहादुरशाह की ओर से एक ऐलान सारे भारत में प्रकाशित किया गया, जिसके कुछ वाक्य ये थे—

> "ऐ हिन्दुस्तान के फरज़न्दो ! अगर हम इरादा कर लें, तो बात की बात में दुश्मन का खात्मा कर सकते हैं ; हम दुश्मन का नाश कर डालेंगे और अपने धर्म और अपने देश को, जो हमें जान से भी ज्यादा प्यारा है, खतरे से बचा लेंगे ।"*

कुछ समय बाद सम्राट की ओर से एक दूसरा ऐलान प्रकाशित हुआ, जिसकी प्रतियां सारे भारत के अन्दर, यहां तक कि दक्षिण के बाजारों और छावनियों में भी हाथों-हाथ बंटती हुई पाई गईं। इस ऐलान में लिखा था—

> "तमाम हिन्दुओं और मुसलमानों के नाम—हम महज़ अपना धर्म समझ कर जनता के साथ शामिल हुए हैं। इस मौके पर जो कोई कायरता दिखलाएगा या भोलेपन के कारण दग़ाबाज फ़िरंगियों के वादों पर ऐतबार करेगा, वह जल्दी ही शरमिन्दा होगा और इंगलिस्तान के साथ अपनी वफ़ादारी का उसे वैसा ही इनाम मिलेगा, जैसा लखनऊ के नबाबों को मिला। इसके अलावा इस बात की भी जरुरत है कि इस जंग में तमाम हिन्दू और मुसलमान मिल कर काम करें और किसी प्रतिष्ठित नेता की हिदायतों पर चल कर इस तरह का बरताव करें जिससे अमनो आमान क़ायम रहे और ग़रीब लोग सन्तुष्ट रहें; और उनका अपना रुतबा और उनकी शान बढ़े। जहां तक मुमकिन हो सके, सबको चाहिए कि इस ऐलान की नकलें करके आम जगहों पर लगा दें। ××× "

एक और तीसरा ऐलान बहादुरशाह की तरफ से बरेली में प्रकाशित हुआ; जिसमें लिखा था—

> "हिन्दुस्तान के हिन्दुओं और मुसलमानों, उठो ! भाइयों, उठो! खुदा ने जितनी बरकतें इनसान को अता की हैं, उनमें सबसे क़ीमती बरकत 'आज़ादी' है। क्या वह जालिम नाकस, जिसने धोका दे-देकर यह बरक़त हमसे छीन ली है, हमेशा के लिए हमें उससे महरूम रख सकेगा? क्या खुदा की मरज़ी के खिलाफ़ इस तरह का काम हमेशा जारी रह सकेगा ? नहीं, नहीं! फ़िरंगियों ने इतने जुल्म किए हैं कि उनके गुनाहों का प्याला लबरेज़ हो चुका है। यहां तक कि अब हमारे पाक मजहब को नाश करने की नापाक ख्वाहिश भी उन में पैदा हो गई है। क्या तुम अब भी खामोश बैठे रहोगे? खुदा अब यह नहीं चाहता कि तुम खामोश रहो, क्योंकि उसने हिन्दुओं और मुसलमानों के दिलों में अंगरेजों को अपने मुल्क से बाहर निकालने की ख्वाहिश पैदा कर दी है और ख़ुदा के फ़ज़ल और तुम लोगों की बहादुरी के प्रताप से जल्दी ही

---

* Leckey's *Fictions Exposed and Urdoo Works.*

अंगरेज़ों को इतनी कामिल शिकस्त मिलेगी कि हमारे इस मुल्क हिन्दोस्तान में उनका ज़रा भी निशान न रह जाएगा। हमारी इस फ़ौज में छोटे और बड़े की तमीज़ भुला दी जाएगी और सबके साथ बराबरी का बर्ताव किया जाएगा; क्योंकि इस पाक जंग में अपने धर्म की रक्षा के लिए जितने लोग तलवार खींचेंगे, वे सब एक समान यश के भागी होंगे। वे सब भाई-भाई हैं, उनमें छोटे-बड़े का कोई भेद नहीं। इसलिए मैं फिर अपने तमाम हिन्दी भाइयों से कहता हूं, उठो और ईश्वर के बताए हुए इस परम कर्तव्य को पूरा करने के लिए मैदाने जंग में कूद पड़ो।"*

दिल्ली के निकट पहाड़ी पर अंगरेज़ों का कब्जा

दिल्ली का शहर पूरी तरह क्रान्तिकारियों के हाथों में था। अंगरेज़ कम्पनी को सेना ने बुन्देले की सराय की लड़ाई के बाद दिल्ली से पश्चिम में "पहाड़ी" पर कब्जा कर लिया। यह स्थान दिल्ली पर हमला करने के लिए बड़ी सुविधा का स्थान था। हमले की सलाहें होती रहीं, किन्तु अंगरेज़ सेनापतियों को हमले का साहस न हो सका। इस बीच दिल्ली की क्रान्तिकारी सेना ने बाहर निकल कर अंगरेज़ी सेना पर बार-बार हमले करने शुरू किए। सबसे पहले 12 जून को दिल्ली की सेना ने अंगरेज़ी सेना पर हमला किया। इतिहास लेखक जान के लिखता है कि उस दिन के संग्राम में कम्पनी के हिन्दुस्तानी सिपाहियों का एक दस्ता, जिसकी वफ़ादारी पर अंगरेज़ों को पूरा विश्वास था, क्रान्तिकारियों से जा मिला। अंगरेज़ी सेना को काफ़ी हानि पहुंचाने के बाद दिल्ली की सेना फिर शहर के अन्दर लौट आई।

क्रान्तिकारी पलटनों का नियम

इसके बाद बजाय इसके कि अंगरेज़ी सेना को दिल्ली में प्रवेश करने का साहस होता, लगभग हर रोज़ भारतीय सेना प्रातःकाल शहर से निकल कर अंगरेज़ी सेना पर हमला करती थी और शाम तक उन्हें काफी नुकसान पहुंचा कर फिर नगर में वापस चली आती थी। दिल्ली में उन दिनों यह एक नियम था कि जो नयी पलटन बाहर से दिल्ली में आती थी, वह अपने आने के अगले दिन सवेरे एक बार अंगरेज़ी सेना पर हमला करती थी। इन लड़ाइयों में 17, 20 और 23 जून की लड़ाइयां अधिक भयंकर थीं। जिस वीरता के साथ क्रान्तिकारी सेनाओं ने इन लड़ाइयों में अंगरेज़ों, सिखों और गोरखों की संयुक्त सेनाओं पर हमला किया, उन्हें बार-बार अपनी जगह से हटा दिया और उनके अनेक अफ़सरों और सैनिकों को खतम कर दिया, उस वीरता की लार्ड राबर्ट्स और दूसरे अंगरेज अफसरों ने अपनी रिपोर्ट में मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की है। कमाण्डर-

---

*बहादुरशाह का यह ऐलान उर्दू में था। हमें दुख है कि हमें इसकी उर्दू प्रति नहीं मिल सकी। स्वाधीनता के इस युद्ध सम्बन्धी इस तरह के सब पत्रों और ऐलानों का अंगरेज़ों के ही अनुवादों या प्रतिलिपियों से हिन्दी में अनुवाद करना पड़ा है।—लेखक

इन-चीफ़ बरनार्ड ने अब निश्चय कर लिया कि जब तक और अधिक सेना सहायता के लिए पंजाब से न आए, तब तक दिल्ली पर हमला करना और विजय प्राप्त कर सकना असम्भव है।

प्लासी की शताब्दी

23 जून प्लासी की शताब्दी का दिन था। उस दिन के हमले के लिए दिल्ली में खास तैयारियां हो रही थीं। ठीक प्रातःकाल शहरपनाह की तोपों ने अंगरेजी सेना के ऊपर गोले बरसाने शुरू किए। क्रान्तिकारी सेना शहर से बाहर निकली और संयुक्त ब्रिटिश सेना पर टूट पड़ी। अत्यन्त घमासान संग्राम हुआ। उस दिन के संग्राम के बारे में मेजर रीड लिखता है—

> **"क़रीब 12 बजे क्रान्तिकारियों ने हमारी पूरी सेना के ऊपर एक अत्यन्त भीषण हमला किया। कोई उससे अच्छा न लड़ सकता था, जितना अच्छा कि क्रान्तिकारी लड़े। उन्होंने हमारी सारी पलटनों पर बार-बार हमला किया और एक बार मुझे ऐसा मालूम होता था कि हम मैदान खो बैठे।"***

अंगरेजों की सहायता के लिए नयी सेना

किन्तु अंगरेजों के सौभाग्य से ठीक संकट के समय एक और नयी सेना पंजाब से अंगरेज़ों को सहायता के लिए आ पहुंची। क्रान्तिकारियों के लिए अब काम इतना सरल न रहा, फिर भी वे शाम तक मैदान में डटे रहे। अन्त में दोनों ओर की सेनाएं युद्ध क्षेत्र से पीछे हट गईं। जोड़ बराबर का रहा और दोनों सेनाओं के दिलों में एक दूसरे की वीरता के लिए आदर पैदा हो गया।

सिखों को श्रेय

यदि सिखों ने उस दिन अंगरेजों का साथ न दिया होता और नयी पंजाबी सेना समय पर सहायता के लिए न पहुंचती होती, तो 23 जून, सन् 1857 को दिल्ली की फ़सील के नीचे कम्पनी की सेना का सर्वनाश हो गया होता, और फिर भारत में अंगरेजों का अपनी सत्ता कायम रख सकना लगभग असम्भव था।

सेनापति बख्त खां को क्रान्तिकारी सेना

2 जुलाई, सन् 1857 को मोहम्मद बख्त खां के अधीन रुहेलखण्ड की सेना ने दिल्ली में प्रवेश किया। नगरनिवासियों और सम्राट बहादुरशाह की ओर से इस नेता का विशेष स्वागत हुआ। बख्त खां ने सम्राट से भेंट की। इस बीच दिल्ली में स्थान स्थान की फ़ौजों के आने के कारण प्रबन्ध की कुछ शिथिलता दिखाई देने लगी थी। सेनापति मिरजा मुगल में सुशासन स्थापित करने की योग्यता दिखाई न देती थी। अनेक शिकायतें सम्राट के कानों तक पहुंची। बूढ़े सम्राट ने अपने बेटे मिरजा मुगल को हटा

---

*Major Reid's *Siege of Delhi*.

कर उसकी जगह वख्त खां को दिल्ली की सारी सेनाओं का प्रधान सेनापति और दिल्ली का 'गवर्नर' नियुक्त किया। बख्त खां अत्यन्त योग्य और वीर था। उसने सम्राट से कहा कि यदि इसके बाद कोई शाहजादा भी शहर के अन्दर प्रबन्ध में बाधा डालेगा, या प्रजा के साथ किसी तरह का अन्याय करेगा, तो मैं तुरन्त उसके नाक-कान कटवा डालूंगा। सम्राट ने स्वीकार कर लिया।

बख्त खां का शासन प्रबन्ध

बख्त खां की नियुक्ति का ऐलान सारे शहर में कर दिया गया। बख्त खां के साथ क़रीब चौदह हज़ार पैदल, दो या तीन सवार पलटन और अनेक तोपें थीं।* वह अपनी सेना को छै महीने की तनखाहें पेशगी दे चुका था। इसके अतिरिक्त उसने चार लाख रुपये नक़द लाकर सम्राट को भेंट किए। बख्त खां ने शहर में सुशासन स्थापित किया और आज्ञा दे दी कि कोई भी नगरनिवासी बिना हथियार के न रहे। जिनके पास हथियार न थे, उन्हें मुफ्त हथियार दिए गए। इसके बाद यदि कोई सिपाही बिना पूरी कीमत दिए किसी से कोई चीज़ लेता था, तो सिपाही का एक हाथ काट दिया जाता था। उसी दिन रात को 8 बजे महल के अन्दर सम्राट बहादुरशाह, बेगम ज़ीनतमहल, सेनापति बख्त खां और दूसरे नेताओं में सलाह हुई। 3 जुलाई को एक आम परेड हुई, जिसमें क़रीब बीस हज़ार सेना मौजूद थी।†

इस बीच नए नए अंगरेज़ अफ़सर और अनुभवी सेनापति पंजाब से और अधिक सेनाएं ला-लाकर अंगरेज़ी सेना में शामिल होते गए। फिर भी प्रधान सेनापति जनरल बरनार्ड को दिल्ली की सेना पर हमला करने का साहस न हो सका। 4 जुलाई को बख्त खां ने अपनी सेना सहित अंगरेज़ी सेना पर हमला किया।

कम्पनी की सैनिक स्थिति

कम्पनी की सेना को दिल्ली की दीवारों के नीचे पड़े हुए एक महीने से ऊपर हो चुका था। अनेक अफ़सरों के बयानों से साबित है कि अंगरेज़ों को विश्वास था कि दिल्ली पहुंचने के चन्द घण्टे बाद ही दिल्ली पर विजय प्राप्त कर लेंगे। किन्तु वह विश्वास निराशा में बदलता हुआ दिखाई दे रहा था। इस निराशा में ही 5 जुलाई, सन् 1857 को जनरल बरनार्ड भी हैज़े से मर गया। जनरल रीड ने उसका स्थान लिया। इस तरह क्रान्ति के शुरू होने से अब तक कम्पनी के दो कमाण्डर-इन-चीफ मर चुके थे। जनरल रीड तीसरा था, किन्तु अभी तक दिल्ली विजय न हुई थी।

अंगरेज़ी सेना की पराजय

दिल्ली की सेना के हमले अंगरेज़ी सेना पर बराबर जारी रहे। 9 जुलाई को बख्त खां के अधीन दिल्ली की सेनाने इतना ज़बरदस्त हमला किया कि अंगरेज़ी सेना

---

*'दास्ताने ग़दर'—लेखक : जहीर

† *Native Narratives* by Metcalfe, p. 60.

के सवारों को सामने से भाग जाना पड़ा और अंगरेज़ी तोपों के मुंह वन्द हो गए। अनेक अंगरेज़ अफ़सर मारे गए। इतिहास लेखक जान के लिखता है उस दिन कि हार पर कुछ अंगरेज़ सिपाही इतने बौखला गए कि उन्होंने अपने कैम्प में जाकर अपने निर्दोष गरीब हिन्दोस्तानी और अनेक वफ़ादार काले नौकरों तक को मार डाला। क्योंकि––

> "इन गोरे सिपाहियों के दिलों में समस्त काले एशिया निवासियों के लिए प्रचण्ड घृणा की आग भड़क रही थी।"*

अंगरेज़ी सेना में नैराश्य

14 जुलाई के आक्रमण में अंगरेज़ों की इससे भी बुरी हालत हुई। जनरल रीड़ भी घबरा गया। बीमार पड़ कर और इस्तीफा देकर 15 जुलाई को वह पहाड़ पर चला गया। जनरल विल्सन ने उसकी जगह ली। अंग्रेजी सेना का यह चौथा कमाण्डर-इन-चीफ था। दिल्ली की मीनारों के ऊपर स्वाधीनता की हरी पताका को लहराते हुए दो महीने हो चुके थे। भारत भर में अनेक अंगरेज़ यह कहने लगे थे कि, "जो सेना दिल्ली का मोहासरा कर रही है उसका स्वय मोहासरा हो रहा है।" यहां पर यह याद रखना चाहिए कि अंगरेज़ी सेना केवल दिल्ली की पश्चिमी दीवार के नीचे थी, बाक़ी तीनों तरफ़ से क्रान्ति के सहायकों और शुभचिन्तकों के, लिए आने जाने का मार्ग खुला हुआ था। अंगरेज़ी सेना में उस समय अनेक लोग संजीदगी के साथ यह विचार कर रहे थे कि दिल्ली विजय करने का विचार छोड़ कर अभी किसी दूसरी तरफ़ ध्यान दिया जाय।

भारतीय नरेशों का अनिश्चय

अब हम फिर थोड़ी देर के लिए दिल्ली से हट कर क्रान्ति के दूसरे केन्द्रों की तरफ़ निगाह डालते हैं। जिस तरह सिखों ने कम्पनी की मदद की, उसी तरह अनेक राजपूत तथा मराठा नरेशों ने अपने अनिश्चय द्वारा भारतीय स्वाधीनता के उन प्रयत्नों को बहुत बड़ी हानि पहुंचाई।

ग्वालियर की स्थिति

जियाजीराव सिंधिया उस समय ग्वालियर की गद्दी पर था। उसकी सारी भारतीय सेना, जो अत्यन्त सन्नद्ध थी, उस राष्ट्रीय योजना में शामिल थी। 14 जून को ग्वालियर की सेना ने कम्पनी के विरुद्ध क्रान्ति का झण्डा खड़ा कर दिया। उसने ग्वालियर के अंगरेज़ों के मकान जला दिए, अंगरेज़ अफ़सरों और नगर के दूसरे अंगरेज़ों को मार डाला। किन्तु अंगरेज़ स्त्रियों और बच्चों को उन्हों ने छुआ तक नहीं।† इन सबको उन्होंने गिरफ्तार कर लिया। कुछ अंगरेज़ आगरे की ओर भाग निकले। ग्वालियर की सारी रियासत से कम्पनी का प्रभाव और प्रभुत्व, दोनों बिलकुल मिट गए। फिर भी

---

* Kaye and Malleson's *Indian Mutiny*, vol. ii, p. 438.

† Mrs. Coopland's Narrative.

महाराजा सिंधिया संकोच में रहा। निस्सन्देह, यदि महाराजा सिंधिया उस समय कम्पनी के साथ मित्रता निबाहने के स्थान पर खुले क्रान्तिकारियों का साथ दे बैठता और अपनी विशाल सेना सहित, जो इस समय नेता न होने के कारण निकम्मी थी, दिल्ली पर चढ़ाई कर देता तो दिल्ली के भीतर की क्रान्तिकारी सेना और बाहर से सिंधिया की सेना, दोनों के बीच में पिस कर कम्पनी की सेना वहीं समाप्त हो गई होती, और क्रान्तिकारियों के पक्ष को भारत भर में अनन्त बल प्राप्त हो जाता।

इन्दौर और मध्य भारत

क़रीब-क़रीब यही हालत इन्दौर के महाराजा होलकर की थी। 1 जुलाई को सआदत खां के अधीन इन्दौर की सेना ने इन्दौर की रेजिडेन्सी पर हमला किया। वहां के सब अंगरेज़ों की जान बख्श दी गई। वे इन्दौर छोड़कर भाग गए। किन्तु अंगरेज़ इतिहास लेखक भी इस बात का निश्चय नहीं कर पाते कि महाराजा होलकर की सहानुभूति अंगरेज़ों के साथ थी या क्रान्तिकारियों के साथ। यह बात ध्यान देने योग्य है कि इस तरह के अवसरों पर, जब कि अनेक भारतीय नरेश अन्त तक निश्चय न कर सके, रियासतों की सेनाओं और कम्पनी की सबसीडियरी सेनाओं ने हर जगह क्रान्ति का साथ दिया। यही हालत कच्छ और राजपूताने की रियासतों की थी। इतिहास लेखक मालेसन लिखता है कि जयपुर और जोधपुर के राजाओं ने अपनी सेनाओं को आज्ञा दी कि जाकर अंगरेज़ों की मदद करो, किन्तु सिपाहियों और उनके अफ़सरों ने साफ इनकार कर दिया।*

आगरे की स्वाधीनता

यही हालत भरतपुर और दूसरी कई रियासतों की भी थी। 5 जुलाई को क्रान्तिकारी सेना ने आगरे पर हमला किया। आगरे में कुछ गोरी सेना मौजूद थी। भरतपुर के राजा ने अपनी सेना अंगरेज़ों की सहायता के लिए भेजी। ऐन मौके पर भरतपुर की सेना ने साफ़ जवाब दे दिया कि हम अपने देशवासियों के विरुद्ध न लड़ेंगे। जनरल पॉलवेल की गोरी सेना और क्रान्तिकारियों में एक संग्राम हुआ, जिसमें दिन भर की लड़ाई के बाद गोरी सेना को हार कर पीछे हट जाना पड़ा। 6 जुलाई को आगरे के शहर के ऊपर हरा झण्डा फहराने लगा। उसी दिन वहां के शहर कोतवाल, सारी पुलिस और हिन्दुओं और मुसलमानों ने मिलकर हरे झण्डे का एक बहुत बड़ा जलूस निकाला और ऐलान कर दिया कि आज से आगरे के ऊपर अंगरेज़ी राज के स्थान पर दिल्ली के सम्राट का आधिपत्य फिर से कायम हो गया।

किन्तु इन भारतीय नरेशों की उस समय की अनिश्चिय की स्थिति ने क्रान्ति को बड़ी हानि पहुंचाई।

---

* Malleson's *Indian Mutiny*, vol. iii, p. 172.

इलाहाबाद में अंगरेजों की राजधानी

अब हम फिर कानपुर और इलाहाबाद की ओर आते हैं। इलाहाबाद के शहर और किले पर अंगरेज़ों का कब्ज़ा फिर से हो चुका था। उत्तर भारत में क्रान्ति का दमन करने की दृष्टि से इलाहाबाद अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान था। इसलिए लार्ड कैनिंग अब कलकत्ते से इलाहाबाद आ गया। क्रान्ति के शान्त हो जाने के समय तक के लिए उसने इलाहाबाद को ही अपनी राजधानी नियत किया।

अंगरेज़ी सेना की कानपुर यात्रा

जिस समय कानपुर के अंगरेज़ों की मुसीबतों का समाचार इलाहाबाद पहुंचा, जनरल नील ने थोड़ी-सी सेना इलाहाबाद की रक्षा के लिए रख कर बाकी मेजर रिनार्ड के अधीन कानपुर के अंगरेज़ों की सहायता के लिए भेज दी। यह सेना जनरल नील की क़ायम की हुई मर्यादा के अनुसार दोनों तरफ़ के गांवों को आग लगाती हुई कानपुर की तरफ़ बढ़ी।

एक दूसरा अंगरेज़ सेनापति जनरल हैवलाक, जून के अन्त में इलाहाबाद पहुंचा। इसी बीच कानपुर में अंगरेजों की पराजय और सतीचौरा घाट के हत्याकाण्ड का समाचार भी इलाहाबाद पहुंच गया। जनरल हैवलाक भी अंग्रेज और सिख सेना और तोपखाना सहित कानपुर की तरफ़ बढ़ा।

आगे चल कर हैवलाक और रिनार्ड की सेनाएं मिल गईं। मार्ग के ग्रामों को ग्रामनिवासियों सहित जलाने का कार्यक्रम पूर्ववत् जारी रहा। कम्पनी की सेना की इस यात्रा के बारे में इतिहास लेखक सर चार्ल्स डिल्क लिखता है—

> "सन् 1857 में जो पत्र इंगलिस्तान पहुंचे, उनमें एक ऊंचे दरजे का अफ़सर, जो कानपुर की तरफ अंगरेज़ी सेना की यात्रा में साथ था, लिखता है कि—'मैंने आज की तारीख में खूब शिकार मारा। बाग़ियों को उड़ा दिया।' याद रखना चाहिए कि जिन लोगों को इस तरह फ़ांसी दी गई या तोप से उड़ाया गया, वे सशस्त्र 'बाग़ी' न थे बल्कि गांव के रहने वाले थे, जिन्हें केवल 'सन्देह पर' पकड़ लिया जाता था। इस कूच में गांव के गांव इस क्रूरता के साथ जला डाले गए और इस क्रूरता के साथ निर्दोष ग्राम निवासियों का संहार किया गया कि जिसे देख कर एक बार मोहम्मद तुगलक भी शरमा जाता।"*

फ़तहपुर की अग्नि समाधि

नाना साहब ने ज्वाला प्रसाद और टीकासिंह के अधीन कुछ सेना कम्पनी की सेना के मुकाबले के लिए भेजी। 12 जुलाई को फ़तहपुर के नज़दीक दोनों सेनाओं में एक

---

* "......letters which reached home in 1857, in which an officer in high command during the march upon Cawnpore, reported, 'good bag today—polished off rebels,' it being borne in mind that the 'rebels' thus hanged or blown from guns were not taken in arms, but villagers apprehended 'on suspicion'. During this march atrocities were committed in the burning of villages and massacre of innocent inhabitants at which Mohammed Tuglak himself would have stood ashamed, ..."—*Greater Britain*, by Sir Charles Dilke.

संग्राम हुआ, जिसमें कानपुर की क्रान्तिकारी सेना को हार कर पीछे हट जाना पड़ा। इसके बाद अंगरेज़ों ने फ़तहपुर के नगर में प्रवेश किया।

इस बीच फ़तहपुर का नगर अपनी स्वाधीनता का ऐलान कर चुका था। कुछ अंगरेज़ अफ़सर वहां पर मारे भी जा चुके थे। किन्तु वहां के मजिस्ट्रेट शेरर को क्रान्तिकारियों ने जान बख्श दी थी और उसे फ़तहपुर से चले जाने की इज़ाज़त दे दी थी। शेरर इस समय हैवलाक की सेना के साथ था। हैवलाक और शेरर ने नगर से पूरा बदला लिया। सबसे पहले कम्पनी के सिपाहियों को नगर लूटने की आज्ञा दी गई। उसके बाद लिखा है कि अंगरेज़ सेनापति की आज्ञा से फ़तहपुर के पूरे नगर और नगरवासियों को उसी के अन्दर जला कर खाक कर दिया गया।

बीबीगढ़ का हत्याकाण्ड

इस रोमांचकारी अत्याचार की खबर नाना के कानों तक पहुंची। कानपुर के नेताओं और नगर निवासियों का क्रोध पराकाष्ठा को पहुंच गया। नाना साहब ने स्वयं सेना लेकर आगे बढ़ने का निश्चय किया। इसी समय अंग्रेजों के कुछ जासूस गिरफ्तार होकर नाना के सामने पेश किए गए। कहा जाता है, इन जासूसों से पता चला कि जो अंगरेज़ स्त्रियां बीबीगढ़ की कोठी में नज़रबन्द थीं, उनमें से कई नाना के विरुद्ध इलाहाबाद के अंगरेज़ों के साथ गुप्त पत्र-व्यवहार कर रही थीं।*

अगले दिन शाम को वह घटना हुई, जो क्रान्तिकारियों के नाम पर एक कलंक रहेगी। कहा जाता है कि कानपुर की 125 अंगरेज़ क़ैदी स्त्रियां और बच्चे क़त्ल कर डाले गए, और दूसरे दिन प्रातःकाल उनकी लाशों को एक कुएं में डाल दिया गया।

कानपुर की इस हृदयविदारक घटना के सम्बन्ध में अंगरेज़ इतिहास लेखक तरह-तरह की टीकाएं कर चुके हैं। इसी घटना के आधार पर नाना साहब को निर्दयी हत्यारा साबित करने की चेष्टा की गई है। हमें यह देखकर दुख होता है कि इतिहास की जिन पुस्तकों में खास कर स्कूलों और कालेजों की जिन पाठ्यपुस्तकों में, जनरल नील, जनरल हैवलाक, जनरल ऐनसन, जनरल बरनार्ड इत्यादि के भारतीय प्रजा के ऊपर घोर अमानुषिक अत्याचारों का कोई जिक्र नहीं किया जाता, उनमें कानपुर की इस वीभत्स हत्या और कानपुर के कुएं का जिक्र अवश्य होता है। हम इस सम्बन्ध में केवल एक दो बातें कह देना आवश्यक समझते हैं।

एक यह, कि जिन अंगरेज़ी पुस्तकों में इस घटना को बयान किया गया है, उनमें प्रायः इस घटना के साथ कई और भी अधिक भयंकर और अमानुषिक बातों को जोड़ दिया गया है। उदाहरण के लिए यह कि अंगरेज़ स्त्रियों और बच्चों की हत्या के लिए शहर से कसाई बुलाए गए थे, हत्या से पहले इन लोगों का धीरे-धीरे अंग भंग किया गया, इत्यादि। इन रोमांचकारी बातों के सम्बन्ध में हम केवल उस विप्लव के सबसे अधिक

---

* *Narrative of the Indian Revolt*, p. 113. One of the Christian prisoners in the prison of Nana Saheb told the same thing and an Ayah also corroborated it.

प्रामाणिक अंगरेज़ इतिहास लेखक, सर जान के, के कुछ शब्द उद्धृत करते हैं। जान के लिखता है—

> "उस समय के कई इतिहासों में बयान किया गया है कि इस भीषण हत्याकाण्ड के साथ कई तरह की परिष्कृत क्रूरताएं और अकथनीय लज्जाजनक बातें की गई थीं। वास्तव में यह क्रूरताएं और इस तरह की लज्जाजनक बातें कुछ लोगों ने क्रोध के आवेश में आकर अपनी कल्पनाशक्ति से गढ़ ली थीं। दूसरे लोगों ने बिना जांच किए उन पर सहज ही में विश्वास कर लिया और बिना सोचे समझे उन्हें फैलाना शुरु कर दिया। × × × जून और जुलाई के हत्याकांड के बारे में सरकारी कमीशन के मेंबरों ने हर बात की बड़ी मेहनत के साथ जांच की, और उन्होंने अत्यंत स्पष्ट शब्दों में यह राय प्रकट की है कि किसी का भी अंग-भंग नहीं किया गया और न किसी की इज्जत ही ली गई।"*

एक दूसरा विद्वान अंगरेज़ लन्दन के 'टाइम्स' पत्र का सम्वाददाता, सर विलियम रसल, जो विप्लव के समय भारत में मौजूद था, कानपुर के इस हत्याकाण्ड के सम्बन्ध में लिखता है—

> "अनेक जालसाजों और अत्यंत नीच बदमाशों ने लगातार कोशिश करके इस मामले के साथ अनेक भीषण घटनाएं जोड़ दीं। ये कल्पित घटनाएं केवल इस आशा से गढ़ी गई थीं कि उनसे अंगरेजों के दिलों में क्रोध और बदले की प्रचंड इच्छा भड़क उठे; मानो केवल घृणा इस क्रोध और बदले की इच्छा को भड़काने के लिए काफ़ी न थी।"†

दूसरी बात यह है कि एक सज्जन, जिन्हें ऐतिहासिक घटनाओं की खोज और जांच का शौक है, इस पुस्तक के लेखक से कहते थे कि उन्होंने कानपुर में क़साइयों के मोहल्ले में जाकर पूछताछ की तो वहां के बूढ़े लोगों से मालूम हुआ कि बीबीगढ़ की हत्या के लिए कम से कम कसाइयों का बुलाया जाना बिल्कुल गलत है।

कलकत्ते के ब्लैक होल के बिलकुल झूठे किस्से का ज़िक्र इतिहास की असंख्य पुस्तकों में पाया जाता है, और कलकत्ते में ब्लैक होल की जगह तक बनी हुई है

---

[*] "The refinements of cruelty—the unutterable shame with which, in some chronicles of the day, this hideous massacre was attended, were but fictions of an excited imagination, too readily believed without enquiry, and circulated without thought. None were mutilated, none were dishonoured......This is stated, in the most unqualified manner, by the official functionaries, who made the most diligent enquiries into all the circumstances of the massacres in June and in July."—Kaye and Malleson's *History of the Indian Mutiny*, p. 281.

[†] "......the incessant efforts of a gang of forgers and utterly base scoundrels have surrounded it with horrors that have been vainly invented in the hope of adding to the indignation and burning desire for vengeance which hatred failed to arouse."—Russell's *Diary*, p. 164.

(1929)* । इससे पता चलता है कि कानपुर में 'कुएं' का होना जरूरी तौर पर यह साबित नहीं करता कि यह घटना सर्वथा सच्ची है ।

इंगलिस्तान की पार्लियामेण्ट का एक सदस्य, लेयार्ड, इस तरह की अनेक घटनाओं की जांच करने के लिए स्वयं उन्हीं दिनों में भारत आया । अपनी जांच के बाद लेयार्ड लिखता है—

> **"निहायत ग़ौर के साथ जांच पड़ताल करने के बाद, अच्छे से अच्छे और सबसे अधिक विश्वसनीय ज़रियों से जो सूचनाएं मुझे मिली हैं, उनसे मुझे पूरा विश्वास हो गया है कि जो अनेक भयंकर अत्याचार कहा जाता है कि, देहली, कानपुर, झांसी और दूसरे स्थानों पर अंगरेज़ स्त्रियों और बच्चों पर किए गए, वे प्रायः एक-एक कर सबके सब कल्पित हैं, जिनके गढ़ने वालों को लज्जा आनी चाहिए ।" †**

दूसरे निष्पक्ष अंगरेज़ों के इससे भी अधिक जोरदार वाक्य इस कथन के समर्थन में उद्धृत किए जा सकते हैं । जाहिर है कि बीबीगढ़ के हत्याकाण्ड की सचाई पर विश्वास नहीं किया जा सकता । यह कह सकना भी कठिन है कि इस किस्से की जड़ में सचाई क्या और कितनी थी । इस बारे में अधिक निष्पक्ष खोज की आवश्यकता है ।

हम यह भी जानते हैं कि यदि कानपुर में 125 अंगरेज़ औरतों और बच्चों को निर्दोष मार डाला गया, तो जनरल नील ने अपने बयान के अनुसार ही कम से कम हजारों भारतीय स्त्रियों और बच्चों को जिन्दा जला दिया । किन्तु एक अत्याचार दूसरे अत्याचार को जायज नहीं बना सकता । यदि बीबीगढ़ के हत्याकाण्ड में कुछ भी सचाई है, अगर यह घटना किसी दरजे तक भी सच्ची है और जिस दरजे तक भी सच्ची है, इसमें सन्देह नहीं, क्रान्तिकारियों के नाम यह एक कलंक है ।

नाना की ज़िम्मेदारी

एक प्रश्न इस सम्बन्ध में यह भी उठता है कि यदि बीबीगढ़ की हत्या का किस्सा सच है, तब भी उसके लिए नाना साहब को कहां तक जिम्मेदार ठहराया जा सकता है । सर जार्ज फ़ारेस्ट लिखता है—

> **"गवाहियों से यह साबित होता है कि जो सिपाही इन क़ैदियों के ऊपर पहरा दे रहे थे, उन्होंने उनकी हत्या करने से इनकार कर दिया । यह गन्दा जुर्म एक वेश्या के उकसाने पर नाना की गारद के पांच बदमाशों ने किया !**

---

*भारत की आज़ादी के बाद 'ब्लैक होल' का वह फ़रजी निशान हटा दिया गया ।—लेखक

† "From the information I received from the very best and most trustworthy sources, after the most careful inquiries, I am convinced that the series of horrible cruelties alleged to have been committed upon English women and children at Delhi, Cawnpore, Jhansi and elsewhere were almost without exception, shameful fabrications, ..."—Mr. Layard, M. P., in *The Times*, 25th August, 1858.

इस क्रूर हत्या के लिए सारी क़ौम को अपराधी ठहराना अनुदारता भी है और असत्य भी ।"*

इतिहास लेखक सर जार्ज कैम्पबेल लिखता है —

"कानपुर की हत्या और कुएं के भयंकर पाप को कम करने वाली कोई बात कहना कठिन है, फिर भी हमें दो बातें याद रखना चाहिए । पहली यह कि यह हत्या किसी ने पहले से तय करके नहीं की, बल्कि जिस समय हैवलाक क्रान्तिकारियों को पीट कर चला आ रहा था, उस समय क्षणिक क्रोध और निराशा के वश यह काम किया गया । दूसरी बात यहकि हमारी सेना के लोगों ने कानपुर की ओर बढ़ते समय जो-जो अत्याचार किए, उनके द्वारा हमने स्वयं लोगों को इस तरह के काम करने के लिए काफ़ी उत्तेजित कर दिया था । कुछ समय बाद, यह हत्याकाण्ड जिन परिस्थितियों में हुआ, उनकी बड़ी सावधानी के साथ जांच पड़ताल की गई, और हमें कोई बात ऐसी नहीं मिली, जिससे मालूम हो कि किसी ने पहले से इस हत्या का इरादा कर रखा हो, या किसी ने हत्या के लिए किसी को आज्ञा दी हो ।××× "†

इससे मालूम होता है कि कानपुर में अंगरेज़ स्त्रियों और बच्चों की हत्या के क़िस्से में यदि कुछ सच भी है, तो वह हैवलाक के अत्याचारों से दुखित कुछ क्रान्तिकारियों के क्षणिक क्रोध का नतीजा था, 'किसी ने उसके लिए किसी को आज्ञा' न दी थी, और नाना साहब को उसके लिए उत्तरदायी ठहराना गलत है ।

जनरल हैवलाक का कानपुर प्रवेश

10 जुलाई को जनरल हैवलाक अपनी विशाल सेना सहित कानपुर के पास पहुंच गया । नाना साहब ने स्वयं सेना लेकर हैवलाक का मुकाबला किया । दोनों ओर की तोपों ने गोले बरसाने शुरू किए । किन्तु अन्त में नाना साहब की सेना को हार कर पीछे हट जाना पड़ा । नाना साहब ने फिर एक बार अपने सिपाहियों को प्रोत्साहित करके आगे बढ़ने का प्रयत्न किया । एक अंगरेज़ इतिहास लेखक लिखता है कि फिर एक बार

---

* "The evidence proves that the sepoy guard placed over the prisoners refused to murder them. The foul crime was perpetrated by five ruffians of the Nana's guard at the instigation of a courtesan. It is as ungenerous as it is untrue to charge upon a nation that cruel deed."—*History of the Indian Mutiny.* by Sir George Forrest, Introduction, p. iv.

† "It is difficult to say anything in extenuation of the Cawnpore massacre and the terrible scene at the well, and yet we must remember two things: first that it was done, not in cold blood, but in the moment of rage and despair when Havelock had beaten the rebels and was coming in; and second, that we had done much to provoke such things by the severities of which our people were guilty as they advanced. At a later time a careful investigation was made into the circumstances of the massacre, and we failed to discover that there was any premeditation or direction in the matter."—Sir George Campbell, Provisional Civil Commissioner in the Mutiny, as quoted in *The Other Side of the Medal,* by E. Thompson, pp. 79, 80.

घमासान संग्राम हुआ। किन्तु अन्त में फिर हैवलाक की विशाल सेना के सामने नाना साहब की सेना को हार खाकर बिठूर की ओर चला जाना पड़ा।

17 जुलाई को हैवलाक की विजयी सेना ने कानपुर के नगर में प्रवेश किया। हैवलाक का नाम अंगरेज़ क़ौम के इतिहास में अमर हो गया।

कानपुर में अंगरेज़ी सेना के अत्याचार

नगर में घुसने के बाद, चार्ल्स बाल लिखता है—

> "जनरल हैवलाक ने सर ह्यू ह्वीलर की मृत्यु का भयंकर बदला चुकाना शुरू किया। हिन्दोस्तानियों के गिरोह के गिरोह खुशी-खुशी फांसी पर चढ़ गए। मरते समय कुछ क्रान्तिकारियों ने जिस तरह हृदय की शान्ति और व्यवहार में ओजस्विता का परिचय दिया, वह उन लोगों में ही हो सकता है, जो किसी ऊंचे सिद्धान्त के लिए शहीद होते हैं।"*

इनमें से एक व्यक्ति की मिसाल देते हुए चार्ल्स बाल लिखता है कि वह "बिना ज़रा-सी घबराहट के ठीक इस तरह फांसी के तख्ते पर चढ़ गया, जिस तरह एक योगी समाधि में प्रवेश करता है।"†

सबसे पहले गोरे और सिख सिपाहियों को नगर लूटने की आज्ञा दी गई। उसके बाद फांसियों का बाजार गरम हुआ। लिखा है कि बीबीगढ़ में ज़मीन के ऊपर खून का एक बड़ा धब्बा था। सन्देह था कि यह खून गोरी मेमों और बच्चों का है। शहर के अनेक ब्राह्मणों को लाकर, जिन पर 'सन्देह' था कि उन्होंने विप्लव में भाग लिया है, उन्हें उस खून को जबान से चाटने और फिर झाड़ू से धोकर साफ करने की आज्ञा दी गई। इसके बाद इन लोगों को फांसी दे दी गई। उस समय के अंगरेज़ अफ़सर ने इस अनोखे दण्ड का कारण यह बयान किया है—

> "मैं जानता हूं कि फ़िरंगियों के खून को छूने और फिर उसे मेहतर की झाड़ू से साफ करने से एक उच्च जाति का हिन्दू अपने धर्म से पतित हो जाता है। केवल इतना ही नहीं, चूंकि मैं यह जानता हूं, इसीलिए मैं उनसे ऐसा कराता हूं। जब तक हम उन्हें फांसी देने से पहले उनके सारे धार्मिक भावों को पैरों तले न कुचल देंगे, तब तक हम पूरा बदला नहीं ले सकते, ताकि उन्हें यह सन्तोष न हो सके कि वह हिन्दू धर्म पर क़ायम रहते हुए मरे।" ‡

---

* "General Havelock began to wreak a terrible vengeance for the death of Sir Hugh Wheeler. Batch upon batch of natives mounted the scaffold. The calmness of mind and nobility of demeanour which some of the revolutionaries showed at the time of death was such as would do credit to those who martyred themselves for devotion to a principle."—Charles Ball's *Indian Mutiny*, vol. i, p. 388.

† "Without the least agitation, he mounted the scaffold even as a Yogi enters Samadhi!"—Ibid.

‡ "I know that the act of touching Feringhi blood and washing it with a sweeper's broom degrades a high caste Hindoo from the religion. Not only this but I make them do it because I know it. We could not wreak a true

सतीचौरा घाट पर जिन अंगरेज़ों की हत्या की गई थी उन्हें मरने से पहले इंजील का पाठ करने की इज़ाज़त दे दी गई थी।

आगे का कार्यक्रम

इसके थोड़े ही दिनों बाद और कुछ सेना लेकर जनरल नील कानपुर पहुंचा। हैवलाक अब दो हज़ार अंगरेज़ी, सेना और दस तोप सहित 25 जुलाई को कानपुर से लखनऊ की ओर बढ़ा। जनरल नील कानपुर की रक्षा के लिए रहा।

नाना अब बिठूर छोड़कर अपने खजाने और कुछ सेना सहित गंगा पार कर फ़तहगढ़ की ओर चला गया।

पंजाब का ब्लैक होल

नाना और हैवलाक को कुछ देर के लिए यहीं छोड़ कर अब हम फिर राजधानी दिल्ली की ओर चलते हैं। किन्तु दिल्ली के आगे के संग्रामों को बयान करने से पहले, पंजाब की एक छोटी सी घटना को बयान कर देना आवश्यक है, जिससे मालूम होगा कि दिल्ली के मोहासरे के दिन में पंजाबियों को "डराने और उन पर अपनी धाक क़ायम रखने"* के लिए पंजाब के अंगरेज़ शासकों ने किस किस तरह के उपाय किए।

26 नम्बर की पलटन

मई के महीने में लाहोर के अन्दर चार देशी पलटनों से हथियार रखाए जा चुके थे। इन लोगों पर सिखों और गोरों का पहरा था और इन्हें छावनी से बाहर जाने की इज़ाज़त न थी। 30 जुलाई की रात को इनमें से 26 नम्बर पलटन के अधिकांश सिपाही छावनी से चल दिए। इन लोगों के पास न हथियार थे और न इन्हों ने किसीतरह के विद्रोह में भाग लिया था। अगले दिन उन्होंने रावी पार करके निकल जाना चाहा। उन्हें रोका गया, परन्तु वे रावी के किनारे-किनारे अमृतसर की तरफ बढ़े। सर राबर्ट माण्टगुमरी ने आज्ञा दी कि उनका पीछा किया जाय। अमृतसर का डिप्टी कमिश्नर, फ्रेडरिक कूपर माण्टगुमरी का खास आदमी था।

अजनाले की घटना

26 नम्बर पलटन के ये हिन्दुस्तानी सिपाही थके हुए, भूखे और निहत्थे अमृतसर की एक तहसील अजनाले से 6 मील दूर रावी के किनारे पड़े हुए थे। अजनाला अमृतसर से 16 मील के फ़ासले पर है। इसके बाद अजनाले में जो घटना हुई, उसे फ्रेडरिक कूपर ने अपनी पुस्तक "दि क्राइसिस इन दि पंजाब" में बड़े अभिमान के साथ बयान किया है। इस घटना को हम ठीक कूपर के ही शब्द में थोड़े-से संक्षेप के साथ यहां देते हैं।

---

revenge unless we trample all their religious instincts under foot, before we hang them, so that they may not have the satisfaction of dying as Hindoos."—Ibid.

* "Overawing" and "striking terror into".—*The crisis in the Punjab*, pp. 151-52.

रावी तट का हत्याकाण्ड

31 जुलाई की दोपहर को कूपर को पता चला कि ये लोग रावी के किनारे-किनारे बढ़ रहे हैं। अजनाले के तहसीलदार को कुछ सशस्त्र सिख सिपाहियों सहित उन्हें घेरने के लिए भेजा गया। क़रीब चार बजे शाम को कूपर स्वयं 80 या 90 सवारों सहित मौके पर पहुंचा। उन थके हुए और भूखे लोगों पर गोलियां चलाई गईं। उनकी तादाद क़रीब पांच सौ थी। इनमें से क़रीब डेढ़ सौ, गोलियों से जखमी होकर पीछे को हटे और रावी में डूब गए। कूपर लिखता है कि भूख और थकान के सबब वे इतने निर्बल थे कि धार में ठहर न सके। रावी का जल उनके रक्त से रंग गया। बाकी ने पानी में से निकल कर कुछ भाग कर और कुछ तैर कर नदी के ऊपर की तरफ एक मील के फ़ासले पर एक टापू में आश्रय लिया। दो किश्तियां मौके पर मौजूद थीं। तीन सशस्त्र सवार इन किश्तियों में बैठ कर उन्हें गिरफ्तार करने के लिए भेजे गए। क़रीब साठ बन्दूकों के मुंह उन लोगों की ओर कर दिए गए। दूर से बन्दूकों को देख कर उन मुसीबतजदा लोगों ने हाथ जोड़ कर अपनी निर्दोषिता प्रकट की और प्राणदान चाहा। इसी समय उनमें से पचास के क़रीब नैराश्य के कारण पानी में कूद पड़े और फिर दिखाई न दिए।

बाक़ी को गिरफ्तार कर लिया गया और थोड़े-थोड़े करके किश्तियों में बैठा कर किनारे तक पहुंचा दिया गया। किनारे पर पहुंच कर उनके गलों से मालाएं आदि काट कर फेंक दी गईं। उन्हें अलग-अलग गिरोहों में अच्छी तरह बांध दिया गया और सिख सवारों की देखरेख में धीरे-धीरे अजनाले पहुंचा दिया गया। उस समय जोर की बारिश हो रही थी।

अजनाले की काल कोठरी

आधी रात के क़रीब कुल 282 सिपाही, जिनमें कई अफ़सर भी थे, अजनाले के थाने पर पहुंच गए। कूपर ने पहले से अजनाले के थाने में इन सबको फांसी देने के लिए रस्सियों और गोली से उड़ाने के लिए पचास सशस्त्र सिख सिपाहियों का प्रबन्ध कर रखा था। किन्तु बारिश के कारण यह काम सुबह के लिए स्थगित किया गया। ये सब लोग थाने की इमारत में न आ सकते थे। पास ही तहसील की नयी इमारत बन कर तैयार थी। अधिकांश को सुबह तक के लिए थाने में बन्द कर दिया गया, और 66 को तहसील की नयी इमारत के एक छोटे-से गुम्बद में बन्द कर दिया गया।

यह गुम्बद बहुत तंग था। उसके दरवाजे चारों ओर से बन्द कर दिए गए।

बकरीद का त्यौहार

अगले दिन 1 अगस्त को बक़रीद थी। प्रातःकाल इन अभागों को दस-दस करके बाहर लाया गया। कूपर थाने के सामने बैठा हुआ था। दस सिख सिपाही एक ओर बन्दुक लिए खड़े रहते थे। चालीस उनके आसपास मदद के लिए रहते थे। सामने आते ही इन लोगों को गोली से उड़ा दिया जाता था।

दम घुट कर अन्त

इनमें से अधिकांश सिपाही हिन्दू थे । लिखा है कि उनमें से कुछ ने मरते समय सिखों को गंगा जी की दुहाई देकर लानत मलामत की । जब थाने के क़ैदी ख़त्म हो गए, तो गुम्बद के क़ैदियों को बाहर निकाला गया । किन्तु अभी कुल 237 सिपाही ही गोली से उड़ाए गए थे, अर्थात् गुम्बद में से केवल 21 सिपाही बाहर निकले थे कि कूपर को सूचना दी गई कि बाक़ी क़ैदी गुम्बद के बाहर आने से इनकार करते हैं ।

कूपर लिखता है कि पहले उनको दुरुस्त करने का प्रबन्ध किया गया । फिर भीतर जाकर देखा गया, तो बाक़ी 45 सिपाहियों की लाशें पड़ी हुई मिलीं । सम्भवत: उनमें से कुछ अभी तक सिसक रहे थे । कूपर के शब्द हैं—

> **"अनजाने ही हालवेल के ब्लैक होल का हत्याकाण्ड फिर से दोहराया गया ।"***

यहां पर यह दोहराने की आवश्यकता नहीं है कि हालवेल के ब्लैकहोल का क़िस्सा विलकुल झूठा था, किन्तु कूपर का अजनाले का ब्लैक होल एक सच्ची घटना थी।

रात को वे लोग पानी और हवा के लिए चिल्लाए होंगे ; किन्तु कूपर लिखता है कि बाहर के शोर के कारण उनकी आवाज़ें सुनाई नहीं दीं ।

45 लाशें, उन लोगों की, जो हवा की कमी और गरमी के कारण भीतर घुट कर मर गए, बाहर घसीट कर डाल दी गईं ।

अजनाले का कुआं

एक कठिनाई बाक़ी थी । इन 282 लाशों को दफ़न करने का प्रश्न । अजनाले के थाने से लगभग सौ गज़ के अन्दर एक गहरा पुराना कुआं था । ये सब लाशें मेहतरों से घिसटवा-घिसटवा कर उस कुएं में डलवा दी गईं । कुएं को मिट्टी से पाट दिया गया और उसके ऊपर मिट्टी का एक इतना ऊंचा ढेर लगा दिया गया कि एक टीला-सा बन गया ।

इस कुएं के बारे में फ्रेडरिक कूपर बड़े अभिमान के साथ लिखता है—

> **"एक कुआं कानपुर में है, किन्तु एक कुआं अजनाले में भी है ।"†**

तोप के मुंह से उड़ाया जाना

इस तरह 26 नम्बर पलटन के क़रीब पांच सौ मनुष्यों को 24 घंटे के अन्दर परलोक पहुंचा दिया गया । उस पलटन के जो थोड़े-से सिपाही लाहौर से अथवा रावी के किनारे से इधर-उधर भाग निकले थे, उन सबको दो-चार दिन के अन्दर गिरफ्तार कर लिया गया और कुछ को लाहौर में और कुछ को अमृतसर में तोप के मुंह से उड़ा दिया गया ।

---

* "Unconsciously the tragedy of Holwell's Black Hole had been re-enacted."—*The Crisis in the Punjab*, by Frederick Cooper.

† "There is a well at Cawnpore, but there is also one at Ajnalah."—Ibid.

हत्यारों को इनाम

अगले दिन चीफ़ कमिशनर सर जान लारेन्स और जुडीशल कमिशनर सर राबर्ट माण्टगुमरी ने इस सारी घटना का समाचार पाकर कूपर को अत्यन्त प्रशंसा भरे पत्र लिखे, जो कूपर की पुस्तक में छपे हुए हैं। हिन्दू तहसीलदार और सिख हत्यारों को बड़ी-बड़ी रक़में इनाम में दी गईं।

अजनाले की भीषण घटना यदि फ्रेडरिक कूपर ने अपनी पुस्तक के अन्दर बयान न की होती, तो हमें उस पर पूरा विश्वास हो सकना कठिन था। किन्तु जो कुछ ऊपर वर्णन किया है, कूपर के ही शब्दों में किया है!

बाबा जगतसिंह का बयान

इस पर भी इस घटना की तसदीक़ करने के लिए 'फुलवाड़ी' पत्र के सम्पादक, ज्ञानी हीरासिंहजी को कष्ट दिया। उन्होंने स्वयं अमृतसर से अजनाले जाकर इस घटना की तसदीक़ की। अजनाले का एक बूढ़ा मनुष्य, बाबा जगतसिंह, जिसकी आयु स्वाधीनता के युद्ध में क़रीब बीस साल की थी, इस समय (सितम्बर 1928) जीवित हैं और पूरी तरह सचेत हैं। बाबा जगतसिंह में यह समस्त घटना अपनी आंख से देखी थी। बाबा जगतसिंह का क़लमबन्द बयान हमारे पास मौजूद है। उसमें और कूपर के बयान में मुख्य बातों में से कोई अन्तर नहीं है। वह कुआं भी, जिसके अन्दर 282 लाशें फेंकी गई थीं, अभी तक मौजूद है। उसके ऊपर मिट्टी का एक ऊंचा टीला है। अजनाले में इसे अभी तक 'काल्यांदा खूह' कहते हैं। पुलिस का थाना भी, जिसके सामने सिपाहियों को मारा गया था और तहसील की वह इमारत, जिसके एक गुम्बद में 45 सिपाही घुट कर मर गए थे, अभी तक मौजूद है। इस गुम्बद को अभी तक वहां के लोग 'काल्यांदा बुर्ज' कहते हैं। बाबा जगतसिंह का बयान है कि अजनाले के उस समय के तहसीलदार का नाम प्राणनाथ था और जो लोग कुएं के अन्दर एक-दूसरे के ऊपर डाले गए, उनमें से कुछ जीवित थे और चिल्ला रहे थे। इस शोकजनक घटना से हट कर अब हम राजधानी दिल्ली की ओर आते हैं।

दिल्ली में अंगरेजी सेना

दिल्ली के अन्दर इस समय क्रान्तिकारियों का मुख्य काम यही था कि वे बार-बार शहर से निकल कर कभी दाएं से और कभी बाएं से अंगरेज़ी सेना पर हमला करते थे, अंगरेज़ी सेना को काफ़ी नुक़सान पहुंचा देते थे और फिर पीछे को हटते जाते थे। अंगरेज़ी सेना उनका पीछा करती थी। जब अंगरेज़ी सेना शहर फ़सील के ठीक नीचे आ जाती थी, फ़सील के ऊपर से तोपें उन पर इस बुरी तरह गोले बरसाती थीं कि कम्पनी के सिपाही दीवार के नीचे चनों की तरह भुनने लगते थे। इस तरह कई बार में कम्पनी की सेना के इतने अधिक आदमी मारे गए कि जनरल विलसन ने विवश होकर आज्ञा दे दी कि आइन्दा किसी सूरत में भी क्रान्तिकारी सेना का पीछा न किया जाय। अंगरेज़ी सेना की स्थिति इस समय काफ़ी शोचनीय थी।

क्रान्तिकारियों में अनुशासन की कमी

जब कि एक तरफ़ अंगरेज़ी सेना को शहर में घुसने का साहस न होता था, दूसरी ओर क्रान्तिकारी सेना को भी इस बात का साहस न हुआ कि एक बार शहर से निकल कर मैदान में डट कर अंगरेज़ी सेना को ख़त्म कर दे। कारण केवल यह था कि जब कि दिल्ली की सेना में वीरता, तादाद या सामान किसी की कमी न थी, दिल्ली के अन्दर कोई एक ऐसा योग्य और प्रभावशाली नेता न था, जो प्रान्त-प्रान्त की सेनाओं को सफलता के साथ अनुशासन में रख सके और उन सबको मिला कर एक निर्णायक संग्राम के लिए आगे बढ़ा सके। सम्राट् बहादुरशाह बहुत बूढ़ा था और स्वयं सेनापतित्व ग्रहण करने में असमर्थ था। शहज़ादा मिरज़ा मुग़ल अयोग्य साबित हो चुका था। सेनापति बख्त ख़ां उस समय क्रान्तिकारी सेनापतियों में सबसे अधिक योग्य और समझदार था। किन्तु वह एक सामान्य सेनापति था। वह किसी शाही घराने में पैदा न हुआ था। उच्च कुल का घमण्ड अभी तक भारतवासियों में मौजूद था। दिल्ली की अनेक सेनाओं के सेनापति छोटे-मोटे नरेश या राजकुलों के लोग थे। उन लोगों पर बख्त ख़ां का प्रभाव न पड़ता था। उनमें से कोई-कोई बख्त ख़ां के साथ ईर्ष्या भी अनुभव करने लगे थे। दिन-प्रतिदिन आपस की कशमकश बढ़ती गई। सम्राट बहादुरशाह ने सबको समझाने का प्रयत्न किया, किन्तु सफलता न मिल सकी।

देशी नरेशों के नाम बहादुरशाह का पत्र

दिल्ली में उस समय योग्य और शक्तिशाली नेता की आवश्यकता थी। जयपुर, जोधपुर, सिंधिया और होलकर जैसे नरेश राष्ट्रीय क्रान्ति का साथ देने का अन्त तक निश्चय न कर सके थे। अन्यथा महाराजा सिंधिया जैसे प्रभावशाली आदमी का एक बार दिल्ली में आकर इस कमी को पूरा कर सकना कोई कठिन काम न होता। वास्तव में दिल्ली के अन्दर की यह ज़बरदस्त कमी ही सन् 57 के स्वाधीनता युद्ध की अन्तिम असफलता का एक मुख्य कारण हुई। दिल्ली के अन्दर एक बार क़रीब पचास हज़ार सन्नद्ध सेना थी। यदि यह विशाल सेना फ़सील के नीचे की अंगरेज़ी सेना को समाप्त कर विजय के उन्माद में भरी हुई एक बार सारे भारत पर फैल जाती, तो निस्सन्देह इसके बाद का क्रान्ति का नक़शा बिलकुल बदल गया होता।

सम्राट् बहादुरशाह इस कमी को पूरी तरह समझ रहा था। उसने अनेक उपाय किए, किन्तु व्यर्थ! उसने अपने बेटे मिरज़ा मुग़ल को हटा कर दिल्ली की सेनाओं का प्रधान नेतृत्व बख्त ख़ां को सौंप दिया, किन्तु इससे भी काम न चला। अन्त में, सम्राट बहादुरशाह ने नीचे लिखा पत्र स्वयं अपने कांपते हुए हाथ से लिख कर जयपुर, जोधपुर, बीकानेर, अलवर और दूसरे अनेक राजाओं के पास भेजा——

"मेरी यह दिली ख्वाहिश है कि जिस ज़रिए से भी और जिस क़ीमत पर भी हो सके, फ़िरंगियों को हिन्दुस्तान से बाहर निकाल दिया जाय। मेरी यह ज़बरदस्त ख्वाहिश है कि तमाम हिन्दोस्तान आज़ाद हो जाय। लेकिन इस मक़सद को पूरा करने के लिए जो क्रान्तिकारी युद्ध शुरू कर दिया गया

है, वह उस समय तक फ़तहयाब नहीं हो सकता, जिस समय तक कि कोई ऐसा शख़्स, जो इस तमाम तहरीक के भार को अपने ऊपर उठा सके, जो क़ौम की मुख़्तलिफ़ ताकतों को संगठित करके एक ओर लगा सके और जो अपने तईं तमाम क़ौम का नुमाइन्दा कह सके, मैदान में आकर इस क्रान्ति का नेतृत्व अपने हाथों में न ले ले। अंगरेज़ों के निकाल दिए जाने के बाद अपनें जाती फ़ायदे के लिए हिन्दोस्तान पर हुकूमत करनें की मुझमें ज़रा भी ख्वाहिश बाकी नहीं है। अगर आप सब देशी नरेश दुश्मन को निकालने की ग़रज से अपनी-अपनी तलवार खींचने के लिए तैयार हों, तो मैं इस बात के लिए राज़ी हूं कि अपने तमाम शाही अख्तियारात और हकूक़ देशी नरेशों के किसी ऐसे गिरोह के हाथों में सौंप दूं, जिसे इस काम के लिए चुन लिया जाय।"*

निस्सन्देह, यह हसरत भरा पत्र दिल्ली के अन्तिम सम्राट् बहादुरशाह की समस्त भारतवर्ष के प्रति शुभेच्छा और उदारता, दोनों का दर्पण है। किन्तु सन्देहग्रस्त भारतीय नरेशों पर इसका यथेष्ट प्रभाव न पड़ सका।

कम्पनी को नयी मदद

इस बीच जनरल निकलसन के अधीन और नयी सेना ने पंजाब से आकर कम्पनी की सेना में नयी जान डाल दी। यह स्मरण रखना चाहिए कि इस समय जो कम्पनी की सेना दिल्ली के बाहर थी, उसमें अंगरेज़ों की अपेक्षा हिन्दोस्तानियों की तादाद कई गुनी थी। इन हिन्दोस्तानियों में अधिकतर सिख, गोरखे और कुछ दूसरे पंजाबी थे।† फिर भी, अगस्त के अन्त तक क्रान्तिकारी सेना बार-बार कम्पनी की सेना पर हमला करती रही, किन्तु कम्पनी की सेना शहर फ़सील के निकट आने की हिम्मत न कर सकी।

नीमच की सेना

25 अगस्त को सिपहसालार बख्त खां ने फिर एक बार अपनी पूरी ताकत से अंगरेज़ी सेना पर हमला किया। दिल्ली के अन्दर उस समय दो सेनाएं मुख्य थीं। एक बरेली की और दूसरी नीमच की। क्रान्तिकारियों के दुर्भाग्य से इन दोनों सेनाओं में काफ़ी वैमनस्य और प्रतिस्पर्धा उत्पन्न हो गई थी। बख्त ख़ां ने इन दोनों सेनाओं को मिलाकर रखने का यथाशक्ति प्रयत्न किया। 25 अगस्त को ठीक उस समय, जबकि बख्त ख़ां ने इन दोनों सैन्यदलों को लेकर अंगरेज़ी सेना के मुख्य स्थान नजफ़गढ़ पर हमला किया, नीमच की सेना ने बख्त ख़ां की आज्ञा का उल्लंघन किया। इन लोगों ने उस स्थान को छोड़कर, जहां पर बख्त ख़ां ने उन्हें ठहरने के लिए कहा था, पास के दूसरे गांव में डेरे जमाए। वे लोग बाक़ी क्रान्तिकारी सेना से अलग हो गए। जनरल निकलसन ने समाचार पाते ही पहले उन पर हमला किया, और एक अत्यन्त घमासान संग्राम के

---

*The Autograph letter—*Native Narratives* by Sir T. Metcalfe, p. 226.

†*History of the Siege of Delhi*, by an Officer who served there.

बाद, जिसमें नीमच का एक-एक सिपाही कट कर मर गया, कम्पनी की सेना ने विजय प्राप्त की। बख्त ख़ां को अपनी बाक़ी सेना सहित पीछे लौट आना पड़ा।

नीमच की सेना की बहादुरी की अंगरेज़ इतिहास लेखकों ने मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की है। किन्तु बिना सेनापति की आज्ञा का पूरी निष्ठा के साथ पालन किए संसार की कोई भी सेना विजय प्राप्त नहीं कर सकती। पूर्ण व्यवस्था सामरिक सफलता का सबसे आवश्यक साधन है। 16 मई के बाद वह पहला दिन था कि दिल्ली के शहर के अन्दर नैराश्य की घटा दिखाई देने लगी और कम्पनी की सेना के हौसले दुगने हो गए।

कम्पनी की सेना

कम्पनी की तरफ उस समय साढ़े तीन हज़ार अंगरेज़, पांच हज़ार सिख, गोरखे और पंजाबी, ढाई हज़ार कश्मीरी, और स्वयं जींद का महाराजा और उसकी सेना थी। शहर के अन्दर अव्यवस्था बढ़ती चली गई। सितम्बर के शुरू में अंगरेज़ी सेना को धीरे-धीरे शहर पर आक्रमण करने का साहस होने लगा। इतिहास लेखक फ़ारेस्ट लिखता है कि कम्पनी के भारतीय सिपाही उस समय अपने प्राणों पर खेल कर असाधारण वीरता के साथ अपने सेनापतियों की आज्ञा का पालन कर रहे थे।

गुप्तचरों का महकमा

इस बीच कम्पनी की ओर गुप्तचरों का महकमा भी खासा बढ़ गया था। इस महकमे का प्रधान हडसन था। शहर के अन्दर कई विश्वासघातक पैदा किए जा चुके थे, जिनमें मुख्य सम्राट् बहादुरशाह का समधी, मिरज़ा इलाहीबख्श था। मिरज़ा इलाहीबख्श सदा बहादुरशाह के साथ रहता था और महल की तमाम बातों और सलाहों की ख़बरें मेजर हडसन तक पहुंचाता रहता था।

सितम्बर का दूसरा हफ्ता

7 सितम्बर से कम्पनी की सेना ने शहर के अन्दर प्रवेश करने के जी तोड़ प्रयत्न शुरू कर दिए। 7 से 13 तक उन्हें प्रतिदिन अनेक जानें देकर पीछे हट जाना पड़ा। किन्तु इस बीच कम्पनी की तोपों के कारण शहर फ़सील में जगह-जगह दरारें पड़ी गई थीं। 14 सितम्बर को कम्पनी की सेना ने शहर में प्रवेश करने का अन्तिम और सबसे अधिक ज़ोरदार प्रयत्न किया। उस दिन का दिल्ली का संग्राम क्रान्ति के सबसे अधिक भयंकर संग्रामों में से था।

14 सितम्बर का संग्राम

प्रातःकाल जनरल विलसन ने कम्पनी की सेना को पांच दलों में विभक्त किया। एक दल ब्रिगेडियर जनरल निकलसन के अधीन, दूसरा कर्नल कैम्पबेल के अधीन, तीसरा ब्रिगेडियर जौन्स के अधीन, चौथा मेजर रीड के अधीन और पांचवां ब्रिगेडियर लांगफील्ड के अधीन। पहले तीन दलों ने जनरल निकलसन के प्रधान नेतृत्व में कश्मीरी दरवाजे से प्रवेश करना चाहा, चौथे दल ने मेजर रीड के अधीन काबुली दरवाजे और

सब्जी मण्डी की तरफ़ से बढ़ना चाहा। सबसे पहले सूर्योदय के थोड़ी देर बाद निकलसन अपने दल सहित फ़सील की तरफ़ बढ़ा। भीतर से क्रान्तिकारियों की तोपों ने गोले बरसाने शुरू किए। दीवार के नीचे अंगरेज़ और सिख सिपाहियों की लाशों के ढेर लग गए। फिर भी उन्हें रौंदते हुए निकलसन और उसके कुछ साथी दीवार तक पहुंच गए। पिछले सात दिन के प्रयत्नों में दीवार का कुछ टुकड़ा टूट चुका था। इस टुकड़े के पास सीढ़ी लगा दी गई। निकलसन पहला अंगरेज़ वीर था, जिसने गोलियों और गोलों की बौछार के अन्दर कश्मीरी दरवाज़े के निकट फ़सील पर चढ़ कर विजय का बिगुल बजाया।

दिल्ली के अंदर कम्पनी की सेना का प्रवेश

इसी तरह मरते-मारते दूसरा दल एक और तरफ से फसील पर चढ़ कर शहर के भीतर कूद पड़े। तीसरा दल कश्मीरी दरवाज़े की तरफ़ बढ़ा। कुछ अफ़सरों ने आगे बढ़ कर दरवाजे को बारूद से उड़ा देना चाहा। दीवारों और खिड़कियों से धुंआधार गोलियां बरसने लगीं। कई अंगरेज़ और देशी अफ़सर इसी प्रयत्न में मारे गए। अन्त में एक ने दरवाजे तक बारूद पहुंचा दी और कप्तान बरसेन नामक एक दूसरे अफ़सर ने मरते-मरते फ़लीता दिखा दिया। कश्मीरी दरवाजे का एक भाग उड़ गया। कर्नल कैम्पबेल ने अपने दल को आगे बढ़ने की आज्ञा दी और गोलियों की बौछार में से बढ़ कर कैम्पबेल और उसके कुछ साथी कश्मीरी दरवाज़े के अन्दर पहुंच गए।

चौथे दल ने मेजर रीड के अधीन काबुली दरवाजे से बढ़ना चाहा। सब्जी मण्डी के पास दिल्ली की सेना से उनका आमना-सामना हुआ। पहले ही वार में मेजर रीड घायल होकर गिर पड़ा। एक बार उसकी सेना पीछे हटी। इस पर होप ग्राण्ट कुछ सवारों सहित आगे बढ़ा। दोनों ओर से रक्त की नदियां बहने लगीं। होप ग्राण्ट के अधिकतर सवार हिन्दोस्तानी थे। संग्राम में दोनों पक्ष के सिपाहियों ने अपूर्व वीरता का परिचय दिया। अन्त में अंगरेज़ी सेना को फिर पीछे हट जाना पड़ा।

चौथे दल ने इस तरह हार खाई। बाकी तीनों दलों ने निकलसन, कैम्पबेल और जोन्स के अधीन कश्मीरी दरवाज़े से घुस कर शहर पर धावा किया। जिस-जिस मकान या मीनार को ये लोग सर कर लेते थे, उस पर तुरन्त सूचना के लिए अंगरेज़ी झण्डा गाड़ देते थे। एक-एक मकान के सामने संग्राम होता जाता था। इस तरह लड़ते-लड़ते ये तीनों दल काबुली दरवाजे की तरफ बढ़े।

अमर गली

वर्न बैस्टियन के पास पहुंच कर इन लोगों को एक तंग गली में से निकलना पड़ा। इस गली के दोनों तरफ की खिड़कियों, छज्जों और छतों पर से गोलियों की भयंकर वर्षा होने लगी। गली के अन्दर अक्षरशः रक्त की नदी बह निकली। अंगरेज़ी सेना को मजबूर होकर पीछे हट जाना पड़ा। निकलसन यह हालत देख कर एक सच्चे वीर के समान आगे बढ़ा। यह गली करीब दो सौ गज़ लम्बी थी। किन्तु 14 सितम्बर के दिन इस गली ने जो अद्भुत काम कर दिखाया, उसने वास्तव में इसी गली को अमर

बना दिया। वीर निकलसन को भी पीछे हट जाना पड़ा। इस पर मेजर जैकब आगे बढ़ा और तुरन्त घायल होकर गिर पड़ा। निकलसन फिर दूसरी बार आगे बढ़ा। किन्तु इस बार बढ़ते ही घायल होकर ज़मीन पर गिर पड़ा। अन्त में अंगरेज़ी सेना को गली छोड़ कर पीछे हट जाना पड़ा। गली लाशों से भर गई। कम्पनी की सेना को पीछे हट कर कश्मीरी दरवाज़े से लौट आना पड़ा।

जामा मसजिद की लड़ाई

जिस समय निकलसन बर्न बस्टियन की तरफ बढ़ रहा था, उसी समय कर्नल कैम्पबेल के अधीन एक दल जामा मसजिद की तरफ भेज दिया गया था। मसजिद तक पहुंचने में इन लोगों को बहुत अधिक कठिनाई नहीं हुई। किन्तु मसजिद में उस समय कई हज़ार मुसलमान जमा थे। उन्हें पता चल गया था कि अंगरेज़ मसजिद को बारूद से उड़ाना चाहते हैं। इन सबके पास तलवारें थीं, बन्दूकें न थीं। ये सब लोग अपनी तलवार हाथ में लेकर मसजिद से निकल पड़े। सबसे पहले उन्होंने अपनी तलवारों के मियान काट कर फ़ेंक दिए। उन्हें मसजिद के बाहर देखते ही अंगरेज़ी सेना ने उन पर बन्दूकों की एक बाढ़ चलाई। उनमें से दो सौ आदमियों की लाशें तुरन्त मसजिद की सीढ़ियों पर गिर पड़ीं। किन्तु बाकी मुसलमान इस फुरती के साथ तलवारें हाथ में लिए आगे बढ़े कि अंगरेज़ी सेना को दोबारा बन्दूकें भरने या संभालने तक का अवकाश न मिल सका। बन्दूकों को छोड़कर दोनों ओर से तलवारों की लड़ाई शुरू हो गई। कैम्पबेल घायल हो गया। अंगरेज़ी सेना के इस दल को भी विवश होकर कश्मीरी दरवाज़े की तरफ भाग आना पड़ा। कैम्पबेल ने बाद में बयान किया कि यदि मुझे समय पर सहायता पहुंच जाती और बारूद के थैले मेरे पास आ जाते तो मैं उस दिन दिल्ली की जामा मसजिद को अवश्य उड़ा देता।

उस दिन के हताहत

इस तरह 14 सितम्बर की लड़ाई खत्म हो गई। दिल्ली में अंगरेजी सेना के प्रवेश का यह पहला दिन था। संग्राम अत्यन्त भयंकर रहा। दोनों पक्षों ने एक-एक इंच भूमि के लिए अपने और शत्रु दोनों के रक्त को पानी की तरह बहा दिया। अंगरेज़ों की तरफ़ चार मुख्य सेनापतियों में से तीन घायल हो गए, जिनमें सबसे वीर सेनापति निकलसन 23 सितम्बर को अस्पताल में मरा। कम्पनी के 66 अफ़सर और 1,104 सिपाही उस दिन के संग्राम में मारे गए। कहा जाता है कि क्रान्तिकारियों की ओर करीब 1,500 आदमी मरे। किन्तु चार महीने के मोहासरे के बाद दिल्ली की दीवार के अन्दर कम्पनी की सेना ने प्रवेश कर लिया।

चप्पा-चप्पा भूमि पर संग्राम

इसके बाद के दिल्ली के संग्रामों को इतने विस्तार के साथ बयान करने की आवश्यकता नहीं है। क्रान्तिकारियों में अव्यवस्था बढ़ती गई। कुछ सेना तुरन्त दिल्ली छोड़ कर चल दी और कुछ 15 सितम्बर से 24 सितम्बर तक दिल्ली की एक-एक

चप्पा भूमि के लिए शत्रु के साथ संग्राम करती रही। इन संग्रामों में कम्पनी की सेना के क़रीब चार हज़ार मनुष्य मारे गए। क्रान्तिकारियों के हताहतों की तादाद इससे कुछ अधिक बताई जाती है।

सम्राट को बख्त खां का आश्वासन

धीरे-धीरे तीन चौथाई शहर कम्पनी के क़ब्ज़े में आ गया। 19 सितम्बर की रात को बख्त ख़ां सम्राट बहादुरशाह से भेंट करने के लिए गया। उसने सम्राट को हिम्मत दिलाई और कहा—

> **"दिल्ली हाथ से निकल जाने पर भी हमारा कुछ अधिक नहीं बिगड़ा। तमाम मुल्क में आग लगी हुई है। आप अंगरेज़ों से हार स्वीकार न कीजिए। आप मेरे साथ दिल्ली से निकल चलिए। कई दूसरे स्थान सामरिक दृष्टि से दिल्ली की अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण हैं। इनमें से किसी पर भी जम कर हमें युद्ध जारी रखना चाहिए। मुझे विश्वास है कि अन्त में हमारी विजय होगी।"**

सम्राट बहादुरशाह बख्त ख़ां की बात पर करीब-करीब राज़ी हो गया और उसे अगले दिन सवेरे फिर मिलने के लिए बुलाया। दूसरी तरफ़ अंगरेज़ों ने अपने गुप्त सहायक, मिरजा इलाहीबख्श, पर इस बात का ज़ोर दिया कि तुम किसी तरह बादशाह को दिल्ली से बाहर जाने से रोक लो। इस काम के लिए मिरज़ा इलाहीबख्श से बहुत बड़े इनाम का वादा किया गया। चुनांचे आज (1929) तक मिरज़ा इलाहीबख्श के वंशजों को बारह सौ रुपये माहवार पेंशन मिलती है।

बख्त खां और मिरजा इलाहीबख्श

बख्त ख़ां के चले जाने के बाद मिरजा इलाहीबख्श ने सम्राट को समझाया कि—

> **"क्रान्ति के सफल होने की अब कोई आशा नहीं हो सकती। बख्त खां के साथ जाने में आपको सिवाय कष्टों और हानि के कुछ न मिलेगा। और यदि आप यहां रह जायेंगे तो मैं वादा करता हूं कि अंगरेज़ों से मिल कर सब बातों की सफाई करा दूंगा। आप और आपके कुटुम्बियों पर किसी तरह की आंच न आने पाएगी।"**

अगले दिन सवेरे सम्राट बहादुरशाह हुमायूं के मक़बरे में गया। बख्त ख़ां को वहीं पर मिलने के लिए बुलाया गया। मक़बरे के पूरब की तरफ़ जमना की रेती में बख्त ख़ां की फ़ौज पड़ी हुई थी। पूर्वी दरवाज से ही बख्त खां बहादुरशाह से मिलने के लिए मक़बरे में आया। बख्त खां ने बहादुरशाह को फिर समझाया। लिखा है कि बख्त खां बहादुरशाह को अपने साथ ले जाना चाहता था, बहादुरशाह बख्त खां के साथ जाना चाहता था, और मिरज़ा इलाहीबख्श बहादुरशाह को रोक लेने के दांवपेच खेल रहा था। अन्त में मिरजा इलाहीबख्श ने जब देखा कि और कोई चाल नहीं चल सकती तो उसने बख्त खां पर यह इलज़ाम लगाया कि बख्त खां चूंकि पठान है, इसलिए वह मुगलों से अपनी क़ौम का पुराना बदला चुकाना चाहता है और छल से बहादुरशाह को

फंसाना चाहता है। इस पर बात यहां तक बढ़ी कि निर्दोष बख्त ख़ां ने मिरज़ा इलाहीबख्श पर तलवार खींच ली। किन्तु स्वयं बहादुरशाह ने उसका हाथ रोक लिया। निस्सन्देह मिरज़ा इलाहीबख्श का कोई न कोई तीर नेक, किन्तु बूढ़े तथा निर्बल, बहादुरशाह पर अवश्य चल गया। अन्त में बहादुरशाह ने बख्त खां से ये शब्द कहे—

"बहादुर ! मुझे तेरी हर बात का यक़ीन है और मैं तेरी हर राय को दिल से पसन्द करता हूं। मगर जिस्म की क़ूवत नें जवाब दे दिया है। इसलिए मैं अपना मामला तक़दीर के हवाले करता हूं। मुझको मेरे हाल पर छोड़ दो और बिस्मिल्लाह करो। यहां से जाओ और कुछ काम करके दिखाओ। मैं नहीं, मेरे खानदान में से नहीं, न सही, तुम या और कोई हिन्दोस्तान की लाज रखे। हमारी फ़िक्र न करो, अपने फ़र्ज को अंजाम दो।"*

बख्त खां की निराशा

दिल्ली के समस्त स्वतन्त्रता संग्राम का यदि मुकुट बहादुरशाह था और हाथ-पैर हजारों हिन्दू और मुसलमान वीर सिपाही थे, तो उस संग्राम का दिल और दिमाग बख्त खां था। बहादुरशाह के इस उत्तर से बख्त खां का दिल टुकड़े-टुकड़े हो गया। वह गर्दन नीची करके मक़बरे के पूर्वी दरवाज़े से बाहर निकल आया।

सम्राट बहादुरशाह की गिरफ्तारी

दूसरी ओर, विश्वासघातक मिरजा इलाहीबख्श ने पश्चिमी दरवाजे से बाहर निकल कर तुरन्त अंगरेज़ों को सूचना दी कि इसी समय चुपके से पश्चिमी दरवाजे पर आकर बहादुरशाह को गिरफ्तार कर लिया जाय। तुरन्त कप्तान हडसन पचास सवार लेकर मक़बरे के पश्चिमी दरवाजे पर पहुंच गया। लिखा है कि जिस समय बहादुरशाह को मालूम हुआ कि हडसन मुझे गिरफ्तार करने आया है, उसने एक बार मिरज़ा इलाहीबख्श की ओर घूर कर देखा और कहा—"तुमने मुझको बख्त खां के साथ जाने से रोका × × ×।" इलाहीबख्श सर झुकाए चुपचाप खड़ा रहा। यह भी लिखा है कि बहादुरशाह ने फिर इरादा किया कि किसी को भेज कर बख्त खां को बुलाया जाय, किन्तु समय हाथ से निकल चुका था।

शहर पर पूरा कब्ज़ा

सम्राट बहादुरशाह, बेगम ज़ीनतमहल और शहज़ादे जवांबख्त को चुपचाप पूर्वी दरवाज़े से गिरफ्तार करके लाल क़िले में लाकर क़ैद कर दिया गया, और दिल्ली का नगर 134 दिन के कठिन परिश्रम के बाद फिर से पूरी तरह अंगरेजों के कब्जे में आ गया।

इसके बाद बख्त खां अपनी समस्त सेना सहित जमना को पार कर किसी ओर

***"देहली की जांकनी"—लेखक : ख्वाजा हसन निजामी।**

निकल गया और आज तक किसी को उसका या उसकी सेना का पता न चल सका।

जनरल विलसन और कप्तान हडसन की राय थी कि सम्राट बहादुरशाह को तुरन्त मार डाला जाय। किन्तु अभी तक अधिकांश क्रान्तिकारी भारत अंगरेज़ों के वश में न आया था। इसलिए दूसरे अंगरेज़ अफ़सरों की राय इसके ख़िलाफ थी। बहादुरशाह को क़ैद कर दिया गया।

शहज़ादों की हत्या

सम्राट बहादुरशाह की गिरफ्तारी के बाद बहादुरशाह के दो और बेटे, मिरज़ा मुग़ल और मिरज़ा अख़जर सुलतान और एक पोता, मिरज़ा अबूबकर, हुमायूं के मक़बरे में बाकी रह गए थे। मिरज़ा इलाहीबख्श ने हडसन को सूचना दी कि ये लोग अभी तक मक़बरे में मौजूद हैं। हडसन फिर मक़बरे की ओर लौटा। तीनों शहज़ादों को क़ैद कर लिया गया। मिरज़ा इलाहीबख्श ने शहज़ादों को समझा कर इस काम में पूरी मदद दी। शहज़ादों को रथों में सवार करा कर हडसन अपने सवारों, मिरज़ा इलाहीबख्श और उसके दो मुसाहिबों सहित शहर की ओर चला। जब शहर एक मील रह गया, तो हडसन ने रथों को ठहराया, तीनों शहज़ादों को रथों से उतरने के लिए कहा, उनके कपड़े उतरवाए, और फिर अचानक अपने एक सिपाही के हाथ से बन्दूक लेकर उन तीनों को तीन फ़ायर में वहीं पर खत्म कर दिया! गोलियां तीनों शहज़ादों की छाती के लगीं और वे "हाय दग़ा" कह कर वहीं ठण्डे हो गए। मिरज़ा इलाहीबख्श ने तीनों शहज़ादों से वादा कर लिया था कि मैं जनरल विलसन से तुम्हारी जान बख्शवा दूंगा!

शहज़ादों के कटे हुए सर

शहज़ादों के सिर काट कर सम्राट बहादुरशाह के सामने लाए गए। सिरों को पेश करते हुए हडसन ने बहादुरशाह से कहा—

"कम्पनी की ओर से यह आपकी नजर है, जो बरसों से बन्द थी।"

ख्वाजा हसन निज़ामी ने लिखा है कि सम्राट बहादुरशाह ने जवान बेटों और जवान पोते के कटे हुए सिर देखे, तो आश्चर्यजनक धैर्य के साथ देख कर मुंह फेर लिया और कहा—

"अलहम्दोलिल्लाह! तैमूर की औलाद ऐसी ही सुर्ख़रू होकर बाप के सामनें आया करती थी!"*

इसके बाद शहज़ादों के सिर खूनी दरवाजे के सामने लाकर लटका दिए गए और धड़ कोतवाली के सामने टांग दिए गए। अगले दिन इन तीनों लाशों को जमना में फिंकवा दिया गया।

***अर्थ—खुदा की तारीफ़ है! तैमूर की औलाद इसी प्रकार मुख उज्ज्वल करके बाप के सामने आया करती थी!**

हडसन ने शहज़ादों का खून पिया

शहज़ादों की हत्या के सम्बन्ध में एक और कहीं अधिक भयंकर रिवायत दिल्ली में मशहूर थी। वह रिवायत यह है कि एक तो ये शहज़ादे, जिन्हें हडसन ने इस तरह धोखा देकर मारा, चार थे। इनमें एक शहज़ादा अब्दुल्ला भी था। दूसरी मुख्य बात यह है कि हडसन ने शहज़ादों को मार कर तुरन्त अपने चुल्लू में भर कर उनका गरम-गरम खून पिया और पीकर यह कहा कि यदि मैं इनका खून न पीता, तो पागल हो जाता।

यह रिवायत किसी अंगरेज़ी इतिहास में नहीं मिलती। किन्तु ख्वाजा हसन निज़ामी ने इसे अपनी उर्दू पुस्तक "देहली की जांकनी" में दर्ज किया है। ख्वाज़ा साहब का दावा है कि यह घटना बिलकुल सच्ची है। ख्वाजा हसन निज़ामी का बयान है—"मैंने दिल्ली के सैकड़ों लोगों के मुंह से इस बात को सुना, और इसके अलावा मिरज़ा इलाहीबख्श के उन दो खास मुसाहिबों में से एक ने, जो मौके पर मौजूद था और जिन्होंने इस वाक़ये को अपनी आंखों से देखा था, खुद मेरे बाप से आकर यह तमाम वाक़या सुनाया था।"*

घायलों की हत्या

अब हमारे लिए कम्पनी के क़ब्ज़े के बाद दिल्ली निवासियों के ऊपर कम्पनी की सेना के अत्याचारों को संक्षेप में बयान करना बाक़ी रह गया है।

इन अत्याचारों के बारे में लार्ड एलफ़िन्सटन ने सर जान लारेन्स को लिखा—

> **"मोहासरे के खत्म होने के बाद हमारी सेना ने जो अत्याचार किए हैं, उन्हें सुन कर हृदय फटने लगता है। बिना मित्र या शत्रु में भेद किए ये लोग सबसे एक-सा बदला ले रहे हैं। लूट में तो सचमुच हम नादिरशाह से भी बढ़ गए!"†**

मोहासरे के दिनों में किले के छत्ते में बीमार और घायल सिपाहियों का एक अस्पताल था। कम्पनी की सेना जिस समय क़िले के अन्दर घुसी, जितने घायल और बीमार अस्पताल के अन्दर दिखाई दिए, उन सबको उसने अपनी गोलियों से सदा के लिए रोग मुक्त कर दिया। इसी तरह और भी अनेक जगह, जहां घायल और बीमार पाए गए, कत्ल कर दिए गए।‡

दिल्ली के बाशिन्दों का कत्लेआम

माण्टगोमरी मार्टिन लिखता है—

> **"जिस समय हमारी सेना ने शहर में प्रवेश किया, तो जितने नगर निवासी**

***"देहली की जांकनी" लेखक : ख्वाजा हसन निजामी। पृष्ठ 52-53।**

† "After the siege was over, the outrages committed by our army are simply heart-rending. A wholesale vengeance is being taken without distinction of friend and foe. As regards the looting, we have indeed surpassed Nadirshah!" —*Life of Lord Lawrence*, vol. ii, p. 262.

‡"तारीखे हिन्द"—लेखक : शम्शुल उलमा मन्शी जकाउल्लाखां। पृष्ठ 646।

शहर की दीवारों के अन्दर पाए गए, उन्हें उसी जगह, जहां वे मिले संगीनों से मार डाला गया । आप समझ सकते हैं कि उनकी तादाद कितनी अधिक रही होगी, जब मैं आपको यह बताऊं कि एक-एक मकान में चालीस-चालीस और पचास-पचास आदमी छिपे हुए थे । ये लोग विद्रोही न थे, बल्कि शहरी थे, जिन्हें हमारी दयालुता और क्षमाशीलता पर विश्वास था । मुझे खुशी है कि उनका भ्रम दूर हो गया ।"*

इसके बाद एक दूसरा अंगरेज़ इतिहास लेखक लिखता है—

"दिल्ली के बाशिन्दों के क़त्लेआम का खुला ऐलान कर दिया गया यद्यपि हम जानते थे कि उनमें से बहुत-से हमारी विजय चाहते हैं।"†

एक दिन का दृश्य

इस भयंकर हत्याकाण्ड के दिनों में केवल एक दिन के दृश्य को बयान करते हुए लार्ड राबर्ट्स लिखता है —

"हम सुबह को लाहौरी दरवाजे से चांदनी चौक गए, तो हमें शहर वास्तव में मुर्दों का शहर नजर आता था । कोई आवाज सिवाय हमारे घोड़ों की टापों के सुनाई नहीं देती थी । कोई जीवित मनुष्य नजर नहीं आया । सब ओर मुर्दों का बिछौना बिछा हुआ था, जिनमें से कुछ मरने से पहले पड़े सिसक रहे थे ।

"हम चलते हुए बहुत धीरे-धीरे बात करते थें, इस डर से कि कहीं हमारी आवाज से मुर्दे न चौंक पड़ें । ××× एक ओर मुर्दों की लाशों को कुत्ते खा रहे थे और दूसरी ओर लाशों के आसपास गिद्ध जमा थे, जो उनके मांस को नोच-नोच कर स्वाद से खा रहे थे और हमारी चलने की आवाज से उड़-उड़ कर थोड़ी दूर जा बैठते थे ।

"सारांश यह है कि इन मुर्दों की हालत बयान नहीं हो सकती । जिस तरह हमें इन्हें देखने से डर लगता है, उसी तरह हमारे घोड़े इन्हें देख कर डर से बिदकते थे और हिनहिनाते थे । लाशें पड़ी सड़ती थीं । उनके सड़ने से हवा में बीमारी फैलाने वाली दुर्गन्ध फैल रही थी ।"‡

---

*"All the city people found within the walls when our troops entered were bayonetted on the spot; and the number was considerable, as you may suppose, when I tell you that in some houses forty or fifty persons were hiding. These were not mutineers, but residents of the city, who trusted to our well-known mild rule for pardon. I am glad to say, they were disappointed."—Letter in the *Bombay Telegraph* by Montgomery Martin.

†"A general massacre of the inhabitants of Delhi, a large number of whom were known to wish us success, was openly proclaimed."—The Chaplain's *Narrative of the Siege of Delhi* quoted by Kaye.

‡*Forty-one Years in India* by Lord Roberts, as quoted by Hassan Nizami in *Delhi-ki-Jankani*, pp. 66, 67.

हसन निज़ामी लिखता है कि इस क़त्लेआम में पुरुष, स्त्री अथवा छोटे-बड़े का कोई भेद न किया जाता था ।

यातनाएं दे-दे कर मारना

इनमें से अनेक लोगों को तरह-तरह की यातनाएं देकर मारा गया ।

लेफ्टिनेन्ट माजेण्डी ने अपनी आंखों देखी एक घटना बयान की है कि सिखों और गोरों ने मिल कर एक घायल मनुष्य के चेहरे को पहले अपनी संगीनों से बार-बार बींधा और फिर धीमी आंच के ऊपर उसे जिन्दा भून दिया—

> **"उसका मांस चटका, लपटटों में काला हो गया और जलते हुए मांस की भयंकर दुर्गन्ध नें ऊपर उठ कर हवा को विषैला बना दिया ।" ***

'टाइम्स' पत्र के संवाददाता सर विलियम रसल ने लिखा है कि—

> **"मैंने इस शख्स की जली हुई हड्डियां कई दिन बाद तक मैदान में पड़ी हुई देखीं ।"†**

मावरे टामसन ने सर हैनरी काटन से कहा था कि दिल्ली में कुछ मुसलमानों को नंगा करके, जमीन से बांध कर, सिर से पांव तक जलते हुए तांबे के टुकड़े से दागा गया था ! ‡

धर्मभ्रष्ट करने के बाद हत्या

इन लोगों को मारने से पहले कभी-कभी उनको धर्मभ्रष्ट करने की घृणित क्रिया भी की जाती थी । एक अंगरेज पादरी की विधवा ने लिखा है कि बहुत-से लोगों को पकड़ कर पहले उनसे संगीनों के बल गिरजा में झाड़ू दिलवाई गई और फिर सबको फांसी दे दी गई ।§

रसल लिखता है कि कभी-कभी—

> **"मुसलमानों को मारनें से पहले उन्हें सुअर की खालों में सी दिया जाता था, उन पर सुअर की चरबी मल दी जाती थी और फिर उनके शरीर जला दिए जाते थें, और हिन्दुओं को जबरदस्ती धर्मभ्रष्ट किया जाता था ।"****

दिल्ली वीरान और सुनसान

इन रोमांचकारी घटनाओं के सम्बन्ध में अधिक उद्धरण देना व्यर्थ है । नतीजा यह हुआ कि एक बार सारी दिल्ली खाली और वीरान हो गई । उन इने-गिने घरानों

---

* "......the horrible smell of his burning flesh as it cracked and blackened in the flames, rising up and poisoning the air."—Lieut. Majendic, *Up Among the Pandies*, p. 187.

† *My Diary in India in the year* 1858-59, vol. i, pp. 301-02.

‡ *Indian and Home Memories* by Sir Henry Cotton, p. 143.

§ *A Lady's Escape from Gwalior*, p. 243.

** "......sewing Mohammedans in pig-skins, smearing them with porkfat before executing and burning their bodies, and forcing Hindoos to defile themselves......"—*Russel's Diary*, vol. II, p. 43.

को छोड़कर, जिनसे कम्पनी की सेना को सहायता मिल रही थी, वाकी सब नगर निवासियों को, जो क़त्ल या फांसी से बच सके, जबरदस्ती शहर से बाहर निकाल दिया गया। इतिहास लेखक होम्स लिखता है—

"दिल्ली के बाशिन्दों ने क्रान्तिकारियों के अपराधों का कई गुना प्रायश्चित कर डाला। दसों हजार मर्द, औरत और बच्चे बिना घरबार के इधर-उधर के इलाके में घूम रहे थे, जिन्होंने कि कोई अपराध न किया था। अपना जो कुछ माल असबाब वे शहर में पीछे छोड़ गए थे, उससे वे सदा के लिए हाथ धो चुके थे, क्योंकि सिपाहियों ने गली-गली और घर-घर जाकर हर कीमती चीज को खोज कर निकाल लिया था, और जो-कुछ सामान वे उठा कर न ले जा सके, उसे उन्होंने टुकड़े-टुकड़े कर डाला था।"*

'प्राइज एजेन्सी'

शहर पर क़ब्ज़ा करने के बाद तीन दिन तक कम्पनी की सेना के सब सिपाहियों को शहर की लूट माफ़ रही। उसके बाद 'प्राइज़ एजेन्सी" नाम से एक सरकारी मोहकमा खोल दिया गया, जिसका काम यह था कि शहर के तमाम घरों के हर तरह के मालअसबाव को एक जगह जमा करके उसे नीलाम करे या गोदामों में रखे और रुपया फ़ौज को तक़सीम कर दे। इस मोहकमे ने मकानों के अन्दर कितावें, बर्तन, चारपाई, चक्की, गड़ा हुआ माल-दौलत, यहां तक कि मकानों के किवाड़ और उनके अन्दर का लोहा और पीतल तक, कोई चीज़ नहीं छोड़ी।

ख्वाज़ा हसन निज़ामी ने लिखा है—

"कर्नल बर्न को शहर का फ़ौजी गवर्नर नियुक्त किया गया। उसने फ़ौज का एक दस्ता इस काम के लिए नियुक्त किया कि जहां कहीं आबादी पाओ, मर्द, औरत और बच्चों को घरों से असबाब सहित गिरफ्तार करके ले आओ। आगे-आगे मर्द असबाब के गट्ठर सर पर रखे हुए, पीछे-पीछे उनकी औरतें रोती हुई, पैदल और बच्चों को साथ लिए हुए। जिन औरतों को कभी पैदल चलने की आदत न थी, वे ठोकरें खा-खा कर गिरती थीं, बच्चे गोद से गिरे जाते थे और सिपाही क्रूरता के साथ उन्हें आगे चलने के लिए धक्के देते थे।"

'जब ये लोग कर्नल बर्न के सामने पेश होते थे, तो हुक्म दिया जाता था कि असबाब में जितनी क़ीमती चीजें हैं उन्हे ढूंढ कर जब्त कर लो, व्यर्थ चीज वापस दे दो। यह हो चुकने पर दूसरा हुक्म यह दिया जाता था कि इनको

---

* "The people of Delhi had expiated, many times over, the crimes of the mutineers. Tens of thousands of men and women, and children, were wandering, for no crime, homeless over the country. What they had left behind was lost to them for ever; for the soldiers, going from house to house and from street to street, ferreted out every article of value and smashed to pieces whatever they could not carry away."—Holmes' *A History of Indian Mutiny*, p. 386.

सिपाहियों की दखरेख में लाहौरी दरवाज़े तक ले जाओ और शहर से बाहर निकाल दो। ऐसा ही किया जाता और वे लोग लाहौरी दरवाज़े के बाहर धक्के देकर निकाल दिए जाते।'

"दिल्ली शहर के बाहर इस तरह हज़ारों मर्द, औरतें और बच्चे असहाय, नंगे पांव, नंगे सर, भूखे-प्यासे फिर रहे थे। × × × सैकड़ों बच्चे भूख-भूख चिल्लाते हुए माताओं की गोद में मर गए। सकड़ों माताएं छोटे बच्चों का दुख न देख सकने के कारण उन्हे अकेला छोड़कर कुएं में डूब मरीं।"

"शहर के अन्दर हजारों औरतें ऐसी थीं कि जिस समय उन्होंने सुना कि कम्पनी की फौज आ रही है, तो बेइज्जती और मुसीबतों से बचने के लिए कुओं में गिरनें लगीं और इतनी अधिक गिरीं कि डूबने को पानी न रहा। अनेक कुएं लाशों से पट गए।"

"सेना के अफ़सर का बयान है कि—'हमने इस तरह की सैकड़ों औरतों को कुओं से निकाला जो लाशों के ढेर के कारण डूबी न थीं और जिन्दा पड़ी थीं या बैठी थीं। जिस समय हमने उन्हें निकालना चाहा, वे चीखने लगीं कि —खुदा के लिए हमको हाथ न लगाओ और गोली से मार डालो, हम शरीफ बहू-बेटियां हैं, हमारी इज्जत खराब न करो।' × × ×"

दिल्ली की स्त्रियों का यह डर, कि कहीं हमारी इज्ज़त पर हमला न किया जाय, बेबुनियाद नहीं था।

"फराशखाने के किसी कुएं में से दो औरतें जिन्दा निकाली गईं एक जवान, किन्तु अंधी, दूसरी बुढ़िया। बुढ़िया ने बयान दिया कि मेरे एक ही बेटा था, उसे घर में घुस कर क़त्ल कर दिया गया। जब वह क़त्ल किया जा रहा था, कुछ सिपाहियों नें उसकी अंधी बहन के सतीत्व पर हमला करना चाहा, किन्तु वह अपने घर के कुएं से परिचित थी, दौड़ कर उसमें गिर पड़ी, उसके साथ ही मैं भी कुएं में कूद पड़ी। हम दोनों पानी में गोते खा रहे थे कि किसी ने अन्दर आकर हम को निकाल लिया।"

"दिल्ली में ऐसे भी लोग थे, जिनके घर की स्त्रियों की आबरू पर जिस समय हमला होने लगा, तो उन्होंने अपने हाथ से अपनी बहुओं और अपनी बेटियों को कत्ल कर दिया और फिर स्वयं आत्महत्या कर ली।"*

मन्दिरों और मसजिदों की बेइज्जती

दिल्ली निवासियों के धार्मिक भावों को जिस तरह आघात पहुंचाया गया, उसके बारे में ख्वाज़ा हसन निज़ामी लिखता है—

"अंगरेज़ी सेना के मुसलमान सिपाही हिन्दुओं के मन्दिरों में घुस गए और उनको खराब कर डाला और हिन्दू सिपाहियों ने मसजिदों को खराब किया। दिल्ली की बड़ी जामा मसजिद में सिख सिपाहियों की बारग (बैरक) बनाई

---

*पूर्वोक्त पुस्तक, पृष्ठ 67।

गई । पाखाने और पेशाबखाने भी इसी के अन्दर थे । मीनारों के नीचे हलवे पकाए जाते थे और सुअर भी काट कर पकाए जाते थे । अंगरेज़ों के साथ के कुत्ते अन्दर पड़े फिरते थे । एक मसजिद जीनतुलमसजिद को गोरों का मिसकौट घर बनाया गया और नवाब हामिदअली खाँ की मशहूर मसजिद में गधे बांधे जाते थे । किले के नीचे एक बड़ी आलीशान मसजिद अकबरबादी थी, जो गिरा कर बिलकुल जमीन के बराबर कर दी गई । इसी तरह और बहुत-सी छोटी-छोटी मसजिदों का खात्मा हुआ ।"*

दिल्ली नये सिरे से आबाद

फिर नए सिरे से दिल्ली आबाद हुई । पहले कुछ हिन्दुओं से भारी जुर्माने ले-लेकर उन्हें मोहल्लों में बसने की इजाजत दी गई । उसके बाद मार्च सन् 1858 में मुसलमानों को पास ले-लेकर शहर में बसने की इजाज़त मिली । फिर भी सन् 1859 तक मुसलमानों के खास मकान सरकारी ज़ब्ती में थे और मुसलमान लोग शहर के अन्दर बिना किसी अफ़सर के पास के चल-फिर न सकते थे ।

मुग़ल राजवंश का अन्त

दिल्ली का हाल खत्म करने से पहले अब केवल एक चीज़ को बयान करना और बाक़ी है । वह यह कि दिल्ली के राजकुल का, अर्थात् सम्राट बाबर और सम्राट अकबर के वंशजों का किस तरह अन्त हुआ । क्रान्ति के शुरू में दिल्ली के लाल किले के अन्दर सम्राट बहादुरशाह के कुटुम्बियों की एक बहुत बड़ी तादाद थी । इनमें से अनेक शहज़ादों को पकड़ कर फांसी पर लटका दिया गया । उदाहरण के लिए, शहज़ादे मिरज़ा क़ैसर को जो सम्राट शाह आलम का एक बेटा था और इतना बूढ़ा था कि क्रान्ति में कोई हिस्सा लेना उसके लिए असम्भव था, फांसी दे दी गई । शहज़ादे मिरज़ा मोहम्मद शाह को, जो सम्राट अकबरशाह का पोता था और आजीवन गठिया का रोगी रहने के कारण सीधा खड़ा तक न हो सकता था, इसी तरह फांसी पर लटका दिया गया । कुछ शहज़ादों को जेलखाने में रखा गया, उनसे चक्कियां पिसवाई गईं । जब वे अपना काम पूरा न कर सकते, उन पर कोड़ों की मार पड़ती । यहां तक कि वे बेचारे थोड़े ही दिनों में मार खाखाकर जीवन की क़ैद से मुक्त हो गए । बहादुरशाह का एक बेटा, मिरज़ा क़ोयाश एक दिन दिल्ली के पास के जंगल में घोड़े पर सवार खड़ा दिखाई दिया, सर पर टोपी न थी और चेहरे पर धूल पड़ी हुई थी । हडसन उसकी तलाश में घूम रहा था । उसके बाद आज तक पता न चला कि मिरज़ा क़ोयाश का क्या हुआ । अनेक शहज़ादे और शहज़ादियां दिल्ली से बाहर दर-दर घूमते-फिरते थे । बहादुरशाह की एक बेटी राबेया बेगम ने रोटियों से मोहताज होकर दिल्ली के एक हुसेनी बावरची से शादी कर ली । बहादुरशाह की एक दूसरी बेटी फ़ातमा सुलतान ईसाई पादरियों के एक ज़नाने स्कूल में नौकरी करने लगी ।

---

*पूर्वोक्त पुस्तक, पृष्ठ 84 ।

बहादुरशाह का अन्त

सम्राट बहादुरशाह, बेगम ज़ीनतमहल और शहज़ादे जवांबख्त को क़ैद करके रंगून भेज दिया गया । रंगून में अंगरेज़ों की क़ैद के अन्दर सन् 1863 में सम्राट बहादुरशाह की मृत्यु हुई और उसके साथ-साथ दिल्ली के राजकुल का अन्तिम चिह्न संसार से मिट गया ।

अड़तालीसवां अध्याय

अवध और बिहार

बेगम हज़रतमहल

अब हम लखनऊ की ओर आते हैं। सन् 57-58 के स्वाधीनता युद्ध में वीरता और बलिदान की दृष्टि से लखनऊ का पद दिल्ली से ऊंचा रहा। दिल्ली के पतन के छः महीने बाद तक अवध और लखनऊ में स्वाधीनता का झण्डा फहराता रहा।

चिनहट की विजय के बाद अवध की प्रजा ने कैदी नवाब वाजिदअली शाह के पुत्र बिरजीस क़दर को लखनऊ के सिंहासन पर बैठा दिया और चूंकि नवाब बिरजीस क़दर अभी नाबालिग था, इसलिए शासन की बाग बिरजीस क़दर की मां, हज़रतमहल, के हाथों में सौंप दी गई। अवध के सब जमींदारों और प्रजा ने बड़े हर्ष के साथ बेगम हज़रतमहल को अपना अधिराज स्वीकार कर लिया।

बेगम हज़रतमहल की प्रशंसा करते हुए रसल लिखता है—

> **"बेगम में बड़ी पराक्रमशीलता और योग्यता दिखाई देती है। × × × बेगम ने हमारे साथ अनवरत युद्ध का ऐलान कर दिया है। इन रानियों और बेगमों की पराक्रमशीलता को देख कर मालूम होता है कि जनानखानों के अन्दर रह कर अपने अन्दर ये काफ़ी अधिक क्रियात्मक मानसिक शक्ति पैदा कर लेती है।"***

बेगम ने सबसे पहले नवाब बिरजीस क़दर की तरफ से अवध की स्वाधीनता का शुभ सन्देश अनेक उपहारों सहित सम्राट बहादुरशाह की सेवा में दिल्ली भेजा। इसके बाद उसने राजा बालकृष्ण सिंह को अपना प्रधानमन्त्री नियुक्त किया और उस कठिन समय में राज के सब महकमों की नये सिरे से व्यवस्था कर एक बार सारे अवध में शान्ति और सुशासन क़ायम कर दिया।

लखनऊ की रेज़िडेन्सी

ऊपर आ चुका है कि अवध के अंगरेज़ और वहां का अंगरेज़ी राज उस समय लखनऊ की रेज़िडेन्सी के अन्दर क़ैद था। रेज़िडेन्सी के बाहर सारे अवध में कम्पनी की सत्ता का कोई चिह्न बाक़ी न था। रेज़िडेन्सी का मोहासरा जारी था।

20 जुलाई, सन् 1857 को लखनऊ की क्रान्तिकारी सेना ने रेज़िडेन्सी के ऊपर हमले करने शुरू किए। कई दिनों तक दोनों तरफ़ से गोलाबारी होती रही। कई बार

---

* "The Begum exhibits great energy and ability......The Begum declares undying war against us. It appears from the energetic characters of these Ranees and Begums that they acquire in their Zenanas and Harems a considerable amount of actual mental power......"—Russell's *Diary*, p. 275.

रेज़िडेन्सी के ऊपर का अंगरेज़ी झण्डा टूट कर गिर पड़ा, किन्तु हर बार नया झण्डा उसकी जगह लगा दिया गया। रेज़िडेन्सी के अन्दर सिख सिपाही अंगरेज़ों की जी तोड़ सहायता कर रह थे। बाहर के भारतीय सैनिकों ने सिखों को अनेक बार समझा कर अपनी ओर करने का प्रयत्न किया, किन्तु व्यर्थ।

इन्हीं संग्रामों में एक दिन अवध का अंगरेज़ चीफ़ कमिश्नर, सर हेनरी लारेन्स, जो पंजाब के चीफ़ कमिशनर सर जान लारेन्स का भाई था, क्रान्तिकारियों की गोली का शिकार हुआ। मेजर बैंक्स ने तुरन्त उसका स्थान लिया। चन्द दिनों के बाद मेजर बैंक्स को भी एक गोली लगी और वह भी खत्म हो गया। ब्रिगेडियर इंगलिस ने अब उसका स्थान लिया। इसी बीच, लिखा है कि क्रान्तिकारियों ने रेज़िडेन्सी की दीवार के कई हिस्से उड़ा दिए। भीतर के कई मकान भी क्रान्तिकारियों के गोलों से गिर कर ढेर हो गए।

रेज़िडेन्सी के अन्दर के अंगरेज़ों की हालत खासी निराशा की थी। उन्होंने मदद के लिए बार-बार अपने गुप्त दूत कानपुर भेजे, जिनमें से कई दूत गिरफ्तार कर लिए गए। 25 जुलाई को ब्रिगेडियर इंगलिस को सूचना मिली कि जनरल हैवलाक मदद के लिए कानपुर से रवाना हो चुका है और पांच या छः दिन के अन्दर लखनऊ पहुंच जायगा। किन्तु पांच-छः दिन के बाद हैवलाक के आने के बजाय क्रान्तिकारियों ने फिर एक बार रेज़िडेन्सी पर जोरदार हमला किया। रेज़िडेन्सी की दीवार का एक बहुत बड़ा टुकड़ा गिर पड़ा। दीवार के ऊपर संगीनों और तलवारों की लड़ाई शुरू हो गई। लिखा है कि उस दिन क्रान्तिकारियों ने कई अंगरेज़ सिपाहियों की संगीनें तक छीन लीं। किन्तु अन्त में क्रान्तिकारी फिर नगर की ओर लौट आए।

इसके बाद 18 अगस्त को क्रान्तिकारियों ने रेज़िडेन्सी पर तीसरी बार हमला किया। अभी तक हैवलाक और उसकी सेना का कहीं पता न था। इतने में ब्रिगेडियर इंगलिस को हैवलाक का एक पत्र मिला, जिसमें लिखा था—"मैं अभी कम-से-कम 25 दिन और लखनऊ नहीं पहुंच सकता।" रेज़िडेन्सी के अंगरेज़ों की घबराहट हद को पहुंच गई। रसद का सामान इतना कम हो गया कि सबको आधा पेट खाना दिया जाने लगा।

फिर भी लखनऊ के क्रान्तिकारी इस बीच रेज़िडेन्सी पर पूरी विजय प्राप्त कर वहां के सब अंगरेज़ों को क़ैद या ख़त्म न कर सके। इसका कारण या तो यह था कि दिल्ली के समान लखनऊ में भी एक योग्य और प्रभावशाली सेनापति की कमी थी, और या उन्हें शायद यह अनुमान था कि अंगरेज़ रसद की कमी और गोलों की आग से घबरा कर स्वयं आत्मसमर्पण कर देंगे। दूसरी ओर, अंगरेज़ हैवलाक और उसकी सेना के लिए आतुर हो रहे थे। इसलिए अब हम लखनऊ की रेज़िडेन्सी को छोड़ कर जनरल हैवलाक की ओर आते हैं।

जनरल हैवलाक की लखनऊ यात्रा

20 जुलाई, सन् 1857 को हैवलाक ने कानपुर से निकल कर गंगा को पार किया। वह उस समय लखनऊ के अंगरेज़ों को सहायता पहुंचाने के लिए आतुर था। कानपुर

से लखनऊ का फ़ासला 45 मील से कम है। हैवलाक को पूरा विश्वास था कि मैं दो-चार दिन के अन्दर ही लखनऊ पहुंच जाऊंगा। उसके साथ डेढ़ हज़ार फ़ौज और तेरह तोपें थीं।

किन्तु ज्योंही गंगा को पार कर हैवलाक ने अवध की भूमि में पैर रखा, उसे मालूम हुआ कि लखनऊ तक पहुंच सकना इतना आसान नहीं है। अवध की एक-एक चप्पा ज़मीन पर स्वाधीनता की आग दहक रही थी। एक-एक ज़मींदार ने अपने अधीन सौ-सौ, दो-दो सौ या अधिक आदमी जमा करके हैवलाक को रोकने का निश्चय कर लिया। मार्ग में हर गांव के ऊपर स्वाधीनता का हरा झण्डा फहरा रहा था। हैवलाक को पहली लड़ाई उन्नाव में लड़नी पड़ी। वहां से ज्यों-त्यों कर हैवलाक आगे बढ़ा। दूसरा संग्राम बशीरतगंज में हुआ। ये दोनों संग्राम 29 जुलाई को ही लड़े गए। हैवलाक की सेना का छठा हिस्सा इन लड़ाइयों में खत्म हो गया। 30 जुलाई को हैवलाक को बशीरतगंज से पीछे हट कर अपनी सेना सहित मगरवाड़ा में आकर ठहरना पड़ा।

दूसरी तरफ़ नाना साहब को जब यह पता चला कि हैवलाक लखनऊ की तरफ जा रहा है, तब नाना ने फिर एक बार कानपुर पर हमले की तैयारी शुरू की। हैवलाक को मजबूर होकर 4 अगस्त तक मगरवाड़ा में ठहरना पड़ा।

इसके बाद हैवलाक फिर लखनऊ की ओर बढ़ा। बशीरतगंज में ही उसे दोबारा क्रान्तिकारियों से मोर्चा लेना पड़ा। इस दिन के संग्राम में हैवलाक के तीन सौ आदमी और मारे गए। उसके डेढ़ हज़ार सिपाहियों में से अब केवल साढ़े आठ सौ बाक़ी रह गए थे। विवश होकर हैवलाक को फिर दूसरी बार गंगा की तरफ पीछे लौट जाना पड़ा।

अवध की ग्रामीण जनता के इस वीर पराक्रम को देख कर इतिहास लेखक इन्स लिखता है—

> **"कम से कम अवध निवासियों के संग्रामों को हमें स्वाधीनता का युद्ध मानना पड़ेगा।"***

11 अगस्त को हैवलाक तीसरी बार बशीरतगंज की तरफ़ बढ़ा। तीसरी बार उसे ग्रामीण अवध निवासियों के साथ मोर्चा लेना पड़ा और तीसरी बार जनरल हैवलाक को पीछे हट कर मगरवाड़ा में रुकना पड़ा।

नाना के मनसूबे

इस बीच नाना साहब को सागर, ग्वालियर इत्यादि से काफ़ी सहायता पहुंच चुकी थी। नाना ने फिर एक बार किसी दूसरे स्थान से गंगा को पार कर कानपुर पर हमला किया। जनरल नील कानपुर में था। पर उसके पास नाना के मुकाबले के लिए काफ़ी सेना न थी। उसने तुरन्त हैवलाक को सूचना दी। हैवलाक के लिए अब लखनऊ

---

*"At least the struggle of Oudhians must be characterised as a War of Independence."—Innes' *Sepoy Revolt*.

की तरफ़ बढ़ सकना असम्भव हो गया। 12 अगस्त को दोबारा गंगा पार कर हैवलाक को कानपुर लौट आना पड़ा।

अवध निवासियों के हौसले

हैवलाक के गंगा पार करते ही अवध निवासियों के हौसले दुगुने हो गए। इतिहास लेखक इन्स लिखता है—

> "अवध से हमारी सेना के लौट आने का नतीजा वह हुआ, जिसका हैवलाक को निस्सन्देह अनुमान तक न था। ताल्लुकेदारों ने खुले तौर पर इसका मतलब यह लिया कि अंगरेज़ों ने अवध का इलाका खाली कर दिया, और लखनऊ दरबार को बाज़ाब्ता अपनी क्रियात्मक सरकार स्वीकार कर लिया। यद्यपि वे उस सरकार की सहायता के लिए स्वयं लखनऊ नहीं पहुंचे, फिर भी लखनऊ दरबार की जिन आज्ञाओं को अभी तक उन्होंने नहीं माना था, उन आज्ञाओं का अब उन्होंने पालन करना शुरू कर दिया। लखनऊ दरबार ने जितने-जितने सैन्य दल इन लोगों से मांगे थे, वे अब इन्होंने युद्ध के लिए लखनऊ भेज दिए।"*

यह आश्चर्यजनक प्रभाव उन्नाव और बशीरतगंज के ग्राम निवासियों की वीरता का नतीजा था।

हैवलाक की घबराहट

कानपुर पहुंचते ही हैवलाक को सूचना मिली कि नाना साहब ने बिठूर पर फिर क़ब्ज़ा कर लिया है। 17 अगस्त को हैवलाक ने नाना की सेना पर चढ़ाई की। एक घमासान संग्राम के बाद दोनों तरफ़ की सेनाओं को पीछे हट जाना पड़ा। हैवलाक को अब पता चला कि नाना ने एक अधिक विशाल सेना जमुना के किनारे कालपी में जमा कर रखी है। यदि हैवलाक लखनऊ की तरफ़ बढ़ता, तो नाना तुरंत आकर कानपुर पर फिर से कब्जा कर लेता। घबरा कर जनरल हैवलाक ने कलकत्ते यह सन्देश भेजा—

> "हम लोग एक भयंकर संकट में हैं। यदि और अधिक सेना मदद के लिए न पहुंची तो अंगरेज़ी सेना को लखनऊ का विचार छोड़ कर इलाहाबाद लौट आना पड़ेगा। इस भयंकर आपत्ति का कोई इलाज नहीं।"†

नयी अंग्रेज़ी सेना

नाना अभी कालपी में तैयारी कर ही रहा था कि हैवलाक के सन्देश पर चार सप्ताह के अन्दर सर जेम्स ऊटरम और अधिक सेना लेकर हैवलाक की सहायता के लिए 15 सितम्बर को कलकत्ते से कानपुर पहुंच गया।

---

* *The Sepoy Revolt*, by Innes.

† "We are in a terrible fix. If new reinforcements do not arrive, the British army cannot escape the terrible fate of abandoning Lucknow and retreating to Allahabad."—Havelock's message to Calcutta.

हैवलाक की दूसरी लखनऊ यात्रा

कुछ सेना अब कानपुर की रक्षा के लिए छोड़ दी गई । बाक़ी सेना ने 20 सितम्बर को फिर एक बार कानपुर से लखनऊ के लिए प्रस्थान किया । जनरल हैवलाक ने सबसे पहले 25 जुलाई को लखनऊ जाने के लिए गंगा को पार किया था । दो महीने तक उसे आगे बढ़ने में सफलता न मिल सकी और बार-बार कानपुर लौट आना पड़ा; किन्तु 25 जुलाई की अंगरेज़ी सेना और 20 सितम्बर की अंगरेज़ी सेना में बहुत अन्तर था । नील, ऊटरम, कूपर और आयर जैसे चार-चार अनुभवी सेनापति इस समय हैवलाक की मदद के लिए मौजूद थे । ढाई हज़ार अंगरेज़, एक रेज़िडेन्सी सिखों की और बढ़िया तोपें हैवलाक के साथ थीं ।

अवध के कई सरहद्दी ताल्लुक़ेदारों ने, इस बीच इस विश्वास पर कि कम्पनी की सेना ने सदा के लिए अवध का इलाका छोड़ दिया, अपने-अपने सैन्य दल लखनऊ भेज दिए थे । फिर भी उन्नाव, बशीरतगंज इत्यादि स्थानों पर अवध के ग्रामवासियों ने पूर्ववत् एक-एक चप्पा ज़मीन पर कम्पनी की सेना का विरोध किया । अकेले ग्रामवासी, जिनके पास शस्त्रों की भी कमी थी, कम्पनी की इस विशाल और सुसन्नद्ध सेना का कहां तक मुकाबला कर सकते थे । सारा रास्ता विरोधी ज़मींदारों और ग्राम निवासियों की लाशों से पट गया । जिस गांव के ऊपर हरा झण्डा फहराता हुआ दिखाई दिया, उसे जला कर ख़ाक कर दिया गया । रास्ते की नदियां दोनों ओर के रक्त से रंग गईं । अन्त में ज्यों-त्यों कर मार्ग चीरते हुए 23 सितम्बर को कम्पनी की सेना लखनऊ के पास आलमबाग पहुंच गई ।

आलमबाग का संग्राम

आलमबाग में क्रान्तिकारियों की एक पलटन ठहरी हुई थी । दिन भर और रात भर और अगले दिन भर खूब घमासान संग्राम हुआ । ठीक इस समय दिल्ली के पतन की खबर लखनऊ पहुंची, अंगरेजी सेना के हौसले और बढ़ गए ।

25 सितम्बर का प्रातःकाल हुआ । अंगरेज़ी सेना ने आलमबाग से हट कर कुछ चक्कर से रेज़िडेन्सी की तरफ़ बढ़ना चाहा । लखनऊ की क्रान्तिकारी सेना ने मुड़ कर उन पर गोले बरसाने शुरू किए, अंगरेज़ी सेना गोलों की इस बौछार में से निकलती हुई चारबाग के पुल तक आ पहुंची । पुल के उस पार लखनऊ का शहर था । स्वभावतः चारबाग के पुल के ऊपर और अधिक भयंकर संग्राम हुआ । क्रान्तिकारियों की सेना पुल के ऊपर और दूसरी तरफ थीं । दोनों तरफ से जोरों के साथ गोले बरसने लगे । दोनों तरफ के हताहतों की तादाद काफ़ी ऊंची पहुंच गई । जनरल हैवलाक का एक पुत्र भी इस समय वीरता के साथ लड़ रहा था । अंगरेजों की ओर जानों का नुकसान बहुत अधिक हुआ, फिर भी अन्त में अंगरेज़ी सेना अपनी और विपक्षी की लाशों के ऊपर से पुल को पार कर गई । उस पार भी एक-एक क़दम पर संग्राम जारी रहा । इन्हीं में से एक स्थान, खास बाजार, में किसी क्रान्तिकारी की गोली जनरल नील की गरदन में आकर लगी और जनरल नील वहीं पर ढेर हो गया । जनरल नील की मृत्यु अंगरेज़ी

सेना के लिए एक बहुत बड़ा सदमा था, किन्तु अन्त में अंगरेज़ी सेना बढ़ते-बढ़ते रेज़िडेन्सी के अन्दर पहुंच गई ।

रेज़िडेन्सी के अन्दर एक बार अंगरेज़ों के हर्ष की कोई सीमा न थी । 87 दिन के लगातार मोहासरे में रेज़िडेन्सी के अन्दर सात सौ आदमी मर चुके थे । उस समय वहां क़रीब पांच सौ अंगरेज़ और चार सौ हिन्दोस्तानी थे, जिनमें से अनेक घायल थे । हैवलाक की सेना के, जो कानपुर से चली थी, रेज़िडेन्सी पहुंचने से पहले 722 आदमी मारे जा चुके थे । फिर भी लखनऊ रेज़िडेन्सी के हताश अंगरेज़ों की मदद के लिए पहुंच जाना हैवलाक और उसके साथियों के लिए कुछ कम हर्ष की बात न थी ।

हैवलाक रेज़िडेन्सी में क़ैद

हैवलाक को फिर एक बार भयंकर निराशा हुई । उसके पहुंचने से रेज़िडेन्सी का मोहासरा समाप्त न हो सका । लखनऊ की क्रान्तिकारी सेना ने फिर एक बार रेज़िडेन्सी को उसी तरह चारों ओर से घेर लिया, जिस तरह हैवलाक के आने से पहले घेर रखा था । हैवलाक और उसकी सेना अब स्वयं रेज़िडेन्सी के अन्दर क़ैद हो गई । केवल क़ैदियों की तादाद पहले से बढ़ गई । लखनऊ का बाक़ी शहर और अवध का सारा इलाक़ा पूर्ववत् स्वाधीन रहा ।

नया कमाण्डर-इन-चीफ़ सर कालिन कैम्पबेल

सर कालिन कैम्पबेल कम्पनी की सेनाओं का नया कमाण्डर-इन-चीफ़ नियुक्त होकर 13 अगस्त को कलकत्ते पहुंचा । मद्रास, बम्बई, लंका और चीन से नयी-नयी अंगरेज़ी पलटनें जमा की गईं । क़ासिम बाजार के कारखाने में नयी तोपें ढाली गईं । इस तैयारी में कैम्पबेल को दो महीने लग गए ।

अन्त में 27 अक्तूबर को हैवलाक और ऊटरम जैसे सेनापतियों को रेज़िडेन्सी की क़ैद से आज़ाद कराने और लखनऊ को फिर से विजय करने के लिए कैम्पबेल स्वयं कलकत्ते से चला ।

साथ-साथ एक जहाज़ी बेड़ा कर्नल पावल और कप्तान पील के अधीन गंगा के रास्ते कलकत्ते से इलाहाबाद की तरफ भेजा गया । इस बेड़े को भी कई जगह क्रान्तिकारियों से लड़ना पड़ा । इनमें से एक स्थान पर कर्नल पावल मारा गया ।

3 नवम्बर को सर कालिन कैम्पबेल कानपुर पहुंचा । कैम्पबेल ने अब एक बहुत बड़े पैमाने पर कानपुर में सेना जमा करनी शुरू की । यह सेना ब्रिगेडियर जनरल ग्रान्ट के अधीन जमा की गई । जहाजी बेड़ा भी कानपुर पहुंच गया । दिल्ली की अंगरेज़ी सेना इस समय तक आज़ाद हो चुकी थी । जनरल ग्रेटहेड इस सेना सहित दिल्ली से कानपुर तक रास्ते के क्रान्तिकारियों का दमन करता हुआ कानपुर पहुंच गया ।

ग्रेटहेड की कानपुर यात्रा

एक अंगरेज़ इतिहास लेखक लिखता है कि क्रान्ति के आरम्भ से लेकर नवम्बर

तक दिल्ली से पूरब का सारा इलाका क्रान्तिकारियों के हाथों में था, किन्तु जनता को उससे कोई कष्ट न पहुंचा था—

> **"लोग न केवल खेतीबाड़ी करते रहे, वरन अनेक जिलों में इतने विशाल पैमाने पर करते रहे, जिससे अधिक उन्होंने पहले कभी न की थी, वास्तव में क्रांतिकारी सिवाय इसके कि अपनी आवश्यकताओं को पूरा कर लेते थे देशवासियों पर कोई अन्याय करने का और साहस न करते थे।"***

किन्तु जनरल ग्रेटहेड ने दिल्ली से कानपुर तक की यात्रा में रास्ते के सब ग्रामों को जलाने और निर्दोष जनता का संहार करने में जनरल नील को भी मात कर दिया। इधर से उधर तक उसकी सेना ने ग्रामवासियों का पशुओं की तरह शिकार किया। इससे अधिक उन घटनाओं को विस्तार देने की आवश्यकता नहीं है।

आलमबाग के लिए नई अंगरेजी सेना

सबसे पहले जनरल ग्राण्ट इस नयी विशाल सेना सहित आलमबाग पहुंचा। कानपुर और कालपी के बीच में नाना साहब के प्रयत्न अभी जारी थे, जिन्हें आगे चल कर बयान किया जायगा। इसलिए कैम्पबल ने कुछ सिख सेना तोपों सहित विंढम के अधीन कानपुर की रक्षा के लिए छोड़ दी और स्वयं जनरल ग्राण्ट के पीछे-पीछे गंगा पार कर 9 नवम्बर को आलमबाग़ पहुंच गया।

अंगरेज गुप्तचर कैवेना

रेज़िडेन्सी के क़ैदी अंगरेज़ों के साथ पत्र-व्यवहार तक इस समय कठिन था। कैम्पबेल ने कैवेना नामक एक अंगरेज का काला मुंह रंग कर उसे हिन्दोस्तानी कपड़े पहना कर रात के समय एक हिन्दोस्तानी गुप्तचर के साथ रेजिडेन्सी में भेजा। कैवेना ने वहां से लौट कर कैम्पबेल को भीतर के हालात सुनाए।

14 नवम्बर को कैम्पबेल की सेना ने रेज़िडेन्सी की तरफ बढ़ना शुरू किया। हैवलाक और ऊटरम ने भीलर से क्रान्तिकारी सेना पर हमला किया और कैम्पबेल की सेना ने बाहर से दबाना शुरू किया। कम्पनी की सेना में इस समय हैवलाक, ऊटरम, पील, ग्रेटहेड, दिल्ली का प्रसिद्ध हडसन, होपग्राण्ट, आयर और कमाण्डर-इन-चीफ़ सर कालिन कैम्पबेल जैसे जबरदस्त सेनापतियों के अतिरिक्त इंगलिस्तान, चीन आदि से आई हुई नयी अंगरेज पलटनें और दिल्ली की अनुभवी अंगरेज, सिख और दूसरी पंजाबी पलटनें शामिल थीं।

सिकन्दर बाग़ का संग्राम

14 नवम्बर की शाम तक कैम्पबेल की सेना दिलखुश बाग़ पहुंची। 16 को इस सेना ने सिकन्दर बाग़ पर चढ़ाई की। फिर एक अत्यन्त घमासान संग्राम हुआ, जिसमें

*** "The people not only cultivated but in many districts as extensively as ever. In fact beyond supplying their necessity, the rebels did not venture to assume the character of tyrants of the country."—*Narrative of the Indian Revolt.***

एक तरफ़ क्रान्तिकारी सेना ने और दूसरी तरफ़ सिखों ने खासी वीरता दिखाई। एक सिख सिपाही ही सबसे पहले गोलों की बौछार के अन्दर से सिकन्दर बाग़ की दीवार पर चढ़ता हुआ दिखाई दिया। सामने से उसकी छाती में एक गोली लगी। वह वहीं ढेर हो गया। उसके बाद जनरल कूपर और जनरल लम्सडेन भी उसी दीवार पर मारे गए। किन्तु अन्त में अपने साथियों की लाशों पर से कूदते हुये सिख और अंगरेज़ सिकन्दर बाग़ के अन्दर पहुंच गए। इतने में कम्पनी की सेना ने एक दूसरी तरफ़ से भी बाग़ में प्रवेश किया। सिकन्दर बाग़ के अन्दर की हिन्दोस्तानी सेना ने जिस अद्भुत वीरता के साथ उस दिन सिकन्दर बाग़ की रक्षा की, उसके बारे में इतिहास लेखक मालेसन लिखता है—

> "इस बाड़े (सिकन्दर बाग़) पर क़ब्जा करने के लिए जो संग्राम हुआ, यह अत्यन्त रक्तमय था और जानों को हथेली पर रख कर लड़ा गया। क्रान्तिकारियों ने अपनी जानों पर खेल कर पूरी वीरता के साथ युद्ध किया। हमारा सेना रास्ता चीरती हुई अन्दर घुस आई, तब भी संग्राम बन्द नहीं हुआ। एक-एक कमरे के लिए, एक-एक सीढ़ी के लिए और मीनारों के एक-एक कोने के लिए संग्राम होता रहा। न किसी ने किसी से दया चाही और न किसी ने किसी पर दया की। अन्त में जब आक्रामक सेना ने सिकन्दरबाग़ पर क़ब्ज़ा कर लिया, तो दो हजार से ऊपर क्रान्तिकारियों की लाशों के ढेर उनके चारों ओर थे। कहा जाता है कि जितनी सेना सिकन्दर बाग़ की रक्षा के लिए नियत थी, उसमें से केवल चार आदमी अपनी जगह छोड़ कर निकल गए, किन्तु इन चार का बाग़ छोड़ कर जाना भी सन्दिग्ध है।"*

लखनऊ का सिकन्दरबाग़ उस दिन शब्दश: रक्त की झील बना हुआ था।

नौ दिन तक लगातार संग्राम

इसके बाद 24 घण्टे तक दिलखुशबाग़, आलमबाग़ और शाहनजफ़ में घमासान संग्राम होते रहे। अगले दिन मोती महल में उतनी ही भयंकर लड़ाई हुई। 23 नवम्बर तक लड़ाई जारी रही। किन्तु दिल्ली के पतन ने अंगरेज़ी सेना के हौसले बढ़ा दिए थे और अनेक क्रान्तिकारी नेताओं के दिल बुझ गए थे। अन्त में 23 नवम्बर को नौ दिन के लगातार संग्राम के बाद सर कालिन कैम्पबेल की सेना और रेज़िडेन्सी के भीतर की अंगरेज़ी सेना एक दूसरे से मिल गई।

रक्त का समुद्र

लखनऊ का सारा शहर उस समय रक्त के समुद्र में तैरता हुआ दिखाई देता था। रेज़िडेन्सी के अंगरेज़ क़ैद से रिहा हो गए। किन्तु शहर अभी तक क्रान्तिकारियों के हाथों में था। इस बीच 24 नवम्बर को जनरल हैवलाक की मृत्यु हो गई। सर कालिन कैम्पबेल ने रेज़िडेन्सी को छोड़ कर आलमबाग में अपनी सेना और तोपों को जमा किया,

---

* G. B. Malleson's *Indian Mutiny*, vol. iv, p. 132.

ऊटरम को वहां का सेनापति नियूक्त किया, और लखनऊ शहर पर हमले की तैयारी शुरू की। इतने में कैम्पबेल को समाचार मिला कि नाना साहब के प्रसिद्ध मराठा सेनापति तात्या टोपे ने कानपुर की अंगरेजी सेना को हरा कर फिर से उस नगर पर कब्ज़ा कर लिया। कैम्पबेल ने अब ऊटरम को लखनऊ के लिए छोड़ा और स्वयं फिर से कानपुर विजय करने के लिए चल दिया।

अब हमें लखनऊ को छोड़ कर कुछ पीछे हट कर तात्या टोपे और सर कालिन कैम्पबेल के संग्रामों को बयान करना होगा।

तात्या टोपे

16 जूलाई को जनरल हैवलाक की सेना ने इलाहाबाद से आकर फिर से कानपुर विजय किया था। नाना साहब अपने भाई, बाला साहब, भतीजे, रावसाहब, सेनापति, तात्या टोपे, घर की स्त्रियों और ख़जाने सहित, 17 जूलाई को सवेरे बिठूर से निकल कर फ़तहपुर चला गया था। नाना जनरल हैवलाक पर फिर से हमला करने के लिए सेना जमा कर रहा था। तात्या टोपे को उसने शिवराजपुर भेजा। शिवराजपुर पहुंच कर तात्या टोपे ने कम्पनी की 42 नम्बर पलटन को अपनी तरफ मिलाया। इसी पलटन की सहायता से उसने फिर एक बार बिठूर पर जाकर क़ब्ज़ा कर लिया और हैवलाक की सेना पर, जबकि हैवलाक लखनऊ जाना चाहता था, पीछे से हमला किया, यहां तक कि हैवलाक को लखनऊ का इरादा छोड़ कर पीछे हट जाना पड़ा। 16 अगस्त को हैवलाक की सेना ने फिर तात्या टोपे की सेना पर विजय प्राप्त की। तात्या टोपे फिर अपनी बची हुई सेना सहित भाग कर नाना के पास फ़तहपुर पहुंचा। इसके बाद तात्या गुप्त-रीति से ग्वालियर पहुंचा। ग्वालियर के निकट मुरार की छावनी में सिंधिया की विशाल सब्सीडियरी सेना थी, जिसमें पैदल पलटने, सवार और तोपखाना था। तात्या टोपे ने इस पूरी सेना को क्रांति की ओर तोड़ लिया। उन्हें अपने साथ लेकर तात्या मुरार से कालपी आया। कालपी का किला जमुना के उस पार कानपुर से 46 मील दूर युद्ध की दृष्टि से एक अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान पर था। 9 नवम्बर को तात्या टोपे ने कालपी के किले पर कब्जा कर लिया। नाना ने अब कालपी को ही अपना केन्द्र बनाया। बालासाहब को वहां पर नियुक्त किया और कालपी से सेना लेकर तात्या टोपे फिर एक बार कानपुर की ओर बढ़ा। निस्सन्देह धैर्य, पराक्रम, कुरती और अन्य भारतवासियों को अपने पक्ष में करने की शक्ति में तात्या अद्वितीय था।

जनरल विंढम उस समय कानपुर में था। 19 नवम्बर को तात्या टोपे ने विंढम को घेर कर उसके पास बाहर से रसद इत्यादि का पहुंच सकना असम्भव कर दिया। विंढम अपनी सेना सहित तात्या टोपे के मुकाबले के लिए कानपुर से निकला। 26 नवम्बर को पाण्डु नदी के ऊपर तात्या और विंढम की सेनाओं में एक घमासान संग्राम हुआ। पहले वार में कहा जाता है कि तात्या का काफी नुकसान हुआ। किन्तु तात्या की योग्यता को स्वीकार करते हुए इतिहास लेखक मालेसन लिखता है—

> "विद्रोही सेना का नेता मूर्ख न था। विंढम ने उसे जो हानि पहुंचाई, उससे डर जाने के स्थान पर वह अंगरेज सेनापति की कमजोरी को अच्छी

> तरह समझ गया × × × तात्या टोपे ने उस समय विंढम की स्थिति और उसकी आवश्यकताओं को इतनी अच्छी तरह पढ़ लिया, जिस तरह कोई खुली हुई किताब को पढ़ता है। तात्या में एक सच्चे सेनापति के स्वाभाविक गुण मौजूद थे। उसनें विंढम की इन कमजोरियों से फ़ायदा उठाने का इरादा कर लिया।''*

कानपुर पर तात्या का क़ब्जा

अगले दिन तात्या की सेना ने विंढम की सेना को तीन तरफ़ से घेर कर पीछे हटाना शुरू किया। यहां तक कि बढ़ते-बढ़ते आधा कानपुर तात्या की सेना के कब्जे में आ गया। इसके बाद तीन दिन के लगातार संग्राम के बाद कानपुर का सारा नगर फिर एक बार तात्या टोपे के हाथों में लग गया और विंढम की सेना को हार-पर-हार खाकर मैदान से भाग जाना पड़ा। अंगरेजी सेना के अधिक अनेक अफ़सर इस तीन दिन के संग्राम में काम आए।

इस तीसरे दिन की लड़ाई और अंगरेज़ी सेना की पराजय को बयान करते हुए एक अंगरेज़ अपने पत्र में लिखता है––

> ''आज के संग्राम का वृत्तान्त पढ़ कर आपको आश्चर्य होगा। इससे आपको मालूम होगा कि किस तरह अंगरेजी सेना अपनी विजय पताकाओं, अपने आदर्श वाक्यों और अपनी प्रसिद्ध वीरता समेत पीछे हटा दी गई। उन भारतवासियों ने, जिन्हें तुच्छ समझ कर चिढ़ाते रहे है, अंगरेजी सेना से उसका कैम्प, उसका सामान और मैदान सब कुछ छीन लिया। शत्रु को अब यह कहने का हक हो गया कि फ़िरंगी पिट गए। य पिटे हुए फ़िरंगीं अपनी खाइयों में लौट आए, उनके खेमे उलट दिए गए, असबाब छीन लिया गया, सामान ले लिया गया, ऊंट, हाथी, घोड़े और नौकर उन्हें छोड़ कर भाग गए। यह सारी घटना अत्यन्त शोकजनक और लज्जास्पद है।''†

सर कालिन कैम्पबेल

इसी पराजय से विवश होकर कालिन कैम्पबेल को लखनऊ छोड़ना पड़ा था। तात्या टोपे ने समाचार पाते ही सर कालिन को मार्ग में रोकने के लिए गंगा का पुल तोड़ दिया और गंगा के ऊपर तोपें लगा दीं। फिर भी सर कालिन कैम्पबेल तात्या टोपे की तोपों से बचकर एक दूसरी जगह से गंगा पार कर 30 नवम्बर को कानपुर के पास पहुंच गया। इस समय तक नाना साहब भी तात्या टोपे की सहायता के लिए कानपुर पहुंच गया था।

कानपुर पर अंगरेजी सेना का फिर से कब्जा

मालेसन लिखता है कि सेनापति की हैसियत से तात्या टोपे की ''स्वाभाविक

---

* Malleson's *Indian Mutiny*, vol. iv, p. 167.

† Charles Ball's *Indian Mutiny*, vol. ii, p. 190.

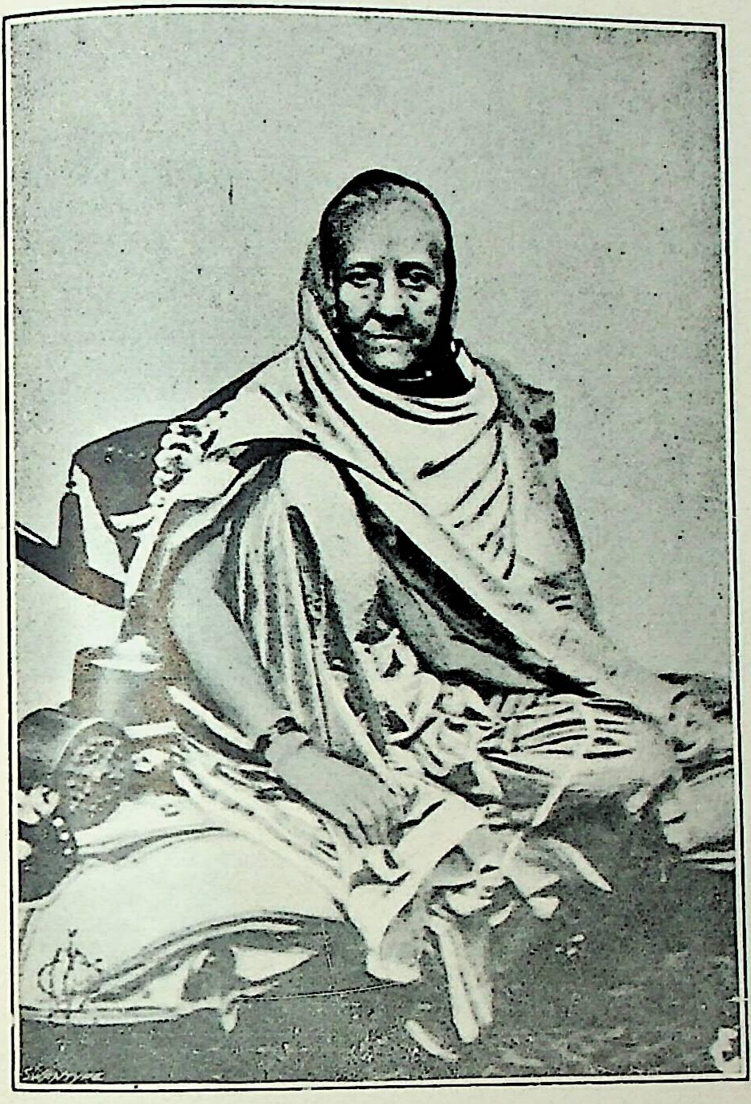

बेगम ज़ीनत महल
(वेगम का फ़ोटो सन् 57 को क्रांति
के वाद वन्दी-अवस्था में लिया गया था)

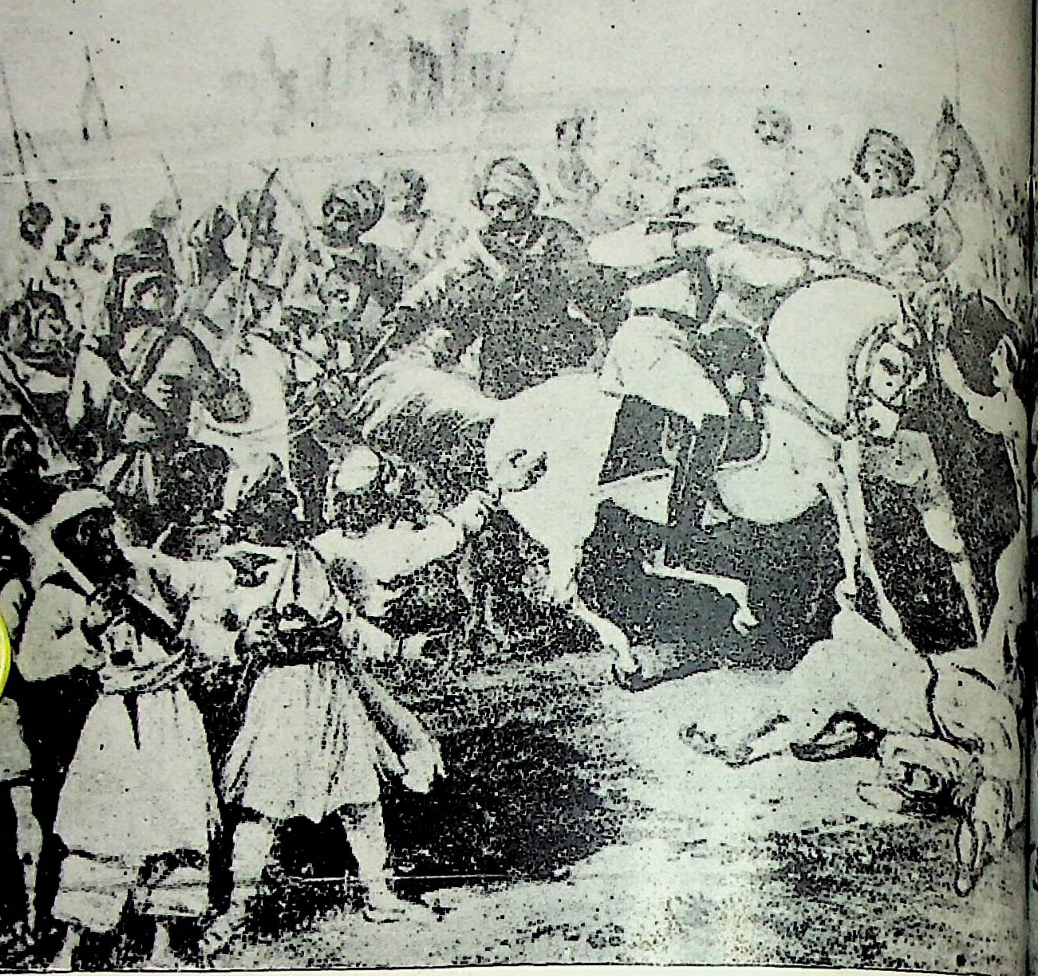

दिल्ली की लूट का एक दृश्य,
मकानों को खुदवा कर

कप्तान हडसन द्वारा मुगल शाहजादों की निर्मम हत्या

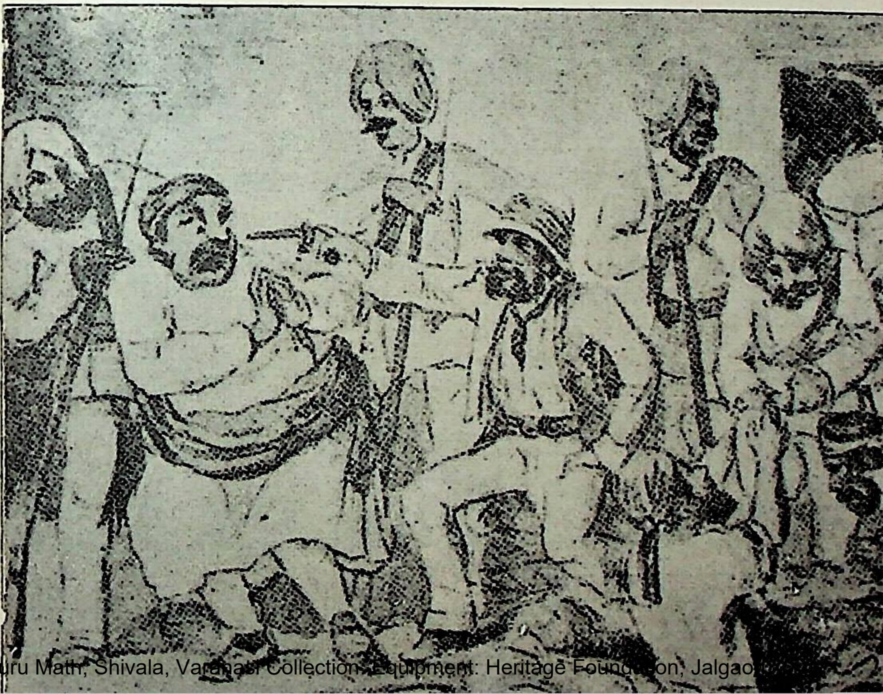

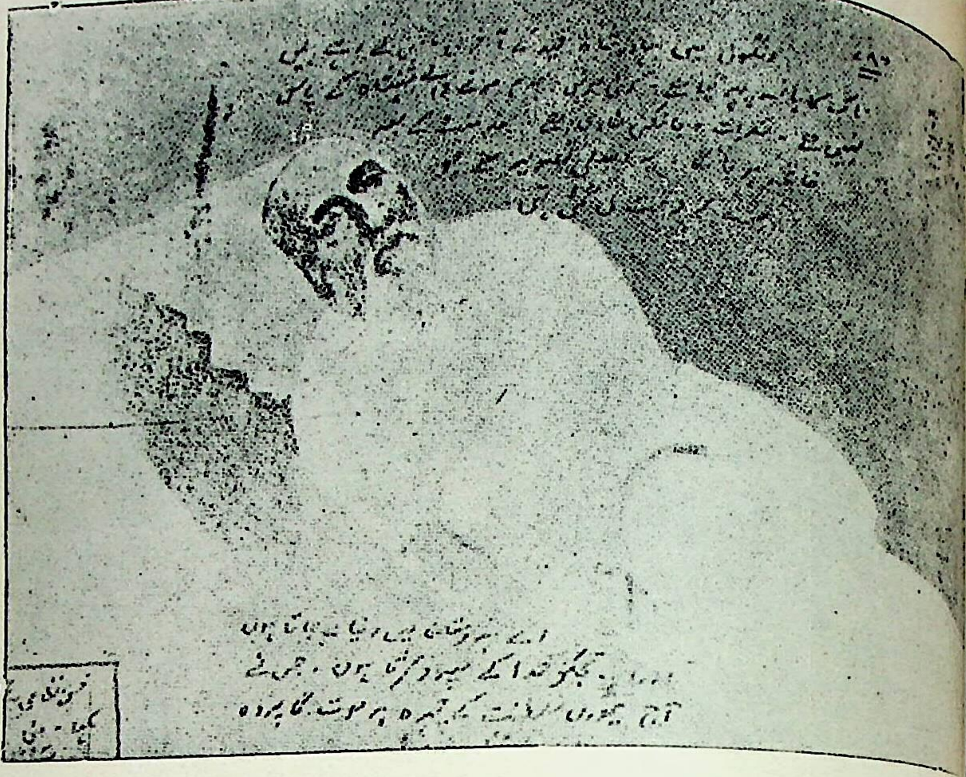

रंगून की जेल में क़ैद दिल्ली-सम्राट बहादुरशाह का मृत्यु-शय्या पर लिया गया एक फ़ोटो

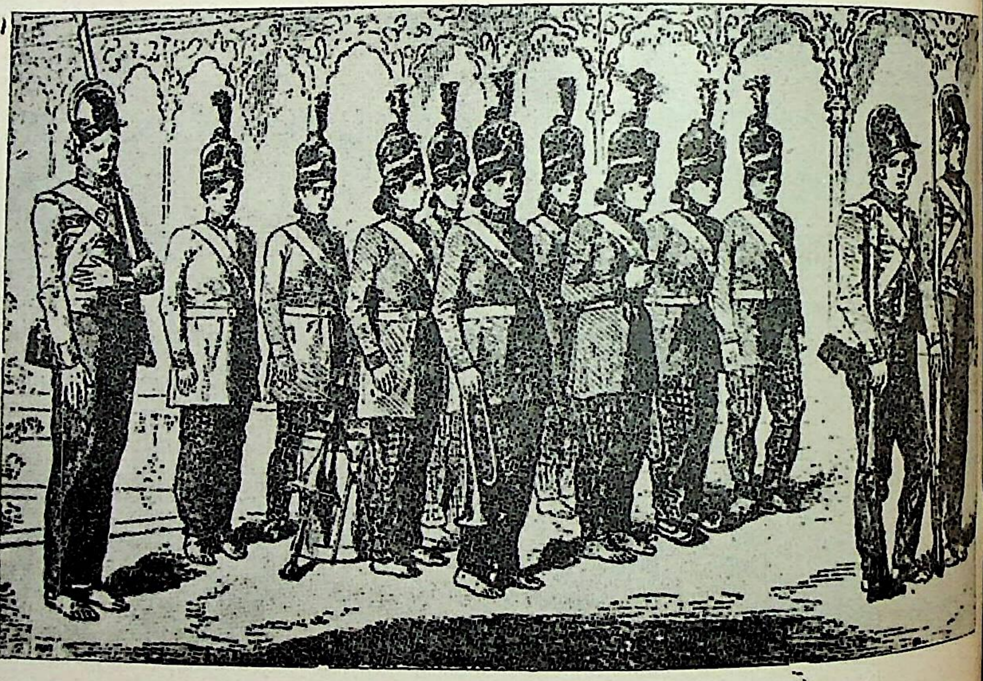

लखनऊ के नवाबी महल की बहादुर महिलाएं, जिन्होंने मरदाना वेष पहन कर आजादी की लड़ाई में भाग लिया

योग्यता बहुत बढ़ी-चढ़ी थी।" *गंगा के किनारे ही उसने कैम्पबेल की सेना को जा घेरा। पहली दिसम्बर से 6 दिसम्बर तक खूब घमासान संग्राम होता रहा। दोनों तरफ की सेनाओं की तादाद करीब-करीब बराबर थी। तात्या के दाहिने हाथ ग्वालियर की सेना थी। यह सेना अन्त में अंगरेज़ों और सिखों के संयुक्त हमले के सामने पीछे हटने लगी। मैदान सर कालिन कैम्पबेल के हाथ रहा। कानपुर के नगर पर फिर से कम्पनी का क़ब्जा हो गया। तात्या अपनी रही-सही सेना और तोपों सहित फिर दक्षिण की ओर निकल गया। अंगरेज़ी सेना ने उनका पीछा किया। शिवराजपुर में फिर एक संग्राम हुआ। इस संग्राम में तात्या की कुछ तोपें भी अंगरेज़ों के हाथ आ गईं। किन्तु तात्या फिर अपनी बाकी सेना सहित बच कर कालपी की तरफ चला गया। अंगरेज़ी सेना कानपुर लौट गई। सर कालिन कैम्पबेल ने इस बार बिठूर के महलों को गिरा कर जमीन से मिला दिया।

अवध और रुहेलखण्ड में दमन

दिल्ली के पतन के बाद अधिकांश क्रान्तिकारी सेना अवध और रुहेलखण्ड में जमा होती जा रही थी। यह प्रदेश ही अब क्रान्ति का सबसे महत्वपूर्ण गढ़ बनता जा रहा था। इस प्रदेश को फिर से विजय करने से पहले आवश्यक था कि अवध के पश्चिम में दिल्ली से पूरब के सारे इलाके को पूरी तरह अधीन कर लिया जाय। कई अंगरेज सेनापति अलग-अलग सैन्य दल लेकर इस काम के लिए दिल्ली, कानपुर, इत्यादि से अलग अलग दिशाओं में निकल पड़े। ग्रामीण जनता को वश में करने और उन पर अपने बल की धाक जमाने के लिए इन लोगों ने स्थान-स्थान पर उसी तरह के उपायों का उपयोग किया, जिस तरह के उपाय नील, हैवलाक और ग्रेटहेड जैसे सेनापति इससे पहले काम में ला चुके थे। इन समस्त प्रयत्नों में इटावा और फ़र्रुखाबाद की घटनाएं खास तौर से बयान करने योग्य हैं।

इटावे के 25 अमर शहीद

18 दिसम्बर को जनरल वालपोल कुछ सेना और तोपों सहित कानपुर से उत्तर की ओर बढ़ा। मार्ग में क्रान्तिकारियों के साथ कई छोटे-मोटे संग्राम हुए। इनमें इटावे के निकट रास्ते के ऊपर एक छोटा-सा मकान था, जिस की छत पर और दीवार के अन्दर सूराखों में बन्दूकें लगी हुई थीं। इस मकान के अन्दर केवल 25 भारतीय क्रान्तिकारी थे। वालपोल के साथ एक बाजाब्ता सेना और कई तोपें थीं। फिर भी 25 मनुष्यों ने बिना लड़े वालपोल को आगे बढ़ने न दिया। वालपोल ने उनसे सुलह करनी चाही, किन्तु उन्होंने स्वीकार न किया। उन्हें तोपों से डराया गया। इसका भी कोई असर न हुआ। इटावे के इन 25 वीरों और वहां की बाकी घटना के बारे में इतिहास लेखक मालेसन लिखता है—

> **"ये लोग गिनती में थोड़े-से थे। इनके पास केवल साधारण बन्दूकें थीं।**

---

* "A man of very great natural ability as leader......"—Malleson's *Indian Mutiny*, vol. iv, p. 186.

किन्तु उनके अन्दर एक उत्साह था, जो आततायियों के उत्साह से भी कहीं अधिक भयंकर था ––वे अपने पवित्र उद्देश्य के लिए शहीद होने का दृढ़ संकल्प कर चुके थे।××× उनके मकान के अंन्दर हाथ से बम फेकें गए। बाहर भुस जला कर उन लोगों को धुएं में घोंट देने का प्रयत्न किया गया, जिससे वे बाहर निकल आएं किन्तु सब व्यर्थ हुआ। सुराखों के अन्दर से ये विद्रोही अपने आक्रामकों के ऊपर लगातार और जोरों के साथ आग बरसाते रहे। इन्होंने उन्हें तीन घण्टे तक रोके रखा। अन्तमें, उस मकान को उड़ा देने का निश्चय किया गया। ××× मकान के उड़ने से उसके रक्षकों को जिस यश की अभिलाषा थी, वह उन्हे प्राप्त हो गया। वे सब शहीद हो गए और सब के सब उसी मकान के खण्डहरों में गड़ गए।"*

फ़र्रुखाबाद का पतन

फ़र्रुखाबाद के नवाब ने अपनी स्वाधीनता का ऐलान कर दिया था। तय हुआ कि तीन तरफ से वालपोल, सीटन और स्वयं कैम्पबेल के अधीन तीन सैन्य दल पहुंच कर फ़र्रुखाबाद की राजधानी फतहगढ़ को घेर लें। फ़तहगढ़ में कई दिन तक घमासान संग्राम होता रहा। अन्त में 14 जनवरी, सन् 1858 को फ़तहगढ़ विजय कर लिया गया। नवाब को क़ैद कर लिया गया। इतिहास लेखक फ़ार्ब्स मिचेल लिखता है कि फ़र्रुखाबाद के मुसलमान नवाब को फांसी देने से पहले उसके तमाम बदन पर सुअर की चरबी मल दी गई थी।† नाना साहब का एक खास सेनापति नादिर खां भी इसी स्थान पर गिरफ्तार हुआ और फांसी पर चढ़ा दिया गया। चार्ल्स लिखता है कि फांसी पर चढ़ते समय नादिर खां ने "हिन्दोस्तान के लोगों को कसम दी कि तलवार खींच कर और अंगरेज़ों को बाहर निकाल कर अपनी स्वाधीनता को फिर से कायम करें।" ‡

दिल्ली में फिर सनसनी

इसी समय के निकट स्वयं दिल्ली के अन्दर फिर कुछ नयी जान दिखाई देने लगी। अफ़वाह उड़ी कि नाना साहब बहादुरशाह को क़ैद से आज़ाद कराने के लिए दिल्ली आ रहा है। चार्ल्स बाल लिखता है कि इस पर बहादुरशाह के अंगरेज पहरेदारों को गुप्त आज्ञाएं दे दी गईं कि यदि वास्तव में नाना दिल्ली के निकट पहुंचने लगे, तो तुम लोग तुरन्त बूढ़े सम्राट को गोली से उड़ा देना।§ दिल्ली से इलाहाबाद तक जमुना के किनारे का प्रायः सब प्रदेश फिर से अंगरेज़ों के हाथों में आ चुका था। इसलिए कैम्पबेल के लिए अब रुहेलखण्ड और अवध को विजय करना बाक़ी था।

---

* Malleson's *Indian Mutiny*.

† Forbes-Mitchell's *Reminiscences*.

‡ Charles Ball's *Indian Mutiny*, vol. ii, p. 232.

§ Ibid, vol. ii, p. 184.

लखनऊ विजय के लिए विशाल अंगरेजी सैन्य दल

लखनऊ ही इस समय क्रान्ति का सबसे बड़ा केन्द्र था। 23 फरवरी, सन् 1858 को कैम्पवेल 17,000 पैदल, 5,000 सवार और 134 तोपों सहित कानपुर से लखनऊ की तरफ़ बढ़ा। अंगरेज इतिहास लेखक लिखते हैं कि इतनी विशाल सेना अवध के मैदानों में कभी दिखाई न दी थी। इस सेना में अधिकतर अंगरेज़, सिख और कुछ और पंजाबी थ। रसल लिखता है कि इस सेना ने मार्ग में अनेक गांव-के-गांव बारूद से उड़ा दिए। *

देशद्रोही नेपाली सेना

किन्तु यह विशाल सेना भी लखनऊ को फिर से विजय करने के लिए काफी नहीं समझी गई। पश्चिमी की ओर से यह सेना, और पूरब की ओर से एक विशाल गोरखा सेना सेनापति जंगबहादुर के अधीन लखनऊ की तरफ़ चली आ रही थी।

ऊपर आ चुका है कि क्रान्ति के शुरू में ही अंगरेज़ों ने नेपाल दरबार से सहायता की प्रार्थना की थी। बहुत सम्भव है कि नेपाल युद्ध के समय अवध के नवाब का कम्पनी को क़रीब ढाई करोड़ रुपये की मदद देना नेपालियों के दिलों में खटक रहा हो और अवध निवासियों से बदला चुकाने का उन्हें यह एक अच्छा अवसर दिखाई दिया हो। सबसे पहले अगस्त सन् 1857 में तीन हज़ार गोरखा सेना पूरब में आजमगढ़ और जौनपुर पर उतर आई। किन्तु क्रान्तिकारी नेता मोहम्मद हुसेन, बेनीमाधव और राजा नादिर खां ने सफलता के साथ इस सेना से लड़ कर पूर्वीय अवध की रक्षा की। इसके बाद लिखा है कि जंगबहादुर और अंगरेज़ों में कुछ खास समझौता हो गया।

23 दिसम्बर, सन् 1857 को 9,000 नयी गोरखा सेना जंगबहादुर के अधीन पूरब की तरफ से लखनऊ की ओर बढ़ी। उसी तरफ से दो और सैन्य दल कम्पनी की सेना के एक जनरल फ्रैंक्स के अधीन और दूसरा जनरल रोक्राफ्ट के अधीन लखनऊ की ओर बढ़े। 25 फरवरी, 1858 को ये तीनों विशाल सैन्य दल घोगरा पार कर अम्बरपुर पहुंचे।

दमन में नेपालियों का हिस्सा

अम्बरपुर एक छोटा-सा दुर्ग था, जिसमें केवल 34 भारतीय सिपाही थे। इन मूट्ठी भर लोगों ने विशाल नेपाली सेना को, जो आगे-आगे थी, युद्ध का निमन्त्रण दिया। नेपाली सेना ने अम्बरपुर के दुर्ग पर हमला किया। 34 रक्षकों में से हरेक लड़ते-लड़ते अपने स्थान पर कट कर मर गया। कहा जाता है, नेपाली सेना के सात आदमी मरे और 43 घायल हुए। दुर्ग पर नेपाली सेना का कब्ज़ा हो गया।† लखनऊ दरबार ने ग़फ़ूरबेग को जनरल फ्रैंक्स के मुकाबले के लिए सेना देकर भेजा। सुलतानपुर आदि स्थानों पर कई जबरदस्त संग्राम हुए। अन्त में नेपालियों और अंगरेज़ों की यह

---

* Russell's *Diary*, p. 218.

† Malleson's *Indian Mutiny*, vol. iv, p. 227.

संयुक्त विशाल सेना पूर्वी अवध पर विजय प्राप्त करती हुई आगे बढ़ चली।

दौरारे का अजेय दुर्ग

मार्ग में एक दुर्ग दौरारे का था। फ्रैंक्स अपने दल सहित इस दुर्ग को विजय करने के लिए बढ़ा। किन्तु दौरारा से फ्रैंक्स को हार खाकर पीछे हट जाना पड़ा, जिसके दण्ड में कैम्पबेल ने फ्रैंक्स की पदवी कम कर दी। इसके बाद दूसरी तरफ़ से चक्कर खाकर कम्पनी की सेना आगे बढ़ी।

11 मार्च, सन् 1858 को पश्चिम से कैम्पबेल की विशाल सेना और पूरब से गोरखा और अंगरेज़ी सेनाएं सब लखनऊ के पास आकर मिल गईं।

लखनऊ शहर की परिस्थिति

लखनऊ शहर के अन्दर नवम्बर सन् 57 से मार्च सन् 58 तक स्वाधीनता का युद्ध बराबर जारी था। अवध की अधिकांश प्रजा और वहां के लगभग सब राजा, ज़मींदार और ताल्लुकेदार सच्चे उत्साह के साथ इस युद्ध में शामिल थे। लार्ड कैनिंग ने सर जेम्स ऊटरम के नाम एक पत्र में लिखा है कि जो राजा और ताल्लुक़ेदार, अंगरेज़ों के विरुद्ध युद्ध में भाग ले रहे थे, उनमें से कम से कम अनेक ऐसे थे, जिन्हें स्वयं अंगरेज़ी राज से बजाय हानि के लाभ हुआ था, फिर भी लोग अंगरेज़ी राज के इस समय विकट शत्रु थे और जनाब बिरजीस क़दर और बेगम हज़रतमहल के लिए अपने सर्वस्व की आहुति देने को उद्यत थे।

इतिहास लेखक होम्स लिखता है—

> **"अनेक राजा और छोटे-छोटे सरदार ऐसे थे, जो सदा अंगरेज सरकार के बन्धनों से अपने आपको मुक्त करने के लिए चिन्तित रहते थे। उन्हें स्वयं कोई विशेष हानि न पहुंची थी, किन्तु अंगरेजी सरकार का अस्तित्व ही उन्हें सदा वह याद दिलाता रहता था कि हम एक पराजित कौम के आदमी हैं। ××× भारत की लाखों जनता के दिलों में विदेशी सरकार के लिए कोई सच्ची राजभक्ति न थी। ××× विप्लव के दिनों में भारतवासियों के व्यवहार का ठीक-ठीक अन्दाजा करने के लिए यह याद रखना आवश्यक है कि इन लोगों को हमारी जैसी एक विदेशी सरकार के लिए उस तरह की राजभक्ति अनुभव करना, जो कि केवल देशभक्ति के साथ-साथ ही चल सकती है, मानव प्रकृति के प्रतिकूल होता। ××× उनमें एक भी मनुष्य ऐसा न था, जिसे यदि एक बार यह विश्वास हो जाता कि अंगरेज़ी राज को उखाड़ कर फेंका जा सकता है, तो वह हमारे विरुद्ध न हो जाता!"***

रसेल लिखता है कि अवध के लोग "अपने देश और अपने बादशाह के लिए देशभक्ति के भाव से भर कर लड़ रहे थे।"†

---

* *The Sepoy War* by Holmes.

† "Engaged in a patriotic war for their country and their sovereign."—Russell's *Diary*, p. 275.

मौलवी अहमदशाह

लखनऊ नगर के अन्दर क्रान्ति का सबसे योग्य नेता मौलवी अहमदशाह था, जिसका जिक्र ऊपर किया जा चुका है। अहमदशाह की योग्यता के विषय में इतिहास लेखक होम्स लिखता है—

> **"फैजाबाद का मौलवी अहमदुल्लाह एक ऐसा व्यक्ति था, जो अपने जोश और अपनी योग्यता की दृष्टि से एक आन्दोलन को चलाने और एक विशाल सेना का नेतृत्व करने के योग्य था।"***

किन्तु दुर्भाग्यवश लखनऊ के अन्दर भी धीरे-धीरे अव्यवस्था उत्पन्न हो गई थी। जिस तरह दिल्ली की सेना में बख्त खां के विरुद्ध, उसी तरह लखनऊ की सेना में अहमदशाह के विरुद्ध कुछ लोग प्रतिस्पर्धा अनुभव करने लगे थे। अहमदशाह की आज्ञाओं का यथेच्छा पालन न होता था।

क्रान्तिकारियों में अनुशासन की कमी

कैम्पबेल के पहुंचने से पहले सर जेम्स ऊटरम चार हजार सेना सहित आलमबाग में मौजूद था। अहमदशाह ने कई बार चाहा कि ऊटरम पर एक जोरदार हमला करके उसकी सेना को समाप्त कर दिया जाय। किन्तु अहमदशाह की न चल सकी। अहमदशाह जनता का आदमी था——रईसों, राजाओं और नवाबों का नहीं। प्रतिस्पर्धा यहां तक बढ़ी कि कुछ लोगों के जोर देने पर, कहा जाता है, एक बार बेगम ने अहमदशाह को क़ैद तक कर दिया। किन्तु सेना और जनता, दोनों में अहमदशाह इतना सर्व प्रिय था कि उसे तुरन्त फिर छोड़ देना पड़ा। इसके बाद कैम्पबेल की सेना लखनऊ पहुंची। अहमदशाह ने फिर सेना का नेतृत्व ग्रहण किया। जितनी बार भारतीय सेना ने आलमबाग़ पर हमला किया मौलवी अहमदशाह अपने घोड़े या हाथी के ऊपर सदा सबसे आगे लड़ता हुआ दिखाई पड़ता था।

15 जनवरी, सन् 1858 के संग्राम में मौलवी अहमदशाह के एक हाथ में गोली लगी। 17 जनवरी को क्रान्तिकारियों का एक और मुख्य सेनापति, विदेही हनुमान, घायल होकर पकड़ा गया। इसी समय राजा बालकृष्णसिंह की भी मृत्यु हो गई। 15 फरवरी को हाथ का घाव कुछ अच्छा होते ही अहमदशाह फिर मैदान में आया। कुछ समय बाद स्वयं बेगम हज़रतमहल शस्त्र धारण कर, घोड़े पर चढ़ कर युद्ध के मैदान में उतर आई। किन्तु आपसी प्रतिस्पर्धा और अव्यवस्था ने अब भी लखनऊ की क्रान्तिकारी सेना का साथ न छोड़ा।

शहर की मोर्चेबन्दी

जिस समय सर कालिन कैम्पबेल आलमबाग़ पहुंचा, उस समय तक लखनऊ का सारा शहर क्रान्तिकारियों के हाथों में था। शहर के बाहर आलमबाग में अंगरेजी

---

* "A man fitted both by his spirit and his capacity to support a great cause and to command a great army. This was Ahmadullah—The Moulvi of Fyazabad."—Holmes' *The Sepoy War.*

सेना थी, और शहर के अन्दर क्रान्तिकारियों की तरफ तीस हजार बाजाब्ता हिन्दोस्तानी सिपाही और पचास हज़ार सशस्त्र स्वयंसेवक जमा थे।* एक-एक गली और एक-एक बाजार में नाकेबन्दी और मोर्चेबन्दी हो रही थी। हर घर की दीवारों में बन्दूकों के लिए सूराख़ बने हुए थे। हर मोरचे के ऊपर तोपें लगी हुई थीं। महल के चारों तरफ़ तोपें थीं। नगर के उत्तर में गोमती नदी थी। बाक़ी तीनों तरफ मज़बूत किलेबन्दी थी।

तीसरी बार लखनऊ में खून की नदियां

कैम्पबेल के अधीन उस समय गोरी और हिन्दोस्तानी मिला कर क़रीब चालीस हज़ार अभ्यस्त सेना थी। इससे पहले अंगरेज़ों ने जितने हमले लखनऊ पर क़िए थे, उनमें से कोई भी उत्तर की ओर से न हुआ था। सबसे पहले 6 मार्च को ऊटरम ने उस ओर से हमले की तैयारी शुरू की। सर कालिन कैम्पबेल के पहुंचने के बाद उत्तर और पूरब दो ओर से हमला शुरू हो गया। 6 मार्च से 15 मार्च तक खूब घमासान संग्राम होता रहा। तीसरी बार लखनऊ की गलियों में खून की नदियां बहने लगीं। अन्त में दिल्ली के समान ही लखनऊ का भी पतन हुआ। अंगरेज़ी सेना ने एक दूसरे के बाद दिलखुशबाग, क़दमरसूल, शाहनजफ, बेगमकोठी इत्यादि मोर्चों पर क़ब्ज़ा कर लिया। 10 मार्च को वह हडसन, जिसने दिल्ली के शहज़ादों का खून पिया था, लखनऊ के संग्राम में मारा गया। 14 मार्च को अंगरेज़ी सेना ने लखनऊ के महल में प्रवेश किया।

इतिहास लेखक विलसन लिखता है कि उस दिन की विजय का मुख्य श्रेय "सिखों और दस नम्बर पलटन" को मिलना चाहिए।

शहादतगंज का संग्राम

बेगम हज़रतमहल, नवाब बिरज़ीस क़दर और मौलवी अहमदशाह, तीनों शहर से निकल गए। अहमदशाह ने थोड़ा-सा चक्कर देकर अपने मुट्ठी भर आदमियों सहित फिर एक बार दूसरी तरफ से लखनऊ में प्रवेश किया। लखनऊ के मोहल्ले शहादतगंज में पहुंच कर अहमदशाह ने नये सिरे से विजयी अंगरेज़ी सेना से मोर्चा लिया। अहमदशाह के पास इस समय केवल दो तोपें रह गई थीं। दो पलटनें अहमदशाह के मुकाबले के लिए भेजी गईं। अंगरेज़ इतिहास लेखक लिखते हैं कि मौलवी अहमदशाह ने उस दिन अपूर्व वीरता के साथ युद्ध किया, शत्रु को अगणित जानों की हानि पहुंचाई, और अन्त में विजय असम्भव देख वह फिर लखनऊ से निकल गया। शहादतगंज की लड़ाई लखनऊ की अन्तिम लड़ाई थी। अंगरेज़ी सेना ने 6 मील तक अहमदशाह का पीछा किया, किन्तु अहमदशाह हाथ न आया। लखनऊ के सारे शहर पर अब अंगरेज़ कम्पनी का क़ब्ज़ा हो गया।

कत्लेआम

लखनऊ के पतन के बाद कम्पनी की सेना ने लखनऊ निवासियों के साथ जिस

---

* Sir Hope Grant.

तरह का व्यवहार किया, वह सार्वजनिक लूट और सार्वजनिक संहार, इन दो शब्दों में ही बयान किया जा सकता है। लेफ्टिनेण्ट माजेण्डी लिखता है कि लखनऊ के अन्दर उस समय के क़त्लेआम में किसी तरह की तमीज़ नहीं की गई।*

क्रूर यातनाएं

हत्या से पहले जिस तरह की क्रूर यातनाएं लोगों को दी गई, उसकी कई मिसालें रसल ने अपनी पुस्तक में दी हैं। इन में से केवल एक हम नीचे देते हैं—

> "कुछ सिपाही अभी जीवित थे और उन्हें दया करके मार डाला गया। किन्तु इनमें से एक को खींच कर मकान से बाहर रेतीले मैदान में लाया गया। उसे टांगों से पकड़ कर खींचा गया, एक सुविधा की जगह लाया गया। कुछ अंगरेज सिपाहियों ने उसके मुंह और शरीर में संगीने भोंक कर उसे लटकाए रखा। दूसरे लोग एक छोटी-सी चिता के लिए ईंधन जमा कर लाए; जब सब तैयार हो गया, तो उसे जिन्दा भून दिया गया। इस काम के करने वाले अंगरेज थे, और कई अफ़सर खड़े देखते रहे, किन्तु किसी ने दखल न दिया। इस नारकीय अत्याचार की विभत्सता उस समय और भी अधिक बढ़ गई, जब कि उस अभागे दुखिए ने अधजली और जिन्दा हालत में भागने का प्रयत्न किया। अचानक जोर लगा कर वह चिता से कूद पड़ा। उसके शरीर का मांस हड्डियों से लटक रहा था। वह कुछ गज़ दौड़ा फिर पकड़ लिया गया, वापस लाया गया, फिर आग पर रख दिया गया और जब तक राख नही गया, संगीनों से दबा कर रखा गया।" †

बेगम हज़रतमहल की इनसानियत

इसके मुक़ाबले में अंगरेज़ क़ैदियों के साथ बेगम हज़रतमहल का व्यवहार बिलकुल दूसरे ढंग का था। शुरू के दिनों में, जब कि लखनऊ के अन्दर क्रान्तिकारियों का पल्ला भारी था, कुछ अंगरेज़ पुरुष और स्त्री लखनऊ में क़ैद कर लिए गए थे। किन्तु छः महीने तक इनकी जान पर कोई हमला नहीं किया गया। जिस समय कम्पनी की सेना ने नगर में घुस कर दोषी और निर्दोष सबका एक समान संहार प्रारम्भ किया, कुछ क्रुद्ध

---

* Lieut. Majendie's *Up Among the Pandies*, pp. 195, 196.

† "Some of the Sepoys were still alive and they were mercifully killed; but one of their number was dragged out the sandy plain outside the house; he was pulled by his legs to a convenient place, where he was held down, pricked in the face and body by the bayonets of some of the soldiery, while others collected fuel for small pyre; and when everything was ready—the man was roasted alive! These were Englishmen, and more than one officer saw it; no one offered to interfere! The horrors of this infernal cruelty were aggravated by the attempt of the miserable wretch to escape when half burnt to death. By a sudden effort he leaped away and, with the flesh of his body hanging from his bones, ran for a few yards ere he was caught, brought back, put on the fire again, and held there by bayonets, till his remains were consumed!"—Russell's *Diary*, p. 302.

क्रान्तिकारियों ने महल में जाकर बेगम से प्रार्थना की कि अंगरेज़ क़ैदियों को हमारे हवाले कर दीजिए। बेगम ने सात या आठ अंगरेज़ पुरुषों को उनके हवाले कर दिया। उन्हें तुरन्त गोली से उड़ा दिया गया। किन्तु जब कुछ क्रान्तिकारियों ने ज़िद की कि क़ैदी अंगरेज़ स्त्रियों को भी मार डाला जाय, तो बेगम ने इनकार कर दिया। इतिहास लेखक चार्ल्स बाल लिखता है—

> "स्त्रियों के बारे में बेगम ने उन लोगों की मांग को पूरा करने से ज़ोरों के साथ इनकार कर दिया। बेगम ने तुरन्त महल के जनानखाने के अन्दर उन अंगरेज स्त्रियों को अपने संरक्षण में ले लिया। बेगम का यह काम स्त्री जाति के मान को बढ़ाने वाला था।"*

लखनऊ की बेगमें

कम्पनी की सेना ने महल में घुस कर भी लूट और क़त्लेआम जारी रखा। महल के ज़नानखानों के अन्दर अनेक स्त्रियां मारी गईं। बाक़ी स्त्रियां क़ैद कर ली गईं। महल की इन स्त्रियों के दिलों में भी अपने आन्दोलन की पवित्रता और उसकी अन्तिम विजय में पूर्ण विश्वास था। एक छोटी-सी घटना कई अंगरेज़ी इतिहासों में दी गई है। एक दिन क़ैदी बेगमों के अंगरेज़ पहरेदारों ने हंस कर उनसे पूछा—"क्या आपका यह ख़याल नहीं है कि अब यह जंग ख़त्म हो गई?" बेगमों ने उत्तर दिया—"नहीं! इसके ख़िलाफ़ हमें पूरा यक़ीन है कि आखिर में तुम्हारी ही हार होगी।" †

लखनऊ के पतन के बाद भी अवध के कई भागों और हिन्दोस्तान के अनेक प्रान्तों में युद्ध बराबर जारी रहा।

बिहार में क्रान्ति का आयोजन

बिहार में सन् 57 का संगठन अवध और दिल्ली जैसा न था, फिर भी उस प्रान्त में क्रान्ति के कई बड़े-बड़े केन्द्र थे। विशेषकर पटना में एक ज़बरदस्त केन्द्र था, जिसकी शाखाएं प्रान्त में चारों ओर फैली हुई थीं। सन् 57 से पहले पटना में अनेक गुप्त सभाएं हुआ करती थीं। वहां की पुलिस इस संगठन में शामिल थी। लिखा है कि पटना के केन्द्र के पास धन की कमी न थी। सैकड़ों वैतनिक और अवैतनिक प्रचारक चारों ओर गांव में क्रान्ति का प्रचार करते हुए फिरते थे। वहां के नेताओं का दिल्ली, लखनऊ और कानपुर के नेताओं के साथ गुप्त पत्र-व्यवहार जारी था।

अंगरेज़ों को जब पटना वालों के गुप्त इरादों का सुराग़ मिला, तो कुछ सिख सेना पटना की रक्षा के लिए भेजी गई। लिखा है कि नगर के लोगों ने इस सिख सिपाहियों से घृणा प्रकट करने के लिए उनके साए तक से बचना शुरू किया।

---

* "To the honour of womanhood, the demand was imperatively refused by the Begum so far as the females were concerned, and they were immediately taken under her care in the Zenana of the palace."—Charles Ball's *Indian Mutiny*, vol. ii, p. 94.

† *Narrative of the Indian Mutiny*, p. 348, Russell's *Diary*, p. 400.

जिला तिरहुत के एक पुलिस जमादार, वारिसअली, को क्रान्ति के सन्देह पर गिरफ्तार कर फांसी दे दी गई। वारिसअली के पत्रों में एक पत्र गया के नेता अली क़रीम के नाम का पकड़ा गया। कम्पनी की फौज का एक दस्ता अली क़रीम को गिरफ्तार करने के लिए भेजा गया। अली क़रीम अपने हाथी पर बैठ कर देहात चला गया। कम्पनी की फौज ने उसका पीछा किया। किन्तु आसपास के गांव वाले अली क़रीम से मिले हुए थे। उन्होंनें कम्पनी के सिपाहियों को धोखा देकर गलत राह पर डाल दिया और अंगरेज दस्ते को असफल आना पड़ा।

पटना के कमिश्नर टेलर को पता चला कि शहर के तीन प्रभावशाली मौलवी क्रान्ति के संगठन में शरीक हैं। टेलर ने उन तीनों को बातचीत के बहाने अपने घर बुलाया और धोखे से गिरफ्तार कर लिया।

3 जुलाई को पटना में कुछ विप्लव हुआ, किन्तु सिखों की सहायता से आसानी से दमन कर दिया गया। क्रान्तिकारियों का मुख्य नेता पीरअली फांसी पर चढ़ा दिया गया। लिखा है कि पीरअली को यातनाएं दे-देकर मारा गया। कमिश्नर टेलर स्वयं लिखता है कि पीरअली ने बड़ी वीरता और धार्मिक भाव के साथ यातनाओं और मृत्यु, दोनों का सामना किया। दानापुर में उस समय तीन हिन्दोस्तानी पलटन, एक गोरी पलटन और कुछ तोपखाना था। पीरअली की मृत्यु के बाद 25 जुलाई को दानापुर की देशी पलटनों ने स्वाधीनता का ऐलान कर दिया। ये पलटनें अब जगदीशपुर की ओर बढ़ीं।

राजा कुंवरसिंह

शाहाबाद के जिले में जगदीशपुर एक छोटी-सी पुरानी राजपूत रियासत थी। सम्राट शाहजहां के दरबार से जगदीशपुर की रियासत के मालिक को 'राजा' की उपाधि प्रदान हुई थी और उसी समय से चली आती थी। अब यह रियासत भी लार्ड डलहौजी की अपहरण नीति का शिकार हो चुकी थी। जगदीशपुर का राजा कुंवरसिंह आस-पास के इलाके में अत्यन्त सर्वप्रिय था। कुंवरसिंह की आयु उस समय 80 साल से ऊपर थीं। फिर भी कुंवरसिंह बिहार के क्रान्तिकारियों का प्रमुख नेता और सन् 57 के सबसे ज्वलन्त व्यक्तियों में से था।

आरा का मुहासरा

जिस समय दानापुर की क्रान्तिकारी सेना जगदीशपुर पहुंची, बूढ़े कुंवरसिंह ने तुरन्त अपने महल से निकल कर शस्त्र उठा कर इस सेना का नेतृत्व संभाला। कुंवरसिंह इस सेना सहित आरा पहुंचा। उसने आरा के अंगरेजी खज़ाने पर कब्जा किया, जेलखाने के कैदी रिहा कर दिए और अंगरेजी दफ्तरों को गिरा कर बराबर कर दिया। इसके बाद उसने आरा के छोटे-से किले को घेर लिया। किले के अन्दर थोड़े से अंगरेज और कुछ सिख सिपाही थे। लिखा है कि किले में पानी की कमी पड़ गई। तुरन्त किले के अन्दर के सिखों ने अंगरेज़ों की विपत्ति को देख कर 24 घंटे के अन्दर एक नया कुंआं खोद कर तैयार कर दिया। कुंवरसिंह ने कम्पनी की सेना से वादा किया कि यदि आप लोग किला

हमारे सुपुर्द कर देंगें, तो आप सबकी जान बख्श दी जायगी । किन्तु किले के भीतर की सेना ने स्वीकार न किया ।

किले के अन्दर के सिखों को कुंवरसिंह ने समझा-बुझा कर क्रान्ति के पक्ष में करना चाहा, किन्तु उसे सफलता न मिल सकी । तीन दिन तक आरा के किले का मोहासरा जारी रहा ।

आम के बाग का संग्राम

29 जुलाई को दानापुर कप्तान डनवर के अधीन करीब 300 गोरे सिपाही और 100 सिख आरा की सेना की मदद के लिए चले । आरा के निकट एक आम का बाग था । कुंवरसिंह ने अपने कुछ आदमी आम के वृक्षों की टहनियों में छिपा रखे थे । रात का समय था । जिस समय दानापुर की सेना ठीक के वृक्षों नीचे पहुंची, अंधेरे में ऊपर से गोलियां बरसनी शुरू हुईं । सुबह तक 415 आदमियों में से केवल 50 जिन्दा बच कर दानापुर की तरफ लौटे । कप्तान डनवर इसी आम के बाग में मारा गया ।

बीबीगंज का संग्राम

इसके बाद मेजर आयर एक बड़ी सेना और तोपों सहित किले के अंगरेज़ों की सहायता के लिए बढ़ा । 2 अगस्त को बीबीगंज के निकट कुंवरसिंह की सेना और मेजर आयर की सेना में संग्राम हुआ । एक बार अंगरेजी सेना के एक अफसर, कप्तान हेस्टिग्स, ने मेजर आयर से आकर कहा कि विजय हमारे हाथों से खिसकती हुई दिखाई देती है । किन्तु अन्त में मेजर आयर की ही विजय रही । कुंवरसिंह की सेना को पीछे हटना पड़ा और आठ दिन के मोहासरे के बाद आरा का नगर और किला फिर से अंगरेज़ों के हाथों में आ गया ।

कुंवरसिंह अब जगदीशपुर लौट आया । मेजर आयर ने अपनी विजयी सेना सहित उसका पीछा किया । कई दिन संग्राम होता रहा । अन्त ने मेजर आयर ने 14 अगस्त को जगदीशपुर के महल पर कब्जा कर लिया ।

बूढ़ा कुंवरसिंह बारह सौ सैनिकों और अपने महल की स्त्रियों को साथ लेकर जगदीशपुर से निकल गया । उसने अब किसी दूसरे स्थान पर जाकर अंगरेज़ों के साथ अपना बल आजमाने का निश्चय किया ।

मिलमैन की पराजय

यह वह समय था, जब कि कुछ गोरी और कुछ गोरखा सेना आजमगढ़ की तरफ से अवध में प्रवेश कर रही थीं । 18 मार्च सन् 1858 को आसपास के दूसरे क्रान्तिकारियों को अपने साथ लेकर कुंवरसिंह ने आजमगढ़ से 25 मील दूर अतरौलिया नामक स्थान पर डेरा डाला । जिस समय अंगरेज़ों को यह समाचार मिला तुरन्त मिलमैन के अधीन कुछ पैदल कुछ सवार और दो तोपें 22 मार्च सन् 1858 को कुंवरसिंह के मुकाबले के लिए पहुंची । उसी दिन अतरौलिया के मैदान में दोनों तरफ की सेनाओं का आमना-सामना हुआ । थोड़ी देर बाद कुंवरसिंह अपनी सेना सहित जोरों के साथ

पीछे हटने लगा । अंगरेज सेना समझ गई कि कुंवरसिंह हार कर मैदान से भाग गया । विजय की खुशी में मिलमैन ने अपनी सेना को एक आम के वगीचे में ठहर कर भोजन करने की आज्ञा दी । किन्तु कुंवरसिंह उस जंगल की एक-एक चप्पा भूमि से परिचित था । इस बुढ़ापे में ही वह अत्यन्त फुरतीला था । ठीक उस समय जब कि मिलमैन की सेना भोजन कर रही थी, कुंवरसिंह अचानक उस पर आ टूटा । थोड़ी देर के संग्राम के बाद मैदान पूरी तरह कुंवरसिंह के हाथ में रहा । मिलमैन के अनेक सिपाही काम आए और बाकी ने अतरौलिया से भाग कर कौशिला में आश्रय लिया । कुंवरसिंह ने मिलमैन का पीछा किया । मिलमैन के हिन्दोस्तानी नौकरों ने इस समय उसका साथ छोड़ दिया । लिखा है कि वे कम्पनी की सेना के वैलों और गाड़ियों समेत इधर-उधर भाग गए, बाकी असवाव और तोपें कुंवरसिंह के हाथ लगीं । मिलमैन अपने रहे-सहे आदमियों सहित आजमगढ़ की ओर निकल गया ।

डेम्स की पराजय

एक दूसरी अंगरेज सेना कर्नल डेम्स के अधीन बनारस और गाजीपुर से चल कर मिलमैन की सहायता के लिए आजमगढ़ पहुंची । 28 मार्च को यह संयुक्त सेना कर्नल डेम्स के अधीन फिर कुंवरसिंह के मुकावले के लिए निकली । आजमगढ़ से कुछ दूर कुंवरसिंह और कर्नल डेम्स में संग्राम हुआ । कुंवरसिंह ने फिर एक बार पूरी विजय प्राप्त की । कर्नल डेम्स को मैदान से भाग कर आजमगढ़ के किले में आश्रय लेना पड़ा । विजयी कुंवरसिंह ने आजमगढ़ नगर में प्रवेश किया ।

लार्ड कैनिंग की घबराहट

आजमगढ़ को विजय कर अपनी सेना के एक दल को आजमगढ़ के किले के मोहासरे के लिए छोड़कर कुंवरसिंह अव बनारस की तरफ वढ़ा । लार्ड कैनिंग उस समय इलाहावाद में था । इतिहास लेखक मालेसन लिखता है कि कुंवरसिंह की विजयों और उसके बनारस पर चढ़ाई करने की खबर सुन कर कैनिंग घबरा गया ।

लार्ड मार्क की पराजय

कुंवरसिंह अपनी राजधानी जगदीशपुर से 100 मील से ऊपर निकल आया था और अब बनारस के ठीक उत्तर में था । लखनऊ से भागे हुए अनेक क्रान्तिकारी इस समय कुंवरसिंह की सेना में आकर शामिल हो गए । लार्ड कैनिंग ने तुरन्त सेनापति लार्ड मार्क कर को सेना और तोपों सहित कुंवरसिंह के मुकावले के लिए भेजा । 6 अप्रैल को लार्ड मार्क कर की सेना और कुंवरसिंह की सेना में संग्राम हुआ । लिखा है कि उस दिन 81 साल का बूढ़ा कुंवरसिंह अपने सफेद घोड़े पर सवार ठीक घमासान लड़ाई के अन्दर बिजली की तरह इधर से उधर लपकता हुआ दिखाई दे रहा था । लार्ड मार्क कर हार गया । उसे अपनी तोपों सहित पीछे हटना पड़ा । लार्ड मार्क कर अब मदान छोड़ कर आजमगढ़ की तरफ बढ़ा । कुंवरसिंह ने उसका पीछा किया । सम्भव है कि या तो कुंवरसिंह का विचार इस समय कुछ बदल गया या वह लार्ड मार्क कर की चाल में

आ गया। इतिहास लेखक मालेसन लिखता है कि कुंवरसिंह का इस समय वनारस आने का विचार छोड़ कर आजमगढ़ की ओर लार्ड मार्क कर का पीछा करना वहुत बड़ी भूल थी।

लार्ड मार्क कर ने अपने बचे हुए आदमियों सहित आजमगढ़ के किले में आश्रय लिया। आज़मगढ़ का शहर क्रांतिकारियों के हाथों में था। कुंवरसिंह ने लार्ड मार्क कर और उसको सेना को किले में कैद कर किले का मोहासरा शुरू कर दिया।

कुंवरसिंह का युद्ध कौशल

पश्चिम की तरफ से अव सेनापति लगर्ड एक दूसरी अंगरेजी सेना लेकर लार्ड मार्क कर की सहायता के लिए आज़मगढ़ की तरफ वढ़ा। कुंवरसिंह को इसका पता चल गया। कुंवरसिंह ने सबसे पहले आजमगढ़ छोड़कर गाजीपुर जाने और वहां से गंगा पार कर जगदीशपुर पहुंचने और फिर से अपनी पैतृक रियासत विजय करने का इरादा किया। इसके लिए कुंवरसिंह ने एक सुन्दर चाल चली।

लगर्ड की सेना तानू नदी के पुल पर से आजमगढ़ आने वाली थी। कुंवरसिंह ने अपनी सेना का एक दल उस पुल पर लगर्ड की सेना का मुकावला करने के लिए भेज दिया। अपनी बाकी सेना सहित कुंवरसिंह गाजीपुर की तरफ वढ़ा। यह छोटा-सा सैन्य दल पुल के ऊपर वीरता के साथ लगर्ड की सेना का मुकावला करता रहा। जव इस दल को पता चला कि मुख्य सेना काफी दूर निकल गई, तव वह धीरे-धीरे पीछे हट कर उस सेना से जा मिला। लगर्ड को कुंवरसिंह की इस चाल का पता न चल सका। इतिहास लेखक मालसेन ने कुंवरसिंह को इस चाल और तानू नदी के ऊपर लड़ने वाले कुंवरसिंह के सिपाहियों की वीरता, दोनों की खूब प्रशंसा की है। इसके वाद लगर्ड की सेना ने बारह मील तक कुंवरसिंह का पीछा किया, किन्तु कुंवरसिंह हाथ न आ सका।

लगर्ड की पराजय

इतने में ही जरा-सा चक्कर देकर कुंवरसिंह ने स्वयं अचानक लगर्ड की सेना पर हमला किया। कम्पनी के कई अफ़सर और अनेक सिपाही मारे गए। अन्त में कम्पनी की सेना को हार मानकर पीछे हट जाना पड़ा और कुंवरसिंह गंगा की तरफ वढ़ा।

डगलस की पराजय

एक और अंगरेजी सेना सेनापति डगलस के अधीन कुंवरसिंह को परास्त करने के लिए बढ़ा। नघई नामक गांव के निकट डगलस और कुंवरसिंह की सेनाओं में संग्राम हुआ। कुंवरसिंह ने इस समय अपनी सेना के तीन दल बनाए। एक दल ने डगलस का मुकावला किया। वाकी दोनों दल घूम कर आगे बढ़ गए। पहला दल जोरों के साथ डगलस की सेना से लड़ता रहा। डगलस के मुकाबले में इस दल की तादाद कम थी। चार मील तक डगलस इस दल को दबाता चला गया। अन्त में ज्यों ही डगलस की सेना थक कर रुकी, और दूसरे दोनों दल और रास्तों से घूम कर उस पर टूट पड़े। पराजित डगलस को पीछे जाना पड़ा।

कुंवरसिंह की संयुक्त सेना गंगा की तरफ बढ़ी। डगलस की सेना ने फिर उसका पीछा किया किन्तु व्यर्थ। कुंवरसिंह अपनी सेना सहित आश्चर्यजनक वेग के साथ चल कर सिकन्दरपुर पहुंचा। उसने घाघरा नदी पार की और मनोहर ग्राम में आकर कुछ देर के लिए विश्राम किया।

मनोहर ग्राम में डगलस की सेना ने फिर कुंवरसिंह पर हमला किया। कुंवरसिंह के कुछ हाथी, कुछ बारूद और कुछ रसद का सामान डगलस के हाथ आया। कुंवरसिंह ने फिर अपनी सेना के कई छोटे-छोटे दल बनाए और उन सबको अलग-अलग रास्तों से चल कर एक नियत स्थान पर मिलने की आज्ञा दी। डगलस के लिए इन अलग-अलग दलों का पीछा कर सकना असम्भव हो गया। कुंवरसिंह की सारी टुकड़ियां आगे चल कर मिल गईं और गंगा की तरफ बढ़ चलीं।

कुंवरसिंह गोली से घायल

गंगा के पास पहुंच कर कुंवरसिंह ने यह अफवाह उड़ा दी कि कुंवरसिंह की सेना बलिया के निकट हाथियों पर गंगा पार करेगी। अंगरेज़ी सेना उसी स्थान पर जाकर कुंवरसिंह को रोकने के लिए डट गई। किन्तु कुंवरसिंह उस स्थान से सात मील नीचे शिवपुर घाट से रात्रि के समय किश्तियों में गंगा को पार कर रहा था। अंगरेज़ी सेना को जब इस चाल का पता लगा, वह शिवपुर पहुंची। कुंवरसिंह की सारी सेना गंगा पार कर चुकी थी। केवल एक अन्तिम किश्ती रह गई थी। कुंवरसिंह इसी किश्ती में था। ठीक जिस समय कुंवरसिंह की किश्ती बीच धार में थी, अंगरेज़ी सेना के किसी सिपाही की गोली कुंवरसिंह की दाहिनी कलाई में आकर लगी। 81 साल के बूढ़े कुंवरसिंह ने यह देख कर कि दाहिना हाथ निकम्मा हो गया और शरीर में विष फैल जाने का डर है, बाएं हाथ से तलवार खींच कर अपने घायल दाहिने हाथ को खुद एक वार में कुहनी पर से काट कर गंगा में फेंक दिया। घाव पर कपड़ा लपेट कर कुंवरसिंह ने गंगा को पार किया। अंगरेज़ी सेना गंगा के उस पार उसका पीछा न कर सकी।

कुंवरसिंह का जगदीशपुर में प्रवेश

गंगा के उस पार कुछ दूरी पर जगदीशपुर की राजधानी थी। आठ महीने पहले कुंवरसिंह को जगदीशपुर से निकल जाना पड़ा था। इन आठ महीनों तक जगदीशपुर अंगरेज़ी सेना के कब्ज़े में रहा। 22 अप्रैल को राजा कुंवरसिंह ने फिर जगदीशपुर में प्रवेश किया। कुंवरसिंह के भाई अमरसिंह ने पहले से कुछ स्वयंसेवकों का एक दल कुंवरसिंह की सहायता के लिए जमा कर रखा था। जगदीशपुर पर फिर से कुंवरसिंह का कब्ज़ा हो गया।

लीग्रैण्ड की पराजय

आरा के अंगरेज़ अफ़सर चकित हो गए। 23 अप्रैल को लीग्रैण्ड के अधीन कम्पनी की सेना जगदीशपुर पर दोबारा हमला करने के लिए आरा से चली। आठ

महीने कुंवरसिंह और उसकी सेना के लगातार संग्राम और कठिन यात्रा में बीते थे। जगदीशपुर पहुंचे उसे अभी 24 घण्टे भी न हुए थे। कुंवरसिंह का दाहिना हाथ कट चुका था। उसके पास सेना भी एक हज़ार से अधिक न थी; उसके मुकाबले में लीग्रैण्ड की सेना सुसज्जित और ताज़ा थी। तोपें भी इस सेना के साथ थीं। कुंवरसिंह के पास उस समय कोई तोप न थी। जगदीशपुर से डेढ़ मील के फासले पर लीग्रैण्ड और कुंवरसिंह की सेना में संग्राम हुआ: लीग्रैण्ड की सेना में कुछ अंगरेज और अधिकांश सिख थे। किन्तु मैदान फिर पूरी तरह कुंवरसिंह के हाथों में रहा। उस दिन की पराजय को बयान करते हुए एक अंगरेज अफ़सर, जो संग्राम में शामिल था, लिखता है—

> "वास्तव में, इसके बाद जो कुछ हुआ, उसे लिखते हुए मुझे अत्यंत लज्जा आती है। लड़ाई का मैदान छोड़ कर हमने जंगल में भागना शुरू कर लिया। शत्रु हमें बराबर पीछे से पीटता रहा। हमारे सिपाही प्यास से मर रहे थे। एक निकृष्ट गन्दे छोटे-से पोखर को देख कर वे घबरा कर उसकी तरफ लपके। इतने में कुंवरसिंह के सवारों ने हमें पीछे से आ दबाया। इसके बाद हमारी जिल्लत की कोई हद न रही। हमारी विपत्ति चरम सीमा को पहुंच गई। हममें से किसी में शर्म तक न रही। जहां जिसको कुशल दिखाई दी, वह उसी ओर भागा। अफ़सरों की आज्ञाओं की किसी ने परवा न की। व्यवस्था और क़वायद का अन्त हो गया। चारों ओर आहों, श्रापों और रोने के सिवा कुछ सुनाई न देता था। मार्ग में अंग्रेजों के गिरोह के गिरोह मारे, किसी को दवा मिल सकना भी असम्भव था, क्योंकि हमारे अस्पताल पर कुंवरसिंह ने पहले ही कब्जा कर लिया था। कुछ वहीं गिर कर मर गए, बाकी को शत्रु ने काट डाला। हमारे कहार डोलियां रख-रख कर भाग गए। सब घबराए हुए थे, सब डरे हुए थे। सोलह हाथियों पर केवल हमारे घायल साथी लदे हुए थे। स्वयं जनरल लीग्रैण्ड की छाती में एक गोली लगी और वह मर गया। हमार सिपाही अपनी जान लेकर पांच मील से ऊपर दौड़ चुके थे। उनमें अब अपनी बन्दूक उठाने तक की शक्ति न रह गई थी। सिखों को वहां की धूप की आदत थी। उन्होंने हम से हाथी छीन लिए और हमसे आगे भाग गए। गोरों का किसी ने साथ न दिया। 199 गोरों में से केवल 80 इस भयंकर संहार से जिन्दा बच सके! हमारा इस जंगल में जाना ऐसा ही हुआ, जैसा पशुओं का कसाईखाने में जाना। हम वहां केवल वध के लिए गए थे।"*

इतिहास लेखक ह्वाइट लिखता है—"इस अवसर पर अंगरेज़ों ने पूरी और बुरी से बुरी हार खाई।" †

अंगरेज़ी सेना की सब तोपें और असबाब कुंवरसिंह के हाथ आया।

---

* Charles Ball's *Indian Mutiny*, vol. ii, p. 288.

† "The English sustained on this occasion a complete defeat of the worst kind."—White's *History of the Mutiny*.

कुंवरसिंह की मृत्यु

इस तरह 23 अप्रैल, सन् 1858 को विजयी कुंवरसिंह फिर से अपनी पैतृक रियासत पर शासन करने लगा। किन्तु कुंवरसिंह के हाथ का घाव अभी तक अच्छा न हुआ था। उस घाव के ही कारण 26 अप्रैल, सन् 1858 को अपने महल के अन्दर राजा कुंवरसिंह की मृत्यु हो गई। कुंवरसिंह की मृत्यु के समय स्वाधीनता का हरा झण्डा उसकी राजधानी के ऊपर फहरा रहा था और अंगरेज कम्पनी के आधिपत्य से वह अपनी रियासत और प्रजा, दोनों को सर्वथा स्वाधीन कर चुका था। इतिहास लेखक होम्स लिखता है—

> "उस बूढ़े राजपूत को, जो ब्रिटिश सत्ता के विरुद्ध इतनी बहादुरी और आन के साथ लड़ा, 26 अप्रैल, सन् 1858 को मृत्यु हुई।"*

कुंवरसिंह का चरित्र

कुंवरसिंह का व्यक्तिगत चरित्र अत्यन्त पवित्र था, उसका जीवन परहेजकारी का था। यहां तक कि, लिखा है, उसके राज में कोई मनुष्य इस डर से कि कहीं कुंवरसिंह देख न ले, खुले तौर पर तम्बाकू तक न पीता था। उसकी सारी प्रजा उसका बड़ा आदर करती थी और उससे प्रेम करती थी। युद्धकौशल में वह अपने समय में अद्वितीय था।

राजा अमरसिंह

कुंवरसिंह के वाद उसका छोटा भाई अमरसिंह जगदीशपुर की गद्दी पर वैठा। अमरसिंह ने वड़े भाई के मरने के वाद चार दिन भी विश्राम नहीं किया। केवल जगदीशपुर की रियासत पर अपना अधिकार बनाए रखने से भी वह सन्तुष्ट न रहा। उसने तुरन्त अपनी सेना को फिर से एकत्र कर आरा पर चढ़ाई की। लीग्रैण्ड की सेना की पराजय के वाद जनरल डगलस और जनरल लगर्ड की सेनाएं भी गंगा को पार कर आरा की सहायता के लिए पहुंच चुकी थीं। 3 मई को राजा अमरसिंह की सेना के साथ डगलस और लगर्ड की सेनाओं का पहला संग्राम हुआ। उसके वाद बिहिया हातमपुर, दलीलपुर, इत्यादि अनेक स्थानों पर दोनों सेनाओं में अनेक संग्राम हुए। अमरसिंह ठीक उसी तरह की युद्धनीति द्वारा अंगरेजी सेना को बार-बार हराता और हानि पहुंचाता रहा, जिस तरह की युद्धनीति में कुंवरसिंह निपुण था। निराश होकर 15 जून को जनरल लगर्ड ने इस्तीफा दे दिया। लड़ाई का भार अब जनरल डगलस पर पड़ा। डगलस के साथ सात हज़ार सेना थी। डगलस ने अमरसिंह को परास्त करने की कसम खाई। किन्तु जून, जुलाई, अगस्त और सितम्बर के महीने बीत गए, अमरसिंह परास्त न हो सका। इस बीच विजयी अमरसिंह ने आरा में प्रवेश किया और जगदीशपुर की रियासत पर अपना आधिपत्य जमाए रखा। जनरल डगलस ने कई बार हार खाकर यह ऐलान कर दिया कि जो मनुष्य किसी तरह भी अमरसिंह का

---

*"The old Rajput who had fought so honourably and so bravely against the British power died on April 26th, 1858."—*History of the Sepoy War* by *Holmes.*

सिर लाकर पेश करेगा, उसे बहुत बड़ा इनाम दिया जायगा, किन्तु इससे भी काम न चल सका ।

जगदीशपुर पर सात तरफ़ से हमला

सात तरफ़ से विशाल सेनाओं ने एक साथ जगदीशपुर पर हमला किया । 17 अक्तूबर को इन सेनाओं ने जगदीशपुर को चारों तरफ से घेर लिया । अमरसिंह ने देख लिया कि इस विशाल सैन्य दल पर विजय प्राप्त कर सकना असम्भव है । वह तुरन्त अपने थोड़े से सिपाहियों सहित मार्ग चीरता हुआ अंगरेज़ी सेना के बीच से निकल गया । जगदीशपुर पर फिर कम्पनी का कब्जा हो गया, किन्तु अमरसिंह हाथ न आ सका ।

नौनदी का संग्राम

कम्पनी की सेना ने अमरसिंह का पीछा किया । 19 अक्तूवर, को नौनदी नामक गांव में इस सेना ने अमरसिंह को घेर लिया । अमरसिंह के साथ केवल चार सौ सिपाही थे । इन चार सौ में से तीन सौ ने नौनदी के संग्राम में लड़ कर प्राण दिए । बाक़ी सौ ने कम्पनी की सेना को एक बार पीछे हटा दिया । इतने में और सेना अंगरेज़ों की मदद के लिए पहुंच गई । अमरसिंह के सौ आदमियों ने अपनी जान हथेली पर रखकर युद्ध किया । अन्त में अमरसिंह और उसके दो और साथी मैदान से निकल गए । 97 वीर वहीं पर मरे । नौनदी के संग्राम में कम्पनी की तरफ मरने वालों और घायलों की तादाद इससे कहीं अधिक थी ।

कम्पनी की सेना ने फिर अमरसिंह का पीछा किया । एक बार कुछ सवार अमरसिंह के हाथी तक पहुंच गए । हाथी पकड़ लिया गया, किन्तु अमरसिंह कूद कर निकल गया ।

अमरसिंह का अन्त

अमरसिंह ने अब कैमूर के पहाड़ों में प्रवेश किया । शत्रु ने वहां पर भी उसका पीछा किया, किन्तु अमरसिंह ने हार स्वीकार न की । इसके बाद राजा अमरसिंह का कोई पता नहीं चलता ।

जगदीशपुर की वीर स्त्रियां

जगदीशपुर के महल की स्त्रियों ने भी शत्रु के हाथ में पड़ना गवारा न किया । लिखा है कि जिस समय महल की डेढ़ सौ स्त्रियों ने देख लिया कि अब शत्रु के हाथों में पड़ने के सिवाए कोई चारा नहीं, तो वे तोपों के मुंह के सामने खड़ी हो गईं और स्वयं अपने हाथ से फ़लीता लगा कर उन सबने अपने ऐहिक जीवन का अन्त कर दिया ।

अंगरेजों की विशाल सेना

लखनऊ के पतन के बाद क्रान्तिकारियों का कोई विशेष केन्द्र कहीं भी भारत में न

हा था । कम्पनी की सेनाएं इस समय चारों तरफ़ फैलती जा रही थीं । पलटनों पर पलटनें इंगलिस्तान से भरती हो-होकर भारत आ रही थीं । विशाल भारतीय साम्राज्य को अपने हाथों से खिसकता देख कर इंगलिस्तान के शासकों ने उस समय अपनी सारी शक्ति भारतीय क्रान्ति के दमन करने में रखी थी । 1 अप्रैल, सन् 1858 को कम्पनी की हिन्दोस्तानी सेना और देशी रियासतों की सेनाओं के अतिरिक्त कम्पनी के पास भारत में 96,000 गोरी सेना थी । अंगरेज़ क़ौम के बड़े से बड़े अनुभवी सेनापति भारत में मौजूद थे । दूसरी तरफ सिखों और गोरखों, दोनों ने अपनी पूरी शक्ति से अंगरेज़ों का साथ दिया । क्रान्तिकारियों के अन्दर अव्यवस्था बढ़ती जा रही थी । दिल्ली, कानपुर और लखनऊ जैसे केन्द्र हाथ से निकल चुके थे । इस परिस्थिति में अवध और रुहेलखण्ड के नेताओं ने इधर-उधर बिखरे हुए क्रान्तिकारियों के नाम यह आज्ञा प्रकाशित की—

> **"तुम लोग इन विधर्मियों की बाजाब्ता सेनाओं का खुले मैदान में सामना करने का प्रयत्न न करो, क्योंकि उनमें व्यवस्था हमसे बढ़ कर हैं और उनके पास बड़ी-बड़ी तोपें हैं । उनके आने-जाने पर निगाह रखो, दरियाओं के तमाम घाटों पर अपना पहरा रखो, उनके पत्र-व्यवहार को बीच में रोक दो, उनकी रसद को रोक लो, उनकी डाक और चौकियों को तोड़ दो और सदा उनके कैम्प के इधर-उधर फिरते रहो । फ़िरंगी को बिल्कुल चैन न लेने दो ।"***

इस आज्ञा के बारे में रसल लिखता है—"इस आम ऐलान से नेताओं की बुद्धिमत्ता का पता चलता है और यह पता चलता है कि इससे अधिक भयंकर युद्ध का हमें कभी भी सामना करना न पड़ा था ।"*

बारी की लड़ाई

मौलवी अहमदशाह लखनऊ से क़रीब तीस मील दूर, बारी नामक स्थान पर था । बेगम हज़रतमहल छै हजार सैनिकों सहित बिटावली में थी । होप ग्राण्ट तीन हजार सेना और तोपखानें सहित लखनऊ से बारी की ओर बढ़ा । मौलवी अहमदशाह को पता चला । उसने बारी से चार मील दूर एक गांव में अपनी पैदल सेना को नियुक्त किया और सवार सेना को किसी दूसरी जगह छिपा दिया । उसकी चाल यह थी कि कम्पनी की सेना इस गांव पर हमला करे, अहमदशाह की पैदल सेना उसका मुकाबला करे और उसके सवार अचानक पीछे से आकर कम्पनी की सेना को घेर लें । मौलवी स्वयं पैदल सेना के साथ रहा । सवारों को आज्ञा थी कि जिस समय तक पैदल सेना के साथ अंगरेज़ों की लड़ाई शुरू न हो जाय, तुम अपने-आप को छिपाए रखना, किन्तु ऐन मौके पर अधीर सवारों ने अहमदशाह की आज्ञा के विरुद्ध अंगरेज़ी सेना को सामने देखते ही अपने स्थान से निकल कर उस पर हमला कर दिया । इस अव्यवस्था का नतीजा यह हुआ कि थोड़ी-सी लड़ाई के बाद अहमदशाह को उस गांव से निकल कर भाग जाना पड़ा और बारी का मैदान अंगरेज़ों के हाथ रहा ।

---

*Russell's *Diary*, p. 276.

सिर लाकर पेश करेगा, उसे बहुत बड़ा इनाम दिया जायगा, किन्तु इससे भी काम न चल सका ।

जगदीशपुर पर सात तरफ़ से हमला

सात तरफ़ से विशाल सेनाओं ने एक साथ जगदीशपुर पर हमला किया । 17 अक्तूबर को इन सेनाओं ने जगदीशपुर को चारों तरफ से घेर लिया । अमरसिंह ने देख लिया कि इस विशाल सैन्य दल पर विजय प्राप्त कर सकना असम्भव है । वह तुरन्त अपने थोड़े से सिपाहियों सहित मार्ग चीरता हुआ अंगरेज़ी सेना के बीच से निकल गया । जगदीशपुर पर फिर कम्पनी का कब्जा हो गया, किन्तु अमरसिंह हाथ न आ सका ।

नौनदी का संग्राम

कम्पनी की सेना ने अमरसिंह का पीछा किया । 19 अक्तूबर, को नौनदी नामक गांव में इस सेना ने अमरसिंह को घेर लिया । अमरसिंह के साथ केवल चार सौ सिपाही थे । इन चार सौ में से तीन सौ ने नौनदी के संग्राम में लड़ कर प्राण दिए । बाक़ी सौ ने कम्पनी की सेना को एक बार पीछे हटा दिया । इतने में और सेना अंगरेज़ों की मदद के लिए पहुंच गई । अमरसिंह के सौ आदमियों ने अपनी जान हथेली पर रखकर युद्ध किया । अन्त में अमरसिंह और उसके दो और साथी मैदान से निकल गए । 97 वीर वहीं पर मरे । नौनदी के संग्राम में कम्पनी की तरफ मरने वालों और घायलों की तादाद इससे कहीं अधिक थी ।

कम्पनी की सेना ने फिर अमरसिंह का पीछा किया । एक बार कुछ सवार अमरसिंह के हाथी तक पहुंच गए । हाथी पकड़ लिया गया, किन्तु अमरसिंह कूद कर निकल गया ।

अमरसिंह का अन्त

अमरसिंह ने अब कैमूर के पहाड़ों में प्रवेश किया । शत्रु ने वहां पर भी उसका पीछा किया, किन्तु अमरसिंह ने हार स्वीकार न की । इसके बाद राजा अमरसिंह का कोई पता नहीं चलता ।

जगदीशपुर की वीर स्त्रियां

जगदीशपुर के महल की स्त्रियों ने भी शत्रु के हाथ में पड़ना गवारा न किया। लिखा है कि जिस समय महल की डेढ़ सौ स्त्रियों ने देख लिया कि अब शत्रु के हाथों में पड़ने के सिवाए कोई चारा नहीं, तो वे तोपों के मुंह के सामने खड़ी हो गईं और स्वयं अपने हाथ से फ़लीता लगा कर उन सबने अपने ऐहिक जीवन का अन्त कर दिया ।

अंगरेज़ों की विशाल सेना

लखनऊ के पतन के बाद क्रान्तिकारियों का कोई विशेष केन्द्र कहीं भी भारत में न

रहा था। कम्पनी की सेनाएं इस समय चारों तरफ़ फैलती जा रही थीं। पलटनों पर पलटनें इंगलिस्तान से भरती हो-होकर भारत आ रही थीं। विशाल भारतीय साम्राज्य को अपने हाथों से खिसकता देख कर इंगलिस्तान के शासकों ने उस समय अपनी सारी शक्ति भारतीय क्रान्ति के दमन करने में रखी थी। 1 अप्रैल, सन् 1858 को कम्पनी की हिन्दोस्तानी सेना और देशी रियासतों की सेनाओं के अतिरिक्त कम्पनी के पास भारत में 96,000 गोरी सेना थी। अंगरेज़ क़ौम के बड़े से बड़े अनुभवी सेनापति भारत में मौजूद थे। दूसरी तरफ सिखों और गोरखों, दोनों ने अपनी पूरी शक्ति से अंगरेज़ों का साथ दिया। क्रान्तिकारियों के अन्दर अव्यवस्था बढ़ती जा रही थी। दिल्ली, कानपुर और लखनऊ जैसे केन्द्र हाथ से निकल चुके थे। इस परिस्थिति में अवध और रुहेलखण्ड के नेताओं ने इधर-उधर बिखरे हुए क्रान्तिकारियों के नाम यह आज्ञा प्रकाशित की—

> **"तुम लोग इन विधर्मियों की बाजाब्ता सेनाओं का खुले मैदान में सामना करने का प्रयत्न न करो, क्योंकि उनमें व्यवस्था हमसे बढ़ कर हैं और उनके पास बड़ी-बड़ी तोपें हैं। उनके आने-जाने पर निगाह रखो, दरियाओं के तमाम घाटों पर अपना पहरा रखो, उनके पत्र-व्यवहार को बीच में रोक दो, उनकी रसद को रोक लो, उनकी डाक और चौकियों को तोड़ दो और सदा उनके कैम्प के इधर-उधर फिरते रहो। फ़िरंगी को बिल्कुल चैन न लेने दो।"***

इस आज्ञा के बारे में रसल लिखता है—"इस आम ऐलान से नेताओं की बुद्धिमत्ता का पता चलता है और यह पता चलता है कि इससे अधिक भयंकर युद्ध का हमें कभी भी सामना करना न पड़ा था।"*

बारी की लड़ाई

मौलवी अहमदशाह लखनऊ से क़रीब तीस मील दूर, बारी नामक स्थान पर था। बेगम हज़रतमहल छै हजार सैनिकों सहित बिटावली में थी। होप ग्राण्ट तीन हजार सेना और तोपखानें सहित लखनऊ से बारी की ओर बढ़ा। मौलवी अहमदशाह को पता चला। उसने बारी से चार मील दूर एक गांव में अपनी पैदल सेना को नियुक्त किया और सवार सेना को किसी दूसरी जगह छिपा दिया। उसकी चाल यह थी कि कम्पनी की सेना इस गांव पर हमला करे, अहमदशाह की पैदल सेना उसका मुकाबला करे और उसके सवार अचानक पीछे से आकर कम्पनी की सेना को घेर लें। मौलवी स्वयं पैदल सेना के साथ रहा। सवारों को आज्ञा थी कि जिस समय तक पैदल सेना के साथ अंगरेज़ों की लड़ाई शुरू न हो जाय, तुम अपने-आप को छिपाए रखना, किन्तु ऐन मौके पर अधीर सवारों ने अहमदशाह की आज्ञा के विरुद्ध अंगरेज़ी सेना को सामने देखते ही अपने स्थान से निकल कर उस पर हमला कर दिया। इस अव्यवस्था का नतीजा यह हुआ कि थोड़ी-सी लड़ाई के बाद अहमदशाह को उस गांव से निकल कर भाग जाना पड़ा और बारी का मैदान अंगरेज़ों के हाथ रहा।

---

* Russell's *Diary*, p. 276.

कम्पनी की सेना के अनेक दल इस समय अवध और रुहेलखण्ड के क्रान्तिकारियों को उत्तर की तरफ खदेड़ते जा रहे थे ।

जनरल होप की मृत्यु

15 अप्रैल को वालपोल ने लखनऊ से 50 मील दूर, रुइया के क़िले पर हमला किया । रुइया के ताल्लुकेदार नरपतिसिंह के पास केवल 250 साधारण सिपाही थे। वालपोल के साथ कई हज़ार सेना और तोपें थीं । सामने से वालपोल के डेढ़ सौ आदमियों ने क़िले पर चढ़ाई की । क़िले की दीवारों से गोलियों की बौछार शुरू हुई । 46 अंगरेज़ वहीं पर मर गए, बाकी को पीछे हट जाना पड़ा । वालपोल ने अपनी तोपों सहित क़िले के दूसरी तरफ़ से गोलाबारी शुरू की । वालपोल के गोले क़िले के ऊपर से पार कर दूसरी ओर की अंगरेज़ी सेना पर जाकर गिरने लगे । वालपोल की घबराहट को देख कर जनरल होप आगे बढ़ा । होप मारा गया । सारी अंगरेज़ी सेना को ज़िल्लत के साथ हार खाकर क़िले से पीछे हट जाना पड़ा । जनरल होप अंगरेज़ों के मुख्यतम और अनुभवी सेनापतियों में से था । उसकी मृत्यु से भारत और इंगलिस्तान के अंगरेज़ों को बहुत बड़ा शोक हुआ । इस विजय के बाद भी नरपतिसिंह ने जब देख लिया कि मैं विशाल अंगरेज़ी सेना के मुकाबले इस छोटे-से क़िले में देर तक न ठहर सकूंगा, तो अपने मुट्ठी भर आदमियों सहित वह क़िले से बाहर निकल गया ।

शाहजहांपुर और बरेली

नाना साहब और मौलवी अहमदशाह अब शाहजहांपुर पहुंचे । कमाण्डर-इन-चीफ़ सर कालिन कैम्पबेल ने शाहजहांपुर पहुंच कर चारों ओर से नगर को घेर लिया। उसका उद्देश्य नाना साहब और मौलवी अहमदशाह को वश में करना था । किन्तु ये दोनों नेता अंगरेज़ी सेना के बीच से शाहजहांपुर छोड़ कर निकल गए ।

खानबहादुर खां ने अभी तक रुहेलखण्ड की राजधानी बरेली को स्वाधीन कर रखा था । दिल्ली का एक शाहज़ादा, मिरजा फ़ीरोजशाह, नाना साहब, मौलवी अहमद शाह, बालासाहब, बेगम हज़रतमहल, राजा तेजसिंह और कई और नेता इस समय बरेली में थे । सर कॉलिन अपनी सेना सहित बरेली की तरफ़ बढ़ा । क्रान्तिकारी नेता पहले से ही बरेली छोड़ देने और चारों तरफ़ रुहेलखण्ड में फैल जाने का निश्चय कर चुके थे । 5 मई को अंगरेज़ी सेना ने बरेली को घेर लिया । बरेली के असंख्य क्रान्तिकारी केवल ढाल-तलवार लेकर मरने के लिए अंगरेज़ी सेना पर टूट पड़े । दोनों तरफ़ काफ़ी जानें गईं । अन्त में, 7 मई, सन् 1858 को खानबहादुर खां दूसरे नेताओं और कुछ सेना सहित बरेली छोड़ कर निकल गया । अंगरेज़ी सेना ने बरेली के नगर पर कब्ज़ा कर लिया ।

शाहजहांपुर का संग्राम

सर कॉलिन कैम्पबेल अभी बरेली में ही था कि मौलवी अहमदशाह ने घूम कर फिर से शाहजहांपुर पर हमला किया, वहां की अंगरेज़ी सेना को परास्त कर दिया और शाहजहांपुर पर क़ब्ज़ा कर लिया । कैम्पबेल ने फिर शाहजहांपुर पर हमला किया ।

इस बार तीन दिन तक शाहजहांपुर में संग्राम होता रहा। एक बार मालूम होता था कि मौलवी अहमदशाह का अब शाहजहांपुर से बच कर निकल सकना असंभव है। तुरन्त चारों ओर से क्रान्तिकारी नेता सर्वप्रिय मौलवी अहमदशाह की सहायता के लिए पहुंच गए। बेगम हज़रतमहल, शाहज़ादा फ़ीरोजशाह, नाना साहब इत्यादि सब अपनी-अपनी सेनाएं लेकर 15 मई को शाहजहांपुर पहुंचे। मौलवी अहमदशाह फिर इन सबकी सहायता से शाहजहांपुर से निकल आया। इसके बाद रुहेलखण्ड से घूम कर अहमदशाह ने फिर अवध के अन्दर प्रवेश किया।

मौलवी अहमदशाह के साथ दगा

मौलवी अहमदशाह किसी तरह अंगरेज़ों के क़ाबू में न आता था। इस बार अवध में प्रवेश करते ही उसने अंगरेज़ों से लड़ने के लिए फिर अपना बल बढ़ाने का प्रयत्न किया। मार्ग में पवन नाम की छोटी-सी हिन्दू रियासत थी। मौलवी अहमदशाह ने बेगम हज़रतमहल की मोहर लगा कर एक परवाना पवन के राजा के पास सहायता के लिए भेजा। राजा जगन्नाथसिंह ने तुरन्त मौलवी अहमदशाह को अपने यहां बुलवाया। अहमदशाह अपने हाथी पर बैठ कर पवन पहुंचा। राजा जगन्नाथसिंह और उसके भाई से अहमदशाह की बातचीत हुई; बातचीत हो ही रही थी कि जगन्नाथसिंह के भाई ने धोखा देकर मौलवी अहमदशाह पर गोली चला दी। अहमदशाह इस विश्वासघातक के वार से न बच सका। राजा जगन्नाथसिंह ने तुरन्त अहमदशाह का सिर काट कर उसे एक कपड़े में लपेटा और स्वयं पास के अंगरेज़ी कैम्प में पहुंचा दिया। इस तरह 5 जून, सन् 1858 को मौलवी अहमदशाह का अन्त हुआ। अगले दिन मौलवी अहमदशाह का कटा हुआ सिर शाहजहांपुर की कोतवाली के सामने टांग दिया गया।

राजा जगन्नाथसिंह को इस सेवा के बदले में कम्पनी सरकार से पचास हजार रुपये नाम में मिले।

अहमदशाह की योजना

मौलवी अहमदशाह की योग्यता के बारे में हम ऊपर भी अंगरेज़ इतिहास लेखकों की राय दे चुके हैं। होम्स लिखता है कि मौलवी अहमदशाह "उत्तर भारत में अंगरेज़ों का सबसे जबरदस्त शत्रु था।"* एक दूसरा अंगरेज इतिहास लेखक मालेसन लिखता है—

> "मौलवी एक बड़ा अद्भुत आदमी था। ××× सेनापति की हैसियत से उसकी योग्यता के अनेक सबूत विप्लव में मिले ××× कोई भी और मनुष्य अभिमान के साथ यह न कह सकता था कि मैंने दो बार सर कॉलिन कैम्पबेल को मैदान में परास्त किया। ××× फ़ैजाबाद के मौलवी अहमदशाह की इस तरह मृत्यु हुई। यदि किसी एसे मनुष्य को, जिसकी जन्मभूमि की स्वाधीनता का अन्याय द्वारा अपहरण कर लिया गया हो और जो फिर से स्वाधीनता को क़ायम करने के लिए तजवीज करे और युद्ध करे, देशभक्त कहा

---

* "The most formidable enemy of the British in Northern India."—Holmes' *History of the Indian Mutiny*, p. 539.

जा सकता है, तो इसमें अणुमात्र भी सन्देह नहीं हो सकता कि मौलवी अहमदशाह सच्चा देशभक्त था। उसने किसी की गुप्त हत्या कर के अपनी तलवार को कलंकित न किया था; निहत्थे और निर्दोष मनुष्य की हत्या को उसने कभी गवारा तक न किया था; उसने मरदानादार आन के साथ और डट कर खुले मैदान में उन विदेशियों के साथ युद्ध किया, जिन्होंने उसका देश छीन लिया था। हर देश के वीर और सच्चे लोगों को मौलवी अहमदशाह को आदर के साथ स्मरण करना चाहिए।"*

ये शब्द एक अंगरेज़ इतिहास लेखक के हैं। निस्सन्देह संसार के स्वाधीनता के शहीदों में सन् 57 के मौलवी अहमदशाह का नाम सदा के लिए आदरणीय रहेगा।

---

* "The Moulvi was a very remarkable man......of his capacity as a military leader many proofs were given during the revolt, ...No other man could boast that he had twice foiled Sir Colin Campbell in the field !......Thus died the Moulvi Ahmad Shah of Fyzabad. If a patriot is a man who plots and fights for the independence, wrongfully destroyed, of his native country, then most certainly the Moulvi was a true patriot. He had not stained his sword by assassination; he had connived at no murders; he had fought manfully, honourably, and stubbornly in the field against the strangers who had seized his country; and his memory is entitled to the respect of the brave and the true-hearted of all nations."—Malleson's *Indian Mutiny,* vol. iv, p. 381.

उनचासवां अध्याय

लक्ष्मीबाई और तात्या टोपे

सर ह्यूरोज़ का कार्यक्रम

जमुना के दक्षिण और विन्ध्याचल के उत्तर का समस्त प्रदेश 11 महीने तक क्रान्तिकारियों के हाथों में रहा, जिसका मुख्य श्रेय महारानी लक्ष्मीवाई को है। सर ह्यूरोज़ के अधीन एक विशाल सेना, जिसमें हैदराबाद, भोपाल और दूसरी रियासतों की सेनाएं भी शामिल थीं, तोपों सहित इस प्रदेश को फिर से विजय करने के लिए भेजी गईं।

6 जनवरी, सन् 1858 को सर ह्यूरोज़ मऊ से चला। रायगढ़, सागर, वानापुर, चंदेरी इत्यादि स्थानों को विजय करती हुई यह सेना 20 मार्च को झांसी के निकट पहुंची। झांसी इस समस्त प्रदेश के क्रान्तिकारियों का सबसे बड़ा केन्द्र था। नगर के अन्दर वानापुर का राजा मरदानसिंह और अनेक राजा और सरदार रानी की सहायता के लिए मौजूद थे।

रानी लक्ष्मीबाई ने कम्पनी की सेना के पहुंचने से पहले झांसी के चारों तरफ़ दूर-दूर तक के इलाक़े को वीरान करवा दिया था, ताकि शत्रु की सेना को झांसी पर हमला करते समय रसद इत्यादि न मिल सके। न खेतों में अनाज की एक बाल थी, न कहीं पर घास का तिनका था और न साए के लिए कोई वृक्ष था।

किन्तु महाराजा सिंधिया ने और टेहरी टीकमगढ़ के राजा ने कम्पनी की सेना के लिए रसद, घास इत्यादि का इतना अच्छा प्रबन्ध कर दिया कि उस सेना को किसी तरह की कठिनाई न हुई।

लक्ष्मीबाई का सेनापतित्व

अंगरेज़ी सेना को बढ़ते देख कर रानी लक्ष्मीबाई ने क्रान्तिकारियों का सेनापतित्व ग्रहण किया। एक-एक मोर्चा उसने अपने सामने तैयार कराया और अपने सामने फ़सील के ऊपर तोपें चढ़वाईं। सर ह्यूरोज़ लिखता है कि रानी लक्ष्मीबाई के साथ झांसी की सैकड़ों स्त्रियां तोपखानों और मैगज़ीनों में आती-जाती और काम करती दिखाई दे रही थीं।

झांसी में आठ दिन लगातार संग्राम

24 मार्च को सबेरे सबसे पहले झांसी की एक तोप ने, जिसका नाम घनगर्ज था, कम्पनी की सेना के ऊपर गोले बरसाने शुरू किए। उसके बाद आठ दिन तक लगातार संग्राम होता रहा।

एक दर्शक, जो उन दिनों झांसी में मौजूद था, लिखता है—

"25 तारीख से गहरा संग्राम प्रारम्भ हुआ। अंगरेजों ने सारे दिन और सारी रात गोले बरसाए। रात के समय क़िले और शहर के ऊपर तोपों के गोले डरावने दिखाई देते थे। पचास या तीस सेर का गोला ऐसा मालूम होता था, जैसे एक छोटी सी गेंद, किन्तु अंगारे की तरह लाल। ××× 26 तारीख की दोपहर को कम्पनी की सेना ने नगर के दक्षिणी फाटक पर इस जोर से गोले बरसाए कि उस तरफ की झांसी की तोपें ठण्डी हो गईं। किसी को भी वहां खड़े रहने कि हिम्मत न हो सकी। ××× इस पर पश्चिमी फाटक के तोपची ने अपनी तोप का मुंह उस ओर करके शत्रु के ऊपर गोले बरसाने शुरू किए। तीसरे गोले ने अंगरेजी सेना के सबसे अच्छे तोपची को उड़ा दिया। इसपर अंगरेजी तोप ठण्डी हो गई। रानी लक्ष्मीबाई ने खुश होकर अपनी ओर के तोपची को, जिसका नाम ग़ुलाम ग़ौस खां था, सोने का कड़ा इनाम दिया। ××× पांचवें या छठे दिन चार-पांच घंटे तक रानी की तोपों नें चमत्कार कर दिखाया। उस दिन अंगरेजों की तरफ़ अनगिनत आदमी मारे गए और अनेक तोपें ठण्डी हो गईं। फिर अंगरेजी तोपें अधिक उत्साह से चलने लगीं। झांसी की सेना का दिल टूटने लगा और उनकी तोपें ठण्डी होने लगीं। सातवें दिन शाम को शत्रु के गोलों ने नगर के बाई ओर की दीवार का एक हिस्सा गिरा दिया और उस ओर कि तोप ठण्डी हो गई। कोई वहां पर खड़ा न रह सकता था किन्तु रात के समय 11 मिस्त्री कम्बल ओढ़े दीवार तक पहुंचे और सुबह तक उस हिस्से की मरम्मत कर दी। झांसी की तोपें सूर्य निकलने से पहले फिर अपना काम करने लगीं। ××× कम्पनी की तरफ़ इससे बहुत भारी नुक़सान हुआ, यहां तक कि उनकी तोपें बहुत देर के लिए निकम्मी हो गईं। आठवें दिन सवेरे कम्पनी की सेना शंकर क़िले की तरफ बढ़ी। दूरबीनों की सहायता से अंगरेजों ने क़िले के अन्दर के पानी के चश्मे पर गोले बरसाने शुरू किए। 6-7 आदमी पानी लेने के लिए पहुंचे, जिन में से चार वहीं पर मर गए, बाक़ी अपने बरतन छोड़ कर भाग गए। चार घण्टे तक किसी को नहाने-धोने तक के लिए पानी न मिल सका। इस पर पश्चिमी और दक्षिणी फाटकों के तोपचियों ने कम्पनी की सेना के ऊपर लगातार गोलाबारी शुरू की और कम्पनी की जो तोपें शंकर किले पर हमला कर रही थीं, उनके मुंह फेर दिए। तब जाकर लोगों को नहाने और पीने के लिए पानी मिल सका। इमली के दरख्तों के नीचे बारूद का एक कारखाना था। ××× एक गोला इस कारखाने पर पड़ा जिससे 30 आदमी और 8 स्त्रियां मर गई। उसी दिन सबसे अधिक शोर मचा। उस दिन का संग्राम भीषण था। बन्दूकों की आवाज दिलों को दहलाती थी, तोपें जोरों के साथ चल रही थीं। जगह-जगह तुरही और बिगुल की आवाज़ सुनाई देती थी। आसमान धुएं और गर्द से भरा हुआ था। शहर फ़सील के ऊपर के कई तोपची और अनेक सिपाही मारे गए। उनकी जगह दूसरे नियुक्त कर दिए गए। रानी लक्ष्मीबाई उस दिन बड़ी

फुरती के साथ काम करती रही। वह हर एक चीज को खुद देखती थी। आवश्यक आज्ञाएं जारी करती थी। और दीवार में जहां कमजोरी देखती, तुरन्त मरम्मत कराती। रानी की इस उपस्थिति से सिपाहियों की हिम्मत बेहद बढ़ गई। वे बराबर लड़ते रहे।"*

किन्तु कम्पनी की विशाल सेना और उसके सामान के मुकाबले में झांसी की सेना का अकेले बहुत अधिक देर तक ठहर सकना असम्भव था।

चरखारी का राजा

तात्या टोपे अपनी सेना सहित जमुना के उत्तर में था। जमुना पार कर अब वह चरखारी के राजा के यहां पहुंचा। चरखारी के राजा ने स्वाधीनता संग्राम में भाग लेने से इनकार कर दिया था। तात्या ने चरखारी पर हमला किया, राजा से 24 तोपें छीनी और युद्ध के खर्च के लिए तीन लाख रुपये वसूल किए। इसके बाद तात्या कालपी पहुंचा। कालपी में उसे रानी लक्ष्मीबाई का एक पत्र मिला, जिसमें रानी ने उससे झांसी की मदद के लिए पहुंचने की प्रार्थना की थी। तात्या झांसी की तरफ़ बढ़ा। लिखा है कि तात्या के अधीन एक विशाल सेना थी। कम्पनी की सेना एक बार संकट में पड़ गई—सामने की तरफ रानी लक्ष्मीबाई और पीछे की ओर तात्या टोपे की सेना। किन्तु कम्पनी की सेना ने इस समय खासी हिम्मत से काम लिया और तात्या की सेना ने, मालूम होता है, काफ़ी कायरता दिखाई। 1 अप्रैल को अंगरेज़ी सेना ने साहस के साथ पीछे मुड़ कर तात्या की सेना पर हमला किया। तात्या के क़रीब डेढ़ हज़ार आदमी मारे गए। उसकी तोपें अंगरेज़ों के हाथ आईं।

क्रान्तिकारियों की स्थिति

झांसी की स्थिति अब और भी अधिक निराशाजनक हो गई, फिर भी रानी लक्ष्मीबाई ने हिम्मत न हारी। 3 अप्रैल को अंगरेजी सेना ने झांसी पर अन्तिम बार हमला किया। चारों ओर से एक साथ आक्रमण होने लगा। रानी अपने घोड़े पर सवार सिपाहियों और अफ़सरों के हौसले बढ़ाती हुई, उनमें ज़ेवर और ख़िलअत बांटती हुई, बिजली की तरह इधर से उधर तक फिर रही थी। शत्रु ने पहले नगर के उत्तर की तरफ़ सदर दरवाज़े पर ज़ोर दिया। आठ स्थानों पर सीढ़ियां लग गईं। रानी की तोपों ने अपना काम जारी रखा। अंगरेज़ अफसर, डिक और मिचेल जान ने सीढ़ियों पर चढ़ कर अपने साथियों को ललकारा किन्तु तुरन्त दो गोलियों ने इन दोनों बहादुर अंगरेज़ों को वहीं पर ढेर कर दिया। बोनस और फ़ाक्स ने उनका स्थान लिया, वे दोनों भी मार डाले गए। आठों सीढ़ियां टूट कर गिर पड़ीं। इतिहास लेखक लो लिखता है कि झांसी की दीवारों से गोलों और गोलियों की बौछार उस दिन अत्यन्त भीषण थी, जिसके कारण अंगरेज़ी सेना को पीछे हट जाना पड़ा।

विश्वासघातक की करतूत

किन्तु जब कि उत्तर की तरफ़ सदर दरवाज़े की यह हालत थी, कहते हैं कि किसी

---

*D. B. Parasnis' *Life of Lakshmi Bai* (Marathi), pp. 187-93.

भारतीय विश्वासघातक की सहायता से कम्पनी की सेना दक्षिणी दरवाज़े से नगर में घुस आई। इसके बाद कम्पनी की सेना एक स्थान के बाद दूसरा स्थान विजय करती हुई महल की तरफ़ बढ़ चली।

रानी लक्ष्मीबाई का प्रयत्न

रानी के क़िले की फ़सील पर से नगर निवासियों के क़त्ले-आम और उसकी बरबादी को देखा। वह तुरन्त एक हजार सिपाहियों सहित अंगरेज़ी सेना की तरफ़ लपकी। दोनों तरफ से बन्दूकों को फेंक कर तलवारों की लड़ाई होने लगी। दोनों तरफ अनेक जानें गई। कम्पनी की सेना को कुछ दूर तक फिर पीछे हटना पड़ा। इतने में किसी ने आकर रानी को सूचना दी कि सदर दरवाज़े का रक्षक, सरदार खुदाबख्श और तोपखाने का अफ़सर, सरदार गुलाम गौस खां, दोनों मारे गए, जिसका अर्थ यह था कि उत्तर की तरफ़ का दरवाजा भी अब शत्रु के लिए खुल गया। रानी का दिल टूट गया। एक बार उसने क़िले के मैगज़ीन में अपने हाथ से आग लगा कर उसके साथ अपने प्राण दे-देने का इरादा किया। किन्तु फिर अधिक सोच कर उसने झांसी से बाहर कहीं और पहुंच कर स्वाधीनता संग्राम में सहायता पहुंचाने का निश्चय किया। झांसी पर कम्पनी का क़ब्ज़ा हो गया।

रानी लक्ष्मीबाई कालपी की ओर

उसी दिन रात को रानी लक्ष्मीबाई ने सदा के लिए झांसी छोड़ दी। हथियार बांधे हुए, मरदाना वेष में और अपने दत्तक पुत्र दामोदर को कमर से कसे हुए वह क़िले की दीवार पर से एक हाथी की पीठ पर कूद पड़ी। वह अपने प्यारे सफ़ेद घोड़े पर सवार हुई, 10 या 15 सवार उसने अपने साथ लिए और कालपी की तरफ़ चल पड़ी।

सौ मील का अश्वारोहण

लेफ्टिनेण्ट बोकर ने कुछ चुने हुए सवार लेकर रानी का पीछा किया। रानी और उसके साथियों ने अपने घोड़ों को सरपट छोड़ दिया। बोकर और उसके सवार बराबर पीछा करते रहे। सुबह होते-होते रानी एक क्षण भर के लिए भाण्डेर नामक गांव के पास ठहरी। गांव से दूध लेकर उसने दामोदर को पिलाया। अंगरेज़ी सैन्य दल बराबर पीछा कर रहा था। रानी तुरन्त अपने साथियों सहित फिर घोड़ों पर चढ़ कर कालपी की तरफ बढ़ी। लेफ्टिनेण्ट बोकर का घोड़ा रानी के पास आ पहुंचा। रानी ने तुरन्त अपनी तलवार खींच ली। रानी लक्ष्मीबाई की तलवार के एक वार से घायल होकर बोकर अपने घोड़े से गिर पड़ा। रानी के साथ के सवारों और बोकर के साथ के सवारों में तलवार के हाथ होने लगे। अन्त में घायल बोकर और उसके साथी हार कर पीछे रह गए। रानी और उसके साथियों ने फिर अपने घोड़ों को सरपट छोड़ दिया। सुबह से दोपहर हो गयी और दोपहर से तीसरा पहर किन्तु रानी को ठहरने का अवकाश न मिल सका। चलते-चलते शाम हो गई, तारे निकल आए किन्तु फिर भी रानी न रुकी।

अन्त में, आधी रात के क़रीब, अपने बच्चे दामोदर को कमर से बांधे हुए, झांसी से कालपी तक 102 मील से ऊपर का फ़ासला तय करके रानी लक्ष्मीबाई ने कालपी में प्रवेश किया ।

रानी का प्यारा घोड़ा कालपी पहुंचते ही गिर कर मर गया । रानी ने बाक़ी रात कालपी में बिताई ।

सुबह रानी लक्ष्मीबाई, नाना साहब के भतीजे रावसाहब और सेनापति तात्या टोपे में परस्पर बातचीत हुई ।

बांदा का नवाब

जिस तरह सर ह्यू रोज मऊ से झांसी की तरफ़ रवाना हुआ था, उसी तरह जनरल ह्विटलाक 17 फ़रवरी, 1858 को सागर इत्यादि फिर से विजय करने के लिए जबलपुर से निकला था । ह्विटलाक के साथ भी काफ़ी गोरी और देशी पलटनें थीं । ओरछा का राजा ह्विटलाक के साथ हो गया । सागर के बाद ह्विटलाक बांदा की तरफ़ बढ़ा । बांदा के नवाब ने अनेक अंगरेज़ों को अपने महल में आश्रय दे रखा था । उसका व्यवहार उनके साथ अत्यन्त उदार था । किन्तु साथ ही वह अपने प्रान्त के क्रान्तिकारियों का एक मुख्य नेता था । शुरू में ही उसने बांदा से अंगरेज़ी राज के चिन्ह उखाड़ कर सम्राट बहादुरशाह का हरा झण्डा नगर के ऊपर लगा दिया था ।

ह्विटलाक को आते देख कर नवाब मुक़ाबले के लिए तैयार हो गया । कई लड़ाईयां हुईं । अन्त में नवाब की हार रही । विजयी ह्विटलाक ने 19 अप्रैल को बांदा में प्रवेश किया । नवाब अपनी कुछ सेना सहित नगर छोड़ कर कालपी की तरफ़ निकल गया ।

करवी का राव

इसके बाद ह्विटलाक ने करवी के राव माधोराव पर चढ़ाई की । माधोराव दस साल का बालक था । उसकी नाबालिग़ी के दिनों में रियासत का प्रबन्ध कम्पनी के नियुक्त किए हुए एक कारबारी के हाथों में था । करवी के राव ने क्रान्ति में किसी तरह का भाग न लिया था । ह्विटलाक के आने का समाचार सुन कर वह स्वागत के लिए आगे बढ़ा । ह्विटलाक और उसकी सेना ने नगर में प्रवेश किया । तुरन्त बालक माधोराव को क़ैद कर लिया गया, महल को गिरा दिया गया, राजधानी को लूट लिया गया और रियासत को कम्पनी के राज में मिला लिया गया । इतिहास लेखक मालेसन लिखता है——

> **“ह्विटलाक की सेना के ऊपर वहां किसी ने एक गोली भी न चलाई थी, फिर भी ह्विटलाक ने इरादा कर लिया कि बालक राव के साथ इस तरह का व्यवहार किया जाय, जैसा उस मनुष्य के साथ किया जाता है, जो अंगरेज़ी सेना के विरुद्ध लड़ा हो । इस बेइमानी और अन्याय का कारण यह था कि करवी के**

महल में माल भरा हुआ था, जिससे सिपाहियों को अनेक कठिन संग्रामों और गरमी की कष्टकर यात्राओं के लिए इनाम दिए जा सकते थे। करवी के महल के तहखाने और खजानों में सोना, चांदी, जवाहरात और क़ीमती हीरे भरे हुए थे।××× ह्विटलाक को इस धन का लोभ था।"*

इसके बाद ह्विटलाक महोबा पहुंचा। वहां से उसने सेना भेज कर आसपास के क्रान्तिकारियों को परास्त करना शुरू किया।

क्रान्तिकारियों में अव्यवस्था

रानी लक्ष्मीबाई, रावसाहब, तात्या टोपे, बांदा का नवाब, शाहगढ़ और बानापुर के राजा और अनेक क्रान्तिकारी नेता उस समय अपनी-अपनी सेना सहित कालपी में मौजूद थे। इस विशाल सैन्य दल के लिए शत्रु पर विजय प्राप्त कर सकना अधिक कठिन न होता। किन्तु इनमें कोई एक व्यक्ति ऐसा न था, जो और सबको अपनी आज्ञा के अधीन चला सके। रानी सबसे योग्य थी, किन्तु वह स्त्री थी और उसकी आयु केवल 22 साल की थी। तात्या टोपे वीर और दक्ष सेनापति था, किन्तु वह एक साधारण घराने में पैदा हुआ था। प्राचीन खानदानी नरेशों का किसी स्त्री के या साधारण कुल में पैदा हुए आदमी के मातहत काम करना उस समय तक इतना सरल न था। ठीक यही दोष दिल्ली के पतन का भी मुख्य कारण रह चुका था। फिर भी रानी लक्ष्मीबाई कुछ सेना लेकर अकेली कालपी से 42 मील दूर कंचगांव पहुंची। कंचगांव में फिर सर ह्यू रोज़ की सेना से लक्ष्मीबाई की सेना का आमना-सामना हुआ। नेताओं में मतभेद के कारण किसी ने रानी की यथेष्ट सहायता न दी। नतीजा यह हुआ कि कंचगांव में फिर क्रान्तिकारियों की हार रही। इतिहास लेखक मालेसन ने बड़ी प्रशंसा के साथ लिखा है कि इस पराजय के बाद भी रानी की सेना आश्चर्यजनक व्यवस्था के साथ कालपी लौट आई।†

कालपी का संग्राम

सर ह्यूरोज़ ने अब कालपी पर हमला किया। लक्ष्मीबाई ने अपनी पराजित सेना को फिर से प्रोत्साहित किया। वह अपने सवारों सहित स्वयं सर ह्यूरोज़ के मुकाबले के लिए आगे बढ़ी। खूब घमासान संग्राम हुआ। एक बार अंगरेज़ी सेना के दाहिने भाग को पीछे हट जाना पड़ा। कम्पनी के तोपची अपनी तोपें छोड़ कर भाग गए। लक्ष्मीबाई अपने घोड़े पर सबसे आगे थी। इसके बाद स्वयं सर ह्यूरोज़ बाईं तरफ़ से मुड़ कर लक्ष्मीबाई के मुकाबले के लिए बढ़ा। अन्त में मैदान सर ह्यूरोज़ के

---

* "Not a shot had been fired against him (Whitlock), but he resolved never the less to treat the young Rao as though he had actually opposed the British forces. The reason for this perversion of honest dealing lay in the fact that in the palace of Kirwi was stored the where-withall to compensate soldiers for many a hard fight and many a broiling sun. In its vaults and strong rooms were specie, jewels, and diamonds of priceless value......The wealth was coveted."—Kay and Malleson's *Indian Mutiny*, vol. v, pp. 140-41.

† Malleson's *Indian Mutiny*, vol. v, p. 124.

हाथ रहा। 24 मई को कम्पनी की सेना ने कालपी में प्रवेश किया। कालपी के क़िले में अंगरेज़ों को क़रीब 700 मन बारूद और असंख्य अस्त्र-शस्त्र और सामान हाथ आया। रानी लक्ष्मीबाई रावसाहब बांदा के नवाब और थोड़ी-सी सेना सहित कालपी छोड़ कर निकल गई।

निस्सन्देह सर ह्यू रोज़ जो इस समय तक क़रीब एक हज़ार मील की कठिन यात्रा कर, पहाडों, जंगलों, और नदियों को पार कर, बड़ी-बड़ी सेनाओं पर विजय प्राप्त कर चुका था और नर्मदा से जमुना तक का प्रदेश कम्पनी के लिए फिर से विजय कर चुका था, कम्पनी के अत्यन्त योग्य और वीर सेनापतियों में से था।

सिंधिया के नाम क्रान्तिकारियों का पत्र

क्रान्तिकारियों के पास अब न सामान था, न कोई ढंग की सेना और न कोई क़िला। फिर भी लक्ष्मीबाई और तात्या टोपे ने हिम्मत न हारी। तात्या गुप्त रीति से कालपी से निकल कर ग्वालियर पहुंचा। ग्वालियर में उसने महाराजा सिंधिया की सेना और प्रजा को अपनी ओर किया। इस नई सेना को साथ लेकर वह फिर पीछे मुड़ा। गोपालपुर में तात्या, लक्ष्मीबाई, बांदा के नवाब और रावसाहब की फिर भेंट हुई। लक्ष्मीबाई ने अब रावसाहब को सबसे पहले ग्वालियर विजय करने की सलाह दी, ताकि क्रान्तिकारियों का फिर से एक नया केन्द्र बन सके। 28 मई, सन् 1858 को सब क्रान्तिकारी नेता ग्वालियर के सामने पहुंच गए। महाराजा सिंधिया के पास नीचे लिखा पत्र भेजा गया—

> **"हम लोग आपके पास मित्र भाव से आ रहे हैं। आप हमारे (पेशवा के) और पुराने संबंध को याद कीजिए। हमें आपसे सहायता की आशा है ताकि हम दक्षिण की तरफ बढ़ सकें, इत्यादि।"**

ग्वालियर पर क्रांतिकारियों का कब्जा

जयाजीराव सिंधिया इन लोगों के साथ मित्रता दरशाने के स्थान पर 1 जून, सन् 1858 को अपनी सेना और तोपों सहित उनके मुकाबले के लिए निकला। सिंधिया के इरादे को देख कर रानी लक्ष्मीबाई तीन सौ सवारों सहित सिंधिया की तोपों पर टूट पड़ी। किन्तु सिंधिया की अधिकांश सेना पहले ही तात्या को वचन दे चुकी थी। ये लोग तुरन्त अपने अफ़सरों सहित क्रान्तिकारियों की ओर आ मिले। ग्वालियर की तोपें ठण्डी हो गईं। जयाजीराव और उसके मन्त्री, दिनकरराव को मैदान छोड़ कर आगरे की तरफ़ भाग जाना पड़ा। ग्वालियर की प्रजा ने हर्ष और उल्लास के साथ विजयी क्रान्तिकारियों का स्वागत किया।

ग्वालियर की सेना ने पेशवा नाना साहब के प्रतिनिधि राव साहब को पेशवा मान कर तोपों की सलामी दी। सिंधिया के अर्थ सचिव, अमरचन्द भाटिया, ने सिंधिया का सारा ख़ज़ाना क्रान्तिकारी नेताओं के हवाले कर दिया।

3 जून, सन् 1858 को फूलबाग़ में एक बहुत बड़ा दरबार हुआ। तमाम सामन्तों, सरदारों और अमीरों ने अपना-अपना स्थान ग्रहण किया। अरब, रुहेला, राजपूत और मराठा पलटनें अपनी वर्दियां पहने दरबार में जमा हो गईं। पेशवा का शिरपना और कलग़ी तुर्रा रावसाहब के सिर पर रखा गया। सारे दरबार ने रावसाहब को पेशवा स्वीकार किया। पेशवा के मन्त्री नियुक्त कर दिए गए। तात्या टोपे प्रधान सेनापति नियुक्त हुआ। बीस लाख रुपए सेना में तक़सीम कर दिए गए और अन्त में तोपों की सलामी हुई।

तात्या और लक्ष्मीबाई की योग्यता

इस तरह तात्या और लक्ष्मीबाई ने दिल्ली, कानपुर और लखनऊ की जगह सन् 57-58 के क्रान्तिकारियों को एक नया और ज़बरदस्त केन्द्र प्रदान कर दिया। तात्या और लक्ष्मीबाई की इस कार्रवाई का बयान करते हुए इतिहास लेखक मालेसन लिखता है—

> "इस तरह जो बात असम्भव मालूम होती थी, वह हो गई। × × × सर ह्यूरोज़ समझ गया कि अब देर करने से कितनी जबरदस्त हानि असन्दिग्ध है। यदि ग्वालियर तुरन्त विप्लवकारियों के हाथों से न छीन लिया गया, तो कोई यह पहले से नहीं कह सकता कि नतीजा कितना अधिक बुरा हो सकता है। यदि विद्रोहियों को अवकाश मिल गया, तो तात्या टोपे, जिसका राजनीतिक और सैनिक बल ग्वालियर पर क़ब्जा हो जाने के कारण बेहद बढ़ गया है और जिसके पास इस समय ग्वालियर के सब आदमी, वहां का धन और सामान मौजूद है, कालपी की पराजित सेना के अवशेषों पर एक नयी सेना खड़ी कर लेगा और सारे भारत के अन्दर एक मराठा विप्लव पैदा कर देगा। तात्या टोपे इस काम में बड़ा चतुर था। ऐसी हालत में सम्भव है कि वह पेशवा का झण्डा फहरा कर दक्षिण महाराष्ट्र के ज़िलों को भड़का दे। उन ज़िलों में अंगरेजी सेना बाक़ी नहीं है। यदि मध्य भारत में क्रान्तिकारियों को खासी सफलता मिल गई, तो सम्भव है कि दक्षिण के लोग फिर से पेशवा की उस सत्ता के लिए खड़े हो जांय, जिसके लिए उनके पूर्वज युद्ध कर चुके थे और अपना ख़ून बहा चुके थे।"*

लक्ष्मीबाई की नेक सलाह

लक्ष्मीबाई ने अब इस बात पर जोर दिया कि और सब काम छोड़ कर सेना को तुरन्त सन्नद्ध कर मैदान में लाया जाए। रावसाहब और दूसरे नेताओं ने रानी की इस सलाह की अवहेलना की। अमूल्य समय दावतों और उत्सवों में नष्ट किया गया। इतने में सर ह्यूरोज़ अपनी सेना सहित वेग के साथ ग्वालियर पर टूट पड़ा। सर ह्यूरोज़ ने महाराजा सिंधिया को अपने साथ रखा और ऐलान किया कि कम्पनी की सेना केवल सिंधिया को ग्वालियर की गद्दी पर फिर से बैठाने के लिए आई है।

---

* Ibid, vol. v, pp. 149-50.

लक्ष्मीबाई की व्यूह-रचना

तात्या टोपे मुक़ाबले के लिए आगे बढ़ा। ग्वालियर की सेना इससे पहले उत्तर भारत में एक बार कम्पनी की सेना से हार खा चुकी थी। थोड़ी देर के संग्राम के बाद ही ग्वालियर की सेना में उथल-पुथल मच गई। रावसाहब घबरा गया। लक्ष्मीबाई ने फिर एक बार बिखरती हुई सेना में नयी जान फूंकी। उसने फिर से सेना की व्यूह-रचना की और नगर के पूर्वी फाटक की रक्षा का भार स्वयं अपने ऊपर लिया।

ग्वालियर का संग्राम

लक्ष्मीबाई के साथ उसकी दो सहेलियां, मन्दरा और काशी, घोड़ों पर सवार वीरता के साथ शस्त्र चला रही थीं। प्रसिद्ध सेनापति जनरल स्मिथ अब लक्ष्मीबाई के मुकाबले के लिए बढ़ा। कई बार स्मिथ की सेना ने पूर्वी फाटक पर हमला किया, किन्तु हर बार उसे हार कर पीछे हट जाना पड़ा। कई बार रानी लक्ष्मीबाई ने फाटक से निकल कर बाहर की सेना पर हमला किया और अनेक शत्रुओं को मैदान में समाप्त कर फिर अपने फाटक को आ संभाला। लिखा है, लक्ष्मीबाई उस दिन सुबह से शाम तक घोड़े पर सवार बिजली की तरह इधर से उधर जाती हुई दिखाई देती रही। अन्त में, जनरल स्मिथ को उस तरफ़ का प्रयत्न छोड़ कर पीछे हट जाना पड़ा। 17 जून सन् 1858 का मैदान रानी लक्ष्मीबाई के हाथ रहा।

लक्ष्मीबाई की वीरता

18 जून को जनरल स्मिथ और अधिक सेना लेकर फिर उसी फाटक पर पहुंचा। उन दिन अंगरेज़ी सेना ने कई तरफ से ग्वालियर के क़िले पर हमला किया। जनरल स्मिथ के साथ सेनापति सर ह्यू रोज़ भी रानी लक्ष्मीबाई के मुक़ाबले के लिए पूर्वी फाटक के सामने दिखाई दिया। बहुत सवेरे, जब कि लक्ष्मीबाई अपनी दोनों सहेलियों सहित शरबत पी रही थी, ख़बर मिली कि कम्पनी की सेना बढ़ी चली आ रही है। तुरन्त शरबत का कटोरा फेंक कर रानी अपनी सहेलियों सहित आगे बढ़ी। लक्ष्मीबाई उस दिन मरदाना वेष में थी। एक अंगरेज़ दर्शक लिखता है—

> "तुरन्त सुन्दर रानी मैदान में पहुंच गई। सर ह्यूरोज़ की सेना के मुकाबले में उसने दृढ़ता के साथ अपनी सेना को खड़ा किया। बार-बार उसने प्रचण्ड वेग के साथ सर ह्यूरोज की सेना पर हमला किया। रानी का दल कई स्थानों पर शत्रु के गोलों से बिन्ध गया। उसके सैनिकों की तादाद निरन्तर कम होती चली गई। फिर भी रानी सदा सबके आगे दिखाई देती थी। वह बार-बार अपनी बिखरी सेना को जमा करती रही और पद-पद पर अलौकिक वीरता का परिचय देती रही। किन्तु इस सबसे भी काम न चला। स्वंय सर ह्यूरोज ने अपने सांडनीसवारों सहित आगे बढ़ कर रानी लक्ष्मीबाई की अन्तिम व्यूह-रचना को तोड़ डाला। इस पर भी वीर और निर्भीक रानी अपने स्थान पर डटी रही।"

जब कि रानी लक्ष्मीबाई इस 'अलौकिक वीरता' के साथ सर ह्यूरोज़ का मुक़ाबला कर रही थी, बाक़ी अंगरेज़ी सेना, दूसरे क्रान्तिकारी दलों को चीरती हुई पीछे से रानी पर आ टूटी। लक्ष्मीबाई अब दोनों ओर से घिर गई।

लक्ष्मीबाई का अद्‌भूत शौर्य

ग्वालियर की तोपें ठण्डी हो गईं। मुख्य सेना तितर-बितर हो गई। विजयी अंगरेज़ सेना चारों ओर से रानी के अधिकाधिक निकट बढ़ी आ रही थी। रानी के पास केवल उसकी दोनों सहेलियां और 15 या 20 सवार बाक़ी रह गए थे। रानी ने अपने घोड़े को सरपट छोड़ा और शत्रु को चीरते हुए दूसरी तरफ़ की क्रान्तिकारी सेना से जाकर मिलना चाहा। अंगरेज़ सवारों ने उसका पीछा किया। रानी अपनी तलवार से मार्ग काटती हुई आगे बढ़ी। अचानक एक गोली उसकी सहेली मन्दरा के आकर लगी। मन्दरा घोड़े से गिर कर समाप्त हो गई। रानी ने तुरन्त मुड़ कर अपनी तलवार से उस गोरे सवार पर वार किया, जिसकी गोली ने मन्दरा को समाप्त किया था। सवार कट कर गिर पड़ा, रानी फिर आगे बढ़ी। सामने एक छोटा-सा नाला था. एक छलांग के बाद अंगरेज़ सवारों का रानी लक्ष्मीबाई को छू सकना असम्भव हो जाता, किन्तु दुर्भाग्यवश रानी का घोड़ा नया था। पिछले संग्रामों के अन्दर उसके कई प्यारे घोड़े उसके नीचे समाप्त हो चुके थे। घोड़ा बजाय छलांग मारने के नाले के इस पार चक्कर खाने लगा। अंगरेज़ सवार अब और अधिक निकट आ पहुंचे। रानी चारों तरफ़ से घिर गई।

लक्ष्मीबाई का बलिदान

रानी उस समय बिलकुल अकेली रह गई। उसने अकेले ही उन सबका अपनी तलवार से मुकाबला किया। एक सवार ने पीछे से आकर रानी के सिर पर वार किया। सिर का दाहिना भाग अलग हो गया, दाहिनी आंख भी निकल कर बाहर आ गई, फिर भी लक्ष्मीबाई घोड़े पर डटी हुई अपनी तलवार चलाती रही। इतने में एक वार रानी के छाती पर हुआ। सर और छाती, दोनों से खून का फ़व्वारा छूटने लगा। बेहोश होते-होते रानी ने अपनी तलवार से उस गोरे सवार को, जिसने सामने से रानी पर वार किया था, काट कर गिरा दिया। इसके बाद लक्ष्मीबाई की भुजा में और अधिक शक्ति न रह गई।

लक्ष्मीबाई का एक वफ़ादार नौकर, रामचन्द्रराव देशमुख, उस समय पास था। घटनास्थल के निकट गंगादास बाबा की कुटिया थी। रामचन्द्रराव रानी को उठा कर उस कुटिया में ले गया। गंगादास बाबा ने रानी को पीने के लिए ठण्डा पानी दिया और उसे अपनी कुटिया में लिटा दिया।

लक्ष्मीबाई का अन्तिम संस्कार

चन्द मिनट के अन्दर ही रानी लक्ष्मीबाई का शरीर ठण्डा पड़ गया। रामचन्द्रराव ने रानी की अन्तिम इच्छा के अनुसार शत्रु से छिपा कर घास की एक छोटी-सी चिता बनाई और उस पर रानी लक्ष्मीबाई के मृत शरीर को लिटा दिया। थोड़ी देर के अन्दर आग की लपेटों में लक्ष्मीबाई के शरीर की केवल अस्थियां शेष रह गईं।

लक्ष्मीबाई का चरित्र

निस्सन्देह महारानी लक्ष्मीबाई का व्यक्तिगत जीवन जितना पवित्र और निष्कलंक था, उसकी मृत्यु भी उतनी ही वीरोचित थी। संसार के इतिहास में कदाचित विरले ही उदाहरण इस तरह की स्त्रियों के मिलेंगे, जिन्होंने इतनी छोटी आयु में इस प्रकार शुद्ध जीवन व्यतीत करने के बाद लक्ष्मीबाई की-सी अलौकिक वीरता और असाधारण युद्धकौशल के साथ किसी भी देश की स्वाधीनता के लिए युद्ध किया हो अथवा इस तरह अपने आदर्श के लिए लड़ते-लड़ते युद्ध क्षेत्र में प्राण दिए हों।

इतिहास लेखक विन्सेण्ट स्मिथ ने, जो भारतीय आदर्शों या भारतवासियों के मानव अधिकारों का अधिक पक्षपाती नहीं है, महारानी लक्षीबाई को "स्वाधीनता संग्राम के नेताओं में सब से अधिक योग्य नेता"* स्वीकार किया है।

दक्षिण में क्रान्ति की चिनगारियां

सन् 57 की क्रान्ति का मुख्य क्षेत्र उत्तर भारत था। यदि विन्ध्याचल से दक्षिण का भाग क्रान्ति का उसी प्रकार साथ दे जाता, जिस प्रकार उत्तर का तो मद्रास और वम्बई की सेनाओं का उत्तर की ओर जाकर बिहार, बनारस इलाहाबाद, अवध और रुहेलखण्ड को फिर से विजय कर सकना असम्भव होता और क्रान्ति का अन्तिम परिणाम विलकुल दूसरा ही होता। दक्षिण में क्रान्ति के प्रचारक पहुंच चुके थे अनेक स्थानों में कुछ हुआ भी। किन्तु यह सब इतना कुसमय और इतने अव्यवस्थित ढंग से हुआ कि अंगरेजों के लिए उसका दमन करना अत्यन्त सरल हो गया और क्रान्तिकारियों को उससे विशेष लाभ न पहुंच सका।

कोल्हापुर में क्रान्ति

लन्दन के अन्दर रंगों बापूजी और अज़ीमुल्ला खां की भेंट का जिक्र एक पिछले अध्याय में किया जा चुका है। सतारा में बैठ कर रंगो बापूजी नाना साहब के साथ पत्र-व्यवहार करता रहा और दक्षिण के अनेक सरदारों और नरेशों को क्रान्ति के पक्ष में करने के प्रयत्न करता रहा। 13 जुलाई सन् 1857 को कोल्हापुर की देशी पलटन बिगड़ी। सिपाहियों ने अपने कुछ अंगरेज अफ़सरों को मार डाला और ख़ज़ाने पर कब्जा कर लिया। किन्तु चन्द महीने के अन्दर ही अंगरेजों ने वहां के क्रान्तिकारियों को दबा दिया। 15 दिसम्बर को महाराजा के छोटे भाई चिमना साहब की मदद से कोल्हापुर के नगर में फिर विप्लव शुरू हो गया। नगर के फाटक बन्द कर दिए गए फ़सील पर तोपें चढ़ादी गईं और स्वाधीनता का ढिंढोरा पिटवा दिया गया। अंगरेज़ी सेना पहुंची, खासा घमासान संग्राम हुआ। विजय अंगरेजों की ही रही। विजय के बाद अनेक लोग तोपों के मुंह से उड़ा दिए गए।

---

*"......the ablest of the rebel leaders."—*The oxford Student's History of India*, by Vincent A. Smith, p. 328.

अगस्त सन् 57 में बेलगांव की देशी पलटन में क्रान्ति के लक्षण दिखाई दिए। तुरन्त नेताओं को तोप के मुंह से उड़ा दिया गया। बेलगांव और धारवाड़ को ठण्डा कर दिया गया।

रंगो बापूजी का एक बेटा फांसी पर लटका दिया गया। सतारा राजकुल के दो व्यक्तियों को निर्वासित कर दिया गया। रंगो बापूजी सतारा से हट गया। उसको पकड़ने के लिए बड़े-बड़े इनामों का ऐलान किया गया। परन्तु उसका पता न चला।

बम्बई की कुछ देशी पलटनों ने निश्चय कर रखा था कि पहले बम्बई शहर में क्रान्ति प्रारम्भ की जाय फिर पूना जाकर पूना पर कब्जा कर लिया जाय और नाना साहब को पेशवा ऐलान कर दिया जाय।* बम्बई के सिपाही अभी सलाहें ही कर रहे थे कि अंगरेजों को पता चल गया। कुछ को फांसी दे दी गई और कुछ को देश-निकाला और मामला ठण्डा हो गया।

नागपुर के निकट कुछ देशी सिपाहियों ने 13 जून, सन् 57 अपने लिए नियत कर रखी थी। कई बड़े-बड़े नागरिक भी इस सलाह में शामिल थे। किन्तु मद्रास की देशी पलटनों ने समय से पहले पहुंच कर नागपुर को ठीक कर लिया।

जबलपुर

जबलपुर प्रान्त का गोंड राजा शंकरसिंह और उसका पुत्र क्रान्ति के सच्चे भक्त थे। उन्होंने जबलपुर की 52 नम्बर देशी पलटन को अपनी तरफ कर लिया। अंगरेजों को पता चल गया। 18 सितम्बर, सन् 57 को राजा शंकरसिंह और उसके बेटे को तोप के मुंह से उड़ा दिया गया। इस पर 52 नम्बर पलटन बिगड़ी। एक अंगरेज मार डाला गया। 52 नम्बर पलटन के कुछ सिपाहियों ने दूसरे स्थानों पर जाकर क्रान्ति में भाग लिया।

दिल्ली के शहज़ादे फ़ीरोज़शाह ने रियासत धार में, महिदपुर में, गोरिया में और दूसरे स्थानों में क्रान्ति की योजनाएं कीं। किन्तु अधिक सफलता न मिल सकी।

हैदराबाद

दक्षिण में हैदराबाद एक अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान था। एक अंगरेज़ इतिहास लेखक लिखता है—"तीन महीने तक हिन्दोस्तान की क़िस्मत निज़ाम अफ़ज़लुद्दोला और उसके वज़ीर सर सालारजंग के हाथ में थी।" निस्सन्देह यदि हैदराबाद का निज़ाम क्रान्तिकारियों का साथ दे जाता, तो सारे दक्षिण भारत में भयंकर आग लग जाती। जून और जुलाई सन् 57 में हैदराबाद के, खासकर मुसलमानों के अन्दर क्रान्ति के लिए बेहद जोश दिखाई दिया। बड़े-बड़े मौलवियों ने अंगरेजों के विरुद्ध फ़तवे निकाले, क्रान्ति के पक्ष में हज़ारों पत्रिकाएं बांटी गईं, मस्जिदों में बड़ी-बड़ी सभाएं हुईं, कुछ मुसलमान सिपाही भी बिगड़े, किन्तु निज़ाम और उसके

---

* Forest's *Real Danger in India.*

वज़ीर ने अंगरेजों का सच्चा साथ दिया, क्रान्तिकारी नेताओं को पकड़ कर उनके हवाले कर दिया, कम्पनी की सेना की मदद से विद्रोही सिपाहियों को कटवा डाला और हैदराबाद को बचाए रखा।

ज़ोरापुर का वीर बालक राजा

हैदराबाद के ही पास एक छोटी-सी रियासत ज़ोरापुर की थी। जोरापुर का राजा छोटी उम्र का और क्रांति के पक्ष में था। अंगरेजों से लड़ने के लिए उसने अरब और रुहेले पठानों की एक सेना जमा कर ली। फ़रवरी सन् 58 में वह हैदराबाद आया। सर सालारजंग ने उसे गिरफ्तार करा कर अंगरेजों के हवाले कर दिया। गिरफ्तारी के बाद इस बालक राजा का व्यवहार अत्यन्त प्रशंसनीय और वीरोचित था। एक अंगरेज अफ़सर, मीडोज टेलर, के साथ वह बड़ा मेल-जोल रखता था और उसे "अप्पा" कहा करता था। जेलखाने में मीडोज़ टेलर उससे मिलने गया। राजा पूर्ववत् बड़े आदर से मिला। मीडोज़ टेलर ने उससे दूसरे क्रांतिकारी नेताओं के नाम पूछे। इस पर टेलर लिखता है—"राजा ने बड़े गर्व के साथ अकड़ कर उत्तर दिया:

> **'नहीं अप्पा, मैं यह कभी नहीं बताऊंगा! आप मुझे सलाह देते हैं कि मैं रेजिडेण्ट से जाकर मिलूं? मैं यह नहीं करूंगा। शायद उसे यह उम्मीद होगी कि मैं अपनी जान की भीख मांगूंगा, पर अप्पा! मैं दूसरे की भीख पर कायर की तरह जीना नहीं चाहता और न मैं कभी अपने देशवासियों के नाम बताऊंगा!' "**

मीडोज़ टेलर एक दिन फिर राजा के पास गया। उसने बालक राजा से कहा कि यदि तुम दूसरों के नाम बता दोगे, तो तुम्हें क्षमा कर दिया जाएगा। राजा ने उत्तर दिया—

> **"××× क्या? जब मैं मौत के मुंह में जाने को तैयार हूं, तब क्या मैं दग़ा करके अपने देशवासियों के नाम बताऊंगा? नहीं, नहीं! तोप, फांसी, कालापानी—इनमें से कोई भी इतना भयंकर नहीं हैं, जितना दग़ा करना!"**

टेलर ने राजा को सूचना दी कि तुम्हें प्राणदण्ड दिया जायगा। राजा ने उत्तर दिया—

> **"लेकिन अप्पा, मुझे एक प्रार्थना करनी हैं; मुझे फांसी न देना, मैं चोर नहीं हूं। मुझे तोप के मुंह से उड़ाना। फिर देखना कि मैं कितनी शान्ति के साथ तोप के मुंह पर खड़ा रह सकता हूं।"**

टेलर के कहने-सुनने से राजा को मौत के स्थान पर काले पानी की सजा दी गई। जब उसे काले पानी ले जा रहे थे, राजा ने अपने किसी अंगरेज पहरेदार से खेल-खेल में पिस्तोल ले ली और अवसर पाकर अपने ऊपर गोली दाग दी। इससे पहले उसने एक दिन कहा था—

> **"मैं कालेपानी से मौत को पसन्द करता हूं। क़ैद और काला पानी? मेरी प्रजा में से तुच्छ से तुच्छ पहाड़ी भी जेल में रहना पसन्द न करेगा—फिर मैं तो उनका राजा हूं!"**

इस वीर बालक राजा का वृतांत और उसके शब्द हमने मीडोज़ टेलर की अंगरेजी पुस्तक "स्टोरी आफ़ माई लाइफ़" से दिए ह।

भास्करराव बाबा साहब

ज़ोरापुर के राजा का एक साथी नारगुण्ड का राजा भास्करराव बाबा साहब था। बाबा साहब की रानी बड़ी वीर और अंगरेजों की जानी दुश्मन थी। लिखा है कि बहुत दिनों तक सोचने–विचारने के बाद रानी के ही कहने पर 25 मई, सन् 1858 को बाबा साहब ने अंगरेजों के विरुद्ध युद्ध का ऐलान कर दिया। मानसन के अधीन कम्पनी की एक सेना नारगुण्ड की ओर बढ़ी। बाबा साहब ने अपने कुछ सिपाहियों सहित मानसन को रात के समय नारगुण्ड के पास जंगल में जा घेरा। संग्राम हुआ। मानसन मार डाला गया। उसका सर काट कर बाक़ी धड़ जला दिया गया। कम्पनी की सेना हार कर भाग गई। अगले दिन मानसन का कटा हुआ सिर नारगुण्ड की फ़सील पर लटका दिया गया। इसके बाद बाबा साहब का एक सौतेला भाई अंगरेज़ों से मिल गया। अंगरेजी सेना ने नारगुण्ड पर फिर हमला किया। बाबा साहब की सेना हार गई। बाबा साहब स्वयं बच कर निकल गया। कुछ दिनों बाद बाबा साहब गिरफ्तार कर लिया गया और 12 जून, सन् 1858 को फांसी पर लटका दिया गया। उसकी रानी और माँ, दोनों ने मालप्रभा नदी में कूद कर आत्महत्या कर ली।

कोमलदुग के भीमराव ने और खानदेश के भीलों और उनकी स्त्रियों ने तीरकमान लेकर अंगरेजों से युद्ध किया। किन्तु ये सब प्रयत्न अधिकतर समय निकल जाने के बाद हुए और आसानी से दमन कर दिए गए।

रंगून और बर्मा में भी थोड़ा-सा विप्लव हुआ, किन्तु कुसमय।

अवध म नये सिरे में क्रान्ति की आग

अब हम फिर क्रान्ति के सबसे महान क्षेत्र अवध की ओर आते हैं। मौलवी अहमदशाह की हत्या से पहले लार्ड कैनिंग ने अवध में यह ऐलान करवा दिया कि जो लोग हथियार रख देंगे, उन्हें क्षमा कर दिया जाएगा और उनकी जागीरें आदि वापस दे दी जाएंगी। किन्तु इसका विशेष असर दिखलाई न दिया। इसके बाद 5 जून, सन् 58 को अहमदशाह की हत्या हुई। अवध निवासियों का क्रोध फिर एक बार ज़ोरों से भड़क उठा। निज़ामअली खां ने पीलीभीत पर हमला कर दिया। खानबहादुर खां चार हज़ार सेना जमा कर फिर मैदान में उतर आया। फ़र्रुखाबाद में पांच हजार सिपाही नये सिरे से जमा हो गए। नाना साहब, बाला साहब, विलायतशाह और अली खां मेवाती के अधीन हजारों सिपाही आ-आकर जमा होने लगे। घाघरा नदी के किनारे चौक घाट में बेगम हज़रतमहल और सरदार मामू खां की सेना थी। शहज़ादा फ़ीरोजशाह भी इस समय अवध में था। इनके अलावा रुइया का राजा नरपतसिंह, राजा रामबख्श, बहुनाथसिंह, चन्दासिंह, गुलाब सिंह, भूपाल सिंह, हनुमन्त सिंह इत्यादि अनेक बड़े-बड़े जमीदार अपने-अपने सैन्य दल लेकर अवध को फिर से अंगरेजों के हाथों से छीनने के प्रयत्न में लग गए। बूढ़े राजा बेनीमाधव ने फिर से लखनऊ पर चढ़ाई करने की तैयारी शुरु की।

अंगरेज यह सुन कर चकित रह गए कि 13 महीने तक लगातार युद्ध जारी रहने और 6 महीने से ऊपर लखनऊ में खून की नदियां बहने के बाद फिर कोई वीर लखनऊ पर हमला करने का साहस कर रहा है। क्रांतिकारियों की सेना इस बार लखनऊ के पास नवाबगंज में जमा हुई। 13 जून, सन् 1858 को सेनापति होप ग्राण्ट के अधीन कम्पनी की सेना ने, जिसमें कई हिन्दुस्तानी पलटनें शामिल थीं, अचानक इन लोगों पर हमला किया। उस दिन के संग्राम का वृतान्त हम सेनापति होप ग्राण्ट के ही शब्दों में देना चाहते हैं। वह लिखता है—

> "हम लोगों पर उनके हमले असफल रहे, किन्तु वे हमले अत्यन्त जोरदार थे और हमें उनका मुक़ाबला करने के लिए कठिन परिश्रम करना पड़ा। अनेक सुन्दर और साहसी ज़मीदारों ने तो तोपें खुले मैदान में लाकर पीछे की तरफ़ से हम पर हमला किया। मैंने हिन्दोस्तान में बहुत-से संग्राम देखे हैं और बहुत-से बहादुरों को इस दृढ़ता के साथ लड़ते देखा है कि या तो विजय प्राप्त करेंगे और या मर मिटेंगे; किन्तु मैंने इन जमींदारों के व्यवहार से बढ़ कर शानदार कोई दृश्य कभी नहीं देखा! पहले उन्होंने हमारी एक सवार पलटन पर हमला किया। हमारे सवार उनके मुक़ाबले पर न ठहर सके और इतने तितर-बितर हो गए कि हमारी दो तोपें, जो उस पलटन के साथ थीं, बड़े खतरे में पड़ गईं। मैंने एक दूसरी सात नम्बर पलटन को आगे बढ़ने का हुक्म दिया। उनके साथ चार और तोपें थीं। ये तोपे शत्रु से पांच सौ गज के फ़ासले पर लगा दी गई। उन पर गोले बरसाने शुरू किए। वे इस बुरी तरह कट-कट कर गिरने लगे, जिस तरह हंसियें से घास। उनका नेता एक लम्बा और चौड़ा आदमी था। उसके गले में एक घेगा था। वह जरा नहीं घबराया। उसने अपनी तोपों के पास दो हरे झण्डे गड़वा कर उनके नीचे अपने आदमियों को जमा किया। किन्तु हमारे गोले इस बुरी तरह बरस रहे थे कि जो लोग तोपों के पास तक पहुंचते थे, वहीं मर कर गिर पड़ते थे। इसके बाद दो और नयी पलटनें हमारी सहायता के लिए पहुंच गईं। तब कहीं हम बाक़ी बचे शत्रुओं को पीछे हटा सके। इस पर भी वे अपनी तलवारें और भाले हमारी ओर घुमाते जाते थे और निर्भीकता के साथ हम से लड़ने के लिए आह्वान करते जाते थे। केवल उन दोनों तोपों के आसपास हमें 125 लाश मिलीं। तीन घण्टे के घमासान संग्राम के बाद विजय हमारी रही।"*

इस तरह के भयंकर संग्राम इस समय में अवध में जगह-जगह हो रहे थे।

अक्तूबर सन् 1858 में कमाण्डर-इन-चीफ़ सर कालिन कैम्पबल ने नय सिरे से अनेक गोरी और काली पलटनों को जमा करके चारों तरफ से अवध के क्रान्तिकारियों को उत्तर की ओर खदेड़ना शुरू किया। नये सिरे से अवध निवासियों ने अपनी एक-एक चप्पा भूमि के लिए विकट संग्राम किया।

---

* Hope Grant's *Incidents of the Sepoy War*, p. 292.

राजा बेनीमाधव

राजा बेनीमाधव के स्थान पर तीन सेनाओं नें तीन तरफ़ से चढ़ाई की। अंगरेजों का बल उस समय बेहद बढ़ा हुआ था और बेनीमाधव के पास सेना और सामान, दोनों की कमी थी। फिर भी, बेनीमाधव ने विदेशियों की अधीनता स्वीकार न की। कमाण्डर-इन-चीफ सर कालिन कैम्पबैल ने बेनीमाधव के पास सन्देश भेजा कि अब आपको विजय की आशा करना व्यर्थ है। यदि आप वृथा रक्तपात नहीं चाहते, तो अंगरेज सरकार की अधीनता स्वीकार कीजिए, आपको क्षमा कर दिया जाएगा और आपकी सारी ज़मींदारी आपको वापस कर दी जाएगी। बेनीमाधव ने उत्तर दिया— –

> **"इसके बाद क़िले की रक्षा कर सकना मेरे लिए असम्भव है, इसलिए मैं क़िले को छोड़ रहा हूं। किन्तु मैं अपना शरीर हरगिज आपके सुपुर्द न करूंगा; क्योंकि मेरा शरीर मेरा अपना नहीं, मेरे बादशाह का है।"**

निस्सन्देह 'बादशाह' शब्द से बूढ़े बेनीमाधव का तात्पर्य अवध नरेश नवाब बिरजीस क़दर और दिल्ली सम्राट बहादुरशाह से था।

कम्पनी के शासन का अन्त

क्रान्ति को प्रारंभ हुए पूरा डेढ़ साल बीत चुका था। इस समय वह घटना हुई, जो भारत में अंगरेजी राज के इतिहास में एक विशेष सीमा-चिन्ह मानी जाती है। क्रान्ति के प्रारम्भ में भविष्यवाणी हो चुकी थी कि अंगरेज कम्पनी का राज भारत से उठ जायगा। निस्संन्देह कम्पनी का राज 1 नवम्बर, सन् 1858 को हिन्दुस्तान से हटा लिया गया। इंगलिस्तान के शासकों ने उस समय कम्पनी की एक सौ साल की सत्ता का अन्त कर देना अपनी कुशल के लिए आवश्यक समझा। किन्तु पहली नवम्बर से ईस्ट इण्डिया कम्पनी के स्थान पर इंगलिस्तान की मलका विक्टोरिया का राज इस देश पर क़ायम कर दिया गया।

मलका विक्टोरिया का ऐलान

लार्ड कैनिंग इलाहाबाद में था। पहली नवम्बर को भारत के नरेशों और भारत की प्रजा के नाम मलका विक्टोरिया का एक ऐलान भारत भर में प्रकाशित किया गया। उसी दिन लार्ड कैनिंग ने स्वयं इलाहाबाद में दारागंज के निकट किले के नीचे यह ऐलान हज़ारों मनुष्यों को पढ़ कर सुनाया इस ऐलान में विक्टोरिया की तरफ़ से भारतवासियों को सूचना दी गई कि :—

"कम्पनी का राज अब से समाप्त हुआ और उसके स्थान पर भारत के शासन की बाग हमने (अर्थात् मलका विक्टोरिया ने) अपने हाथों में ले ली है। सिवाय उन लोगों के, जो हमारी अंगरेजी प्रजा की हत्या में भाग लेने के अपराधी हैं, बाकी जो लोग भी हथियार रख देंगे, उन सबको माफ़ कर दिया जाएगा; हिन्दोस्तानियों की गोद लेने की प्रथा आइन्दा से जायज समझी जाएगी और दत्तक पुत्रों को पिता की जायदाद और गद्दी का मालिक माना जाएगा; किसी के धार्मिक विश्वासों या धार्मिक

रीति-रिवाजों में किसी तरह का हस्तक्षेप न किया जाएगा; देशी नरेशों के साथ कम्पनी ने इस समय तक जितनी सन्धियां की हैं; उनकी सब शर्तों का आइन्दा ईमानदारी के साथ पालन किया जाएगा; इसके बाद किसी भारतीय नरेश की रियासत या उसका कोई अधिकार न छीना जाएगा; सब भारतवासियों के साथ ठीक उसी तरह का व्यवहार किया जाएगा, जिस तरह का अंगरेजों के साथ; इत्यादि इत्यादि।

बेगम हज़रतमहल का ऐलान

किन्तु कम से कम अवध निवासियों पर विक्टोरिया के इस ऐलान का भी अधिक प्रभाव न पड़ा। इंगलिस्तान की मलका की तरफ से इस ऐलान के प्रकाशित होते ही बेगम हजरतमहल की तरफ से एक और ऐलान इसके जवाब में अवध की सारी प्रजा के नाम प्रकाशित हुआ। यह ऐलान हिन्दोस्तानी भाषा में था। हम इसके कुछ वाक्य उसके सरकारी अंगरेजी अनुवाद से हिन्दी में अनुवाद करके नीचे देते हैं। बेगम हज़रतमहल ने इस ऐलान में लिखा —

"××× 1 नवम्बर, सन् 1858 का ऐलान, जो हमारे सामने आया है, बिलकुल स्पष्ट है।××× इसलिए हम××× बहुत सोच समझ कर मौजूदा ऐलान प्रकाशित करते हैं, ताकि पूर्वोक्त ऐलान के खास-खास असली उद्देश्य प्रकट हो जायें और हमारी रिआया होशियार हो जाये।

"उस ऐलान में लिखा है कि हिन्दोस्तान का मुल्क, जो अभी तक कम्पनी से सुपुर्द था, अब मलका ने अपने शासन में ले लिया है, और आइन्दा से मलका के क़ानूनों को माना जाएगा। हमारी धर्मनिष्ठ प्रजा को इस पर एतबार नहीं करना चाहिए; क्योंकि कम्पनी के कानून, कम्पनी के अंगरेज मुलाजिम, कम्पनी का गवर्नर-जनरल और कम्पनी की अदालतें इत्यादि, सब ज्यों-की-त्यों बनी रहेंगी। तो फिर वह नयी बात कौन-सी हुई, जिससे जनता को लाभ हो या जिस पर वह विश्वास कर सके?

"उस ऐलान में लिखा है कि कम्पनी ने जो-जो वादे और अहदपैमान किए हैं, मलका उन्हें मंजूर करेगी। लोगों को चाहिए कि इस चाल को ग़ौर से देख लें। कम्पनी ने सारे हिन्दोस्तान पर क़ब्जा कर लिया है और अगर यह बात क़ायम रही, तो फिर इसमें नयी बात क्या हुई? कम्पनी ने भरतपुर के राजा को पहले अपना बेटा बतलाया और फिर उसका इलाक़ा ले लिया। लाहौर के राजा को वे लन्दन ले गए और फिर कभी उसे भारत लौटने न दिया। नवाब शम्सुद्दीन खां को एक तरफ़ उन्होंने फांसी पर लटका दिया और दूसरी तरफ उसे सलाम किया। पेशवा को उन्होंने पूना और सतारा से निकाल दिया और आजीवन बिठूर में क़ैद कर दिया। बनारस के राजा को उन्होंने आगरे में कैद कर दिया। बिहार, उड़ीसा और बंगाल के नरेशों का उन्होंने नाम-निशान तक नहीं छोड़ा। स्वयं हमारे क़दीम इलाके उन्होंने हमसे यह बहाना करके ले लिए कि फ़ौज की तनखाहें देनी हैं, और हमारे साथ जो

सन्धि की, उसकी सातवीं धारा में उन्होंने यह क़सम खाई कि हम आपसे और अधिक कुछ न लेंगे। इसलिए जो-जो इन्तजाम कम्पनी ने कर रखे हैं, यदि वे सब मंजूर किए जाएंगे, तो इससे पहले की हालत में और इस नयी हालत में क्या अन्तर हुआ ? ये सब तो पुरानी बातें हैं। किन्तु हाल में भी क़समों और अहदनामों को तोड़ कर, और बावजूद इस बात के कि अंगरेज़ों ने हमसे करोड़ों रुपये कर्ज़ ले रखे थे——उन्होंने बिना किसी सबब के केवल यह बहाना लेकर कि आपका व्यवहार अच्छा नहीं और आपकी प्रजा असन्तुष्ट है, हमारा मुल्क और करोड़ों रुपये का माल हमसे छीन लिया। यदि हमारी प्रजा हमारे पूर्वाधिकारी नवाब वाजिदअली शाह से असन्तुष्ट थी तो वह हमसे सन्तुष्ट कैसे हो गई। कभी किसी भी नरेश के लिए प्रजा ने अपनी जान और माल को इस तरह कुरबान करके अपनी राजभक्ति का परिचय नहीं दिया, जिस तरह कि हमारी प्रजा ने हमारे साथ किया है। फिर क्या कमी है कि वे हमारा मुल्क हमें वापस नहीं देते ? इसके अलावा उस ऐलान में लिखा है कि मलका को अपना इलाक़ा बढ़ाने की इच्छा नहीं है; फिर भी वह इन देशी रियासतों को अपने राज में मिला लेने से बाज़ नहीं रह सकती। ×××

× × × ×

"उस ऐलान में लिखा है कि ईसाई मजहब 'सच्चा' है किन्तु और किसी मजहब वालों के साथ जियादती न की जाएगी, और सबके साथ एक बराबर कानूनी व्यवहार किया जाएगा। न्यायशासन से किसी मजहब के 'सच्चे' या 'झूठे' होने का क्या सम्बन्ध है ? ××× सुअर खाना और शराब पीना, चर्बी के कारतूस दांत से काटना और आटे और मिठाइयों में सुअर की चर्बी मिलाना, सड़क बनाने के बहाने मन्दिरों और मसजिदों को गिराना, गिरजा बनवाना, गलियों और कूचों में ईसाई मत का प्रचार करने के लिए पादरियों को भेजना ××× इन सब बातों के होते हुए लोग कैसे विश्वास कर सकते हैं कि उनके मज़हब में दखल न दिया जाएगा ? ×××

"उस ऐलान में लिखा है कि ××× जिन लोगों ने हत्याएं की हैं या हत्याओं में मदद दी है, उन पर कोई दया न की जाएगी, बाक़ी सबको क्षमा कर दिया जाएगा। एक जाहिल आदमी भी देख सकता है कि इस ऐलान के अनुसार दोषी या निर्दोष कोई भी मनुष्य नहीं बच सकता। ××× एक बात उसमें साफ़ कही गई है, वह यह कि किसी भी दोषी मनुष्य को न छोड़ा जाएगा, इसलिए जिस गांव या इलाके में हमारी सेना ठहरी है, उसके बाशिन्दे नहीं बच सकते। उस ऐलान को पढ़ कर, जिसमें साफ़ दुश्मनी भरी हुई है, हमें अपनी प्यारी प्रजा की हालत पर बड़ा दुःख है। अब हम एक स्पष्ट और विश्वस्त आज्ञा जारी करते हैं कि हमारी प्रजा में से जिन-जिन लोगों ने मूर्खता करके गांव के मुखियों की हैसियत से अपने तईं अंगरेजों के सामने पेश किया है, वे 1 जनवरी, सन् 1859 से पहले हमारे कैम्प में आकर हाजिर हों। निस्सन्देह उनका कसूर माफ़ कर दिया जायेगा। ××× आज तक कभी किसी ने नहीं देखा कि अंगरेजों ने किसी का कसूर माफ किया हो।

"हमारी प्रजा में से कोई अंगरेजों के ऐलान के धोखे में न आए!"*

अवध में क्रान्तिकारियों की हालत

इस ऐलान के प्रकाशित होने के 6 महीने बाद तक अवध के अन्दर स्वाधीनता का युद्ध बराबर जारी रहा। चार्ल्स बाल लिखता है—

> "मलका विक्टोरिया के ऐलान के बाद भी अवध के अन्दर आश्चर्यजनक युद्ध जारी रहा। विप्लवकारियों के इन सब गिरोहों के साथ उनके देशवासियों को सहानुभूति थी और इस सहानुभूति से उन्हें इतना अधिक बल और इतनी अधिक उत्तेजना प्राप्त हुई कि जिसका अनुमान भी नहीं किया जा सकता। ये विप्लवकारी बिना कमसरियट के जहां चाहे जा सकते थे, क्योंकि लोग सब जगह उन्हें भोजन पहुंचा देते थे। वे बिना पहरे के अपना असबाव जहां चाहे छोड़ सकते थे, क्योंकि लोग उनके असबाव पर हमला न करते थे। उन्हें सदा अपनी और अंगरेजों की स्थिति का ठीक-ठीक पता रहता था, क्योंकि लोग उन्हें घंटे-घंटे भर के अन्दर आकर सूचना देते रहते थे। हम उनसे अपनी कोई योजना छिपा कर न रख सकते थे, क्योंकि हमारी प्रत्येक खाने की मेज़ के गिर्द और अंगरेजी सेना के करीब हर खेमे में उनसे गुप्त सहानुभूति रखने वाले लोग खड़े रहते थे। हमारे लिए उन पर अचानक हमला कर सकना एक अलौकिक-सी बात थी, क्योंकि हमारे चलने की अफवाह एक मनुष्य से दूसरे मनुष्य को, हमारे सवारों से अधिक तेजी के साथ उन तक पंहुच जाती थी।"†

अवधनिवासियों के अन्तिम प्रयत्न

यही कारण था कि विक्टोरिया के ऐलान के छः महीने बाद तक भी अवध का प्रान्त अंगरेज़ों के काबू में न आ सका। समय–समय पर शंकरपुर, ढुंढियाखेड़ा, रायबरेली, सीतापुर इत्यादि स्थानों पर बराबर संग्राम होते रहे। अन्त में अप्रैल सन् 1859 तक अवध के सब रहे–सहे क्रान्तिकारी नेपाल की सरहद के उस पार निकाल दिए गए।

निर्वासित क्रान्तिकारी

कहा जाता है कि क़रीब साठ हजार पुरुष, स्त्री और बच्चों ने नाना साहब, बाला साहब, बेगम हज़रतमहल और बिरजीस क़दर के साथ नेपाल में प्रवेश किया। नाना साहब और महाराजा जंगबहादुर में कुछ दिनों तक पत्र–व्यवहार होता रहा। नाना साहब ने पहले नेपाल दरबार से अंगरेजों के विरुद्ध सहायता की प्रार्थना की उसके बाद केवल भारतीय निर्वासितों के लिए नेपाल में रहने की इजाजत चाही। महाराजा जंगबहादुर ने इनमें से कोई बात स्वीकार न की; बल्कि अंगरेजी सेना को नेपाल में आने और इन भारतीय निर्वासितों का संहार करने की इज़ाजत दे दी। इनमें से अनेक हथियार फेंक कर भारत वापिस आ गए, अनेक जंगलों और पहाड़ों में खप

---

* *History of the Indian Mutiny* by Charles Ball, vol. ii.

† Ibid, vol. ii, p. 572.

गए। नाना साहब का जनरल होप ग्राण्ट के साथ कुछ पत्र-व्यवहार हुआ जिसमें से अन्तिम पत्र में अंगरेज़ों के अन्यायों को दरशाते हुए नाना साहब ने लिखा —

> "आपको हिन्दोस्तान पर कब्जा करने का और मुझे दण्डनीय करार देने का क्या अधिकार है? हिन्दोस्तान पर राज करने का आपको किसने अधिकार दिया ? क्या आप फिरंगी लोग बादशाह हैं, और हम इस अपने मुल्क के अन्दर चोर हैं?"

इसके बाद कुछ पता नहीं कि नानासाहब का क्या हुआ। बेगम हजरतमहल और उसके पुत्र बिरजीस क़दर को कुछ समय बाद नेपाल दरबार ने अपने यहां आश्रय दे दिया।

अवध का पतन

अवध की इस क्रान्ति के सम्बन्ध में इतिहास लेखक मालेसन लिखता है —

> "जिस विप्लव को उन सिपाहियों ने आरम्भ किया था, जिनमें से कि अधिकांश अवध निवासी थे, उस विप्लव में समस्त अवध निवासियों ने शामिल होकर स्वाधीनता के लिए युद्ध किया। हिन्दोस्तान के किसी दूसरे भाग ने इतनी दृढ़ता के साथ डट कर और इतनी अधिक देर तक हमारा मुक़ाबला नहीं किया, जितना अवध ने। इस समस्त युद्ध में उस अन्याय को याद करके, जो कि सन् 1856 में उनके साथ किया गया था। अवध निवासियों के हृदय अधिकाधिक मज़बूत और उनका संकल्प अधिकाधिक दृढ़ होता रहता था। अन्त में, जब कमाण्डर-इन-चीफ सर कालिन केम्पल (लार्ड क्लाइड) ने समस्त अवध में से बचे हुए विद्रोहियों को बीन-बीन कर नेपाल के जंगलों में आश्रय लेने के लिए विवश कर दिया, तो इन लोगों ने प्रायः हार मानने की अपेक्षा भूखों मर जाना अधिक पसन्द किया। किसानों ने, ताल्लुकेदारों नें, जमींदारों ने, व्यापारियों ने बहुत दिनों के लगातार युद्ध के बाद केवल उस समय हार स्वीकार की, जब उन्होंने देख लिया कि अब-सब कुछ हो चुका है ? ।"*

तात्या टोपे के अन्तिम प्रयत्न

इसके बाद केवल तात्या टोपे के अन्तिम प्रयत्नों को बयान करना बाकी रह जाता है ।

तात्या टोपे के मुख्य साथियों, नानासाहब, बाला साहब और लक्ष्मीबाई में से अब कोई बाकी न रहा था। अंगरेजों की सत्ता भारत में फिर से जम चुकी थी। स्वयं तात्या के पास न कोई जंग की सेना थी और न सामान। फिर भी तात्या टोपे ने आशा न छोड़ी। 20 जून सन् 1958 को ग्वालियर से निकल कर तात्या ने रावसाहब, बांदा के नबाब और मुट्ठी भर बचे-खुचे सैनिकों सहित नर्मदा की ओर बढ़ना चाहा। तात्या का उद्देश्य नर्मदा पार कर पेशवा के नाम पर दक्षिण के नरेशों और प्रजा को क्रान्ति के लिए फिर से तैयार करना था। 22 जून को अंगरेज़ी

---

* Malleson's *Indian Mutiny*, vol. v, p. 207.

सेना ने उसे जौरा अलीपुर में जा घेरा। तात्या फिर बच कर निकल गया। तात्या का लक्ष्य इस समय किसी तरह नर्मदा पार करना था और अंगरेज उसे नर्मदा पार करने से रोकना चाहते थे।

तात्या ने सबसे पहले भरतपुर की ओर निगाह की। तुरन्त एक प्रबल अंगरेज़ी सेना तात्या को फंसाने के लिए भरतपुर पहुंच गई। तात्या मुड़ कर जयपुर की तरफ़ बढ़ा। जयपुर की प्रजा और सेना, दोनों तात्या से सहानुभूति रखती थीं। तात्या ने उन्हें तैयार रहने की सूचना दी। अंगरेज़ों को पता चला गया। तुरन्त एक अंगरेजी सेना नसीराबाद से जयपुर के लिए भेज दी गई। तात्या अब दक्षिण की ओर मुड़ा। कर्नल होम्स के अधीन एक सेना ने उसका पीछा किया। तात्या अंगरेज़ी सेना से आंख बचा कर टोंक पहुंच गया। टोंक के नवाब ने नगर के दरवाज़े बन्द कर लिए, और अपनी कुछ सेना चार तोपों सहित तात्या के मुक़ाबले के लिए भेजी। यह सेना सामने आते ही तात्या से जा मिली। उन्होंने अपनी तोपें तात्या के हवाले कर दीं। तात्या टोपे नयी सेना और सामान सहित अब इन्द्रगढ़ की ओर बढ़ा। वर्षा ज़ोरों से हो रही थी। पीछे से होम्स अपनी सेना सहित तात्या की ओर बढ़ा चला आ रहा था। राजपुताने की तरफ से सेनापति राबर्ट्स के अधीन एक सेना तात्या पर हमला करने के लिए आ रही थी। चम्बल नदी तात्या के सामने थी और खूब चढ़ी हुई थी।

तात्या तीनों से बचकर पूर्वोत्तर में बूंदी की तरफ़ बढ़ा। नीमच नसीराबाद के प्रान्त में वह भीलवाड़ा नामक गांव में जाकर ठहरा। जनरल राबर्ट्स ने ख़बर पाते ही 7 अगस्त, सन् 1858 को तात्या पर हमला किया। दिन भर संग्राम होता रहा। रात को तात्या अपनी सेना और तोपों सहित उदयपुर रियासत में कोटरा गांव की तरफ निकल गया।

कोटरा का संग्राम

कोटरा में 14 अगस्त को फिर अंगरेजी सेना ने उसे आ घेरा। संग्राम हुआ, किन्तु इस बार तात्या को अपनी तोपें मैदान में छोड़कर पीछे हटना पड़ा। अंगरेज़ी सेना बराबर तात्या का पीछा करती रही। तात्या फिर चम्बल की तरफ बढ़ा। इस समय एक अंगरेजी सेना पीछे से तात्या की तरफ़ बढ़ी चली जा रही थी, दूसरी दाहिनी ओर से बढ़ी चली आ रही थी और तीसरी उसके ठीक सामने चम्बल के किनारे मौजूद थी। फिर भी किसी को चकमा देते हुए और किसी से बचते हुए तात्या चम्बल तक पहुंच गया और आश्चर्यजनक फुरती के साथ अंगरेज़ी सेना से कुछ ही फ़ासले पर चम्बल नदी को पार कर गया। चम्बल नदी अब तात्या और अंगरेजी सेना के बीच में पड़ गई ? किन्तु तात्या के पास न रसद थी और न तोपें। तात्या सीधे झालरापट्टन की तरफ बढ़ा। वहां का राजा अपनी सेना और तोपों सहित तात्या पर हमला करने के लिए निकला। किन्तु मैदान में पहुंचते ही झालरापट्टन की सेना तात्या की ओर जा मिली। अब तात्या को सेना, सामान, रसद इत्यादि सब कुछ मिल गया। झालरापट्टन की तरफ बढ़ते हुए तात्या के पास एक भी तोप न थी। अब उस के पास 32 तोपें हो गईं। विजयी तात्या ने झालरापट्टन के

राजा से युद्ध के खर्च के लिए 15 लाख रुपये वसूल किए । पांच दिन तक तात्या वहीं ठहरा रहा। उसने अपनी सेना को तनख़ाहें दीं । रावसाहब और वांदा का नबाव बराबर तात्या के साथ थे । तीनों ने मिल कर फिर नर्मदा पार करने का विचार किया । अंगरेजों ने इन लोगों को रोकने के लिए सेनाओं का एक जाल बिछा दिया । किन्तु तात्या के पास अब मुक़ाबले के लिए काफी सामान था । वह अब इंदौर की तरफ बढ़ा ।

इस समय छह बड़े-बड़े अंगरेज, सेनापति राबर्ट्स, होम्स, पार्क, मिचेल, होप और लाकहार्ट छह तरफ से तात्या को घेरने का प्रयत्न कर रहे थे । कई बार तात्या और उसकी सेना अंगरेज़ी सेना को सामने दिखाई तक दे जाती थी । किन्तु फिर भी तात्या बच कर निकल जाता था ।

तात्या की समस्या

रायगढ़ के निकट मिचेल की सेना तात्या पर आ टूटी । थोड़े-से संग्राम के बाद तात्या टोपे फिर अपनी तीस तोपें मैदान में छोड़ कर बच कर निकल गया । मार्ग में एक स्थान पर उसे चार और तोपें मिलीं । इसके बाद उत्तर की तरफ बढ़ कर तात्या ने सिंधिया के नगर ईशगढ़ पर हमला किया और वहां से आठ और तोपें प्राप्त कीं । तात्या जिस तरह हो, नर्मदा पार करने की धुन में था और अंगरेज सेना उसे चारों ओर से घेर कर रोकना चाहती थी । तात्या की इस समय की समस्त यात्राओं, चालों, विजयों और पराजयों को बयान कर सकना असम्भव है । एक अंगरेज लेखक लिखता है —

> "इसके बाद तात्या के बचने और भाग जाने का यह आश्चर्यजनक सिलसिला शुरू हुआ, जो दस महिने तक जारी रहा और जिससे मालूम होता था कि हमारी विजय निष्फल हो गई । इस सिलसिले के कारण तात्या का नाम यूरोप भर में हमारे अधिकांश अंगरेज सेनापतियों के नामों की अपेक्षा कहीं अधिक मशहूर हो गया । तात्या के सामने समस्या सरल न थी । × × × उसे अपनी अव्यवस्थित सेना को लगातार इतनी तेज़ रफ्तार पर ले जाना पड़ता था कि जिससे न केवल उसका पीछा करने वालीं सेनाएं ही, बल्कि वे सेनाएं भी, जो कभी दाहिनी ओर से और कभी बाईं ओर से अचानक उस पर टूट पड़ती थीं, हाथ मलती रह जाती थीं । एक ओर वह इस तरह उन्मत्तवत् अपनी सेना को भगाए लिए जाता, था, दूसरी ओर वह दर्जनों शहरों पर कब्जा कर लेता था, अपने साथ नया सामान जमा कर लेता था, इधर उधर से नयी तोपें साथ ले लेता था और इन सबके अतिरिक्त अपनी सेना के लिए इस तरह के नये स्वयं-सेवक रंगरूट भरती करता जाता था, जिन्हें कि साठ मील रोज़ाना के हिसाब से लगातार भागना पड़ता था । तात्या ने अपने अल्प साधनों से जो-कुछ कर दिखाया उससे साबित है कि उसकी योग्यता साधारण न थी । × × × वह उस श्रेणी का मनुष्य था, जिस श्रेणी का कि हैदरअली था । कहा जाता है कि तात्या नागपुर से होकर मद्रास पहुंचना चाहता था । यदि वह वास्तव में मद्रास तक पहुँच जाता, तो वह हमारे लिए उतना भयंकर साबित होता, जितना कि हैदरअली किसी समय हो चुका था । नर्मदा उसके लिए इतनी ही बड़ी रुकावट

साबित हुई, जितनी कि इंगलिश चैनेल नेपोलियन के लिए। तात्या सब-कुछ कर सका, किन्तु नर्मदा को पार न कर पाया। × × × अंगरेजी सेनाएं शुरू में इतने ही धीरे-धीरे आगे बढ़ीं, जितने धीरे चलने की उनकी आदत थी। किन्तु फिर मजबूर होकर उन्होंने तेज चलना सीख लिया। जनरल पार्क और कर्नल नेपियर की अन्त की कोई-कोई यात्राएं इतनी ही तेज थीं, जितनी कि तात्या की औसत आधी यात्राएं। फिर भी, तात्या बच कर निकलता रहा। गर्मियां निकल गईं, सारी बरसात निकल गई, सारी सर्दी निकल गई, और फिर तमाम गर्मी निकल गईं, तब भी तात्या निकला चला जा रहा था। उसके साथ कभी दो हजार थके हुए अनुयायी होते थे और कभी पन्द्रह हजार।" *

तात्या का नर्मदा पार करना

इसके बाद तात्या ने अपनी सेना के दो टुकड़े किए। एक अपने अधीन, दूसरा रावसाहब के अधीन। दोनों दल दो तरफ़ से आगे बढ़े। कई जगह अंगरेज़ी सेना से लड़ाइयां लड़ते हुए दोनों दल ललितपुर में जाकर फिर मिल गए। यहां पर दक्षिण में मिचेल की सेना, पूरब में कर्नल लिडेल की सेना, उत्तर में कर्नल मीड की सेना, पश्चिम में कर्नल पार्क की सेना और चम्बल की ओर से जनरल राबर्ट्स के अधीन एक सेना—पांच तरफ से पांच अंगरेजी सेनाओं ने तात्या को घेर लिया। तात्या ने अब अंगरेजी सेना को चकमा देने के लिए दक्षिण की यात्रा छोड़ कर तेजी से उत्तर की तरफ बढ़ना शुरु कर दिया। अंगरेज समझे की तात्या ने दक्षिण जाने का विचार छोड़ दिया। किन्तु तात्या फिर अचानक मुड़ पड़ा। तेजी से उसने बेतवा नदी पार की, कजूरी में अंगरेजी सेना के साथ एक संग्राम किया, वहां से रायगढ़ पहुंचा और फिर सीधा तीर की तरह दक्षिण की ओर लपका। अंगरेज उसकी इन चालों से घबरा गए। जनरल पार्क एक तरफ़ से लपका, मिचेल पीछे से लपका, बेचर सामने से तात्या की ओर बढ़ा, किन्तु तात्या अपनी सेना सहित नर्मदा पहुंच ही गया और होशंगाबाद के निकट संसार के बड़े से बड़े युद्ध-विशारदों को चकित कर अपनी सेना सहित नर्मदा को पार कर गया।

इतिहास लेखक मालेसन लिखता है —

"जिस दृढ़ता और धैर्य के साथ तात्या ने अपनी इस योजना को पूरा किया उसकी प्रशंसा न करना असम्भव है।"

'लन्दन टाइम्स' के सम्वाददाता ने लिखा —

"हमारा अत्यन्त अद्‌भुत मित्र तात्या टोपे इतना कष्ट देने वाला और चालाक शत्रु है कि उसकी प्रशंसा नहीं की जा सकती। पिछले जून के महीने से उसने मध्य भारत में तहलका मचा रखा है। उसने हमारे स्थानों को रौंद डाला है, खजानों को लूट लिया है और हमारी मैगज़ीनों को खाली कर दिया है। उसने सेनाएं जमा कर ली हैं और खो दी हैं; लड़ाइयां लड़ी हैं और हार

***The Friend of India*, 1858.

> खाई हैं; देशी नरेशों से तोपें छीन ली हैं, उन तोपों को खो दिया है; फिर और तोपें प्राप्त की हैं उन्हें भी खो दिया हैं। इसके बाद उसकी यात्राएं बिजली की तरह प्रतीत होती है। अठवाड़ों वह तीस-तीस और चालीस-चालीस मील रोजाना चला है। कभी नर्मदा के इस पार और कभी उस पार। वह कभी हमारे सैन्य दलों के बीच से निकल गया है, कभी पीछे से और कभी सामने से × × × कभी पहाड़ों पर से, कभी नदियों पर से, कभी वादियों में से और कभी घाटियों में से, कभी दलदलों में से, कभी आगे से और कभी पीछे से, कभी एक ओर से और कभी घूम कर, × × × फिर भी वह हाथ न आया।" *

अन्त में, अक्तूबर सन् 1858 में तात्या अपनी सेना सहित रावसाहव और वांदा के नवाब को साथ लिए हुए नागपुर के पास पहुंच-गया।

लार्ड कैनिंग की परेशानी

लार्ड कैनिंग और उसके साथी काफ़ी घबरा गए। मालेसन लिखता है—

> "जिस मनुष्य को महाराष्ट्र अन्तिम पेशवा का न्यायोचित उत्तराधिकारी स्वीकार करता था, उसका भतीजा सेना सहित महाराष्ट्र की भूमि पर जा पहुंचा। × × × निजाम हमारा वफ़ादार था। किन्तु वह समय बड़ा विचित्र था। × × × इससे पहले भी इस तरह की मिसालें हो चुकी थीं, जब कि यदि किसी नरेश ने राष्ट्र के भावों के विरुद्ध काम किया, तो प्रजा ने अपने उस नरेश के विरुद्ध विद्रोह खड़ा कर दिया। सिंधिया के विरुद्ध भी इस तरह का विद्रोह हो चुका था। हमें यह भय होना आवश्यक था कि कहीं ऐसा न हो कि तात्या की सेना समस्त महाराष्ट्र को हमारे विरुद्ध शस्त्र उठा लेने के लिए उत्तेजित कर दे, और फिर जब सारी महाराष्ट्र क़ौम विदेशियों के विरुद्ध हथियार उठा ले तो इसे देख कर दक्षिण (अर्थात् निजाम के इलाके) के लोग भी रोके न रुक सकें।" †

तात्या नागपुर में

निस्संदेह यदि यही घटना एक साल पहले हुई होती, तो सम्भव था कि बाद के भारतीय इतिहास की गति दूसरी ओर को पलट जाती। किन्तु पिछले एक साल के अन्दर भारतवासियों का उत्साह काफी टूट चुका था। उत्तर भारत में जिस तात्या को लोग स्वयं आ-आकर खुशी से रसद पहुंचाते थे, उस तात्या के पास नागपुर के महाराष्ट्रीय लोग अब आने तक से डर गए।

तात्या की सेना कुछ दिन वहां ठहरी रही। अंगरेज़ी सेना ने फिर उसे चारों तरफ़ से घेरना शुरू किया। तात्या के दक्षिण और उत्तर दोनों तरफ़ विशाल अंगरेज़ी सेनाएं थीं। उत्तर की सेना नर्मदा पार कर बढ़ी चली आ

---

* *The Times*, 17th January, 1859.

† Malleson's *Indian Mutiny*, vol. v, pp. 239-40.

रही थी। नागपुर से तात्या को कोई सहायता न मिल सकी। लाचार होकर तात्या ने अब बड़ौदा की तरफ बढ़ने का विचार किया।

तात्या का अलौकिक कूच

नर्मदा के हर घाट पर दोनों तरफ अंगरेजी सेना पड़ी थीं। तात्या बढ़ा। मेजर सण्डरलैण्ड की सेना के साथ उसका एक संग्राम हुआ। तात्या ने अपनी सेना को आज्ञा दी कि सब तोपें पीछे छोड़ कर नर्मदा में कूद पड़ीं। तात्या और उसकी सेना एक पल भर के अन्दर नर्मदा के पार दिखाई दी। मालेसन लिखता है —

"संसार की किसी भी सेना ने कभी कहीं पर इतनी तेजी के साथ कूच नहीं किया, जितनी तेजी के साथ तात्या की भारतीय सेना इस समय कूच कर रही थी।"

नवाब बांदा का आत्मसमर्पण

तात्या राजपुरा पहुंचा। वहां से सरदार से उसने घोड़े और कुछ धन वसूल किया। अगले दिन वह छोटा उदयपुर पहुंचा। बड़ौदा यहां से केवल 50 मील था। इतने में पार्क के अधीन अंगरेजी सेना छोटा उदयपुर आ पहुंची। तात्या को बड़ौदा का विचार छोड़ देना पड़ा। अब वह फिर उत्तर की तरफ मुड़ा। ठीक इस समय बांदा के नवाब ने निराश होकर मलका विक्टोरिया के ऐलान के अनुसार हथियार रख दिए। तात्या और रावसाहब अकेले रह गए। मालेसन लिखता है —

"किन्तु वे दोनों नेता इस कठिन आपत्ति के समय भी इतने ही शान्त और चतुर बने रहे, जितने कि पहले किसी भी समय में रह चुके थे।"

मेजर राक की पराजय

तात्या अब उदयपुर (मेवाड़) की तरफ़ बढ़ा। तुरन्त कई अंगरेजी सेनाएं उस पर टूट पड़ीं। वह मुड़ कर जंगल में घुस गया। तात्या के लिए अब बच सकना असम्भव दिखाई देने लगा। एक दिन तात्या और रावसाहब करीब चार वजे शाम को प्रतापगढ़ की तरफ़ बढ़े। मेजर राक ने आकर सामने से उनका मार्ग रोक लिया। तात्या मेजर राक की सेना को परास्त करता हुआ आगे निकल गया। 25 दिसम्बर, सन् 1858 को तात्या बांसवाड़ा के जंगल से निकला। ठीक इसी समय दिल्ली के राजकुल का प्रसिद्ध शाहज़ादा फ़ीरोजशाह, जो अवध के संग्रामों में भाग ले चुका था, अपनी सेना सहित तात्या की सहायता के लिए आ रहा था। जिस तरह शहजादे फ़िरोजशाह ने सेना सहित गंगा और जमना को पार कर तात्या से जाकर भेंट की, उसकी कहानी भी अत्यन्त मनोरंजक है। 13 जनवरी, सन् 1859 को इन्द्रगढ़ में फ़ीरोज़शाह, तात्या और रावसाहब की भेंट हुई। सिंधिया का एक सरदार मानसिंह भी उस समय इन लोगों में आकर मिल गया।

---

* Ibid, vol. v, p. 247.

तात्या देवास में

किन्तु इस समय तात्या फिर बुरी तरह चारों ओर से घिर रहा था। नेपियर उसके उत्तर में था, शावर्स उत्तर-पश्चिम में, सामरसेट पूरब में, स्मिथ दक्षिण–पूरब में, मिचेल और बैनसन दक्षिण में, और बानर दक्षिण-पश्चिम और पश्चिम में। ये सब तात्या को घेर लेने के लिए बढ़े चले आ रहे थे। तात्या बढ़ते–बढ़ते देवास पहुंचा।

16 जनवरी को सवेरे देवास में तात्या, रावसाहब और फीरोजशाह, तीनों खेमें में बैठे बातचीत कर रहे थे। अचानक किसी अंगरेज अफ़सर का हाथ तात्या की कमर पर पड़ा। अंगरेज़ सिपाही खेमें में आ टूटे। मालूम हुआ, तात्या पकड़ा गया, किन्तु अचानक फिर ये तीनों नेता अंगरेज़ सिपाहियों के चंगुल से निकल गए। चारों तरफ खोज हुई, किन्तु उनका पता न चल सका।

मानसिंह का विश्वासघात

21 जनवरी को ये तीनों अलवर के निकट शिखरजी में दिखाई दिए। अंगरेजी सेना बराबर उन्हें घेरने का प्रयत्न करती रही। तात्या की सारी आशाएं अब टुकड़े-टुकड़े हो चुकी थीं। वह थका हुआ था। मानसिंह पास के जंगल में छिपा था। तात्या ने फ़ीरोजशाह और रावसाहब को सेना के साथ छोड़ा और स्वयं तीन आदमियों सहित मानसिंह से मिलने गया। मानसिंह इस समय तक अंग्रेजों से मिल चुका था। उससे जागीर का वादा कर लिया गया था। फ़ीरोजशाह ने तात्या को वापस अपने पास बुलाना चाहा। मानसिंह ने उसे रोक लिया और 7 अप्रैल सन् 1859 को ठीक आधी रात के समय सोते हुए तात्या को शत्रु के हवाले कर दिया।

तात्या का बलिदान

18 अप्रैल, सन् 1859 तात्या टोपे के लिए फांसी का दिन नियत हुआ। चारों तरफ़ फौज का पहरा था। लिखा है कि फौज के चारों तरफ टीलों पर खड़े हजारों गांव वाले तात्या को दूर से श्रद्धा के साथ नमस्कार कर रहे थे। तात्या धैर्य और साहस के साथ फांसी के तख्ते पर चढ़ा, उसकी बेड़ियां काटी गईं। तात्या ने हँसते हुए अपने हाथ से फांसी का फन्दा गले में डाल लिया। तख्ता खिच गया। शाम तक तात्या का शव फांसी पर लटकता रहा। शाम को अनेक यूरोपियन दर्शकों ने दौड़ कर तात्या के सिर के दो-दो चार–चार बाल तोड़ लिए और वीर तात्या की स्मृति स्वरूप उन्हें अपने पास रखा।

रावसाहब और फ़ीरोजशाह का अन्त

रावसाहब और शाहजादा फ़ीरोजशाह एक महीने बाद तक जी तोड़ लड़े। इसके बाद वेश बदल कर दोनों जंगलों में निकल गए। फ़ीरोजशाह सन् 1864 तक भारत के जंगलों में घूमता रहा। उसके बाद अरब चला गया,

जहां सन् 1866 में वह अन्य अनेक निर्वासित भारतीय क्रान्तिकारियों के साथ फ़कीर के वेष में देखा गया। रावसाहब तीन साल बाद पकड़ा गया और 20 अगस्त, सन् 1862 को कानपुर में फांसी पर लटका दिया गया।

इस तरह हिन्दोस्तान को विदेशी शासन से स्वाधीन करने का सबसे महान और व्यापक प्रयत्न निष्फल गया और अंगरेजी राज की जड़ एक काल के लिए और अधिक मज़बूती के साथ इस देश में जम गई।

पचासवां अध्याय

सन् 57 के स्वाधीनता संग्राम पर एक दृष्टि

असफलता का मुख्य कारण

इस विशाल राष्ट्रीय प्रयत्नों के कारणों और उसकी प्रगति को ऊपर के पृष्ठों में विस्तार के साथ बयान किया जा चुका है । इस प्रयत्न की असफलता के कारण भी इन्हीं पृष्ठों में स्थान-स्थान पर दिखाए जा चुके हैं। इनमें मुख्यतम हमें दो दिखाई देते हैं —

समय से पहले युद्ध का प्रारम्भ

पहला यह, कि कारतूसों के और खास कर मेरठ की घटना के कारण युद्ध नियत समय से पहले शुरू हो गया। हम ऊपर मालेसन, विलसन, ह्वाइट— जैसे अंगरेज विशेषज्ञों की सम्मति इस सम्बन्ध में नकल कर चुके हैं कि यदि पूर्व-निश्चय के अनुसार 31 मई, सन् 1857 को सब स्थानों पर एक साथ युद्ध शुरू हुआ होता, तो अंगरेज शासकों के लिए भारत को फिर से विजय कर सकना सर्वथा असम्भव होता।

अंगरेजों को सिखों और गोरखों की सहायता

दूसरा कारण यह था कि सिखों और गोरखों ने अंगरेजों की सहायता करके उनके लिए दिल्ली और लखनऊ—जैसे केन्द्रों को फिर से विजय कर सकना सम्भव बना दिया। इस सम्बन्ध में पंजाब के चीफ कमिश्नर सर जान लारेन्स की स्पष्ट राय नक़ल की जा चुकी है । इसमें कुछ भी सन्देह नहीं कि यदि पटियाला, नाभा और जींद ने ऐन समय पर अंगरेजों को मदद न दी होती तो दिल्ली का फिर से विजय हो सकना असम्भव था, और एक बार यदि दिल्ली की सेना विजय प्राप्त कर पूरब और दक्षिण में उतर आती, तो सन् 57 की क्रान्ति के बाद का सारा नक़शा बदल जाता।

भारतवासियों का सहयोग

क्रान्तिकारियों का संगठन सुन्दर और प्रशंसनीय था, फिर भी लाखों भारतवासी अपने देशवासियों के विरुद्ध तरह-तरह से अंगरेजों को सहायता दे रहे थे। रसल लिखता है—

> "फिर भी हमें यह स्वीकार करना पड़ता है कि अंगरेज चाहे कितने भी बहादुर क्यों न हों, यदि सब के सब भारतवासी पूरी तरह हमारे विरुद्ध हो जाते तो भारत में कहीं अंगरेजों का निशान तक बाक़ी न रह जाता। हमारे क़िलों के भीतर की सेनाओं ने जिस तरह जी तोड़ कर अपने स्थानों की रक्षा की, वह निस्सन्देह वीरोचित थी। किन्तु इस वीरता में भारतवासी शामिल थे, और उन्हीं की सहायता और उपस्थिति के कारण उन स्थानों की रक्षा करना हमारे लिए सम्भव हो सका। यदि पटियाला और जींद के राजा हमारे साथ मित्रता

न दरशाते और यदि सिख हमारी पलटनों में भरती न होते और उधर पंजाब को शान्त न रखते तो हमारा दिल्ली का मोहासरा कर सकना सर्वथा असम्भव होता। लखनऊ में भी सिखों ने खूब सहायता दी और हर स्थान पर जिस तरह कि भारतवासी हमारी सेनाओं में भरती होकर लड़ाई में हमारे बल को बढ़ाते थे, उसी तरह हर जगह भारतवासी ही हमारी घिरी हुई सेनाओं की मदद करते थे, हमें भोजन पहुंचाते थे और हमारी सेवा करते थे। देखिए कि इसी क्षण यहां इस कैम्प में हम सब की हालत क्या है! देशी फ़ौजे ही सब आगे रह कर हमारी रक्षा कर रही हैं, देशी लोग हमारे घोड़ों के लिए घास काट रहे हैं, वे ही हमारे साईस हैं, वे ही हमारे हाथियों को चारा देते हैं, वे ही हमारी बारबरदारी का इन्तजाम करते हैं, कमसरियट में वे ही हमारे भोजन का प्रबन्ध करते हैं, वे ही हमारे गोरे सिपाहियों का खाना पकाते हैं, वे ही हमारे कैम्प की सफ़ाई करते हैं, वे ही हमारे डेरे गाड़ते हैं और इन्हें इधर-उधर ले जाते हैं, वे ही हमारे अफ़सरों का सब काम करते हैं और वे ही हमें अपने पास से रुपये उधार देते हैं। जो गोरा सिपाही मेरे साथ लिखने-पढ़न का काम करता है, वह कहता है कि बिना हिन्दोस्तानी, नौकरों, डोली उठाने वालों, अस्पताल के आदमियों और अन्य भारतवासियों के, उसकी पलटन एक सप्ताह भी जीवित नहीं रह सकती।''*

जिस तरह सिखों के बिना दिल्ली की, उसी तरह गोरखों के बिना लखनऊ की पराजय असम्भव थी।

इन दो मुख्य कारणों के अलावा इनसे कुछ कम महत्व के तीन और कारण युद्ध की असफलता के बताए जा सकते हैं।

योग्य और प्रभावशाली नेताओं का अभाव

इनमें पहला था, दिल्ली के मोहासरे के दिनों में दिल्ली के अन्दर एक योग्य, शक्तिशाली और प्रभावशाली नेता का अभाव, जो शहर के अन्दर की समस्त शक्तियों को अपने वश में कर, उन्हें एक महान प्रयत्न के लिए अग्रसर

---

* "Yet it must be admitted that, with all their courage, they (The British) would have been quite exterminated if the natives had been, all and altogether, hostile to them. The desperate defences made by the garrisons were no doubt heroic; but the natives shared their glory; and they by their aid and presence rendered the defence possible. Our siege of Delhi would have been quite impossible, if the Raias of Patiala and Jhind had not been our friends and if the Sikhs had not recruited in our battalions and remained quite in the Punjab. The Sikhs at Lucknow did good service, and in all cases our garrisons were helped, fed and served by the natives, as our armies were attended and strengthened by them in the field. Look at us all, here in camp, at this moment, our outposts are native troops, natives are cutting grass for our horses and grooming them, feeding the elephants, managing the transports, supplying the commissariat which feeds us, cooking our soldiers' food, clearing their camp, pitching and carrying their tents, waiting on our officers, and even lending us their money. The soldier who acts as my amanuensis declares that his regiment could not have lived a week but for the regimental servants, doli-bearers, hospital men and other dependents."—*My Diary in India* by Sir W. Russell.

कर सकता। यही एकमात्र कारण था कि दिल्ली के भीतर की विशाल वीर सेना बाहर निकल कर बाहर की अंगरेजी सेना को, जिसकी तादाद कहीं कम थी, महीनों तक समाप्त न कर सकी। यही त्रुटि एक दरजे तक लखनऊ में भी थी और इसी के कारण कभी–कभी ऐन नाजुक मौक़े पर क्रान्तिकारियों में व्यवस्था और आज्ञापालन की कमी दिखाई देती थी।

देशी नरेशों का अकर्मण्यता

दूसरा कारण था, सिंधिया, होलकर और राजपूताने के नरेशों का केवल संकोच और अविश्वास के कारण उस राष्ट्रीय क्रान्ति में भाग न ले सकना। यदि महाराजा जयाजीराव सिंधिया या कोई प्रमुख राजपूत नरेश समय पर अपनी सेना सहित दिल्ली पहुंच जाता, तो कम्पनी की सेना के लिए ठहर सकना सर्वथा असम्भव होता और राजधानी के अन्दर प्रभावशाली नेता की कमी भी पूरी हो जाती। सम्राट बहादुरशाह ने इन लोगों को क्रान्ति की ओर करने का प्रयत्न भी किया, किन्तु उसे सफलता न मिल सकी।

दक्षिण में उदासीनता

तीसरा कारण यह था, कि विन्ध्याचल से नीचे के भाग ने उससे शतांश उत्साह के साथ भी क्रान्ति का साथ नहीं दिया, जिस उत्साह के साथ विंध्याचल से उत्तर के भाग ने दिया। यदि मद्रास, बम्बई और महाराष्ट्र में उत्तर भारत के साथ–साथ उसी तरह युद्ध शुरू हो गया होता, तो उन प्रान्तों से उत्तर की ओर सेना भेज सकना अंगरेजों के लिए असम्भव होता; जनरल नील, जनरल हैवलॉक इत्यादि कलकत्ते तक भी न पहुंच पाते; और बनारस, इलाहाबाद, कानपुर और अन्त में लखनऊ विजय कर सकना अंगरेजों के लिए नामुम्किन होता।

युद्ध की असफलता के ये पांचों कारण इस तरह के हैं कि यदि इनमें से कोई एक भी अनुपस्थित होता, तो बाकी चारों के होते हुए भी शायद युद्ध असफल न हो पाता।

अब प्रश्न यह हो सकता है कि यदि सन् 57 का युद्ध सफल हो गया होता, तो भारत या संसार के लिए नतीजा क्या होता?

दोनों तरफ़ के अत्याचारों की तुलना

किसी भी निष्पक्ष इतिहास लेखक को इससे इनकार नहीं हो सकता कि अधिकांश क्रान्तिकारी अपने देश की स्वाधीनता और अपने धर्म की रक्षा के लिए मैदान में उतरे थे। दूसरी तरफ, जिन अंगरेजों ने उनका विरोध किया, उनका मुख्य उद्देश्य इस देश के ऊपर अंगरेजी कौम के स्वेच्छाशासन को कायम रखना था। निस्संदेह पहला आदर्श दूसरे आदर्श की अपेक्षा उच्चतर है। दोनों तरफ़ से समय–समय पर प्रशंसनीय वीरता और साहस का परिचय भी दिया गया। यहां दोनों तरफ़ के अत्याचारों पर एक निगाह डालना अनुचित न होगा। बहुत मुमकिन है कि दिल्ली, कानपुर, झांसी इत्यादि में कुछ अंगरेज और बच्चों की हत्या हुई हो। किन्तु इस सम्बन्ध में हमें एक-दो बातों को याद रखना होगा।

क्रान्तिकारियों पर झुठे इलज़ाम

पहली यह, कि क्रान्तिकारियों के अत्याचारों के सम्बन्ध में जितनी बातें कुछ अंगरेज इतिहास लेखकों की पुस्तकों में पाई जाती हैं, उनमें असत्य की माला बहुत काफ़ी है। इसके सबूत में हम ऊपर भी कई निष्पक्ष अंगरेजों की सम्मतियां नक़ल कर चुके हैं। इंगलिस्तान की पार्लियामेण्ट के मेम्बर, मिस्टर लेयर्ड, ने इस तरह की घटनाओं की सचाई का ठीक-ठीक पता लगाने के लिए क्रान्ति के दिनों में भारत की यात्रा की। 11 मई, सन् 1858 को इंगलिस्तान लौट कर लेयर्ड ने लन्दन में एक वक्तव्य देते हुए कहा—

> **"जब मैं भारत में था मैं नें हर दरजे की सचाई के साथ यह पता लगाने का प्रयत्न किया कि किसी भी अंगरेज का अंग-भंग किया गया था कि नहीं। जिन लोगों को गवर्नमेंण्ट ने इस विषय की जांच करने के लिए नियुक्त किया था, और जिनके बारें में मुझे यह कहते हुए दुःख होता है कि यदि उन्हें भारतवासियों के अत्याचारों की एक भी मिसाल मिलती, तो वे खुश होकर उससे चिपट जाते, उन लोगों तक ने मुझे विश्वास दिलाया कि उन्हें एक भी मिसाल ऐसी नहीं मिलती, जिसमें किसी अंगरेज का अंग-भंग किया गया हो। इसके विपरीत बेशुमार मिसालें ऐसी मिलती हैं, जिनमें हमारी सेना ने (अंग-भंग करके) भंयकर बदला लिया × × ×।"***

निस्संदेह इस बयान में उन अंगरेज पूरुषों का ज़िक्र नहीं है, जो युद्ध में लड़ते हुए कटे।

एक दूसरे स्थान पर लेयर्ड ने कहा—

> **"अत्यन्त सावधानी के साथ जांच करने के बाद, अच्छे से अच्छे और सबसे अधिक विश्वसनीय लोगों से मुझे जो कुछ सूचना मिली है, उससे मुझे इस बात का पूरा विश्वास है कि दिल्ली, कानपुर, झांसी और दूसरे स्थानों पर जो अनेक भीषण अत्याचार कहा जाता है कि, अंगरेज़ स्त्रियों और बच्चों के ऊपर किए गए, वे सबके सब, प्रायः बिना एक भी अपवाद के झुठे हैं और कहने वालों के अपने मन से गढ़े हुए हैं, जिसके लिए उन्हें लज्जा आनी चाहिए।"†**

क्रान्ति के नेताओं की उदारता

इस विषय की अंगरेज़ लेखकों की प्रामाणिक सम्मतियां भी नक़ल की जा चुकी है कि कानपूर में अंगरेज स्त्रियों और बच्चों की हत्या यदि हुई भी हो तो, वह नाना साहब की इजाज़त से नहीं की गई और न नाना साहब पर उसकी जिम्मेदारी लादना न्याय है। झांसी में भी किसी निहत्थे अंगरेज़ की हत्या में रानी लक्ष्मीबाई का कोई हाथ न था। सम्राट बहादुरशाह और नाना साहब, बेगम हज़रतमहल और रानी लक्ष्मीबाई, चारों ने समय-समय पर अंगरेज स्त्रियों और बच्चों की रक्षा का पूरा प्रयत्न किया। फ़ारेस्ट लिखता है कि अवध के नेताओं ने एक ऐलान द्वारा अपने अनुयायियों को आज्ञा दी कि—"स्त्रियों

---

* Mr. Layard, M. P., *The Home News*, May 17th, 1888, p. 690.

† See page 885 of this book.

या बच्चों की हत्या से अपने आन्दोलन को कलंकित न करना ।" अवध के अन्दर असंख्य मिसालें ऐसी मिलती हैं, जिनमें क्रान्तिकारी जमींदारों और जनता ने अंगरेज स्त्रियों और बच्चों, यहां तक कि आश्रित अंगरेज पुरुषों को अपने महलों और मकानों में आश्रय दिया । इसके विपरित, जनरल नील, कूपर, हैवलॉक और हडसन—जैसे अनेक अंगरेज अफ़सरों ने स्थान-स्थान पर जिस तरह के कृत्य किए, उनके बारे में स्वयं गवरनर-जनरल लार्ड कैनिंग ने 24 दिसम्बर, सन् 1857 को अपनी कौन्सिल के अन्दर कहा था।—

> **"न केवल छोटे-बड़े हर तरह के अपराधी ही, बल्कि वे लोग भी, जिनका अपराध कम से कम अत्यन्त सन्दिग्ध था, बिना किसी भेदभाव के फ़ांसी पर लटका दिए गए। गांवों को आम तौर पर जला डाला गया और लूट लिया गया। इस तरह, दोषी और निर्दोषी, पुरुष और स्त्री, बच्चे और बूढ़े, सबको बिना भेदभाव के दण्ड दिया गया ×××।"**

स्वाधीनता संग्राम पर एक कलंक

साथ ही भारतीय क्रान्तिकारी अपनी 'स्वाधिनता और धर्म' के नाम पर खड़े हुए थे। अंगरेज जनरल नील के अत्याचार कानपुर या किसी दूसरी जगह निहत्थे अंगरेजों की हत्या के लिए कोई बहाना नहीं हो सकते ।

यदि क्रान्ति सफल हो गई होती

फिर यह प्रश्न उठता है कि यदि सन् 57 की क्रान्ति सफल हो गई होती तो हालत क्या होती । संसार की सभी कौमों और देशों के लिए स्वाधीनता हर हालत में श्रेयस्कर और पराधीनता सब से बड़ा शाप है । किसी भी क़ौम की उन्नति और विकास का पूरा अवसर केवल स्वाधीनता में ही मिल सकता है । साथ ही, सन् 57 के हालात को ध्यान से पढ़ने पर तीन बातें सबसे अधिक चमकती हैं ।

'धर्म' और 'दीन' की आवाज

पहली यह कि इसमें सन्देह नहीं कि सन् 57 का स्वाधीनता संग्राम इस देश में हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य का एक सुन्दर और ज्वलन्त उदाहरण था । उस संग्राम के सब हिन्दू और मुसलमान नेता, और लाखों हिन्दू और मुसलमान जन-सामान्य, अपने-अपने धार्मिक विश्वासों पर क़ायम रहते हुए, भारत सम्राट के झण्डे के नीचे, कन्धे से कन्धा मिला कर, अपने प्यारे देश की आजादी के लिए युद्ध कर रहे थे । आजादी की लगन ने उस समय भारत के हिन्दुओं और मुसलमानों को कितना बेचैन कर रखा था, इसकी एक मिसाल यह है कि गाय और सुअर की चर्बी के जो कारतूस क्रान्ति का एक खास सबब थे, एक बार युद्ध शुरू हो जाने पर, युद्ध के अनेक मैदानों में, हजारों हिन्दू और मुसलमान सिपाही, विदेशियों से लड़ते समय, उन्हीं कारतूसों को खुशी के साथ अपने दातों से काटते हुए दिखाई दिए।

साथ ही, इसमें भी सन्देह नहीं कि सन् 57 की क्रान्ति में भाग लेने वाले लाखों हिन्दू और मुसलमान ऐसे थे, जिनके हथियार उठाने का मुख्य कारण यह था कि उन्हें अपना 'धर्म' खतरे में दिखाई देता था। विधर्मी

विदेशियों की अनेक करतूतों और ख़ास कर चरबी के कारतूसों ने उनकी इस आशंका को और मजबूत कर दिया था। इन भारतीय वीरों के हृदय की सचाई, इनके त्याग और इनकी वीरता का हमें आदर है। किन्तु हिन्दू, मुस्लिम, ईसाई या अलग-अलग धर्मों का समय संसार से उठता जा रहा है। सच्चा वास्तविक मानव धर्म मनुष्यमात्र के लिए एक है। इस सच्चे धर्म की झलक अनेक हिन्दू, मुसलमान और दूसरे महात्माओं की वाणी में समय-समय पर मिल चुकी है। आज समस्त संसार इस सच्चे व्यापक धर्म की बाट जोह रहा है, और जिस भारत ने कबीर और नानक-जैसों को पैदा किया, उससे आशा की जाती है कि वह संसार को इस सच्चे सार्वजनिक धर्म की ओर ले जाने में अग्रसर होगा।

हिन्दू और मुस्लिम धर्मों की पृथक–पृथक लहरें भारतीय समाज के जीवन में पिछले एक हजार साल के अन्दर अनेक ढंग से टकरा चुकी थीं। हम इस पुस्तक के शुरू में दिखला चुके हैं कि उन एक हजार साल के अन्दर जिस मेल और प्रेम के साथ हिन्दू और मुसलमान इस देश में रहते रहे, उसकी मिसाल संसार के किसी भी दूसरे देश में मिलना कठिन है। किन्तु साथ ही हमारे दैनिक और मानसिक जीवन में वे टक्करें भी मौजूद थीं, जिन्होंने कबीर को "आपस में दोउ लरि लरि मूए" और नानक को "दावा राम रहीम कर लड़दे बेइमान" कहने पर मजबूर किया। इन टक्करों को हमारे क़ौमी जीवन से और उनके कारणों को हमारे दिलों से मिटाने के महान् प्रयत्न भी जारी थे। किन्तु कभी-कभी सन्देह होता है कि सन् 57 के जिस पहलू का हम जिक्र कर रहे हैं, सफलता के बाद, वह पहलू इन समन्वयात्मक प्रयत्नों में सहायक होता या भविष्य के लिए इन टक्करों की सम्भावना को और अधिक बढ़ा देता।

बहुत सम्भव है कि इन टक्करों का नतीजा अन्त में अच्छा ही होता और ये टक्करें हमें शीघ्र सार्वजनिक सत्य यानी व्यापक मानव धर्म की चट्टान तक पहुंचा देतीं। सम्भव है कि सन् 1757 से 1857 तक के अनुभवों के कारण इन टक्करों में से ही अनेक कबीर और अकबर पैदा हो जाते, और यह अत्यन्त जटिल समस्या सुन्दरतापूर्वक सदा के लिए हल हो जाती। कम से कम यदि सन् 57 का महान प्रयत्न सफल हो गया होता, तो फिर किसी तीसरी ताकत को अपने तुच्छ स्वार्थ के लिए इस समस्या को जानबूझ कर और अधिक जटिल बना देने का मौका न मिलता। किन्तु वे टक्करें देश को किस ओर ले जातीं, इस सब में कितना समय लगता, और कबीर और अकबर के स्वप्न कब तक पूरे हो पाते यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता।

उच्च कुलों का अभिमान

दूसरी बात यह है कि सन् 57 का समय शाही घरानों और उच्च कुलों के मान, उनकी सत्ता और कुलीनता के अभिमान का समय था। इन कुलों के ही नाम पर सन् 57 का युद्ध शुरू हुआ। दिल्ली में बख्त खां, लखनऊ में मौलवी अहमदशाह, कानपुर में अजीमुल्ला खां और महाराष्ट्र में तात्या टोपे— जैसे योग्य देशभक्तों को केवल इसलिए यथेच्छ सफलता न मिल सकी, क्योंकि वे किसी राजकुलों में पैदा न हुए थे। सन् 57 की सफलता के बाद, सम्भव है कि, एक तो भारत के राजकुलों में मेल कायम रहना

इतना सरल न होता, जितना सम्राट बहादुरशाह ने राजपुताना इत्यादि के राजाओं के नाम आपने पत्र में आशा की थी और दूसरे सम्भव है कि जनता की सत्ता, जनता के शासन और जनता की राजनीति के दिन भारत से कुछ दूर चले गए होते। किन्तु यह सब केलव अन्दाज हैं।

हिंसा और अहिंसा

तीसरी बात यह है कि यद्यपि एक ओर बहादुरशाह, हजरतमहल, कुंवरसिंह और लक्ष्मीबाई- जैसों के- चित्र और चरित्र और दूसरी ओर कैनिंग, नील, हैवलाक और हड्सन- जैसों के चित्र और चरित्र दोनों में साफ अन्तर दिखाई देता है; यद्यपि एक के ऊपर भारत के उच्चतर नैतिक आदर्शों और दूसरे के ऊपर पश्चिम के हीन आदर्श की छाप साफ़ दिखाई देती है, फिर भी जिन साधनों से सन् 57 के क्रान्तिकारी अंग्रेजों का मुकाबला कर रहे थे, ये हिंसात्मक साधन थे। सन् 57 में जिस पक्ष की भी विजय होती, यह विजय 'हिंसा' के सिद्धान्त की ही होती। स्वाभाविक था कि उस संग्राम में वही पक्ष अन्त में विजय प्राप्त करे, जो 'हिंसा' के सिद्धान्त और उसके उपयोग में अधिक निस्संकोच और अधिक सिद्धहस्त हो। भारत या एशिया का वास्तविक और चिरकालीन गौरव इस तरह की विजय में न था। हमें पूरा विश्वास है कि हिंसा के ऊपर अहिंसा की श्रेष्ठता और अधिक बलवत्ता की अमली शिक्षा संसार को देने का काम भारत के ही लिए नियत है, और सन् 57 की राष्ट्रीय क्रान्ति की शताब्दी से पहले भारत के पग उस अधिक ज्वलन्त विजय की ओर साफ़ बढ़ते हुए दिखाई दे रहे हैं।

किन्तु ये सब केवल अनुमान की चीजें हैं। सन् 57 की असफलता की याद किसी भी सहृदय और विचारवान भारतवासी के हृदय को दुखी और संतप्त किए बिना नहीं रह सकती। मालूम होता है कि शायद हमारी इन सब त्रुटियों की पूर्ति के लिए और भारतीय आत्मा के पूर्ण परिमार्जन के लिए ही इस देश को अभी कुछ समय और विदेशी शासन की ज्वाला में से होकर निकलना बदा था।

यदि क्रान्ति न हुई होती

एक प्रश्न यह भी उठता है कि यदि सन् 57 की क्रान्ति ही न हुई होती, तो सूरत क्या होती? सन् 1757 से 1857 तक के कम्पनी के राज और उसके साधनों और करतूतों का बयान इस पुस्तक में किया जा चुका है। उस समस्त दुखकर कहानी को दोहराना असम्भव और निरर्थक है। लार्ड डलहौजी के ही भारतीय रियासतों को हड़पने के बारे में हम इतिहास लेखक लुडलो की यह राय नक़ल कर चुके हैं कि —

> **"यदि इन हालात में उन लोगों के पक्ष में, जिनकी रियासतें छीन ली गई थीं, और छीनने वालों के विरुद्ध भारतवासियों के भाव न भड़क उठते तो भारतवासी मनुष्यत्व से गिरे हुए समझे जाते।"***

इसी तरह, यदि दिल्ली सम्राट के लगातार अपमान और लखनऊ की स्वाधीनता के नाश से भारतवासियों के हृदयों में जोश उत्पन्न न होता, तो वे मनुष्य न

---

* *Thoughts on the Policy of the Crown by Ludlow*, pp. 35-36.

कहला सकते। ऐसे ही, मनुष्य का विचार, चाहे सत्य हो या असत्य, किन्तु जिस चीज को भी मनुष्य अपना धर्म समझता है, उसको आघात से बचाने के लिए यदि वह अपना सर्वस्व निछावर करने को तैयार नहीं हो जाता, तो उसे मनुष्य नहीं कहा जा सकता।

ऐसी अवस्था में यदि भारतवासियों में मनुष्यत्व बाकी था, तो सन् 57 की क्रान्ति स्वाभाविक और अनिवाय थी। उस क्रान्ति के आदर्शों के बारे में या क्रान्तिकारियों के सम्मुख वास्तविक आदर्शों के बारे में हम चाहे कुछ भी क्यों न कहे, किन्तु इसमे सन्देह नहीं कि यदि सन् 57 की क्रान्ति न हुई होती, तो उसका यही अर्थ होता कि भारतवासियों में से साहस, स्वाभिमान, कर्त्तव्यपरायणता और जीवन-शक्ति का अंत हो चुका। अंगरेज शासकों के हौसले फिर हजारों गुना बढ़ गए होते और भारतवासियों के जीवन में आशा की छटा तक कहीं दिखाई न देती। इसमें तो कुछ भी सन्देह नहीं कि फिर उसी समय हिन्दू या मुसलमान, एक भी देशी रियासत भारत में बाक़ी न बची होती। भारतवासियों की हालत फिर क़रीब-क़रीब वैसी ही हो जाती, जैसी अफ्रीका और अमरीका के उन आदिम निवासियों की, जिनके हजारों वर्षों के अस्तित्व को यूरोपियन जातियों ने संसार से मिटा दिया और जिनके प्रदेशों में अब यूरोपियन जातियों के उपनिवेश बने हुए हैं। इन सब दृष्टियों से सन् 57 के क्रान्तिकारियों का भीषण बलिदान हरगिज व्यर्थ नहीं गया। उन लोगों के असफल प्रयत्नों ने एक तरफ तो अंगरेज शासकों की आंखें खोल दीं और उन्हें सावधान कर दिया और दूसरी तरफ उन्होंने भारतवासियों के राष्ट्रीय जीवन के आशा और आत्मविश्वास की वह झलक पैदा कर दी, जो आज (1929) सत्तर वर्ष बाद तक भी फीकी नहीं पड़ी और सौ वर्ष तक भी फीकी नहीं पड़ सकती।

सन् 57 की क्रान्ति का दूसरे देशों पर असर

एक और बात इस सम्बन्ध में ध्यान देने योग्य है। किसी भी देश की कोई इतनी महान् घटना संसार के दूसरे देशों पर अपना प्रभाव डाले बिना नहीं रह सकती। ठीक सन् 57 में अंगरेज चीन के साथ युद्ध करने का संकल्प कर चुके थे। जिस अंगरेज सेना की मदद से लार्ड कैनिंग ने भारत को फिर से विजय किया, उसमें से अधिकांश चीन पर हमला करने के लिए रवाना हो चुकी थी और लार्ड कैनिंग ने भारत की आपत्ति को देख कर उसे बीच में रोक लिया था। उस समय का चीन भी 40 साल बाद के बाक्सर युद्ध के समय के चीन से कहीं अधिक निर्बल देश था। सन् 57 का जापान भी क़रीब-क़रीब तीन तीन सौ छोटी-छोटी रियासतों में बंटा हुआ था, जिनमें परस्पर प्रतिस्पर्धा और आए दिन के संग्राम होते रहते थे। उस समय का जापान राजनैतिक दृष्टि से उस समय के भारत से अधिक बलवान या अधिक अच्छी अवस्था में न था। भारतीय क्रान्ति के 11 वर्ष बाद जापानी देशभक्तों ने, अपने यहां की सैकड़ों वर्षों की पुरानी 273 रियासतों का अन्त कर, देश में एक केन्द्रीय शासन क़ायम किया। सन् 1868 के इस महान परिवर्तन से

ही जापान की समस्त जागृति का प्रारम्भ हुआ। प्रसिद्ध अंगरेज तत्ववेत्ता; हरबर्ट स्पेन्सर, का वह ऐतिहासिक पत्र, जिसमें उसने भारत की ओर संकेत करते हुए जापानी नीतिज्ञों को यूरोप और अमरीका निवासियों की चालों की ओर से सावधान किया, भारतीय क्रान्ति के बाद का ही लिखा हुआ था। कौन कह सकता है कि चीन और जापान, दोनों देश पाश्चात्य कौमों के अधीन होने से बचे रहे, तो इसका श्रेय की दर्जे तक सन् 57 की क्रान्ति के उन प्रवर्तकों और संचालकों को नहीं मिलना चाहिए, जिन्होंने समग्र एशियाई जीवन के उस ऐन नाजुक मौके पर ब्रिटिश महत्वाकांक्षा को कुछ दिनों के लिए एक जबरदस्त धक्का पहुंचाया, और दूसरे एशियाई देशों को पाश्चात्य कूटनीति की ओर से सावधान हो जाने का मौका दिया ?

हमारे भावी आदर्श

जो हो, भारतवासियों के लिए अब (1929) मुख्य काम केवल अपने धार्मिक, सामाजिक और नैतिक आदर्शों को स्थिर करना है। इसी के साथ-साथ उन्हें 'अहिंसा' की शक्ति को समझना होगा और अपने मन में 'अहिंसा' की अजेयता और उपयोगिता में विश्वास उत्पन्न करना होगा। हम ऊपर लिख चुके हैं कि भारत के पग उस भावी अपूर्व विजय की ओर साफ और दृढ़ता के साथ बढ़ते हुए दिखाई दे रहे हैं। प्रश्न केवल समय का है।

अंगरेज इतिहास लेखक फ़ारेस्ट लिखता है —

> "सन् 57 की क्रान्ति हमें इस बात की याद दिलाती है कि हमारा साम्राज्य एक ऐसे पतल छिलके के ऊपर कायम है, जिसके किसी भी समय सामाजिक परिवर्तनों और धार्मिक क्रान्तिओं की प्रचण्ड ज्वालाओं द्वारा टुकड़े-टुकड़े हो जाने की सम्भावना है।"*

---

*"The Mutiny reminds us that our dominions rest on a thin crust ever likely to be rent by titanic fires of social changes and religious revolutions."—*State Papers* by Forrest, Introduction.

इक्यावनवां अध्याय

सन् 1857 के बाद

सन् 1857 की आज़ादी की जंग से अंगरेज़ नीतिज्ञों की आंखें खुल गईं। वे अनुभव करने लगे कि जिस तेजी के साथ कुछ समय पहले से हिन्दोस्तान की देशी रियासतों का एक-एक कर ख़ात्मा करने और देश के सारे मानचित्र को अपने रंग में लाल रंग देने की कोशिशों में लगे हुए थे, वे अंगरेजी राज की स्थिरता के लिए कल्याणसूचक न थीं। वे समझ गए कि अपने साम्राज्य को और अधिक बढ़ाने की निस्बत अब उसकी मजबूती के उपाय करना ज्यादा जरूरी है। उन्हें अपनी पिछली क़रीब एक सौ साल की शासन नीति पर फिर से गौर करने की ज़रूरत महसूस हुई। सन् 1857-58 के अन्दर भारत और इंगलिस्तान के अंगरेजी समाचारपत्रों और राजनैतिक केन्द्रों में इस विषय पर खूब बहसें हुईं। अन्त में जो ख़ास-ख़ास उपाय अंगरेजी साम्राज्य की आइन्दा की मजबूती के लिए सबसे ज़ियादा महत्व के समझे गए और जिनके ऊपर बहुत दर्जे तक सन् 57 के बाद से भारत में अंगरेज़ी राज की नीति ढाली गई, उन्हें हम एक-एक करके नीचे बयान करते हैं —

1. ईस्ट इंडिया कम्पनी का अन्त

सन् 1858 तक ब्रिटिश भारत की हकूमत ईस्ट इंडिया कम्पनी के हाथों में थी। ऊपर आ चुका है कि सन् 1600 ईसवी में इंगलिस्तान की मलका एलिजाबेथ ने ईस्ट इण्डिया कम्पनी की रचना की थी और फिर हर बीस साल के बाद इंगलिस्तान की पार्लियामेण्ट एक नये 'चार्टर ऐक्ट' के जरिए हिन्दोस्तान के अन्दर कम्पनी के अधिकारों को पक्का करती रहती थी, जिसका मतलब यह था कि ईस्ट इण्डिया कम्पनी वास्तव में वहां की पार्लियामेंट की केवल एक एजेण्ट थी।

क्लाइव से पहले ईस्ट इण्डिया कम्पनी का काम इस देश में केवल व्यापार करना था। क्लाइव के समय से हिन्दुस्तान के कुछ इलाके के ऊपर कम्पनी का राज शुरू हुआ। उसके बाद वारेन हेस्टिंग्स ब्रिटिश भारत का पहला गवर्नर जनरल नियुक्त हुआ। वारेन हेस्टिंग्स के समय में ही इंगलिस्तान के एक मंत्री, फाक्स , ने वहां की पार्लियामेण्ट के सामने यह तजवीज पेश की कि हिन्दोस्तान के अन्दर जो कुछ इलाका कम्पनी के हाथ आ गया है, उसके शासन का इन्तजाम कम्पनी के हाथों से लेकर इंगलिस्तान के बादशाह और इंगलिस्तान के मन्त्रिमण्डल के हाथों में दे दिया जाए। हाउस आफ कामन्स ने फाक्स की इस तजवीज़ को मंजूर कर लिया। किन्तु हाउस आफ़ लार्डस पर ईस्ट इण्डिया कम्पनी के धनाढय हिस्सेदारों का प्रभाव अधिक था, इसलिए हाउस आफ लार्डस ने फाक्स की तजवीज को नामंजूर कर दिया।

अगले साल, यानी सन् 1783 में, प्रधान मंत्री विलियम पिट ने यह तजवीज पेश की कि इंगलिस्तान के मन्त्रिमण्डल के मातहत एक नया

महकमा क़ायम किया जाए, जिसे बोर्ड आफ कण्ट्रोल' कहा जाए। मन्त्रियों में से एक इस बोर्ड का प्रधान रहे, और कम्पनी के डाइरेक्टर अपने भारतीय राज के शासन का जो कुछ प्रबन्ध करे, वह सब इस बोर्ड की देखरेख में करें। सन् 1784 से लेकर सन् 1858 तक इंगलिस्तान का यह सरकारी महकमा और कम्पनी के डाइरेक्टर दोनों मिल कर ब्रिटिश भारत की शासन नीति चलाते रहे। दूसरे शब्दों में, करीब-करीब शुरू से ही भारत में अंगरेज़ी राज की असली बाग इंगलिस्तान की सरकार और वहां की पार्लियामेंण्ट के हाथों में रही और ईस्ट इण्डिया कम्पनी इस मामले में उनकी केवल एक एजेण्ट थी।

सन् 1783 के बाद सन् 1813 में एक नई बात यह की गई कि उस समय से हिन्दोस्तान के साथ तिजारत करने का अनन्य अधिकार पार्लियामेण्ट ने ईस्ट इण्डिया कम्पनी से ले लिया और हर अंगरेज या हर अंगरेज कम्पनी को इस देश के साथ तिजारत करने का अधिकार दे दिया। वजह यह थी कि इंगलिस्तान और हिन्दोस्तान के बीच की तिजारत बहुत बढ़ गई थी और सारी अंगरेज क़ौम उससे लाभ उठाने के लिये लालायित थी। हम ऊपर एक अध्याय में दिखा चुके हैं कि भारत के प्राचीन उद्योग-धन्धों के सर्वनाश और भारत की वर्तमान दरिद्रता का मूल कारण सन् 1813 का 'चार्टर ऐक्ट' था।

हर नए चार्टर ऐक्ट में अंगरेज़ क़ौम और अंगरेज़ व्यापारियों के असली उद्देश्य पर परदा डालने के लिए कोई न कोई वाक्य इस तरह का जोड़ दिया जाता था, जिससे मालूम हो कि इन विदेशियों का असली मतलब केवल भारत-वासियों का उपकार करना था। मिसाल के तौर पर, सन् 1813 के चार्टर में लिखा था कि हिन्दोस्तान के "अंग्रेजी इलाकों के बाशिन्दों के सुख और उनके हित को बढ़ाना"* इंगलिस्तान का "कर्तव्य" है, इत्यादि। सन् 1833 के ऐक्ट में लिखा है—

> **"इन इलाकों के निजी बाशिन्दे को, या इन इलाकों में रहने वाली बादशाह की किसी क़ुदरती रिआया को, केवल उसके मजहब, या जन्म स्थान या नसल, या रंग की वजह से कम्पनी के मातहत किसी मुलाजमत, पदवी या ओहदे के अयोग्य न समझा जाएगा।"†**

सन् 1833 से सन् 1853 तक भारत के अन्दर अंगरेजी राज की सीमाएं इतनी बढ़ चुकी थीं कि फिर 1853 के 'चार्टर ऐक्ट' में इस तरह के किसी परोपकारसूचक वाक्य की जरूरत महसूस न हुई।

सन् 1853 के चार्टर ऐक्ट के पास होने के समय अंगरेज़ शासकों ने जो गवाहियां पार्लियामेंट की सिलेक्ट कमेटी के सामने दीं, उनसे साफ़ मालूम होता है कि

---

* "To promote the interest and happiness of the inhabitants of the British Dominions."—Charter Act of 1813.

† "That no Native of the said territories, nor any naturalborn subject of His Majesty resident therein, shall by reason only of his religion, place of birth, descent, colour, or any of them, be disabled from holding any place, office, or employment under the said company."—Charter Act of 1833.

उस समय भारत के अंगरेज़ शासकों का एकमात्र उद्देश्य यह था कि जिस तरह हो सके, इस देश से धन चूस कर इंगलिस्तान को मालामाल किया जाए और अंगरेजी तालीम और ईसाई मत प्रचार के जरिये हिन्दोस्तान के राष्ट्रीय चरित्र को निर्बल कर उसे सदा के लिये अंगरेज़ क़ौम का गुलाम बना कर रखा जाए।

सन् 57 के कुछ पहले से इंगलिस्तान के अन्दर इस बात के लिए फिर ज़बरदस्त आंदोलन चल रहा था कि कम्पनी के विशाल भारतीय साम्राज्य का इन्तजाम कम्पनी के हाथों से लेकर बराहरास्त इंगलिस्तान के बादशाह और इंगलिस्तान की पार्लियामेण्ट के हाथों में दे दिया जाए। इस आन्दोलन की दो खास वजहें बताई गईं।

पहली वजह यह थी कि हिन्दोस्तान की और खास कर बंगाल की 'लूट' के प्रताप से 19वीं सदी के आखिर से इंगलिस्तान के पिछड़े हुए उद्योग धन्धे बढ़ने शुरू हुए और लंकाशायर आदि के कारखाने खुलने लगे। इन नए कारखानों के मालिकों को एक तरफ तो रुई-जैसे कच्चे माल की जरूरत थी और रुई इंगलिस्तान में न हो सकती थी। शुरू में कुछ रुई अमरीका से इंगलिस्तान मंगवाई गई, किन्तु वह बहुत महंगी पड़ती थी। दूसरी तरफ, उद्योग धन्धों के बढ़ने के साथ-साथ इंगलिस्तान की अनुपजाऊ भूमि में अनाज की पैदावार भी और कम होती जा रही थी, और वहां के लोगों को भोजन पहुंचाने के लिए बाहर से अनाज की जरूरत थी। इसके लिए राजनैतिक भाषा में एक नया वाक्य "Development of the resources of India" (हिन्दोस्तान के साधनों का विकास करना) गढ़ा गया। इसका मतलब यह था कि विशाल भारत-भूमि में इस तरह की व्यवस्था की जाए, इस तरह के रास्ते बनाए जाएं और सहूलियतें पैदा की जाएं, जिनसे इस देश से कच्चे माल और धन खींचने में आसानी हो, यहां के अंगरेजी इलाके के अन्दर ईख की खेती को बढ़ाया जाए और रेलों इत्यादि के ज़रिये रुई, अनाज और दूसरे कच्चे माल को जगह-जगह से जमा कर इंगलिस्तान भेजने और इंगलिस्तान के नये कारखानों में बने हुए माल को हिन्दोस्तान के शहरों और गांवों में पहुंचाने की सुविधाएं पैदा की जाएं। किन्तु ईस्ट इण्डिया कम्पनी के रहते यह काम पूरी तेजी के साथ नहीं हो सकता था।

दूसरी वजह यह थी कि इंगलिस्तान के अनेक लोग हिन्दोस्तान के ज़रखेज मैदानों में आकर बसना और इस देश को आस्ट्रेलिया, अफ्रीका, अमरीका आदि की तरह इंगलिस्तान का एक उपनिवेश बना देना चाहते थे। ईस्ट इंडिया कम्पनी इस तरह के उपनिवेश बनाने के खिलाफ थी

असली बात यह थी कि कम्पनी के डाइरेक्टर और हिस्सेदार चाहते थे कि हिन्दोस्तान की तिजारत, हकूमत और लूट का सारा फ़ायदा उन्हीं को पहुंचे। किन्तु इंगलिस्तान में उनके वैभव को देख-देख कर उनके हज़ारों प्रतिस्पर्धी और पैदा हो चुके थे। लोग चाहते थे कि जो लाभ भारत से केवल कम्पनी को हो रहा है, वह अब सारी अंगरेजी क़ौम को हो। यही कम्पनी के तोड़े जाने का सबसे बड़ा कारण था।

किन्तु ऊपर लिखी दो खास वजहें बताई जाती थीं, जिनसे इंगलिस्तान के लोग कम्पनी के तोड़े जाने और ब्रिटिश भारत की हकूमत बराहरास्त इंगलिस्तान के बादशाह के हाथों में दिए जाने के लिये बहुत दिनों से आन्दोलन

कर रहे थे। सन् 57 के विप्लव से इन लोगों को मौका मिल गया। सन् 1858 में पार्लियामेण्ट के सामने यह तजवीज पेश की गई। इसके जवाव में ईस्ट इण्डिया कम्पनी के डाइरेक्टरों ने एक लम्बी दरख्वास्त लिख कर फ़रवरी सन् 1858 में इंगलिस्तान की पार्लियामेंट के सामने पेश की। डाइरेक्टरों ने इस दरख्वास्त में अपने सौ साल के शासन के लाभ को दिखाते हुए प्रार्थना की कि शासन की बाग कम्पनी के ही हाथों में रहने दी जाए। हाल के विप्लव की ओर इशारा करते हुए और अपने शासन की सफलता को दर्शाते हुए डाइरेक्टरों ने इस दरख्वास्त में लिखा ––

> **"हम लोगों को यह दिखाने की जरुरत नहीं है कि हाल की दुर्घटना में यदि देशी नरेश बजाय बलवे का दमन करने में हमें सहायता देने के, बलवे के मार्गप्रदर्शक बन जाते, या यदि देश की आम जनता बलवे में शामिल हो जाती, तो इस दुर्घटना का आखरी नतीजा शायद कितना मुखतलिफ होता।"***

इसी दरख्वास्त में कम्पनी के डाइरेक्टरों ने लिखा कि––

> **"जिस असूल का इस समय इंगलिस्तान में बड़े जोरों के साथ प्रचार किया जा रहा है, वह यह है कि हिन्दोस्तान पर हकूमत करने में हमें इसी बात पर खास नजर रखनी चाहिए कि जो अंगरेज वहां रहते हैं, उन्हें किसी तरह फ़ायदा हो।"†**

डाइरेक्टरों ने इस दरख्वास्त में इंगलिस्तान की पार्लियामेण्ट को तफ़सील के साथ यह सलाह दी कि भारत के भावी शासन में किन-किन बातों का खास खयाल रखने की जरुरत है।

किन्तु अंगरेज़ क़ौम की बढ़ती हुई मांग को अब पूरा न करना असम्भव था। कम्पनी की प्रार्थना अब स्वीकार न हो सकती थी। भारतवासियों के दिलों को भी किसी नए और गहरे परिवर्तन द्वारा अपनी ओर करने की ज़रुरत थी। सन् 1858 में ही भारत के अन्दर ईस्ट इण्डिया कम्पनी के शासन का खात्मा कर दिया। भारत में अंगरेजी राज के शासन की बाग इंगलिस्तान की पार्लियामेण्ट ने स्वयं अपने हाथों में ले ली। हाउस आफ कामन्स ने 16 मार्च सन् 1858 को एक नयी कमेटी नियुक्त की। इस कमेटी का काम नीचे लिखे शब्दों में निश्चित किया गया––

> **"तहक़ीकात की जाय कि हिन्दोस्तान में, खास कर देश के पहाड़ी जिलों और अधिक स्वास्थ्यजनक स्थानों में, यूरोपियनों की बस्तियां आबाद करने और**

---

* "......how very different would probably have been the issue of late events, if the Native princes instead of aiding in suppressing the rebellion, had put themselves at its head, or if the general population had joined in the revolt:"—East India Company's petition to Parliament, 1858.

† "The doctrine now widely promulgated is that India should be administered with an special view to the benefit of the English who reside there."–– **Ibid.**

उपनिवेश बढ़ाने के लिए और साथ ही मध्य एशिया के साथ तिजारत को तरक्की देने के लिए क्या-क्या किया जा चुका है, क्या-क्या किया जा सकता है और उसके क्या-क्या सर्वोत्तम उपाय हैं ?"*

सर चार्ल्स मेटकाफ़ ने यह राय देते हुए कि भारत का शासन कम्पनी के हाथों से लेकर पार्लियामेण्ट के हाथों में दे दिया जाय, लिखा कि—

> "यद्यपि मालूम होता है कि हिन्दोस्तान के लोग इस बारे में बिल्कुल उदासीन हैं कि हिन्दोस्तान के ऊपर कम्पनी द्वारा शासन किया जाए या बराहरास्त इंगलिस्तान के मन्त्रियों द्वारा, फिर भी भारत की दूसरी रिआया इस बारे में उदासीन नहीं है, यानी यूरोपियन हिन्दोस्तान में रहते हैं और जो कम्पनी के नौकर नहीं हैं उनके अलावा आम तौर पर वे सब लोग, जो दोगली नसल के हैं, अब कभी भी कम्पनी के शासन से सन्तुष्ट न होंगे।"

जाहिर है कि इस परिवर्तन में हिन्दोस्तानियों की इच्छा का इतना सवाल न था, जितना अंगरेज़ों की इच्छा का। इसके बाद किसी को भी इस बारे में सन्देह नहीं हो सकता कि भारत का शासन कम्पनी के हाथों से लेकर इंगलिस्तान के मन्त्रिमण्डल के हाथों में देने का खास उद्देश्य भारतवासियों को लाभ पहुंचाना न था, बल्कि भारत के सर्वोत्तम प्रदेशों में यूरोपनिवासियों के उपनिवेश बनाकर भारतवासियों को अपने गोरे मालिकों के लिए "लकड़ी चीरने वालों और पानी भरने वालों" की अवस्था तक पहुंचा देना था। कम्पनी के शासन का अन्त कर देने में ही अब अंगरेज़ नीतिज्ञों को भारत में अंगरेज़ी राज की स्थिरता और अपना भावी हित दिखाई देता था।

2. मलका विक्टोरिया का ऐलान

क्रान्ति के पूरी तरह शान्त होने से पहले ही भारत का शासन कम्पनी के हाथों से लेकर इंगलिस्तान की सरकार के हाथों में दे दिया गया। मलका विक्टोरिया उस समय इंगलिस्तान के सिंहासन पर थी। हिन्दोस्तान के राजाओं, रईसों, सरदारों और समस्त प्रजा के नाम मलका की तरफ़ से एक ऐलान प्रकाशित किया गया, जिसका जिक्र हम ऊपर एक अध्याय में कर आए हैं। सार-रूप में इस ऐलान के अन्दर नए अधिकार-परिवर्तन की सूचना दी गई, भारतवासियों को सलाह दी गई कि वे मलका, उसके उत्तराधिकारियों और उनके द्वारा नियुक्त अफ़सरों के सदा वफादार रहें, लार्ड केनिंग को भारत का पहला वाइसराय (इंगलिस्तान के बादशाह का नायक) नियुक्त किया गया, देशी राजाओं को यह विश्वास दिलाया गया कि जो सन्धियां और अहदनामे आप लोगों के साथ इस समय तक किए जा चुके हैं, इंगलिस्तान की सरकार उन पर कायम रहेगी, भारतीय प्रजा को विश्वास दिलाया गया कि तुम्हारे मजहब में किसी

---

* "To inquire into the progress and prospects, and the best means to be adopted for the promotion of European colonization and settlement in India, especially in the hill districts and healthier climates of that country as well as for the extension of our commerce with Central Asia."—Terms of Reference of the Select Committee of the House of Commons, 16th March, 1858.

तरह का दखल न दिया जाएगा, और अन्त में लोगों से विप्लव को शान्त करने की प्रार्थना करते हुए मलका विक्टोरिया ने ऐलान किया––

> "जब ईश्वर की कृपा से देश में फिर से शान्ति कायम हो जाएगी, तब हमारी हार्दिक इच्छा है कि हिन्दोस्तान की कारीगरी को तरक्की दी जाए, ऐसे-ऐसे काम बढ़ाए जाएं, जिनसे आम जनता को लाभ हो और उनकी उन्नति हो, और शासन इस तरह से चलाया जाए, जिससे भारत में रहने वाली हमारी सारी रिआया को लाभ हो। प्रजा की खुशहाली में ही हमारा बल है, उनके सन्तोष में हमारी सलामती है और उनकी कृतज्ञता हमारे लिए सबसे अच्छा इनाम है। सर्वशक्तिमान परमात्मा हमें और हमारे मातहत अफ़सरों को बल दे, ताकि हम अपनी इन इच्छाओं को अपनी प्रजा के हित के लिए पूरा कर सकें!"

ऊपर लिखा वाक्य इस ऐलान का सबसे अधिक चिताकर्षक वाक्य है। अनेक भोले भारतवासियों के लिए ऐलान के ये शब्द काफ़ी सान्त्वना देने वाले साबित हुए और उन पर भरोसा करके उन्होंने 57 की विशाल युद्धाग्नि में समाप्त हो जाने वाले स्वदेशी मुगल साम्राज्य की जगह विदेशी अंगरेज़ी राज को अपना लिया। किन्तु वास्तव में इस ऐलान का मूल्य इस तरह के दूसरे राजनैतिक ऐलानों से किसी तरह अधिक न था और न यह ऐलान या कम्पनी से लेकर इंगलिस्तान के बादशाह के हाथों में शासन की बाग का दिया जाना, दोनों से कोई बात भी भारत की तरफ अंगरेज़ शासकों की नीति में किसी तरह के भी मौलिक परिवर्तन का चिह्न थी। इस ऐलान का मुख्य उद्देश्य था, स्वतन्त्रता संग्राम में असफल भारतवासियों के दिलों को किसी तरह सान्त्वना देना और इसमें सन्देह नहीं, इस उद्देश्य में अंगरेज़ शासकों को काफ़ी सफलता मिली। प्रसिद्ध अंगरेज़ इतिहास लेखक, फ्रीमैन ने बहुत दिनों बाद इस तरह के ऐलानों के बारे में लिखा––

> "किन्तु जब हम विज्ञाप्तियों और ऐलानों की ओर जाते ××× तो हम झूठ के खास चुने हुए मैदान में पहुंच जाते है, ××× निस्सन्देह जो मनुष्य पार्लियामेण्ट के हर काम या हर कानून पर विश्वास कर लेता है, वह बालक की तरह भोला है।"*

इस तरह के जितने वादे इंगलिस्तान ने हिन्दोस्तान के साथ किए हैं, उन सब को मारक्विस आफ सैलिसबरी ने साफ "राजनैतिक छल" (Political hypocrisy) स्वीकार किया है।

भारत सरकार के प्रसिद्ध और सुयोग्य ला मेम्बर, सर जेम्स स्टीफेन, ने मलका विक्टोरिया के इस खास ऐलान के बारे में साफ कहा था कि यह एलान––"केवल एक रस्मी पत्र था। यह कोई अहदनामा न था, जो भारत के अंगरेज शासको के ऊपर

---

* "......But when we come to manifestoes, proclamations......here we are on the very chosen region of lies,...... He is of child-like simplicity indeed who believes every act of Parliament,......"—Freeman's *Methods of Historical Study*, pp. 258-259.

किसी तरह का भी बन्धन हो। इस ऐलान की कोई भी कानूनी कीमत नहीं है (The Proclamation has no legal force whatever.)।"

इंगलिस्तान की राज व्यवस्था के अनुसार भी मलका को इस तरह का कोई अधिकार प्राप्त न था और न इंगलिस्तान के किसी बादशाह को प्राप्त है, जिससे इंगलिस्तान की पार्लियामेण्ट या वहां के मंत्री बादशाह के किसी ऐलान के अनुसार अमल करने के लिए मजबूर किए जा सकें। 1 नवम्बर, सन् 1858 को लार्ड कैनिंग ने यह ऐलान इलाहाबाद में पढ़ कर सुनाया। भारत के अंगरेज शासकों ने उस समय से आज (1929) तक अपने व्यवहार में इस ऐलान के वादों की कभी अणुमात्र भी परवा नहीं की।

3. देशी रियासतों को कायम रखना

हम ऊपर लिख चुके हैं कि लार्ड डलहौजी का उद्देश्य भारत के पूरे मानचित्र को अंगरेजी राज के रंग में रंग देना था। पंजाब, नागपुर, अवध, सतारा, झांसी इत्यादि पर कब्जा किया जा चुका था। 18 अप्रेल सन् 1856 को इंगलिस्तान की पार्लियामेण्ट के सामने वक्तव्य देते हुए सर अर्सकाइन पेरी ने कहा था—"इसके बाद अब निज़ाम के राज की बारी है। उसके बाद मालवा की उपजाऊ भूमि पर कब्जा किया जाएगा, जहां की काली मिट्टी में रूई और अफ़ीम बहुत अच्छी पैदा हो सकती है। फिर गुजरात जो उससे भी ज़ियादा ज़रखेज है। × × × राजपूताने और बाकी की छै करोड़ देशी प्रजा को इस के बाद विजय किया जाएगा।" इत्यादि*

किन्तु अगले ही साल क्रान्ति ने यह सारा नकशा बदल दिया। अंगरेज समझ गए कि लार्ड डलहौज़ी की अपहरण नीति विप्लव का एक खास कारण थी। उन्हें अब अपना हित और अपने साम्राज्य की स्थिरता हिन्दोस्तान की बाकी देशी रियासतों को क़ायम रखने में ही दिखाई देने लगी।

निस्सन्देह विप्लव के बाद भी और विप्लव के ऐन दिनों में भी कुछ ऐसे अंगरेज़ मौजूद थे, जो रही सही देशी रियासतों को खत्म करके अंगरेजी राज में मिला लेने के पक्ष में थे। सन् 1858 में लन्दन में "इण्डियन पालिसी (भारतीय नीति)" नामक एक पत्रिका प्रकाशित हुई, जिसमें भारत के अंगरेज़ शासकों को यह सलाह दी गई कि हर देशी नरेश के मरने पर वे उसके राज पर क़ब्जा कर लें। किन्तु विचारवान अंगरेज़ नीतिज्ञों को इस सलाह के मानने में अपने साम्राज्य का हित दिखाई न दिया। यही वजह है कि सन् 57 के बाद से अब (1929) तक एक बर्मा को छोड़ कर किसी नयी देशी रियासत पर कब्जा नहीं किया गया। इससें भी सन्देह नहीं कि जिस नीति का पिछले 70 साल (1859–1929) के अन्दर अंगरेज़ शासकों ने देशी नरेशों के साथ व्यवहार किया है, उसका नतीजा यह है कि हिन्दोस्तान की करीब-करीब सब देशी रियासतें विदेशी अंगरेज़ी राज की स्थिरता में किसी तरह का खतरा हो सकने की बजाय ब्रिटिश साम्राज्य की खास पोषक बन गई हैं।

---

* Speech by Sir Erskine Perry in the House of Commons on April 18th, 1856.

सन् 57 से अब तक हिन्दोस्तान की सैकड़ों छोटी-बड़ी रियासतों के साथ जिस तरह का व्यवहार किया गया है, जिस तरह अंगरेज़ रेजिडेण्टों, पोलिटिकल एजेण्टों इत्यादि द्वारा कदम-कदम पर देशी नरेशों के अधिकारों में हस्तक्षेप होता रहा है, जिस तरह हिन्दोस्तानी राजकुमारों की शिक्षा पर अंगरेज़ नीतियों ने सदा अपना अनन्य अधिकार बनाए रखा, जिसमें कभी-कभी उन कुमारों के अभिभावकों और स्वयं गद्दीनशीन नरेशों तक को दखल देने का अधिकारी नहीं समझा गया, जिस तरह अनेक राजकुमारों के चरित्र का व्यवस्थित और वैज्ञानिक ढंग से सत्यानाश किया गया है और फिर कभी-कभी उस चरित्रहीनता को ही उनकी अयोग्यता का सबूत मान लिया गया है, यह सब लम्बी और दुखकर कहानी संसार के साम्राज्यों के इतिहास में अपना खास स्थान रखती है। इसकी दूसरी मिसालें ढूंढने के लिए हमें पश्चिम एशिया के ऊपर आज से चार पांच हज़ार साल पहले के मिस्री साम्राज्य और उसके दो-तीन हज़ार साल बाद के रोमन-साम्राज्य के इतिहास को पढ़ना होगा। किन्तु यह सब विषय हमारी इस पुस्तक के प्रसंग से वाहर है।

अंगरेजों की देशी फ़ौजों के सिपाही अधिकतर देशी रियासतों से भरती किए जाते हैं, और ब्रिटिश भारत के किसी भी विद्रोह का दमन करने में वे ही अधिक उपयोगी साबित होते हैं।

4. भारत में अंगरेज़ी उपनिवेश

हिन्दोस्तान में अंगरेज़ों के उपनिवेश यानी अंगरेज़ी वस्तियां वसाने की चर्चा वारेन हेस्टिंग्स के समय से चला आता था। किन्तु इस विषय पर अंगरेज़ नीतिज्ञों में सदा काफ़ी मतभेद रहा। अनेक अंगरेज़ उन दिनों इस तरह के उपनिवेशों को बढ़ने देने के खिलाफ थे। वारेन हेस्टिंग्स की कौन्सिल के सदस्य, मानसन की राय थी कि अंगरेज़ भारत में खेती इत्यादि का काम न कर सकेंगे, और यदि करने की चेष्टा करेंगे, तो उनका रहन-सहन भारतीय प्रजा की अपेक्षा इतना महंगा होगा कि उसकी वजह से सरकार की आमदनी में बहुत कमी पड़ जाएगी।

7 नवम्बर, सन् 1794 को कार्नवालिस ने इंगलिस्तान के भारत मंत्री, डण्डास, को लिखा कि—"ब्रिटेन के हित के लिए यह वात बड़े महत्व की है कि यूरोप निवासियों को, जहां तक हो सके, हमारे भारतीय इलाकों में उपनिवेश वनाने और वसने से रोका जाए।"

4 फरवरी, सन् 1801 को डाइरेक्टरों ने भारत में इस तरह के उपनिवेशों के विरुद्ध एक प्रस्ताव पास किया।

सन् 1813 में कम्पनी के अनन्य अधिकार को तोड़ कर सव इंगलिस्तान निवासियों के लिए भारत आने और तिजारत करने का मैदान खोल दिया गया। इसके वाद दक्षिण और उत्तर के कई नये पहाड़ी इलाके अंगरेज़ी राज में मिलाए गए। इसलिए इंगलिस्तान के कुछ लोगों ने कम्पनी के डाइरेक्टरों की राय के खिलाफ़ फिर भारत में अपने उपनिवेश बनाने के लिए आन्दोलन शुरू किया। इन लोगों की मुख्य दलील यह थी कि इस तरह के उपनिवेशों की मदद से अंगरेज़ी राज भारत में अधिक दिनों तक

क़ायम रह सकेगा। सर फ्रेडरिक शोर भी इस तरह के उपनिवेशों के पक्ष में था। उसकी दलील यह थी—

> "अंगरेज़ी सत्ता के उलट जाने से इस तरह के नये बसे हुए (विदेशी) लोगों को कोई फ़ायदा न होगा बल्कि उन्हें हर तरह से नुकसान होगा, इसलिए हिन्दोस्तानियों की तरफ से किसी भी उपद्रव या बगावत के समय ये लोग अपना सारा प्रभाव गवर्नमेन्ट के पक्ष में लगा देंगे और अपने देशी नौकरों, साथियों आदि को भी ऐसा ही करने के लिए प्रोत्साहित करेंगे। इसके विपरित भारतवासियों के भाव अंगरेज़ सरकार की ओर इस तरह के हैं कि जब कभी कोई बगावत होती हैं, तब जो लोग वगावत में शामिल नहीं होते, वे भी कम-से-कम तटस्थ रहते हैं, किन्तु सरकार को प्रायः कोई सहायता नहीं देता।"*

सर चार्ल्स मेटकाफ़ और लार्ड विलियम बेंटिंग भी भारत में अंगरेज़ी उपनिवेश बनाने के पक्ष में थे। उनकी दलीलें भी ठीक इसी तरह की थीं। नतीजा यह हुआ कि सन् 1833 के चार्टर ऐक्ट में उन अंगरेज़ों के लिए कई तरह की नई सुविधाएं कर दी गईं, जो भारत में आकर बसना चाहते थे।

नेपाल के रेज़िडेण्ट, ब्रायन हाटन हाजसन, ने दिसम्बर सन 1856 में हिमालय की उर्वर घाटियों में यूरोपियनों के उपनिवेश बनाने के पक्ष में एक अत्यन्त जोरदार पत्र लिखा। उसने लिखा—

> "××× हिमालय में उपनिवेशों को बढ़ाना अंगरेज सरकार के सर्वोच्च और सबसे अधिक महत्वपूर्ण कर्तव्य में से है।"

हाजसन की राय में "भारत के अन्दर ब्रिटिश सत्ता को स्थायी बनाने के लिए सबसे बड़ा, सबसे पक्का, सबसे निरापद और सबसे सुगम राजनैतिक उपाय"† भारत के अन्दर अगरेज़ों के उपनिवेश ही हो सकते थे।

हाजसन की तजवीज़ थी कि आयरलैण्ड और स्काटलैण्ड के किसानों को मुफ्त ज़मीन देकर भारत में वसने के लिए प्रोत्साहित किया जाए।

सन् 57 के बाद इस तरह का आन्दोलन इंगलिस्तान में और भी अधिक जोर के साथ होने लगा। इसलिए सन् 1858 में इंगलिस्तान की पार्लियामेन्ट ने वह तहक़ीक़ाती कमेटी क़ायम की, जिसका जिक्र हम ऊपर कर चुके हैं।

इसके साथ-साथ और अनेक तरीकों से भी उस समय के अंगरेज शासकों ने अपने देशवासियों और खास कर अंगरेज पूंजीपतियों को भारत में आकर बसने के लिए उत्साहित करना शुरु किया। असम और कुमायूं में अंगरेज सरकार ने हिन्दोस्तानियों के खर्च पर चाय की काश्त के तजरबे किए और यह खुले ऐलान कर दिया कि इन तजरबों

---

* *Notes on Indian Affairs* by Sir Frederick Shore.

† "......the encouragement of colonization therein is one of the highest and most important duties of the Government, ...greatest, surest, soundest and simplest of all political measures for the stabilisation of the British power in India, ..."—Brian Houghton Hodgson, Resident of Nepal, on the Colonization of the Himalayas by Europeans, December 1856.

के सफल होने पर चाय के सरकारी खेत उन अंगरेज़ों को दे दिए जाएंगे, जो इस काम के लिए आसाम और कुमायूं में बसना चाहेंगे। तजरबों का सारा खर्च हिन्दोस्तानियों के सर पड़ा और दोनों स्थानों के चाय के खेत बाद में अंगरेज़ों के हवाले कर दिए गए। हिन्दोस्तानियों के ही खर्च पर कई अंगरेज़ों को इसलिए चीन भेजा गया कि वे चीन से चाय के बीज लाएं, चीनी काश्त के तरीकों को सीखें और वहां से चीनी विशेषज्ञ साथ लाकर भारत में अपने धन्धे को तरक्की दें। डेढ़ सौ साल से ऊपर के ब्रिटिश शासन में कभी किसी भारतीय व्यापार को प्रोत्साहन देने के लिए अंगरेज़ सरकार ने इस तरह के प्रयत्न नहीं किए। यूरोपियन पूंजीपतियों की बचत को बढ़ाने और पक्का करने के लिए हिन्दोस्तानी मज़दूरों के सम्बन्ध में भारत सरकार ने इस तरह के कानून पास किए, जिनसे हज़ारों भारतवासी इन लोगों के कानूनी गुलाम बन गए। इन कानूनी गुलामों के साथ अंगरेज़ पूंजीपतियों और उनके नौकरों का व्यवहार ब्रिटिश भारतीय इतिहास का एक अत्यन्त कलंकित अध्याय है।

ठीक इसी तरह धन इत्यादि की सहायता कुमायूं में लोहे का धन्धा करने वाले अंगरेज़ों को दी गई।

नील की खेती करने वाले अंगरेज़ों को भी भारतवासियों के धन से समय-समय पर सहायता दी जा चुकी है और हिन्दुस्तानी मजदूरों के साथ इन निलहे गोरों के घोर अमानुषिक व्यवहार की चर्चा अनेक बार देशी समाचारपत्रों में हो चुकी है। रेलों, सड़कों और उनके विचित्र नियमों द्वारा भी इन अगरेज़ों को अपने काम में हर तरह की सहायता दी गई है।

सन् 1858 की कमेटी के सामने गवाहों ने ये सब बातें विस्तार के साथ बयान कीं। गवाहों में से कुछ की राय थी कि भारत के पहाड़ी इलाकों में अंगरेज़ किसानों और मजदूरों को लाकर आबाद कर दिया जाए और भारत के मैदानों में इस तरह के अंगरेज़ पूंजीपतियों को बसाया जाए, जो अपने अधीन हिन्दोस्तानी किसानों और मजदूरों से काम ले सकें। इससे बढ़ कर कुछ लोगों की राय यहां तक थी कि अलजीरिया (उत्तर अफ्रिका) के समान सारे हिन्दोस्तान में अंगरेज़ पूंजीपतियों से लेकर अंगरेज़ किसानों और मजदूरों तक को बसाया जाए। अंगरेज़ों को भारत में जमींदारी करने के लिये अनेक तरह की सुविधाएं दी जाने की सलाह हुई।

हम ऊपर लिख चुके हैं कि ईस्ट इण्डिया कम्पनी भारत में अंगरेज़ों की बस्तियां बसाने के खिलाफ़ थी। यह बात कमेटी के सामने अनेक गवाहों ने अपने बयानों में कही है। इन गवाहों में से हम केवल एक, जे० जी० वालर, का बयान नीचे नक़ल करते हैं। उससे पूछा गया—

> **"भारत में यूरोपियनों को बसने में खास-खास ऐतराज कौन-से हो सकते हैं?।"**

गवाह ने उत्तर दिया—

> **"मैं समझता हूं, मैं कई ऐतराज गिना चुका हूं; किन्तु एक ऐतराज इतने महत्व का है कि मेरे लिए उसे छोड़ देना अपने विषय के साथ इन्साफ़ करना**

न होगा। मैं समझता हूं कि जो कम्पनी बतौर एक अमीन के बादशाह के नाम पर इस समय भारत पर शासन कर रही है, उसके हाथों से शासन का अधिकार ले लेना नितान्त आवश्यक है। यदि अंगरेज सरकार का वास्तविक उद्देश्य यह है कि हिन्दोस्तान में अंगरेजों को बसने के लिए प्रोत्साहित किया जाए, तो × × × मेरी राय है कि × × × अंगरेज अपने बादशाह के स्थान पर किसी बीच की कम्पनी का अधिकार स्वीकार न करेंगे। × × × मैं समझता हूं कि न केवल अंगरेजों को भारत में उपनिवेश बनाने के लिए प्रेरित करने और प्रोत्साहित करने के लिए ही, बल्कि उस अत्यन्त विशाल देश पर अपना प्रभुत्व जमाए रखने के लिए ही भारत के शासन में फौरन गहरे परिवर्तन की जरूरत है, और इन परिवर्तनों के लिए केवल तभी मार्ग तैयार किया जा सकता है, जब कि कम्पनी की जगह इंगलिस्तान के बादशाह का नाम और बादशाह का अधिकार क़ायम कर दिया जाए।"

कम्पनी तोड़ दी गई। भारत में कई स्थानों पर, खासकर, कई ज़रखेज़ पहाड़ी इलाक़ों में, अंगरेज़ों की बस्तियां बसाने की जी तोड़ कोशिशें की गईं। इन कोशिशों का विस्तृत इतिहास हमारे प्रसंग से बाहर है। किन्तु बावजूद कम्पनी के तोड़ दिए जाने के और बावजूद इन तमाम कोशिशों, कमेटियों, गवाहियों, सुविधाओं, इरादों और उत्तेजनाओं के पिछले 80-100 साल के अन्दर संसार के दूसरे देशों की तरह हिन्दोस्तान में अंगरेज़ों की बस्तियां आबाद न हो सकीं। असफलता की वजह बयान करते हुए टाउनसेण्ड अपनी पुस्तक 'एशिया ऐण्ड यूरोप' में लिखता है—

> "कहा जाता है कि हिन्दोस्तान में गोरों (यूरोपियनों) की कमी का कारण वहां की आबोहवा है, किन्तु वहां की पहाड़ियों पर भी तो कोई अंगरेज जाकर नहीं बसता। अंगरेज न्यू साउथवेल्स (आस्ट्रेलिया) के गरम मैदानों में रहते हैं; अमरीका के गोरे लोग × × × फ्लोरिडा (मध्य अमरीका) के उन मैदानों में भरे हुए हैं; जिनमें मारे गरमी के भभूके उठते हैं; स्पेन के लोग दोनों अमरीकाओं के गरम प्रदेशों में शासक जाति की हैसियत से बसे हुए हैं, डच लोग जावा में रह रहे हैं, किन्तु अंगरेज, चाहे उन्हें कितने भी प्रलोभन क्यों न दिए जाएं, भारतवर्ष में नहीं ठहर सकते। ऐसे जोरों के साथ उनकी तबियत ऊबती है, इतने जोरों के साथ वे इस बात को अनुभव करने लगते हैं कि हम यहां पर देश के निवासियों से बिलकुल अलग परदेशी हैं, कि फिर चाहे उन्हें कितनी भी कुरबानी क्यों न करनी पड़े, धन, पदवी या अपने सुखकर कारोबार में उन्हें कितनी भी हानि क्यों न सहनी पड़े, वे चुपचाप वहां से खिसक कर यूरोप चले आते हैं।"*

निस्सन्देह भारत की भूमि के अभी (1929) तक अंगरेज़ी उपनिवेशों के शाप से बचे रहने की असली वजह यह है कि भारत एक प्राचीन, विशाल और अत्यन्त घना बसा हुआ देश है। अंगरेज़ों के लिए न यहां की करोड़ों जनता को मिटा कर उनकी जगह लेना इतना सरल हो सकता था, जितना आस्ट्रेलिया के अर्धसभ्य आदिमवासियों

---

* Meredith Townsend's *Asia and Europe*, p. 87.

को मिटा कर उनकी जगह लेना, और न वे यूरोपनिवासी, जिनके और भारतवासियों के चरित्रों, रहन-सहन और आदर्शों में इतना जबरदस्त अन्तर है, बिना अपना जातीय व्यक्तित्व खोए भारतवासियों के साथ किसी तरह भी मिल-जुल कर भारत में रह सकते हैं ।

5. राष्ट्रीय भावों का नाश

सन् 1813 के 'चार्टर ऐक्ट' में एक धारा यह भी थी कि जो अंगरेज ईसाई पादरी भारतवासियों के "धार्मिक उद्धार" के लिए, यानी उन्हें ईसाई बनाने के लिए "भारत जाना चाहें और वहां रहना चाहें", उन्हें "कानून के जरिए हर तरह की सुविधा दी जाए"। चुनांचे इसके बाद से ही "ईसाई धर्म प्रचार का एक सरकारी मोहकमा (एक्लेजिएस्टिकल डिपार्टमेण्ट)" भारत में खोल दिया गया और उसका खर्च जबरदस्ती भारतवासियों के सर मढ़ दिया गया ।

सन् 57 के विप्लव के बाद अगरेज नीतिज्ञों में इस विषय पर खूब बहसें होने लगीं । मार्च सन् 1858 की अंगरेज पत्रिका "दि कैलकटा रिव्यू" में एक अंगरेज का लिखा हुआ नीचे लिखा वाक्य मिलता है, जिससे पता चलता है कि उस समय के अंगरेज नीतिज्ञों को क्या-क्या बातें सूझ रही थीं । वह अंगरेज लिखता है—

> **"हमें चारों तरफ × × × समय की आवाजें सुनाई दे रहीं हैं; जिनमें जोरों के साथ यह सलाह दी जाती है कि हमें क्या करना चाहिए । कोई कहता है, 'भारत को अवश्य ईसाई बना लेना चाहिए'; कोई कहता है 'भारत भर में अंगरेजों को बसाना चाहिए'; कोई कहता है, 'मुसलमान के मजहब को दबा देना चाहिए'; कोई कहता है, 'हमें हिन्दोस्तानी जबानों को खत्म कर देना चाहिए और उनकी जगह अपनी मातृभाषा (अंगरेजी) प्रचलित कर देनी चाहिए'। ये इनमें से केवल थोड़ी-सी आवाजें हैं ।"***

सन् 57 के बाद अधिकांश अंगरेज नीतिज्ञ इस बात को और अधिक जोरों के साथ अनुभव करने लगे थे कि भारतवासियों के दिलों से राष्ट्रीयता के रहे-सहे भावों को मिटा देना और आइन्दा इस तरह के भावों को पनपने न देना अंगरेजी साम्राज्य की स्थिरता के लिए आवश्यक है । इसके उस समय दो मुख्य उपाय सोचे गए—(1) भारत में ईसाई मत प्रचार और (2) अंगरेज़ी शिक्षा ।

मलका विक्टोरिया ने अपने ऐलान में यह वादा किया था कि मजहब के मामले में अंगरेज सरकार किसी तरह का पक्षपात न बरतेगी । किन्तु विप्लव के केवल अगले ही साल इंगलिस्तान के प्रधान मन्त्री, लार्ड पामर्सटन, ने ईसाई पादरियों के एक डेपुटेशन के उत्तर में कहा—

> **"मालूम होता हैं कि अन्तिम लक्ष्य के बारे में हम सब का एक ही मत**

---

* "......on every hand, we hear the voices of the times......urging the popular measure of the hour, 'India must be christianized'—'India must be colonized'—'The Mohammedan religion must be suppressed'—'We must abolish the vernacular and substitute our mother tongue', such are but a few,"—*The Calcutta Review*, March, 1858, p. 163.

है। समस्त भारत में पूरब से पश्चिम तक और उत्तर से दक्षिण तक ईसाई मत के फैलाने में, जहां तक हो सके मदद देना न केवल हमारा फर्ज है, बल्कि इसी में हमारा हित है।"*

सन् 57 के विप्लव पर टीका करते हुए अनेक अंगरेजों, पादरियों ने कहा —

"हमारे दुश्मन वे मुसलमान थे, जिनके मजहब की तारीफ़ करके हमने उन्हें फुला दिया, और वे हिन्दू थे, जिनके अन्धविश्वासों को हमने पुष्ट किया, किन्तु हमारे सच्चे मित्र वे हिन्दोस्तानी थे, जिन्हें हमारे पादरियों ने ईसाई बना लिया था।"

इन लोगों के ईसाई मत प्रचार का एकमात्र उद्देश्य अपने साम्राज्य को पक्का करना था। विलियम एडवर्ड्स विप्लव के दिनों में कम्पनी का मलाज़िम था और बाद में आगरा हाईकोर्ट का एक जज हुआ। उसकी राय थी —

"हम विदेशी आक्रामक और विजेता समझे जाते हैं और सदा समझे जाएंगे, × × × हमारे लिए अपनी रक्षा का सबसे अच्छा उपाय यह है कि हम देश को ईसाई बना लें; × × × देशी ईसाइयों की बस्तियां जब देश में इधर-उधर फैल जाएंगी, तो वे अनेक वर्षों तक हमारी मजबूती के लिए स्तम्भों का काम देंगी, क्योंकि जब तक अधिकांश जनता मूर्तिपूजक (हिन्दू) या मुसलमान रहेंगी, तब तक ये ईसाई लोग अवश्य हमारे राजभक्त रहेंगे।"†

लार्ड विलयिम बेण्टिग की कोशिशों और पंजाब को ईसाई बनाने की तजवीजों का जिक्र इससे पहले किया जा चुका है।

जो गर्ज भारतवासियों को ईसाई बनाने या मुसलमानों को दबाने से थी, वही भारत में अंगरेजी शिक्षा के प्रचार से थी। लार्ड मैकाले इस शिक्षा का जबरदस्त हामी था और उसके असली विचारों का जिक्र हम ऊपर शिक्षा के अध्याय में कर चुके हैं।

भारत की विचित्र स्थिति में देश को ईसाई बनाने का प्रयत्न अधिक न चल सका और न अधिक खुले तौर पर उसे शासन नीति का एक अंग बनाया जा सका। किन्तु अंगरेजी शिक्षा ने ऐसे लोगों की एक खासी श्रेणी पैदा कर दी, जो अपनी रोजी के लिए अंगरेज राज पर निर्भर है, जो उस राज के विशष स्तम्भ है, जिनके रहन-सहन और भारतीय जनता के रहन-सहन में बहुत

---

* "We seem to be all agreed as to the end. It is not only our duty, but it is our interest to promote the diffusion of Christianity as far as possible throughout the length and breadth of India."—Lord Palmerston, to a deputation headed by the Archbishop of Canterbury, in 1859, *The Conversion of India* by George Smith, C.I.E.,L.L.D., p. 233.

† "We are, and ever must be, regarded as foreign invaders and conquerors, ...Our best safeguard is in the evangelization of the country; ...... Christian settlements scattered about the country would be as towers of strength for many years to come, for they must be loyal as long as the mass of the people remain either idolaters or Mohammedans."—William Edwardes.

बड़ा अन्तर पैदा हो गया है, और जिनमें से अधिकतर में राष्ट्रीयता या राष्ट्रीय भावों का करीब-करीब अभाव है (1929)।

6. हिन्दोस्तान के साधनों का विकास

यूरोपीय राजनीति में किसी देश पर शासन करने का मतलब ही उस देश से अधिक से अधिक धन खींचना होता है। भारत की 'लूट' से ही इंगलिस्तान के, और विशेषकर लंकाशायर के, कारखाने चले, जिसका जिक्र एक पिछले अध्याय में किया जा चुका है। सन् 57 के बाद "भारत के साधनों का विकास (Development of the resources of India)" की विशेष चर्चा सुनी जाने लगी। इसके छै खास-खास उपाय सोचे गए।

(क) भारत में रेलों का जारी करना—भारत में रेलें उसी धन से जारी की गईं, जो अंगरेजों ने मुख्तलिफ़ तरीकों से भारत से कमाया। इस तरह के कामों के लिए कभी एक पैसा भी इंगलिस्तान से लाकर हिन्दोस्तान में खर्च नहीं किया गया। इस पर भी इंगलिस्तान की पार्लियामेण्ट के एक मेम्बर, स्विफ्ट मैकनील ने 14 अगस्त, सन् 1890 को कहा था—

> **"यह हिसाब लगाया जा चुका है कि जितना धन भारत में रेलों पर खर्च किया जाता है, उसमें से हर शिलिंग पीछे आठ पेंस (यानी दो तिहाई) इंगलिस्तान लौट कर चला जाता है।"***

इन रेलों के खास काम हैं— भारत से गेहूं, कपास आदि इंगलिस्तान भेज सकना, इंगलिस्तान का बना हुआ माल भारत के कोने-कोने में पहुंचाना और जरूरत पड़ने पर इधर से उधर तक सेनाओं को ले जा सकना। निस्सन्देह हमारी आजकल (1929) की पराधीन स्थिति में ये रेलें भारतवासियों के धन, उनके धन्धों और उनके स्वास्थ्य, तीनों के लिए विनाशकारी और बेशुमार ग्रामों को उजाड़ देने वाली साबित हुई हैं।

(ख) रुई की खेती—इंगलिस्तान को अपने कपड़े के धन्धे के लिए रुई पहले अमरीका से महंगे दामों पर लेनी पड़ती थी। भारत में बरार, सिन्ध और पंजाब अपनी सुन्दर रुई के लिए मशहूर थे। इन देशों पर अंगरेजों के कब्जा करने का एक खास मतलब यह था कि इंगलिस्तान के कारखानों को सस्ती रुई भेजी जा सके। सन् 1858 के बाद इसके लिए विशेष प्रयत्न किए गए। एक नई 'ईस्ट इण्डिया काटन कम्पनी' क़ायम की गई और रुई की काश्त और उसके इंगलिस्तान भेजे जाने की तरफ़ खास ध्यान दिया गया। इंगलिस्तान और हिन्दोस्तान के सम्बन्ध का सबसे मुख्य रूप उस समय से आज (1929) तक कच्ची रुई का भारत से इंगलिस्तान जाना और इंगलिस्तान के बने हुए कपड़ों का भारत में आकर बेचा जाना है। यही इंगलिस्तान के लोगों की जीविका का सबसे बड़ा आधार है।

(ग) अंगरेज पूंजीपतियों को सुविधाएं—भारत में आकर धन्धा करने वाले अंगरेज़ पूंजीपतियों को शुरू से खास सुविधाएं मिलती रही हैं। चाय, नील इत्यादि

---

* "It has been computed that out of every shilling spent in railway enterprise 8d. makes its way to England."—Swift Macneill in the House of Commons, 14th August, 1890.

की खती कराने वाले अंगरेजों के साथ सरकार की रिआयतों का जिक्र इसी अध्याय में किया जा चुका है। इन अंगरेज़ पूंजीपतियों के फायदे के लिए चाय और नील के बगीचों के लाखों हिन्दोस्तानी मजदूरों के साथ जो सलूक अंगरेज़ सरकार ने जायज़ रखा है, उसकी दूसरी मिसाल ढूंढने के लिए हमें पौने दो हजार साल पहले रोमन गुलामी की प्रथा के अमानुषिक इतिहास की शरण लेनी पड़ती है। सन् 1860 में सर ऐशले एडन ने, जो बाद में बंगाल का लेफ्टिनेण्ट गवर्नर हुआ, साफ़ कहा था कि—"नील की काश्त कभी भी लोग अपनी इच्छा से नहीं करते, बल्कि सदा उनसे जबरदस्ती कराई जाती है।" ब्रिटिश भारत में चाय और नील की काश्त का इतिहास गुलामी की प्रथा का अत्यन्त लज्जाजनक इतिहास है।

(घ) अंगरेजों को नौकरियां—ब्रिटिश सत्ता को मजबूत रखने का उस समय यह भी एक खास उपाय माना गया। अनेक अंगरेज स्वीकार कर चुके हैं कि अंगरेज़ों को जो तनखाहें आम तौर पर भारत में दी जाती हैं, उससे आधी भी उन्हें इंगलिस्तान या किसी दूसरे देश में नहीं मिल सकती।

(च) असली शासन से भारतवासियों को दूर रखना—बहुत दर्जे तक इंगलिस्तान के हित में भारत का अहित और भारत के हित में इंगलिस्तान का अहित है। एक के उद्योग धन्धों की उन्नति में दूसरे की बेरोजगारी है और एक की खुशहाली में दूसरे की निर्धनता। इसलिए शासन प्रबन्ध में कोई वास्तविक अधिकार हिन्दोस्तानियों को देना विदेशी शासकों के लिए कभी भी हितकर नहीं हो सकता।

कप्तान पी० पेज ने लन्दन के ईस्ट इण्डिया हाउस में बैठ कर 9 अप्रैल, सन् 1819 को अपने एक मेमोरेण्डम में लिखा कि —

> **"मैं भारतवासियों की नेक चलनी के इनाम में उनकी इज्जत बढ़ा दूंगा, किन्तु उनके हाथ में सत्ता कभी न दूंगा, ×××।"**
>
> **"×××यही असूल रोमन लोगों का था। हम भारतवासियों के हाथों में बिना किसी तरह की सत्ता दिए उनकी खैरख्वाही अपनी ओर बनाए रख सकते हैं। उन्हें केवल सत्ता का आभास देना क़ाफी होगा; और यद्यपि व्यक्तिगत जीवन में मैं राशफ़कल्त के इस असूल को घृणा की दृष्टि से देखता हूं कि आदमी अपने मित्रों के साथ भी इस तरह रहे कि मानो एक दिन वे अवश्य उसके शत्रु बनने वाले हैं, फिर भी मैं समझता हूं कि भारत के शासकों के लिए इस असूल को ध्यान में रखना ही उचित है।"***

---

* "I would reward good conduct (of Natives) with honour but never with power......

"*Nullum imperium tutum, nisi benevolentia munitum.* The good will of the Natives may be retained without granting them power, the semblance is sufficient; and although I abhor in private life that maximum of Rochefaucult's which recommends a man to live with his friends as if they were one day to be his enemies, I think it may be remembered with effect by the sovereigns of India."—Captain P. Page, in his Memorandum, dated East India House,

दिया, ब्रिटिश पार्लियामेण्ट की तहकीकाती कमेटी के सामने गवाही देते हुए कहा था—

> "इस समय हमारा साम्राज्य इतनी दूर तक फैला हुआ है कि जो असाधारण ढंग की हकूमत हमने उस देश में कायम की है, उसके बने रहने के लिए केवल एक बात का ही हमें सहारा है वह यह कि जो बड़ी-बड़ी जातियां इस समय अंगरेज सरकार के अधीन हैं, वे सब एक/दूसरे से अलग-अलग हैं, और जातियों में भी फिर अनेक जातियां और उपजातियां हैं; जब तक ये लोग इस तरह एक-दूसरे सें बंटे रहेंगे, तब तक इस बात का डर नहीं है कि कोई भी बलवा हमारी सत्ता को हिला सके।"*

इसके कुछ साल बाद एक अंगरेज़ अफ़सर ने लिखा था—

> "हमारे राजनैतिक, दीवानी और फौजी, तीनों तरह के भारतीय शासन का असूल, 'फूट फैलाओ और राज करो' होना चाहिए।"†

सन् 1831 की जांच के समय मेजर जनरल सर लिओनेल स्मिथ ने कहा था—

> "××× अभी तक हमने साम्प्रदायिक और धार्मिक पक्षपात द्वारा ही मुल्क को वश में रखा है—हिन्दुओं के खिलाफ मुसलमानों को और इसी तरह और जातियों का एक दूसरे के खिलाफ़ ×××।"‡

सन् 57 के बाद कर्नल जान कोक ने, जो उस समय मुरादाबाद की पलटनों का कमाण्डर था, लिखा कि—

> "हमारी कोशिश यह होनी चाहिए कि भिन्न-भिन्न धर्मों और जातियों के लोगों में हमारे सौभाग्य से जो अनैक्य मौजूद है, उसे पूरे जोरों सें कायम रखा जाए, हमें उन्हें मिलाने की कोशिश नहीं करनी चाहिए। भारत सरकार का असूल यही होना चाहिए—'फूट फैलाओ और राज करो'।"§

---

* "In the present extended state of our Empire, our security for preserving a power of so extraordinary a nature as that we have established, rests upon the general division of the great communities under the Government, and their sub-division into various castes and tribes; while they continue divided in this manner, no insurrection is likely to shake the stability of our power."—Sir John Malcolm, before the Parliamentary Committee of 1813.

† "*Divide et impera* should be the motto of our Indian administration, whether political, civil, or military."—Carnatus in the *Asiatic Journal,* May 1821.

‡ "......the prejudices of sects and religions by which we have hitherto kept the country—the Mussalmans against Hindoos, and so on; ......"—Major-General Sir Lionel Smith, K. C. B., before the Enquiry Committee of 1831.

§ "Our endeavour should be to uphold in full force the (for us fortunate) separation which exists between the different religions and races, not to endeavour to amalgamate them. *Divide et impera* should be the principle of Indian Government,"—Lieut-Colonel John Coke, Commandant at Muradabad.

14 मई, सन् 1859 को बम्बई के गवर्नर लार्ड एलफिन्सटन ने अपने एक सरकारी पत्र में लिखा कि--

> "पुराने रोम के शासकों का असूल था--'फूट फैलाओ और राज करो' और यही हमारा असूल होना चाहिए।"*

हमें इस तरह के और वाक्य देने की जरूरत नहीं है। वास्तव में किसी देश के अन्दर विदेशी शासन को चिरस्थायी रखने का सबसे जबरदस्त उपाय यही हो सकता है।

जिस तरह एक मजहब और दूसरे मजहब के लोगों में फूट डालने का प्रश्न है, उसी तरह एक प्रान्त और दूसरे प्रान्त के लोगों में। सन् 57 के बाद एक तजवीज़ यह की गई थी कि भारतीय सरकार के अधिकारों को कुछ कम कर दिया जाए और विविध प्रान्तीय सरकारों को अपने-अपने यहां के शासन में अधिक स्वतन्त्रता दे दी जाए। इस तजवीज का नाम उसके असली लक्ष्य को छिपाने के लिए 'प्रान्तीय स्वशासन (Provincial Autonomy)' रखा गया। मेजर जी० विनगेट ने 13 जुलाई, सन् 1858 को ब्रिटिश पार्लियामेण्ट की सिलेक्ट कमेटी के सामने इस तजवीज़ की गर्ज को इस तरह बयान किया था।†

प्रश्न--आप कहते हैं कि एक केन्द्रीय सरकार से कई तरह के खतरे हैं और आप कहते हैं कि इससे तमाम देशवासियों में एक समान भाव पैदा होंगे और उनके एक समान लक्ष्य होंगे, जो हमारे लिए खतरनाक हो सकते हैं?

उत्तर--हां! मैं समझता हूं कि यदि कोई ऐसी बात हुई कि जिसमें तमाम भारतवासी दिलचस्पी लेने लगें, तो उससे विदेशी शासन को अधिक हानि पहुंचने की सम्भावना है, बनिस्वत किसी भी ऐसी बात के, जिसका आन्दोलन भारत के केवल एक भाग तक सीमित हो। यदि किसी प्रश्न पर सारे भारतीय साम्राज्य भर में आन्दोलन होने लगा, तो निस्सन्देह किसी ऐसे प्रश्न की अपेक्षा, जिसका सम्बन्ध केवल एक प्रान्त के लोगों से हो, विदेशी सत्ता के लिए यह कहीं अधिक खतरनाक होगा।

इस 'प्रान्तीय स्वशासन' का असली लक्ष्य यही था कि विविध प्रान्तों के लोगों में परस्पर ऐक्य, प्रेम और राष्ट्रीयता यानी भारतीयता के भाव पैदा होने न पाए।

9. भारत से इंगलिस्तान का खिराज

बाह्य दृष्टि में भारत इंगलिस्तान को कोई ख़िराज़ नहीं देता (1935), किन्तु मेजर विनगेट ने बड़ी योग्यता के साथ साबित किया है कि जो रक़म 'होम चार्जेज़' के नाम से भारत सरकार हर साल इंगलिस्तान भेजती है, वह वास्तव में भारतवर्ष का इंगलिस्तान को ख़िराज है। सन् 1834 से 1851 तक 17 साल के अन्दर 5,76,00,000 पाउण्ड यानी क़रीब 75 करोड़ रुपये इस मद में भारत से इंगलिस्तान भेजे गए। इस रक़म के बदले में भारत को कुछ भी प्राप्त न हुआ और न भारत को

---

* "*Divide et impera* was the old Roman Motto and it should be ours."—Lord Elphinstone, Governor of Bombay, in a Minute, dated 14th May, 1859.

†Major G. Wingate, before the Parliamentary Committee, 13th July, 1858.

इससे कोई लाभ हुआ। जो रक़में हर साल अंगरेज़ों ने अपने और अपने कुटुम्बियों के लिए भारत से इंगलिस्तान भेजीं, और जो विशाल धन इंगलिस्तान के लोगों ने भारत के व्यापार से कमाया, उस सबका इससे कोई सम्बन्ध नहीं। इसके अलावा भारत से कमाए हुए धन में से 3,60,00,000 पाउण्ड विविध अंगरेज़ों का उस समय भारत सरकार के पास क़र्ज़े की शकल में जमा था।

अन्तिम शब्द

सन् 57 के विप्लव के बाद का पिछले 80 साल का इतिहास इस पुस्तक के प्रसंग से बाहर है। किन्तु आजकल की परिस्थिति में किसी भी देश का दूसरे देश पर शासन उन उपायों के अलावा किन्हीं दूसरे उपायों द्वारा क़ायम नहीं हो सकता है, जिनका इस पुस्तक भर में ज़िक्र है, न ही किन्हीं दूसरे उपायों द्वारा जारी रखा जा सकता है, और उसके कोई दूसरे नतीजे हो सकते हैं।

लार्ड मैकाले ने सच कहा है—

> **"मुझे विश्वास है कि सब तरह के अन्यायों में सबसे बुरा अन्याय एक कौम का दूसरी कौम पर शासन करना है।"***

अमरीका के प्रसिद्ध राष्ट्रपति एब्राहम लिंकन ने एक स्थान पर लिखा है—

> **"कोई भी कौम इतनी भली नहीं हो सकती है कि दूसरी कौम पर शासन कर सके।"†**

यदि प्लासी की लड़ाई से ही भारत में अंगरेज़ी राज का आरम्भ मान लिया जाए, तो भारत के लिए 180 साल के विदेशी शासन का नतीजा कम से कम ऊपर की दृष्टि से दिन-प्रति-दिन बढ़ती हुई भयंकर दरिद्रता, निर्बलता, फूट, आए दिन के अकाल, मलेरिया, इनफ्लुएंजा और प्लेग के सिवा और कुछ दिखाई न दिया। इंगलिस्तान के लिए भी, यदि आज भारत के ऊपर से अंगरेज़ों का राज हट जाए, तो कल लंकाशायर के तमाम पुतलीघर और इंगलिस्तान के अन्य असंख्य कारखाने, जो भारतीय पराधीनता के ही सहारे चल रहे हैं, बन्द होने लगें, लाखों अंगरेज़ पूंजीपति और मजदूर बे-रोज़गार होने लगें, और सारा देश आश्चर्यजनक तेज़ी के साथ दरिद्रता, अवनति और बरबादी की ओर जाता हुआ दिखाई देने लगे। नैतिक क्षेत्र में दोनों देशों के लिए नतीजा इससे भी अधिक नाशकर है। हर अन्याय अन्यायी और अन्याय-पीड़ित, दोनों के लिए एक समान घातक होता है। एक क़ौम के ऊपर दूसरी कौम के बलात् शासन द्वारा शासक क़ौम के अन्दर स्वार्थान्धता, क्रूरता और अविवेक का बढ़ते जाना और विवेक, सहृदयता तथा मानव-प्रेम-जैसे उच्चतर गुणों का लोप होते जाना स्वाभाविक और अनिवार्य है। इसी तरह शासित क़ौम के अन्दर दिन प्रतिदिन स्वार्थ, अनैक्य और कायरता का बढ़ते जाना और प्रेम, आत्मविश्वास और साहस का कम होते जाना भी

---

* "Of all forms of tyranny I believe the worst is that of a nation over a nation."—Lord Macaulay.

† "There is no nation good enough to govern another nation."—President Abraham Lincoln.

उतना ही स्वाभाविक है। वास्तव में, इस तरह का अप्राकृतिक सम्बन्ध धीरे-धीरे दोनों देशों को नाश तथा मृत्यु की ओर ले जाए बिना नहीं रह सकता।

किन्हीं दो देशों में इस तरह का सम्बन्ध संसार के अन्य देशों के लिए भी हितकर नहीं हो सकता। जर्मनी, इटली, जापान, अमरीका-जैसे बलवान देशों में इंगलिस्तान के विशाल साम्राज्य को देख-देख कर ईर्ष्या और बेचैनी होना, और भारत की गुलामी के कारण अफ़गानिस्तान, ईरान, इराक़, टर्की और मिश्र जैसी निर्बल जातियों की स्वाधीनता का और अधिक खतरे में होना स्वाभाविक है। अपने भारतीय साम्राज्य को सुरक्षित रखने के लिए ही इंगलिस्तान को बार-बार अफ़गानिस्तान के मामलों में बेजा हस्तक्षेप की सूझी। मिस्र के प्रसिद्ध देशभक्त, जागलूल पाशा, ने सच कहा था कि भारत पर अपना साम्राज्य बनाए रखने के लिए इंगलिस्तान को स्वेज़ नहर की जरूरत है, और स्वेज़ नहर पर कब्ज़ा रखने के लिए मिस्र को पराधीन करने की। इसके अलावा भारत-जैसे विशाल देश के राज से विदेशी शासकों के हाथों में इस तरह के लाखों सस्ते तनखाहदार और आदर्शहीन सिपाही मिल जाते हैं, जिनका दूसरे देशों को गुलाम बनाने में आसानी से उपयोग किया जा सकता है। सारांश यह कि दो देशों का इस तरह का अप्राकृतिक सम्बन्ध संसार के किसी भी देश के लिए हितकर नहीं हो सकता।

इस अप्राकृतिक स्थिति से बाहर निकलने का तरीक़ा भी केवल एक ही हो सकता है और वह यह कि इन दोनों देशों के इस न्यायविरुद्ध और धर्म विरुद्ध सम्बन्ध का जितनी जल्दी हो सके, अन्त कर दिया जाए। इसका उपाय भी अधिकतर शासित क़ौम के ही हाथों में है। ऊपर के सब अध्यायों से ज़ाहिर है कि कोई विदेशी शासन किसी देश के ऊपर न बिना शासितों की सहायता के क़ायम हो सकता है और न बिना उनके सहयोग के जारी रह सकता है। हर विदेशी शासन का आहार, जिसके सहारे वह शासन ज़िन्दा रहता है, वह धन और सम्पत्ति है, जो शासक जाति व्यापार के ज़रिए या दूसरे उपायों से शासित देशों से कमाती है। इसी तरह, वह जीवनप्रद वायु, जिसके बिना कोई विदेशी शासन कहीं पर एक क्षण भी जीवित नहीं रह सकता, शासितों का एक-दूसरे पर अविश्वास और अनैक्य है।

दूसरे शब्दों में, भारत और इंगलिस्तान की वर्तमान (1935) स्थिति में इस अप्राकृतिक और नाशकर सम्बन्ध का अन्त करने के तीन ही मुख्य उपाय हैं—

1—विदेशी वस्तुओं और ख़ासकर विदेशी वस्त्रों का बहिष्कार कर देश की बनी वस्तुओं और हाथ के कते और हाथ से बुने खद्दर के उपयोग द्वारा विदेशी शासकों के मार्ग से सबसे प्रबल प्रलोभन को दूर कर देना।

2—बिना जाति-पांति, धर्म, सम्प्रदाय या ऊंच-नीच के भेदभाव के समस्त भारतवासियों में परस्पर प्रेम, विश्वास और ऐक्य का संचार करना और 35 करोड़ देशवासियों के हित के सामने, अपने-अपने व्यक्तिगत या छोटे-छोटे सामूहिक स्वार्थ को तिलांजलि देने के लिए सदा तैयार रहना।

3—विदेशी शासन में और शासन से सम्बन्ध रखने वाले हर महकमे में शासकों के साथ भारतवासी मात्र का बढ़ता हुआ असहयोग।

इन उपायों की सफलता के लिए सबसे बड़ी ज़रूरत इस बात की है और एक प्रकार से इसी में हमारी अन्तिम सफलता की कुंजी है कि हम किसी क़दम पर भी अपने आजकल के जीवन के सर्वोच्च सिद्धान्त और इस युग के सर्वोच्च आदर्श, अहिंसा, से डिगने न पाएं।

यही भारत के लिए उद्धार का एकमात्र मार्ग है और भारतवासियों के लिए धर्म का एकमात्र पथ। इसी पर भारत और इंगलिस्तान, दोनों का भावी जीवन निर्भर है। इसी में इन दोनों देशों का और इनके ज़रिए शेष संसार का वास्तविक कल्याण है।

परिशिष्ट 1

आभार प्रदर्शन

1. **झांसी के संग्राम में अंगरेजी सेना का मुकाबला करती हुई रानी लक्ष्मीबाई**
   (श्री वासुदेव राव सूबेदार, सागर, की कृपा द्वारा एक समकालीन चित्र से)
2. **वीरवर कुंवरसिंह**
   (आसफुद्दौला लाइब्रेरी, लखनऊ, के सौजन्य से)
3. **तांत्या टोपे**
   (चित्रशाला प्रेस, पूना, की कृपा द्वारा)
4. **महारानी लक्ष्मीबाई की समाधि**
   ('भारत में अंगरेजी राज' के लिए विशेष फ़ोटो)
5. **महारानी लक्ष्मीबाई का अन्तिम युद्ध**
   (श्री वासुदेव राव सूबेदार, सागर, की कृपा-द्वारा एक समकालीन चित्र से)
6. **महावन्दूला**
   (श्री रामानन्द चट्टोपाध्याय, सम्पादक, 'मॉडर्न रिव्यू', कलकत्ता की कृपा द्वारा एक चित्र से)
7. **राजा अप्पा साहब भोंसले**
   (श्री वासुदेव राव सूबेदार, सागर, की कृपा द्वारा)
8. **कप्तान जान कोनोली अफ़गान वेष में**
   (श्री मोहनलाल की पुस्तक "लाइफ आफ अमीर दोस्त मोहम्मद खां" से साभार)
9. **चुनार का क़िला**
   (श्री रामनारायण मिश्र, सम्पादक, 'भूगोल', इलाहाबाद, की कृपा द्वारा)
10. **सेनापति बापू गोखले**
    (चित्रशाला प्रेस, पूना, की कृपा द्वारा)
11. **राजा राघोजी भोंसले और रेजिडेण्ट जेनकिन्स**
    (श्री वासुदेव राव सूबेदार, सागर, की कृपा द्वारा)
12. **पुरुषाजी भोंसले उर्फ़ बाला साहब**
    (श्री वासुदेव राव सूबेदार, सागर, की कृपा द्वारा)
13. **दोस्त मोहम्मद खां**
    (विक्टोरिया मेमोरियल, कलकत्ता, के क्यूरेटर के सौजन्य से)

14. कप्तान एण्डरसन अफ़गान वेष में
(‘दि मिलिटरी आपरेशन्स ऐट काबुल’, लन्दन, 1843, से साभार)

15. बोखारा की पोशाक में सर अलेक्जेण्डर बर्न्स
(श्री मोहनलाल की पुस्तक ‘लाइफ़ आफ अमीर दोस्त मोहम्मद खां’ से साभार)

16. अफ़गानिस्तान से लौटती हुई सोलह हजार की फ़ौज में से अकेला जिन्दा बचने वाला डा० ब्राइडन, जलालाबाद के निकट
(चित्रकार : लेडी बटलर; विक्टोरिया मेमोरियल, कलकत्ता, के ट्रस्टियों के सौजन्य से)

17. मोहम्मद अकबर खां
(श्री मोहनलाल की पुस्तक ‘लाइफ आफ अमीर दोस्त मोहम्मद खां’ से साभार)

18. मीर रुस्तम खां
(श्री ईस्टविक की पुस्तक ‘ड्राई लीव्ज़ फ्राम यंग ईजीप्ट’ से साभार)

19. दिल्ली का अन्तिम सम्राट बहादुरशाह और बेगम जीनत महल
(दिल्ली के शाही चित्रकार से बनाए हुए हाथी दांत पर दो चित्र—‘माडर्न रिव्यू’ कलकत्ता, के सौजन्य से)

20. इलाहाबाद में चौक मोहल्ले के नीचे के सात पेड़, जिन पर सन् 57 में लगभग 800 निर्दोष नागरिकों को फांसी पर लटकाया गया।
(भारत में अंगरेज़ी राज’ के लिए विशेष फ़ोटो)

21. किश्तियों में बैठ कर इलाहाबाद से भागते हुए हिन्दोस्तानियों पर अंगरेजी सेना द्वारा गोलाबारी
(श्री चार्ल्स बाल की पुस्तक ‘हिस्ट्री आफ दि इण्डियन म्यूटिनी’ से साभार)

22. नाना साहब
(श्री शेफर्ड की पुस्तक ‘ए पर्सनल नैरेटिव आफ दि आउटब्रेक ऐण्ड मैसेकर ऐट कानपुर’ से साभार)

23. अमीर नसीर खां और उसके दो बेटे
(श्री ईस्टविक की पुस्तक ‘ड्राई लीव्ज़ फ्राम यंग ईजीप्ट’ से साभार)

24. शामसिंह अटारीवाला
(सेण्ट्रल म्यूज़ियम, लाहौर, के क्यूरेटर के सौजन्य से)

25. सतारा नरेश प्रतापसिंह
(श्री वी०डी० बसु की पुस्तक ‘स्टोरी ऑफ सतारा’ से साभार)

26. दीवान मूलराज
(विक्टोरिया मेमोरियल, कलकत्ता, के ट्रस्टियों के सौजन्य से)

27. काल्यां-दा-बुर्ज (अजनाला) की इमारत
(ज्ञानी हीरासिंह जी, सम्पादक, ‘फुलवाड़ी’ अमृतसर, की कृपा द्वारा)

28. काल्यां-दा-खह, अजनाला
(ज्ञानी हीरासिंह जी, सम्पादक, 'फुलवाड़ी', अमृतसर, की कृपा द्वारा)

29. अजनाला के बाबा जगतसिंह
(ज्ञानी हीरासिंह जी, सम्पादक, 'फुलवाड़ी', अमृतसर की कृपा द्वारा)

30. सम्राट बहादुरशाह की गिरफ्तारी
(माडर्न 'रिव्यू', दिसम्बर, 1911, से साभार—इस्पात पर उत्कीर्ण एक चित्र)

31. 10 जून, 1857 के बग़ावत के सन्देह पर हिन्दोस्तानी सिपाहियों को तोप के मुंह पर बांध कर उड़ाया जा रहा है।
('ए नैरेटिव आफ दि इण्डियन रिवोल्ट', लन्दन 1858, से साभार)

32. 10 जून, सन् 1857 को पेशावर में हिन्दोस्तानी सिपाहियों को तोप से उड़ाया जा रहा है।
(श्री चार्ल्स बाल की पुस्तक 'हिस्ट्री आफ इण्डियन म्यूटिनी' से साभार)

33. सम्राट बहादुरशाह
('ए नैरेटिव आफ दि इण्डियन रिवोल्ट', लन्दन, 1858 से साभार)

34. कानपुर के एक गांव को अंगरेजी फ़ौज के सिपाही आग लगा रहे हैं और गांव वाले जान लेकर भाग रहे हैं।
('ए नैरेटिव आफ दि इण्डियन रिवोल्ट' लन्दन, 1858, से साभार)

35. बेग़म जीनत महल
(श्री चार्ल्स टी० मेटकाफ की पुस्तक 'टू नेटिव नैरेटिव्ज आफ दि म्यूटिनी इन डेल्ही' से साभार)

36. कप्तान हडसन द्वारा मुग़ल शहजादों की हत्या
(आसफुद्दौला लाइब्रेरी, लखनऊ, के सौजन्य से)

37. दिल्ली की लूट का एक दृश्य, जिसमें अंगरेज प्राइज एजेन्ट लोग मकानों को खुदवा कर गड़ा धन निकालते दिखाए गए हैं।
(विक्टोरिया मेमोरियल, कलकत्ता, के ट्रस्टियों के सौजन्य से)

38. रंगून की जेल में क़ैद दिल्ली सम्राट बहादुरशाह का मृत्युशैया पर लिया गया एक फ़ोटो।
(ख्वाजा हसन निज़ामी-कृत 'देहली की जांकनी' से साभार)

39. लखनऊ के नवाबी महल की बहादुर महिलाएं, जिन्होंने मरदाना वेष पहन कर आजादी की लड़ाई में भाग लिया।
('ए नैरेटिव आफ दि इण्डियन रिवोल्ट', लन्दन, 1858, से साभार)

परिशिष्ट 2

अनुक्रमणिका

अंगरेज़ इतिहास लेखकों की राय 374
अंगरेज़ व्यापारियों का चरित्र 119, 133-134
अंगरेज़ी अदालतें 307
अंगरेज़ी राज की नींव 126
अंगरेज़ी सेना का कूच 256
अंगरेज़ी सेना का पूना के लिए प्रस्थान 406
अंगरेज़ी सेना की हार 273, 275
अंगरेज़ी सेना के अत्याचार 154
अंगरेज़ों और फ्रान्सीसियों के चरित्र में अन्तर 325
अंगरेज़ों का बंगाल से निकाला जाना 136
अंगरेज़ों का सैन्य-जाल 440
अंगरेजों की लूट-खसोट 200
अंगरेज़ों की विजय 448
अंगरेज़ों को सिखों और गोरखों की सहायता 964

अकबरशाह (सम्राट, दिल्ली) 807
अजनाले की कालकोठरी और कुआं 889-890
अज़ीमशाह (शहज़ादा) 121
अज़ीमुल्ला खां और रंगो बापूजी 820
अतरौलिया और आज़मगढ़ 926
अत्याचारों की तुलना 966
(अंगरेज़ों के) अत्याचारों पर हरबर्ट स्पेन्सर 568
अनवरुद्दीन (नवाब) 123
अन्तिम शब्द 992
अप्पा साहब भोंसले (राजा) 628
अफ़ग़ान-युद्ध का खमियाज़ा 718
अफ़गानिस्तान के विरुद्ध साज़िश 543
अफ़गानिस्तान के साथ युद्ध की तैयारी 706
अफ़गानिस्तान में एलफ़िन्सटन का उद्देश्य 549
अमरसिंह (राजा) 367, 931-932
अमरसिंह और आक्टरलोनी 594
अमरसिंह थापा का पत्र 597
अमीचन्द 129, 152, 162
अमीर खां का बरार पर हमला 540

अमीर खां का विश्वासघात 506
अमीर खां के साथ अंगरेज़ों की साज़िश 430
अम्बरपुर का दुर्ग 919
अरकाट की विजय 283
अरगांव की विजय 454
अरब 112
अरब अली खां (क़िलेदार) 209
अरबों की वफ़ादारी 631
अरबों के साथ व्यापार 188
अलीगढ़-विजय 367, 462-463, 836
अलीगौहर (शहज़ादा) 169-170, 173
अलीनगर (कलकत्ता) 136, 145
अलीवरदी खां (नवाब) 127, 129, 155
अलीवाल की लड़ाई 765
अलीहुसेन (शहजादा) 376
अल्बुकर्क 114
अवध और क्रान्ति 822
अवध और फर्रुखाबाद 358, 362-363
अवध और रुहेलखण्ड में दमन 917
अवध का अपहरण 801
अवध का पतन 956
अवध की गद्दी का नीलाम 321
अवध की बेगमों पर अत्याचार 238
अवध की स्वाधीनता (1857) 860
अवध-निवासियों का अन्तिम प्रयत्न 955
अवध के नवाब वज़ीर 798
अवध में क्रान्तिकारियों की हालत 955
अवध में नए सिरे से क्रान्ति की आग 950
असद खां 216
असफलता (सन् 1857 की) के मुख्य कारण 964
असाई का संग्राम 446
अहमदनगर का इलाका 440, 480
अहमदशाह अब्दाली 193
अहमदशाह (मौलवी) की गिरफ्तारी 860
अहमदाबाद 116
अक्षयकुमार मैत्र 137

आक्टरलोनी (करनल) 466
आक्लैण्ड (लार्ड) 704

आगरे की स्वाधीनता 881
आगरे के किले पर कब्ज़ा 115, 466
आज़मगढ़ और गोरखपुर की स्वाधीनता 840
आज़मुद्दौला 376
आम के बाग का संग्राम 926
आयर (मेजर) 926
आयरलैण्ड की स्वाधीनता का अपहरण 325
आरा का मोहासरा 925
आलमबाग का संग्राम 911
आसाम पर बर्मी शासन 646

इंगलिस्तान 188
इंगलिस्तान और भारत के माल की तुलना 560
इटावे की स्वाधीनता 836
इटावे के 25 अमर शहीद 917
इतालिया (इटली) 112, 188
इंदौर और मध्य भारत 668, 881
इमदादा हुसेन् खां (नवाब) 363
इलाहाबाद के निवासियों से बदला 847
इलाहाबाद चौक में नीम के वृक्ष 848
इलाहाबाद पर अंगरेज़ों का कब्ज़ा 219
इलाहाबाद पर क्रान्तिकारियों का कब्ज़ा 842
इलाहाबाद में भयंकर संहार 849
इसलामाबाद 179
इस्तमरारी बन्दोबस्त 308

ईरान के साथ कूटनीति 112, 544
ईसाई पादरियों के फ़तवे 134
ईसाई मत-प्रचार को प्रोत्साहन 528
ईस्ट इण्डिया कम्पनी का अन्त 973
ईस्ट इण्डिया कम्पनी की गद्दारी 118-119, 122

उच्च कुलों का अभिमान 970
उड़ीसा प्रान्त और जगन्नाथपुरी पर कब्ज़ा 457-458
उदवानाला का संग्राम 206, 208
उमदतुल उमरा (नवाब) 319, 371

एजूकेशन डिसपैच 701
एडम्स (मेजर) 206

एलफ़िन्सटन 204
एलिजाबेथ (मलका) 973
एलिज़ाबेथ (रानी) 117
एलिस (मेजर) 204
एलेनब्रु (लार्ड) 715, 755

ऐनसन (कमाण्डर-इन-चीफ़) 873
ऐमयाट 302 से 204

औरंगज़ेब और अंगरेज़ 119 से 122
और्म, इतिहास लेखक 161

कच्चिन 114
कच्छ 599
कछाड़ की रियासत का अन्त 664
कट (मेजर) 166
क़त्लेआम 922
क़मरुद्दीन 341
कम्पनी और नवाब शुजाउद्दौला 219, 221, 223
कम्पनी की आर्थिक स्थिति 519
कम्पनी की टकसाल 184
कम्पनी की व्यापार-सम्बन्धी ज़ियादती 176-177, 184
कम्पनी के खोटे सिक्के 186
कम्पनी के डाइरेक्टरों का कपट 255
कम्पनी के शासन का अन्त 952
कम्पनी को दीवानी अधिकार 223
कर्नल कैम्पबेल 457
कर्नलगंज (मंडियां) 212
कर्नाटक 122
कर्नाटक की नवाबी का अन्त 370, 376
करवी का राव 941
कर्क पट्रिक 544
कलकत्ता 122, 141
कल्यान सिंह (महाराजा) 209, 296
कार्नवालिस (लार्ड) 296, 303, 302, 522
कालिन कैम्पबेल (कमाण्डर-इन-चीफ़) 912
कालिन्स (कर्नल) का अशिष्ट व्यवहार 423
कानपुर और नाना साहब 850
कानपुर की स्वाधीनता 851

कानपुर पर तांत्या का क़ब्ज़ा 916
काबुल पर क़ब्ज़ा 710
कारनक (मेजर) 196
कालपी का संग्राम 157, 942
कालीकट 114, 118
कालीघाट 155
क़ासिमअली खां 209
क़ासिमबाजार की कोठी 131, 156
किशनदास (राजा) 132
कुंवरसिंह (राजा) 925, 928-929, 931
कुर्ग के साथ सन्धि 661
केलो (कर्नल) 173 से 175, 177
कैथल पर क़ब्ज़ा 751, 927, 960
कैनिंग (लार्ड) 804
कैनिंग (लार्ड) की घबराहट 927, 960
कोटरा का संग्राम 957
कोलब्रुक 243
कोलम्बस 113
कोल्हापुर में क्रान्ति 947
क्रान्ति का मुख्य चिह्न : कमल और चपाती 825, 829
क्रान्ति का मुख्य प्रचारक अहमदशाह 825
क्रान्तिकारियों का दिल्ली में प्रवेश 833
क्रान्तिकारियों की स्थिति 939
क्रान्तिकारियों पर झूठे इलज़ाम 967
क्रान्ति के नेताओं की उदारता 967
क्रान्तिकारियों में अनुशासन की कमी 921, 942
क्रान्ति में कानपुर की स्त्रियों का भाग 853
क्रूर यातनाएं 923
क्लाइव (कर्नल) 140, 166-167, 222, 227-228
क्लाइव की जागीर 170
क्लाइव की धूर्तता 150
क्लाइव के दोरुखे पत्र 156

खड़की का संग्राम और बापू गोखले 621
ख़ानबहादुर खां का ऐलान 839
ख़ासजीवाला की गिरफ्तारी 749
खुदाबख्श (सरदार) 940
खुदादाद खां (लट्टी) 151
खुद्दाम हुसैन 167, 175

खुरशेदजी जमशेदजी मोदी की हत्या 613
खुले डाके 225
खून के आंसू 231

गंगाधर शास्त्री 611, 614
ग़ाज़ीउद्दीन (वज़ीर) 193
गायकवाड़ और अंगरेज़ों में सन्धि 252
गायकवाड़ पर हमले का इरादा 456
गाविलगढ़-विजय 454]
गुलाम ग़ौस खां (सरदार) 940
गुलाम मोहम्मद ख़ां (नवाब) 438
गुलाम हुसैन (सैयद) 137
गैरीबाल्डी और भारतीय क्रान्ति 821
गोआ 114
गोरखपुर 242
गोरखों का देशद्रोह 875
गोरे सिपाहियों की बग़ावत 557
गोविन्दपुर 122
गोविन्दराम मित्र 155
गोहत्या पर कड़ा दण्ड 875
ग्राम-पंचायतों का नाश 306
ग्रिगरी (खोजा) 207
ग्वालियर का संग्राम 945
ग्वालियर-विजय की योजना 467
ग्वालियर पर क्रान्तिकारियों का क़ब्ज़ा 943
ग्वालियर पर हमला 666, 750

चट्टग्राम 184
चतरसिंह अटारीवाला 774
चन्दा साहब 124-125
चन्द्रनगर 126, 147
चन्द्रनगर के दो मुख्य विश्वासघाती 152
चन्द्रनगर पर अंगरेज़ों का क़ब्ज़ा 151
चन्द्रनगर पर हमले का इरादा 149
चरखारी का राजा 939
चरबी के कारतूस और क्रान्ति का प्रारम्भ 827
चार्ल्स मैटकॉफ़ (सर) 981
चितवर 187
चिमना साहब 947

चिलियानवाला का संग्राम 779
चीन 122
चुचड़ा (चिनसुरा) 116
चुनारगढ़ में अंगरेज़ों की हार 218
चोमहन 187

छूतानटी 122
छोटे-छोटे बालकों को फांसी 847

जंगबहादुर (नेपाली सेनापति) 919
जंगबहादुर (महाराजा) 955
जगदीशपुर पर हमला 932
जनरल स्मिथ की चाल 276
जनरल हैवलाक का कानपुर-प्रवेश 886, 908
ज़नानख़ानों पर हमला 134,735
जबलपुर 948
ज़मानशाह पर आपत्ति 547
ज़मोरिन 114
जयपुर और जोधपुर 665
जवांबख्त को युवराज बनाने का प्रश्न 809
जसवन्त राव और महाराजा रणजीतसिंह 525
जसवन्त राव का दौलतराव पर हमला 470, 476
जसवन्त राव का पूना-त्याग और मृत्यु 407, 536
जहांगीर और अंगरेज़ 118
जहानाबाद 187
जांती (फ्रान्सीसी) 209
जान कुक 136
जान के (सर) 102
जान कोक (कर्नल) 990
जान मैकफ़रसन 294
जान मैलकम 989
जान लारेन्स (सर) 964
जापान 188
जामा मस्जिद की लड़ाई 896
जालन्धर 871
जिलैस्पी की करुणाजनक मृत्यु 590
जीन वैप्टिस्टे का विश्वासघात 508-509
जीन ला 144
जुलाहों के अंगूठे काटना 567

जूदा 156
जेतपुर की रियासत 754
जेनोआ 112
जेम्स ऊटरम (सर) 920
जेम्स प्रथम 118
जैनलुआबदीन 216
जोरापुर का वीर बालक राजा 949
जौनपुर की स्वाधीनता 841
ज्योतिषियों की भविष्यवाणी 343

झांसी और रानी लक्ष्मीबाई 856
झांसी का स्वाधीन होना 858
झांसी की रियासत का अपहरण 668, 793
झांसी में लगातार संग्राम 937
झिन्दा (महारानी) की गिरफ्तारी 773

टाड (कर्नल) 607
टामस रो (सर) 118
टारेन्स 118, 185, 238
टीकमगढ़ 937
टीपू और अंगरेज़ 297 से 301
टीपू की शानदार विजय 277
टीपू सुल्तान 274, 335 से 341, 345 से 348, 356-357

डगलस (सेनापति) की पराजय 928
डच 116
डच और फ्रान्सीसी टापुओं पर क़ब्ज़ा 557
डण्डास 980
डनबर (कप्तान) 926
डलहौज़ी (लार्ड) की नीति 789
डेम्स (कर्नल) की पराजय 927

ढाका 132, 156

तंजौर और जेतपुर का अपहरण 794
तंजौर का क़िला और उस पर क़ब्ज़ा 364, 368-369
तांत्या टोपे 915
तांत्या टोपे की समस्या 958 से 962
तांत्या टोपे के अन्तिम प्रयत्न 956

तान्नाह (क़िला) में अंगरेज़ों की हार 133, 141
तिजारत के बहाने लूट 191
तिरुच्चिरापल्ली 125
तिलकचन्द (राजा) 187

दरिद्रता, दुष्काल और महामारी 229
दरियाना की सलाह 722
दक्षिण-भारत में मोरचे 124
दक्षिण में उदासीनता 966
दक्षिण में क्रान्ति की चिनगारियां 947
दानापुर 926
दिल्ली-सम्राट और अंगरेज़ 806
दिल्ली-सम्राट और सिराजुद्दौला 941
दिल्ली-सम्राट का अपमान 657
दिल्ली का महत्व 865
दिल्ली-सम्राट की नज़रें बन्द 754
दिल्ली-सम्राट के नाम नाना का पत्र 262
दिल्ली के बाशिन्दों का क़त्लेआम 900
दिल्ली-सम्राट के साथ दग़ा 312
दिल्ली में फिर से सनसनी 918
दिल्ली-सम्राट विजय 465
दिव 114
दी तेरानो (लेफ्टिनेण्ट) 152
दीवान मूलराज 771-772
दुर्लभराम (राजा) 155, 159, 167, 179
दूमास (फ्रान्सीसी) 122-123
डूप्ले 123
दूसरा सिख-युद्ध 770
दूसरे मराठा-युद्ध का प्रारम्भ 410
देवीकोट (किला) 125, 364
देशद्रोही नेपाली सेना 919
देशी नरेशों की अकर्मण्यता 966
देशी नरेशों के नाम बहादुरशाह का पत्र 892
देशी रियासतों को कायम रख़ना 979
दोस्त अली खां (नवाब) 122-123
दोस्त मोहम्मद की मांग 705
दौरारे का अजेय दुर्ग 921
दौलतराव के विरुद्ध सिख सरदारों की साज़िश 436, 445
दौलतराव सिंधिया 384-385, 399

'धर्म' और 'दीन' की आवाज़ 968
धर्म भ्रष्ट करने के बाद हत्या 902

नज़फ़ खां (मिरज़ा) 207, 219
नज़मुद्दौला की हत्या 224
नदिया 155, 168
नन्दकुमार (महाराजा) 521, 221, 235
नमक पर महसूल 227
नवकृष्ण (राजा) 144
नवाब अवध और नेपाल-युद्ध 587
नवाब कर्नाटक पर झूठ इलज़ाम 372
नवाब वज़ीर (अवध) 194
नवाब सआदतअली 361
नसीराबाद में क्रान्ति 836
नसीरुद्दीन (नवाब) 379
नाक्स (कप्तान) 174
नागपुर का अपहरण 792
नागौर 187
नाज़िरजंग (सूबेदार) 124
नाना का वकील, अज़ीमुल्ला खां, लन्दन में 820
नाना का शासन-प्रबन्ध 853
नाना फड़नवीस की दूरदर्शिता 248
नाना फड़नवीस की मृत्यु 394
नाना साहब के साथ अन्याय 812-813, 909
नारगुण्ड 950
नारायणराव (पेशवा) की हत्या 250
निज़ाम 329, 331 से 334
निरपराध रुहेलों का संहार 233
निर्वासित क्रान्तिकारी 955
नील (जनरल) 840
नेगापट्टन 114
नेपोलियन की जीत का इंगलिस्तान पर असर 561
नेपाल-युद्ध 585
नेपाल से मदद की प्रार्थना 859
नौनदी का संग्राम 932

पंजाब का ब्लैक होल 888
पटना 116, 156, 166
पटने पर हमला 204

पहला सिख-युद्ध 756
पानीपत की तीसरी लड़ाई और उसका परिणाम 193 से 195
पामर (कर्नल) 385
पार्लियामेण्ट की कमेटी और जालसाजी 570, 706
पिट, विलियम 171
पिण्डारियों का चरित्र और संगठन 538–539
पिण्डारियों का दमन 603
पीरज़ादा खाकीशाह 275
पुद्दूचरी (पाण्डिचेरी) 122
पुरन्धर की सन्धि 254
पुर्तगालियों का व्यवहार और उनकी सत्ता का अन्त 113 से 115, 118, 188
पुलीकट 116
पूर्निया 132, 341
पेगू प्रान्त पर कम्पनी का क़ब्जा 788
पेज (कप्तान) 987
पेतरस (ख़ाजा) 207
पेशवा के मंत्रियों को रिश्वतें 443
पेशवा को फांसने के प्रयत्न 381
पेशवा बाजीराव और अंगरेज 609, 611
पेशावर की देशी पलटनें 868
पैरां का चरित्र 463
प्रतापसिंह 124-125, 791
प्रतापसिंह (राजा) के साथ दगा 364
प्रतिकार का प्रारम्भ 844
प्रभावशाली नेताओं का अभाव 966
प्राईज एजन्सी 903
प्लासी 159
प्लासी का बदला और शताब्दी 804, 878
प्लासी बाग़ का अन्त 164

फ़तहपुर की अग्निसमाधि 882
फ़र्रुखाबाद का पतन 918
फ़र्रुखाबाद की स्वाधीनता 860
फलता 139
फ़ॉक्स 973
फ़ॉरेस्ट 968, 972
फ़िलिप एण्डरसन (पादरी) 120
फ़िलौर 871
फ़ीरोजशाह (शहजादा) 948, 962

फ़ुलरटन (डाक्टर) 210
फ़ैजाबाद की स्वाधीनता 861
फ़ोर्ट विलियम 122
फ़ौजी अदालत का स्वांग 874
फ्रान्स और रूस का भय 548
फ्रान्सीसी और अंगरेज 122–123, 156
फ्रेडरिक शोर (सर) 981
फ़ैंक्स (जनरल) 919

बंगाल की स्थिति में उतार-चढ़ाव 119, 127, 129, 140, 175–176, 186, 212
बक्सर की मशहूर लड़ाई 217
बख्त खां और मिर्ज़ा इलाही बख्श 897
बख्त खां (सेनापति) का शासन-प्रबन्ध 879
बजबज में दिखावटी लड़ाई 141
बदरुद्दीन अहमद (मौलाना) 176
बदायूं की स्वाधीनता 838
बनारस के महाराजा से छेड़छाड़ 236-237
बम्बई का टापू 119, 342
बरसात और बगलगुरी 187
बरहानपुर पर कब्जा 449
बरार का अपहरण 797
बरार के राजा को धमकी 417
बरेली में स्वाधीनता का झण्डा 837
बर्क (ऐडमण्ड) 175, 191, 988
बर्ड (मेजर) 321
बर्धमान 155, 168
बर्धमान और वीरभूम 187, 196
बर्न्स की मध्य-एशिया की यात्रा 704, 713
बर्मा का दूसरा युद्ध 782
बर्मा-युद्ध का सूत्रपात 641
बर्मा में कम्पनी की साज़िशें और सन्धि 653, 657, 786
बर्मी जहाज की गिरफ्तारी 785
बलभद्र सिंह (वीर) 589
बलूचियों की वीरता 733
बसई की सन्धि 402–403
बहादुरशाह (सम्राट) और अंगरेज़ 808, 906
बांदा का नवाब 941, 961
बाक़रगंज 190

बाजीराव पेशवा 316, 400, 405
बापूजी सिंधिया का आत्म-समर्पण 486
बाबा जगतसिंह का बयान 891
बारी की लड़ाई 933
बालकृष्ण सिंह (राजा) 921
बालेश्वर 156
बिटावली 933
बिरजीस क़दर (नवाब) 920
बिहार 127
बिहार में क्रान्ति का आयोजन 924
बीबीगंज का संग्राम 926
बीबीगढ़ का हत्याकाण्ड 883
बुन्देलखण्ड और अंगरेज़ 460, 482, 543
बेगम हज़रतमहल 864, 907
बेनीबहादुर (दीवान) 218
बेनीमाधव (राजा) 950–951
बैरकपुर क्रान्ति और हत्याकाण्ड 651, 830
बोकर (लेफ्टिनेण्ट) 940
बोल्ट्स 208
ब्रायन हाटन हाजसन 981
ब्रिस्टल 117
ब्रूम 207
ब्लाकमैन 152
ब्लैक होल का किस्सा 136

भगवानगोला 160
भयंकर लूट और दोअमली 224
भरतपुर का पतन 654
भरतपुर का राजा 438
भरतपुर पर चढ़ाई और अंगरेजों की हार 491 से 511
भाण्डेर 940
भारत की खोज में कोलम्बस 113
भारत के उद्योग-धंधों का सर्वनाश 559 से 584
भारत के खर्च पर अन्य देशों की विजय 322
भारत के जल-मार्ग की खोज 113
भारत में अंगरेजी उपनिवेश 980–984
भारत में अंगरेजी राज कायम करने की क्लाइव की योजना 171
भारत में डच जाति 116
भारत में पहला अंगरेज 117

भारत में यूरोपियन जातियों का प्रवेश 112 से 126
भारत-भर में रेलों का जाल 578
भारत पर अंगरेजों की निगाह 116
भारतवासियों का सहयोग 964
भारतवासियों को ईसाई बनाने की आकांक्षा 813
भारतवासियों में शराब का प्रचार 578
भारत से इंगलिस्तान को खिराज 991
भारतीय जहाजरानी का नाश 580
भारतीय प्रजा में अंगरेजों की अप्रियता 474
भारतीय व्यापारियों की दिक्क़तें 575
भारतीय शिक्षा का सर्वनाश 682 से 703
भारतीय सेना का संगठन 989
भास्करराव बाबा साहब (राजा) 950
भीमराव 950
भेदनीति 989-991
भोंसले के किलों पर कब्ज़ा 637

मंगल पांडे को फांसी 831
मंगलोर 114
मण्डलघाट 187
मन्दिरों और मसजिदों की बेईज्जती 904
मछलीपट्टन 118, 122
मथुरा में गोहत्या 493
मद्रास में अंगरेजों की कोठी 119, 123
मनरो का रोहतास के क़िले पर क़ब्ज़ा 217
मरदानसिंह (राजा) 937
मराठा-नरेशों के साथ युद्ध 419, 429
मराठा-मण्डल 245-246, 248
मराठा-युद्ध का अन्त 266
मराठा-सत्ता को मज़बूत करने का प्रयत्न 382
मराठा-सेनापति की अदूरदर्शिता और पराजय 194
मराठों और मुसलमानों में सम्बन्ध 538
मराठों के साथ व्यवहार 381
मराठों को एक-दूसरे से लड़ाना 537
मरे (करनल) द्वारा मालवा-विजय 495
मलाका 116
मलिक जहान खां 347
महमूद अमीनखां 166
महीदपुर में होलकर के साथ युद्ध 639

महाबन्दुला 653
महारानी अहिल्याबाई 259
मॉनसन (जनरल) की पराजय 486
माधोजी सिंधिया 260–261
माधोराव पेशवा की मृत्यु 315
मानकर 187
मानसिंह का विश्वासघात 962
मानिक चन्द (राजा) 136, 139, 141, 155
मार्ककर (लार्ड) की पराजय 927
मार्क्विस वेल्सली 326, 329
मास्टिन की करतूतें 249
मालेसन (कर्नल) 159
मिण्टो (लार्ड) और ईरान 548
मिण्टो (लार्ड) और सिंध 549
मिण्टो (लार्ड) का भारत आना 531
मिर्ज़ा कोयाश के साथ साज़िश 809
मिल (कर्नल) 129, 188
मिलमैन की पराजय 926
मिस्र 188
मीड़ोज टेलर 949
मीर अलीमुराद 726
मीर क़ासिम का चरित्र 197
मीर क़ासिम का चुंगी उठवा देना 201
मीर क़ासिम की प्रजा के साथ जुल्म 205
मीर क़ासिम के ख़िलाफ साजिश और झूठे इलज़ाम 179, 186, 198-199
मीर क़ासिम के साथ गुप्त सन्धि 179
मीर क़ासिम के ईसाई अफ़सरों की नमकहरामी 207
मीर क़ासिम के शासन का अन्त और उसकी मृत्यु 210, 213
मीर क़ासिम को गिरफ्तार करने की योजना 210
मीर क़ासिम से नई-नई मांगे 203
मीर जाफ़र 157, 165, 168, 205, 211, 216, 220
मीर जाफ़रअली खां 151
मीर जाफ़र का पाप 160
मीर जाफ़र के महल पर हमला और झूठे दोष 180 से 183
मीर जाफ़र को गद्दी 137, 144, 155, 161, 179
मीर जाफ़र से नई मांग 178
मीरन (नबाब) 169, 172, 175
मीर मईनुद्दीन 343
मीर मुहम्मदअली खां 209

मीर रुस्तम ख़ां के साथ नई सन्धि 725, 741
मीर सादिक़ 343–344
मुग़ल-सम्राट् और गोरक्षा 493
मुग़ल-राजवंश का अन्त 905
मुज़फ्फ़रजंग 124
मुरसान 599
मुरादाबाद की स्वाधीनता 838
मुर्शिदाबाद: उस समय और आज 161
मुर्शिदाबाद में वाट्स की साज़िशें 155
मुहम्मद मीर खां 451
मेदिनीपुर 184
मेरठ की घटना (सन् 1857) 831
मेहदी अली खां 543
मैकनाटन की हत्या 714
मैकाले (इतिहास-लेखक) 156
मैक्लाउड (रेज़िडेण्ट) 367
मैज़िनी के विचार 324
मैनपुरी की स्वाधीनता 836
मैसूर से सन्धि 347
मोहनलाल (पंडित) 711
मोहम्मद अली (नवाब) 125, 294, 370
मोहम्मद तक़ी खां 205–206
मोहम्मद रज़ा ख़ां 224
मौलवी लियाक़तअली 843

यदि क्रान्ति न हुई होती 970
यदि क्रान्ति सफल हो गई होती 968
यारलुत्फ़ खां 155, 159
युगल सिंह (राजा) 167
युद्ध (मराठा) का ऐलान 427
यूल, हेनरी 121

रंगून का नया गवर्नर 784
रघुनाथ राव 194
रणजीतसिंह और बेंण्टिक की भेंट 671
रणजीतसिंह की अदूरदर्शिता 550 से 552
रणजीतसिंह को प्रलोभन 504
रसल 923
राक (मेजर) की पराजय 961

राघोजी की मृत्यु 625
राघोबा (विद्रोही) 250
राजनैतिक छल 718
राजमहल 163
राजवल्लभ (राजा) 132, 155, 175
राजा राममोहन राय 808
राबर्ट माण्टगुमरी 867
रामदीन घोष 155
रामनारायन (राजा) 165, 167, 169, 196
रामरमसिंह (राजा) 166
रावीतट का हत्याकाण्ड 889
राष्ट्रीय भावों का नाश 984
रियाजस्सलातीन 163
रेज़िडेण्ट स्लीमैन 748
रेनाल्ट 145
रोक्राफ्ट, जनरल 919

लंका 114
लखनऊ की बेगमें 924
लखनऊ की रेज़िडेन्सी 907
लखनऊ-विजय के लिए विशाल अंगरेज़ी सैन्य-दल 919
लखनऊ में खून की नदियां 922
लखनऊ शहर की परिस्थिति 920
लखनऊ शहर की मोरचेबन्दी 921
लगर्ड, सेनापति 928
लडलो, इतिहास-लेखक 971
लक्ष्मीबाई और तांत्या टोपे 937
लक्ष्मीबाई (रानी) का प्रयत्न 940, 944 से 947
लार्ड मैकाले 679, 694
लार्ड लेक 412, 807
लाबूरदौने 123
लिसबन 117
लीग्रैण्ड की पराजय 929
लुई बौरगुइन 465
लुधियाना 871
लुशिंगटन 162, 182
लेयर्ड 967

वकालत की प्रथा 307

वज़ीरअली 321, 359
वफ़ादार अरब-सेना 456
वाजिदअली शाह (नवाब) 800 से 803, 863
वाट्स (मुखिया) 132, 146
वाट्सन (एडमिरल) 140, 147, 149, 153
वारिसअली (जमादार) 925
वारेन हेस्टिंग्स 189, 232, 235, 241, 252, 254, 311, 381, 602
वाल्श (जासूस) 144
वास्को-दे-गामा 114
विक्टोरिया (मलका) का ऐलान 952, 977
विनगेट (मेजर) 991
विलसम 121
विलियम एडवर्ड्स 985
विलियम पिट 973
विलियम बेण्टिक (लार्ड) 659, 981
विशाखापट्टन 121
विश्वासघात और ईसाई पादरी 275
विश्वासघातकों की करतूत 939
विश्वासघातकों की सूची 343
विश्वासराव 194
वेनिस 112
वेल्सली (लार्ड) 413, 424
वेलोर का ग़दर 529
वैलेस को दक्षिण में सफलता 495

शंकरराव 367
शंकरसिंह (राजा) 948
शहज़ादों की हत्या 899
शहादतगंज का संग्राम 922
शाइस्ताखां (नवाब) 121
शामसिंह अटारीवाला 767
शाह आलम (सम्राट) 173-174, 179, 195
शाह आलम (सम्राट) और सिंधिया 432-433
शाहजहां 115, 109
शाहजहांपुर 838
शाहजहांपुर और बरेली 934
शाहशुजा 119, 713
शिया-सुन्नी 289
शिवराव 367

शिवाजी 119
शुजाउद्दौला 214, 216
शेरसिंह की वीरता 779
शैपर्ड (कप्तान) का मुकदमा 782
शौकत जंग (शाह) 132
श्रीरंगपट्टन की लड़ाई 342

सआदत अली 321, 351
सतारा का अपहरण 791
सती चौराघाट का हत्याकाण्ड 854
सदरास 116
सदाशिव भाऊ 194
सन् 1793 का क़ानून 563
सन् 1813, 1833 के चार्टर ऐक्ट 562, 674
सन् 1857 की क्रान्ति का दूसरे देशों पर असर 971
सबसीडियरी एलाएन्स 327
सम्बलपुर का अपहरण 794
सम्राट बहादुरशाह की गिरफ्तारी 215, 898
सम्राट बहादुरशाह के ऐलान 876
सम्राट बहादुरशाह को बख्त खां का आश्वासन 897
सय्यद ग़फ़्फ़ार की वफादारी और हत्या 343-344
सय्यदाबाद 160
सरकारी विश्वविद्यालय 702
सर जान शोर 310, 317, 320
सर जार्ज बारलो 523
सरफ़राज़ खां 141
सलीब 115
सहारनपुर का अंगरेज़ी अस्पताल 805
सालबाई की सन्धि 265
सावनमल का योग्य शासन 771
साहूजी 124, 365
सिकन्दरबाग़ का संग्राम 913
सिख राजाओं का विश्वासघात 551, 866, 873
सिटान 379
सिटान और भोंसले 411, 469, 478, 507
सिटान और होलकर की भेंट 517
सिटान और होलकर कुलों की उत्पत्ति 312 से 315
सिटान (महाराजा) के नाम क्रान्तिकारियों का पत्र 943
सिटान के विरुद्ध षड्यन्त्र 431

सिडनी ओवेन 195
सिन्ध और पंजाब 669
सिन्ध सरकार और अंगरेज़ 708, 711, 720, 723, 737, 809
सियरउलमुताखरीन 137
सिराजुद्दौला और बंगाल की गद्दी 130
सिराजुद्दौला और वाट्सन 142, 147
सिराजुद्दौला का कलकत्ता-प्रवेश 135
सिराजुद्दौला की अंगरेज़ों पर चढ़ाई 132-133
सिराजुद्दौला की उदारता 135, 140, 153, 184
सिराजुद्दौला की कलकत्ता से वापसी 138
सिराजुद्दौला की हत्या 163
सिराजुद्दौला के साथ अंगरेज़ों का व्यवहार 131
सिराजुद्दौला के साथ छल 139, 143
सिराजुद्दौला को अलीवर्दी खां की नसीहत 130
सिराजुद्दौला को धमकी 152
सिराजुद्दौला फ़क़ीरी भेष में 160
सिलहट (श्रीहट्ट) 179
सीतापुर की स्वाधीनता 860
सुमात्रा 116
सुलतानपुर की स्वाधीनता 862
सूरत 116, 118, 121-122
सूरत की नवाबी का ख़ातमा 378
सेरजीराव घोटका 517
सोमनाथ का फाटक 717
स्काट (कर्नल) 129
स्क्रैफ्टन 139, 144, 152
स्टीवेन्सन (कर्नल) 450
स्पाटिश वुड (कर्नल) की आत्महत्या 869
स्पेन 113, 188
स्वरूपचन्द 203
स्वाधीनता-संग्राम पर कलंक 968

हज़रतमहल (बेगम) 920, 923, 953
हज़ारीमल 134
हडसन 922
हडसन ने शहज़ादों का खून पिया 900
हण्टर (विलियम) 220
हथियारों से भरी किश्तियां 20]
हनूमन्तसिंह (राजा) 862

हनुमान (विदेही) 921
हमारे भावी आदर्श 972
हाकिन्स (कप्तान) 118
हालैण्ड (ऑलन्दाज़) 113, 116
हावेल (गवर्नर) 135, 138, 173, 175, 177
हाथरस 599
हारकोर्ट (करनल) 459
हार्डिग को इनाम 768
हिंसा और अहिंसा 970
हिन्दू-मुसलिम पक्षपात 165
हिन्दोस्तान के साधनों का विकास 986
हिल, एस० सी० (इतिहास-लेखक) 127
हुगली 155
हुगली की लूट और क़त्ले-आम 115, 142, 155, 168
हेक्टर (जहाज़) 118
हेनरी वन्सीयर्ट (गवर्नर) 173, 175, 177, 179
हेस्टिंग्स (कप्तान) 926
हैदरअली 264, 267 से 269, 274, 277 से 293, 301
हैदराबाद (दक्खिन) 948
हैदराबाद (सिन्ध) के अमीर 731
होप (जनरल) की मृत्यु 934
होपग्राण्ट (जनरल) 933
होम्स 920
होलकर का मथुरा पर क़ब्ज़ा 484, 494
ह्वाइट 187
ह्विटलॉक (जनरल) 941

भा०स०मु०ना०—वि० 1—668 एम आफ आय. एंड बी. (एन.डी)/80—11-12-82—3,000.

प्रकाशन विभाग
सूचना और प्रसारण मन्त्रालय
भारत सरकार